११ मंत्र हैं। ७ मंत्रोंवाला एक सूक्त है और ९ मंत्रोंवाला एक सूक्त है इस तरह—

२	मंत्रवाले	१ सूक्त	११ मंत्र
५	वाला	१	५
६	वाले	२	१२
७	„ वाला	१	७
९	„ वाला	१	९
			१४३ कुल मंत्र संख्या।

इस प्रथम काण्डकी प्रकृति ७ सूक्तवाले मंत्रोंकी है अब द्वितीय काण्ड देखिये—

अब द्वितीय काण्डकी प्रपाठक अनुवाक सूक्त मंत्र संख्या इस तरह है यह देखिये—

द्वितीय काण्ड

तृतीय प्रपाठक			
प्रथम अनुवाक			
सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	
१	गुप्त अध्यात्मविद्या	५	
२	पूजनीय ईश्वर	५	
३	आरोग्य	६	
४	बहिष्ठ अग्नि	६	
५	क्षत्रियधर्म	७	१९
द्वितीय अनुवाक			
१	ब्रह्मचर्य	५	
७	आयुके बढ़ाना	५	
८	क्षेत्रियरोग दूर करना	५	
९	सन्निपात दूर करना	५	
१	दुर्गतिसे बचना	८	१८
तृतीय अनुवाक			
११	आत्माके गुण	५	
१२	मनका वश बढ़ाना	८	
१३	ब्रह्मपरिवार	५	
१४	विपत्तियोंको हटाना	६	
१५	नित्यजीवन	६	
१६	विश्वम्भरकी भक्ति	५	
१	आत्मसंरक्षणका बल	७	१२
चतुर्थ अनुवाक			
चतुर्थ प्रपाठक			
१८	आत्मसंरक्षणका बल	५	
१९	दुर्दिकी विधि	५	
२	„ „	५	
२१		५	
२२		५	
२३	„	५	
२७	शत्रुओंकी असफलता	८	
२५	शुभिपर्णी	५	
२६	ओरस	५	१८
पंचम अनुवाक			
२७	विश्वव्यापी	७	
२८	दीर्घायुष्य	५	
२९		७	
३	पतिपत्नीका मेल	५	
३१	रोगोत्पादक कृमि	५	२९
षष्ठ अनुवाक			
३२	कृमिनाशन	६	
३३	ब्रह्मनाशन	७	
३४	मुक्तिका मार्ग	५	
३५	ब्रह्मनें आत्मसमर्पण	५	
३६	विवाहका मंत्रक कर्म	८	३१
			२ ७

इस काण्डमें ५ मंत्रोंवाले सूक्त २१ हैं और मंत्र ११ हैं।

„	१	५	१
	७	५	„ ३५
„	८	७	३९ „
	द्वितीयकांडकी मंत्र संख्या		२ ७

इस द्वितीय काण्डकी प्रकृति ५ मंत्रोंके सूक्तोंकी है क्योंकि ३९ सूक्तोंमें ११ सूक्त ५ मंत्रोंके हैं।

अब तीसरे काण्डके प्रपाठक अनुवाक सूक्त और मंत्र देखिये—

तृतीय काण्ड

सम अनुवाक			
क संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	
१	शत्रुसेना-संमोहन	६	
२		६	
३	राजाकी राज्यपर पुनः स्थापना	६	
४	राजाका चुनाव	७	
५	राजा और राजाके कर्मचारीवर्ग	८	३३
द्वितीय अनुवाक			
६	वीरपुरुष	८	
७	आतुरक्षिक रोगोंका दूर करना	७	
८	राष्ट्रीय एकता	६	
९	क्षय प्रतिबन्धक उपाय	६	
१	काण्डका यज्ञ	१३	७
तृतीय अनुवाक			
११	इनसे वीर्यवृद्धि	८	
१२	गृह-निर्माण	९	
१३	अन्न	७	
१४	गोसेवा	६	
१५	वनिस्पतियों कर्मचारी	८	३८
चतुर्थ अनुवाक			
षष्ठ प्रपाठक			
१६	भगवान्‌की प्रार्थना	७	
१७	कृषिसे सुख	९	
१८	वनस्पति	६	
१९	ज्ञान और कौर्य	८	
२	तेजस्विताके साथ अभ्युदय	१	७
पंचम अनुवाक			
२१	कामाग्निशमन	१	
२२	वर्च प्राप्ति	६	
२३	वीरपुत्रप्राप्ति	६	
२४	समृद्धिकी प्राप्ति	७	
२५	कामका वास	६	३५
षष्ठ अनुवाक			
२६	वनस्पतिकी दिशा	६	
२७	अभ्युदयकी दिशा	६	
२८	पशुओंकी रक्षा	६	
२९	संरक्षक कर	८	
३	एकता	७	
३१	पापकी निवृत्ती	११	७३
		२३	

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं मंत्र संख्या ७८ है—

७	६	,,	७२
८	६		७८
९	३		१८
१	२		२
११	वाला १	इसकी	११
१३	१		१३
	३१ सूक्त		२३ मंत्र

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं अतः इस काण्डकी प्रकृति ६ मंत्रवाले सूक्तोंकी है ऐसा कह सकते हैं। तीनों काण्डोंकी मंत्र संख्या यह है—

१ काण्ड	सूक्त ३५	मंत्र संख्या १५३
२	,, ३६	२७
३ ,,	३१	२३
		५९ कुल मंत्र संख्या

इन सूक्तोंके क्रमको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, इन सूक्तोंकी स्थापना विषयानुसार नहीं है। इसकी रचना विषयानुसार की जाय तो पाठकोंको वेदका विषय समझ लेनेमें सुगमता होगी। इन तीनों काण्डोंके सूक्त विषयानुसार इकट्ठे किये तो इस तरह होते हैं—

१ ईश्वर— १।३६ ईश्वरको नमन २।१ अध्यात्मविद्या २।२ पूजनीय ईश्वर २।१६ विश्वम्भरकी भक्ति, ३।१६ मन-बुद्धिकी प्रार्थना २।११ आत्माके गुण।

* मुक्ति— २।३४ मुक्तिका मार्ग।

३ शासक— १।२ महान् शासक १।२१ प्रजा पालक ३।३ राजाकी राज्यपर स्थापना ३।४ राजाका चुनाव ३।५ राजा और राजाके कर्मचारीवर्ग १।३१ आधाराधेय, १।३२ राज्यसंचालन ३।२९ संरक्षक कर।

४ युद्ध— ३।१ २ शत्रुसेना संमोहन।

५ विजय— १।२ विजय २।३० विजय प्राप्ति, २।५

क्षत्रियवर्म ३।१५ ज्ञान और सौर्य ३।१२ तेजस्विताके सम्पुटत्व।

६ बुद्धि— १।१ बुद्धिका संवर्धन २।१२ मनका बल बढ़ाना।

७ आरोग्य— १।३,२।३ आरोग्य १।३२ दीर्घायुष्य १।२ रोगनिवारण १।२३ हृद्रोगनिवारण १।२३-२४ श्वेतकुष्ठ कुष्ठनाशन १।२५ जीवज्वर २।५ सैन्धिवातनाशन २।८ क्षेत्रियरोगनाश, २।३१ रोगोत्पादककृमि २।३२ कृमि नाशन २।३३ यक्ष्मनाशन ३।० आधुनिक रोग दूर करना।

८ दीर्घायु— १।३ आयुष्यवर्धन १।३५ बल और दीर्घायुष्य २।२८-२९ दीर्घायुष्य ३।११ इन्द्रसे दीर्घायुष्य।

९ धन— ३।१५ वनिताओंसे धनकी प्राप्ति ३।२४ धन वृद्धिकी प्रार्थना।

१० पापसे मुक्ति— १।१ पापसे मुक्ति ३।३१ पापसे निवृत्ति, २।१ दुर्गतिसे बचना २।१७ विपत्तिको हटाना।

११ तेजस्विता— १।५ ३।२२ वर्चःप्राप्ति।

१२ यज्ञ— २।३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण।

१३ संगठन— १।१५ संगठन बल ३।८,३।३ राष्ट्रीय एकता।

१४ सुप्रजाप्राप्ति— १।२३ सुप्रजाप्ति।

१५ आत्मरक्षण— २।१० १८ आत्मरक्षक बल।

१६ निर्भयता— २।१५ निर्भयजीवन।

१७ वीर— ३।६ वीर पुरुष ३।२३ वीरप्रसू।

१८ सम्पुटत्व— ३।२ सम्पुटत्वकी क्रिया।

१९ कृमिप्रतिबंध— ३।९ क्रीम दूर करना।

२० शुद्धता— २।१९-२३ शुद्धि।

२१ गृहनिर्माण— ३।१२। गृहनिर्माण, ३।१३ गोशाला।

२२ गौ— ३।२६ गोरक्षण सेवन।

२३ उषासि— ३।२६ उषासिकी क्रिया।

२४ विद्या— ३।३४ मनुविद्या।

२५ वस्त्र— ३।३३ वस्त्रधारण।

२६ यज्ञ— १।१४ यज्ञयज्ञ १।१८ सौमाग्य १।२० विवाही स्त्री।

२७ धर्म— १।७-८ धर्मप्रचार।

२८ जल— १।३,५ ६।३२,३।१३ जल।

२९ काम— ३।२१ कामाग्निका शमन ३।३५ कामका दास।

३० कृषि— ३।१७ कृषिसे सुख।

३१ प्रसूति— १।११ सुख प्रसूति।

३२ मणि-धारण— २।२ मणिधारण।

३३ शाप— २।७ शापसे छोड़ाना।

३४ वनस्पति— २।२५ पृथिवपत्नी ३।१८ वनस्पति।

३५ पशु— ३।२८ पशुस्वास्थ्य रक्षण।

३६ पतिपत्नी— २।३६ विवाह संगल कार्य २।३ पतिपत्नीका प्रेम।

३७ काल— ३।१ कालका यज्ञ।

३८ रक्तस्राव— १।१७ रक्तस्राव बंद करना।

३९ चोर डाकू— १।१६ चोरनाशन, १।१९ शत्रु नाशन १।२८ दुष्टनाशन २।२४ डाकुओंकी अवरुद्धता।

इस तरह सूक्तोंकी विषयानुसार व्यवस्था की गयी जो इस व्यवस्थासे अधिक सूक्तोंका बोध शीघ्र और सुलभ हो सकता है। आशा है कि पाठकगण इसका विचार करेंगे। हमने इस समय जैसी सूक्तोंकी व्यवस्था है वैसी ही रखी है।

वैदिक सूक्तियाँ

इस प्रथम विभागमें ३ काण्डोंके सब सूक्त आगये हैं वे ऐसे हैं—

प्रथम	काण्ड सूक्त ३५	मंत्रसंख्या १५१	पृष्ठसंख्या १२
द्वितीय	३५ „	२७	१७८
तृतीय	३१ „	२३ „	२२८
	१ २	५९	५१६

इन तीनों काण्डोंमें मिलकर १ २ सूक्त हैं और ५९ मंत्र हैं और स्वाध्यायके साथ पृष्ठ ५१६ हैं। इन तीनों काण्डोंके ५९ मंत्रोंमें कवीय कवीय एक सहस्र सूक्तियाँ हैं। विषयवार इन सुभाषितोंका संग्रह हमने किया है जो इस यहाँ देते हैं। पाठक कई सुभाषितोंको कण्ठ रखनेपर भी रख सकते हैं। मंत्रोंके अन्दर सूक्तियाँ अथवा सुभाषित सुरक्ष

गर्भस्थ रहते हैं। जैसा बीजमें मगज होता है वैसे मंत्रमें सुभाषित होते हैं। पाठक इनका विचार करें और प्रयोगमें भी ला सकते हैं। व्याख्यानोंमें लेखोंमें तथा अन्यप्रकार इनका बहुत उपयोग होसकता है और जितना इनका उप योग होगा उतना वेद व्यवहारमें आया गया यह सिद्ध हो सकता है।

इसके नीचे हम इन तीनों काण्डोंके सुभाषित देते हैं—

परमेश्वर

इन तीन काण्डोंमें परमेश्वर विषयक सुभाषित ये हैं—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा। अ २।१।३

वह ईश्वर सब अन्य देवोंके नामोंको धारण करता है वह एक ही सबका प्रभु है। उस प्रभु पूछने योग्य परमे श्वरके पास सब भुवन आश्चर्य जाते हैं।

येनस्तत् पश्यत् परम गुहा यद् यत्र विश्व भवत्येकरूपम्। अ २।१।१

जहां सब विश्व एकरूप होता है और जो इसकी गुहामें रहता है उसको ज्ञानी मक्त जानता है।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा। अ २।१।३

वह परमेश्वर हमारा पिता और जनक है वही बन्धु भी है। वह सब भुवनों और स्थानोंको जानता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं वितत दृशे कम्। अ २।१।५

उसके अमृतके सुखमय तन्तुको देखनेके लिये सब भुवनोंमें मैं घूम आया हूं। सर्वत्र इस सुखस्वरूप अमर अमरूप इस तन्तुको मैंने देखा है।

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विश्वासुप्यः। अ २।२।१

भुवनका एक ही दिव्य गन्धर्व स्वामी है जो नमस्कारके योग्य है और प्रजाजनोंको स्तुति करने योग्य है।

मृडाऽगन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवः। अ २।२।२

भुवनोंका एक ही स्वामी जो नमस्कारके योग्य है जो सुशेवम् है वही सबका आधार सबको सुखी करे।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनाव धैरयन्त। अ २।१।५

जहां अमृत पीनेवाले देव उस एक आश्रय स्थानमें रहते हैं। (यह अमर परमेश्वरका आधार स्थान है।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे॥ अ २।१६।१

प्रातः समय अग्नि इन्द्र मित्र वरुण अश्विनौ, भग पूषा ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्रको बुलाते हैं इनकी प्रार्थना करते हैं। (एक देवके ये अनेक गुणबोधक नाम हैं।)

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ४॥ अ २।१६।४

हम अब भाग्यवान् हों सायंकाल अथवा दिनके मध्यमें सूर्यके उदयके समय भाग्यवान् हों। हम देवोंकी सुमतिमें रहें।

त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव। अ २।२।१

हे दिव्य देव! तेरे साथ ज्ञानसे मैं संयुक्त होता हूं।

अच्छा त्वा वन्तु हविनः सजातावः। अ २।७।३

सजातीय लोग हविष्य अन्नके साथ तेरे समीप आवेंगे।

उपसद्यो नमस्यो भवेह। अ ३।४।१

यहां पास आने योग्य तथा नमस्कार करने योग्य हो।

नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्। अ २।२।१

तेरा स्थान द्युलोकमें है, तुझ में नमस्कार करता हूं।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत्।

इसके तीन पाद इसकी गुहामें हैं जो इसको जानता है वह पिताका भी पिता अर्थात् बड़ा होता है।

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथम आमृतस्य। अ २।१।४

द्यावापृथिवीमें मैं सर्वत्र घूम आया हूं और सबके प्रथम प्रवर्तक- परमेश्वरकी मैं उपासना सदा करता हूं।

स तद्वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो नाम परम गुहा यत्। अ २।१।२

जो इसकी गुहामें है वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान विद्वान् वही हो आकर उसका वर्णन कर सकता है।

स देवान् यक्षत्स उ कल्पयताद्विशः । अ ३।७।६

वह देवोंका यजन करता है वह विश्वसे प्रजाओंको समर्थ करता है ।

यज्ञस्य चक्षुः, प्रसृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । अ ३।५।५

वह प्रभु यज्ञका आंख है सबका भरण कर्ता और यज्ञका मुख है । वाणी कान और मनसे मैं उसका भजन करता हूं ।

दिवि स्पृष्टो यजतः सूयरवङ् अधयाता हरसो दैव्यस्य । अ ३।२।२

ईश्वर द्युलोकमें रहता है वह पूज्य है सूर्यके समान तेजस्वी है और दैवी आपत्तियोंको दूर करनेवाला वही प्रभु है ।

ये सूक्तियां बारंबार पढनेसे कण्ठ करनेसे बारंबार भजन करनेसे परमेश्वर विषयक वैदिक सिद्धान्त तत्काल ध्यानमें आजाता है । देखिये—

यो देवानां नामधा— वह देवोंके नाम धारण करने वाला है ।

तं सम्प्रश्न भुवना यन्ति सर्वा— सब भुवन उस पूछने योग्य प्रभुके पास जाते हैं ।

धेनुरात्पदयत्— वाणी उसको देखती है ।

परमं गुहा यत्— जो हृदयके गुप्त स्थानमें रहता है ।

स नः पिता जनिता— वह रक्षक और उत्पन्न करनेवाला है ।

धामानि वेद भुवनानि विश्वा— सब भुवनों और स्थानोंको वह जानता है ।

अमृतस्य तन्तु यितम दशे कं— मुक्तिदायक वेदका दिया हुआ सबका तन्तु- परमात्मा है उसको मैं देखता हूं ।

भुवनस्य पतिः— वह भुवनोंका एक पति है ।

एक एव नमस्यः— वह एकही नमस्कार करने योग्य है ।

विश्वेत्यः— प्रजाओंमें दृश्यमान वही एक है ।

वयं देवानां सुमतौ स्याम— हम देवोंकी सदिच्छामें रहें ।

त त्वा यौमि— इस तुझसे मैं युक्त होता हूं ।

नमस्ते अस्तु— तुझे नमस्कार है ।

प्रातर्मर्गं— प्रातःकाल मार्गवत् प्रभुकी भक्ति करते हैं ।

उपसद्यो भवेह— यहां पास आने योग्य हो ।

दिवि ते सधस्थं— आकाशमें तेरा स्थान है ।

तीणि पदा निहिता गुहास्य— इसके तीन पाद बुद्धिमें हैं ।

अमृतस्य विद्वान्— अमृतका जाननेवाला धन्य है ।

धाम परमं गुहा यत्— परम धाम हृदयमें है ।

स उ कल्पयताद्विशः— वह प्रभु प्रजाओंको उसमें रमाता है ।

अधयाता हरसो दैव्यस्य— दैवी दुःखोंको वह प्रभु दूर करता है ।

यहां जो सूक्तियां दी हैं । उनके ये टुकडे हैं । ये भी सूक्तियां ही हैं और ये बारंबार भजन करने योग्य हैं । 'एक एव नमस्यः प्रभु अकेला एकही नमस्कार करने योग्य है । दिवि ते सधस्थं आकाशमें तेरा स्थान है । 'अधयाता हरसो दैव्यस्य दैवी दुःखोंको दूर करने वाला वह प्रभु है । ऐसे वेदमन्त्रोंके टुकडे भजन करनेके होते हैं । अकेला अपने मनमें इनका भजन करे अथवा समाजमें सैकडों और हजारों मनुष्य अर्थके साथ इन मन्त्रोंका भजन करें । इस तरहका भजन करनेके लिये ही ये टुकडे हैं । जिनकी वेदोंपर श्रद्धा है वे अवसर प्राप्त करते हुए इन मन्त्रोंका भजन करें । यह भजन मनमें भी होता है और आवश्यकमें सामूहिक भी हो जाता है । ऐसे अर्थसहित भजन होने लगे तो वे मन्त्रभाग सबके मनमें स्थिर होते हैं और इनका उपयोग बोलने चालनेके समय होनेकी सुविधा होती है ।

पाठक मनमें ऐसे भजन करके देखें भजन करनेके समय अर्थको अपने मनमें पूर्ण रीतिसे भरपूर भरकर रखें उस मंत्रके आशसे अपना मन भरपूर भरा ऐसा ओतप्रोत भरा है ऐसा भाव मनमें सुस्थिर रखें । ऐसा भजन मनमें कर लेनेसे जैसा काम व्यक्तिको होता है वैसा ही काम वे ही वेदमन्त्र सामुदायिक रीतिसे भजन करनेसे समुदायमें जो लोग वे मन्त्र बोलते रहेंगे उनको काम होता है ।

यह बात करके देखने योग्य है । वेदका भक्त अपने जीवनमें इस तरह जानेका यत्न करना चाहिये । वेदका अर्थ जीवित है यह समझनेका यह उपाय है ।

ईश्वर विश्वका शासक है जो शासक होता है वह राजा ही होता है ईश्वर शासक है और निर्दोष शासक है। अतः वह हमारे शासकोंके लिये आदर्श है। इस दृष्टिसे ईश्वरके गुण हमारे शासकमें देखने योग्य हैं। वे इस तरह देखे जा सकते हैं—

शासकका वर्णन

वेदमें जो वर्णन है उन मंत्रोंमें शासक राजा अधिकारीका वर्णन करनेवाले सूक्तादिक ये हैं—

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु । अ ३।४।१

हे राजन्! सब दिशा अवदिशा (ओंमें रहनेवाले प्रजा जन) तुम्हें (अपने रक्षणके लिये) बुलावें।

सास्त्वा सविदाना ह्वयन्तु । अ ३।४।७

वे सब प्रजाएं मिलकर एकमतसे तुझे बुलावें।

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमा प्रदिशः पञ्च देवीः। अ ३।४।२

तुझे वे प्रजाएं वृद्ध वे पांच दिशाओंमें रहनेवाली दिव्य प्रजाएं राज्यरक्षणके लिये स्वीकार करें।

मा त्वा राष्ट्रमारोहत्। अ ३।४।३

हे राजन्! तेरे पास राष्ट्र भागता है।

सजातानां मध्यमा मा भेर्मोग्रम्। अ ३।४।३

अपनी जातियोंमें उच्च स्थानपर इसको रखो।

वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि। अ ३।४।२; ७

राष्ट्रके उच्च स्थानमें रहकर और वहांसे सबके लिये धनोंका विभाग कर दो।

माद् विशांपतिरेकराड् त्वं विराज। अ ३।४।१

प्रजाओंका मुख्य स्वामी एक राजा होकर तू विराज मान् हो।

स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
अ १।२१।१

प्रजापालक कल्याण करनेवाला शत्रुनाशक और शत्रुओंको वश करनेवाला हो।

ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय। अ १।२९।१

हे ब्रह्मी पुरुष! राष्ट्रके हित करनेके लिये बढ़ाओ।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्व मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्।
अ ३।५।७

जो राजा और राजाओंको करनेवाले सूत तथा ग्राम नेता हैं हे पर्वत! इन सबको मेरे समीप उपस्थित कर (उनकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर।)

अहं शत्रुहाऽसाम्यसपत्नः सपत्नहा। अ १।२९।५

मैं शत्रुका नाश करनेवाला शत्रुओंका वध करनेवाला तथा शत्रुरहित होऊं।

अहं राष्ट्र्यामीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।
अ ३।५।२

मैं राष्ट्रके आप्त पुरुषोंमें उत्तम निज बनकर रहूं।

अधा मनो वसुदेयाय कृण्वते। अ ३।४।४

अपना मन धनदानके लिये अनुकूल बनाओ।

इन्द्रेष्माग्ने स्वेन संरभस्व। अ २।६।४

हे अग्ने! अपने शत्रुतेजसे उत्साहित हो।

अति निहो अति सृधो अत्यचित्तीः अतिद्विषः।
अ २।६।५

आपत्ति करनेकी वृत्तिसे दूर रह, हिंसकोंसे दूर रह पापवृत्तीसे दूर हो द्वेष करनेवालोंसे दूर रहो।

तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः।
अ २।७।३

उस सहस्र काण्डवालेसे सब ओरसे हमारा रक्षण कर।

शतारत्नेषु अपथाः। अ २।७।५

आप शत्रुवालेके पास ही उसका शाप चला जावे।

सशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः।
अ ३।१९।१

मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है मेरा वीर्य और बल तेजस्वी है। जिनका मैं विजयी पुरोहित हूं उनका तेजस्वी और क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज बढ़ता रहे।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वानहम्।
अ ३।१५।३

मैं ज्ञानसे शत्रुओंका नाश करता हूं और अपने लोगोंको मैं उन्नत करता हूं।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुरेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः। अ ३।१९।५

इनका क्षात्रतेज अक्षय हो। इनका विजयी चित्त सब देव सुरक्षित रखें।

जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु वयं पशुं प्रति पश्यास उग्राः । अ ३।७।६

स्त्रियां और पुत्र उत्तम मनवाले हों । भार उठानेमें बल कर बहुत कमानेके देखें ।

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन् । अ ३।७।७

सन्मार्गसे चलनेवाली अनेक प्रकारकी दानशीलता प्रजायें मिलकर तुम्हें बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त कराती हैं ।

वशी वदेत्र प्रमृणन् रसपत्नान् । अ ३।८।१

यह बलवान् वीर अपने वशसे शत्रुओंका नाश करता है ।

ये धीवानो रथकारा कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मद्य त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥
अ ३।५।६

जो बुद्धिमान् हैं जो रथकार हैं जो कर्म करनेवाले सुतार हैं और विद्वान् हैं । हे पर्णमणे ! तू उन सब जनोंको मेरे समीप उपस्थित कर (बुद्धिमानोंकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर ।)

सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ।
अ ३।६।७

सजातीयोंमें मध्यम स्थानमें बैठनेवाला हो और राजाओं राजपुरुषोंके द्वारा बुलाने योग्य होकर यहां प्रकाशित होता रह ।

दास इत्या महाँ असुन्वन्नमित्रसत्वो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥
अ १।१ ।४

शत्रुओंका नाश करनेवाला अपराभूत ऐसा यह महान् साधक है जिसका मित्र मारा नहीं जाता और जिसका मित्र कभी पराभूत नहीं होता ।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥
अ ३।२७।७

हे प्रजापालक ! पास लाना और समूह करना ये दोनों कार्य तू कर वे कार्य यहां वृद्धिको करें और बहुत अक्षय सम्पत्तिको प्राप्त हों ।

यत्ते तपः परः क्रोधः आर्चिः शोचिः तेजः ।
तेन तं प्रतितपोऽसान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
अ २।१९-२१।१-५

जो तेरी तपशक्ति, क्रोधशक्ति तेजःशक्ति, प्रकाशशक्ति और तेजस्विशक्ति है उससे उसको कष्ट दे जो हमसबको कष्ट देता है और जिसका हमसब द्वेष करते हैं ।

अभूर्पृथीनामभिशस्तिपाया उ । अ २।१२।१

विनाशसे मनुष्योंका रक्षण करनेवाला हो ।

विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि ।
अ २।१६।५

हे विश्वके भरण कर्ता ! संपूर्णपोषक शक्तिसे मेरा रक्षण कर ।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं
यमस्यामी सभासदः । अ ३।२९।१

जिस तरह विभागसे चलनेवाले राजाके सभासद ये सब इष्ट और पूर्तका सोलहवां भाग ग्रहण कर उसके रक्षक हैं ।

यासां राजा वदन्यो याति मध्ये सत्यानृते
अवपश्यन् जनानाम् । अ १।३६।२

जिनका राजा बहुत लोगोंके सत्य या असत्य आचरण देखता हुआ जाता है ।

ये देवी मंत्रयागा इस विषयमें विचार करने योग्य हैं । इनमें और थोड़े भागमें सदा रखने योग्य सुभाषित ये हैं ।

त्वां विशो वृणतां राज्याय— सब प्रजा राज्यके लिये तुझे लायक करके स्वीकार करें ।

ध्रुवं राष्ट्रस्य बृहति श्रयस्व— राष्ट्रके बड़े स्थान पर रह ।

विशां पतिरेकराड् त्व विराज— प्रजापालक एक राजा होकर तू सुशोभित हो ।

एवत्तिद्या विशांपति— यह प्रजापालक कल्याण करनेवाला हो ।

अमि राष्ट्राय वर्धय— राष्ट्र दिव करनेके लिये बल कर ।

त्वं सर्वाः कृण्वभितो जनान्— तू सब जनोंको अपने चारों ओर इकट्ठा कर ।

अहं शत्रुहोऽसानि— मैं शत्रुका नाश करनेवाला होऊंगा ।

अहं राष्ट्रस्यामीवर्गो मित्रो भूयास— मैं राष्ट्रके उत्तम पुरुषोंमें मित्र होकर रहूंगा ।

अति द्विषः— द्वेष करनेवालोंको दूर करता हूं ।

अति क्रियाः— हिंसकोंको दूर करता हूं।

परि वः पाहि विश्वतः— चारों ओरसे हमारी रक्षा कर।

संशितं वीर्यं बलम्— हमारा वीर्य और बल तीक्ष्ण हो।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रबल तीक्ष्ण होकर क्षीण न हो।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रान्— शत्रुओंको ज्ञानसे क्षीण करता हूं।

उग्रयामि क्षात्रेण— सेनाओंको उत्तेजित करता हूं।

क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रतेज क्षीण न हो।

विश्वेषां क्षितम्— इसका निवास विजयी हो।

आवाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु— सभी पुत्र उत्तम मनवाले हों।

वज्री वज्रेण प्रमृणन् सपत्नान्— वज्रवान् वज्रसे शत्रुओंको मारे।

सजातानां मध्यमेष्ठाः— सजातीयोंके मध्यमें बैठने वाला हो।

शास इत्था महाँ असि— तू शासक ऐसा महान् है।

अमित्रसाहो अस्तृतः— शत्रुको पराभूत करनेवाला और सब अपराजित हो।

न यस्य हन्यते सखा— जिसका मित्र मारा नहीं जाता।

उपोदय समूहय— पास आओ और समूह करो (ये दो कार्य करने योग्य हैं।)

इस प्रकार इन सुभाषितोंमें मननीय वचन हैं। ये बार बार उच्चारित करनेसे बड़ा आनंद प्राप्त हो सकता है। स्वस्तिदा विशांपतिः यह वचन बारंबार उच्चारनेसे राजाके कर्तव्य ध्यानमें आ सकते हैं और परमेश्वरके गुण भी मनमें स्थिर होते हैं। परमेश्वर स्वस्ति-दा है अर्थात् कल्याण करनेवाला है। सबका कल्याण वह करता है। जो परमेश्वरका गुण है वही गुण राजामें तथा साधारण प्रजाजनमें भी देखना चाहिये। अर्थात् हरएक मनुष्य स्वस्ति-दा कल्याण करनेवाला हो राज्यका अधिकारी कल्याण करनेवाला हो राजा भी प्रजाका कल्याण करनेवाला हो। परमेश्वर तो सबका कल्याण करनेवाला है ही।

'राष्ट्राय मर्याय राष्ट्रका बल कर। राष्ट्रकी उन्नति कर। राष्ट्रका अनुकूल हो ऐसा कर। अहं शत्रुहो वसानि' मैं शत्रुको मारूंगा। शत्रुको दूर करना हरएकका कर्तव्य है। शत्रु तो व्यक्तिके समाजके घरके तथा राष्ट्रके अनेक प्रकारके होते हैं। इन सब शत्रुओंको दूर करना योग्य है।

विश्वेषां क्षित्त सब मनुष्योंका चित्त अवज्ञाकी हो विजयी हो। कभी चित्त विक्षुब्धी न हो। न यस्य हन्यते सखा जिसका मित्र मारा नहीं जाता ऐसा परमेश्वर है। राजा भी ऐसा हो और मनुष्य भी ऐसा हो।

इस प्रकार इन सुभाषितोंका मनन मनन तथा अपने जीवनमें लानेका यत्न करना चाहिये। ईश्वर विश्वसावक है और राजाके गुणधर्म इनमें भरे हुए हैं। शासन हुआ तो वहां दुराग्रहोंसे, शत्रुओंसे युद्ध करना ही पड़ता है। इस कारण अब युद्धके विषयके सुभाषित देखिये—

युद्ध

युद्धोंका प्रसंग करनेके लिये आतुर रहकर युद्ध करना चाहिये इस विषयके ये सुभाषित हैं—

स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्। अ २।६।३

अपने घरमें प्रमाद न करता हुआ जागृत रह।

प्रेता जयता नर इन्द्रा वः सन्तु बाहवः।

अ ३।१५।६

हे वीरो! आगे बढ़ो विजय कमाओ, आपके बाहु शौर्य करनेवाले हों।

सेऽपराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना सौरिव बन्धनात्।

अ ३।६।७

जैसी नौका बंधनसे छूटनेपर बह जाती है उस तरह ये शत्रु अधोमार्गसे नीचेकी ओर चले जांय।

अमी ये विप्रता स्थन ताम्वः स मयामसि।

अ ३।८।५

जो ये विरुद्ध कर्म करनेवाले हैं उनके मैं एक विचार वाले करता हूं।

अदर्शेतेतः सदाम्या। अ २।१७।६

यहांसे दानवहृदयां सिंह हों।

वि स्वमग्ने आरात्याः। अ ३।२१।१

हे अग्ने! तू शत्रुको दूर रहता है। शत्रु तुमारे पास नहीं आसकता।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो अग्ने दध्मः ।
अ ३।२७।१-६

जो हम सबका द्वेष करता है और जिस अनेकोंका हम सब द्वेष करते हैं उसको हे अग्नी ! तुम्हारे अग्निमें देते हैं ।

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूनेषां हविषाऽहम् ॥
अ ३।१९।२

इनका राष्ट्र बल वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हूं । इस हविसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूं ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥
अ ३।१९।३

जिनका मैं पुरोहित हूं उनके शस्त्र अस्त्र फरसोंसे तीक्ष्ण अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भी तीक्ष्ण बनाता हूं ।

उदयंस्तां मघवन् बाहिनाभ्युद्वीराजां अपतामेतु घोषः । अ ३।१९।६

हे इन्द्र ! उनके शस्त्र उत्तोलित हों । विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णेषवोऽवलप्तनखवो हतोग्रायुधा अभिसाद्वन्तु प्रवाहणः । अ ३।१९।७

हे तीक्ष्ण बाणवाले ! उग्र नखोंवाले ! उग्र बाहु वाले वीरों । विजेता शत्रुपक्षवाले विजेता वीरोंको मारो ।

एषां तान् सर्वान् निर्मंग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् । अ ३।१९।३

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्र त वज्रः प्रमथ्नातु शत्रून् । अ ३।१।७

तेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढ़े ।

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् । अ ३।१।८

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नधीकाकृत्या कर ।
अग्नेर्वातस्य ज्राय्या तान् विषूचो विनाशय ॥
अ ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुओं चित्तोंको मोहित करके दुष्ट चेष्टाओंके साथ हमारे पास आ । और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुओं चारों ओरसे विनष्ट कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः । अ ३।२।१

वह हमारा वीर अग्नि शत्रुके चित्तको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

मनीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाऽग्न्यग्ने परेहि । अ ३।२।५

हे स्त्री ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके इनके अवयवोंसे अलग कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः । अ ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तरहित करे ।

मनसाग्निरमूमुहदयामि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो वयमस्योकसः प्र वो नमतु सर्वतः ।
अ ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको वह अग्नी मोहित करे । शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् । अ ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत बातघात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अमि प्रेहि निर्दह हरसा शोकैर्मामित्रांस्त्वमग्ने विध्य शत्रून् । अ ३।२।५

आगे बढ़ दुश्मनोंको शोकसे जला दो अग्निसमान रोगसे तथा मूर्छासे शत्रुओंको बींध दो ।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वं ।
अ ३।१।२

हे मारनेमें समर्थ वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो इसलिये आगे बढ़ो आओ और जीत लो ।

आतृव्यक्षयणमसि आतृव्यक्षयणं मे दाः ।
सपत्नक्षयणमसि सपत्नक्षयणं मे दाः ।
अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः ।
पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः ।
सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयणं मे दाः ।
अ ३।१८।१-५

वैरियों सपत्नों, निर्ऋतियों मांस भक्षकों तथा आसुरी वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, वह सामर्थ्य तुझ हो।

मृतपतिर्मिरजतु इन्द्रद्वेषाः सदान्याः।
गृहस्य दुध्न आसीनास्ता इन्द्रो यज्रेणाभि तिष्ठतु।
अ १।१३।७

मृतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहांसे दूर करे। घरकी छतमें जो दुराग्रहों हों उनको इन्द्र वज्रसे दूर हटा देवे।

विधूर्वेतु हरन्ती पिनाकमिव बिभ्रती।
विश्वक् पुरमुद्या मनः। अ १।१७।२

धनुष्य धारण करती हुई काटती हुई वीरसेना चक्र जो शत्रुसेनाका मनः विचलित करे।

मारे अस्मा यमस्यथ। अ १।२६।१

किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो।

अधर्म गमया तमो यो अस्मां अभिदासति।
अ १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अवस्थामें पहुंचा दो।

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
अ १।२१।३

हे प्रभो! हे वीर! द्वेषीका मन वचन दे और हमारे नाश करनेवालेके वधको दूर कर।

इदं विष्कन्धं सहते इदं यातयते शिफाः।
अनेन विश्वा सस्नहे या जातानि पिशाच्याः॥
अ १।२६।३

यह वीरा दुष्टका पालन करता है यह शत्रुको नाश करता है पिशाचोंकी सब जातियां इससे पराभूत होती हैं। (वीरा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है।

आराच्छरव्याऽस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय।
अ १।२९।१

हे इन्द्र! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर गिरें।

या नः सो यो अरणः सजात उत विश्वयो यो अस्मानभिदासति।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविध्यतु।
अ १।१५।३

जो अपना जो परकीय, जो सजातीय, अपना जो हीन जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे बींधे।

मा नो विदन्नभिमा नो अशस्तिः। अ १।१२।१

पराभव हमारे पास न आवे अपकीर्ति हमारे समीप न आवे।

इतश्च यदमुतश्च यद्वध यवण यावय।
अ १।९।३

हे वरुण! यहांसे और वहांसे जो वध है उसको दूर कर।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तद्वरुणो यामनि जातवेदाः।
अ १।१६।१

सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी वह यातना देनेवाले दुष्टोंको दूर करती है।

विसल्पन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः।
अ १।७।३

जो यातना देनेवाले सब भक्षक बालक हैं वे विलाप करें। (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना और वध करना ऐसा बोलना विलाप करनेवाला है।

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धां इहावह। अ १।७।७

हे अग्ने! तू यातना देनेवालोंको बांधकर यहां ला।

यातुधानस्य प्रसितिं जहि नयस्व च। अ १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रसारता पराभव कर और उसको ले चल।

एषा मे शत्रोर्मूधानं विष्वगिन्द्रेषि सहस्व च।
अ १।२।२

इस तरह मेरे शत्रुके सिर चारों ओर फेंक और उसका जीत ले।

न इन्द्रः शत्रून् मामकान् पराहन्त्वभि यं वयम्।
अ १।६।१; १।५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं।

यामेषुमेषां मघवन्नमस्यन्धनुर्यमीमभि।
युवं तामिन्द्र वृत्रहन्नमित्रेषु वधं कृतं॥
अ १।१।३

हे इन्द्र! शत्रुवध आवश्यक करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र और अग्नि तुम दोनों मिलकर वध करो।

इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता । अ ३।१।६

इन्द्र (सेनापति) शत्रुसेनाको मोहित करें। मरुत् (सैनिक) वेगसे हमला करें। अग्नि उनकी आँखें लेवें। इस तरह पराभूत होकर शत्रुसेना पीछे हटे।

विष्वङ् सस्य कृणुहि चित्तमेषाम् । अ ३।१।७

हरण कीजिये इन शत्रुओंका चित्त चारों ओरसे स्वस्थ करो।

अजैषं सर्वानाप्नीन् वः । अ ३।१।६

सब दुष्टोंमें मैंने विजय प्राप्त किया है।

अहा अरातिं अविदः स्योन अन्यमूः मन्ये सुकृतस्य लोके ॥ अ २।१ ।७

कृपणताको तुमने जीता है। सुखको प्राप्त किया है दानशूरी पुण्यलोकमें हूं आया है।

अपतीनों मा तारीन्मा नस्तारिपुरमिमातयः ।
अ २।०।७

शत्रुदल शत्रु हमारे आगे न बढ़ें। जो दुष्ट हैं वे आगे न बढ़ें।

अक्षुर्मन्यस्य दुर्हणः पृष्टीरपि शृणीमसि ।
अ २।०।५

दुष्ट शत्रुके आँख और पीठ हम तोड़ देते हैं।

मा त रिषन्नुपस्त्वरः । अ २।१।२

तेरे शत्रुओंसे विजय न हो।

देवैर्दंसेन मणिना अङ्गिरसेन मयोभुवा ।
विष्कंध सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ।
अ २।०।७

देवोंने दिये सुखदायक अंगिरस मणिसे कोपक रोगोंको तथा सब रोगकृमियोंको हम दबा सकते हैं।

प्र यद्धा यादि शूर हरिभ्याम् । अ २।५।१

आप यह दो घोड़ोंको आगेपर चढ़ो।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो यो अस्मान् अभिदासति ।
अ २।५।३

घात करनेवालोंके समान स्वराजे हमका करनेवाला इन्द्र वैरीवाले शत्रुका मारता रहा।

प्रतिदह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
सं दह यातुधान्यः । अ १।२८।२

यातना देनेवालोंको जला दो। अहा घूमोंको जला दो। यातना देनेवाली स्त्रियोंको भी जला दो।

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो भव ।
राष्ट्रायस्मां वध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥
अ १।२९।४

अभीवर्तमणि शत्रुका पराभव करनेवाला और दुष्टोंको दूर करनेवाला है राष्ट्रहितके लिये तथा शत्रुओंको पराभूत करनेके लिये वह मणि मेरे शरीरपर बांधो।

मेम आपत्पौरुषेयो वधो यः । अ १।३ ।१

जो मनुष्यनिर्मित अस्त्र है वह हमारे पास न आवे। (अर्थात् वह न मारे)

असमृद्धा अयायवः । अ १।२०।२

पापी लोग उन्नत न हों।

आरेऽसावस्मदस्तु हेतिः । अ १।२६।१

अस्त्र हमसे दूर रहे।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् । अ १।२९।१

विशेष वेधनेवाले शत्रु हमें न प्राप्त करें। चारों ओरसे वेधनेवाले शत्रु हमारे पास न आवे।

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणा अस्मद्यावयतं परि ॥
अ १।२ ।२

जो आज सेनाके द्वारा दुष्टोंका वध पापी शत्रुओंसे हो रहा है हे मित्र वरुण! तुम उसको हमसे दूर करो।

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अ १।२१।२

हे शत्रुनाशक वीर! हमारे शत्रुओंको मार देकर हम पर वेधनेवालोंको हीन स्थितिमें पहुंचाओ।

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन् अमित्रस्याभिदासतः ।
अ १।२१।३

हे शत्रुनाशक वीर! हमारे घात करनेवाले शत्रुके क्रोधका नाश कर।

परायतो यातया यमम् । अ १।२१।४

शत्रुके अस्त्रको हमारेसे दूर कर।

दैवीमनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ।
अ १।१५।२

मनुष्योंसे फेंके गये दिव्य बाण मेरे शत्रुओंको वींधें।

यातुधानान् वि क्षापय । अ १।७।६
यातना देनेवालोंको रुलाओ ।
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् । अ ३।१९।३
जो शत्रु हमारे धनवान् और विद्वान् पर सैन्य भेजते हैं वे नीचे गिरें और अधमत हों
एषामहमायुधा संस्यान्येषां राधू सुवीर्य वधयामि। अ ३।१९।५
इनके आयुध मैं शीघ्र करता हूं तथा इनका राधू उत्तम वीरोंसे युक्त करके उन्नत करता हूं ।
पृथग्घोषा उलूलयः केतुमन्त उदीरताम् । अ ३।१९।६
ध्वजा लेकर इनका करनेवाले वीरोंके घोष पृथक् पृथक् उठा उठें ।
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरं वरं
मामीषां मोचि कश्चन । अ ३।१९।८
हे ब्रह्मसे तेजस्वी बने शस्त्र ! तू छोड़ा जानेपर दूर जा शत्रुओंके घोष को आगे कर शत्रुके वीरोंमेंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरोंको मार डाल इनमेंसे किसीको न छोड़ ।
असौ या सेना मरुतः परेयमस्मानैत्यभ्योजसा
स्पर्धमाना । तां विध्यत तमसापव्रतेन यथै-
षामन्यो अन्यं न जानात् । अ ३।२।६
हे मरुतो ! यह जो शत्रुकी सेना बलसे स्पर्धा करती हुई हमारे ऊपर आरही है उसको अपमत तमसावृत्तसे वीचो जिससे उनमेंसे एक दूसरेको न जान सके ।
उग्रस्य मन्योरुदिमं वयामि । अ ३।१ ।१
उग्र क्रोधसे इसको ऊपर मैं भेजता हूं ।
सपत्ना मह्यमधरे भवन्तु । अ ३।२।३
शत्रु हमसे नीचे रहें । शत्रुका अधःपात हो ।
अहिं एषां शततर्हम् । अ ३।८।७
इन दुष्टोंका सैकड़ों वध देनेका आयुध दूर कर शत्रुको पराजित कर ।
एषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि मृक्षतु । अ ३। ।७
इन्द्र वज्रसे इन दुष्टोंके शिर काट दे ।
अधीतु सर्वो यातुमानयमर्षात्येत्य । अ ३।७।३
सब यातना देनेवाले आकर बोलेंगे हम यहां हैं ।
दस्योः हन्ता वमूविथ । अ ३।७।१
तू दस्युका विनाशक है । (दस्युका विनाश करना योग्य है)
वि रक्षो विष्वञ्चो अहि विषूचस्य हन् रुज ।
अ ३।२१।३
राक्षसों शत्रुओंको पराभूत कर । घेरनेवाले शत्रुके अवयव तोड़ ।
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्त सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् ।
अ ३।१९।९
जो सपत्न और जो असपत्न हैं पर जो शाप देकर हमें द्वेष करके वध पहुंचाता है उस द्वेष उसका नाश करें। मेरा आन्तरिक कवच ब्रह्मज्ञान है ।
ज्ञानरूप कवच जो पहनता है उसका उत्तम रक्षण होता है ।
मा नो विदत् वृजिना द्वेष्या या । अ ३।२ ।१
जो द्वेष करनेवाले दुरित हैं वे हमारे पास न आवें ।
विष्यध्वो अशनिं क्षरवः पतन्तु ये अस्ता ये
वासाः । अ ३।१९।२
जो फेंके गये हैं, और जो फेंके जानेवाले हैं वे बाण चारों ओर हमसे दूर जाकर गिरें ।
यच्च आत्मनि तन्वां घोरमस्ति ।
पशूः केशेषु प्रतिचक्षण या ।
तत्सर्वं शाचाप हन्मो वयं । अ ३।१८।३
जो इसके शरीरमें बुद्धिमें केशोंमें देखनेमें हुआ है, उस सबको हम वाणीकी वेदमन्त्रसे दूर करते हैं । (वाणीके सूचना देकर उस दोषको दूर करते हैं ।)
यदक्षप द्रुयाविनः यातुधानाम् किमीदिनः ।
अ ३।२८।१
दुसुखों यातना देनेवालों और जब तब जाकर ऐसे बोलनेवाले दुष्टोंको अग्नि नष्ट करता है ।
प्रेत — आगे बढ़ो ।
प्रस्फुरत— फुरती करो ।
पुणतः गृहान् यदर्त— संतोष देनेवालोंके घर आओ ।
अ ३।२०।३

अभिवृत्य सपत्नान् अभि यो नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥
अ १।२९।२

शत्रुओंको पराभूत करके हमारे ऊपर जो कष्ट हैं उनको दूर करके जैसाने जो चढ़ाई करता है और जो हमसे दुष्टताका व्यवहार करता है उन सबको पराभूत करो।

विश्वा अग्ने दुरिता तर। अ १।१।५

सब पापवृत्तियोंको पापियोंको दूर कर।

स्वयुग्भिरमत्स्येह महे रणाय। अ २।५।७

अपनी सेनाओंसे तू यहां आनन्दित होकर रह और बड़े युद्धके लिये तैयार रह।

ससहे शत्रून्। अ २।५।१

शत्रुका पराभव करता है।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः।
अ २।११।३

उसपर चढ़ाई कर जो हमारा द्वेष करता है। और जिसका हम सब द्वेष करते हैं।

वृश्चामि तं दुरितेव वृक्षं यो अस्माकं मन
इदं हिनस्ति। अ २।१२।३

जो हमारे इस मनका विनाशक है, उसको दुष्टतासे वृक्ष काटनेके समान काटता हूं।

सपत्नहाग्न अभिमातिजिद् भव। अ २।१८।१

हे अग्ने! शत्रुओंका विनाशक हो तथा वैरियोंको जीतने वाला हो।

अग्नर्वनिम्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय।
अ ३।१।५

अग्नि और वायुके वेगसे जैसा नाश होता है वैसा नाश शत्रुओंका चारों ओरसे करो।

अहि प्रतीचो अनूचः पराचः। अ ३।१।७

न मुख रहे पीछेसे आनेवाले और आगेवाले शत्रुका विनाश करो।

अमागूचन् पसवो माथिता इमे अग्निर्नोदा
नूना प्रेत्तु विद्वान् अ ३।१।२

ये बकवाद बनानेवाले और काटने रहे हैं इनका विद्वान् आप समान तेजस्वी दूत चढ़ाई करता हुआ आगे बढ़े।

अग्निना शत्रून् प्रत्येत विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमराविम्। अ ३।१।१

विद्वान् तेजस्वी वीर मारपीट करनेवाले शत्रुको जलाता हुआ हमारे शत्रुओंपर हमला करे।

इन सूक्तियोंमें विशेष महत्व रखनेवाली ये हैं—

स्वे गये जागृहि— अपने घरमें जागृत रह। अपने राष्ट्रमें जागृत रह।

उग्रा ते सन्तु बाहवः— आपके बाहु बल हों।

प्रेत— शत्रुपर हमला कर।

जयत— विजयी हो।

मनस्यत। सदान्वः— शत्रुओंका यहां नाश हो।

समहमेषां राष्ट्रं भजामि— इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी बनाता हूं।

दृष्यामि शत्रूणां बाहून्— शत्रुओंके बाहुओंको कटता हूं।

उद्वेषन्तां पाशिनामानि— इनके बल उत्तेजित हों।

तीक्ष्णेषवोऽवसृष्टास्यवो हत— तुमारे तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध अवसाद शत्रुको मारो।

एवा तान् सर्वान् जिनामि— इस तरह सब सब शत्रुओंका नाश कर।

सेनां मोहयामित्रार्या— शत्रुकी सेनाको मोहित कर।

तान् विषूचो विनाशय— शत्रुको चारों ओरसे विनष्ट कर।

स त्वित्तानि मोहयतु परेषां— वह शत्रुओंके चित्त मोहित करे।

स सेनां मोहयतु परेषां— वह शत्रुकी सेनाको मोहित कर।

अभि प्रेहि निर्दह— आगे बढ़ शत्रुको जला दो।

अभि प्रेत मृणत सहध्वं— इनका करो काटो और जीतकर।

भूतपतिर्निरजतु— भूतोंका पति दुर्बुद्धियोंको दूर कर।

विषूच्यतु इन्तर्दा— कटती हुई सेना आगे बढ़े।

आरे अस्मा— पापी हमसे दूर रहे।

अपगूढ विषता मनः—हे इन्द्र! शत्रुका मन बदल दे।

मा मा विदद्भिमा— कदापि हमारे पास न आवे।

विमयन्तु यातुधानाः— यातना देनेवाले सब रोते रहें।

यातुधानस्य प्रजां जहि— यातना देनेवाली प्रजाका पराभव कर।

स इन्तु शत्रून् मामकान्— वह मेरे शत्रुओंका वध करे।
अजैष सर्वान्साजोन्— सब युद्धोंमें मैं विजय प्राप्त करता हूं।
मह्या अरातिं— कृपणताको छोड़ो।
अविद: स्योनं— सुखमार्गको जानो।
मम: मेत्र सुकृतस्य लोके— कल्याणकारी पुण्य लोकमें रहा।
मरुतोनो मा तारीत्— मरुत् हमारे पास न करें।
मा नस्परिपुरमिमातय:— शत्रु हमारे आगे न बढ़ें।
प्र वह— आगे बढ़।
पाहि शूर— हे वीर! आगे बढ़।
प्रतिवह पातुधानान्— पातक देनेवालोंको वहन हो।
मेमं प्रापत्पौरुषेयो वधो या:— मनुष्यनाशक वध मेरे ऊपर न पड़े।
असमृद्धा माशायव — पापी समृद्ध न हों।
मा नो विदन् विध्याधिन:— वेध करनेवाले शत्रु हमें न जानें।
मो अभिख्याधिनो विदन्— चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले शत्रु हमें न जानें।
वि म इन्द्र मृधो जहि — हे इन्द्र! हमारे शत्रुओंको मार।
नीचा यच्छ पृतन्यत:— सैन्यसे हमला करनेवालोंको हीन अवस्थामें पहुंचा दो।
अरीयो यावया वधम्- वध हमसे दूर रख।
इषवो ममाभिघ्नान् वि विध्यत— बाण मेरे शत्रुओंको बींधे।
पातुधानान् वितापय- पातक देनेवालोंको तपाओ।
एषां राष्ट्रं सुवीरं नाशयामि- इनके राष्ट्रको वीर नष्टकर नष्ट करता हूं।
अयामिघान्- शत्रुपर विजय प्राप्त कर।
अशेषां वर वर्ं- शत्रुवीरोंके वंशजोंको मार।
मामीषां मोचि कश्चन-शत्रुओंमेंसे किसीको न छोड़।
विध्यत तमसापव्रतेन- शत्रुको अपव्रत तमसास्त्रसे बींधो।
सपत्ना अस्मदधरे सदन्तु शत्रु हमसे नीचे रहें।
दस्योर्हन्ता वमूरिय- शत्रुका विनाशक बन।
वि रक्षो विमृधो जहि- राक्षसों और हिंसकोंका पराभव कर।
मा नो विदन् वृजिना द्वेष्या या कुरीरं और पापी मुझ न जानें।
दहश्रय व्रयादिन:- हमारोंको मैं बढ़ाता हूं।
प्रेत- हमला करो।
प्रस्फुरत- फुरती बढ़ाओ।
पूषत: गृहान् वहतं- सवेरे देनेवालोंके घरोंके पास जाओ।
अमि पृतन्यन्त तिष्ठ सेनासे हमला करनेवालेके शत्रुका पराभव कर।
विश्वा दुरिता तर- सब पापोंको तैर जा।
मस्त्वेह महे रणाय- बड़े युद्धके लिये आनन्दसे तैयार रह।
ससहे शत्रून्- शत्रुका पराभव करता हूं।
अभिमातिजिद्भव- शत्रुका पराभव करनेवाला हो।
शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् विद्वान् शत्रुपर चढ़ाई करे।

इस तरह इन पंक्तियोंमें अनेक वाक्य अस्त्रमें बोलने योग्य हैं। इस तरहके वाक्य तब बोलने होते हैं जब शत्रुके विरुद्ध अपने लोगोंको अपने वीरोंको उकसाना या तैयार करना होता है। इसीसे मन्त्रोंके वेदवाक्य उपासनाके समय बोलने होते हैं और ये वीरता बढ़ानेवाले वाक्य वीरता बढ़ानेके समय उच्चार करने होते हैं।। विदेशी पाठक इसको अच्छी तरह समझ सकेंगे।

शत्रुपराजय करनेके लिये अपने राष्ट्रको तैयार रखनेके समय ये वाक्य बड़े उपयोगी हैं। राष्ट्रको संजीवित करनेके लिये राष्ट्रमें एकता प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता होती है। यह एकताका विषय अब देखिये—

एकता

एकता बढ़ानेका उपदेश वेद इस तरह करता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व:।
अ ३।३ ।१

सहृदयता और उत्तम मनवाला होना और विद्वेष न करना मैं तुम्हारे अन्दर हो ऐसा मैं करता हूं।

अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।
अ ३।३ ।१

एक दूसरे पर ऐसा प्रेम करो जैसा नवजात बछेपर गौ प्रेम करती है ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
अ ३।३ ।२

पिताके अनुकूलमत चलन करनेवाला पुत्र हो और वह मातासे समान मनवाला हो ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।
अ ३।३ ।३

स्त्री पतिके साथ मधुर और शान्त भाषण करे ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
अ ३।३ ।४

भाई भाईके द्वेष न करे बहन बहनके द्वेष न करे ।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया
अ ३।३ ।५

मिलजुलकर एक व्रतपालन करनेवाले होकर कल्याण करनेवाला भाषण करो ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः
सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त
एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥
अ ३।३ ।६

बड़ोंका संमान करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाले बनो विद्वितक वरण करनेवाले एक घुराके नीचे चलने वाले होकर आपसमें विरोध न करो परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाला होकर रहो ।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे
सह वो युनज्मि । अ ३।३ ।६

पानी पीनेका आपका स्थान एक हो आपका अन्नभाग एक हो एक जोतेके अन्दर साथ-साथ आपको जोतता हूं ।

सध्रञ्चो अग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।
अ ३।३ ।७

सब मिलकर अग्निकी पूजा करो और चक्रकी नाभिके चारों ओर जैसे आरे लगे हैं वैसे तुम परस्पर जुड़कर रहो ।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । अ ३।३ ।८

परस्पर प्रेम भावका वर्ताव करनेवाले, साथ साथ यज्ञ कार्य करनेवाले उत्तम मनवाले और एक मेवाली बातमें कार्य करनेवाले मैं तुमको बनाता हूं ।

देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु । अ ३।३ ।९

अमृतका रक्षण करनेवाले देव जैसे प्रेमसे रहते हैं वैसा परस्पर प्रेम आपके व्यवहारमें सवेरे और सायको होवे ।

स वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अ ३।४।५

तुम्हारे मनोंको एक करो तुम्हारे व्रत एक हों तुम्हारे संकल्पोंको एक भावसे युक्त करता हूं ।

मम व्रतेषु हृदयानि वः कृणोमि
मम चित्तमनुचित्तैर्भवेत । अ ३।४।६

मेरे व्रतोंमें तुम्हारे हृदय संकल्प हों ऐसा मैं करता हूं ।
मेरे चाल-चलनके अनुकूल तुम होकर चलो ।

अ-द्वार-सृद् भवतु । अ १।२ ।१

आपसमें द्वेष उत्पन्न करनेवाला कोई न हो ।

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि
मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । अ ३।४।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको लेता हूं । मेरे चित्तके साथ अपने चित्तोंको चलाओ ।

यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत्
दात्रकामश्च नो भुवत् । अ ३।२ ।६

हमारे संपूर्ण लोग सभामें उत्तम मनवाले हों और दान देनेकी भी इच्छा करें ।

सं गोभाजो अधिमा कामिमा सं च वसवः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥
अ ३।३ ।९

हे परस्पर कामना करनेवाले अधिदेवो ! मिलकर चलो मिलकर बसो ऐश्वर्यको मिलकर प्राप्त करो तुम्हारे चित्त एक हो तुम्हारे व्रत एक हों ।

शिवामिमे हृदय तर्पयाम्यसमीवो मोदिषीष्ठाः
सुवर्चाः । सवीसिमो पिवतां मन्थमेतं अभिसंधी
रूपं परिधाय मायाम् ॥ अ २।२९।६

कल्याणकारिणी विद्वानों द्वारा तरे हुएको तुम करता हूं। वीरोंम और तेजस्वी होकर आनन्दमें रहो। साथ रह कर अक्षितीके रूपको कमकी कुशलताको प्राप्त होकर इस रसको पीओ।

इस रीतिसे सबकी एकता करनेका उपदेश वेद करता है। घरकी तथा परिवारकी एकता करनेके लिये प्रथम कहा है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्— भाई-भाईसे द्वेष न करे। यह आदेश यदि भाई-भाई सबमें रहता तो कौरव पांडवोंकी एकता होती और आपसका कलह न होता और १८ अक्षौहिणी सेनाका नाश न होता। और भारत देश आज जैसे हीन न होता।

सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत

आरा नाभिमिवाभितः। अ ३।१३।६

जैसे चक्रके आरे नाभिके चारों ओर रहते हैं उस तरह बीचमें अग्नि रहे और चारों ओर बैठकर इसका यह सामुदायिक उपासना कही है जो एकता बढ़ानेवाली थी। सामुदायिक संध्या सामुदायिक हवन होनेसे समुदायकी एकता होती थी। इस स्थानपर आज वैयक्तिक संध्या हो गयी है जो एक दूसरेको पृथक् करती है।

आपसमें अहारकृत् मवतु आपसकी फूट बढ़ाने वाला कोई न रहे। परंतु आपसकी एकता सब बढ़ाओ और सब सुसंगठित हों। इस कारण कहा है—

अहं पृच्यामि मनसा मनांसि। अ ३।८।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको एकत्रित करके देता हूं अर्थात् मैं अपना मन ऐसा बनाता हूं कि जो सबके मनोंको आकर्षित कर और सबके विचार एक प्रकारके बनाये और सबको संगठित करे। इस रीतिसे राष्ट्रके सब लोगोंको संगठित किया जाय और राष्ट्रका बल बढ़ाया जाय।

इस तरह संगठनके सूचक ये मंत्र हैं। पाठक इनका विचार करें और आपसमें सुसंगठित होकर अपने राष्ट्रका बल बढ़ायें इससे राष्ट्रका अभ्युदय होगा।

अभ्युदय

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः।
वृष्टं शार्यं मनीरियेद स्पार्ति समाभ्यः॥
अ ३।२७।१

आ ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली मानवोंकी पांच जातियां हैं, वे समृद्धिको प्राप्त हों, जिस तरह पृथिवी नदी बढ़ती है।

जैसी वृद्धि इनसे नदी बढ़ती है उस तरह सब प्रजाओंका अभ्युदय हो। मनुष्योंकी सब प्रकारकी ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो, सब राष्ट्र एकतासे अपना अभ्युदय करने लगता तो ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है। एकता मूलक सब उन्नति है।

राष्ट्रकी एकता होनेके लिये राष्ट्रमें यज्ञ भावना होनी चाहिये। सज्जनोंका सत्कार राष्ट्रकी एकता अर्थात् संगठना करना और दानका भाव ये गुण यज्ञमें हैं। इन गुणोंसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है।

यज्ञ

यज्ञं यज्ञ च यजय। अ ३।२१।१५

ज्ञान और यज्ञयज्ञम कर्मको बढ़ाओ।

इस यज्ञ विस्तृत विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमन
मस्यमानाः॥ अ २।३५।५

विश्वके रचयिताने यह यज्ञ फैलाया है। उसमें सबसे उच्च देव इस यज्ञमें आवें।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्। अ ३।२०।८

दान न देनेवालेको समझाकर दान देनेकी प्रेरणा कर।

य इशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो
द्विपदाम्। निष्क्रीतः स यविष्ठ भागमस्तु,
राधस्पापा यजमानं सचन्ताम्॥ अ २।३४।१

जो चतुष्पाद पशुओंका तथा द्विपादों मनुष्योंका स्वामी है वह यज्ञके भागको प्राप्त हो, उसकी उपासना हो धन और वीरोंसे यजमानको सिद्धि।

विद्वानोंका सत्कार करना चाहिये आपसकी उन्नत संगठना होनी चाहिये और जो हीन होंय उनकी हीनता दूर करनेके लिये दान देना चाहिये। दानमें विद्यादान बड़ा संबंध धनका दान और कर्मसंबन्धिका उत्कर्ष यह चतुर्विध महादान होना चाहिये। यह जहां होगा वहां यज्ञ होगा। और इससे राष्ट्रका परम उत्कर्ष होगा।

मधुरता

मधुरतासे एकता होती है। इस विषयमें यजुर्मंत्रोंका स्पष्ट आदेश यह है—

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।

अ १।३४।४

मैं मधसे भी अधिक मीठा हूं मधुर पदार्थसे भी अधिक मधुर हूं ।

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ।

अ १।३४।५

मैं वाणीसे मीठा भाषण करूंगा और मैं मधुरवाणी मूर्ति बनूंगा ।

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।

अ १।३४।६

मेरा आना और जाना मीठा हो ।

जिह्वया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।

अ १।३४।२

मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता रहे और जिह्वाके अग्रभागमें मीठास रहे ।

देखो मीठास होनेसे लोगोंमें प्रेम बढ़ता है और वैरसे संगठन होती है। मित्रता बढ़ती है। परस्पर सहायता करनेकी इच्छा बढ़ती है। इससे सबका मिलकर कल्याण होता है ।

मित्रता

या सुहार्दं तेन मा सह । अ २।७।५

जो उत्तम हृदयवाला है उसके साथ हमारी मित्रता हो।

सखासावस्त्वमस्तु सा तिः । अ १।२४।२

वामनी मित्र हमारे साथ रहे ।

मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व । अ ५।१।७

मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर ।

शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्तम् । अ २।१ ।१

तेरे लिये ये दोनों द्यु और पृथिवी लोग कल्याण करने वाले हों।

शत्रुमस्मद् यावय दिषुं । अथर्व १।२।३

दिषुं अर्थं मस्मत् यावय- शत्रुके तेजस्वी बाणको हमसे दूर कर (शत्रुका बाण हमपर न आवे ।)

वसाप्यते ! नि एमय । अथर्व १।१।२

हे शत्रुओंके स्वामिन् ! मुझे आनन्द युक्त कर ।

वयमद्या इवि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ।

अ १।२७।१

पापी और दुष्टोंके मार्ग हम अब रोके हैं ।

पापी और दुष्ट दूर हों और उत्तम हृदयसे उनकी दृष्टि बदले और दृढ़तासे वश करे ।

बल

अहमार्मं तमर्वं कृणि । अथर्व १।२।२

शरीरको पत्थर जैसा दृढ़ कर ।

पश्चाद्यमानस्य तिष्ठ अश्मा भवतु ते तनूः ।

अ २।१३।७

जो इस शिकारपर चढ़, उसका शरीर पत्थर जैसा दृढ़ बने ।

बाचस्पतिः तेषां तमः वक्षो मे नश इवातु ॥

अथर्व १।१।१

बाचस्पति उनके शरीरके अवयवोंको मुझमें आज आकर करे । (जिसमें जो पदार्थ हैं उनके बल मुझे प्राप्त हों और मैं उनसे बलवान् बनकर इस विश्वमें विजयेच्छुक कार्य करता रहूं ।)

बीडुरंहतीनोऽरातीरप द्वेषांस्या वृणि ॥

अथर्व १।२।२

बीडुः शरीराः अरातीः दुर्धासि अपाहनि— हमारे शरीर बलवान् और दृढ़ बनें । शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंको दूर कर ।

ओजोऽस्योजो मे दाः । सहोऽसि सहो मे दाः । बलमसि बलं मे दाः । आयुरसि आयुर्मे दाः । ओषमसि ओषं मे दाः । चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः । परिपाणमसि परिपाणं मे दाः ।

अ २।१७।१-७

हमारे शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति बल आयु ओज आँख संरक्षण यह व्यवहार कर है अथवा तू मुझे ये गुण दे ।

अक्षोऽसि प्रतिअक्षोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।

अ २।३३।२

तू (आत्मा) गतिशील है तू आगे बढ़नेवाला है तू शत्रुओंको दूर करनेवाला है ।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।

अ २।३३।५

तू शुद्ध तथा वीर्यवान् है । तू तेजस्वी है तू आत्म शक्ति है तू ज्योति है ।

म च वर्धयेमम्। अ २।६।२
इसको विशेष बढ़ावा कर।
सबका यह तेज ज्योति वीर्य, बढ़े और सब लोग तेजस्वी बनें और सबका सामर्थ्य बढ़े।

वीरता

मजां त्वयरधि निभेद्यास्मे। अ २।२९।२
हे स्वधा! इसको सुपुत्र दे।
मा वीरोऽत्र आयतां पुत्रस्ते दशमास्यः।
अ ३।२३।२
तेरे लिये इसमें आसमें अन्यसेवाका वीर पुत्र होवे।
अयाक्षार्क सह वीर्यं रयिं दाः। अ २।६।५
इसमें वीरोंके साथ रहनेवाला धन दे।
सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम्।
अ ३।१ ।५
इस उत्तम प्रजावाले तथा उत्तम वीरोंसे युक्त होकर धनोंके स्वामी बनें।
तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरय मया। अ ३।७।८
यह सबोंका वीर मुझ वीरके साथ रहकर शरीर रक्षक है।
पूषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः।
अ ३।२१।१
पोषण्, शान्ति करनेवाला सोमरस पीनेवाला सब बाधक वीर हमारा अगुवा बने।

ज्ञान

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मन इदं स्वम्। अ २।३५।३
ऋषि बड़े तेजस्वी हैं उनको हमारा प्रणाम प्राप्त हो इनकी आंख और मन अपनेरूप रहते हैं।
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥
अ ३।३ ।७
जिससे आपसमें झगड़ते नहीं और आपसमें द्वेष भी नहीं करते वह वेद ज्ञान आपके घरके पुरुषोंके लिये मैं करता हूं।
ब्रह्मायस्त्वं यशसः सन्तु माग्ये। अ २।६।२
ज्ञानी ही तेरे यशके भागी बनें न दूसरे।
मयि एव अस्तु मयि श्रुतम्। अथर्व १।१।२;३
पढ़ा हुआ सुना हुआ ज्ञान मेरे अन्दर स्थिर रहे। (प्राप्त किया ज्ञान भूला न जाय।)
स श्रुतेन गमेमहि। मा श्रुतेन विराधिषि॥
अथर्व १।१।४
हम सब ज्ञानसे युक्त हों। हम कभी ज्ञानसे विमुक्त न हों।
इमं वर्धयता गिरः। अ १।१५।२
वाणियां इसका गुणवर्धन करें। गुणगान करें।
अमागस्त्वं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि। अ २।१ ।१
ज्ञानसे मैं तुझे निष्पाप करता हूं।
उपश्रुत्यं बार्हस्पत्यमेधताम्। अथर्व १।१।४
बड़ी इसे बढ़ावें (और उपदेश करें इसे मार्ग बतावें।)
सूर्य चक्षुषा मा पाहि। अ २।१२।३
हे सूर्य! आंखसे मेरी सुरक्षा कर।
विद्धि शक्र मिया इहि आ नः। अ २।७।४
उत्तम ऐश्वर्यशाली बन हे इन्द्र! हमारे पास बुद्धिकी ओजस्विता आओ।
एहि देवेभ मनसा सह। अथर्व १।१।२
दिव्य मनके साथ इधर (मेरे समीप) आ। (मनमें दिव्य शक्ति है उस दिव्य शक्तिसे प्रभावित हुए मनसे यहां आओ। मनमें दिव्य शक्ति आकर आपे आया हो आना चाहिये।)
व्यापस्तृण्वयासरत्। अ २।३१।३
अज्ञ दूरसे दूर रहता है।
इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः। अ ३।१५।७
हे अग्ने! मेरी इस भूलको क्षमा करो।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं घोरं मिर्ऋतपाशम्। अ २।१२।६
ज्ञानका द्वेष करनेवाले उस दुष्टके सब कार्य व्यर्थ हों। उस ज्ञानके द्वेषीको आकाश प्राप्त करे।
सूर्यमृत तमसो ग्राह्या अधिदेवा मुञ्चतो अग्ं अंहसः। अ २।१ ।८
देवोंने अंधकारकी पकड़से तथा पापसे मुक्त करके उस सूर्यको ऊपर किया है।

प्रापेय सर्वा माकूतीर्मनसा हृदयेन च ।

अ ३।१२।१९

मनसे और हृदयसे सब संकल्पोंको प्राप्त कर लूं ।

प्रह्म या यो निम्दिपत् क्रियमाणम् ।

अ २।१२।६

जो हमारे ज्ञानकी निंदा करता है । (वह दण्डको प्राप्त हो)

तेजस्विता

सह वर्चसोदिहि । अ ३।२१।१

तेजके साथ उदयको प्राप्त हो ।

तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ।

अ ३।२२।३

हे अग्ने ! इस तेजसे मुझे आज तेजस्वी कर ।

देवासो विश्वधायसस्ते मामन्तु वर्चसा ।

अ ३।२२।१

सबका धारण करनेवाले देव मुझे तेजसे तेजस्वी करें ।

देवा इमं उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ।

अ ३।५।१

देव इस पुरुषको उत्तम प्रकाशमें धारण करें ।

ज्योक् च सूर्यं दृशे । अ ३।६।३

सूर्यको मैं दीर्घकालतक देखूं । (मैं दीर्घायु बनूं ।)

उत्तमं नाकमधि रोहयमम् । अ ३।५।१,७

इसको उत्तम स्वर्गमें चढ़ाओ इसको उत्तम सुखमें रखो ।

अमरसे हेतपे तपुषे च कृण्मः । अ १।१३।३

तो अजर किये तथा घोर तेजके लिये प्रणाम करता हूं ।

सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि

प्रदिशश्चतस्रः । अ २।६।१

दिव्य तेजसे तेजस्वी हो और अपूर्ण चारों दिशाओंको प्रकाशित करो ।

आप्नुहि श्रेयांसं अति समं क्राम । अ २।११।१

परम कल्याणको प्राप्त कर अपने समान जो होंगे उनसे आगे बढ़ जाओ ।

अस्य देवाः प्रदिशि ज्यातिरस्तु । अ ३।२।२

हे दर्भो ! इसके चारों ओर प्रकाश रहे ।

मा रम्पा सवतो वायुः स्वधा पोष दधातु मे ।

अ ३।१२।१

वायुवायु सब ओरसे मुझे मेरे और स्वधा मुझे पुष्टि देवे ।

इष्टापूर्तमवतु नः । अ २।१२।७

इष्ट कर्म तथा पूर्त कर्म हमारी रक्षा करें । (इच्छापूर्वक किया कर्म इष्ट और अपूर्णको पूर्ण करनेका कर्म पूर्त है ।)

धन

त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।

अ ३।१२।५

हे देव ! तू दान देनेवालेके लिये दानके अर्थ धनको प्रेरित करो ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि । अ ३।१५।२

जो देवलोकमें जाने आनेके बहुतसे मार्ग द्यौ तथा पृथिवीके बीचमें चल रहे हैं वे मुझे दूध और घृतसे तृप्त करें । जिससे खरीदकर अधिकार करके मैं धनको प्राप्त करूं ।

यमस्यायनमसाम दूरम् ।

शुम नो अस्तु प्रपथो विकृपश्च प्रतिपथः फलिनं मा कृणोतु । अ ३।१५।४

मैं दूर मार्गपर जाता हूं । कठिनतर [illegible] दिशाएं हों । प्रत्येक व्यापार मुझे फलदायी हो ।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तस्मे सूयो भवतु मा कृणोमि सायंप्रातो देवान् हविषा निषेध । अ ३।१५।५

हे देवो ! जिस धनसे मैं व्यापार करता हूं वह धनके धन कमानेकी इच्छा करके करता हूं । वह धन हमारे कार्यके लिये पर्याप्त हो कम न हो । जानेमें हानि करने वाले जो हों उनका निषेध कर दूं ।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः । अ ३।१५।६

हे देवो ! धनके धन प्राप्तिकी इच्छा करके जिस धनसे मैं व्यवहार कर रहा हूं उसमें इन्द्र प्रजापति सविता सोम और अग्नि मेरी रुचि स्थिर रखें ।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रति वेशा रिषाम । अ ३।१५।८

धनकी पुष्टि और अन्नसे आनंदित होते हुए तेरे उपासक हम हे अग्ने ! कभी नष्ट न हों ।

इन्द्र इयेन्द्रियाण्यधि धारयामो अक्षिभ्यत्पश्यान्मा मो विमर्दिरक्षयम्। अ ३।३५।२

इन्द्रके समान हम इंद्रियोंको धारण करते हैं जो दक्ष वासे सुवर्ण धारण करता है (उसमें उत्तम इन्द्रिय शक्ति रहती है।)

मैव रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्। अ ३।३५।२

इस सुवर्णको राक्षस और पिशाच (सूक्ष्मरोग कृमि) नहीं सह सकते। क्योंकि यह देवोंका पहिला सामर्थ्य है।

तं आत्मन्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम्।
अ ३।२ ।१

हे अग्ने! इस आत्मको आकर ऊपर चढ़ और हमारे धन बढ़ा दो।

नुदन्नरातिं परिपन्थिन मृग स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्। अ ३।१५।१

मार्गपर डरवेवाले दूंढते रहनेवाले शत्रुको दूर करके वह ईश्वर मुझे धन देनेवाला होवे।

भग प्रणो जनय गोभिरश्वैभग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम। अ ३।१६।३

हे भग! गौओं और घोड़ोंके साथ हमारी सन्तान वृद्धि कर। हम अच्छे मानवोंके साथ रहकर मानवोंसे युक्त हों।

त त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुर एता भवेह। अ ३।१६।५

हे भगवान् प्रभो! तुमको मैं सब प्रकारसे भजता हूं। वह तू हमारा अगुवा हो।

मयि पुष्यत यद्वसु। अ ३।१७।२

हे गौओ! जो धन है उससे मेरे साथ तुम हृष्ट-पुष्ट बनो।

अयासस्यं सहवीर रयिं दाः। अ ३।१९।५

हमें वीर पुत्रोंके साथ धन दो।

रयिं देवी दधातु मे। अ ३।२ ।३

देवी मुझे धन देवे।

रयिं च नः सर्ववीर नियच्छ। अ ३।२ ।८

हमें सब प्रकारके वीर मानवों युक्त धन दो।

इन्द्रमहं वसिष्ठ चोदयामि स म एतु पुरएता नो अस्तु। अ ३।१५।१

मैं वसिष्ठ इन्द्रको प्रेरित करता हूं, वह हमारे पास आवे और वह हमारा अगुवा बने। (इन्द्र शत्रुका विदारण करनेवाला)

यावद्दधे यज्ञपत्या वन्द्यमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्। अ ३।१५।३

जिससे इस दिव्य बुद्धिका ज्ञान द्वारा सम्मान करता हुआ मैं सैकड़ों सिद्धियोंको प्राप्त करने योग्य होऊं।

शुभं यो अस्तु चरितमुरिषत च। अ ३।१५।४

हमारा आचरण और उत्थान हमें कामदायी होवे।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। अ ३।१६।३

हे भग, हे यज्ञ नेता, सब सिद्धि देनेवाले प्रभो! इस बुद्धिको देकर हमारा रक्षण कर।

भग एव भगवा अस्तु देवस्तेन वयं भगवन्तः स्याम। अ ३।१६।५

भाग्यवान् भगदेव मेरे साथ रह, उसके साथ रहनेसे हम भाग्यवान् हों।

भगस्य नावमारोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।
तयोपप्लवतरय यो वरः प्रतिकाम्यः। अ ३।१६।५

पूर्ण तथा अटूट देवकी नौकापर चढ़ उस नौकासे उसके पास जा जो वर तेरी कामनाके योग्य हो।

परि मां परि मे प्रजां परि चः पाहि यद्धनम्।
अ २।७।३

मेरी रक्षा कर मेरी प्रजाकी रक्षा कर, हमारे धनकी रक्षा कर।

उप त्वा मह्ते सौभगाय। अ २।६।१

बड़े सामर्थ्यके लिये तुझे प्राप्त होकर रहूं।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः। अ १।१५।२

इसमें पर्याप्त धन रहे।

धनका महत्व राष्ट्रकी उन्नतिमें तथा व्यक्तिकी उन्नतिमें बहुत है। इसलिये वेदमें धनके विषयमें बहुत ही आदर प्रकट किया है। धनके सम्बन्धमें वे सब वचन यहांमें करने योग्य हैं परंतु उनमें से वचन बारंबार मनन करने योग्य हैं—

रयिं दामाय चोदय— धनको दानमें प्रेरित कर।

दक्षमाणो विमर्दिरक्षयम्— दक्ष सुवर्णका धारण करता है।

मो षर्वया रयिं— हमारा धन बढ़ाओ।
ईशानो धनदा अस्तु मह्यं— परमेश्वर मुझे धन देनेवाला हो।
रयिं पुष्यतु यद्वसु— जो धन है वह तेरे पास बढ़ता रहे।
अस्मभ्य सहवीरं रयिं दाः— हमें वीर पुत्रोंसहित धन दो।
रयिं देवी दधातु मे— देवी मुझे धन देवे।
रयिं च नः सर्ववीर नियच्छ— धन और वीर पुत्र हमें दो।
वयं भगवन्तः स्याम— हम भगवान् हों।
भगस्य नावमारोह— ऐश्वर्यकी नौका पर चढ़।
परि नो पाहि यद्धनम्— हमारे धनका सेवन कर।
उच्च तिष्ठ महते सौभगाय— बड़े सौभाग्यके लिये ऊपर चढ़ा रह।
अस्मिन् तिष्ठतु वा रयिः— इसके पास धन रहे।

ऐसे वचन हैं जो सदैव स्मरण योग्य होते हैं। इनमेंसे कोई एक वचन सदैव १ । २ बार विचारपूर्वक पढ़िये। ऐसा करनेसे उसका महत्त्व ध्यानमें आ जायगा और धन पास रहनेसे कैसा सुख होगा इसका भी पता लग जायगा।

आरोग्य

तेना ते तन्वे शं कर पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिषे अस्तु बालिति। अथर्व १।५।१-५

इससे तेरे शरीरका कल्याण करता हूं पृथिवीपर तेरा सुखसे रहना हो। तेरे शरीरसे सब दोष दूर हों।

अन्वांत्र्यं शीर्षण्यमयो पार्श्वेय कृमीन्।
अवस्कव्यं व्यध्वरं किमीन् वचसा जम्भयामसि॥
अ २।३१।७

आंतोंमें सिरमें पसलियोंमें रहनेवाले पुरे खानमें होनेवाले जो कृमि हैं उनको मैं वचनसे हनता हूं।

ये किमयः पर्वतेषु ये वनेष्वापधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वे तद्रिम अग्निना किमीणाम्॥ अ २।३१।५

जो रोगकृमि पर्वतों वनों औषधियों पशुओं, जलोंमें तथा हमारे शरीरोंमें घुसे हैं उन कृमियोंका अग्नि मैं वध करता हूं।

उदयाद्दिवः कृमीणामुदन्तरिक्षादुत रश्मिभिः।
ये अन्तः किमयो गवि॥ अ २।३२।१

उदय होनेवाला सूर्य रोगकृमियोंका नाश करे जब होने वाला सूर्य किरणोंसे कृमियोंका नाश करे जो कृमि भूमि पर हैं।

विश्वरूप चतुरक्ष किमिं सारंगमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृथीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥
अ २।३२।२

अनेक रूपोंवाले चार आंखवाले रंगनेवाले भेदरंग वाले ऐसे अनेक प्रकारके कृमि होते हैं उनके पीठ और सिर मैं तोड़ता हूं।

अत्रिवद्वः किमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं कृमीन्॥
अ २।३२।३

अत्रि कण्व जमदग्निके समान मैं कृमियोंका नाश करता हूं। अगस्त्यकी विद्यासे मैं कृमियोंको कुचलता हूं।

हतो राजा कृमीणां हतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता किमिर्हतभ्राता हतस्वसा॥
अ २।३२।४

कृमियोंका राजा मारा गया उनका स्थापति मारा गया है। कृमिकी माता बहिन और भाई मारा गया है।

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते किमयो हताः॥
अ २।३२।५

इस कृमिके परिचारक मारे गये इसके सेवक पीछे मरे जो क्षुद्रक कृमि हैं वे सब मारे गये हैं।

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसे।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः॥ अ २।३२।६

तेरे सींग काटता हूं जिनसे तू काटता है तेरे विषधानको मैं तोड़ता हूं जिसमें तेरा विष रहता है।

पराक्ष्वनाद् प्रणुद कण्वान् जीवितयोपवान्।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्कव्यादो अजीगमम्॥
अ २।३२।७

इस जीवनका नाश करनेवाले रोगकृमि दूर कर जहां अंधेरा रहता है वहां इन मांसभक्षक कृमियोंको पहुंचा देते हैं।

तासु त्वान्तअरस्या दधामि, म यक्ष्म एतु निर्ऋतेः पराचैः। अ २।१ ।५

उसके हृदयस्थानमें मैं धारण करता हूं। क्षय रोग तथा अन्य सब कष्ट तुझसे दूर चले जांय।

अग्नी रक्षोहामीवचातनः। अ ३।२८।१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है। (रक्षः- रोगकृमि)

अनुसूयसूदयतां हृदोतो हरिमा च ते।
गार्दभेहितस्य वर्षेण तेन त्वा परिदध्मसि ॥
अ १।२२।१

तुम्हारा हृदयविकार तथा कामिला का पीलापन सूर्य उदय के साथ जानेवाले काल किरणोंके काल बनसे तुझे चारों ओर घर कर मैं दूर करता हूं।

किलास च पलित च निरितो नाशयामि पृथत्।
अ १।२३।२

इस प्रकारसे कुष्ठ व सफेद पनेको दूर कर।

अरिष्यन्त्य किलासस्य तनूजस्य च यत्वचि।
दृष्ट्वा कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम्।
अ १।२३।३

दोषके कारण खराबर उत्पन्न हुए, अस्थिसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए कुष्ठका जो खराबर चिन्ह है उसको हम ज्ञानसे विनष्ट करते हैं।

शेरभक शरभ पुनर्वो ददतु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः। यन्य स्थ तमत्त, यो वः प्राहै तमत्त स्था मांसादयत्त ॥ अ २।२७।१

हे वध करनेवाले सर्प! तुम्हारी यातना देनेवाले वज्र, तथा हे खाद्य जीवों! तुम जिसके हो उसको खाओ जिन्होंने तुम्हें भेजा है उसको खाओ अथवा हो मांस खाओ। (हम सुरक्षित रहें।)

गिरिमेनां गापयत कल्पान् जीवितयोपमान्।
अ २।२७।३

इस जीवितका नाश करनेवाले, पीडा देनेवाले कृमियोंको पहाडपर पहुंचाओ (ये रोगकृमि हमें कष्ट न दें।)

सेदिवारस्या निर्ऋत्या आमिर्शमाद् ग्रहा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अ २।१ ।७

आसुरीशक्ति रोग कष्ट संबंधियोंसे कष्ट दाह तथा वरुणके पाशसे तुम्हें छुडाता हूं।

दृष्टमदृष्टमवहमथो कुरुरुमवहम। अदृष्टान्त्सर्वाञ्छम्बलेन संदधदृष्टान् जम्भयामसि ॥
अ २।३१।१

दीखनेवाले व दीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूं। दिखनेवाले कृमियोंको मैं विनष्ट करता हूं। बिलों पर रहने वाले सब कृमियोंको बचाते मैं नष्ट करता हूं।

निःशालां धृष्णुं विषदूषेकवाचां जिघत्नम्।
सर्वाशण्डस्य सप्त्यो नाशयामः सदान्याः ॥
अ २।३१।१

बरदार न होना, अकर्मण्य होना एकवचनी निरर्थकारक बुद्धिका नष्ट करना क्रोधकी सब सेनायें दावद्वेषियां आदिका हम नाश करते हैं।

प्राद्विजग्राह पयोतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्। अ ३।११।१

यदि अकस्मात् रोगने इसको पकड रखा हो तो हम पीडासे इन्द्र और अग्नि इसको छुडावें।

आ त्वा रभे दिशातां वज्रः पत्या शुष्कात्नि पातय।
अ १।२३।२

तुम्हारे शरीरका विनाश तुम्हें प्राप्त हो और क्षेत्र सूखे दूर हों।

अमुष्या पदमात् दुरितादयधाद् दुष्टः पाशाद् प्राताधादमुष्याः। अ २।१ ।६

अमुक, पाप विषयक क्रोधादिकोंके पाश और अकस्मात् रोग आदिसे मैं तुम्हें छुडाता हूं।

कृण्या कृतिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मनिरसि।
अ १।११।१

दोषको दूर करनेवाला दुश्चिकित्सा दुश्चिकित्सा, वज्रका वज्र तू (आत्मा) है।

यथाक्षय मुदधर्म रक्षसा प्राता अधि वैनं अग्राह पक्षसु। अथो एनं यमस्यने जीवानां लोकमुदय। अ २। ।१

हे दक्षपुत्र! इस राक्षसी व्याधियोंसे इस रोगीको दूर कर। जो रोग इसको व्याधियोंमें पकड रखा है। हे यमराजन्! इसको जीवित लोगोंमें ऊपर उठा।

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शाविषे

कृणोमि। यो अन्यद्युरन्यद्युरभ्येति तृतीयक काय नमोऽस्तु तक्मने ॥ अ ५।२२।७

तीसरेके लिये नमस्कार इस ज्वरके लिये नमस्कार जो एक दिन छोड़कर आता है जो दो दिन आता है जो तीसरे दिन आता है इस ज्वरके लिये नमस्कार है।

अर्थात् यह ज्वर इससे दूर हो।

यदि स्थ शेपियाया यदि पुरुषेषिताः।
यदि दस्युभ्यो जाता मह्यंतस्त्वदाभ्वाः ॥
अ ५।२।१५

यदि आनुवंशिक रोग हैं यदि मनुष्यकी प्रेरणासे हुए हैं यदि दस्युओंसे हुए हैं वे सब दोष यहांसे दूर हों।

आसुरी चक्र प्रथमेदं किलासमेषजामिद किलासनाशनम्। अनीनशद् किलास सक्थ पामकरस्वचम् ॥ अ ५।२३।१

आसुरीने पहिले यह कुष्ठनाशक औषध बनाया। इससे कुष्ठ मिटा हुआ और त्वचा समान रंगवाली बनी।

आरोग्यके विषयमें रोगकृमिका ज्ञान करना मुख्य है। स्वच्छता की जाय कुछ वायु आता रहे सूर्यप्रकाश आजाय इतना गौने धीका होता रहे ये सब बातें आरोग्य सम्पादनके लिये उपयोगमें हैं।

सूर्य रोगकृमियोंका नाशक मुख्यतया है। सूर्यप्रकाश नाशकारक करनेवाला है इसलिये रहनेके घरमें सूर्यप्रकाश विपुल आना चाहिये।

अग्नी रक्षांसाऽमीवचातनः।

अग्नि रोगकृमियोंका नाशक और रोग दूर करनेवाला है। इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करना चाहिये।

विजय

अपत्न-अपत्नो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥
अ ५।२२।६

मैं शत्रुका नाश करनेवाला बलवान् राष्ट्रहितकर्ता दुष्टोंको दूर करनेवाला इन वीरोंमें श्रेष्ठ होकर सब लोगोंका मालवीय बनूं।

पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् । अ २।१३।१
पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है उस तरह इसकी रक्षा करो।

आशीर्ण ऊर्जमुत सोप्रास्तथं दधं च द्रविणं सचेतसौ। जय क्षत्राणि सहसाय मिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्सपत्नान् ॥
अ २।२५।१

हमें आशीर्वाद दो हे संतुष्ट मनवालों! बल सुखका दृढ़ता तथा धन हमें दो। बल अपने बलसे विविध शत्रुओं जय प्राप्त करे और दूसरे शत्रुओंको नीचे करे।

विश्वा रूपाणि विचरत्तः त्रिपक्षाः परियन्ति।
अथर्व १।१।१

सब रूपोंको धारण करके तीन पक्ष वाला (अर्थात् इच्छित) पदार्थ सर्वत्र चलते हैं। (ये इच्छित पदार्थ विचारे जीवनेवाले पदार्थोंके रूप धारण करते हैं।)

यः सहमानश्चरति सासह्वान इव शुष्मिः।
तेनाश्वस्य त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि।
अ ३।१।१

जो बलवान् शत्रुको दबानेवाला सामर्थ्यवान् होकर चलता है उस वीरसे हम शत्रुओंको पराजित करेंगे।

मनुष्यके जीवनमें शत्रुका पराभव करना और विजय प्राप्त करना मुख्य बातें हैं। इसीसे मनुष्य सुखी हो सकता है।

पुत्रप्राप्ति

अस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु अस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। अ १।१।४
माता पिता तीनों पुत्र तथा चलनेवाले प्राणियोंको सुख प्राप्त हो।

ते विधि क्षेममधीवरम्। अ ३।६।५
प्रजाजनोंके लिये क्षेम धारण करें।

मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ। अ २।२८।५
हे अदिते! माताके समान इसे सुख दे।

एतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः। अ १।२७।३
पहिली अपराजित न लुटी हुई होकर आगे बढ़े।

शर्म यच्छतः स्वपतया। अ १।२६।३
हमें प्रजायुक्त होकर सुख दो।

प्यार्स्या पयमानः । अ ३।१३।२
हुए मनुष्य पीड़ासे दूर रहता है ।
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मा
दुत राजयक्ष्मात् । अ ३।११।१
सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे तथा राजयक्ष्मासे हवन द्वारा छुड़ाते हैं ।
सुहवा नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कधि ।
अ १।१३।२
हमारे शरीरोंको सुख हो हमारे बालबच्चोंको सुख हो ।
वि मद्ध्यर्म पच्छ, वरीयो यावया वधम् ।
अ १।२ ३
बड़ा आत्मिसुख हमें हो शत्रुका वध हमसे दूर कर दो ।
कामो दाता काम प्रतिग्रहीता । अ ३।२५।७
काम दाता और काम ही लेनेवाला है ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।
अ ३।२७।५
किये हुए कामकी यहां वृद्धि कर ।
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोग
तन्वः स्वायाः । त लोकं यमिन्यमिसंबभूव
सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूम् ॥ अ ३।२८।५
जहां सुहृद तथा सत्कर्मकर्ता अपने शरीरके रोगको त्याग कर आनंदसे रहते हैं, हे सुखसे बसे देनेवाली सी ! उस स्थानपर जाकर तू हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।
सर्वान् कामान्पूरयत्यासमग्रम् प्रभवन्भवन् ।
आकूतिप्रोऽयिर्नेता क्षितिपाद्रोप दस्यति ॥
अ ३।२९।२
यह दिया हुआ करभार सब प्रजाके संकल्पोंको पूर्ण करता है । हिंसकोंको हटाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रजापति बनकर अतिथ्यका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु । अ १।३१।४
हम सबके लिये यह विश्व उत्तम सहायक तथा ज्ञान देनेवाला हो ।
अग्ने अक्षा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
अ ३।१ ।२

यहां हमारे साथ अच्छी तरह बोल । हमारे सम्मुख उत्तम मनवाला हो ।
वि पन्थानो दिशा दिक्षम् । अ ३।१।७
मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।
ये अध्यमानमनु दीध्याना अभ्यैक्षन्त मनसा
चक्षुषा च । अग्निष्टामग्रे प्रमुमोक्तु देवो
विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ अ २।३४।३
बड़के जो मनसे और आंखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनको विघ्नका बचानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।
बृहस्पतये महिष नुमस्तमो विश्वकर्मन्, नम
स्ते पाह्यस्मान् ॥ अ २।३५।४
महाशक्तिमान् ! हाथों तेजस्वी विश्वके रचयिता आपको हमारा नमस्कार हो, आपका नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।
स्वर्णोप स्थां मदाः सुधातो मनुः । अ २।५।२
स्वर्गीय आनंदके समान उत्तम आनंदसे होनेवाले आनंद तुम्हारे पास पहुंचे हैं ।
सुपूयत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके
भ्यस्कधि । अ १।२६।४
आनंद हो सुखी करो हमारे शरीरोंको सुखी रखो । हमारे बालबच्चोंके लिये आनंद प्राप्त हो ऐसा करो ।
इमां देवा असपत्नुः सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय ।
अ १।१८।२
इस कन्याको देवोंने सौभाग्यके लिये उत्पन्न की है ।
धां मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ।
अ १।१९।४
मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य हो मेरे शरीरके लिये शीतलता हो ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् । अ १।१।२
अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।
यो ददाति क्षितिपाद्यि लोकम् अमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र सुकृतो न क्षीयते
अवसेम वसीयसे ॥ अ ३।२९।६
जो लोगोंसे संमानित हिंसकोंका नाश करनेवाले संरक्षक करभारको देता है वह दुःख रहित स्थानको प्राप्त करता है जहां निर्बलको बलवानके लिये कर नहीं देना होता है ।

इस तरह सुख प्राप्त हुआ तो मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है। रोग दूर हो, आरोग्य प्राप्त हो मन आनन्द प्रसन्न रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

दीर्घ आयु

इस प्रकरणमें आये मंत्रोंका विशेष उपयोग है। इन मंत्रभागोंका जप करनेसे लाभ होता है—

शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। अ ३।११।१

इसका शरीर और इसके अवयव वृद्धावस्थातक पहुंचाओ।

ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्सु। ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्मान् परि वृणक्तु मृत्यूम् । अ १।३० ।३

जो इस द्युलोक अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर हैं। जो ओषधियों और पशुओंमें हैं। वे देव इसके लिये वृद्धावस्था तककी आयु करें। सैकड़ों अन्य प्रकारके मृत्यु दूर हों।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्। अ २।११।७

सब देव तेरी आयु सौ वर्षकी करें।

तं त्रियास वधू रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतं शरदाय। अ ३।७।७

उस त्रिवर्धी प्रभु का बहुत प्रकाशित होकर जो वर्षका दीर्घायु प्राप्त कैरू।

दशभीमुमः सुमना वशेहं। अ ३।७।७

मैं यहां दसवीर तथा उत्तम मनवाला होकर इसकी इच्छा वाले सब शत्रुओंको अपने वशमें (अर्थात् अपने अनुकूल) करूं।

परि धत्त धत्त नो यथेसेम जरामृषुं कृणुत दीर्घमायुः। अ. २।११।२

इसको इस तरहसे धारण करो जैसेसे तुम करके इसका धारण करो। दीर्घायु इसको देकर जरावस्थाके पश्चात् इसका मृत्यु हो ऐसा करो।

शतं च जीव शरदः पुरूची रायस्पोषमुपसंव्ययस्व। अ २।११।३

सौ वर्षतक पूर्ण तीक्ष्णे जीवो और धन और पोषण इत्यम तीक्ष्णे प्राप्त करो।

इन्द्र एनां सवृत्रे क्रियो अग्र ऊर्जा स्वधाम जरां सा त एषा। तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आयुः प्रमोषीन्मघवञ्छतेषु ब्रवत्। अ २।२५।७

इन्द्रने मेहि करनेपर अन्न बल धारणशक्ति, महीनेका आदिको धारण किया यह शक्ति तुझसे लिये है। इससे तू पुरुष होकर बहुत वर्ष जीवित रह तेजस्वी बन तेरे लिये न्यूनता न हो। वैद्योंने तेरे लिये यह रक्षोबंध बनाया है।

अमि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रक्षसा। अ ३।११।८

जिस तरह गाय और बैलको रस्सीसे बांधते हैं वैसा वृद्धावस्था तेरे साथ बंधी रहे।

जरायै त्वा परिददामि। अ ३।११।७

वृद्धावस्थाके लिये तुझे देता हूं।

वि देवा जरसावृतम्। अ ३।३१।१

देव जरासे दूर रहते हैं।

अस्त्येनं जरसे वहाय। अ १।३ ।२

इसको पूर्ण आयुतक सुखसे पहुंचा दे।

विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत्। अ २।२८।५

सब देव यह पूर्ण होनेतक जीवे ऐसा करें।

जरायै त्वा परिददामि ते। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थातक तुझे पहुंचाता हूं।

जरा त्वा भद्रा नेषत्। अ ३।११।७

तुझे वृद्धावस्था सुख देवे।

वि यद्मेन समायुषा। अ ३।३१।१-११

यक्ष्मरोगसे मैं दूर रहूं। दीर्घायुसे मैं युक्त रहूं।

मित्र एन परुषो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ। अ २।२८।२

मित्र तथा अनुशासक वरुण आपसे मिले हुए इसको जरारूप मृत्युको प्राप्त होनेतक दीर्घायु करें।

दीर्घायुत्वाय महते रक्षापारिप्यन्तो दुरमाप्। सदैव। मणिं विष्कन्धदूषणं अक्षिभ्यं भिषजो यथम्। अ २।४।१

दीर्घायु प्राप्त हो बड़ा आदर प्राप्त हो कंधेकी पीड़ा दूर हो इसके लिये संचित मणिका इस तरह विनाश न होने वाले और अच्छा यह वैद्योंकी इच्छा करनेवाले वैद्य धारण करते हैं।

रायस्पोष सविता सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम्। अ २।२९।२

धन और पोषण, हे सविता! इसे तू दे। और यह तेरा बनकर सौ वर्ष जीवित रहे।

इन्द्रो पयैमं शरदो नयाशति विश्वस्य पुरि तस्य पारम्। अ ३।११।३

अब पापजनित दुःखके पार इसको इन्द्र ले जाय और यह सौ वर्षकी आयु इसे मिले ऐसा करो।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् शतमु वसन्तान्। अ ३।११।४

सौ वर्षतक बढ़ता हुआ जीवित रह। सौ हेमन्त सौ वसन्त और सौ शरद ऋतुतक जीवित रहे।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा हार्षमेनम्। अ ३।११।५

सहस्रों आँखोंसे युक्त सौ वीर्योंसे युक्त सौ आयु करने वाले हवनसे इसको मैं मृत्युसे वापस लाया हूं।

शतायुषा हविषाहार्षमेनम्। अ ३।११।७

सौ वर्षकी आयु देनेवाले हवनसे मैं इसे वापस लाया हूं।

शतं जीवाति शरदस्तवायम्। अ ५।१।१२

तुम्हारा यह मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहे।

आयुरस्मै धेहि जातवेदः। अ ३।२५।२

हे जातवेद! इसको दीर्घायु दे।

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त आयमान सुपाशया। तं ते सहस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिरुदवृहत्॥ अ ३।११।८

जिस मृत्युने तुझे बलपूर्वक होते हुए को बांध रखा है उस तुझको बृहस्पति सहसके हाथोंसे छुड़ा देता है।

तुभ्यमेव अरिमन् वर्धतामय मेममग्ने मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये। अ ३।२८।१

हे इन्द्राग्ने! तेरी आयुतक यह मनुष्य बढ़े। ये जो सैकड़ों मृत्यु हैं वे इसकी हिंसा न करें।

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्। अ ३।२८।५

हे अग्ने हे वरुण हे मित्र राजन्! इसको दीर्घजीवी करके दीर्घायु तथा तेजके प्रति ले जा।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरंतिकं नीत एव। तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्ष मेनं शतशारदाय॥ अ ३।११।२

यदि इसकी आयु समाप्त हुई हो, यदि यह मृत्युके समीप पहुंचा हो तो भी विनाशके पाससे मैं इसको वापस लाता हूं और इसको सौ वर्षतक मैं जीवित रखता हूं।

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः। अ १।३५।२

जो दाक्षायण सुवर्ण शरीरपर धारण करता है वह जीवोंमें दीर्घायु धारण करता है।

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि। यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्। अ १।२२।२

लाल रंगोंके किरणोंमें मैं तुझे दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये धरता हूं। इससे यह नीरोग होगा और पीलिमा भी इससे दूर होगी।

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन। अ ३।२१।१०

आयुष्यसे सब सब दीर्घायुसे युक्त हो औषधियोंके रससे उन्नतिको प्राप्त हो।

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः। अथो सहस्राक्षिदः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥

यह मणि अग्नि हिंसासे बचानेवाला है सब भूत रोगोंको दूर करनेवाला है और बल बढ़ानेवाला है यह हमारी आयुको बढ़ावे।

यथा बध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तथे बध्नामि आयुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ अ १।३५।१

उत्तम मनवाले यजमानी वृद्धि करनेकी कामना करनेवाले भेद पुरुष सैकड़ों यज्ञ प्राप्त करनेके लिये शरीरपर सुवर्ण (का आभूषण) रखते हैं। यह सुवर्ण दीर्घायु तेजस्विता बल और बड़ी दीर्घ आयु तुम्हें प्राप्त हो इसलिये तेरे शरीरपर बांधता हूं।

व्यन्ये यन्तु मृत्यवो पानाहुरितराम् शतम्। अ ३।११।५०

सैकड़ों प्रकारके मृत्यु या दुःख इससे दूर हो।

मा पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
अ ३।२१।११

पर्जन्यकी वृष्टिद्वारसे हम अन्नादिको प्राप्त हों और हम अमर बनें। हमें शीघ्र मृत्यु न आवे।

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो यूयम् ।
अ ३।११।६

हे प्राण और अपान यहां रहो तुम इससे दूर न जाओ।

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
अ ३।२१।५

जीवित रहनेवालोंकी जैसी प्राणशक्ति प्राप्त कर और यहां जीवित रह मत मर जा।

प्राणापानाभ्यां गुप्तिः शतं हिमाः । अ २।२८।४

प्राण तथा अपान द्वारा सुरक्षित होकर यह सौ हिम काल-सौ वर्ष-जीवित रहे।

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
अ ३।२१।८

दीर्घ आयुवालों और आयुष्य बढ़ानेवालोंकी जैसी प्राण शक्तिसे जीवित रह मत मर जा।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं । अ २।१३।१

हे प्राण और अपान ! मृत्युसे मेरी रक्षा करो।

प्र विशत प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अ ३।११।५

जैसे बैल गोशालामें जाते हैं वैसे प्राण और अपान इसके देहमें प्रविष्ट होते रहें।

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मिथा वधिषुर्मो अमित्राः । अ २।२८।३

इसके प्राण न छोड़े अपान न छोड़े इसका वध मित्र न करें और इसका वध शत्रु भी न करें।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न विभीतो न रिष्यतः ।
यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिष्यतः ।
यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा म प्राण मा बिभेः ॥ अ २।२५।८-९

ज्ञान और बल धन और अन्न भूत और भविष्य डरते नहीं इसलिये विनष्ट नहीं होते इस तरह मेरा प्राण न डरे और विनष्ट न हो।

द्यौष्टा पिता पृथिवी माता जरा मृत्युं कृणुतां संविदाने । अ २।२८।३

द्यु पिता और पृथिवी माता ज्ञानपूर्वक इसके आगे पश्चात् मृत्यु हो ऐसा करें।

मनुष्य दीर्घ आयु चाहता है। इसलिये दीर्घायु चाहने-वाला मनुष्य यहां दिये वचनोंका जप करे बारबार उच्चारण करे बारबार भजन करे। काम अवश्य होगा जैसा—

शरीरं मे अङ्गानि जरसे वहतं— इसका शरीर और इसके अंग वृद्ध अवस्थातक पहुंचा दो।

यह वचन अपने शरीरके विषयमें भी बारंबार बोला जा सकता है। सबके एक विश्वाससे काम होता है। जैसा—

कृणुत जरसं आयुः अस्मै— इसकी आयु वृद्ध अवस्थातक करो।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुषे जरदः शतं— सब देव सौ वर्षोंकी तुम्हारी आयु करें।

दशमीं उग्राः समनसः वसेह— यह वीर सबका दसवीं दशातक जीवित रहे।

जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः— इसके दीर्घायु करके जराके पश्चात् मृत्यु हो।

शतं च जीव शरदः पुरूचीः— सौ वर्षकी दीर्घायु इसे मिले।

त्वं जीव जरदः सुवर्चाः— उत्तम तेजस्वी होकर सौ वर्ष जीवित रह।

जरायै त्वा परि ददामि— वृद्धावस्थातक तुझे पहुंचाता हूं।

सुस्तेभिः जरसे वहाथ— सुखपूर्वक वृद्ध अवस्थातक इसे पहुंचा दो।

जरायै नि धुवामि ते— तुझे वृद्धावस्थातक पहुंचाता हूं।

जरां त्वा मह्यं नेषत्— दिवकर वृद्धावस्था तुझे प्राप्त हो।

निं पक्षमेण समाधुष्य— तेरा रोग दूर हो और तुझे आयुष्य प्राप्त हो।

शतं जीवाति शरदस्तवायम्— तेरा यह मनुष्य सौ वर्ष जीवे।

शतं जीव शरदो वर्धमानः— बढ़ता हुआ सौ वर्ष जीवित रह।

शतायुषा हविषेमम्— सौ वर्षकी आयुके साथ इसे मैं (परमेश) रक्षण करता हूं।

आयुरस्मै धेहि— इसके आयु प्रदान करो।
मेममम्ये मृत्यवो हिंसिषुः शत ये— सैकड़ों मृत्यु इसका नाश न करें।
इमम आयुषे वर्चसे नय— हे अग्ने! इसे आयु और तेजके लिये ले जा।
अस्यार्षमिदं शातयातवाय— सौ वर्षकी आयुके लिये मैं इसे स्वर्ण करता हूं।
तवे बध्नामि आयुषे— आयुष्यकी प्राप्तिके लिये तुझे यह मणि बांधता हूं।
मा मृथाः— मत मर।
प्रायेण जीव— प्रायसे जीवित रह।
प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं— प्राण और अपान मृत्युसे तुझे बचावें।
अरा मृत्युं कृणुतां— अराके पश्चात् मृत्यु हो।

इस तरह अन्यान्य वर्णनोंका भी उपयोग हो सकता है। कोई बीमार पड़ा हो तो पवित्र होकर सिरकी ओरसे बांयेतक अपने हाथोंको घुमाना और ये मंत्रभाग बोलना अथवा ही क्रियापूर्वक बोलना। बारबार बोलना। अपने हाथोंमें बीमारी दूर करनेकी शक्ति है ऐसा मानकर इससे बीमारी दूर होगी ऐसे विश्वाससे यह करना। रोगीका भी साथ साथ विश्वास हो तो काम शीघ्र होगा। अन्य अनेक अन्य समय बोलनेके लिये हैं। यह विचार करके पाठक आगे बढ़ सकते हैं।

वनस्पति

द्यौ नो देवी पृथिवि पर्वतैश निर्बाधया सहः।
अ २।१२।१

हे पृथिवी देवी हमारे लिये कल्याण कर और व्याधियोंको दूर नष्ट हो।

अरायमस्यक्ष्मयावा यच्च स्फातिं जिहीर्षति।
गर्भादं कण्वं साधय पृथिवि पर्णि सहस्व च॥
अ २।१२।३

सोमा इच्छनेवाला रक्तपीनेवाला जो पुरुषको इच्छता है वर्णको खानेवाला जो रोगजीव है उसका नाश कर। हे पृथिवि! दुःखको दूर कर।

वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।
अ २।८।२ ५

आयुर्वर्धक रोगको दूर करनेवाली यह ओषधि आयु क्षीण करनेवाले रोगको दूर करे।

इयामा सरूपे करणी पृथिव्या अभ्युद्धृता।
इदमूषु प्र साधय पुनः रूपाणि कल्पय।
अ १।२३।४

इयामा वनस्पति सरूप करनेवाली है पृथिवीसे ऊपर उखाड़ी गयी है इस कामका उत्तम साधन कर और पुनः पूर्ववत् शरीरका रंग कर।

इयं सोमः सहौषधीभिः। अ २।१।२

औषधियोंके साथ सोम कल्याण करनेवाला हो।

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म पदिष्यति।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः।
अ १।३२।१

हे लोगों! यह जानो कि शाप बड़ी बीपत्ति करने करेगा। जिससे वनस्पतियां जीवित रहती हैं वह पृथिवीमें नहीं है और न द्युलोकमें है।

असिक्नी त्वा प्रथमजामास्थामसिक्न तव।
असिक्न्यसि ओषधे निरितो नाशया परः॥
अ १।२३।३

तेरा जन्मस्थान कृष्ण है और आस्थान भी कृष्णवर्णका है। हे ओषधे! तू काले वर्णवाली है इसलिये तू इसके रोग सहित दूर कर।

सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि।
अ १।२३।३

हे ओषधे! तू सदृश त्वचाको करनेवाली है। अतः तू त्वचाको सदृश कर।

वधू

सोमप्रथमा ब्रह्मप्रथमा सत्यप्रथमा संभृत भगम्।
आयुर्वैवस्वत सत्येन कृणोम्यहं पतिघ्नेदृशम्।
अ २।३६।२

आत्मज्ञानीसे सेवित ब्राह्मणों द्वारा सेवित श्रेष्ठ सत्य बोलनेसे इकट्ठा किया यह धन है जैसा देवर सब विपत्तियोंसे पतिकी प्राप्तिके लिये मैं इसको सुयोग्य करता हूं।

इदं हिरण्यं गुल्गुलूपपरीतो मणिः भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामयुः प्रतिकामाय वेत्तवे।
अ २।३६।७

यह उत्तम सुवर्ण है यह रैक है और यह धन है।

वे पतिकी कामनाके लिये और वर कामके लिये तेरे पतिको देते हैं।

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेद्दिमां कुमारीं सह नो भगेन। अ २।३६।१

हे अग्ने! धनके साथ उत्तम बल्ल पति इस उत्तम बुद्धि मती कुमारीके पति आ जावे।

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे॥
अ २।३६।२

जो अन्दर हो वही बाहर हो जो बाहर हो वही अन्दर हो। विविध रूपवाली कन्याओंका मन ग्रहण कर।

या हृदाता शोचयति कामस्येषुः सुसंशिता।
अ ३।२५।३

कामका बाण लगनेपर हृदयको शोचित करता है।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापया असः॥ अ २।३६।१

हे स्त्री! जैसा यह पृथ्वीपरका घास वायु हिलाता है वैसा मैं तेरे मनको हिला देता हूं तू मेरी इच्छा करनेवाली हो मुझसे दूर जानेवाली न हो।

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि॥
अ ३।२८।३

पुरुषों गौओं घोड़ोंके लिये तथा इस सब क्षेत्रके लिये कल्याण करनेवाली हो। कल्याण करनेवाली बनकर यहां रह।

एयमगन्पतिकामा जनिकामोहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम्॥
अ २।३६।५

यह कन्या पतिकी इच्छा करती हुई आ गयी है जीकी इच्छा करता हुआ मैं आया हूं। जैसा हिनहिनानेवाला घोड़ा आता है वैसा मैं धनके साथ आया हूं।

विन्दस्व त्वं पुत्र नारिं यस्तुभ्यं शमसच्चतु
तस्मै त्वं भव। अ ३।२३।५

हे स्त्री! तू पुत्रको ग्रहण कर जो तुम्हारा कल्याण करने वाला हो और तू भी उसके लिये कल्याण करनेवाली हो।

तासत्वा पुत्रविद्याय दधौ प्राजापत्योपधयः॥
अ ३।२३।६

वे दिव्य औषधियां पुत्रप्राप्तिके लिये तेरी रक्षा करें।

एषा भगस्य सुश्रेयमस्तु नारी सम्प्रिया पत्या विराधयन्ती। अ २।३६।४

एकमनसे सेवित हुई यह स्त्री पतिको प्रिय और पतिसे विरोध न करती हुई यहां रहे।

पुमांसं पुत्र जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्॥
अ ३।२३।६

पुरुष पुत्र उत्पन्न कर उसके पीछे भी पुत्र ही होवे तथा तू पुत्रोंकी माता हो जो हो चुके तथा जो होनेवाले सब पुत्र ही हों।

त त्वा भ्रातरः सुभुवा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम्। अ २।१३।५

उस तुझ उत्तम जन्मे हुए बढ़ते हुएके पीछेसे बहुतसे बढ़नेवाले भाई उत्पन्न हों।

पति-पत्नी

परि त्वा परिवस्तुमेनसुषागामविदिषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः॥
अ १।३४।५

मैं ढके हुए ईंधनसे तुझे घेरता हूं। मीठा बातचीत चारों ओर बनाता हूं। इससे देख तू होगी मेरी कामना करती रहेगी और मुझसे दूर नहीं होगी।

सुप्रा अरेपु समनेषु वल्गुः। अ २।३६।१

यह कुमारी घरोंमें-जोड़ोंमें विद है और उत्तम सभाओंमें मनोरम है।

सुजाता पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुमना विराजतु॥ अ २।३६।३

पुत्रोंको उत्पन्न करके यह घरकी रानी होवे यह पतिको प्राप्त होकर सौमनस्यवती होकर विराजे।

आक्रन्दय बलपते गर्दं आमनसं कृणु।
सर्वे प्रदक्षिणं क्रुवन्तु वरः प्रतिक्राम्यः॥
अ २।३६।६

हे बलपते! घरको बुला! बल घरके सबके अनुकूल हो

र्भ कर। सब काम करनेके बादिकी बात कर, जो घर गर्भ समस्तके अनुकूल है।

दधा गर्भं सवितरयन् तं पूषञ्छयस्तु सूतवे।

अ १।११।१

देव इस गर्भका प्रेरणा करें प्रसूतिके लिये इस गर्भको रित करें।

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती सूषा सपत्नीं मे सहावहै॥

अ ३।१८।५

मैं विजयी हू और तू विजयी है। दोनों विजयी होकर पत्नीका पराभव करेंगे।

पत्या सौभगत्यमस्यस्य। अ २।३६।१

इस कुमारिको इस पतिसे सौभाग्य प्राप्त हो।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्टु सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। अ २।३६।३

हे अग्ने! यह नारी पतिका प्राप्त करे राजा सोम इसका उत्तम भाग्यवती करे।

पुत्रं यद् गाव। परिषस्वजाना अनुस्फुरं धार मधस्पृथुम्। अथर्व १।२।३

पुत्र परिषस्वजाना गाव। स्तनं धार अनुस्फुरं मधस्ति— पुत्र (से उत्पन्न बछड़ेके साथ रहकर) गौ (जैसे अपनी दोनों) नीचे फैलनेवाली स्फूर्तिके साथ जिस तरह दूध देती है (इस तरह पुत्रके साथ मिलकर रहनेवाली स्त्रियां फूर्तिके बीर पुत्रको अनुकूल होवें।)

बछड़ेकी तरह पुत्र है दोनों की है इसका पुत्र नाम है। जिस तरह बछड़ा स्तनपर मुख फैलाता है उस तरह पुत्रके अपने पुत्रका मुखस्थ बनाकर अनुकूल होवे और बछड़ा दूधपर करें।

दहैवामि घि तनु उभे सासहीं इव उषया।

अथर्व १।१।३

(जैसे सासहीं उषा) बछड़ेके दोनों ओर जैसे दोनोंसे बने रहते हैं, इस तरह (इह एव अमि वि तनु) यहां ही दोनोंको बनाओ। (बछड़ेकी दोनों बछड़ेको बनाकर रखती है जिससे विजय मिलता है। इस तरह इस प्रकारमें दोनों बच्चे बीच जीवन दृष्टि, विद्वान् अविद्वान्— काम करनेके लिये जिस देशमें विद्वान् रहते हैं, वह देश विजयी होता है।)

स्थूणा तुदिमे यद्वतु (वि) मुमुक्षि। अ ३।३।५

जिस तुम्बको यहां बनेक छिद्र बनाकर रखता है।

सुखप्रसूति

आ न योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इषुधिम्।

अ ३।२३।१

जैसा बाण भातमें आता है वैसा यह पुरुषका गर्भ हो गर्भाशयमें आवे। (बाण शत्रुनाश करता है वैसा यह गर्भ वीर बने शत्रु नाश करे।)

या योनिं गर्भ एतु ते। अ ३।२३।५

तेरे उदरसे पुत्र गर्भ होवे।

रक्तस्राव दूर करना

तमिमें गर्धो मधाद्गर्धं मे आपयामसि।

अ १।१५।३

इस सब दोषोंसे युक्त सब बचको मलरूप रीतिसे इकट्ठा करते हैं।

नियमसे चलना

यावस्पतिर्नियच्छतु। अथर्व १।१।३

विद्वान् नियमसे चलावे।(विद्वान्के नियमसे अन्य लोक चलें जिससे उनकी उन्नति होगी।)

मणि धारण

परात् पाना अधिपा। स्वस्तये। अ २।१३।३

इस बचको अपने कल्याणके लिये धारण करो।

अङ्गिरा अग्नाद् पितृणाद् पितृभ्योऽमिशो अमात्। मणि। सहस्वर्चीया। परि मा। पातु विश्पता॥ अ १०१

यह मणि मणि सहस्र वीर्योंसे युक्त होनेके कारण अग्नि हानि, क्षीणता दोषक रोग तथा शोक करनेवाली रोगवस्तु विषैले सब आपसे हमारा रक्षण करे।

अयं पितृभ्यो सहसेऽयं पाथसे अग्निवा।
अथ मा पितृमेधाय। अङ्गिरा पारयादसत्।

अ २।१०।३

यह मणि मणि शोषक तापसे बचाता है यह रक्त मांसम

करनेवाले क्रिमियोंको नाश पहुँचाता है, वह सब कीटपतंगादि क्षुद्र जन्तुओंसे युक्त इस घरको पापसे इसे बचावे।

दृणञ्च मा वंगिरश्च विष्कंधाद्भि रक्षताम्।
अरण्यादन्य आभृतः कृत्या अन्यो रसेभ्यः॥
अ २।३।५

दृण और वंगिरा ये दोनों औषध रोगसे मेरा रक्षण करें। एक वनसे लाया है और दूसरा खेतीके रसोंसे बनाया है।

काम

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि, कामैतत्ते। अ ३।२९।७
कामसे तुझे लेता हूं। यह ले हे काम! तेरा कवल है।

पापसे बचना

पदेनमक्रुवान् वद एष त विश्वकर्मन् ममुष्या स्यक्षयेषे। अ २।२५।३
इसने पाप किया इसलिये यह बद्ध हुआ है। हे विश्वके रचना करनेवाले प्रभु! इसको कल्याण प्राप्त हो इस लिये इसे मुक्त कर।

पापमार्छत्यपकामस्य कर्ता। अ २।१२।५
अनिष्ट कार्य करनेवाला पापको प्राप्त होवे।

मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एन मित्रिया रपास्यहसः। अ २।२४।१
जैसी माता प्रेमसे पुत्रको गोदमें लेती है। उस तरह मित्र मित्रसम्बन्धि पापसे इसको बचावे।

ते नो मित्रस्या वरुणस्यो मुञ्चतांहसो अंहसः।
अ २।३१।२
वे देव मित्रावरुणके पाशोंसे तथा पापसे इसे मुक्त करें।

विश्व मुग्र निधिकेदि दुष्कृतम्। अ ३।१।१
हे उग्र वीर! सब पापको तू जानता है। पाप कहां रहता है यह तू जानता है।

व्याकृतय एषामितायो चित्तानि मुह्यत।
अधो यदेषां हृदि तदेषां परि निर्जहि॥
अ ३।२।३

इन बहुतोंके संकल्पों और इनके चित्तोंको मोहित करो। और जो इनके हृदयमें विचार हैं उन सबका नाश करो।

व्यहं सर्वेण पाप्मना। अ ३।३१।१-५; १ -११
सब पापोंसे मैं दूर रहता हूं।

वि शक्राः पापकृत्यया। अ ३।३१।२
समर्थ मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है।

सज्ञातानुप्रेहा यद ब्रह्म चाप चिकीहि नः।
अ १।१ ४

हे उग्र वीर! ज्ञातिजनोंसे योजना करके तू ऐसा उपाय ही दोषोंको दूर कर सकता है।

आत्मरक्षण

त त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः। अ २।११।५
सब देव तेरी सुरक्षा करें।

भूरिरसि वर्षोधा असि तनूपामोऽसि।
अ २।११।१

तू ज्ञानी है तू तेजस्वी है तू शरीरका रक्षण करने वाला है।

अन्न-जल

लोकस्य प्राशान। अ ३।७।२
लोकर खाओ। (मित्र भोजन करो)

क इद कस्मा अदात् कामः कामायादात्।
अ ३।२९।७

किसने यह किसको दिया। काम ही कामके लिये देता है।

दाशाय चोदय। अ २।२ ।७
दानके लिये प्रेरणा कर।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
अ ३।२४।५

सौ हाथोंसे प्राप्त कर और हजार हाथोंसे दान कर।

पूर्त पीत्वा मधु चारु गव्यम्। अ. २।११।१
मीठा सुन्दर गोदुग्ध पी पीकर।

इह पुष्टिरिह रसः इह सहस्रसातमा मद।
पशून् यमिनि पोषय। अ ३।१४।२

यहां पुष्टि और यहां रस है। यहां हजारों काम देनेवाली होकर रह। हे सुदर्शे यज्ञ देनेवाली गौ! यहां पशुओंको पुष्ट कर।

सा म आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।
अ ३।१ ।३।८

वह तू हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको धनकी पुष्टिसे युक्त कर ।

अधिस्तस्मात् म मुञ्चति दत्तः क्षितिपास्यधा ।
अ ३।१२।१

वह (सोलहवाँ भाग कर) दिया हुआ रक्षक बनकर हिंसकोंसे रक्षण करनेवाला तथा अपनी धारणा करनेवाला होता है और वह दुःखसे मुक्त करता है ।

मुञ्चां मे पञ्च प्रदिशो मुञ्चामुष्मै यथावशम् ।
अ ३।२ ।

मेरे लिये पाँच दिशायें वह पूर्वी आदिदिशा मुझे लाभ प्राप्त देवे ।

एष वां द्यावापृथिवी उपस्थेऽग्ना मुधन् मा दभत् ।
अ २।२९।४

हे द्यावापृथिवी ! यह तुम्हारे समीप रहता हुआ क्षुधासे अथवा तृषासे दुःखी न हो ।

गृहनिर्माण

गृहानकृण्वन्तो यत्र सधिष्टेमोप गोमतः ।
अ ३।१ ।११

हमारे घरोंमें बहुत गायें हों और किसी पदार्थकी न्यूनता न रहे ।

त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उपसंचरेम ।
अ ३।१२।१

हे घर ! तेरे चारों ओर हम सब उत्तम वीर उत्तम कार्य करते हुए संचार करते रहेंगे ।

इहैव ध्रुवा नि षीदेहाश्वावती गोमती सूनृतावती । ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व मह्ते सौभगाय ॥
अ ३।१२।२

हे घर ! तू यहीं रह यहाँ खड़ा रह गौओंसे युक्त घोड़ोंसे युक्त मधुर भाषणसे अन्नकण बीजसे युक्त दूधसे युक्त होकर महान् सौभाग्यसे युक्त होकर यहीं खड़ा रह ।

आ त्वा परमे व्योमन्नृतस्य योनौ सादयामि सुकृतस्य लोके । तत्र विहि प्रतरं दीर्घमायुरत्र प्रजां द्रविणं धेहि चास्मै ॥
अ ३।१२।३

घरके पास बढ़ता और अन्नका संग्रह करती हुई गौवें आवेंगी आ जावें ।

घृतच्युते शाले पृथुच्छदा पृतिधान्या ।
अ ३।१२।३

हे घर ! तू बड़े छतवाला और पवित्र धान्यवाला होकर धारणशक्तिसे पूरित होकर रह ।

तृणं वसाना सुमना अवस्तर्यं । अ ३।१२।५

घासको पहनेवाला तू घर हमारे लिये उत्तम मनवाला हो ।

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्मिता स्यग्रे ।
अ ३।१२।५

समानका रक्षक रहने योग्य सुखकर यह दिव्य घर देवोंद्वारा पहिले बनाया गया था ।

क्षत्रेण स्थूणामधि रोह यजमानो विराजन्प्रथय इह शालाम् ।
अ ३।१२।६

हे यजमान ! अपने सीधेपनसे अपने आधारपर खड़ा रह । शूरवीर बनकर शत्रुओंको हरा दे ।

शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ।
अ ३।१२।६

हे घर ! सब वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षोंतक जीवित रहेंगे ।

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ वह्नः कलशैरयुः ॥
अ ३।१२।७

इस घरके पास कुमार आवे, तरुण आवे बछड़ेके साथ चलनेवाले गौ आदि प्राणी आवें इसके पास मधुर रससे भरा बड़ा बड़ीके कलशोंके साथ आ जाय ।

असौ यो अध्वरात् पुरः तत्र सप्तपदीष्वः ।
तत्र सोदित्पुरुष्यतु सप्तार्ध वानुधाय्यः ॥
अ ३।१२।३

जो यह बीच घर है वहाँ विपत्तियाँ रहें वहाँ अन्न हो, सब भोजन वहाँ रहे ।

मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणाम् । अ ३।१२।६

हे घर ! तेरे आश्रयसे रहनेवाले विनष्ट न हों ।

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामधु तेन संभृताम् । इमां पात्रममृतेनाभि रक्ष प्रजावतीं धनिनं गोपतिं कृधि ॥
अ ३।१२।८

हे स्त्री ! इस पूर्ण भर घरको तथा अन्नसे भरी हुई

बनाओ अच्छी तरह भरकर ले आओ। पीनेवालोंको अच्छी तरह भर दे। यज्ञ और यज्ञमान इस घरका रक्षण करते हैं।

गौ

स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि।

यह तू हमारी प्रजा आत्मा गौओं और प्राणोंके विषयमें जागता रह।

इहैव गाव एतनेहो अकेव पप्रथ।
इहैवोत प्रजायध्वं मयि सञ्ज्ञानमस्तु वः॥

अ ३।१४।४

हे गौओं! यहां आओ आकके समान तुम यहां घरमें प्रसन्न करो और आनन्दा प्रेम सुखपूर्वक रहे।

मया गावो गोपतिना संयुध्वं मय वो गोष्ठ
इह पोषयिष्णुः। रायस्पोषेण बहुला भवन्ती
र्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम॥ अ ३।१४।६

हे गौओं! तुम गोपतीके साथ मिली रहो। तुम्हारा पोषण करनेवाली यह गोशाला यहां है। दोनोंपुष्ट वृद्धिके साथ बढ़ती हुई जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं।

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन्गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रती सोम्यं मधवनमीवा उपेतन॥

अ ३।१४।२

इस गोशालामें मिलकर रहती हुई निर्भय होकर गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली शान्ति उत्पन्न करने वाले रस-दूध का धारण करती हुई हमारे पास हमारे समीप गायें आ जाओ।

निवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।
इहवात प्रजायध्वं मया वः संसृजामसि॥

अ ३।१४।५

यह गोशाला तुम्हारे लिये हितकारिणी होवे आकीकी झाड़के समान तुम यहां पुष्ट बनो यहीं प्रजा उत्पन्न करो मेरे साथ तुमको प्रसन्नरे लिये मैं जोड़ता हूं।

सं वो गोष्ठेन सुषदा स रय्या सं सुभूत्या।

अ ३।१४।१

हे गौओं! तुमको उत्तम बसने योग्य गोशालासे पुष्ट करता हूं उत्तम पुष्टि और उत्तम रहन-सहनसे संयुक्त करता हूं।

इमं गोष्ठ पशवः सं स्रवन्तु। अ २।२६।१

इस गोशालामें पशु रहें।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ अ ३।१५।७

कल्याण करनेवाली उषायें घोड़ों और गौओंके साथ तथा वीर पुत्रोंके साथ हमारे घरोंको प्रकाशित करें। वे देवें सब ओरसे तृप्त होकर आप सदा हमें कल्याणोंसे सुरक्षित रखें।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंग मा मा प्राणेन सह
वर्चसा गमेत्। अ ३।१३।५

यह मधुरतासे मधा तीव्र उत्तम रस आप और तेजके साथ मुझे प्राप्त हो।

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती पय पयो मरुद्भ्यो धत्त
धत्तम्। ऊर्जमसौ द्यावापृथिवी अधत्तां विश्वे
देवा मरुत ऊर्जमापः॥ अ ३।१९।५

अन्तरिक्षकी (द्यावापृथिवी) इसे अन्न देवे, दूधवाली इसे दूध देवे द्यावापृथिवी इसको अन्न देवे सब देव मरुत् और जल इसे शक्ति प्रदान करे।

आ हरामि पयो क्षीरं आहार्यं धान्य रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्॥

अ ३।१३।५

मैं गौओंका दूध लाता हूं धान्य और रस लाता हूं। हमारे वीर आगये हैं वे पत्नियां हैं आर यह घर है।

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बल रसम्।
सं सिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ॥

अ ३।१३।६

मैं गौओंका दूध देता हूं बलवर्धक रसको घीके साथ मिलाता हूं। हमारे वीर दूधसे सींचे गये। मुझ गोपतिमें गायें स्थिर रहें।

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपं रूपं पयो बहुस्तासामिह्वा परि दृश्यसि॥

अ ३।२२।३

जो लाल रंगकी गायें हैं और जो लालके समान रंगकी गायें हैं। रूप आकार तथा आयुके अनुसार उनके साथ तुम्हारा संयोग करता हूं जिससे तू बीरोंवाला होता।

यदि मो गां हंसि यदश्व यदि पूरुषम्।
तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥
अ १।१६।४

यदि हमारी गौका वध तू करेगा यदि घोड़का या यदि पुरुषका वध करता तो तुझे सीसेकी गोलीसे बेध करेंगा जिससे हमारे समीप कोई वीरोंका नाश करनेवाला नहीं रहेगा।

कृषि

सीत यन्दामहे त्वार्वाची सुभग भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥
अ ३।१७।८

हे हलकी रेखा! तुझे हम वन्दन करते हैं तू मंगलमुख हो और आनन्ददायी हो। तू उत्तम इच्छावाली हो और सुफल देनेवाली हो।

शुन वाहाः, शुन नरः शुनं कृषतु लांगलम्।
शुन वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥
अ ३।१७।६

बैल सुखी हों मनुष्य प्रसन्न रहें हल सुखसे जमीन तोड़े रस्सियां सुखसे बांधी जायं और चाबुक सुखसे चलाया जाय।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोरुप्रजा अनमीवा भवेह॥
अ ३।१७।९

घी और मधुसे सिंचित हलकी रेखा सब देवों और मरुद्गणोंसे अनुमोदित हुई। हे हलकी रेखा! तू दूध सिंचित होकर इसे सब देवोंकी होकर दूधसे पुष्ट कर।

शुन सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभियन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै॥
अ ३।१७।१०

हे हल इससे फाल भूमिको उत्तम रीतिसे तोड़ें किसान सुफल देनेवाले बनें हे वायु और सूर्य! तुम दोनों इसके लिये उत्तम वर्षासे जल दें।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥
अ ३।१७।४

हे हल इसको इन्द्रकी रक्षा हो, पूषा इसकी चारों ओरसे रक्षा करे। यह उत्तम होकर हमारे लिये इसे अधिक अधिक दूध दुहा करे।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥
अ ३।१७।७

हमारे वलिवर्द चाबुकसे हमारे लिये ठीक चलें।

विराजः श्रुष्टिः सभरा असश्चसः। अ ३।१७।२

अन्नकी उपज हमारे लिये भरपूर हो आवे।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ॥ अ ३।१७।१

जो ज्ञानियोंमें उत्तम मेधावान् बुद्धिमान कवि हैं वे हल जोतते हैं। अन्न बुद्धीको पृथक् करते हैं।

अगो मे राजा मि एषिं तनोतु। अ ३।१७।३

राजा अन्न हमारे लिये वृद्धिको बढ़ावे।

पुनर्न सीरा, विदुषा तमात इमं यज्ञं पितृलोकं च विद्वान्॥ अ ३।१७।५

हे जाना, तुमको चैत्रा हो भूमि तैयार करनेका बीज वहीं बो दो।

जल

अन्नु म आमोऽवधात् अस्तंभ्यानि भेषजा॥
अथर्व १।६।२

सोनेसे मुझ रोगी के लिये यह औषधियां हैं।

अप्सुमन्तरमृतं अप्सु भेषजम्। अथर्व १।४।४

जलमें अमृत है जलमें औषधि गुण है।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। अ १।६।३

हे जलो! मुझ रोगीके लिये औषध और मेरे शरीरका संरक्षण हो।

इदाना आपोऽयानाम्। सर्वस्मादेनसस्परीनाम्।
आपो याचामि भेषजम्॥ अथर्व १।५।३

वर्तमान मुझको जलकी जरूरत है। ज्ञानियोंका निश्चयरूप जल है। इस कारण मैं जलसे औषध याचना करता हूं।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः उशतीरिव मातरः॥
अ १।५।१

जल अत्यन्त ही अच्छे सुख देनेवाले हैं अन्न बल देनेवाले हैं इस कारण हे जलो! तुम मुझे सुख दान करो।

अपां अग्ने उपसंपरेहि संसृजावर्चोधरुणो भवेह
तं त्वा विदन्तु बहवः सहस्रमोषधे त्रायमाणं पुरुषम्॥
अ १।३।४

हे जल और अग्नि (इन मुझमें है) इनका इस शरीरमें संयोग करो। हे औषधि तू रक्षा करनेवाली होकर इस पुरुषको हजारों लोग प्राप्त करें।

(अन्नं) मह स्थाम वरुणस्य (दानस्य)।
अथर्व १।५।१

यह जल रोगनिवारणके द्वारसे मिले हुये जान पड़ते हैं। (इससे अन्न दानका संबंध है।)

तो न आपः शं स्योना भवन्तु । अ ११।६।१-४
वे जल हमारे लिये सुखदायक होनेवाले हों।
इमा आपः प्रभरास्यक्ष्मा यक्ष्मनाशिनीः ।
पृदाकूपर्मादामि अमूतेन सहाग्निना ॥
अ ३।१२।९
मैं रोगनाशक और रोगरहित जल मैं भर लाता हूं।
अमृत जल और अग्निके साथ मैं घरमें आकर बैठता हूं।
शं नः खनित्रिमा आपः । अ ११।६।७
खोदकर निकाला जल हमें सुख देवे।
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः । अ ११।६।७
वृष्टिसे प्राप्त जल हमें कल्याण करनेवाला हो।
शमु सन्तु अनूप्याः । अ ११।६।७
जलपूर्ण प्रदेशका जल हमें शान्ति देवे।
शमु या कुल्या आभृताः । अ ११।६।७
जो जल घरमें रखा है वह हमें शान्ति देवे।
शं नः आपो धन्वन्याः । अ ११।६।७
रेतीले प्रदेशका जल हमें कल्याण करनेवाला हो।
घृतदुघः शुचयो याः पावकास्ता न आपः
शं स्योना भवन्तु । अ ११।६।७
तेजस्वी पवित्र पुष्टि करनेवाला जल हमारे लिये
सुखदायी हो।
शंयोरभिस्रवन्तु नः । अथर्व ११।६।१
जल हमें शान्ति और इष्ट वस्तु देनेवाला होवे।
शिवया तन्वा पर्यापृणध्वं मयि । अ ११।६।७
अपना कल्याण करनेवाले शरीरमें सभी रसादिको एकत्र करो।
(हे आप !) यो वः शिवतमो रसः तस्य
भाजयते ह नः । अथर्व १।५।२
हे जलो ! जो आपमें कल्याण करनेवाला रस है उसका
हमें भागी करो। (हमें वह कल्याण करनेवाला पुष्टिरस
आप दिलाते ।)
आपो अमृतमप्सु भेषजम् । अथर्व ११।५।१
हे जलो ! हमें बचाओ।
आपो मयस्तु पीतये । अथर्व १।६।१
जल हमारे पीनेके लिये रसादिके लिये हो।
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः । अ ११।६।७
हे जलो ! कल्याणकारी नेत्रसे आप हमें देखो।
आपो हि ष्ठा मयो भुवः ता न ऊर्जे दधातन ।
अथर्व १।५।१
जल सचमुच सुखदायी है वह अन्न हमें प्राप्त दें।
द्यौ सो अंधीरभिश्रये । अथर्व १।६।१
द्युलोक जल हमें शान्तिसुख देवे।
यस्मा अरंगमावसो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
अथर्व १।५।१
जिसके निवासके लिये आप यत्न करते हैं वासके
पर्याप्त मात्रामें (वह जल) प्राप्त हो।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनः ।
गावो भवथ वाजिनीः ॥ अथर्व १।६।७
जलके प्रशंसनीय गुणोंसे घोड़े बलवान् होते हैं और
गौएँ बलशालिनी होती हैं।

सुभाषिताका उपयोग

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंके सुभाषित यहां दिये हैं। वे इतने ही हैं ऐसा नहीं। संख्यामें वे सुभाषित अधिक भी हो सकते हैं। वे किस तरह अधिक हो सकते हैं यह इस लेखमें बताया ही है। व्यवहारमें अथर्वोक्त सर्व मंत्र भाग सुभाषित कहा जाता है।
भूरिरसि धर्त्रोषा असि तनूपानोऽसि ।
अ ३।१।७
तू धारी है तू तेजस्वी है तू शरीर रक्षक है। यह एकमन्त्र है पर इसमें तीन सुभाषित हैं।

सीसेकी गाली

तं त्वा सीसेन विध्यामः । इस सूक्तको सीसेके
द्वारा वध करेंगे। सीसेसे वेध करनेका अर्थ सीसेकी गोलीसे
वध करेंगे। गोली वध करनेवालेको या पुरुषका वध करने
वालेको सीसेकी गोलीसे वेध करनेका दण्ड कहा है।
सीसा या, सीसेकी गोली थी और गोलीसे वेध करनेका
साधन बंदूक जैसा कुछ था ऐसा यहां पता लगता है।
अकस्मिकमृत्यु सब रोग दूर होते हैं ऐसा पाठक आगे
सुभाषितोंमें देखेंगे। सुभाषितोंका उपयोग करनेकी रीति
यहां बताई है। वेदके अथर्वकाण्डको मानसी आधार और
व्यवहारमें लानेकी रीति यह है। पाठक इसका उपयोग
करके अधिक जीवनसे व्यवहार करके अपना काम साध्य करें।

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक

प श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्य-वाचस्पति वेदाचार्य गीतालङ्कार,

अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल आनंदाश्रम पारडी [जि सूरत]

तृतीय वार

संवत् २ ६ सन १८७१ सन १९५

ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिन यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठ ये ब्राह्मण विदुस्ते स्वर्ग्यमनुत्तमं विदुः ॥

(अथर्व १० ।७।१७)

(ये) जो (पुरुषे ब्रह्म) पुरुषमें ब्रह्म (विदु) जानते हैं वे (परमेष्ठिनं) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो (ज्येष्ठं ब्राह्मणं) श्रेष्ठ ब्रह्मको जानते हैं वे स्वर्ग्यको (अनुत्तमं विदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं ।

श्री आचार्य जिनचन्द्र ज्ञान भण्डार
लाल भवन बोल गली,
जयपुर सिटी (राजस्थान)

ॐ

अथर्ववेद के विषयमें

स्मरणीय कथन ।

श्रीमान् चन्दुलालजी त्रिभुवनदास बम्बई वालों की ओर से भेंट ।

(१) अथर्ववेदका महत्त्व ।

अथर्ववेदका नाम 'ब्रह्मवेद अथववेद आत्मवेद आदि है, इससे यह आत्मज्ञानका वेद है यह स्पष्ट है। इसी लिये कहा है कि—

श्रेष्ठो ह वेदस्तपसोऽभि जातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव ॥
(गोपथ ब्रा १ । ९)

एतद्वै मुखिर्वं ब्रह्म यद् अथर्वाङ्गिरसः। वेऽङ्गिरसः स रसः। वेऽथर्वाणस्तज्जेषजम्। भेषजं वै तदमृतम्। अमृतं ब्रह्म ॥
(गोपथ ब्रा १ । ४)

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः ॥
(गोपथ ब्रा १ । १९)

(१) यह भेद वेद है। ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें यह प्रसिद्ध रहता है। (२) मुखमिति वेदा ब्रह्म ज्ञान है जो आंगिरस हैं वही रस अर्थात् तत्त्व है जो अथर्वा है वह भेषज (दवा) है जो भेषज है वह अमृत है जो अमृत है वही ब्रह्म है। (३) ऋग् यजु, साम और ब्रह्म यही चार वेद हैं।"

अथर्ववेदको इस वचनमें भेषज अर्थात् रोगरोग दूर करनेवाली औषधि अमृत' अर्थात् मृत्युको दूर करनेका उपाय तथा ब्रह्म वेदा ज्ञान कहा है। ये तीन शब्द अथर्व वेदका महत्त्व स्पष्ट रीतिसे व्यक्त कर रहे हैं। और देखिये—

अथर्वमन्त्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भवेत्किल ॥
(अथर्वपरिशिष्ट २ । ५)

" अथर्ववेद मंत्रकी संप्राप्ति होनेसे सब पुरुषार्थ सिद्ध होते। यह अथर्वमंत्रोंका महत्त्व है इस वेदमें (शांतिक कर्म) शांति स्थापनके कर्म (पौष्टिक कर्म) पुष्टि बलवृद्धि आदिकी सिद्धिके कर्म (राजकर्म) राज्यशासन समाजव्यवस्था आदि कर्मोंके आदेश होनेके कारण यह वेद प्रजादिकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व रखता है। इस विषयमें देखिये—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यरि तद्राष्ट्रं वर्धते नित्यशवम् ॥
(अथर्वपरिशिष्ट ४ । ६)

" जिस राज्यके राज्यमें अथर्ववेद जाननेवाला विद्वान् शांति स्थापनके कामपर निरत रहता है वह राष्ट्र उपद्रवरहित होकर बढ़ता जाता है।

(२) अथर्व-शाखा ।

१ पैप्पलाद २ तौद ३ मौद ४ शौनकीय ५ जाजल ६ जलद, ७ ब्रह्मवद ८ देवदर्श ९ चारणवद्य ये अथर्वके नौ शाखाभेद हैं। इनमें इस समय पिप्पलाद और शौनक ये दो संहितायें उपलब्ध हैं अन्य उपलब्ध नहीं हैं। इनमें गोपथ मंत्रपाठभेद और सूक्त क्रमभेद भी है अन्य व्यवस्था प्रायः समान है।

(३) अथर्वके कर्म ।

१ स्वास्तीयाग — क्षेमादिदि ।
२ भेषजमनम् — पुष्टिकी वृद्धि करनेका उपाय ।
३ ब्रह्मचर्यम — वीर्य-रक्षण ब्रह्मचर्यपालन आदि ।
४ ग्राम-नगर-राष्ट्र-पालनम — ग्राम नगर, छोटे राज्य आदिकी प्राप्ति और उसका संरक्षण ।
५ पुत्रपशुधनधान्यप्रजास्वस्तिकरिनुरगरथाश्वाप्तिकादिसंपत्
स्वास्थकानि— पुत्र पशु धन धान्य प्रजा क्षेम हाथी घोड़े रथ पालकी आदि ऐश्वर्यके साधनोंकी सिद्धि करनेके उपाय ।

६ सान्त्वमस्त्वम्–मनतामें ऐक्य मिलाप प्रेम एकता आदिकी स्थापना के उपाय।
७ राजकर्म — राजके लिये करनेयोग्य कर्म।
८ शत्रुत्रासनम्—शत्रुको कष्ट पहुचानेका उपाय।
९ संग्रामविजयः— युद्धमें विजय संपादन करना।
१ सङ्कल्पविचारणम्— शत्रुओंके संकल्पोंका निवारण करना।
११ परसेनामोहनोद्वजनस्तंभनोत्त्रासनादीनि — शत्रुसेनामें मोह भ्रम उत्पन्न करना उनमें उद्वेग भय-उत्पन्न करना उनको इकट्ठेपनसे रोकना उनको उखाड देना आदिका उपाय।
१२ स्वसेनोत्साहपरिरक्षणामयर्णानि— अपनी सेनाका उत्साह बढाना और उसके विभेद करना।
१३ संग्रामे जयपराजयपरीक्षा— युद्धमें जय होगा या पराजय होगा इसका विचार।
१४ सेनापत्यादिप्रधानपुरुषकर्मणीनि — सेनापति मंत्री आदि मुख्य योद्धेदेशरक्षकोंके विभागका उपाय।
१५ परसेनासंचरणम्— शत्रुकी सेनामें संचार करके गुप्त रीतिसे सब ज्ञान प्राप्त करना और वहांके अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको दूर करना।
१६ शत्रूच्चाटनस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशनम्— शत्रु राजा। उसके राज्यसे अपने राजाको पुनः स्वराष्ट्रमें स्थापन करनेके उपाय।
१७ पाशुबन्धकर्म–पशुके बांधनेका कर्म करना।
१८ गोऽश्वमृद्विहविपुष्टिकरणानि–गौ बैल आदिकोंका संवर्धन और पुष्टिका पोषण करना।
१९ गृहसम्पत्करणानि–घरमें शोभा बढानेके कर्म।
२ भैषज्यानि — रोगनिवारक औषधियां।
२१ मणिबन्धनादि कर्म —(सब संस्कार)
२२ सभाजयसमासदम्— सभामें जय विवादमें जय और कलह शांत करनेके उपाय।
२३ दुर्हितासादनम्— शत्रुके समक्ष दुष्टि करनेका उपाय।
२४ उत्थानकर्म — शत्रुपर चढाई करना।
२५ बलिप्रदानम्— बलि विजय आदिमें दान।
२६ अभिमोचनम्— बंध उतारना।
२७ अभिचारनिवारणम्— मारणसे अपना बचाव करना।
२८ अभिचारः — शत्रुके मारणका उपाय।
२९ स्वस्त्ययनम्— सुखसे देवदेवांतरमें भ्रमण।
३ आयुष्यम्— दीर्घ आयुष्यके यत्न।
३१ यज्ञयाग आदि।

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अध्ययन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है। ये सब उपाय और कर्म मनुष्यमात्रके अभ्युदय निःश्रेयसके साधक होनेके कारण मानव जातिके लिये लाभदायक हैं इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। परन्तु यहां विचार इतनाही है कि ये सब विषय अथर्ववेदके सूक्तोंसे हम किस रीतिसे जानकर अनुभवमें ला सकते हैं। निःसंदेह यह महान् और गंभीर तथा कठिनसे ज्ञान होनेयोग्य विषय है। इसलिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग देंगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है और पुनः विषय अधिक कुछ लिखा जा सकता है। क्योंकि किसी एक मनुष्यके प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी समझ होना प्रायः असंभव ही है।

(४) मनका संबंध।

अथर्ववेदद्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकाग्रतासे उत्पन्न हुए सामर्थ्यसेही किये जाते हैं क्योंकि आत्मा मन बुद्धि चित्त, अहंकार आदि अंतःकरणोंसे ही अथर्ववेदका विशेष संबंध है इस विषयमें देखिये —

मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्वञ्चं पक्षं संस्करोति
(शांखायन श्रौ ३।१२)

ब्रह्माका अन्वा विद्वान् पक्षं संस्करोति। मनसैव ब्रह्मा संस्करोति व (ऐतरेय आ ५।३३)

अर्थात् ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद द्वारा यज्ञपर संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है।" मनुष्यमें वाणी और मन ये दो मुख्य दो पक्ष हैं। इन दोनोंसे ही मानवी उन्नतिके साधक अभ्युदय नि श्रेयस विषयक कर्म होते हैं।

शरीरके रोग दूर करना से अथवा दुष्ट शत्रु विघ्न संहार करना हो तो ये सब कर्म मनोबलसे ही हो सकते हैं। इसी लिये अथर्ववेदके मनःसंशिति अभिसंधि द्वारा उक्त कर्म और विविध पुरुषार्थ सिद्ध करनेके उपाय बताये हैं।

(५) शांतिकर्मके विभाग।

समाज तथा राष्ट्रमें शांति स्थापन करना अथर्ववेदका मुख्य विषय है। वैमनस्य शत्रुता द्वेष आदि भावोंको दूर करके मित्रता एक विचार, समानचित्तता आदिकी वृद्धि करना अथर्ववेदका साध्य है। इसी कार्यकी सिद्धि के लिये अथर्ववेदका शांति प्रकरण है। इस प्रकरणमें कई प्रकारकी शांतियां हैं जिनका थोडासा वर्णन यहां करना उचित है —

१ मूषाक विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति ।
२ अनुपम प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शांति ।
३ अग्न्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आग्नेयी शांति ।
४ रोगादि निवृत्तिके लिये मार्जाली शान्ति ।
५ ब्रह्मवर्चस– ज्ञानका तेज प्राप्त करनेके मार्गमें आने वाले विघ्न दूर करनेके लिये नाड़ी शान्ति ।
६ राजलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अर्थात् ज्ञान और प्राण तेज की वृद्धि करनेके लिये वाईस्पत्य शान्ति ।
७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु अन्न आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति ।
८ वृद्धि करनेके लिये सावित्री शान्ति ।
९ ज्ञानसम्पन्नताके लिये गायत्री शान्ति ।
१ पशादि ऐश्वर्य प्राप्ति करने अथवा होनेवाला भय दूर करने और अपने सबको उन्नत होनेके लिये अदितिरसी शान्ति ।
११ परचक्र दूर हो और अपने राष्ट्रका विजय हो तथा अपना बल अपनी पुष्टि और अपना ऐश्वर्य बढ़े इसलिये ऐन्द्रि शान्ति ।
१२ राज्यविस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति ।
१३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढ़े इस लिये करनेयोग्य कौबेरी शान्ति ।
१४ दिव्य तेज धन और आयु बढ़ानेवाली अदितिज्या शान्ति ।
१५ अकाल विपुलता करनेवाली वैश्वकर्मी शान्ति ।
१६ वैभव प्राप्त करानेवाली तथा वस्तु संस्कारपूर्वक प्रहारादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोष्पत्या शान्ति ।
१७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टोंसे बचानेवाली रौद्री शान्ति ।
१८ विजय प्राप्त करानेवाली अपराजिता शान्ति ।
१९ मृत्युका भय दूर करनेवाली धात्या शान्ति ।
२ अकालभय दूर करनेवाली कारुणी शान्ति ।
२१ वायुभय दूर करनेवाली वायव्या शान्ति ।
२२ दुष्कृत्य दूर करनेवाली और पुण्यवृद्धि करनेवाली सन्तति शान्ति ।
२३ धनादि भोग बढ़ानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली त्वाष्ट्री शान्ति ।
२४ शत्रुओंको हटपुट करके उनको अपनेपनसे बचानेके लिये सौमारी शान्ति ।
२५ दुर्गतिसे बचानेके लिये वैश्वदेवि शान्ति ।
२६ धनवृद्धि करनेवाली मारुतगणी शान्ति ।
२७ योद्धाओंकी अभिवृद्धि करनेके लिये गान्धर्वी शान्ति ।
२८ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति ।
२९ भूमिके संबंधी कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति ।
३ सब प्रकारका भय दूर करनेवाली अभया शान्ति ।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तियां अथर्ववेदसे सिद्ध होती हैं । इनके नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे तो उनको पता लग जावेगा कि मनुष्यका जीवन सुखमय करनेके लिये ही इनका उपयोग निःसंदेह है । वेदमंत्रोंका मनन करके प्राचीन ऋषि मुनि अपनी उन्नति की विधाएं किस रीतिसे सिद्ध करते थे इसको कुछ इन शान्तियोंका विचार करनेसे भी सकती है । कई शान्तियोंके नामोंसे पता लग सकता है कि किस आपत्तिको दूरसे किस शांतिकर्मकी उत्पत्ति हुई । यदि वैदिक धर्म और उसमें फिर अपने जीवनमें श्रद्धा है तो पाठकोंको भी इसी दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है ।

विविध हवियां याग पशु मेध आदिको जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त बातकी सिद्धता करनेके लिये ही है । इन सबका विचार कैसा है और इनकी सिद्धि किस रीतिसे की जा सकती है इसका यथामति विचार आगे किया जावेगा । परन्तु यहां निवेदन है कि पाठक भी अपनी बुद्धिसे इस दृष्टिसे काममें आवें और जो खोज होवी वह प्रकाशित करें । क्योंकि अनेक बुद्धियोंके एकत्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रकट हो सकती है अन्यथा इसके प्रकट होनेका कोई संभव नहीं है ।

(६) मन्त्रोंके अनेक उद्देश ।

अथर्ववेदके आरंभसे मन्त्रोंसे इसने विविध धर्म किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं यह स्पष्ट पता लग सकता है । इसके उत्तरमें निवेदन है कि वेदके मन्त्र और सूक्त अनेक मुख " होते हैं अर्थात् एकही सूक्त और एकही मन्त्रसे अनेक उद्देश्योंकी सिद्धि होती है । मंत्रका उच्चारण एक भाग वस्तुतः है अंतरंग गूढ़ आशय कुछ विशेष उपदेश देता है अन्य अर्थ प्रसंगार्थ आदि अनेक रीतिसे अनेक उपदेश प्रकट होते हैं । इस कारण एकही मंत्र और एकही सूक्त अनेकविध उपदेश देते हैं और इस कारण अनेकानेक विधाएं और अनेकानेक धर्म वेदसे प्रकट होते हैं और इन सबके द्वारा मनुष्यके ऐहिक और पारमार्थिक सुखवृद्धिके साधन सिद्ध हो सकते हैं ।

(७) सूक्तोंके गण ।

अथर्ववेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम " अथर्व पञ्च अपराजित पञ्च सांग्रामिक पञ्च " इस प्रकार अनेक हैं। प्रथम काण्डमें अपराजित पञ्चके सूक्त निम्न-लिखित हैं—

१ विद्मा शरस्य पितरं	(१ । २)
२ मा नो विदन् वि व्याधिनः •	(१ । १९)
३ नदारस्त्रजवतु वेद	(१ । २)
४ स्वस्तिदा विशां पति-	(१ । ३१)

इसके पश्चात् पञ्चकाण्डमें अपराजित पञ्चके सूक्त निम्नलिखित हैं—

५ अब सस्तुः	(५ । १५)
६ विहंस्ता वधुः	(५ । २२)
७ परिवल्मीनि	(५ । ३०)
८ अभिसूर्पहः	(५ । २७)
९ इन्द्रो अयाति	(५ । ९८)
१ अभि त्वेन्द्र	(५ । ९९)

कौनसा सूक्त किस गणमें है यह समझनेसे उसका अर्थ करना उसके अर्थका मनन करना और उससे लाभ लेना बड़ा सुलभ हो सकता है। तथा पर्यायोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी सुलभ हो जाता है। इसलिये इस पर्यायका विचार वेद पढ़नेके समय अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये। हम आगे बतलायेंगे कि कौनसा सूक्त किस वर्गमें आता है और उसका परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है।

पूर्वोक्त जातियोंमें भिन्न भिन्न शान्तियोंका संबंध रहनेसे उन शान्तिकर्मोंके साथ अपराजित पञ्चके मंत्रोंका संबंध है इस एक पक्षसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं। एक एक पञ्चके विषयमें इस स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका अधिक विचार आगे करेंगे। उसका अनुसंधान पाठक करें इसी लिये यह बात यहां बतलायी है।

अब इन सब पर्यायोंका विचार ही आवश्यक एवं ही वेद की शिक्षा प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ सम्बन्ध नहीं रखते अर्थात् वे स्वतंत्र हैं अथवा उनका सम्बन्ध पञ्चसूक्तोंके समान किसी अन्य सूक्तोंसे नहीं है।

'स्वतंत्र-सूक्त' और " अब सूक्त इनका विचार करनेके समय स्वतंत्र सूक्तोंके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र रीतिसे करना चाहिये और पञ्चसूक्तोंके मंत्रोंका मनन संपूर्णपर्यायोंके संबंध-का विचार करके ही करना चाहिये।

(८) अथर्ववेदका महत्त्व ।

ऋग्वेदसे ज्ञान यजुर्वेदसे उत्तम कर्म और सामवेदसे उत्तम पुरुषकी उपासना इन तीन बातोंका आम्नाय होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान और मुक्ति प्राप्त करनेके मार्ग बतलानेका कर्म अथर्ववेद करता है। इस कारण इसको " ब्रह्मवेद " अथवा आत्मवेद " भी कहते हैं।

उत्तम ज्ञान प्रशस्त कर्म और उत्तम पुरुषकी उपासना द्वारा अन्तःशुद्धि होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान संभवनीय है इसलिये यह पूर्वोक्त वेदत्रयीके भिन्न यह चतुर्थ वेद कहा जाता है।

उपासक लोग आत्माको अपनेमें ढूंढते ढूंढते थक गये उस समय उनको साक्षात्कार हुआ कि आत्माको अपनेमें क्यों ढूंढते हो ! वहां जाओ और अपने पासही उसे ढूंढो ! "

अथार्थोऽनेनमेवात्मानमेवाऽऽत्मानमिच्छेति तस्मादयमात्मेदमर्थोऽनेन मेवात्मानमात्मानमिच्छेति तस्मादथर्वाऽभवत् ॥

(गोपथ-ब्राह्मण १–२)

" अब पासही उसे ढूंढो ! यह पासही है। यह बात इस अथर्व [अथ+अथाक्=अथर्वा (कृ)] वेदने कही इसी लिये इसका नाम अथर्ववेद हुआ है। यह गोपथ ब्राह्मणका कथन अथर्ववेदका प्रयोजन बतलाता है इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें कर रहा है। आत्माका पता अपने पासही लगता है यह बतलाना अथर्ववेदके ही अनुरोधमें है। इसी लिये इसका नाम ब्रह्मवेद " है क्योंकि यही आत्मका ज्ञान बताता है।

अथ शब्द मंगलतात्पर्य वाचक है। और अ-थर्व शब्द क्षतिका अथवा एकाग्रताका द्योतक है। आत्मानुभव अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार जो होता है वह चित्तकी चंचलता हटनेके पश्चात् और चित्तवृत्तिनिरोध होकर उसमें शांति आनेके पश्चात् ही होता है। यह आत्मज्ञानके मार्गकी सूचना इस प्रकार अपने नामसे ही इस अथर्ववेदने बता दी है। वेदके वाक्योंका महत्त्व पाठक यहीं देख सकते हैं।

अथर्वन् " (अथ+अर्वन्) इस शब्दका अर्थ अब इस ओर ऐसा होता है। जगत्में दो पदार्थ हैं एक मैं और दूसरा मेरेसे भिन्न संपूर्ण जगत्। हरएक मनुष्य समझता है कि मेरेसे भिन्न पदार्थोंसे ही सुखमें क्षति आती है मैं स्वयं असंग हूं और क्षति दूसरोंसे प्राप्त होती है। इस सर्वसाधारण विचारसे भिन्न परंतु अत्यंत सत्य विचार जो अथर्ववेद जगत्के सम्मुख रखना चाहता है, वह यह है कि " अब क्षतिके लिये अपनी ओर ही देखो। सब जगत्में यह नियम देखो

कि वृद्धि अंदरसे होती है वह अंदरसे बढ़ते हैं बाहरके अंदर से बढ़ते हैं अर्थात् शक्तिकी वृद्धि अंदरसे हो रही है इस-लिये अपने अंदर अपनी ओर देखकर विचार करो । बाह्य वस्तुमें न देखते हुए परन्तु उसके साथ अपनी शक्तियोंका जोड़कर अपनी उन्नतिके हेतु अपने अंदर देखो शक्ति अपने अंदर है न कि बाहर है। यह अध्यवसायकी शिक्षा आयत महत्वका है ।

इस अथर्ववेदका स्वाध्याय करना है । अथर्ववेद होनेके कारण यह वेद सूक्ष्म रीतिसे समझना कठिन है इसलिये इस वेदके जितने मंत्र समझमें आवेंगे उनका ही स्वाध्याय करना है। जिस का ठीक प्रकार ज्ञान नहीं हुआ उसके विषयमें हम कुछ भी नहीं लिखेंगे। तथा जो मंत्र स्वाध्यायके लिये यहां लेंगे उनके विषयमें पीछेसे आये हुए भाष्योंमेंसे जो कुछ लिखना है। वह लिखेंगे अर्थात् बहुत विस्तार नहीं करेंगे । परन्तु यहांतक हो सके वहां तक कोई बात संदिग्ध नहीं छोड़ेंगे । इससे स्वाध्याय करने वालोंको बड़ी सुविधा होगी ।

अथर्ववेद ।

प्रथम-काण्ड ।

इस प्रथम कांडमें छः अनुवाक पैंतीस सूक्त और १५१ मंत्र हैं।

१ प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं, तीसरे सूक्तमें ९ मंत्र हैं, शेष पांच सूक्तोंमें प्रत्येकमें चार चार हैं। इस प्रकार इस अनुवाकमें २९ मंत्र हैं।

१ द्वितीय अनुवाकमें (७ से ११ तक) पांच सूक्त हैं। सप्तम सूक्तमें ७ और नवमेंमें ६ शेष तीनमें प्रत्येकमें चार चार मंत्र हैं। इस प्रकार कुल २५ मंत्र हैं।

१ तृतीय अनुवाक और पंचम अनुवाकमें (१२ से १८ तक सूक्त) के प्रत्येक सूक्तमें चार मंत्रवाले क्रमशः पहले पांच और छत सूक्त हैं। इन तीनोंकी मंत्रसंख्या ९८ है।

४ षष्ठ अनुवाकमें सात (१९ से २५ तक) सूक्त हैं। १९ वें सूक्तमें छः मंत्र और २४ वें में पांच मंत्र हैं, शेषमें चार चार हैं। इस प्रकार कुल मंत्रसंख्या ३१ है।

इस ३५ सूक्तोंमें चार मंत्रवाले सूक्त १७ हैं पांच मंत्रवाले एक छः मंत्रवाले दो सात मंत्रवाला एक और दो मंत्रवाले एक है। यह सूक्त और मंत्रविभाग देखनेसे पता लगता है कि यह अथर्ववेदका प्रथम काण्ड प्रधानतया चार मंत्रवाले सूक्तोंका ही है। इसका प्रथम सूक्त यह है इसमें वृष्टि बढानेका विषय कहा है जिसका नाम "मेधा-जनन" है-

मेधाजनन ।

(१) बुद्धिका सवर्धन करना ।

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—वाचस्पतिः ।)

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो३ऽद्य दधातु मे ॥१॥

अन्वय – विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ये त्रि-सप्ता परियन्ति तेषां तन्वः बला वाचस्पतिः अद्य मे दधातु ॥१॥

अर्थ– सब रूपोंको धारण करके जो तीन-गुणा-सात पदार्थ सर्वत्र व्याप्त हैं उनके शरीरके बल वाणीका स्वामी आज मुझे देवे ॥१॥

पदार्थ दो प्रकारके हैं एक रूपवाले और दूसरे रूपरहित। आत्मा परमात्मा रूपरहित हैं और संपूर्ण जगत् रूपवाले पदार्थोंसे भरा है। पदार्थोंके विविध रूप जो मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति पाषाण आदि में दिखाई देते हैं-कौन धारण करता है ये रूप कैसे बनते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें वेद कह रहा है कि जगत्के मूलमें जो सात पदार्थ पृथ्वी आप तेज वायु आकाश तन्मात्र और अहंकार-हैं ये ही संपूर्ण जगत् में दिखाई देनेवाले विविध रूप धारण करते हैं। ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओंमें गुजरते हुए जगत्के रूप और आकार धारण करते हैं। (१) सत्त्व अर्थात् शमावस्था (२) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था और (३) तम अर्थात् पतिहीन अवस्था इन तीन अवस्थाओंमें पूर्वोक्त सात पदार्थ गुजरनेसे इक्कीस पदार्थ बनते हैं जो संपूर्ण सृष्टिका रूप धारण करते हैं।

सृष्टिके हरएक आकारवाले पदार्थमें यही शक्ति है। हमारा शरीर भी सृष्टिके अंतर्गत होनेसे एक रूपवान पदार्थ है और इसमें भी पूर्वोक्त "तीन गुणा सात" पदार्थ हैं। और इसी कारण शरीरके अंदरके इन इक्कीस तत्त्वोंका संबंध बाहर जगत् के पूर्वोक्त इक्कीस तत्त्वोंके साथ है। शरीरका स्वास्थ्य या ऐसीपन इस संबंधके ठीक होने और न होनेपर अवलंबित है।

शरीरान्तर्गत इन तत्त्वोंको बाह्य जगत्के तत्त्वोंके साथ योग्य संबंध रखने द्वारा अपना आरोग्य स्थिर करके अपना बल अखंड बनानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा यहां मिलती है। जैसे बाघ हाथ वगैरे अपने शत्रुसे अपना प्राणरक्षण बल आदि सर्व प्रकारसे अपने क्षेत्र का बल इसी प्रकार अन्यान्य बल बढ़ा कर अपनी शक्ति पराकाष्ठातक बढ़ानी चाहिये। यह अथर्ववेदका मुख्य विषय है।

जगत्का तत्त्वज्ञान पाकर जगत् का अपने साथ संबंध अनुभव करके अपना बल बढ़ानेकी विद्याका अभ्यास करके उसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह उद्धतिका मूल मंत्र इस प्रथम मंत्रमें बताया है। यहां प्रश्न होता है कि यह विद्या कौन दे सकता है? उत्तरमें मंत्रने बताया है कि वाचस्पति ही उच्च ज्ञान देनेमें समर्थ है।

वाचस्पति कौन है? वाक् वाचू वाणी वक्तृत्व उपदेश व्याख्यान ये समानार्थक शब्द हैं। वक्तृत्व करने वाला अर्थात् उत्तम उपदेशक गुरु ही यहां वाचस्पतिसे अभिप्रेत है। इस अर्थको लेनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होगा

मूल सात तत्त्व तीन अवस्थाओंसे गुजर कर सब जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाते हुए सर्वत्र फैले हैं। इनके बलोंको अपने अंदर धारण करनेकी विद्या व्याख्याता गुरु आजही मुझे बतावे।

अथर्ववेदकी पिप्पलाद-संहिताका पाठ ऐसा है—

"ये त्रिषप्ताः परियन्ति । तेषां तन्वमन्वाभरामि मे ॥

इसका अर्थ निम्न प्रकार होता है जो मूल सात तत्त्व तीन अवस्थाओंमें गुजरकर सब जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाते हुए सर्वत्र (परियन्ति) घूमते हैं व्याख्याता गुरु ही आज उनके बलोंको मेरे (तन्वं) शरीरमें (अभ्याभरामि) धारण कराये अर्थात् धारण करनेके उपाय बतावे।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूमे आर्द्रा इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

अन्वय — हे वाचस्पते! देवेन मनसा सह पुनः एहि। हे वसोष्पते! निरमय। श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ २ ॥
ज्यया इव आर्द्रा इह इह एव उभौ अभि वि तनु। वाचस्पतिः नि यच्छतु। श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ- हे वाणीके स्वामी! दिव्य मनके साथ सन्मुख आओ। हे धनुर्वेदके स्वामी! मुझे आशीर्वाद करो। पढ़ा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे ॥ २ ॥

डोरीसे धनुष्यकी दोनों कोटीयोंकी तरह यहांही (दोनोंको) तानो। वाणीका पति निश्चयसे बांधे। पढ़ा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे।

इस मंत्रमें प्रारम्भमें ही पुनः शब्द है। इसका अर्थ बारबार पुनः पुनः अथवा सतत है। शिष्य शिक्षाकी एक ओर और गुरु दूसरी ओर होता है, इसलिये गुरु शिष्यके सम्मुख और शिष्य गुरुके सम्मुख होते हैं। इन दोनोंको इसी प्रकार रहना चाहिये। यदि वे परस्पर सम्मुख न रहे तो पढ़ाई असम्भव है।

गुरु (देवेन मनसा) दैवी मानसासे युक्त मनसेही शिष्यके साथ व्यवहार करे। मन दो प्रकारके है-एक दैव मन और दूसरा राक्षस मन। राक्षस मन जगत् में सर्वत्र कलह करता है और देव मन जगत्में शांति रखता है। गुरु देवमनसे ही शिष्यको पढ़ाये।

गुरु शिष्यको (नि रमय) रमवाण करे अर्थात् ऐसा पढ़ाये कि जिससे शिष्य आनंदके साथ पढ़ता जाय। इस शब्दके द्वारा पढ़ाईकी रमण पद्धति बतलाई है। इसीसे मिश्र रोदन पद्धति " है जिसमें रोते हुए शिष्य पढ़ाये जाते हैं।

गुरुके दो गुण इस मंत्रमें बतलाये हैं। एक गुण (वाचस्पतिः) अर्थात् वाणीका प्रयोग करनेमें समर्थ शिष्यको विद्या देनेमें निपुण उत्तम वक्ता। तथा दूसरा गुण (वसोष्पति) वसुर्वाक्ष पति अर्थात् अस्त्रादि पदार्थोंका प्रयोग करनेमें निपुण शब्दों द्वारा (Theoretical) ज्ञान जो कहेगा उसको वस्तु योंद्वारा (Practical) साक्षात् अनुभव करा देनेमें समर्थ गुरु होना चाहिये।

शिष्य भी ऐसा हो कि जो (मयि श्रुतं अस्तु) अपनेमें ज्ञान स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला हो। अर्थात् सिखसे पढ़नेवाला और सच्चा (शिक्षार्थी-शिक्षा+अर्थी) विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला हो।

इन अर्थोंको ध्यानमें धरनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होता है—

हे उत्तम उपदेश करनेवाले गुरु! देव मनसे युक्त मनसे ही शिष्यके सम्मुख आ। हे अस्त्रादि धनुर्वेदके प्रयोग करनेवाले गुरु! तू शिष्यको रमाता हुआ उसे विद्या पढ़ाओ। शिष्य भी कहे कि पढ़ा हुआ ज्ञान मुझमें सदा स्थिर रहे ॥

अथर्ववेद विष्यवार-संहितामें मंत्रका प्रारंभ 'सह देव' शब्दसे होता है और 'वसोष्पते' के स्थानपर "वसोष्पते" पाठ है। वसुपति (वसोः पति) का अर्थ वाणीका पति पुरु। वाणीका पति अर्थात् योगादि साधनद्वारा वाणीको स्वाधीन रखनेवाला उत्तम योगी गुरु हो। यह मन्त्र भी पुरुष इस उत्तम अर्थका बता रहा है।

धनुष्यकी दोनों कोटियोंमें डोरीसे तनी रहती है इस तनी हुई अवस्थामें ही धनुष्य विजयका साधन हो सकता है। जिस समय दोनों कोटियोंसे डोरी ढीली हो जाती है उस समय वह धनुष्य धनुषत्व या विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ हो जाता है। इसी प्रकार जाति या समाजरूपी धनुष्यकी दो कोटियां गुरु और शिष्य हैं इन दोनोंको विद्यारूपी डोरी बांधी गयी है और इस डोरीसे वह धनुष्य तना हुआ अर्थात् अपने कार्यमें सिद्ध रहता है। समाजको वह धनुष्य सदा सिद्ध रखना चाहिये। इसीसे सिद्धतासे जाति स्थायी या दृढ़ बनती, चमकती और उन्नत रहती है। जिस समय विद्यारूपी डोरी गुरु शिष्यरूपी धनुष्यसे ढीली हो जाती है उस समय अज्ञान-धूल इस देशके कारण जाति पतित हो जाती है।

(वाचस्पति) उत्तम वक्ता गुरुही स्वयं (नि रमय) विजयमें चले और शिष्योंको विजयके अनुसार चलाये। गुरु-शिष्य आचार्यकुल अथवा विद्यालयादि संस्थाएं उत्तम विजयोंके अनुसार चलायी जांय। वहां स्वेच्छा विहार न हो।

शिष्य प्रसन्न रहें और पढ़ा हुआ ज्ञान अपने अन्दर सदा

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्। सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥ ४ ॥

अन्वय— वाचस्पतिः उपहूतः। वाचस्पतिः अस्मान् उपह्वयताम्। श्रुतेन सङ्गमेमहि। श्रुतेन मा वि राधिषि। ॥ ४ ॥

अर्थ— वाणीका स्वामी बुलाया गया। वह वाणीका स्वामी हम सबको बुलावे। ज्ञानसे हम सब युक्त हों। हम ज्ञानके साथ कभी विरोध न करें ॥ ४ ॥

स्थिर रखनेके लिये अति दृढ़ रहें। पहिले पढ़ा हुआ ज्ञान स्थिर रहा तो ही आगे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह भाव ध्यानमें धरनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होता है—

" जिस प्रकार डोरीसे धनुष्यकी दोनों कोटियां खिंचने के लिये तनी होती हैं उसी प्रकार गुरु और शिष्य ये समाजकी दो कोटियां विद्यासे सज्ज रखिये। आचार्य स्वयं नियमानुसार चलें और शिष्योंको नियमानुसार चलावें। शिष्य अध्ययन किया हुआ ज्ञान दृढ करनेके लिये आगे कहे ॥

' उपहूत " का अर्थ बुलाया बुलाए आह्वान किया अथवा पूछा गया " है। उत्तम व्याख्याता गुरुको हमने बुलाया और उससे प्रश्न पूछे गये अर्थात् विषयका व्याख्यान करनेके लिये उसे आह्वान किया गया है। गुरु भी शिष्यके प्रश्न सुनकर उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर देकर उनका समाधान करे। अर्थात् गुरु कोई बात शिष्यसे छिपाकर न रखे। इस प्रकार दोनोंके परस्पर प्रेमसे विद्याकी वृद्धि होती रहे।

हरएक अपने मनमें यह इच्छा रखे कि हम सब ज्ञानसे युक्त हों ज्ञानकी वृद्धि करते रहें और कभी ज्ञानकी प्राप्तिमें बाधा न डालें ज्ञानका विरोध न करें और मिथ्या ज्ञानका प्रचार न करें।"

इस स्पष्टीकरणका विचार करनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है-

" हम सब व्याख्याता गुरुसे प्रार्थना करते हैं। वह हमें योग्य उत्तर देवे। इस [प्रश्नोत्तरकी रीतिसे हम सब] ज्ञानसे युक्त होते रहें और कभी हममें ज्ञानकी उन्नतिमें बाधा उत्पन्न न हो।

मनन।

इस अष्टकके पहले सूक्तके ये चार मंत्र शिष्यके मुखमें रखे हैं इसका आधिदैवतसे तात्पर्य यह है—

" जो इन्द्रीय [पदार्थ जगत्की वस्तुओंके] आकार धारण करते हुए [सर्वत्र] फैले हैं उनकी शक्तियां मेरे [शरीरके अंदर स्थिर करनेकी विद्या] गुरु हमें सिखावे ॥ १ ॥ हे गुरु ! तू मनमें हमें संकल्प धारण करके हमारे सन्मुख आ हमें रमावे [दृढ़ पढ़ा] प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ २ ॥ डोरीसे दोनों धनुष्कोटियोंके तनावके समान यहां तू [विद्यासे हम दोनोंको] तना [कर बांध दे] गुरु नियमसे चले और हमें चलावे। ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हम गुरुसे प्रश्न पूछते हैं वह हमें उत्तर देवे। हम सब ज्ञानी बनें कोई भी ज्ञानका विरोध न करे ॥ ४ ॥

इस मंत्रोंका कितना मनन होगा इसपर कितना विचार होगा उतना ज्ञान बढ़ानेका उपाय- (मेधाजनन)- हो सकता है। आशा है कि पाठक इसका गंभीर विचार करें और अपनी परिस्थितिमें अपने ज्ञानकी वृद्धि करनेके उपाय सोचें। इसमें निम्न लिखित पांच बातोंका अवश्य विचार हो—

१ विद्या जिससे अधिक बढ़ता है उन सूक्ष्मतत्वोंका ज्ञान प्राप्त करना और उनका अपनी उन्नतिसे संबंध देखना तथा उसका अनुष्ठान करनेका विधि जानना यही सीखनेयोग्य विद्या है।

२ गुरु- उक्त विद्या सिखानेवाला गुरु (वाचस्पतिः) वाणीका उत्तम प्रयोग करनेमें समर्थ उत्तम रीतिसे विद्या पढ़ानेवाला हो (वनस्पतिः) अन्नादि सूक्ष्मतत्वोंका प्रयोग यथावत् करनेवाला हो (अधिपतिः) प्राप्तविद्याका ज्ञाता हो। पति" शब्द यहां प्रभुत्व" (mastership) का भाव बतलाता है।

३ पढ़ानेकी रीति—गुरु अपने (देवत्व मनसा) मनके शुभ संकल्पके साथ पढ़ावे। (निमय) समयबद्धतासे पढ़ाव शिष्योंका आदर बढ़ाता हुआ पढ़ावे। स्वयं (नि यच्छतु) नियमोंसे चले और शिष्योंको नियमोंसे चलावे। शिष्योंके प्रश्नों (उपश्रुत्या) धैर्यपूर्वक उत्तर देकर उनका समाधान करे।

४ शिष्य- शिष्य सदा यह अत्यंत इच्छा करे कि (मु न सं गमेमहि) हम ज्ञानी बनें (श्रुतं मयि अस्तु) ज्ञान हममें स्थिर रहे। तथा (श्रुतेन मा वि राधिषि) ज्ञानका विरोध कभी न करें।

विजय-सूक्त ।

(२)

यह " अपराजित यज्ञ का प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि अथर्वा' और देवता 'पर्जन्य'है ।

विद्या ह्यस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्मो ह्यस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥
न्यङ्ङिव परि सो नमाश्मानं तन्वं कृधि । वीरुद्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥
वृषं पयावः परिष्वजाना अनुस्फुरं ह्यरमर्वन्त्यभ्रम् । अरंगमस्मायावय निम्नमिन्द्र ॥३॥
यथा द्यौश्च पृथिवी चान्तस्तिष्ठतु तेजनम् । एवा रायश्चाजाश्च चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

अर्थ—(ह्यस्य) इसका अर्थात् इस यज्ञका पिता (भूरि-धायसं पर्जन्यं) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पर्जन्य है यह (विद्म) हम जानते हैं । तथा (ह्यस्य) इसका माता (भूरि-वर्पसं) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें (विद्म) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे (त्वष्टः) माता ! (सः) हम सब पुत्रोंको (परि नम) परिक्त कर अर्थात् हमारे (तन्वं) शरीरको (अश्मानं) पत्थर जैसा दृढ (कृधि) कर (वीरुत्) वज्रवान बनकर (अ-रातीः) अदानके भावोंका तथा (द्वेषांसि) द्वेषोंको अर्थात् सब शत्रुओंको (वरीयः) दूर रीतिसे (अप कृधि) दूर कर ॥ २ ॥ (यत्) जिस प्रकार (वृषा) इसके साथ (परिष्वजानाः) लिपटी हुई या बंधी हुई (गावः) गौएं अपने (वत्सं) बछडे को (अनुस्फुरं) पुचकारके साथ (अभ्यर्षन्ति) चाहती हैं उसी प्रकार हे इन्द्र ! (अस्मत्) हमसे (निम्नं वत्सं) नेत्र पुत्र वाक्को (पयावः) दूध पिता ॥ ३ ॥ जिस प्रकार (द्यौ) द्युलोक और पृथ्वीके (अन्तः) बीचमें (तेजनं) तेज (तिष्ठति) होता है, (एव) इसी प्रकार यह (मुञ्जः) मुंज (रायः च अजाश्वाः च) रोग और बकरे (अन्तः) बीचमें (इत् तिष्ठतु) निश्चयसे रहे ॥ ४ ॥

भावार्थ- धारण-पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पर्जन्य है कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे घर-संसारका पुत्र उत्पन्न होता है । ॥ १ ॥ माता पुत्रके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार इसके साथ बंधी हुई गौएं अपने बछडे को वेगसे प्राप्त करना चाहती हैं उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज घर हमसे आगे बढे ॥३॥ जिस प्रकार द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रकाश होता है, उसी प्रकार रोग और बकरे-के बीचमें घर ठहरे ॥ ४ ॥

---

५ गुरु शिष्य सब मनुष्यके दोनों लोक जिस प्रकार वेदोंसे बने रहते हैं उस प्रकार विद्यारूपी वेदोंसे समाजके गुरु-शिष्य-रूपी दोनों लोक एक दूसरेसे पूर्णतया सुसंबंध रहें । कभी उसमें वियोगपन न आजावे ।

यह सब सूक्त शिष्यके मुखद्वारा उच्चारित होनेके समान है इससे अनुमान होता है कि गुरुके आने रहने आदिके प्रबंधादि सबका उत्तरदायित्व शिष्यों या शिष्योंके संरक्षकों पर ही पूर्ण रहता है ।

अनुसंधान

इस प्रथम सूक्तमें "मेधाजनन अर्थात् बुद्धिका उत्पादन करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुरु शिष्य तथा विद्यालय आदिका प्रबंध किस रीतिसे करना चाहिये पुत्र शिष्य प्रकार पढाई शिष्य किस ढंगसे पढे और दोनों मिलकर पढाई उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार किया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढाई शुरू होती है जिसमें अथर्व-वेदका प्रथम सूक्त विद्या वरस्य पितरं यह है । अथर्व-वेदमें यह द्वितीय सूक्त है । तृतीय सूक्त भी इसी वाक्यसे प्रारंभ होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार अब करेंगे ।—

यह भावार्थ भी परिपूर्ण नहीं क्योंकि इस मंत्रोंके उत्तरके आगे पीछेका संबंध देखकर जो अर्थ व्यक्त होता है वह जानकर ही मंत्रोंका तथा भावार्थ जानना चाहिये । यह बात

देखनेके लिये आवेका स्पष्टीकरण देखिये—

(१) वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्तमें पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बताये हैं—

१ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो (मंत्र १)
२ शरीर बलवान बनाया जावे (मंत्र २)
३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे (मंत्र २)
४ धरतीमें कुर्ती जाई जावे (मंत्र ३)
५ जगत्में अपना तेज पैदाकरके पाप किया जावे (मंत्र ४)
६ शोकों से रोगोंको दूर किया जावे (मंत्र ४)

पाठक विचारकी दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करेंगे तो उनको उक्त छः प्रकार वैयक्तिक उन्नतिके साधन पूर्वोक्त चारों मन्त्रोंके अन्दर गुप्तरूपसे दिखाई देंगे । इनका विशेष विचार होनेके लिये यहां मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पष्टीकरण दिये जाते हैं—

(२) पिताके गुण धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं- पिता पर्जन्य भूरिधायस् वृद्ध वो।।" इनके अर्थोंका ज्ञान होनेसे पिताके गुण धर्म-कर्मोंका बोध हो सकता है, इसलिये इनका आशय देखिये—

१ पिता- (माता) रक्षक संभालनेवाला ।
२ पर्जन्यः- (पूर्ति+जन्यः) पूर्ति करनेवाला पूर्णता करनेवाला । न्यूनताको दूर करनेवाला ।
३ भूरिधायस्— (भूरि) बहुत प्रकारसे (धायस्) धारण पोषण करनेवाला दाता उदारचरित ।
४ वृद्धः- आचार स्वयं भूप बहकर दूसरोंको क्षमा देनेवाला ।
५ द्यौः—प्रकाश देनेवाला अंधकारका नाश करनेवाला ।

सूक्ततः ये पांच शब्द हैं जो उक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म कर्मोंका प्रकाश कर रहे हैं । इनका आशय यह है " पिता ऐसा हो कि जो अपने पुत्रादिकोंका उत्तम पालन करे उनके अंदर जो जो न्यूनताएं हों उनकी पूर्णता करे अर्थात् अपनी शक्तिसे पूर्व उक्त गुणोंसे युक्त बनानेमें अपनी पराकाष्ठा करे, उनका हर प्रकारसे पोषण करे और उनको वृद्ध पुत्र तथा बलिष्ठ बनावे वह स्वयं कष्ट सहन करके भी अपनी संतान की उन्नति करे तथा अपने पुत्रों और अन्यजिनोंको ज्ञान देकर उनको उत्तम नागरिक बनावे ।"

(३) माताके गुण धर्म-कर्म ।

माता पृथिवी भूरिधर्पस् उक्षा गौ ये पांच शब्द पूर्वोक्त मन्त्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंको प्रकट कर रहे हैं । इनका अर्थ देखिये-

१ माता- बालकोंका हित करनेवाली ।
२ पृथिवी— क्षमाशील सहनशील पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली ।
३ भूरिधर्पसू- (भूरि) बहुत (धर्पस्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ कर्ममें अत्यन्त कुशल सदा कर्म करनेमें दक्ष परिवारकी उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली ।
४ उक्षा, उक्षाक्ष-(उक्षा-उक्षा) अमका सेचन करनेवाली माता पृथिवी रस्सी बलवाली ।
५ गौः- प्रगतिशीला दुग्धादिद्वारा पुत्रोंकी पुष्टि करनेवाली । किरण स्वर्ग रज वाणी सरस्वती माता अन्न नेत्र आकाश सूर्य आदिके लक्षणोंसे युक्त ।

माताके गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं । अर्थात्- बालकोंका हित करनेवाली क्षमाशील पुत्रोंकी उन्नतिके लिये करनेयोग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहनेवाली बहुतसी कुशलतासे अपने कुटुंबकी उन्नति करनेमें समर्थ बलशालिनी पृथ्वीके समान दुग्धादिद्वारा बालकोंकी पुष्टि करनेवाली किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली स्वर्गके समान सुखदायिनी रजके समान सरसे सोमा बढानेवाली क्षुद्र भावना करनेमें चतुर विदुषी, चक्षुके समान ज्योति बढानेवाली नेत्रके समान मार्ग दर्शानेवाली आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली माता होनी चाहिये।

पिताके गुणधर्मकर्म पहिले बताये और यहां माताके गुण धर्म बताये हैं । ये आदर्श माता पिता हैं इनसे जो पुत्र जैसा होगा और पाता तथा बनाया जायगा वह भी वैसा और पुत्री होगा तथा पुत्री भी उसी प्रकार वीरा बनेगी इसमें कुछ संदेह है ?

(४) पुत्रके गुण धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पुत्रके गुणधर्मकर्म बतानेवाले ये शब्द हैं- वरः अश्मा-तनुः वीडु तनुः वरः, रिपुः तेजर्व मुञ्च इनके अर्थ ये हैं—

१ वरः-(वृणोति) जो वस्तुका भाग कर सकता है ।
२ अश्मा तनुः—पत्थरके समान दृढ शरीरवाला ।
३ वीडुः बलिष्ठ वृद्ध ।

४ अमुः—बुद्धिमान्, हुशार कारीगर तेजस्वी।
५ सरः—सज्जुका बाण करनेवाला।
६ रंहुः तेजस्वी।
७ तेजनः—प्रकाशमान।
८ सुज्ञाः—(सुज्ञपति मार्जयति) शुद्धता और पवित्रता करनेवाला।

पुत्र ऐसा हो कि जो "धनुष्य बाण करनेमें समर्थ हो सुंदर अयवाला हो वह बुद्धिमान् हुशार कारीगर तेजस्वी यशस्वी और पवित्र आचारवाला हो। माता पिताको उचित है कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें ये गुणधर्म और कर्म बढ़ें और इन गुणोंके द्वारा पुत्रका यश फैले।

यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्वोक्त गुणधर्म जोड़ोंके युक्त मातापिता होने से उनके पुत्री और पुत्रियोंमें ये गुणधर्म आ सकते हैं।

(५) एक अद्भुत अलंकार

इस सूक्तमें बाण धनुष्य और जोड़ीके अलंकारसे एक महत्त्वपूर्ण बातका प्रकाश किया है। धनुष्यका संबंध बाण बिछड़कर कोई कमाई नहीं होती है यह पुरुषरूप धनुष्यके लिये मातारूप है और पुत्र बाणरूप है। पिताका बल और माताकी प्रेरणा इनसे युक्त होकर पुत्र संसारमें फेंका जाता है। वह संसारमें जाकर अपने धनुष्योंका बाण करके यशका भागी होता है। इस अलंकारका विचार पाठक करेंगे तो उनको बड़ाही बोध प्राप्त हो सकता है। पुत्रकी उन्नतिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकार से पाठकोंके मनमें आ सकती है।

जोड़ेके बिना केवल धनु जैसा अनुनाद करनेमें असमर्थ है वैसी प्रकार स्त्रीके बिना पुरुष असमर्थ है। तथा जिस प्रकार धनुके बिना कोई कार्य करनेमें असमर्थ है वैसी रीतिसे पुरुषके बिना स्त्री असमर्थ है। माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षाद्वारा सुशिक्षित बना पुत्रही जगत्में यशस्वी होता है। यह अलंकार पतिपत्नीको बड़ाही बोधप्रद हो सकता है।

पितरः सूनवः " पर्जन्य एव आदि शब्द तथा माताके सूनवः पृथिवी" आदि शब्द उनका अनुषंगिकत्व होकर ब्रह्मचारी होनेकी सूचना कर रहे हैं। [इस विषयमें स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित "ब्रह्मचर्य पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी पर्जन्य और इनके ब्रह्मचर्य प्रकरण अवश्य देखिये]

(६) कुटुम्बका विषय।

व्यक्तिकी उन्नतिके विषयमें पहिले बतलाया है कि वैयक्तिक विषय की सूचनाएं इस सूक्तमें किस रूपमें हैं। कुटुंबके या परिवारके विषयका संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा इसी अलंकारसे स्पष्ट हो सकता है। कुटुंबका विषय बाण पिताके उत्तम कर्तव्य पालन करने और सुयश निर्माण करनेसे ही प्राप्त होता है।

(मंत्र १) जैसा " अनेक प्रकारसे पोषण करनेवाला पर्जन्य पिता अनुयायी होकर वर्षा ऋतुमें अपने अनेकसी बीजोंका विविध उत्तम उपयुक्त भूमिमें करता है और करती विविधी वनस्पतियोंकी उत्पत्ति करता है, ' वैसा माता पिता अनुयायी होकर वीर पुत्र उत्पन्न करें।

(मंत्र २) हे अनेक साधन करनेवाली माता! अपने पुत्रोंका शरीर पत्थर जैसा दृढ़ बना जिससे पुत्र अनेक प्रकार अपने शत्रुओंको दूर कर सके।"

(मंत्र ३) — जिस प्रकार दृढ़के साथ बंधी हुई डोरी अपने तेज चलनेको चाहती है [उसी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने लिये तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे।] अथवा- (वृषे) धनुष्यके साथ रहनेवाली डोरी तेजस्वी (सते) बाण ही बनाये छोड़ती है। " [उसी प्रकार पतिकी उपासना करनेवाली स्त्री वीर पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे।] हे (इन्द्र) परम-

रमण ! हमसे तेजस्वी (वरः) बालक समान तेजस्वी पुत्र क्रमसे अपाद् उत्पन्न हो। [माता-पिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र हो कि जो दूर दूर जाकर जगत्में विजय प्राप्त करे।]

(मंत्र ७) –" जिस प्रकार [पिता] द्युलोक और [माता] पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [पुत्ररूपसे] रहते हैं " [उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी सुंदर बालक चमकता रहे।]" जैसा सूत्र घर रोग और बालके बालके बीचमें रहता है " अर्थात् सबको दूर करता है उसी प्रकार [यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग बालके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड़ दिये हैं, जिससे पाठकोंको पता लग जावेगा कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है। जातिके या राष्ट्रके विजयकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबकी सुस्थितिपर तथा सुप्रजा निर्माणपर ही अवलंबित है। जो लोग राष्ट्रकी उन्नति चाहते हैं वे अपनी उन्नतिकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबमें रखें। आदर्श कुटुंब-व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है।

(७) पूर्वापर सम्बन्ध

पहिले सूक्तमें विद्या पढ़ानेका उपदेश किया है। इस द्वितीय सूक्तसे पढ़ाईका प्रारंभ हो रहा है। विद्याका प्रारंभ बिलकुल साधारण बातसे ही किया गया है। बालको उत्पत्तिका विषय हरएक स्थानके मनुष्य जानते हैं। " जैसे पानी सिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है इसीप्रकार बालका पिता मेघ और माता भूमि है।' इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है। इतनी साधारण बातोंका उपदेश करते हुए "पिता-माता-पुत्र" इनी कुटुंबकी उन्नतिकी शिक्षा किस ढंगसे देने बतायी है यह पाठक यहां देख चुके हैं। घरके अंदर सुख या घर एक जातिका घास है। यह घर कभी स्वयं शत्रुका वध करनेमें समर्थ नहीं होता। क्योंकि कोमल रहता है। परंतु जब उसके साथ कठिन लोहेका संयोग किया जाता है और पीछे पर जमाये जाते हैं तब यही कोमल घरकेका मनुष्यघर बनकर लोगोंकी गति प्राप्त करके शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है। इसी प्रकार कोमल बालक गुरु घरमें कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य बालकरूपी कठिन वज्रसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिको एक मार्गमें रखता हुआ अपने कुटुंबके जातिके तथा राष्ट्रके शत्रुओंको मार देनेमें समर्थ होता है।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें मनुष्यकी उपमा देकर बताया है कि "गुरु शिष्यरूपी मनुष्यकी दो कोटियां विद्यारूपी दोनोंसे बनी हैं।' प्रथम सूक्तमें यह अलंकार मिल उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका मनुष्यका दृष्टांत मिल उपदेश दे रहा है। दृष्टांतमें एकदेशी बातको ही देखना होता है, इसलिये एक ही दृष्टांतसे मिल उपदेश देना कोई दोष नहीं है। प्रथम सूक्तके दृष्टांतमें भी द्योका स्थान पिता माता अर्थात् सरस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्व का सादृश्य है।

अपत्यमें इसके साथ बंधी हुई माय भी अपने बछड़ेका स्मरण करती रहती है गायका बछड़ेके ऊपर का प्रेम सबसे बढ़िया प्रेम है। इस प्रकारका प्रेम अपने बालकके विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये। अपना बालक अति तेजस्वी हो अति यशस्वी हो यही भावना माता मनमें धारण करे और इस भावनाके साथ यदि माता अपने बालकको दूध पिलावेगी तो उक्त गुण पुत्रमें कि संदेह उतरेंगे। इस विषयमें तृतीय मंत्र मनन करनेके योग्य है।

(८) कुटुम्बका आदर्श।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुंबका नमूना सम्मुख रखा है। पुत्रोंके पिता भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक इनका पुत्र है। अपने घरमें भी यही आदर्श होवे। आकाश और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक चमकता रहे। कितना उच्च आदर्श है; हरएक गृहस्थी इसका स्मरण रखें।

(९) औषधिप्रयोग।

सुत्र घास अपने रस आदिसे अनेक रोगों और अनेक दोषों-को दूर करता है, क्योंकि सुत्र शोधक, मृदुत्व तथा निर्मलता करनेवाला है। इसलिये स्पष्ट है कि यदि शोधकता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बढ़ाया जाय तो रोगादि दूर दूर करते हैं। हरएकके लिये यह सूचना अवलंबने योग्य है।

सुत्र या घर औषधिका प्रयोग करके बालके रोग तथा मूत्राघात आदि रोग दूर होते हैं। इस विषयका पूरक उपदेश इस सूक्तके अन्तमें है। वैद्य लोग इसका विचार करें।

(१०) राष्ट्रका विजय ।

व्यक्ति कुटुंब जाति देश तथा राष्ट्रके विजयपूर्ण अभ्युदय के नियमोंमें सम्पन्नता है। पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते ही हैं। व्यक्तिका कर्मक्षेत्र छोटा और राष्ट्रका विस्तृत है छोटेपन और विस्तृतपन की बातको छोड़नेसे दोनों स्थानोंमें नियमोंकी एकरूपताका अनुभव आ सकता है।

कुटुंबका ही विस्तृत रूप राष्ट्र है ऐसा मान लें और पूर्व स्थानमें एक घर या एक परिवारके विषयमें जो उपदेश बताया है वही विस्तृत रूपसे राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकोंको राष्ट्रीय उन्नति का विषय पूर्वोक्त रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा।

घरमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है; घरमें माता प्रबंधकर्त्री है राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रसभा प्रबंधकर्त्री है। घरमें पुत्र और बलवान् भ्राता है और राष्ट्रमें शासकसुभोंमें वीरता बढ़ाई जाती है। इत्यादि साम्य देखकर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णन किये हुए पिता माता और पुत्रके गुणधर्मकर्म यहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें अतिविस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोंको अतिस्पष्ट हो जायगी। इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्नलिखित प्रकार होगा—

प्रजाका उत्तम धारणपोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही राष्ट्रका सच्चा पिता और उसकी माता अत्युत्तम प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि ! हम सबके शरीर अति सुदृढ हों जिससे हम सब उत्तम बलवान् बनकर अपने शत्रुओंको भग्न देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार जो अपने बछड़ेका हित सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर ! मातृभूमिके प्रेमसे बढ़े हुए वीर आनंद करें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें वीर चमकते रहें। तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि अघसे दूर हों ॥ ४ ॥

साधारणतः यह आशय अतिसंक्षेपसे है। पाठक इस प्रकार विचार करें और वेदके आशयको समझनेका यत्न करें।

आरोग्य-सूक्त ।

(१)

पूर्व सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञात हुआ कि पर्जन्य पिता है पृथ्वी माता है और इनके पुत्र वृक्षवनस्पति आदि सब हैं। यहां संशय उत्पन्न होता है कि क्या पर्जन्यके समान सूर्य चंद्र वायु आदि भी वृक्षवनस्पतियोंके लिये पितृस्थानीय हैं या नहीं क्या इनके न होते हुए, केवल अकेला एक ही पर्जन्य तृणादि की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है। इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है—

[ऋषि—अथर्वा । देवता—(मंत्रोंमें उक्त अनेक) देवताएँ]

विधा शुरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिर्धा अस्तु बालितिं ॥ १ ॥
विधा शुरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिर्धा अस्तु बालितिं ॥ २ ॥
विधा शुरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिर्धा अस्तु बालितिं ॥ ३ ॥

पिता द्यौरस्य पितरं चुन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिर्धा अस्तु बालिति ॥ ४ ॥
पिता द्यौरस्य पितर सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिर्धा अस्तु बालिति ॥ ५ ॥

अर्थ—(पिता) हमें पता है कि सबके पिता (शत-वृष्ण्यं) सैकड़ों बलोंसे युक्त पर्जन्य मित्र वरुण चंद्र सूर्य (ये पांच) हैं। (तेन) इस पांचोंके गौरवसे (ते तन्वे) तेरे शरीरके लिये मैं (शं करं) आरोग्य करूं। (पृथिव्यां) पृथिवीके अन्दर (ते निषेचनम्) तेरा सिंचन हुवे और सब रोग (ते) तेरे शरीरसे (बालिति) शीघ्रही (बहिः अस्तु) बाहर हो जावें ॥ १—५ ॥

भावार्थ—तुम्हारे मनुष्यशरीरमें पृथिवी माता भूमि है और पिता पर्जन्य, मित्र वरुण चंद्र सूर्य ये पांच हैं। इनमें अनंत बल है। उनके गौरव योग उपयोग करनेसे मनुष्यके शरीरमें आरोग्य स्थिर रह सकता है मनुष्यका औरस रोग हो सकता है और उसके शरीरसे सब रोग बाहर हो जाते हैं।

आरोग्यका साधन।

पांच मंत्रोंका मिलकर यह एकही रोगनाशक मंत्र है और इसमें मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्षवनस्पतियोंके आरोग्यके सुलभ साधन बता दिये हैं। शरः शब्द पाप वाचक होता हुआ भी सामान्य अर्थसे यहां उपलक्षण है और तुमसे लेकर मनुष्यतक सृष्टिका आरोग्य इसमें है। विशेष अर्थसे शरः संज्ञक वनस्पतिका गुणधर्म बताया जाता है यह बात भी स्पष्ट ही है।

इस मंत्रोंमें "पांच" पिता कहे हैं। "पिता" शब्द पाता अर्थात् रक्षा, संरक्षण करनेवाला इस अर्थमें यहां प्रयुक्त है। तृणादिसे लेकर मानव-सृष्टिपर्यंत सब की सुरक्षा करनेका कार्य इनका ही है। ये पांचों सब सृष्टिकी रक्षा कर ही रहे हैं। देखिये

१ पर्जन्य सृष्टिद्वारा जलसिंचन करके सबका रक्षण करता है।
२ मित्र प्राणवायु है और इस वायुसे ही सब जीवित रहते हैं।
३ वरुण जलकी देवता है और यह जल सबका जीवन ही बचाता है।
४ चंद्र ओषधियोंका अधिपति है और ओषधियों द्वारा ही मनुष्य बहुतसी जीवित रहते हैं।
५ सूर्य सबका जीवनदाता प्रसिद्ध ही है। सूर्य न रहे तो सब जीवन नष्ट ही होवे।

इस पांचों विविध शक्तियां हमारे जीवनके लिये सहायक हो रही हैं इसलिये ये पांचों हमारे संरक्षक हैं और आरोग्य देनेसे ही इनकी विशेषता है। इनसे आरोग्य किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रश्न बड़ा महत्व और बड़ी अनेकशाखी जाने योग्य है। परंतु मंत्रोंके यहां यह विस्तारी सूचना दी जाती है पाठक विचार करें और लाभ उठावें—

पर्जन्यसे आरोग्य।

पर्जन्यका शुद्ध जल जो स्नानसे आदि सब प्रकारोंसे प्राप्त किया जा सकता है वह बड़ा आरोग्यप्रद है। विशेष पूरे सूर्य के समय यदि इसका पान किया जाय तो शरीरके सब दोष दूर हो जाते हैं और पूर्ण नीरोगता प्राप्त हो सकती है। वृष्टि जलके पहलेके शरीरके शुद्ध सुखसी अधिकता निवारण होता है। अंतरिक्षमें शुद्ध प्राण विद्यमान है वह वृष्टिके जलबिंदुओंके साथ भूमिपर आता है। इसलिये वृष्टिजलका स्नान आरोग्यवर्धक है।

मित्र (प्राण) वायुसे आरोग्य।

प्राणायामके योगशास्त्रमें आरोग्यसंबंध जो उपाय वर्णन किया है वह यहां अनुवेधेय है। दोनों नासिकाओंके-सूर्य-चंद्र नाडियोंसे अधिकाधिक जलकी मैत्रीसे स्वच्छ और मल रहित रखनेसे प्राणवायु अधिक शक्ति और उत्तम परिपक्वता प्राप्त करता है। शुद्ध वायुमें सब जगह संचार कर रहनेसे भी होने वाला वायुपान बड़ा आरोग्यवर्धक है। जो सदा वस्त्ररहित रहते हैं उनकी रोग सह होने हैं इसका यही कारण है। बच्चोंके बारेमें भी ऐसा करें हैं इसका कारण इतना ही है कि बच्चोंके कारण प्राणवायुका शरीरके साथ जैसा होना चाहिये वैसा नहीं होता और इस कारण अल्पांश न्यून होता है।

वरुण (जल) द्वारा आरोग्य।

प्राप्त होता है। अन्य अन्न अर्थात् साधारण कूप नदी आदिसेंके अपेक्षा इसमें उत्तम प्रकार तैरनेसे भी कई दोष दूर हो जाते हैं। अन्नमयकोश-द्वारा यह विषय है यह पाठक वहां अनुसंधान करके देखें। यह बडा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियां अन्नचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

यह ओषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है। सोमादि औषधोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकादि आचार्योंने अपने वैद्य ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम चन्द्र है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य प्रकाशता करनेवाला है। सूर्यकिरणोंका स्नान बंगे शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर उघाडनेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बडा भारी शास्त्र है।

पञ्चपाद पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य पशुओं एवं वनस्पति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। वृक्षवनस्पति और आरण्यक पशु उक्त पंचपाद पितरों अर्थात् पांचों देवोंके साथ पांचों पिताओंके साथ-पांचों रक्षकोंके साथ नित्य रहते हैं इसलिये सदा आरोग्यसंपन्न होते हैं। नागरिक पशुओं मनुष्यके कृत्रिम अस्वाभाविक जीवनमें अन्तर्भूत होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जंगली लोग प्रायः खुले खुले स्थलोंके कारण अधिक नीरोग होते हैं। परंतु नागरिक लोग कि जो सदा तंग मकानोंमें रहते हैं सदा मल मूत्रोंसे वेष्टित होते हैं और शुद्ध वायु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपको दूर रखते हैं अर्थात् जो अपने पंचपितरोंसे ही वियुक्त रहते हैं वेही अधिकतासे अधिक रोगी होते हैं और प्रति दिन इन सगाने पांचतत्त्व नागरिक कार्योंमें ही निःशेष खर्च कर रहे हैं और अस्वास्थ्यसे वे ही सदा दुःखी होते हैं।

इसलिये वेद कहता है कि पर्जन्य मित्र (प्राण) वायु अग्नि सूर्य चंद्र सूर्य इन पांच देवोंको अपना पिता अर्थात् अपना संरक्षक जानो और —

तेभ्यो ते मन्थे सं करम्।

इन पांचों देवोंके विविध कर्मोंसे अपने शरीरका आरोग्य प्राप्त करो" अथवा मैं उक्त देवोंकी अनिवार्यतासे तेरे शरीरका आरोग्य करूं। आरोग्य इनसेही प्राप्त होता है। यही मुख्य ज्ञान इस मंत्रमें प्रतिपादन किया गया है। मंत्रका विचार करें और इस निसर्गनियमोंका पालन करके उत्तम आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उत्तम जीवन विशेषतः उक्त पांचों शक्तियोंपर निर्भर है। मंत्रका "निषेचनम्" शब्द "जीवनरूप जल" का सूचक है। इसलिये—

ते पृथिव्यां निषेचनम्।

इस मंत्रभागका आशय "तेरा पृथ्वीमें जीवन" पूर्वोक्त पांचों देवशक्तियोंके साथ संबंधित है यह स्पष्ट है। जो उत्तम आरोग्य शरीरका उत्पन्न करनेवाले हैं वेही जीवन उत्तम दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इसके द्वारा है—

ते वाजं इति वाहि वस्तु।

तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जांय। पूर्वोक्त पांचों देवोंके योग्य उपयोगसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

(१) दंडिशक्ति-पान-पूर्वक उदर करनेसे मूत्राशय आदि दोष बाहर हो जाते हैं।

(२) त्वचा शरीरके अंदर जानेसे रक्तशुद्धि होती है और रक्तदोषजन्य रोग दूर होते हैं।

(३) जलचिकित्साद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।

(४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि भाग खानेसे है, कि वे शरीरके (दोष-जी) दोषोंको बाहर करते हैं।

(५) सूर्यकिरण पडेसा जाने तथा उष्णोदक स्नानसे शरीरके रोग बीज दूर कर देते हैं।

इस रीतिसे पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (घं करें) उपकार करते हैं। आरोग्य देते हैं (निषेचनं) जीवन देते हैं और (वहिः) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

वे शब्द "शांति" का सूचक है। शरीरमें "शांति उत्पन्न सुख" आदि स्वास्थ्य करना आरोग्यका भाव बता रहा है। देव"वं" करनेवाले हैं इसका तात्पर्य यही है कि वे आरोग्य बढानेवाले हैं। आरोग्य बढानेके कारण जीवन बढानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शीघ्र बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रसे सबसे अच्छे आरोग्यके मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान यथातथा प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया उपदेश करके [illegible] विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष-निवारण ।

यदान्त्रेषु गवीनीषूर्यद्वस्तावधि संभृतम् । एषा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥
अ वै मिनामि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव । एषा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
विषितं ते वस्तिबिलं संमुञ्जस्पोदुधेरिव । एषा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥
पर्येषुका परापतदधःसृष्टाऽधि धन्वनः । एषा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥

अर्थ— (यत्) जो (आन्त्रेषु) आंतोंमें (गवीनीषु) मूत्र नाडियोंमें तथा जो (वस्तौ) मूत्राशयमें मूत्र (संभृतं) इकट्ठा हुआ है। वह तेरा मूत्र (सर्वकं) सबका सब एकदम बाहर (मुच्यताम्) निकल आवे ॥ ६ ॥ (वेशन्त्याः) झीलके पानीके (वर्त्रं) बंधको (इव) जिस प्रकार खोल देते हैं उसी तेरे (मेहनं) मूत्रद्वारको (अ मिनामि) मैं खोल देता हूं ॥ ७ ॥ समुद्रके अथवा (उदधेः) बडे तालाबके जलके लिये मार्ग सुगम करनेके समान तेरा (वस्ति-बिलं) मूत्राशयका बिल मैंने (विषितं) खोल दिया है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ (इषुका) बाण (परा अपतत्) दूर जाता है उस प्रकार तेरा सब मूत्र शीघ्र बाहर निकल आवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाबका पानी सुखपूर्वक बाहर आता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाडियों द्वारा मूत्रेंद्रियसे बाहर निकल आवे ।

मूत्र जबकी रीतिसे बाहर आनेसे शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं । शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर आनेसे विष भी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसीलिये किसी रोगी का मूत्र अटक जानेसे मूत्रके विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है । इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका उत्सर्ग नियमपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है । यदि यह मूत्र मूत्राशयमें एक साथ ही मूत्र नलिकाओंसे खींच कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है । इस कार्यके लिये कर या मुख औषधि का प्रयोग बडा लाभदायक है । वैद्य लोग इसका उपयोग करें । इसपर दूसरा उपाय मूत्रद्वार खोलनेका है इसके लिये लोह धातुका बस्तियंत्र (Cathcter कैथेटर) का प्रयोग करनेकी सूचना इस मंत्रों की उपमाओंसे मिलती है । यह मूत्राशय तक पोनेका चांदीका या लोहेका बनाया जाता है, यह शरीरके बस्तिमार्गमें घोल दी होती है आवश्यक यह रबर आदि अन्यान्य पदार्थोंका भी बनाया जाता है । इस समय इसको हरएक डाक्टरके पास पाठक देख सकते हैं । यह मूत्र रीतिसे मूत्राशयमें योग्य रीतिसे डाला जाता है । यह वहां पहुंचनेसे अंदर रुका हुआ मूत्र इसके अंदर की नलीसे बाहर हो जाता है ।

योगी लोग इसकी सहायतासे बस्तीकी आदि क्रियाएं सम्यक् करते हैं मूत्राशयसे कोसा दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशय में खींचते और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढाते हैं । इसका अभ्यास बढानेसे न केवल मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है परंतु संपूर्ण मार्ग नाभिसहित संपूर्ण पोर्याशयपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है । ऊर्ध्वरेता होनेकी सिद्धि इसीके योग्य अभ्यासमें प्राप्त होता है । योगी लोग इस अभ्यासको अतिगुप्त रखते हैं और पात्र परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास शिष्यको सिखाया जाता है । पूर्णब्रह्मचर्य रहना इसी अभ्याससे साध्य होता है । पूर्णरीत्या ब्रह्मचर्य पालन करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन होनेकी समाधना इस अभ्याससे हो सकती है ।

जिस प्रकार तालाब या कुवेके अंदरसे पहिला बल निकाल देनेसे उसकी स्वच्छता हो सकती है और शुद्ध जल उसमें आनेसे उसका अधिकसे अधिक लाभ हो सकता है इस प्रकार मूत्राशयका पूर्वोक्त प्रकार योगादि साधनद्वारा बल बढानेसे बडा ही आरोग्य प्राप्त हो सकता है ।

सामान्य मनुष्योंके लिये मुख औषधिके प्रयोगसे अथवा मूत्राशयमें मूत्रदोष यंत्रके प्रयोगसे लाभ होता है । बोधियोंको बस्तीकी आदि अभ्यासी मूत्रदोषकी सब बडी बडी बस्तियां और शुद्ध करनेसे आरोग्य प्राप्त होता है ।

प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाब कूए, नदी आदिकोंके जलके स्थानमें उनमें उपर्युक्त प्रकार तैरनेसे भी कई रोग दूर हो जाते हैं। अनुभवसिद्ध यह विषय है यह पाठक यहां अनुसंधान करके देखें। यह बड़ा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियां जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) द्वारा आरोग्य।

यह ओषधियोंका राजा है इसका दूसरा नाम सोम है। सोमादि औषधोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकादि आचार्योंने अपने ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम यज्ञ है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणोंका सेवन जीवनका उत्तम साधन कहा है। सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् शरीरसे कपड़ेसे अथवा पूरा अपना शरीर उघाड़ेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बड़ा भारी शास्त्र है।

पञ्चपाद् पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य पशुओं वृक्ष वनस्पति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। वृक्षवनस्पति और आरण्यक पशु उत्तम पंचपाद् पितरों अर्थात् पांचों देवोंके साथ पांचों पितरोंके साथ-पांचों रक्षकोंके साथ नित्य रहते हैं इसलिये सदा आरोग्यसम्पन्न होते हैं। ग्रामीण पशुओं मनुष्यके कृत्रिम बनावटी जीवनसे व्यथित होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जल। सोम आ। सीधे सादे रहनेके कारण अधिक नीरोग होते हैं। परन्तु शारीरिक रोग कि जो सदा संग लगाकर रहते हैं सदा मल दलोंसे वेष्टित होते हैं और अन्न वस्तु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपको दूर रखते हैं अर्थात् जो अपने पवित्रतासे ही विमुख रहते हैं वेही अधिकतासे व्याधिग्रस्त रोगी होते हैं और प्रति दिन इन सबसे पवित्र शारीरिक शक्तियोंसे ही जिनके साथ वह रहे हैं और अस्वास्थ्यसे वे ही सदा दुःखी होते हैं।

इसलिये यह कहना है कि पर्जन्य मित्र (वायु) वरुण ये देव वरुण चंद्र सूर्य इन पांच देवोंको अपना पिता अर्थात् अपना संरक्षक जानो और —

तेभ्यो ते सन्तु शं वरम्।

इन पांचों देवोंके लिये ये मैं अपने शरीरका आरोग्य लाभ करूं अथवा मैं उक्त देवोंकी कृपासे मेरे शरीरका आरोग्य करूं। आरोग्य इनसेही प्राप्त होता है। आशयका उत्तम क्रम इस मंत्रमें दर्शाया गया है। पाठक इसका विचार करें और इस निसर्गचिकित्सा पालन करके उत्तम आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उत्तम जीवन विशेषतः उक्त पांचों शक्तियोंपर ही निर्भर है। मंत्रका 'निषेचनम्' शब्द "जीवनरूप जल" का सूचक है। इसलिये—

ते भूमिर्त्वा निषेचनम्।

इस मंत्रभागका आशय "तेरा पृथ्वीमें जीवन" पूर्वोक्त पांचों देवताओंके साथ संबंधित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का आरोग्य शरीरका रक्षण करनेवाले हैं वेही जीवन अर्थात् दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इसके द्वारा ही—

ते वायु इति बहिः अस्तु।

तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जांय। पूर्वोक्त पांचों देवोंके योग्य उपयोगसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

(१) शीतल-जल-पूर्वक स्नान करनेसे मूत्राशय शरीर दोष बाहर हो जाते हैं।

(२) वृक्ष वायुके अंदर जानेसे रक्तशुद्धि होती है और उच्छ्वासद्वारा दोष दूर होते हैं।

(३) अवगाहनद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।

(४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि नाम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-वी) दोषोंको धोती हैं।

(५) सूर्यकिरण पसीना लाने तथा अन्यान्य रीतिसे शरीरके दोष बीज दूर कर देते हैं।

इस रीतिसे पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (तं कृतं) रक्षण करते हैं। आरोग्य देते हैं (निषेचनं) जीवन बढ़ाते हैं और (बहिः) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

तं शब्द "शांति का सूचक है। शरीरमें 'शांति उत्तम सुख" आदि स्थापन करना आरोग्यका भाग बता रहा है। ये देव "तं" करनेवाले हैं इसका तात्पर्य यही है कि ये आरोग्य बढ़ानेवाले हैं। आरोग्य बढ़ानेके कारण जीवन बढ़ानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको दूर बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मननसे अपने आरोग्यके सुदृढ़ सिद्धान्तका ज्ञान स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके सुदृढ़ साधनका सामान्यतया उपदेश करके मंत्रकार निम्न रक्षण विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष निवारण ।

यद॒न्त्रेषु॑ गवी॒न्योर्यद॒स्तावधि॒ सं॒भृ॒तम्। ए॒वा ते॒ मू॒त्रं मु॒च्यतां॒ ब॒हिर्बा॑लिति॒ सर्व॑कम् ॥६॥
प्र ते॑ मिनामि॒ मेह॑नं॒ वर्षी॑ वेश॒न्त्या इ॑व । ए॒वा ते॒ मू॒त्रं मु॒च्यतां॒ ब॒हिर्बा॑लिति॒ सर्व॑कम् ॥७॥
विषि॑तं ते वस्तिबिल॒ सं॒मृ॒तस्यो॒दपे॑रिव । ए॒वा ते॒ मू॒त्रं मु॒च्यतां॒ ब॒हिर्बा॑लिति॒ सर्व॑कम् ॥८॥
यथे॑षु॒का प॒रापत॒दवसृ॑ष्टाऽधि॒ धन्व॑नः । ए॒वा ते॒ मू॒त्रं मु॒च्यतां॒ ब॒हिर्बा॑लिति॒ सर्व॑कम् ॥९॥

अर्थ— (यत्) जो (अन्त्रेषु) आंतोंमें (गवीन्योः) मूत्र नलियोंमें तथा जो (वस्तौ) मूत्राशयमें मूत्र (संभृतं) इकट्ठा हुआ है। वह तेरा मूत्र (सर्वकं) उसका सब एकदम बाहर (मुच्यताम्) निकल जाय ॥ ६ ॥ (वेशन्त्याः) स्त्रीके पासीक (वर्ष) बंधको (इव) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे (मेहनं) मूत्रद्वारको (प्र मिनामि) मैं खोल देता हूं ॥ ७ ॥ सप्तरके अथवा (उदधेः) बड़े तालाबके जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तेरा (वस्ति-बिलं) मूत्राशयका बिल मैंने (विषितं) खोल दिया है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ (इषुका) बाण (परा अपतत्) दूर जाता है उस प्रकार तेरा सब मूत्र शीघ्र बाहर निकल जावे ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाबका पानी सुखपूर्वक बाहर आता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनलिकाओं द्वारा मूत्रेंद्रियसे बाहर निकल जावे।

मूत्र खुली रीतिसे बाहर आनेसे शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं। शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर आनेसे विष भी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है। इसीलिये किसी रोगी का मूत्र अधर रुक जानेसे मूत्रक विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है। इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका खुलकर निकलपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है। यदि वह मूत्र मूत्राशयमें रुक जाय तो मूत्र नलिकाको खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है। इस कार्यके लिये कर या मुख औषधि का प्रयोग करना उपयोगी है। वैद्य लोग इसका उपयोग करें। इसका दूसरा उपाय मूत्रद्वार खोलनेका है इसके लिये लोह धातुका बस्तियंत्र (Catheter कैथेटर) का प्रयोग करनेकी पद्धति इस मंत्रों की उपमाओंसे मिलती है। यह मूत्राशय यंत्र लोहेका चारीक या लोहेका बनाया जाता है यह चारीक नलिका आरंभमें गोल सी होती है आजकल यह रबर आदि अन्यान्य पदार्थोंका भी बनवाया मिलता है। इस समय इसको हरएक डाक्टरके पास पाठक देख सकते हैं। यह मूत्र रीतिसे मूत्राशयमें योग्य रीतिसे डाला जाता है। यह यहां पहुंचनेसे अंदर रुका हुआ मूत्र इसके अंदर की नलीसे बाहर हो जाता है।

योगी लोग इसकी महत्तासाठी बस्तीकी आदि क्रियाएं साध्य करते हैं मूत्रद्वारसे कोला दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशय में डालते और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढ़ाते हैं। इसका अभ्यास बढ़ानेसे न केवल मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है परंतु संपूर्ण मार्ग नलिकाओंके समेत संपूर्ण वीर्याशयपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है। ऊर्ध्वरेता होनेकी सिद्धि इसीके योग्य अभ्यासमें प्राप्त होती है। योगी लोग इस अभ्यासको अतिगुप्त रखते हैं और सारा परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास सिष्योंको सिखाया जाता है। पूर्णब्रह्मचर्य रक्षण इसी अभ्यासमें सार होता है। पूर्णरूप धर्म पालन करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन होनेकी संभावना इस अभ्याससे हो सकती है।

जिस प्रकार तालाब या कूपके अंदरसे पहिला जल निकाल देने उसकी स्वच्छता हो सकती है और शुद्ध नया जल उसमें आनेसे उसका अधिकसे अधिक लाभ हो सकता है इस प्रकार मूत्राशयका पूर्वोक्त प्रकार योगाहे साधनद्वारा शुद्ध बनानेसे बड़ा ही आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

सामान्य मनुष्योंके लिये मूत्र औषधिके प्रयोगसे अथवा मूत्राशयमें मूत्रवस्ति यंत्रके प्रयोगसे लाभ होता है। योगियोंको बस्तीकी आदि अभ्याससे मूत्रस्थानकी सब तरह बाही बलवती और शुद्ध करनेसे आरोग्य प्राप्त होता है।

प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाब कूए, नदी आदिकोंके जलके स्नानमें उसमें उत्तम प्रकार तैरनेसे भी कई रोग दूर हो जाते हैं। जलचिकित्साका यह विषय है वह पाठक यहां अनुसधान करके देख। यह बडा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्राय सभी बीमारियां जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

चन्द्र औषधिगणका राजा है इसका दूसरा नाम सोम है। सोमादि औषधोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकादि आचार्योंने अपने अपने ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम यज्ञ है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणोंका स्नान मानो शरीरसे करनेसे अर्थात् सूर्यमें अपना शरीर तपानेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बडा भारी शास्त्र है।

पञ्चपाद पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य पशुओंको हवा जल स्थिति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। वृक्षवनस्पति और आरण्यक पशु उक्त पंचपाद पितरों अर्थात् पांचों देवोंके साथ पांचों विषयोंके साथ-पांचों रङ्गोंके साथ मित्र रहते हैं इस लिये सदा आरोग्यसंपन्न होते हैं। ग्राम्यादिक पशुओंको मनुष्यके कृत्रिम बनावटी जीवनसे अन्वित होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। अन्य जो लोग प्राय घरोंमें बंधे रहनेके कारण अधिक रोगी होते हैं। परंतु आरोग्यके लोग कि जो सदा संग मकानोंमें रहते हैं सदा अंधेरे कोठरोंमें बैठते होते हैं और जब वायु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपको दूर रखते हैं, अर्थात् जो अपने पंचपितरोंसे ही विमुख रहते हैं वेही अधिक-तो आधिक रोगी होते हैं और प्रति दिन इस तरहसे पांचहत्या अनेक आरोग्यसे ही निरंतर रात बढ रहे हैं और अस्वास्थ्यसे व ही सदा दुःखी होते हैं।

इसलिये वेद कहता है कि पर्जन्य मित्र (प्राण) वायु अन्नदेव वरुण अंश सूर्यदेव इन पांच देवोंको अपना पिता अर्थात् अपना संरक्षक जानो और —

तेभ्यो ते तन्वे शं करम्।

"इन पांचों देवोंके सेवन करनेसे अपने शरीरका आरोग्य प्राप्त करो अथवा मैं उक्त देवोंकी शक्तियोंसे तेरे शरीरका आरोग्य करूं। आरोग्य इसमेंही प्राप्त होता है। आरोग्यका मुख्य साधन इस मंत्रमें स्पष्टतया आ गया है। पाठक इसका विचार करें और इस निसर्गनियमोंका पालन करके आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विशेषतः उक्त पांचों शक्तियोंपर ही निर्भर है। मंत्रका 'निषेचनम्' शब्द "जीवनरूप जल" का सूचक है। इसलिये—

ते पृथिव्यां निषेचनम्।

इस मंत्रभागका आशय "तेरा पृथ्वीमें जीवन" पूर्वोक्त पांचों देवताओंके साथ सम्बंधित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का आरोग्य शरीरका रक्षण करनेवाले हैं वेही जीवन अर्थात् दीर्घ जीवन देनेवाले विषयसे हैं। इसके द्वारा हैं—

ते वसु इति बहिः वसु।

"तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जांय। पूर्वोक्त पांचों देवोंके सेवन सम्बंधसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

(१) हवा जल-पान-पूर्वक भजन करनेसे मूत्राशय शरीर शीघ्र बाहर हो जाते हैं।

(२) सूर्य प्रकाशके अंदर आनेसे रक्तशुद्धि होती है और रक्तसंस्थाके दोष दूर होते हैं।

(३) जलचिकित्साद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।

(४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि काम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-धी) दोषोंको धोते हैं।

(५) सूर्यकिरण पसीना आने तथा अन्यान्य द्वारोंसे शरीरके दोष शीघ्र दूर कर देते हैं।

इस रीतिसे पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (वसु करं) कल्याण करते हैं। आरोग्य देते हैं (निषेचनं) जीवन बढाते हैं और (वसु) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

"वसु" शब्द "शांति" का सूचक है। शरीरमें "शांति स्वास्थ्य, सुख" आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव बता रहा है। ये देव "वसु" करनेवाले हैं इसका तात्पर्य यही है कि ये आरोग्य बढानेवाले हैं। आरोग्य बढानेके कारण जीवन बढानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शीघ्र बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मननसे अपने आरोग्यके मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया उपदेश करके मंत्रकार विशेषतया विशेष उपाय बताते हैं—

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ ३ ॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् । अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अर्थ (अम्बयः) हे माताओंके समान और (जनयः) पालनेवाली माताओंके समान अपनी मातृभूमि (यत्र) जो (मधुमत्) मधुर स्वादयुक्त नाना (पयः) दूध या जल (पृथिवीः) बिखरी हैं ॥१॥ (ता) वे (अपः) ये मातृभूमि (उप मुवे) मुझसे सम्मुख होती हैं अथवा (यासु) जिनमें नाना गुण होते हैं। वे हम सबका (अम्बयः) यह (हिन्वन्ति) लाभ करती हैं ॥ २ ॥ (यत्र) जहां हमारी (गावः) गौवें पानी (पिबन्ति) पीती हैं उन (देवीः आपः) दिव्य जलोंको (सिन्धुभ्यः) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण (उप ह्वये) मैं प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥ (अप्सु अन्तः) जलमें अमृत है (अप्सु भेषजं) जलमें दवाई है (उत) और (अपां प्रशस्तिभिः) जलके प्रशंसनीय गुण बतानेसे (अश्वाः वाजिनीः) घोड़े बलवान् (भवथ) होते और वीर्य बलयुक्त होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जल उनके लिये माता और पालनेवाले समान हितकारक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं। जलकी मातृभूमि बड़ी बड़ी है जहां वह दूरमें बादल लिया रही है। जो जल सूर्यकिरणसे शुद्ध बनता है अथवा जिसकी औषधता गुण करना है वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करे। जिन मातृभूमियोंमें हमारी गायें जल पीती हैं और जिनके होने हमें जलका उत्तम गुण जानना चाहिये। जलमें अमृत है जलमें औषध है जलके गुण गुण गाने वाले बलवान् बनते हैं और उनसे भी बलवती बनती है।

[५]

(ऋषि सिन्धुद्वीपः । देवता-[अपांनपात्, सोम] आपः)।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥
इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे (आपः) जलो ! (हि) निश्चय करके आप (मयोभुवः) सुखकारक (स्थ) हो इसलिये (नः) हमको (ऊर्जे) बल (महे रणाय चक्षसे) बड़े रमणीय भोगके लिये तथा (महे रणाय चक्षसे) बड़ी रमणीय दृष्टि के लिये हमें (दधातन) पुष्ट करो ॥ १ ॥ (यः) जो (वः) आपका अति (शिवतमः रसः) अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य) उसका (इह) इस जगत्में (नः भाजयत) हमें सेवन कराओ (इव) जैसे (उशतीः मातरः) हितकारी माताएं (वः) अपने (तस्मै) उस (रसाय) रसके लिये (अरं गमाम) अत्यन्त प्राप्त होती हैं (यस्य) जिस (क्षयाय) निवास के लिये (जिन्वथ) तृप्त करते हो (च) और (नः) हमें (जनयथा) उत्पन्न करते हो ॥ ३ ॥ (इदं आपः प्रवहत) इस दोषको दूर करो (यत् किं च दुरितं मयि) जो कुछ दुष्ट आचरण मुझमें है (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) जो मैं द्रोह करता हूं (वा) अथवा (यत् शेपे उत अनृतम्) जो झूठ बोलता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जल हमारे लिये बड़े सुखकारक हैं इस कारण हमें उनसे उत्तम उपयोग लेना चाहिये। जिस कारण हमें जलसे बल और दृष्टि मिलती है इसलिये जलके उत्तम रसका सेवन करना चाहिये। जिस कारण जलसे हमारा निवास और तृप्ति होती है इसलिये जलके उत्तम गुणोंका सेवन करना चाहिये। जिस कारण जलसे हमें उत्पत्ति मिलती है इसलिये जलके उत्तम गुणोंका सेवन करना चाहिये। जिस कारण जलसे हमारे दोष दूर होते हैं इसलिये जलके उत्तम गुणोंका सेवन करना चाहिये। जिस कारण जलसे हमारे पाप दूर होते हैं इसलिये जलके उत्तम गुणोंका सेवन करना चाहिये।

पूर्वापर सम्बन्ध

द्वितीय सूक्तमें आरोग्य साधनका विषय प्रारंभ किया था। उसी आत्मप्राप्तिका विस्तृत नियम इस तृतीय सूक्तके प्रथम पांच मंत्रोंके गानमें कहा है। उसके आरोग्यका मानो यह मूल-मंत्र ही है। हरएक अवस्थामें सुगमतया आरोग्यसाधन करनेका उपाय इस यक्ष्मघ्नमंत्रमें वर्णन किया है। इस तृतीय सूक्तके अंतिम चार मंत्रोंमें मूत्राशयके दोषको दूर करनेका साधन बताया है।

इस सूक्तका 'अप द्रव्य' शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'द्रव्य' शब्द बल वीर्य उत्साह प्रजननसामर्थ्य आदिका वाचक है। ये सबही बल देनेवाले पूर्वोक्त पांचों देव हैं यह यहां इस सूक्तसे स्पष्ट हुआ है। दीर्घसूत्रके अन्य उपायोंका अवलंबन न करके पाठक यदि इन पांचोंको ही योग्य रीतिसे धारण रखेंगे तो उनको अनुपम लाभ हो सकता है।

द्वितीय सूक्तमें 'भूरि-धायस' शब्द है जिसका अर्थ अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला' पूर्व स्थानमें दिया है। यह भी पर्जन्यके साहचर्यके कारण इस सूक्तमें अनुवृत्तिसे आता है और पांचों देवोंका विशेषण बनता है। पाठक इस शब्दको लेकर मंत्रोंका अर्थ देखें और बोध प्राप्त करें।

भूरि धायस शब्दका 'बल-वृद्धि' इत्यादि निकट संबंध है मानो ये दोनों शब्द एक दूसरेके सहायक हैं। विशेष प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही ऐसी वस्तुओंको देनेवाला हो सकता है। क्योंकि पुष्टिके साथ ही बलका संबंध है। इस प्रकार पूर्व सूक्तसे इस सूक्तका संबंध देखिये।

शारीरशास्त्रका ज्ञान।

इस सूक्तके मंत्रोंसे पाठकोंने ज्ञात ही किया होगा कि शरीर शास्त्रका ज्ञान अथर्वोपयोगके यथावत् जाननेके लिये अत्यंत आवश्यक है। मूत्राशयमें उत्पन्न हुए प्रमेह बिना वहांके अवयवोंके जाननेसे नहीं हो सकता। शारीरशास्त्रको न जाननेवाला मनुष्य योगसाधन भी नहीं कर सकता तथा अथर्ववेदका ज्ञान भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता।

यह 'अंगि-रस' का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंका यह अथर्वशास्त्र है। अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, अंगोंको अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछ भी ज्ञान नहीं है वह अथर्ववेदसे बहुत कम प्राप्त कर सकता।

डाक्टर लोग जिस प्रकार मुर्दोंकी चीर फाड करके शरीरांगोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और अथर्वांगिरसविद्याके पढनेवालोंको करना उचित है।

हमने यहां सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित उपायके प्रयोगके लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोंद्वारा किया जावे परंतु इससे कई लोग अधिक भ्रममें भी पड सकते हैं और जो चित्रोंको ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे प्रत्यक्ष प्रयोग करके दोषके भागी हो सकते हैं। इस सबको सोचके देखकर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समयके लिये दूर कर दिया है। और हम यहां पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस प्रदीपक ज्ञान पुस्तिका अक्षरोंसे ही प्राप्त करें तथा कर लेने हुए बोध-प्रक्रियाका ज्ञान किसी उत्तम योगीके पास जाकर लेवें, क्योंकि अंतरंग क्रियाओंमें इस बातकी आवश्यकता है। इसके बिना केवल मंत्रार्थ पढनेसे अथवा आत्मिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो सकता।

जल-सूक्त।

पूर्व सूक्तमें आरोग्यसाधक मंत्रका संक्षेपसे वर्णन किया है इसलिये अब उसी मंत्रका विशेष वर्णन अपने शब्दोंमें करते हैं

[४]

(ऋषि सिन्धुद्वीप। देवता [अपांनपात्, सोम –] आपः।)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः॥ १॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ २॥

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। यह दर्शानेके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। (१।२)

" यह जल जो सूर्यके सम्मुख रहता है अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है। अर्थात् सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्मवाला बनता है और सदा अँधेरेमें रहनेके कारण जिसपर सूर्यकिरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन वृक्षोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिसपर नहीं होती उनके जलोंके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा—

अम्बयो यन्त्यध्वभिः। (१।१)

'नदियाँ अपने मार्गसे चलती हैं।' इसमें जलमें गतिका वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुण धर्मोंसे युक्त होता है। स्थिर जलसे कृमिकीटक तथा संक्रामक होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिकी मंदता और तेजीके कारण भी जलके गुणधर्मोंमें भेद होते हैं। तथा—

पृञ्चतीर्मधुना पयः। (१।१)

"मधु अर्थात् पुष्प-पराग आदिसे जलमें मिठास होती है।" इससे भी पानीके गुणधर्म बदलते हैं। कहीं खनिजोंके ऊपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फल फूलके पराग पत्ते आदि गिरते हैं जलमें सड़ते वा मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे जलके गुणधर्म बदलते हैं तथा—

यत्र पशवः पिबन्ति। (४।३)

" जिस जलाशयमें पीने पानी पीता है " अर्थात् जैसे भैंसे आदि पशु जल है जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

अब हमेंके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं उसमें उससे उत्तम अवस्था-युक्त जल ही पीने आदि कार्योंके लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेदने ये सब जलकी अवस्थाएं बताकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो उत्तमसे उत्तम पवित्र जलही सेवन चाहिये। पाठक इन सब बातोंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध।

जलका नाम ही "अप्" है अर्थात् औषध रूप रस ही

ही जल है यही बात मंत्र कहता है—

अप्सु अमृतम्। (१।४)

अप्सु भेषजम्। (१।४)

'जलमें अमृत है, जलमें औषध है,' जल अमृतमय है और औषधिमय है। मरनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है और शरीरके दोषोंको खोकर शरीरमें निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है—

शिवतम रसः। (५।१)

'जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है।" केवल "शिवो रसः" कहा नहीं है परंतु 'शिवतमो रस" कहा है इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसे भी वेद स्पष्ट कर रहा है—

आपः सयोमुवः। (५।१)

' जल हितकारक है।" यहांका "सयस्" शब्द 'सुख, आनंद समाधान, तृप्ति" आदि अर्थका बोध करता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद होना असंभव है। इसलिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट सिद्ध होता है इसी लिये कहा है।—

अप्सु शिवानि भेषजानि। (६।२)

"जलमें सब प्रकारकी औषधियां हैं।" जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियां हैं। इसीलिये हरएक बीमारीमें जलचिकित्सासे इलाज किया जा सकता है। शांत्य देह और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा तो आरोग्य निःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है—

आप शृणीत भेषजम्। (६।१)

अपो याचामि भेषजम्। (५।४)

"जल औषध करता है। उससे औषध मांगता हूं।" अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगोंकी निवृत्ति जलचिकित्सा से हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके सब धातुओंमें समता स्थापित करना जलचिकित्सासे संभवनीय है।

समता और विषमता।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी सूचना वेदके' सं वातिः" आदि मंत्र करते हैं और विषमता दूर करनेका भाव 'वि०" शब्द वेदमें कर रहा है। दोनों मिलकर 'सं-वि०' शब्द बनता है। इसका सयुक्त तात्पर्य "समताकी स्थापना और विषमताका दूर करना" है। इसलिये कहा है—

[६]

[ऋषि सिन्धुद्वीप' । देवता (अपांनपात्) आपः, २ आप' सोमो अग्निश्च]

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ । शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १ ॥
अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा । अ॒ग्निं च॒ विश्व॑शम्भुवम् ॥ २ ॥
आपः॑ पृणीत भेष॒जं वरू॑थं तन्वे॒३॒॑ मम॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ३ ॥
शं न॒ आपो॑ धन्व॒न्या॒३॒॑ः शमु॑ सन्त्वनू॒प्या॑ ।
शं नः॑ खनि॒त्रिमा॒ आपः॒ शमु॑ याः कु॒म्भ आभृ॑ताः शि॒वा नः॑ सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

अर्थ— (देवीः आपः) दिव्य जल (नः शं) हमें सुख दे और (अभिष्टये) इष्ट प्राप्तिके लिये तथा (पीतये) पीनेके लिये हो और हमपर वर्षाके (अभि स्रवन्तु) स्रोत चलावे ॥ १ ॥ (मे) मुझे (सोमः अब्रवीत्) सोमने कहा कि (अप्सु अन्तः) जलमें (विश्वानि भेषजा) सब औषधियां हैं और अग्नि (विश्व-शं-भुवं) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ (आपः) जलो ! (भेषजं पृणीत) औषध दो और (मम तन्वे) मेरे शरीरके (वरूथं) संरक्षण के लिये मैं सूर्यको (ज्योक् च दृशे) दीर्घकालतक देखूं ॥ ३ ॥ (नः) हमारे लिये (धन्वन्या आपः) मरुदेशका जल (शं) सुखकारक हो (अनूप्याः) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुखकारक हो, (खनित्रिमाः) खोदे हुए कूपे आदिका जल सुखदायक हो (कुम्भे) घडेमें भरा जल सुखदायक हो (वार्षिकीः) वर्षाका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— दिव्य जल हमें पीनेके लिये मिले और वह हमारा सुख बढावे ॥ १ ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख बढानेवाला है ॥ २ ॥ जलसे हमारी चिकित्सा होवे और शरीरका बचाव रोगोंसे होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ ३ ॥ मरुदेशका जलमय देशका कूपोंका वर्षाका तथा घडेमें भरा हुआ जल हमारा सुख बढानेवाला होवे ॥ ४ ॥

ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं। तीनों सूक्त एकसे हैं इसलिये तीनोंका विचार यहां इकट्ठाही करेंगे।

जलकी भिन्नता।

जल भिन्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है—

१ देवीः (दिव्याः) आपः (४।३) —आकाशसे अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाला जल इसी का नाम "वार्षिकी" भी है।

२ वार्षिकीः आपः (६।४) —वर्षासे प्राप्त होनेवाला जल।

३ सिंधुः (४।३) —नदी तथा समुद्रसे प्राप्त होनेवाला जल।

४ अनूप्याः आपः (६।४) —जलमय प्रदेशमें प्राप्त होने वाला जल।

५ धन्वन्याः आपः (६।४) —मरुदेश रेतीले देशमें अथवा मोटी वृष्टि होनेवाले देशमें मिलनेवाला जल।

६ खनित्रिमाः आपः (६।४) —खोदकर बनाये हुए कूप नदीसे प्राप्त होनेवाला जल।

वृष्टिसे प्राप्त होनेवाला जल भी रेतीले स्थान और नदीके स्थान आदिमें गिरनेसे भिन्न गुण धर्मोंसे युक्त होता है। जिस स्थानमें पानी सदा खोदकर बना रहता है उसमें पडे हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीलेसे प्राप्त हुए पानीके गुणधर्म भिन्न है। इसी कारण ये सब जल भिन्नभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होते हैं। अतएव उपयोग आरोग्यके लिये करना हो तो प्रथम सबसे उत्तम शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है।

उक्त जल जो बाहर प्राप्त होता है वह घरमें लाकर बर्तनमें रखनेके कारण उसके गुणधर्मोंमें बदल होता है। अर्थात् वृक्षोंका तालाबका पानी जो गुणधर्म रखता है वही घरमें लाकर (कुंभे आपृताः ६।४) घडेमें कई दिन रखनेपर भिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होना संभव है। तथा प्रवाही नदीका पानी और कूपके स्थिर पानीके गुणधर्म भी भिन्न हो सकते हैं।

धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः- चातन । देवता - अग्निः (जातवेदाः), १ अग्नीन्द्रौ)

(७)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥
आर्ष्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥
विलपन्तु यातुधानाः अस्रिणो ये किमीदिनः । अग्ने दमेमे नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु यातुमान् । अर्वीतु सर्वो यातुमानुपमस्मीत्येत्य ॥४॥
पश्यामि ते वीर्यं जातवेदः प्र मे ब्रूहि यातुधानाँ अदृष्टान् ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्ताच्च आ ये तु प्रमुषाणा उपेदम् ॥५॥
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकायोप जह्निषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! (स्तुवानं) स्तुति करनेवाले (यातुधानं किमीदिनं) बालक जन्तुओंको भी (आ वह) यहां ले आ । (हि) क्योंकि हे देव ! (वन्दितः त्वं) तूने प्राप्त हुआ तू (दस्योः) दासका (हन्ता) हनन वा प्राप्ति करने वाला (बभूविथ) होता है ॥ १ ॥ हे (परमेष्ठिन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेदः) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और (तनू-वशिन्) शरीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू (तौलस्य आर्ष्यस्य) छोटे हुए की आदि का (प्राशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुष्टोंको (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥ (ये) जो (यातुधानाः) दुष्ट (अस्रिणः) मारनेवाले और (किमीदिनः) बालक हैं वे (विलपन्तु) विलाप करें । (अग्ने) और अग्ने हे अग्ने ! (इमं इमे) यह हवि तू और (इन्द्रः च) इन्द्र (प्रति हर्यतम्) स्वीकार करो ॥ ३ ॥ (पूर्वः अग्निः आरभतां) पहिला अग्नि आरंभ करे तथा पश्चात् (यातुमान् इन्द्रः प्र नुदतु) यातुधानोंका इन्द्र विशेष प्रेरणा करे जिससे (सर्वं यातुमान्) सब दुष्ट लोग (पश्य) आकर (अर्वीतु) बोले कि (अहं अस्मि इति) यह मैं हूं ॥ ४ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (ते वीर्यं पश्यामि) तेरा पराक्रम हम देखें । हे (तू-वशः) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! (यातुधानान्) दुष्टोंको (नः) हमारा आदेश (प्र ब्रूहि) विशेष रूपसे कह दे । (त्वया) तुझसे (पुरस्तात्) पहिले (परितप्ताः) तपे हुए (ते सर्वे) वे सब (इदं नु कारिषुः) यह करते हुए (उप आयन्तु) हमारे पास आजावें ॥ ५ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (आरभस्व) आरम्भ कर (अस्माकं-अर्थाय) हमारे प्रयोजनके लिये तू (जह्निषे) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [यातुधानान्] दुष्टोंको [उपबद्धान्] बांधे हुए अर्थात् जीतकर [इह आ वह] यहां लेआ । [अथ] और इन्द्र अपने वज्रसे [एषां शीर्षाणि] इनके मस्तक [वृश्चतु] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ इस सबसे नीचे लिखेंगे क्योंकि इस सूक्तके कई मन्त्रोंके अर्थोंका विचार पहिले करना चाहिये । इस सूक्तके कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं और जबतक इनका निश्चित ठीक अर्थ ध्यानमें न आजावे तब तक इस सूक्तका उपदेश समझमें नहीं आसकता । सबसे प्रथम अग्नि कौन है इसका निश्चय करना चाहिये-

सं पोरमि सवन्तु म । (१ । १)

समताकी स्थापना और विषमताको दूर करना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है।" किंवा अन्यान्य उक्त दोनों बातों का प्रभाव हमपर होवे। अन्यके उक्त दोनों बातोंकी सिद्धता होती है यह बात यहां सिद्ध ही है। तथा—

सं मो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु। (१ । १)

"दिव्य जल हमारे लिये शान्तिप्रदायक हो। इसमें भी वही भाव है। (सूक्त ६ मं ४) जल यज्ञ तो कई बार शान्ति का समताका बोध करता है। समताकी स्थापना और विषमता-का दूर करना ये दो कार्य होनेपर ही उत्तम रक्षा होती है इसी लिये मंत्रमें कहा है—

वरूथं तन्वे मम । (१ । १)

"मेरे शरीरका रक्षण" अर्थात् हो। 'वरूथ' का अर्थ संरक्षक कवच' है। अर्थका स्पष्ट 'रक्षक कवच" से किया है अर्थात् जल कवचके समान रक्षा करनेवाला है। यह भाव स्पष्ट है।

बलकी वृद्धि।

उक्त प्रकार आरोग्य प्राप्त होनेके पश्चात् शरीरका बल बढानेका प्रश्न आता है। इस विषयमें मंत्र कहता है—

वः ऊर्जे दधातन । (५ । १)

हमें बलके लिये पुष्ट करो।" अर्थात् जलसे धारण पोषण होकर उत्तम प्रकार बल बढना भी संभव है। विषमता दूर होकर समताकी स्थापना हो गई तो बल बढ सकता है। जलसे रमणीयता भी शरीरमें बढती है। देखिये-

महे रणाय चक्षसे। (५ । १)

'बडी (रमाय) रमणीयताके लिये जलका उपयोग होता है। जलसे शरीरकी रमणीयता बढ जाती है। शरीरकी बाह्य वृद्धि होकर जैसी सुंदरता बढ जाती है उसी प्रकार जल अंतःशुद्धि करता है इसलिये आरोग्य बढानेवाला शरीरका सौंदर्य बढानेमें सहायक होता है। आरोग्यके साथ सुंदरताका विशेष संबंध है। तात्पर्य यह जल मनुष्यकी यहां की सुस्थिति के लिये कारण होता है इसलिये कहा है-

क्षयाय जिन्वथ । (५ । १)

क्षयन्तीभ्यश्च जिन्वथ । [५ । ७]

"निवासके लिये तृप्ति करते हो। प्राणियोंके निवासका कारण है।" इन मंत्रोंका स्पष्ट कथन है कि जल मनुष्यादि प्राणियोंकी यहां सुस्थिति करनेमें मुख्य हेतु है। इसी लिये कहते हैं—

ईशाना वार्याणाम् । [५ । ७]

श्रेष्ठ दान मानव पुत्रोंका अधिपति जल है। अर्थात् प्राणियोंको जिन जिन बातोंकी आवश्यकता होती है जल अस्तित्व जलमें है इसी कारण जल निवासका हेतु कथन है।

दीर्घ आयुष्यका साधन।

मनुष्यादि प्राणियोंके दीर्घ आयुका साधक जल है यह बात इस मामले देखिये—

ज्योक् च सूर्यं दृशे। [१ । ३]

'बहुत दिनतक सूर्यका दर्शन करूं। यह एक मंत्रांश है। इसका अर्थ है कि—

"मैं बहुत दीर्घ आयुतक जीवित रहूं" अर्थात् जलके उपयोगसे दीर्घ आयु प्राप्त करना संभव है। अन्यत्र 'शत हिम' जो जन्मसे लेकर मरणतक उपयोगी है।

प्रवनन-शक्ति।

जल का नाम वीर्य है। इसकी सूचना किस मंत्रभागसे मिलती है—

आपो जनयथा च नः। (५ । ३)

जल हमें उत्पन्न करता है।" अर्थात् इसके सेवन हमें किंवा प्राणियोंमें प्रजनन शक्ति होती है। आरोग्य बल दीर्घ आयुष्य धातुओंकी समता आदिका प्रजननशक्तिके साथ निकट संबंध है, यह बात पाठक जान सकते हैं। इसलिये इस विषयमें यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रजनन शक्तिका नाम वीर्यकारण है और इसका वर्णन मंत्रमें किस प्रकार हुआ है—

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो
गावो भवथ वाजिनीः ॥ (३ । ७)

"जलके प्रशस्त गुणोंसे अश्व (पुरुष) वाजी बनते हैं और गौएं (स्त्रियां) वाजिनी बनती हैं।" वाजी शब्द प्रजननशक्तिसे पुरुष होनेका भाव बता रहा है। अश्व और घो शब्द यहां पुरुष और स्त्री जातिका बोध करते हैं। जलके प्रशंसासे वाजीकरण की सिद्धि इस प्रकार यहां कही है। तथा और देखिये-

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयोऽध्वरीयताम्। (३।१)

यज्ञकर्ताओंकी माताएं और बहिनें अपने मार्गोंसे जाती हैं।" जो स्त्रियोंके लिये उचित मार्ग है उसीसे जाती हैं। अर्थात् नियमानुकूल वर्तन करती हुई प्रगति करती हैं। जो पुरुष अपने योग्य नियमोंसे चलेंगे तीही उत्तम प्रजनन होना संभव है इस बातकी सूचना यहां मिलती है।

इस रीतिसे इन तीनों सूक्तोंमें जलविषयक महत्वपूर्ण तात्पर्य उपदेश किया है।

[अथर्ववेद प्रथमकांडमें प्रथम अनुवाक समाप्त।]

धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः- चातन । देवता - अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्रौ)

(७)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तीक्ष्णेन शोचिषा यातुधानान् वि लापय ॥२॥
विलपन्तु यातुधाना अस्मिन्नो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥
अग्निः पूर्वं आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । अवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४॥
पश्यामि ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानाँ अदृष्टान् ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्ताच्च आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकायीय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥
स्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! (स्तुवानं) स्तुति करनेवाले (यातुधानं किमीदिनं) चालक राक्षसोंको भी (आ वह) यहां ले आ । (हि) क्योंकि हे देव ! (वन्दितः त्वं) नमनको प्राप्त हुआ तू (दस्योः) डाकूका (हन्ता) हनन वा नाश करने वाला (बभूविथ) होता है ॥ १ ॥ हे (परमेष्ठिन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेदः) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और (तनू-वशिन्) शरीरका दमन करनेवाले अग्ने ! तू (तीक्ष्णेन आज्यस्य) तीक्ष्ण हुए घी आदि का (शोचिषा) भक्षण कर और (यातुधानान्) दुष्टोंको (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥ (ये) जो (यातुधानाः) दुष्ट (अस्मिनः) मारडालनेवाले और (किमीदिनः) चालक हैं (विलपन्तु) विलाप करें । (अथ) और अब हे अग्ने ! (इदं हविः) यह हवि तू और (इन्द्रः च) इन्द्र (प्रति हर्यतम्) स्वीकार करे ॥ ३ ॥ (पूर्वं अग्निः आरभतां) पहिला अग्नि आरंभ करे तथा पश्चात् (बाहुमान् इन्द्रः प्र नुदतु) बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे जिससे (सर्वः यातुमान्) सब दुष्ट लोग (एत्य) आकर (अवीतु) बोले कि (अयं अस्मि इति) यह मैं हूं ॥ ४ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (ते वीर्यं पश्यामि) तेरा पराक्रम हम देखें । हे (नः-ब्रूहि) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! (यातुधानान्) दुष्टोंको (नः) हमारा आदेश (प्र ब्रूहि) विशेष रूपसे कह दे । (त्वया) तुझसे (पुरस्तात्) पहिले (परितप्ताः) तपे हुए (ते सर्वे) वे सब (इदं प्रुवाणाः) यह कहते हुए (उप आयन्तु) हमारे पास आजावें ॥ ५ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (आरभस्व) आरंभ कर (अस्माकं-अयीय) हमारे प्रयोजनके लिये तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [यातुधानान्] दुष्टोंको [उपबद्धान्] बांधे हुए अर्थात् बांधकर [इह आ वह] यहां लेआ । [अथ] और इन्द्र अपने वज्रसे [एषां शीर्षाणि] इनके मस्तक [वृश्चतु] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबसे पीछे लिखेंगे क्योंकि इस सूक्तके कई शब्दोंके अर्थोंका विचार पहिले करना चाहिये । इस सूक्तके कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं और जबतक इनका निश्चित ठीक अर्थ ध्यानमें न आवेगा तब तक इस सूक्तका उपरंग समझमें नहीं आसकता । सबसे प्रथम अग्नि" शब्द है इसका निश्चित करना चाहिये-

अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये इसका निश्चय करनेके लिये जो शब्द इस सूक्तमें हैं 'जातवेदः परमेष्ठिन् स्नूनाभिन् सुभगः वन्दित वृतः देवः अग्नि ।" इन शब्दोंका अर्थ देखकर अग्निका स्वरूप हमसे प्रथम हम देखेंगे—

१ जातवेदः— [जातं वेत्ति] जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है। [जात वेदाः] जिसने ज्ञान प्राप्त किया है। अर्थात् ज्ञानी लोकविद्या और आत्मविद्या का यथावत् जानने वाला।

२ परमेष्ठिन्—(परमे पदे स्थाता) परमपद में ठहर जानेवाला अर्थात् उन्नतिकी अंतिम अवस्थाको जो प्राप्त है वा मनुष्य जिसने प्राप्त किया है पूर्ण-पूर्ण अवस्थाका अनुभव करनेवाला।

३ स्नूनाभिन् (स्नू नोदने) अपने शरीर और इन्द्रियोंको स्वाधीन करने वाला इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह करनेवाला आत्मवान् योगी वा शासन जिसने अपनी कायासिद्धि की है। यही मनुष्य परमे स्थिर होना संभव है।

४ सुभगः — सुभग शब्द स्पष्ट सन्मार्गका उपदेश देने का भार बता रहा है। मनुष्योंमें जो योग्य धर्म मार्गका उपदेश देता है।

ज्ञानी उपदेशक

ये चार शब्द अग्निके गुण धर्म बता रहे हैं। ये शब्द देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यहांपर अग्नि "धर्मोपदेशक पण्डित" ही है। सृष्टि विद्या जाननेवाला अध्यात्म शास्त्रमें प्रवीण योगाभ्यासमें खरी इन्द्रिय और मनको वशमें रखने वाला समाधि की सिद्धि। अवश्य प्राप्त है यह ही ब्राह्मण पण्डित "सुभगः" अर्थात् लोगोंको धर्मोपदेश करनेके लिये योग्य है। उपदेशक बननेके पूर्व उपदेशकी तैयारी कैसी होनी चाहिये इसका बोध यहां प्राप्त हो सकता है। ऐसे उपदेशक हो वा ही धर्मका ठीक प्रचार होना संभव है।

५ वन्दित —इस प्रकारके उपदेशककी ही सब लोग वन्दना करते हैं।

६ वृतः — जो सत्पथ पर चलता है वह वृत होता है। यह उपदेशक पहले स्वयं सत्पथ पर चलता है तब अन्यको सत्पथ पर चलनेका उपदेश देता है इस लिये यह वृत है। इस शब्दसे इसका अर्थ "उपदेशक" यह भी यहां सिद्ध होता है। धर्मका उपदेश उपयुक्त उपदेशक ही कर सकता है। पर पहुंचाने वाला यह वृत धर्मका उपदेशक ही है।

७ देवः—प्रकाशमान तेजस्वी।

८ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोशनी बढ़ाकर अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला। उन्नता (धर्मी) उपदेश करके इसका करने वाला।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं। इस प्रकार वेदमें "अग्नि" शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है। तथा "इन्द्र" शब्द क्षत्रियका वाचक है।

ब्रह्म क्षत्रिय।

ब्रह्म क्षत्रिय" शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है। वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आये हैं। जैसे भाव अग्नि-इन्द्र" ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर प्रयुक्त हुए हैं। अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है। अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

इन्द्र कौन है ?

स्वयं इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है क्योंकि इसका अर्थ ही वशु वाचक है—

१ इन्द्रः— (इन्द्+रः) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेवाला।

२ वाहुमान्— वाहुवाला भुजावाला अर्थात् वाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध। हरएक मनुष्य भुजावाला होता ही है परन्तु क्षत्रियको ही "वाहुमान्" इसलिये कहा है कि उसका अर्थ ही वाहुबल का होता है।

३ इन्द्रः वज्रेण खानीन्यि वृश्चतु = क्षत्रिय वज्रसे शत्रुओंके सिर काटे। यह क्षत्रियका कार्य इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें वर्णन किया है। पुढ़ेमें शत्रुओंके सिर काटनेका कार्य तथा हाथोंके सिर काटनेका कार्य क्षत्रियोंका ही संभव है।

इससे सिद्ध है कि इस सूक्तमें 'इन्द्र' शब्द क्षत्रिय का भाव सूचित करता है। अग्नि शब्दसे ब्राह्मण उपदेशक और इन्द्र शब्दसे शासन का कार्य करनेवाले क्षत्रियका भाव लेकर इस सूक्तका अर्थ देखना चाहिये।

धर्मोपदेशका क्षेत्र।

पाठक यह न समझें कि सामाजिक या धार्मिक सब लोगोंके व्याख्यान देना ही धर्मोपदेशक का कार्य क्षेत्र है। यहां तो धार्मिक लोग ही आते हैं। पहिलेसे जिनकी प्रवृत्ति धर्ममें होती है वे ही धार्मिक लोग व्याख्यानमें आते हैं इस लिये ऐसे धार्मिकोंको धर्मोपदेश देना चाहे हुए उपदेश का। फिर जैसे

समान ही है। वास्तव में मलिन कपड़े को ही धोकर स्वच्छ करना चाहिये इसी तरह अधार्मिक वृत्तिके लोगों को धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये यही सच्चा धर्म प्रचार है यह बतलानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है— यातुधान किमीदिन्, वस्तु अत्रिन्।" अब इनका आशय देखिये

१ यातु- 'यातु" मटकनेवाले का नाम है। जिसको घरबार कुछभी नहीं है और जो वन्य पशुके समान इधर उधर मटकता रहता है उसका नाम 'यातु' है। मटकने का अर्थ बतलानेवाला "या" धातु इसमें है।

२ यातुमान्- यातुमान्, यातुधान, यातुमत् सबका भाव 'यातुवाला' है अर्थात् जिसके पास बहुतसे यातु (मटकनेवाले) लोग होते हैं। अर्थात् मटकने वालों के समाज का सूचिया।

३ यातुमावान् – बहुतसे यातुमानों को अपने काबूमें रखनेवाला।

४ यातुधान:- यातुओंका धारण पोषण करनेवाला अर्थात् मटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनको पोषण करनेवाला। "यातु धान्य" भी इसी मतलब का वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको घरबार स्त्रीपुत्र आदि होते हैं, और जो कुटुंबमें रहता है, वह उतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता जितना कि जिसका घरबार कुछभी न हो और जो मटकने वाला होता है। वह क्या मूंछा रहता है किसी प्रकारका मनका समाधान उसको नहीं होता इसलिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये वह तैयार होता है; इसी कारण 'यातु" शब्द "इधर उधर जाना इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दुष्ट डाकू, चोर, लुटेरे बदमाश आदि इसी शब्दके अर्थ आगे आकर बने हैं। ये चोर डाकू जबतक अकेले अकेले रहते हैं तब तक उनका नाम "यातु' है, ऐसे दोचार डाकुओंको अपने साथमें रखकर साथ घूमनेवाला यातु-मान्, यातु-वान् यातुमत् अर्थात् यातुवाला किंवा डाकुवाला कहा जाता है। पहिले की अपेक्षा इससे समाजको अधिक कष्ट पहुंचते हैं। इस प्रकारके छोटे डाकुओंके अनेक दलोंको अपने आधीन रखने वाला "यातु मान-वान्' अर्थात् डाकुओंकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वकी अपेक्षा अधिक कष्ट ग्रामों और प्रांतोंको दे पहुंचा सकता है। इसीके नाम "यातु-धान, यातु धान्य' हैं। पाठक इससे जान सकते हैं कि ये वैदिक शब्द जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं हीन और दुष्ट लोगोंके वाचक हैं। अब और देखिये—

५ अत्रिन्- अत्री (अतति) सतत मटकना रूप धातु है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव (अत्ति) खानेवाला तथा अपने लाभके लिये दूसरोंका गला काटनेवाला। जो थोड़ेसे धनके लिये खून करते हैं। इस प्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।

६ किमीदिन्- (किं इदानीं) अब क्या लोभ इस प्रकार की तृष्णाके मूंहे किंवा पेटके लिये ही दूसरोंका घात पात करनेवाले दुष्ट लोग।

७ वस्तु- (वस् उपक्षये) घातपात करनेवाले दूसरोंका नाश करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग।

ये सब लोग समाजके सुखका नाश करते हैं इनके कारण समाजके लोगोंको कष्ट होते हैं। ये ग्राममें आगये तो ग्राममें चोरी डकैती खून खटमार होती है जो विलकुल अत्याचार होते हैं उनसे अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं इसलिये इन लोगोंको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये यह इस सूक्तका आदेश है। जो घरबारसे हीन हैं जो जंगलों और वनों में रहते हैं जो चोरी डकैती आदि दुष्ट कर्म करते हैं। उनको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नागरिक हैं जो पहिलेसे ही धर्मके ज्ञानी हैं उनमें धर्म की आवश्यकता कमती बेशी है, परंतु जिनके पास धर्म की आवाज नहीं पहुंची और जिनका जीवन क्रम ही धर्मबाह्य मार्गसे सदा चलता रहता है उनका सुधार करके ही उनको उत्तम नागरिक बनाना चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य क्षेत्र देखे।

धर्मोपदेशक के गुण वर्णन कार्य में निपुण अत्रिन् के गुण और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी अत्यंत आवश्यकता है उनके गुणकर्म हमने इस सूक्तके आधारसे देखे। अब इन शब्दार्थके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

दुष्टोंका सुधार।

प्रथम मंत्र—"हे धर्मोपदेशक! तुम्हारी प्रशंसा करने वाले दुष्ट डाकुओं को यहां ले आ, क्योंकि तू वेदका ज्ञाता होनेपर वस्तुओंका ज्ञाता होता है ॥ १ ॥

इस पहिले मंत्रमें दो विधान हैं—

(१) स्तुति करनेवाले डाकुओं को यहां ले आ और

(२) उनका नमस्कार ग्रहण करके उनका ज्ञाता हो।

इसका तात्पर्य यह है— धर्मोपदेशक ऐसे दुष्ट डाकू बदमाश आदिकों में धर्मोपदेश करनेके लिये जावे उनमें सत्य धर्मका उपदेश करे चोरी आदि पाप कर्म हैं यह उनको ठीक प्रकार

का दे उन दुष्ट कर्मों से उन को वह निवृत्त करे जब वे
प्रकार जानेंगे कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं और
सबोंकी रक्षा करनेवाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य
इस धर्मोपदेशकसे प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास
या भक्तिसे आवेंगे इसकी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने
र झुकायेंगे अर्थात् इसको प्रणाम करेंगे। जब उनमें इतनी
ग्रामणिकता बढ़ेगी तब उनका दानूफलक याने हनन स्वयं
हो जायगा। इसलिये मंत्र कहता है कि धर्मोपदेशक दुष्ट
ुष्योंको अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर
र्थात् अपने अनुगामी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे
ौर उनसे नमस्कार प्राप्त करके उनका घातक बने।

" जिससे नमस्कार प्राप्त करना उसकाही घात करना प्रथम
ंचित सा प्रतीत होता है परन्तु अधार्मिक दुष्ट मनुष्यों के
ंहार करनेवालेसे ऐसाही बनता है। जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक
न जाता है उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने
पना सिर झुकाता है और सिर झुकाने ही दुष्ट मनुष्यसे
र कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह भला नया
ी मनुष्य बनता है। यदि एक डाकू धर्मोपदेश सुनकर धार्मिक
नजाय तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अर्थ यही है कि
एक डाकू मर गया और एक सच्चा धार्मिक मनुष्य नया पैदा
हुआ। अब दूसरा मंत्र देखिये-

भिक्षा भोजन करो।

द्वितीय मंत्र- हे परम प्रेम अन्तस्थमें रहनेवाले शरीर
बलम रखने वाले ज्ञानी धर्मोपदेशक! तू आदि पदार्थ
ोक कर अर्थात् प्रमाणसे ग्रहण कर। और दुष्टोंको
रुलाओ ॥ १२ ॥

इस द्वितीय मंत्रमें दो आदेश हैं—
(१) तोलकर ही आदि भोजन खा और
(२) दुष्टोंको रुला।

धर्मोपदेशकों को ये दोनों बातें ध्यानमें धरनी चाहिये। धर्मोपदेशक जिस समय बाहर प्रचारके लिये जाते हैं उस समय भगत लोग उनको मेवा मिठाई घी मक्खन दूध आदि पदार्थ आवश्यकतासे भी अधिक देते हैं। तथा जो नये धर्ममें प्रविष्ट होते हैं उनकी भक्तिकी तीव्रता अस्वाभाविक होनेके कारण वे ऐसे उपदेशकों का आवश्यकसे अधिक ही आदर करते हैं। इस समय बहुत समय है कि जिह्वाकी लालचमें आकर उपदेशक — तर खाव और ओवर की बिमारीके कारण बिमार पड़े। इसलिये वेदने उपदेश दिया कि धर्मोपदेशकोंको तोलकर ही खाना चाहिये। ये उपदेशक सदा प्रवासमें रहनेके कारण तथा अन्नादिके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें विकार होना संभव है, अतः जितनी पाचक शक्ति होती है उससे भी कम ही खाना इनके लिये क्षम्य है। इस कारण मंत्र कहता है कि उपदेशक तोलकर ही भी आदि पदार्थ खावें" कभी अधिक न खावें।

मंत्रमें दूसरी बात दुष्टोंको रुलाने की है। यदि उपदेशक एक प्रमाण साबी होगा और यदि उसके उपदेशसे लोगोंको अपने दुराचारका पता लगा तथा उनके अंत करणमें वही भावना आकृत हो गई तो उनके दो पक्षमें तथा अपने पूर्व दुराचारमय जीवनके विषयमें पूर्ण पश्चात्ताप होनेमें कोई सन्देहही नहीं है। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तीसरा मंत्र देखिये—

दुष्टजीवनका पश्चाताप

तृतीय मंत्र- दुष्ट लोग रो पड़ें और हे धर्मोपदेशक! तेरे लिये यह हमारा दान है अतिथि भी इसका स्वीकार करे ॥ १३ ॥

उत्तम धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुराचारका पश्चात्ताप होवे और वे रो पड़ें। तथा अवश्य ऐसे धर्मोपदेशकोंको तथा उनके सहायक क्षत्रियोंको भी बड़ा अधिक दान देती रहे। अन्नादिकी सहायतासे ही धर्मोपदेशक कार्य चलता रहे। अब चतुर्थ मन्त्र देखिये-

धर्मोपदेशक कार्य चलावे।

चतुर्थ मन्त्र- "पहिले धर्मोपदेशक अपना कार्य प्रारंभ करे। पीछेसे क्षत्रिय उसकी सहायता करे। इसका परिणाम ऐसा हो कि सब दुष्ट आकर मैं यहां हूं" ऐसा कहें" ॥ १४ ॥

धर्मोपदेशक देशदेशान्तरमें जहां जहां वे पहुंच सकें वहां निडर होकर जाकर अपना धर्मप्रचारका कार्य जोरसे करते जांय। कठिनसे कठिन परिस्थितियोंमें भी न डरते हुए वे अपना कार्य जोरसे चलावें। पीछेसे क्षत्रिय उनकी उचित सहायता करे। परन्तु ऐसा कभी न होवे कि धर्मोपदेशक पहिले ही क्षत्रियोंकी सहायता प्राप्त करके शस्त्रबलके जोरपर धर्मप्रचार का कार्य चलावें यह ठीक नहीं। इसलिये वेदका कहना है कि धर्मोपदेशक ब्रह्मबल प्राप्त करके क्षत्रियोंसे अपना धर्म प्रचारका कार्य न करें प्रत्युत धर्मप्रचारको अपना आवश्यक कर्तव्य समझ कर ही अपना कर्तव्य करता रहे। इस धर्मप्रचारका परिणाम

देता है कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारके और एक दिनसे उपदेशकोंके पास आकर कहें कि हम अब आपकी शरणमें आगये हैं। यही धर्म प्रचारका साध्य है। धर्म प्रचारसे दुराचारी डाकू चुगर जोर और अच्छे धार्मिक बनें वे अपने पूर्व दुराचारका पश्चात्ताप करें तथा जब पूर्व दुराचारका उनको स्मरण आवे उस समय उनको रोना आवे। छातिसके बल की अपेक्षा न करते हुए केवल आत्मबल ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तिसे यह कार्य करें। जिससे सविता उनको मदत पहुचावे। सविताके जोरसे जो धर्म प्रचार होता है वह सब नहीं है, परन्तु आत्मबल अपने सात्विक शक्तिसे जो दुष्ट पक्का देता है वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है। इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय बतानेके पश्चात् अब पांचवां मंत्र देखिये—

दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि।

पंचम मंत्र— " हे ज्ञानी उपदेशक! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे। हे मनुष्योंको सन्मार्ग बतलानेवाले! तुम दुष्टोंको हमारे धर्मका उपदेश करो। तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप को प्राप्त हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैसाही कहें। ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त प्रचारक तथा धर्मोपदेशक जिस समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है उस समय उसका गौरव करते हुए लोग कहते हैं कि हे उपदेशक! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सदुपदेशसे छिपन आर्योके हृदय में पश्चात्ताप उत्पन्न करते हो और किनको सच्चे धर्मकी दीक्षा देते हो। इसीसे तुम्हारे पराक्रमका हमें पता लग जावेगा। तुम जाओ हम तुम्हारा गौरव करते हैं। सत्यधर्मका उपदेश सब जनता तक पहुचाओ। तेरे उपदेश की ज्ञानाग्निसे तप्त हुए और पश्चात्ताप प्राप्त हुए लोग हमारे अदर आवें और कहें कि हमने अब धर्मामृत पीया है। और अब हम आपके बने हैं।

"तप्त तप्त परिस्रव" ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं। तप्त शब्द तपकर शुद्ध होनेका सूचक है। अग्नि तपाकर सोना चांदी लोहा आदि धातुओंको शुद्ध करता है अर्थात् उनके दोषोंको दूर करता है। इसी प्रकार यहांका आप्त जो ज्ञानी धर्मोपदेशक है-वह अपनी ज्ञानाग्निमें तप दुष्टोंको तपाता है और अच्छी प्रकार उनके मलोंको दूर करता है। शुद्धिकी यही विधि है। मोहक जीवनको छोडकर तपके जीवनमें आना ही धार्मिक बनना है। इस दृष्टिसे इस मंत्रका "परि-स्रवा" शब्द बडे भावका सूचक है। अब छठे मंत्रका भाष्य देखिये—

धर्मका दूत।

षष्ठ मंत्र— हे ज्ञानी पुरुष! अपना कार्य आरंभ कर। हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें आगे किया है। हे उपदेशक! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे पवित्र कर ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकको लोग कहते हैं कि- अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ करदो। बिना डर देशदेशांतरमें जा और वहां सत्यधर्मका प्रचार कर। यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिये तुम्हें आगे भेजा जाता है, अथवा आगे रखा जाता है। हमारा धार्मिक संदेश जगत्में फैलाना है इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दूतही तू है। अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक वृत्तिसे रहते हैं उनको अपने सदुपदेशद्वारा शुद्ध करो और उनको अपने पूर्व दुराचारका पूर्ण पश्चात्ताप होने दो। उनके दिलोंमें ऐसा पक्का दो कि जिससे वे अपने पूर्वाचरणका स्मरण करके रोने लगें। इस प्रकार अपवित्र सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंको भेजा जाता है।

डाकुओंको दण्ड।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो सुधरेंगे नहीं और अपना दुराचार जारी रखेंगे अथवा पूर्वोक्त प्रचारके लिये धर्मोपदेशकोंके पश्चात्ताप प्रयत्न करनेपर भी जो अपना दुष्ट आचरण नहीं छोडते और अत्याचारी चोरी डकैती आदिसे अत्यंत कष्ट देते ही रहेंगे उनको योग्य दण्ड देना अत्यावश्यक कार्य है यह कार्य क्षत्रियका है यह आशय अगले मंत्रमें कहा है-

सप्तम मंत्र— हे धर्मोपदेशक! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी दुष्ट डाकू आदि अपने दुराचार छोडते नहीं उनको बांध कर पहाडों का और पश्चात् क्षत्रिय उनके सिर तलवारसे काट दे ॥ ७ ॥

जब धर्मोपदेशक अपना धर्मोपदेशका प्रयत्न करे और दुष्टोंको पवित्र धार्मिक बनानेका यत्न करे। जो दुराचारी बनेंगे वे उसमें सम्मिलित हो जायेंगे। परंतु जो बारंबार प्रयत्न करनेपर भी अपना दुष्ट आचार जारी रखेंगे उनको दण्ड देना आवश्यक ही है। कर्म कि सब शासन संस्था समाज की शांतिके लिये ही है। परंतु दुष्टोंको भी सुधरनेका पूरा अवसर देना चाहिये। जब बारबार प्रयत्न करनेपर भी वे सुधरेंगे नहीं तो क्षत्रिय आगे बढ और अपना कठोर दण्ड आप कर। शासन उन अत्याचारी दुष्टोंको बांधकर उनके सिर को कटवे इससे

अन्योंको भी यह उपदेश मिल सकता है कि हम भी धार्मिक बनकर बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी यही अवस्था बनेगी।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छः मंत्र हैं और एकही मन्त्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आगे करनेको सूचित किया है। इससे स्पष्ट है कि कमसे कम छः पुष्ठा प्रयत्न ब्राह्मण अपने यजमानसे करें इतने प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरें कमसे कम छः बार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरें तलवार अवश्य देने-पर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोड़ते उनपर ही क्षत्रियका वज्र प्रहार होना योग्य है। क्योंकि जिसको जन्मसे ही दुष्टता करने का अभ्यास होगा वे एक बारके उपदेशसे पक्के आर्य्य अथवा सुधरेंगे यह कठिन अथवा असम्भव है। इसलिये भिन्न उपायोंसे उनको अधिक अवसर देने चाहिये। इतना करनेपर भी जो नहीं सुधरते उनको या तो बंधन में डालना या शिरच्छेद करना चाहिये।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियभी करता है परन्तु दोनोंके हननों में बड़ा भारी भेद है। पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और छटवें मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बताई है। क्षत्रिय की रीति यही है कि तलवार लेकर दुष्टका गला काट डालना अथवा दुष्टोंको कारागृहमें डालकर रखना। ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है। ब्राह्मण उपदेश करता है उपदेश द्वारा मोक्षार्थीके दिलोंमें पक्का घेरा है उनको अनुयायी बना लेता है उनके सबकी दुष्टता का नाश करता है। दोनोंका उद्देश दुष्टोंकी संख्या कम करने का ही होता है परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंको सुधारनेका प्रयत्न करता है इसका मुख्य बताया है और दुष्टोंकी संख्या घटाता है। और क्षत्रिय उनको दण्ड करके उनकी संख्या घटाता है। इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न भेद और क्षत्रियके दूसरे देखिये है।

वेदमें जहां हनन वहन परिताप, विलाप' आदि शब्द आते हैं वहां सर्वत्र एकसाही अर्थ लेना उचित नहीं। वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं या क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये। हनन से दुष्टकी संख्या घटती है ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों अपने अपने ढङ्गसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बतायाही है कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा दुष्टका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा दुष्टको घटाता है। इसी प्रकार विलाप" भी दो प्रकार का है। क्षत्रिय दुष्टकी हत्या करता है उस समय भी दुष्टके लोग विलाप करते हैं और रोते पीटते ही हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय लोगोंके हृदयमें सद्भिमान और धर्मप्रेम उत्पन्न करने द्वारा इस दुराचारका पश्चात्ताप उत्पन्न करता है उस समय भी ये लोग रोते हैं और आंसू बहाते हैं। इन दोनों आंसू बहाने में बड़ा भारी भेद है। जो इस परिवर्तन ब्राह्मण कर सकता है वह क्षत्रिय कदापि नहीं कर सकता। यही बात "परिताप सन्ताप आदिके विषयमें समझनी चाहिये।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्राह्मणक्षत्रिय प्रयोगोंके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंका अनर्थ किया है। इसलिये पाठक इस भेदको पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश आत्मसात् करें। यह बात एकबार ठीक प्रकार समझमें आगई तो मन्त्रोंका आशय समझने में कोई कठिनता नहीं होती -परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके कर्मयोग और तीक्ष्ण मार्गोंका भेद यदि ठीक प्रकार समझमें नहीं आया तो अर्थका अनर्थ प्रतीत होगा। इसलिये दुष्टोंकी संख्या ब्राह्मण किस प्रकार घटाता है और क्षत्रिय किस प्रकार घटाता है इसी प्रकार वे दोनों शत्रुओंको किन रीतियों से हटाते हैं सपाते हैं और जलाते हैं यह पाठक अपने विचार से और यहां बताये मार्गसे ठीक समझें और ऐसे सूक्तोंका तात्पर्य जानें।

(८)

(ऋषिः—चातन । देवता—अग्नि, बृहस्पति)

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत्। य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥
अप स्तुवान आगमदिमं सु प्रति हर्यत। बृहस्पते वशे लब्ध्वाथीपोमा वि रिंक्षतम् ॥२॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च। नि स्तुवानस्य पातय परमस्पुतावरम् ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्व ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४॥

अर्थ—(नदी फेनं इव) नदी फेन को जैसी लाती है उस प्रकार (इमं हविः) यह दान (यातुधानात् आवहत्) दुष्टोंसे यहां लावे । (यः पुमान्) जो पुरुष अथवा जो स्त्री (इदं अकः) यह पाप करती रही है । (सः अमः) वह मनुष्य ऐसी (स्तुवतां) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ (स्तुवानः अयं) प्रशंसा करनेवाला यह साधु (आगमत्) आया है (इमं) इसका (सम् प्रति हर्यत) अवश्य स्वागत करो । हे (बृहस्पते) ज्ञानी उपदेशक ! इस को (अग्ने अध्वरे) यज्ञमें रखकर हे (अग्नी सोमौ) अग्नि और सोम ! (वि चिन्वतं) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे (सोमप) सोमपान करनेवाले ! (यातुधानस्य पुरां) दुष्टों के स्थान के प्रति (अहि) जा पहुंच और (च मन्यतः) उन्हें सेना अर्थात् सन्मार्गसे चला । तथा (स्तुवानस्य) प्रशंसा करनेवालेका (परं उत अवरं) श्रेष्ठ और कनिष्ठ (अधि) आगे (नि धानय) रखकर दो ॥ ३ ॥ हे (अग्ने जातवेदः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ! (यत्र गुहा) जहां कहीं गुफाओं में (एषां) इन (अत्रिणां सतां) भक्षण करनेवाले सज्जनों के (जनिमानि) दुर्गों और संस्थाओं को (वेत्थ) तू जानता है (तान् ब्रह्मणा वावृधानः) उनको ज्ञानसे बढ़ाता हुआ (एषां शततर्हं जहि) इनके सैकड़ों दलोंका नाश कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्वसूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे बताता है। दुष्ट लोगोंको किस रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है। इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषण आगया है वह 'बृहस्पतिः' है। इसका अर्थ ज्ञानपति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका गुरु ब्राह्मण ही है; इसलिये इस विषयमें शंका ही नहीं है। सोम" शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है। सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। ब्राह्मणोंका सुविचा सोम है उसी प्रकार बृहस्पति भी श्रेष्ठ ज्ञानी ब्राह्मण ही है। पाठक इन शब्दोंको पूर्वोक्त सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंके साथ मिलाकर देखें और सबका मिलकर मनन करें तो उनको पता लग जायगा कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण किस गुणोंसे युक्त होना चाहिये। अब क्रमशः मन्त्रोंका आशय देखिये—

धर्मोपदेशका परिणाम ।

प्रथम मन्त्र—" जिस प्रकार नदी फेन को लाती है उस प्रकार यह दान दुष्टोंका यहां ले आवे। उनमें से स्त्री या पुरुष जो कोई इस प्रकारका पाप करता है वही आदमी स्तुति कर सेवकता बने।" ॥ १ ॥

छिन्नभिन्न भगी हुई नदी जिस प्रकार अपने साथ फेनको लाती है उसी प्रकार धर्मप्रचार के लिये अपना किया हुआ यह दान दुष्ट लोगोंको यहां शीघ्र लावे। अर्थात् इस दानका विशेष धर्मप्रचारमें होकर उस धर्मप्रचारसे इतना प्रकाश पड़े कि जिससे सब दुष्टलोग अपनी दुष्टता छोड़कर सभ्य सज्जनोंके बनानेके लिये इधर खिंच आजावें। उनमें स्त्री हों या पुरुष हों जो कोई उनमें पापाचरण करनेवाला हो वह उपदेश सुनते ही धर्म मार्गसे प्रेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर धर्मकी प्रशंसा करे और अधर्माचरण की निंदा करे। पाठक ध्यान रखें कि हृदयके भाव परिवर्तित होनेका यह पहिला लक्षण है। धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्म सबके लोग उससे किस प्रकार आचरण करें इस विषयका उप देश द्वितीय मन्त्रमें देखिये—

नवप्रविष्टका आदर ।

द्वितीय मंत्र—" यह स्तुति करता हुआ आगया है इसका स्वागत करो। हे ज्ञानी पुरुष ! इसको अपने यज्ञमें रख कर ब्राह्मण और अग्निका सुविचा से उस पर ध्यान रखें ॥ २ ॥ "

उपदेश श्रवण करके धर्मकी ओर आकर्षित होकर धर्मकी प्रशंसा करता हुआ यह पुरुष आया है। अर्थात् जो पहिले अधार्मिक दुराचारी साधु था उसका मन धर्मकी ओर झुका है और वह सुने हुये उपदेशसे समझता है कि धर्म मार्गसे जाना ही उत्तम है। धर्मकी श्रेष्ठता वह जानने लगा है और अधर्माचरणसे मनुष्यको जो विपत्ति होती है वह उसके मनमें अब अच्छी प्रकार आगई है। उस विपत्तिसे बचनेके कारण वह अब धर्मक्षेत्रमें प्रविष्ट होना चाहता है और इसी कारणसे वह धार्मिक लोगोंके पास आया है। इस समय धार्मिक लोगोंको चाहिये कि वे उसका स्वागत करें उसका सत्कार आदर पूर्वक करें अर्थात् उसको अपनावें। बृहस्पति अर्थात् जो ज्ञानी ब्राह्मण हो उसके पास वह रहे वह उसके कहे नियमोंके अनुसार चले तथा अन्य समय उसका

निरीक्षण उपदेशक और ब्राह्मणोंका सुविधा करते रहें और बारंबार इनको धर्मबोध कराते रहें।

इस प्रकार उसकी योग्यता बढ़ाई जाय और उसके धार्मिक भावना पोषण किया जाय। यदि तो धर्मक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ वह मानव सज्जनोंकी उदासीनताके कारण उदासीन होकर चला जायगा और अधिक विरोधी बनेगा; इसलिये नवीन प्रविष्ट हुए मनुष्यको अपनानेके विषयमें सत्संगियोंपर बड़ा भारी बोझ है। इस विषयमें वेदके चार आदेश ध्यानमें धरने योग्य हैं।

१ यह नवीन प्रविष्ट हुआ है
२ इसका गौरव करो
३ प्रविष्ट होते ही झटसे इसे विषयमें पकानेकी शिक्षा दे और
४ अन्य विद्वान् इसका निरीक्षण करें।

इस मंत्रमें विश्वतः शब्द है उसका प्रसिद्ध अर्थ निशाना मारना है निशाना मारनेका तात्पर्य उसपर केवल दृष्टि रखना उसकी विशेष निगरानी करना है। उसका विशेष ख्याल रखना उसका सदा भला करनेका यत्न करना। अस्तु। अब तीसरा मंत्र देखिये—

दुष्टोंकी संतानका सुधार।

तृतीय मंत्र— हे सोमपान करनेवाले! दुष्ट लोगोंकी प्रजाको अर्थात् उनके बालबच्चोंको प्राप्त करो और उनको उत्तम मार्गमें चलाओ। जो तुम्हारी प्रशंसा करेगा उसकी दोनों आंखें नीचे करो॥ ३॥

सोम-पान करनेवाला अर्थात् यज्ञकर्ता ब्राह्मण यज्ञद्वारा धर्म प्रचारका बड़ा कार्य करता है। दुष्टोंका सुधार करनेके महत्व पूर्ण अर्थमें विशेष महत्त्वकी बात यह है कि धर्मके प्रचारक आजुसे बड़े हुए आदमियोंकी अपेक्षा नवयुवकोंके सुधारका अधिक यत्न करें। नवयुवकोंके संग करनें उनका आचार सुधारें उनकी वृत्ति सदाचारकी ओर करें अर्थात् हरएक रीतिसे उनको धार्मिक बना देनेका सबसे पहिले उद्योग करें। बड़ोंके आजुसे बड़े लोग अपने कुसंस्कारमें ही मस्त रहते हैं अथवा उनको वही आचार प्रिय और लाभदायक प्रतीत होता है अतः उनको पलटाना कठिन कार्य है। परंतु नवयुवकोंके कोमल मन होते हैं, उनमें अच्छे बुरे कुसंस्कार नहीं होते इसलिये नवयुवकोंका सुधार अति शीघ्र हो सकता है। इसके अतिरिक्त यदि एक युवक सुधर गये तो उनका बालबच्चा वंशही एकदम सुधर जाता है। इसलिये नवयुवकोंको सुधारनेका प्रयत्न विशेष रीतिसे करना चाहिये। दुष्टोंके बालकोंको जमा करके उनको धर्मनीति अर्थात् धार्मिक आचारकी शिक्षा देना चाहिये। उनमें जो तुम्हारे धर्म की प्रशंसा करेगा उसकी आंखें नीचे होनी करो, अर्थात् उसकी जो आंखें ऊंची होती हैं वह नीची हो जांय। इसका आशय यह है कि उसकी धर्मकी दृष्टि दूर करके उसमें सत्य मार्ग कुशल दृष्टि स्थापित करो। अधार्मिक दुष्ट लोगोंकी आंखें लाल और मदोन्मत्त होती हैं भौंहें टेढ़ी और चढ़ी हुई होती हैं दूसरे मनुष्यको मार डालना उनकी एक सहज बात होती है यह टेढ़ी दृष्टिका भाव है। नीची दृष्टिका आशय शालीनता, भद्रता, नम्रता, आत्मपरीक्षा, आत्मसुधार आदि है। (अधि विनामय) आंख नीचे करना यह दृष्टिमें भेद है। साधारण मनुष्यकी दृष्टि और प्रकारकी होती है चौरकी दृष्टि और होती है साधुकी दृष्टि और होती है तथा साहूकी दृष्टि भी और होती है। सबकी दृष्टि तथा तरुण और वृद्धोंकी दृष्टिमें भेद है। इसलिये वेदमें कहा कि उनकी दृष्टि नम्र करो। धार्मिक आचार जीवनमें आने गये तो ही यह दृष्टि बनती है अन्यथा नहीं। अस्तु। इस प्रकार तृतीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रका आशय अब देखिये—

घरोंमें प्रचार।

चतुर्थ मंत्र— हे ज्ञानी उपदेशक! जहां जहां पुरुषोंमें इस मन्त्रके वाक्योंमेंसे किंचित् मंत्र पुरुषोंके कुछ का संसार होंगे वहां पहुंच कर शान्तको उनमें वृद्धि करते हुए, उनमें होनेवाले सैकड़ों कष्टोंको दूर करो॥ ४॥

चार वाक्य आदि मंत्रोंके सुधारका विचार करते समय उनका सभामें उपदेश करना यह साधारण ही बात है, इससे अधिक परिणाम कारक बात यह है, कि उनके परिवारोंमें जाकर वहां उनको धर्मोपदेश करना चाहिये। ऐसा करनेके समय उन दुष्ट लोगोंमें जो कुछ भी भले आदमी (सती अधिवा) होंवे उनके घरोंमें पहिले जाना चाहिये क्योंकि उनके दिल किंचित् नरमसे होनेके कारण उनपर शीघ्र परिणाम होना संभव है। इनके घरोंमें जाकर उनको उनकी स्त्रियोंके तथा उनके बाल बच्चोंको योग्य उपदेश देना चाहिये। उनकी उपासना (ब्रह्मज्ञान आत्मबोध) ज्ञान द्वारा करनेका यत्न करना चाहिये अर्थात् उनको ज्ञान देना चाहिये। सच्चे धर्मज्ञान देनेसे ही उनका उद्धार हो सकता है। एकबार धर्मज्ञानमें इनको रुची बढ़ गयी तो इनसे हजारों सैकड़ों कष्ट दूर हो जावेंगे और इनका भी कल्याण होगा।

इस प्रकार इन दो सूक्तोंका उपदेश विशेष मनन करने योग्य है। धर्म प्रचार करने वाले उपदेशक तथा उपदेशकोंको नियुक्त करनेवाले सज्जन इन वैदिक आदेशोंका मनन करें और उचित बोध लेकर अपने आचरणमें लानेका यत्न करें।

वर्चःप्राप्ति-सूक्त ।

यह सूक्त "वर्चस्य-पशु" का प्रथम सूक्त है। वर्चस्यपशुके सूक्तोंमें तेज संवर्धन बलसंवर्धन पशुकी प्राप्ति शरीरकी पुष्टि समाज या राष्ट्रमें सम्मानप्राप्ति" आदि अनेक विषय होते हैं। वर्चस्यसूक्तमें कई सूक्त हैं उनका निर्देश आगे उपयोगी होगा। इस सूक्तपर विचार किया जायगा—

(१)

[ऋषि – अथर्वा। देवता-वस्वादयो नानादेवताः]

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।
सुपत्नो अस्मद्वरो भवन्नुत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥
येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन स्वमग्न इह वर्चसेमं संजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥ ३ ॥
एषां यज्ञपुत वर्चो ददेऽहं राधस्पोषमुत चित्तान्यग्ने।
सुपत्नो अस्मद्वरो भवन्नुत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

अर्थ – (अस्मिन्) इस पुरुषमें (वसवः) वसु देवता तथा इन्द्र पूषा वरुण मित्र अग्नि ये देव (वसु) पशुको (धारयन्तु) धारण करें। आदित्य और विश्वे देव (इमं) इस पुरुषको (उत्तरस्मिन् ज्योतिषि) अति उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो ! (अस्य) इस पुरुषके (प्रदिशि) आदेशमें उजाले सूर्य अग्नि और हिरण्य (अस्तु) होवे। (सुपत्नः) अच्छा (अस्मद् वरः) हमारे घरमें (भवन्नुत्तमं) होते और (इमं) इसको (उत्तमं नाकं) उत्तम सुखमें (अधि रोहयेमम्) हम चढ़ावें ॥ २ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी परमेश्वर ! (येन उत्तमेन ब्रह्मणा) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्रके लिये (पयांसि समभरः) दुग्धादि रस दिये जाते हैं (तेन) उस उत्तम ज्ञानसे हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! (इमं) इसको (इह) यहां (वर्चसे) यज्ञादि और (एनं) इसको (संजातानां श्रैष्ठ्ये) अपनी जातिमें श्रेष्ठ स्थानमें (आ धेहि) स्थापित कर ॥ ३ ॥ हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! (एषां) इनके यज्ञ (वर्चः) तेज (राधः पोषं) धनकी वृद्धि और चित्त आदिको (अहं आ ददे) मैं प्राप्त करता हूं। (सुपत्नः) अच्छा हमारे घरोंके स्वामीके स्थानमें रह और (इमं) इस मनुष्यको उत्तम सुखमें (अधि रोहय) पहुंचा दो ॥ ४ ॥

इस सूक्तका भावार्थ देखनेके पूर्व सूक्तकी दो बातोंका खुलासा करना आवश्यक है जिससे सूक्तका भावार्थ समझमें ही सहज आवेगा। इसके प्रथम सूक्तमें वर्णित देवताओंका मनुष्यसे क्या संबंध है इसका ठीक ठीक ज्ञान होना आवश्यक है, इसलिये उसका विचार सबसे प्रथम करेंगे—

देवताओंका सम्बन्ध ।

जो ब्रह्माण्डमें है वह पिण्डमें है तथा जो पिण्डमें है वह ब्रह्माण्डमें है अर्थात् जो विश्वमें है उसका अंश एक व्यक्तिमें है और जो व्यक्तिमें है उसका विस्तार सब विश्वमें है इसका विशेष ज्ञान निम्नलिखित नोटसे हो सकता है।

स्थविमें इन्द्राग्नि	समाजमें देवता	विषयमें देवता
विशाल वस्तियाँ	समाजसेवी आठ वस्तियाँ	वसवः (आठ)
स्थूलशरीर	मातृभूमि	पृथ्वी
रक्तादि धातु	जल नदी जल आदि	आपः
सूक्ष्मशरीर तेज	अग्नि विद्युत् आदि	तेजः अग्नीतिः
प्राण	इन्द्र वायु	वायुः
मन	स्वामी	आदित्याः
अन्नमय	ओषधि वनस्पति धान्यादि	सोमः
प्रजापति	प्रजापति	अहः
इन्द्रिय बल	साधारण जनता	मरुद्गणाः देवाः
ज्ञान	ब्राह्मण ज्ञानी मनुष्य	ब्रह्मन्
क्षात्रतेज	क्षत्रिय वीर	इन्द्रः
बुद्धि	राष्ट्रपीडक वस्तियोंके	रुद्राः
प्राणमय	अन्नविक्रेता	पूषा
मित्रभाव	मित्र जन	मित्रः
वाणी	ज्ञानी उपदेशक	अग्निः
कार्तव्य	कर्तव्य विचारके लोग	अदितिः
वेद दर्शनशास्त्र	दार्शनिक विद्वान्	सूर्यः
यज्ञ शिल्प पुरुष	यज्ञ विद्वान्, कारीगर	विश्वे देवाः
तेज	धन	हिरण्यं
बुद्ध विचार	वस्तु	उपलब्धिः
आनंद	आर्थिकता	वाक् (वर्म)
तेजी	"	उपमं ज्योतिः
सुख	"	मध्यमं "
		अवमं "

महर्षि पुरुषमें जोजजजारका जैसिक भाग वर्णन किया है वह इस समय अवश्य पढ़िये। (आत्मान संस्थाद्वारा प्रकाशित। मूल्य १०)

इस कोष्ठकसे पाठकोंको पता लग जायगा कि सूर्योक्त देवता शरीरमें किस रूपमें हैं राष्ट्रमें किस रूपमें हैं और जगत्में किस रूपमें हैं। सूर्यदेव जगत्में कहां है यह सब जानते हैं वही अंधकारसे शरीरमें है जिसको तेज या दर्शनशक्ति कहते हैं राष्ट्रमें भी जो पुरुष विशेष विचारसे राष्ट्रकी अवस्थाका विचार करते हैं वे वास्तविक पुरुष राष्ट्रके सूर्य हैं क्योंकि उनके द्वारासे मार्गसे चलता हुआ राष्ट्र उत्तम अवस्थामें पहुंच सकता है। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके विषयमें देवतत्त्व बोध है।

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही 'अस्मिन्' पद है इसका अर्थ "इस मनुष्यमें" ऐसा है। प्रश्न होता है कि किस मनुष्यके उद्देशसे यह शब्द यहां आया है। पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि इस सप्तम संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित 'अवशमित हुए हुए' मनुष्यके संबंधी है। जो मनुष्य मनकी शांति बहुसंख्यके कारण अपने धर्ममें स्थित हुआ है, उसको सर्वोत्तम अधिक उन्नति करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्यही है। अपने धर्ममें जो कोई अड़ प्रतिबन्ध है वह उसको शीघ्र नष्ट हो इस विषयकी इच्छा सर्वदा धारण करनी चाहिये अर्थात् उसको विजय प्राप्त हो ऐसी इच्छा करना चाहिये। यद्यपि इस सूक्तका पूर्व-पर संबंध देखनेसे यह सूक्त सब प्रतिज्ञाओं के लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि हरएक मनुष्यको लेकर इसीके सामान्य निर्देश भी इसमें है और इस दृष्टिसे यह सामान्य सूक्त सब मनुष्योंके उपयोगी भी है। पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें।

अब यहां पूर्वोक्त संयोग आचार्य रिक्त आत्मा है और यह आचार्य देनेके सबब व्यक्तिमें जो देवतांश है उसको लेकर दिया जाता है। पाठक इसको पूर्वोक्त कोष्ठकसे करें-

उद्धरिका सूक्तमन्त्र।

प्रथम मंत्र इस मनुष्यमें जो विशाल वस्तियां हैं उन सब सब पुष्टि जाति मित्रत्व तथा दानी आदिकी वस्तियां हैं वे सब वस्तियां इसमें धारणता स्थापित करें। इसके स्वयं विचार और इसके सब इंद्रियां इसको उत्तम देवमें धारण करें ॥ १ ॥"

मनुष्यमें अनन्त अवयवके हरएक पदार्थमें कुछ विशेषत्व (वसु) वस्तियां हैं जिसके कारण वह पदार्थ या प्राणी अपनी अवस्थामें रहते हैं। जिस समय विशेषत्व वसु वस्तियां अपनी रहती हैं उस समय पोषण होता है और बढ़ती जाती है, उस समय जीवन होती है, उन्हीं विशेषत्व वस्तियोंके नाश होनेपर मृत्यु निश्चित है। इसी प्रकार अन्यान्य वस्तियोंके अपने अपनेसे ये ये गुण वर्तते या चलते हैं। मनुष्यमें वसुवस्तियां बहुत हैं और अन्य देवतत्त्वोंसे प्राप्त अन्य वस्तियां भी हैं। इन वस्तियोंके विशेषित रूपमें प्रकाशित होनेसेही मनुष्य वसु अर्थात् बस माना करता है और अपने आपको बस कर सकता है। अतएव इसके उद्धारिका यही सूक्त मंत्र है। (१) अपनी विशेषत्व वसुवस्तियोंका विकास करना तथा (२) अपने अंदर अन्य देवकी वस्ति करना (३) अपनी वृद्धि करना (४) अपने

अंदर समता और शांति रखना (५) सबमें मित्रभाव बढ़ाना और हिंसक भाव कम करना तथा (६) बाणीकी शक्ति विकसित करना । इन छः शक्तियोंके बढ़ जानेसे मनुष्य हरएक प्रकारका बल प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है । यहां का वसु " शब्द बलवाचक है परंतु यह बल केवल पैसाही नहीं परंतु सब वह बल है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको मेरु पुरुषोंमें धन्य मान सकता है । इस सूक्तमें छः विकासक शक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता बता जाती है । (१) विकासक शक्ति, (२) ज्ञानतेज (३) वृद्धि (४) समता (५) मित्रभाव (६) वक्तृत्व " इन छः पुरोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमार्धमें दी है और दूसरे अर्धमें कहा है कि (७) इसके स्वतंत्र विचार और (८) इसकी इंद्रिय शक्तिका इनको उत्तमोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुंचावें । मनुष्यके जन्म दि रही मनुष्यको बढ़ाते या गिराते हैं, उसी प्रकार इंद्रिय आधीन रही तो ही वह संयमी मनुष्य मेरु बनता है अन्यथा इंद्रियोंके आधीन बनकर दुर्बलसी बना हुआ मनुष्य अतिनिंद्य हीन होता जाता है । मनुष्यके निःसंदेह उन्नति करनेका यह अविचल साधन प्रथम मंत्रमें दिया है । यह हरएक मनुष्यको देखने योग्य है । अब दूसरा मंत्र देखिये—

विजयके लिये संयम ।

द्वितीय मंत्र—" हे देवो ! इस मनुष्यकी आज्ञामें तेज तेज बनके और बल रहे । हमारे बाहु जैसे ही आंख और इसको सुखकी उत्तम अवस्था प्राप्त हो ॥ २ ॥ "

इस मंत्रमें " (अक्ष इदिंद्रि सूर्यो अस्तु) इसकी आज्ञामें सूर्य रहे " यह वाक्य है । पाठक जान सकते हैं कि किसी भी मनुष्यकी आज्ञामें सूर्य रह ही नहीं सकता क्योंकि वह मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है, परन्तु सूर्यका अंश जो शरीरमें नेत्र स्थानमें रहता है और जिसको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी मनुष्यके आधीन रह सकता है । इससे पूर्व दीपकवाली बात सिद्ध होती है कि व्यक्तिके विषयमें विचार करनेके समय देवताओंको शरीरस्थानीय अंशही लेने चाहिये जैसा कि पहले मंत्रमें लिया है और इस मंत्रमें भी करना है ।

मनुष्यके अंदर बाह्य ज्योतिका अंश तेजी सूर्यका अंश नेत्र इन्द्रियका अंश आंखोंके रूपमें रहता है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके अंश यहां रहते हैं, वे ही इन्द्रिय शक्तियां हैं । मनुष्यकी रसनेंद्रिय, नासिका और वाणी तथा उपस्थेन्द्रियके अन्य इन्द्रियां भी इसकी आज्ञामें रहें, अर्थात् इन्द्रियां शक्तिमान व वीर्य-मनुष्य इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी सब शक्तियोंको अपने आधीन रखे । अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है । इस प्रकारका आत्मावजयी मनुष्यही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है । यदि जगत्में विजय पाना है शत्रुओंको दबाना है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंको सबसे प्रथम आधीन करना चाहिये यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहां मिलता है । अब तृतीय मंत्र देखिये—

ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।

तृतीय मंत्र—" जिस उत्तम ज्ञानसे ऋषियोंको उत्तमोत्तम रत्न प्राप्त होते हैं हे वसोपदेशक ! उसी उत्तम ज्ञानसे यहां इस मनुष्यकी वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो ॥ ३ ॥

ऋषियोंको इन्द्रियों अथवा राष्ट्रोंको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबसे अग्र समझा जाता है वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी वैसाही अपनी जातिमें अथवा अपने राष्ट्रमें श्रेष्ठ बने । राष्ट्रके हरएक पुरुषको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन खुले रहने चाहियें । वह मनुष्य सूतक प्रदेश हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो । तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके वैसाही श्रेष्ठ वसुंधरा में अपनी जातिका श्रेष्ठ वसुंधरा और अपने देशमें श्रेष्ठता प्राप्त करूंगा । यह मंत्रका आशय हरएकके चित्त स्थानमें रखना उचित है । अब चतुर्थ मंत्र देखिये—

जनताकी भलाई करना ।

चतुर्थ मंत्र— इस सबके लिये मैं अपनी ओर खींचता हूं और इसके यशकी वृद्धि मैं करूंगा, तथा इसके सत्कर्म मैं बढ़ाऊंगा । हमारे बाहु जैसे इस आंख और इसको उत्तम सुखका स्थान प्राप्त हो ॥ ४ ॥

(१) पहिले मंत्रके उपदेशानुसार आचार्य करनेसे अपनी शक्तियोंकी उन्नति की (२) दूसरे मंत्रके उपदेशानुसार अपने इन्द्रिय संयम द्वारा आत्मविजय प्राप्त किया (३) तीसरे मंत्रके उपदेशानुसार अपनी ज्ञानवृद्धि द्वारा प्रशस्त कर्म करके अपनी जातिमें बहुमान प्राप्त किया तब (४) इस चतुर्थ मंत्रमें वर्णित जनताकी भलाई करनेके उत्तमोत्तम कर्म करने और करानेका योग्य अवसर प्राप्त होता है । पाठक यहां चार मंत्रोंमें वर्णित यह चार सीढ़ियां देखें और विचारें, तो पता लग जावेगा कि यहां इस सूक्तमें वेदने थोड़े शब्दोंमें मानवी उन्नतिका

अत्यन्त उत्तम उपदेश किया है इसका पाठक जितना विचार करें उतना थोडाही है। देखिये-

उन्नतिकी चार सीढियां।

अपनी शक्तियोंका विकास ॥"

प्रथम मंत्र- शरीरकी चार शक्तियों इन्द्रियों और अवयवों की पूर्ण वृद्धि तथा सदैव विचार-शक्तियोंका उत्तम विकास करो ॥

"स्वशक्तियोंका संयम ॥

द्वितीय मन्त्र अपने आत्मा अपनी सब शक्तियों रखा संयम द्वारा आत्मविजय प्राप्त करके शत्रुको दूर करो और सुखी हो जाओ ॥

" ज्ञानबुद्धिद्वारा स्वजातिमें संगठन ॥ "

तृतीय मन्त्र- ज्ञानकी बुद्धिद्वारा विविध रक्षा प्राप्त करो और अपनी बुद्धिद्वारा स्वजातिमें मेल बढ़ाओ।

अनवाकी उन्नतिके लिये प्रयत्न

चतुर्थ मन्त्र लोगोंके चित्त अपनी ओर आकर्षित करो लोगोंके मनोंकी वृद्धि करो और उनके प्रशस्त कर्मोंको देखा दी। इससे शत्रुओंको दूर करके सुखी स्वामी विराजो॥

ये चार मन्त्र महत्वपूर्ण चार आदेश दे रहे हैं (१) स्वशक्ति संवर्धन (२) आत्मसंयम (३) ज्ञानके द्वारा स्वजातिमें संगठन और (४) जनताकी उन्नतिके लिये प्रयत्न ये संक्षेपमें चार आदेश हैं। इन चार मन्त्रोंपर चार विस्तृत व्याख्यान हो सकते हैं इतना इनके उपदेशोंका विस्तार और महत्व है।

चतुर्थ मन्त्रमें एषां शब्द है वह "इन सब लोगोंका" यह भाव प्रकट रहा है। इन सब लोगोंके चित्त मैं अपनी ओर खींचता हूं, इनके मनोंकी वृद्धि इनके पास मैं करता हूं, इनके प्रशस्त कर्मोंको बढ़ाता हूं और इनके सब शत्रुओंको मारकर इस सबका मुख बढ़ानेका प्रयत्न करता हूं। यह इस चतुर्थ मन्त्रका भाव अति स्पष्ट और सुगम है। पाठक इसका मनन करें और इस सूक्तको अपने आचरणमें लावें।

पर्यन्त-अबके सूक्तके उत्तम उपदेशका अनुभव पाठकोंको यहां आया ही होगा। इसी प्रकार आगे भी कई सूक्त इस प्रकारके आवेंगे। उस समय सूचना दी जावेगी। पाठक उनके अनुसार सूक्तोंका विचार करें और लाभ उठावें।

इन सूक्तोंका स्मरणीय उपदेश

१ दीक्षाम्य प्रावाम- लेकर जाओ। मित भोजन करो।

२ प्रजां नयत- उत्तमतासे ठीक मार्ग बताओ।

३ ब्रह्मणा वपूंषि- ज्ञानसे (वेदविद्याका तथा सूक्तोंको) बढ़ानेवाला (बनो)

४ इन्द्रास्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु- अधिक तेज तेजमें (इसको) धारण करें।

५ गरुत्मं प्रतीमि ज्योतिः सूर्यः त्वा अग्निः उत हिरण्यं वस्तु- इसकी आज्ञामें तेज सूर्य अग्नि और धन रहें (अर्थात्) इस (मनुष्य) की आज्ञामें जगत्के पदार्थ रहें और कभी मनुष्य उनकी आज्ञामें आकर पराधीन न बने।

६ मयस्करो अस्मद्वरे अवन्तु- शत्रु हमारे सामने ऐं।

७ इन्द्रमें गात्रमसि वीडयस्व- देवे उत्तम स्थानमें बढ़ाओ।

८ सजातानां मध्यम आ वेशयामः- इसको अपनी जातिमें मेल बढ़ाओ।

अमर्त्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा ।

(१०)

(ऋषिः अथर्वा । देवता १ असुरः, २-४ वरुणः ।)

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राजः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥
नमस्ते राजन्वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुष्वम् ।
सहस्रमन्या प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
यदुत्कृत्यानृतं जिह्मयोनि विद्वान्वद्रो राजसत्यस्य मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादथो दुष्वान्महतस्परिं । सजातानुग्रेहा वद मा प्रमुर्त्तः कर्पं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

अयं (अयं) यह (देवानां असुरः) देवों के भी जीवन देनेवाला ईश्वर (वि राजति) प्रकाशता है । (हि) क्योंकि (राज्ञः वरुणस्य) राजा वरुण देव अर्थात् ईश्वर की (वशा) इच्छा (सत्या) सत्य है । (ततः परि) इसका होनेपर भी (ब्रह्मणा) ज्ञानसे (शाशदानः) तीक्ष्ण बना हुआ मैं (उग्रस्य मन्योः) प्रबल ईश्वरके क्रोधसे (इमं) इस मनुष्यको (उत् नयामि) ऊपर उठाता हूं ॥ १ ॥ हे (वरुण राजन्) ईश्वर ! (ते मन्यवे) तेरे क्रोधको (नमः अस्तु) नमस्कार होवे । हे (उग्र) प्रचंड ईश्वर ! तू (विश्वं दुष्वं) सब दोषादि पापोंको (निचिकेषि) ठीक प्रकार जानता है (सहस्रं अन्याः) हजारों अन्योंको (साकं) साथ साथ मैं (प्रसुवामि) प्रेरणा करता हूं (अयं) यह मनुष्य (तव) तेरा बनके ही (अयं शरदः) सौ वर्ष (जीवाति) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे मनुष्य ! (यत्) जो (अनृतं कृत्रिमं) अन्याय और पाप वचन (जिह्मया) जिह्म से (वद्रः उदस्थ) बहुत्व तू बोला है, उससे तथा (सत्यधर्मा) सत्य न्यायी (राज्ञः वरुणात्) राजा वरुण देव ईश्वरसे (अहं) मैं (त्वा) तुझको (मुञ्चामि) छुडाता हूं ॥ ३ ॥ हे मनुष्य ! त्वा तुझको (महत वैश्वानरात् अथर्वणात्) बडे समुद्रके समान भी विश्वानर देवसे (परि मुञ्चामि) छुडाता हूं । हे (उग्र) वीर ! (इह) यहां (सजातान्) अपनी जातिवालोंको (मा वद) सब कह दे और (नः) हमारा (अप्रभुः) दास (अप चिकीहि) तू बना ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह सूर्यादि देवताओं के शक्ति दान करनेवाला । प्रभु ईश्वर सब असत्यपर विराजता है सत्यका कहीं रि शासन नहीं है, इसलिये उसकी इच्छा ही सर्वदा सत्य होती है । अर्थात् उसकी इच्छाके प्रतिकूल कोई भी जा नहीं सकता । तथापि हमारे दुष्कर्मोंको जानेवाला मैं इस पापी मनुष्यको निम्न लिखित मार्गसे उस ईश्वर क्रोधसे छुडाता हूं ॥ १ ॥ हे ईश्वर ! तेरे क्रोधके सामने हम नम्र होते हैं तेरे सामने सिर झुकाते हैं । क्योंकि तू हम सबके पापोंको यावत् जानता है । इसलिये हम अपने पापोंको तेरे सामने छिपा नहीं सकते । हे प्रभो ! यह बात तेरे हजारों मनुष्यों को समझ लेनी चाहिये थी है । यह संदेहरहित बात है कि यदि यह मनुष्य तेरा भक्त बनेगा तो ही सौ वर्ष जीवित रह सकेगा अन्यथा इसको कौन बचा सकता है ? ॥ २ ॥ हे पापी मनुष्य ! तू अपनी असत्यसे बहुत असत्य और बहुत पाप वचन बोलता है । इस पापसे तुझको कोई तुझे बचा नहीं सकता । मैं तुम्हें सत्यके ईश्वरके ज्ञाता हूं और उसकी कृपासे तेरा बचाव कर सकता हूं ॥ ३ ॥ हे पापी मनुष्य ! तुझको विश्वेश्वरके क्रोधसे इस प्रकार छुडाता हूं । हे वीर ! तू अपनी जातियें सब बातें कह और हमारे दासको जानकर अपना ॥ ४ ॥

पापसे छुटकारा पानेका मार्ग।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां भावार्थ स्पष्टीकरण किया जाता है।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्नलिखित है—

एक शासक ईश्वर।

(१) देवानां असुरो विराजति " सूर्यचंद्रादि देवोंमें विशेष करि देवताका एक प्रभु ईश्वरही सब जगत्का परम शासक है। इससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है। (मंत्र १)

(२) " राज्ञो वरुणस्य व्रतमिदं तदशयम् —इस प्रभु ईश्वरका काम आसान है। उसकी इच्छा सर्वोपरि है। उसके कार्यमें अड़चन कोई डालनेवाला नहीं रहता। (मंत्र १)

(३) निर्यं इषुम निधिमेमि दुष्वदम् "—हे प्रभु ईश्वर! तू हम सबके पापोंको अच्छी तरह जानता है। अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता। क्योंकि वह सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके पूरे भले बुरे कर्म वह यथावत् रीतसे जानता है। (मंत्र २)

ईश्वरको सर्वोपरि मानना सबसे सामर्थ्यवाला यह है वह जगत रचना और उसके विपरीत कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता यह निश्चित रीतिसे समझना पापसे बचनेके लिये आवश्यक है। पापसे बचानेवाले ये तीन महत्त्वपूर्ण विचार इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनको अपने अंदर स्थिर करें। येही तीन भाव मनुष्यको पापसे बचा कर सकते हैं।

ज्ञान और भक्ति।

मनुष्यके अपने कल्याणके ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं। इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्नलिखित रीतिसे किया है—

(१) " ब्रह्मण्य शासदाना। " ज्ञानसे तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है। ऋषिने उक्त ज्ञानके बचानेवाले विज्ञानको " ब्रह्म " कहते हैं। यह ब्रह्म अर्थात् ऋषिमिश्र और आत्मविज्ञानका उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है। अर्थात् तेज बनाता है। जिस प्रकार तेज खड्ग मनुष्य मात्र करता है उसी प्रकार ज्ञानका तेज खड्ग भी अज्ञान पाप आदि शत्रुओंका नाश करता है। मनुष्यकी अपनी बचानेवाला यही साधन है। (मंत्र १)

(२) यस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे। "—हे ईश्वर! तेरे क्रोधके सामने हम सदा करते हैं तेरे शासनके सामने हम सदा सिर झुकाते हैं। अर्थात् हम तेरी सत्तामें आकर रहते हैं, हम अपने आपको तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं। तू ही हमारा तारनेवाला है। तेरे बिना हम किसी कामके करने जानेयोग्य समझते नहीं। (मंत्र २)

(३) " सर्व जीवति शरदश्शतात्। "—जो सर्व जीवित रहेगा सो तेज बनेगा। जो परमेश्वरका शरण लेकर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है। (मंत्र २)

पाठक इन तीन मंत्रभागोंमें ज्ञान और ईश्वरविषयके उपदेशकी संभावना देख सकते हैं। सांप्रदायिक विचारोंसे बाहर उदारतापूर्ण आचरण करना आत्मविद्याको जानकर उसके अनुकूल अपने आचरण बनाना मानसिक ईश्वरके अनुकूल बन जाना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है। पाठक इस सूक्तमें यह मार्ग देखें। इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचनकी संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है।

प्रायश्चित।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित भी यहां कहा है और वह यहां देखनेयोग्य है—

(१) " ब्रह्म अपचितिमेहि। —तू ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर अथवा उत्तम ज्ञान प्राप्त करना तथा सांप्रदायसे जो विमुख होकर पापोंमें फंसे हैं उनको आत्मा यह उद्बोधक निश्चित वचन है। अब इस ज्ञानसे अपने अपराधोंका पता लगेगा अपने ईश्वरका ज्ञान होगा तब पश्चात्तापसे शुद्धि करनेका मार्ग है, वह इस प्रकार है—(मंत्र ४)

(२) सजातसूरेषा वह। " —हे वीर! तू अपनी जातिके पुरुषोंके सामने अपने सब अपराध कह दे। यही प्रायश्चित है। अपनी जातिके जो पुरुषोंके सम्मुख अपने अपराधोंको न छिपाते हुए कहना यह सच्चा सच्चा प्रायश्चित है और इससे मनुष्यके मनकी शुद्धि होती है। (मंत्र ४)

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् का जिस समय पश्चात्ताप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातिके सम्मुख कहना यही सर्वोत्तम तथा सबसे पवित्रतादायक ऐसा मार्ग है। हरएक मनुष्य इस प्रकार प्रायश्चित नहीं कर सकता। प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंके लिखितरूप ही क्षमा करते हैं परंतु जो लोग अपने दोषोंको जातिके सम्मुख कह देते हैं वे शुद्ध बनकर दीक्षाके योग्य बन जाते हैं।

इस सूक्तमें "वरुण" आदि शब्दों द्वारा परमात्माका वर्णन हुआ है, " सुवामि आदि शब्दोंसे पापियोंको पापसे

हुआ है और "इम" आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है। धर्मोपदेशक पापियोंके पापसे बचानेका उपदेश परमेश्वरसन्निधिका मार्ग बताकर कर रहा है, यह बात इस सूक्तके शब्दोंसे स्पष्ट होती है। अर्थात् धर्मोपदेशक इसी मार्गसे स्वयं पापसे बचें और दूसरोंको पापसे बचावें।

पापी मनुष्य।

पापी मनुष्य बहुतों प्रकारके पाप करता है परंतु इस सूक्तमें इन सूक्तमें पापोंका उल्लेख किया है वह भी यहां देखने योग्य है—

(१) "विभं हुवे।" — इस होह अर्थात् उस प्रकारका बोला। बोला देना अथवा-वाचा-मनसे विश्वासघात करना, यह पाप है। इसमें बहुतसे पाप आ जाते हैं। (मं २)

(२) पशुबध्यापुतं जिह्वया वृजिनं बहु। '— जिह्वासे असत्य तथा पापभाषसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पापका कर्म है (मं १)

द्रोह करना और असत्य बोलना, इन दोषोंमें प्रायः सब पाप समा जाते हैं। इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना संभव है। धर्मोपदेशक तथा सदाचरण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनका पापभावनाके विषयमें बहुतही चांगला बोध मिल सकता है।

यह पापमोचन-मंत्र समाप्त।

सुख-प्रसूति-सूक्त।

(११)

[ऋषिः—अथर्वा। देवता-पूषादया नाना देवताः]

अवट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेदाः।
सिनीवाली मार्युतप्रजाता वि पर्वीणि जिहतां छन्दसा छः ॥ १ ॥
अवत्सारो रिशादसमदितिर्मदन्त्या सुत। देवा गातुं सविरवन् तं ज्योतिष्मन्तं कृणुते ॥ २ ॥
सूषा ज्योतिषा वि योनिं हापयामसि। अथर्वा पूषणे त्वमद्य स्वं विष्फळे सुव ॥ ३ ॥
नेवं मसि न पीवसि नेवं मज्ञस्वाहितम्।
अवैतु पूषन्नेवयामं शुनं वराय्यस्योर्वं वराय पशवाः ॥ ४ ॥
वि तें मिमन्नि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि भगं च पुत्रं च वि कुमारं वराय्यमार्यं वराय पशवाः ॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः।
एवा त्वं दशमास्य सह वराय्येण पुत्रार्यं वराय पशवाः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे (पूषन्) पोषक ईश्वर! (ते अवट्) तेरे लिये हम अर्पण करते हैं। (अस्मिन् सूतौ) इस प्रसूतिके कार्यमें (अर्यमा होता देवाः) आप्त मनुष्यका दाता विद्वान् ईश्वर सहायता (कृणोतु) करे। (अदितप्रजाताः) निरभ्रपूर्वक पालनीय

काम देनेवाली (गावी) को (विश्वदोहसं) पदार्थोंसे पूर्ण करनेवाले रहे। तथा अपने (पवीतिभिः) अंगोंसे (सूतवे उ) उत्पत्तिके लिये (तेजोरुहाणां) वीर्य को (दिशः) आकाशकी (अनु) तथा (भूम्याः) भूमिकी (अनवः अन्तेभ्यः) चारों दिशा कोणों रहनेवाले (देवाः) देवोंने (गर्भं समैरयन्) गर्भ को बनाया इसलिये वेही (सूतवे) उत्पत्ति उत्पन्न करनेके लिये (तं वि कर्तुरन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर चला करें ॥ २ ॥ (सूता) उत्पन्न संसार उत्पन्न करनेवाली माता (अपूर्व्येण) अपने मनोंको चला करे। हम (योनिं) योनको (विहायसामसि) छोडते हैं। हे (सूतवे) पशू होनेवाली स्त्री ! (त्वं) तू (अन्तः) अंदरसे (अवय) रक्षा कर। और हे (विष्फले) वीर्य स्त्री ! (त्वं) तू (अवबुध्य) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ (न इह भविष्यति) नहीं तो योनिमें (न पीयति) न वीर्य को (न इह मज्जतु) न तो बच्चेमें यह (आहुतं) स्थिरता है। (सृष्टि देवासः) माता पिताके समान (अवयु) जैसी (सुके अवत्रे) कुलेठ जिसे कोयले (अवेदु) जोने आवे (अवयु) जैसी (अवपथन्ताम्) नीचे गिर आवे ॥ ४ ॥ (ते मेहतं) तेरे गर्भके खानेको (योनिं) योनिको तथा (गर्भाशयेभ्यः) दोनों खाडियोंको (वि वि रोह मिथतिं) विशेष रीतिसे खुला करता है। (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रको (वि) अलग करता है तथा कुमारं अवयुध्य वि) बच्चेको जेरीसे अलग करता है। (अवयु) जैसे (अव अवपथन्ताम्) नीचे गिर आवे ॥ ५ ॥ जैसे वायु जैसे मन और जैसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं (एव) इसी प्रकार है (इन्द्रपत्न्य) इन्द्र महिलेवाले गर्भ ! तू (अवयुता सती) जेरीके साथ (पत) नीचे आ तथा (अवयु अवपतताम्) जेरी नीचे गिर आवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश! तेरे लिये हम अपना सर्वस्व अर्पण करते हैं। इस प्रसूतिके समय तेरा अपरंपार विशेष सहायक बन। यह स्त्री भी पवित्रतासे रह और इस समय अपने अंगोंको ठीक करे ॥ १ ॥ आकाश और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि उत्तम देवोंने इस गर्भको बनाया है। और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको इस पूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लावें ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग ढीले करे सन्तान करनेवाली यह बात योनि न छोडे। हे स्त्री! तूभी अपने अंदरसे ठीक रह और सुंदर बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ योनि चली या बच्चेमें विघ्न नहीं होना है। यह गर्भाशय पक्वाशयपर अच्छीतरह बरफ जैसा जमकर बैठा हुआ होता है, यह उस पेशी जैसी दृढ़ता छोड़ आवे और यह माताके साथ जेरीको साथमें लिये हुए आवे ॥ ४ ॥ योनि गर्भस्थान और तिसकी आडियोंको ईश्वर खोल देवे माताके बच्चा अलग किया जावे और जेरीसे बच्चा अलग हो जावे अर्थात् गर्भ जेरी पूर्वकसे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार वायु जैसा शिघ्रगामी है जैसे मन और पक्षी जैसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार इसमें महिनेवाले गर्भ जेरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर आवे और जेरी सह गर्भ नीचे गिर आवे अर्थात् गर्भ जेरी पूर्वक बाहर आवे ॥ ६ ॥

प्रसूति प्रकरण।

इस सूक्तसे यहां प्रकरण आरंभ हुआ है। यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियोंके लिये और प्रायशः एक लिये विशेष लाभकारी है। स्त्रियोंका गर्भवतीके जितने कष्ट सहने पडते हैं उसका दुःख स्त्रि ही जानता है। प्रसूतिका समय मृत्यु तुल्य होना प्रसवसे साध्य है। गर्भधारणसे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भ धारणसे भी पूर्व समयमें भी जो नियम पालन करनेयोग्य होते हैं उनका इस स्त्रिके पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुतसे दूर होना संभव है। इस विषयमें आगे बहुत उपयोग आवश्यक है। यहां इस सूक्तमें जितना विषय आया है उसको क्रम वार देखिये—

ईश्वर कि ।

परमेश्वरकी शक्तिसे अनुग्रहसे दुःखोंसे पार हो सकते हैं। दोनों स्त्रीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम मार्ग चलें तो वह परमात्मा (विश्वदोह) अनुग्रहके कष्ट न होने यह बातके लिये इस सूक्तके प्रथम मंत्रके पूर्वार्धमें हमें सबसे पहिले ईश्वरकी सामर्थ्य पूजाका वर्णन किया है।

" पवस्व " शब्द = इच्छा " अर्थसे अर्थात् " आत्मसमर्पण के अर्थमें प्रयुक्त होता है। हे पवस्व ! ते वायु ! हे ईश्वर ! मेरे लिये इस अपने आपको समर्पण कर दे है। तू ही (अर्क मा) मेरा सत्कार करनेवाला अर्थात् हितकर्ता है तू ही (वयः) उत्तम अपत्य रत्नादिक और विजय है

और सुखी (होना) सब सुखोंका दाता है। इसलिये हम तेरे आश्रयमें रहते हैं और तेरे लिये ही पूर्णतया समर्पित होते हैं।

यहां पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देखने योग्य हैं। सब सूर्यादि देवताओंको सृष्टि देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है। इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं वहां देखिये। सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा सहायकर्ता है और मैं उसकी गोदमें हूं इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके साथ रहते हैं वह सदृढ विशेष शक्तिसे और आनंदसे पुष्ट होता है और भाव ऐसा सदृढ करना आनंदमें रहना है।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक निश्चय औषधि है। कामविकारका विजय हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके दुःख सौम्य होने लगते हैं क्योंकि कामकी अति होनेसेही स्त्रियां अशक्त बनती हैं और अशक्तपनेके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्के ज्वरादि रोग भी कष्ट देते हैं। इसलिये कामनोपभोग विजय परमेश्वर भक्तिसे करनेका उपदेश हरएक स्त्रीपुरुषको यहां अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये।

देवोंका गर्भमें विकास।

सूर्यादि देवताएं अपना अपना कोश गर्भमें रचती हैं तब देवताओंका संघटनात्मक गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उसमें आता है। इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है। [इस विषयमें सायणाचार्यजीने प्रकाशित ब्रह्मचर्य पुस्तकमें "देवोंका संघटनात्मक" लेखमें विस्तृत लेख अवश्य पढिये। यहां विशेष वेदमंत्रोंद्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया है।] तात्पर्य गर्भमें संघटनासे अनेक देवताएं रहती हैं और उनका संबंध सब देवताओंके साथ है। भूमि और आकाशकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली सब देवताएं अपने गर्भमें संघटनासे धारण हैं, मानो उनका संमेलन (समैरयन्) ही गर्भमें हुआ है और उनका अभिप्राय आत्मा भी उसी गर्भमें है। यह दशविधाग्नि गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये। अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपभोग यही कभी नहीं है परंतु उसमें और विशेष महत्त्वपूर्ण आत्म संबंध और दैवी संघटना संबंध है। ऐसा भाव गर्भवती स्त्रीने स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है। गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आह्वान किया जाता है। उस समयके मंत्र इस दृष्टिसे पाठक देखेंगे तो उनको पता लगेगा कि गर्भाधान कामविकारके पोषणके लिये नहीं है परंतु उच्च सृष्टिशक्तिकी धारणा के लिये ही है। अस्तु। गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भाव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएं गर्भका पोषण और सुख प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगी। अर्थात् इस प्रकार देवताओंकी सहायता और परमात्मा का आधार मुझे है इसलिये मुझे कोई कष्ट नहीं होंगे। पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढें।

गर्भवती स्त्री।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढतासे धारण करें। अब गर्भवती स्त्री अथवा गृहस्थाश्रममें रहनेवाली स्त्री निम्न बातोंका विचार करें—

१ नारी-जो गर्भनीतिसे (नृणाति) चलती है अर्थात् गर्भ नियमोंसे अपना आचरण करती है तथा (नर) पुरुषके साथ रहती है वह नारी कहलाती है। अर्थात् विशेष गृहस्थधर्मके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है। (मंत्र १)

२ सुत+प्रजाता—(सुत) उत्पन्नियमानुकूल (प्रजाता) प्रजनन कर्मसे पुत्र। अर्थात् गर्भ-धारण गर्भ-पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके उत्तम गर्भनियमोंके अनुकूल होते हैं। अनुगामी होना गर्भ धारणके पश्चात् उस गर्भके उपरान्त अथवा पालक दूध पीता छोड देने उत्पन्नात् अनुगामी होना इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है। (मंत्र १)

३ सुधा सुपत्या—जिस स्त्रीको प्रसूतिके कष्ट नहीं होते अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है। स्त्रियोंको सौम्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें लाना चाहिये। (मंत्र ३)

४ विश्पला धीर स्त्री अर्थात् गर्भवती स्त्री। स्त्रियोंको अपने अंदर [illegible] बढाना आवश्यक है। थोडेसे कष्ट होने लगे तो घबराना नहीं चाहिये। धैर्यसे उनको सहना चाहिये। (मंत्र ४)

गर्भवती स्त्रियोंको इन शब्दों द्वारा प्राप्त होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इस गुणोंकी आवश्यकता है।

गर्भ।

इस सूक्तमें गर्भका नाम "दश-मास्य" आया है। इसका अर्थ "दश मासकी आयुवाला" होता है। यह उत्तम परिपूर्ण

गर्भका समय बना रहा है। इसमें महिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है। इससे महिनेसे पूर्व जो प्रसूति होती है वह गर्भकी अपक्व अवस्थामें होनेके कारण माताके कष्ट बढाती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब माताके कष्ट बढानेवाले हैं और ये सब दुःख गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंके निषिद्धाचरणोंसे ही होते हैं। जो गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुष वेदमंत्रोंका पालन करते हैं उनकी स्त्रीयोंको सुखसे प्रसूति होती है।

सुख प्रसूतिके लिये आदेश।

१ सौ परमेश्वरकी भक्ति करे। (मंत्र १)

२ अपने गर्भमें देवताओंका अवतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे। (मंत्र २)

३ (सिनीवाली) दक्षतासे अपना व्यवहार करे। (मंत्र ३)

४ प्रसूतिके समय (पर्याप्ति सिनीवाली) अपने अंगोंको ढीला करे। (मंत्र ४)

५ (सूरा व्यूर्णोतु) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अंगोंको ढीला अथवा खुला करे अर्थात् उसपर वस्त्र न बनावे। (मंत्र ५)

६ (सूरासे ! त्वं अवय) सुख प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मनकी इच्छा शक्तिसे भी अंदरसे प्रेरणा करे तथा मनसे प्रसूतिके अंगोंको प्रेरित करे। यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्री को भी अंदरसे करनी चाहिये। (मंत्र ६)

दाईकी सहायता।

१ प्रसूतिके समय दाई की सहायता आवश्यक होती है। यह दाई भी प्रसूत होनेवाली स्त्रीमें उत्तम सूचनाएं देती रहे और धीरज दे रही। परमेश्वर तेरा सहायक है और उस देवकी तुम्हारे गर्भमें है अतः उसकी भी सहायता तुम्हें है" इत्यादि वाक्योंसे उसका धीरज बढावे।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे शुद्ध करे (मंत्र २)

३ जेरी अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेरी वार आदि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माताके गर्भाशयमें न रह जाय इस विषयमें दाई सावधानीसे अपना कर्म करे। यह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुतसी दुःख होना संभव है (मंत्र ४)

४ प्रसूतिके समय गर्भवती योनि और नितंब उत्तम रीतिसे धोने चाहिये। उसके यथायोग्य रीतिसे धुले करे, उससे प्रसूति सुखसे होवे। (मंत्र ५)

५ प्रसूति होतेही माताके पासके पुत्रको अलग करे उसपरका जेरीका बेहत हटाकर जो आवश्यक कर्म करना है वह सब योग्य रीतिसे करे। (मंत्र ६)

सूचना।

यह विषय शारीरशास्त्रका है केवल पांडित्यका नहीं है इस सूक्तके सब मंत्रोंका अर्थ भी शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणको अच्छीतरह समझना उचित है। इसलिये जो वैद्य वा डाक्टर हैं जिन्होंने सूक्त-प्रसूति उत्तमरीत्या विचार किया है तथा जिन्होंने इस शास्त्रके ग्रंथोंके साथ अच्छा अनुभव भी है उनको इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वे ही इस सूक्तके सिनीवाली विश्वरूपा बहुसूवीयु " आदि शब्दोंको ठीक प्रकार समझते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

आशा है कि प्रसूति-शास्त्रके अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक विशेष ज्ञानका कर सकेंगे।

[इति द्वितीय अनुवाकका तृतीय सूक्त।]

श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त ।

(१२)

[ऋषिः—मृग्वङ्गिराः । देवता—यक्ष्मनाशनम्]

वातात्त्वः प्रथम उत्तिष्ठो वृषा वातप्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्वं ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥ १ ॥
अङ्गे-अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्गानामङ्गान् हविषा विधेम यो अग्रभीत्पर्वास्या ग्रभीता ॥ २ ॥
मुञ्च शीर्षक्त्या उत काशा एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचता पर्वतांश्च ॥ ३ ॥
स मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे । स मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ॥ ४ ॥

पदार्थ- (वात+त्वः+जाः) वायु और मेघसे उत्पन्न होकर (प्रथमः वातायु+त्वः) पहिले मेघोंसे उत्पन्न होनेवाला (वर्षिष्ठः वृषा) तेजस्वी बलवान् सूर्य (वृष्ट्या सनयन्) वृष्टिके साथ गर्जता हुआ (एति) चलता है । (सः ऋजुगः) वह सीधा चलनेवाला और (रुजन्) रोग दूर करनेवाला (नः तन्वे) हमारी शरीरों के (मृडाति) सुख देता है । (यः) जो (एकम् ओजः) एक सामर्थ्यको (त्रेधा) तीन प्रकारसे (विचक्रमे) प्रकाशित करता है ॥ १ ॥ (अङ्गे अङ्गे) प्रत्येक अवयवमें (शोचिषा शिश्रियाणं) अपने तेजसे आश्रय करनेवाले (त्वा) तुझको (नमस्यन्तः) नमन करते हुए (हविषा विधेम) अन्न द्वारा पूजा करते हैं । (यः) जो (अग्रभीत्) ग्रहण करनेवाला (अस्य पर्व) इसके जोड़ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है उससे (अङ्गानाम् अङ्गात्) विभागोंके और मिले हुए विभागोंसे (हविषा विधेम) हवनके अन्नसे पूजा करते हैं ॥ २ ॥ (शीर्षक्त्याः) शिरदर्दसे (उत) और (यः काशः) जो खाँसी है उससे (एनं मुञ्च) इसको छुड़ा । तथा (अस्य) इसके (परुः परुः) संधि जोड़में जो रोग (आविवेश) घुस गया है । उससे भी छुड़ा । (यः अभ्रजाः) जो मेघोंसे उत्पन्न हुआ है अथवा जो (वात+जाः) वायुसे उत्पन्न हुआ है तथा जो (शुष्मः) उष्णतासे उत्पन्न हुआ है उसके दूर करने लिये (वनस्पतीन् पर्वतान् च) वृक्ष वनस्पति और पर्वतोंके साथ (सचताम्) संबंध करें ॥ ३ ॥ मे परस्मै गात्राय (मेरे श्रेष्ठ अवयवोंका कल्याण हो । (अवराय मे अस्तु) मेरे साधारण अवयवोंके लिये कल्याण हो । (मे चतुर्भ्यः अङ्गेभ्यः मे) मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य प्राप्त हो । (मम तन्वे मे अस्तु) मेरे शरीरके लिये सब होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-वायु और मेघसे प्रकट होकर मेघोंके आवरणसे प्रथम बाहर निकला हुआ तेजस्वी सूर्य वृष्टि और मेघगर्जनाके साथ आ रहा है । वह अपनी सीधी गतिसे रोगों अथवा रोगोंको दूर करता हुआ हमारे शरीरों की चिकित्सा बनाता है और हमें सुख देता है । वह सूर्य एकही तेज तीन प्रकारसे कार्य करता है ॥ १ ॥ वह घरी के प्रत्येक अंगमें अपने तेजके साथसे रहता है उसका महत्व जानकर हम हवन द्वारा उसका सत्कार करते हैं । जो मनुष्यके हरएक जोड़में रहता है उसके प्रत्येक विभाग को हवन द्वारा हम सत्कार करते हैं ॥२॥ इसकी सहायतासे सिरदर्द खाँसी इसकी जोड़के अवयवों पीड़ा को हटाओ । जो रोग मेघोंसे बढ़ने अर्थात् बादलके प्रकोपसे अर्थात् बादलसे और गर्मीसे या न अर्थात् सिरमें होने हैं उनको भी दूर करो । इसके लिये वनस्पतियों और पर्वतोंका सेवन करो ॥ ३ ॥ इससे मेरे उत्तम अंग साधारण अंग तथा मेरे चारों अंग अर्थात् मेरा सब शरीर नीरोग होवे ॥ ४ ॥

यह साधारण मंत्रोंके अर्थोंके अनुसन्धानसे पाठक पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका तात्पर्य आजायगा क्योंकि यह सूक्त सरल और सुबोध ही है। तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहां विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है। यह तक्मनाशन पर्व का सूक्त है अर्थात् रोगनिवारक भाग इसमें है।

महत्त्वपूर्ण रूपक।

सबसे पहले प्रथम मंत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करनेयोग्य है। पूर्वसूक्तमें (जरायुजः रथमाख्यः पुत्रः) जेरीसे वेष्टित उत्पन्न होनेवाले रथमाख्यक पर्वमें रहनेवाले पुत्र का वर्णन है। उसके साथ इस सूक्तका संबंध बतलानेके लिये इस सूक्त के प्रारम्भमें ही "जरायुजः रथवरः" ये शब्द आगये हैं। यहां सूर्यका वर्णन बड़े महत्त्वपूर्ण रूपकसे किया है। इस रूपकमें सूर्य ही "पुत्र" है सूर्यके पुत्र होनेका वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आया है। उसका यह वर्णन समझनेके लिये इस निर्देशकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

वर्षाऋतुके दिनोंमें जब कई दिन आकाश मेघोंसे आच्छादित होता है और सूर्यदर्शन नहीं होता वही होती है वायु चलता है, बिजली चमकती है तब कभी कभी ऐसा होता है कि सारा वायु चक्रमेंसे बीचका आकाश मेघरहित हो जाता है और स्वच्छ सूर्य-मंडल दिखाई देता है। यही पुत्र-दर्शन है। पुत्रजन्मके समय में भी प्रसूति होते ही घरमें के ऊपर वेदनादिका वेदन होता है, अकस्मात् प्रसव प्रसूतिके समय होते हैं वह सब मानो सूर्यपर वेष्टित मेघ और उसकी वृष्टि है। इस प्रकार इस उपमामें साम्य देख सकते हैं।

बहुत दिनोंतक मेघाच्छादित आकाशके पश्चात् जब सूर्य दर्शन होता है तब सारा हो जाती है तब मनुष्योंको अत्यंत आनंद होता है, मनुष्य प्रसन्नचित्तसे उत्सव मनाते हैं। इसी प्रकार जब वर्षाऋतु में पुत्र प्रसव होता है, उसपरकी वेदना अलग की जाती है उसको स्वच्छ किया जाता है तब उसका मुखकमल सूर्य देखकर जो आनंद माताके हृदय में चमक उठता है उसका वर्णन क्या कभी शब्दोंसे होना संभव है? माताका आनंद इन्हीं शब्दोंसे व्यक्त हो सकता है कि यह पुत्र मेरा सूर्य है यह माताके हृदय की ज्योति है यही माताकी आंखोंका प्रकाश है। जिस प्रकार सूर्य अंधेरा हटाता है उसी प्रकार पुत्र घरकी दुःखकी और अशांतिको दूरकर प्रकाश देता है।" इस प्रकार वर्णन के सुखकी रोचकताका वर्णन मात्र अपने शब्दरहित मार्गसे ही कर सकती है। पाठक अपनी काव्यमय आंख खोलकर ही इसको पढ़कर रसास्वादन करें।

परंतु यहां नूतनोत्पन्न बालकका वर्णनही करना नहीं है, किंतु जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन-पोषक दिव्य रूपवर्णन का वर्णन करना है। यह उद्देश्य इस प्रकार इस सूक्त के प्रारंभमें किया है। और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्तका संबंध जोड़ दिया है।

प्रायः प्रसूतिके समय तथा पश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आ जाती है और नाना रोगोंकी संभावना उत्पन्न होती है। इसलिये इसको दूर करना सुपक्वसे किस रीतिसे साध्य होता है यही बतलाना सूक्तका मुख्यतत्त्व विषय है। माताके इस निमित्त आरोग्य का विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है।

आरोग्यका दाता।

सूर्य ही आरोग्यका दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें स्पष्ट कही है

स नो मुञ्चतु तक्मन अंहसो गणात्। (मंत्र १)

"वह (सूर्य) हमारे शरीरोंके आरोग्य देता है जीवन बाधेवाला रोगोंसे बात करके इस मंत्र मात्रका स्पष्ट कथन यह है कि वह सूर्य रोगोंसे दूर करता है और आरोग्य देता है। यदि यह सत्य है तो यह भी सत्य है कि सूर्य प्रकाश जहां नहीं पहुंचता वहां ठीक आरोग्य रहना संभव ही नहीं है। इस आरोग्यके वैदिक नियम को ध्यानमें रखकर आप अपने घरोंका और प्रसूतिके कमरेका विचार कीजिये। आरोग्यदाता सूर्य-प्रकाश हमारे घरोंमें कितना आता है। प्रसूतिके स्थानमें तो विपुल प्रकाश आना चाहिये तभी माता और सूतक बालक का उत्तम स्वास्थ्य रह सकता है। घरके कम में विपुल प्रकाश आता रहेगा तो घरवालोंका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। इस प्रकार देख सकता है कि सूर्य प्रकाश सबके स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है। पाठक अपने अपने व्यवहारमें इस तत्त्वका उपयोग करें।

प्रथम मंत्रका अंतिम चरण है कि। (एकमोजसोत्पन्नं विश्वकर्मा) अर्थात् एकही शक्ति तीन प्रकारसे प्रकाशित हो रही है। यह बात कई स्थानोंमें सत्य है। सूर्य का ही तेज चुल्हेमें सूर्य प्रकाशसे अंतरिक्षमें विद्युत् रूपसे और भूमीमें अग्निरूपसे प्रकाशित हो रहा है। यही बात शरीरमें देखिये-अग्नि नामें अन्नाशयमें हृदयमें ज्ञानशक्तिके रूपमें और सब शरीरमें उष्णताके रूपमें सूर्यका तेज प्रकाशता है और विविध कार्य करता है। आरोग्यका विचार करनेके समय इस बातका अवश्य विचार करना चाहिये। सूर्य प्रकाशसे इन तीनों शारीरिक स्थानोंमें योग्य परिणाम होकर शरीरका आरोग्य होता है इतिहास तेज बढ़ता है और शक्ति होती है। यह है

संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध। पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मूलमंत्र बताया है और साथमें यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालकको सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें विश्वसुत सूर्यका उदय होता है। घर छोटा विश्व है तथा विश्वही बड़ा घर है। इसलिये इस घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये। आरोग्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् अहोरात्र हो सके यहांतक बालक को घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूतके खुले प्रकाशमें सदैव सर्वदा खेलना कूदना करना चाहिये जिससे बालक सूर्य की तीव्र किरणोंसे तेजस्वी और बलवान बन सके।

सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि (अंगे अंगे लोम्नि लोम्नि) शरीरके प्रत्येक अंगमें तेजके अर्थात् यह सूर्य रहता है, उनको (यमस्वन्तः) शमन करना चाहिये अर्थात् बालक बाहर करना चाहिये सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढ़ाना चाहिये। जो लोग घरके अंधेरे कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं वे निस्तेज होते हैं परंतु जो खुली हवामें घूमते हुए सूर्यप्रकाशसे अपना तेज बढ़ाते हैं वे तेजस्वी होते जाते हैं।

शरीरके प्रत्येक (पर्व) जोड़में यह अंग रहता है इस सूर्यके अंशने इस स्थानपर (प्रसीता) अपना अधिकार जमाया है। इसपर अवश्यमें इसके (अंशान्) किरणोंको पहचानना चाहिये और (समंशान्) मिले हुये किरणोंको भी पहचानना चाहिये। जैसा आकाशमें तेजस्वी सूर्यका निवास है अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोंसे है। यह सब जानना चाहिये। और जिस स्थानमें अंगारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य-प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये। सवेरेके समय सूर्यके प्रकाशमें खुली जगहमें सूर्य किरण देखते रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। विशेष नेत्ररोगोंके लिये विशेष युक्तिसे सूर्य किरणका प्रयोग करना चाहिये। विशेष अंगके लिये भी विशेष युक्तिसे सूर्य किरणका प्रयोग करना होता है। साधारण आरोग्यके लिये यह विशेष अवयव सूर्यकिरणोंसे स्नानमें भी बहुतसा कार्य हो जाता है। इस युक्तिसे केवल सूर्य किरणचिकित्सासे बहुतसे रोग दूर करना संभव है। यदि सहन हो सके इतने उच्च सूर्य प्रकाशमें संपूर्ण शरीर कुछ देरतक तपाना आम तौरसे भी सर्वसाधारण शरीर की नीरोगता बढ़ती है। शीतकालमें यह करना उत्तम है, परंतु ग्रीष्मके दिनों और उष्ण देशोंमें विचारसे और युक्तिसे ही इसका प्रयोग करना चाहिये। नहीं तो आरोग्यके स्थानपर अनारोग्य भी होगा इसलिये यह सब अभ्यास युक्तिसे ही बढ़ाना चाहिये।

तृतीय मंत्रमें (शीर्षण्वाः) सिरदर्द, (अक्ष्यः) आंखी (पक्षः) शरीरस्थानके रोग उक्त प्रकार हटानेकी सूचना दी है। (वातजाः) वात (पित्ताः) पित्त (श्लेष्मजाः) कफके प्रकोपसे शरीरमें उत्पन्न हुए रोग तथा अन्य रोग भी उसी युक्तिसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है। (पर्वताद् सचतां) तथा पर्वतों पर रहकर (वनस्पतीन् सचतां) वनस्पतियोंका सेवन करनेका भी उपदेश इसी मंत्रमें है। वनौषधियोंका सेवन दो प्रकारसे होता है एक हवापानीके नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियोंके रसादिका उपयोग करना। पर्वतोंके उच्च शिखरोंपर निवास और हवाके नीचे बैठना उठना बड़ा आरोग्यदायक है, यह बातें हमने कई रीतिसे बुद्धिसे जमाई हैं और हमारे अनुभवसे बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं। पाठक भी इससे लाभ उठावें।

चतुर्थ मंत्रमें सिर आदि उत्तमांग तथा पांव आदि अवरांग तात्पर्य सब शरीरका साधारण सूर्योक्त रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्रद्वारा दी है।

सर्वसाधारण उपाय।

इस सूक्तसे सर्व साधारणके लिये भी बड़ा बोध प्राप्त हो सकता है। सुलभ बात यह है कि जो लोग शरीर सूर्यके सिर्फ बाहर घूमते हैं अर्थात् अपने शरीरको सूर्यकिरणोंसे तपाते हैं उनको चर्म रोग खांसी दमा तथा सब आदि रोग होते ही नहीं। ये सब रोग उनको होते हैं कि जो अपने शरीरपर सूर्य किरण नहीं लेते, अर्थात् सदा मकानोंमें बंदिस्त होकर सब समयमें बैठते हैं। जो इससे बोध लेकर इस सूक्तसे बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं। वेदमें इसीलिये परमात्मा "सब आता है। यदि पाठक अपने घरको सब "का धारण समझेंगे तो वे उनसे बाहर अधिक देरतक रहेंगे और सूर्यकिरणसे मिलनेवाला आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तर्यामी ईश्वरको नमन ।

(१३)

[ऋषिः भृग्वङ्गिराः । देवता-विष्णुः]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्त अस्त्वश्मने यना दूडाशे अस्यसि ॥१॥
नमस्ते प्रवतो नपातमुस्तवेः समूहसि । मृडया नस्तनूभ्यो मयस्कृधि मह्यरणाय चक्षसे ॥२॥
प्रवतो नपातमव एतास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥
या त्वा देवा असृजन्त विश्व रूपं कृण्वाना अमनाय भूष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

अर्थ-(विद्युते ते) विशेष प्रकाशमान तुझको (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे । (स्तनयित्नवे ते नमः) गडगडानेवाले तुझको नमस्कार होवे । (अश्मने ते नमः अस्तु) मेघ करके तुझको नमस्कार होवे । (यत्र) जिससे तू (दूडाशे अस्यसि) दुःखदायीको दूर फेंकता है ॥ १ ॥ हे (प्रवतः नपात्) उत्तमोंको न गिरानेवाले ! (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार होवे । (यतः) क्योंकि तू (नः समूहसि) हमारा इकट्ठा करता है (नः तनूभ्यः मृडय) हमारे शरीरोंको सुख दे और (तोकेभ्यः मयः कृधि) पुत्र के लिये सुख प्रदान कर ॥२॥ हे (प्रवतः नपात्) उत्तमोंसे न गिरानेवाले ! (तुभ्यं एताः नमः अस्तु) तुम्हारे लिये ये नमस्कार होवे । (ते हेतये तपुषे च नमः कृण्मः) तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं । (यत् ते धाम) जो तेरा स्थान (परमं गुहा) परम गुप्त है कि हृदयरूपी गुहामें है वह हम (विद्म) जानते हैं । उस (समुद्रे अंतः) समुद्रके अंदर (नाभिः निहिता असि) तू नाभिरूप रहा है ॥ ३ ॥ हे (देवि देवी ! (असनाय) धनुष फेंकनेके लिये (यत्वा हरिं कृण्वानम्) बलवान् शत्रुका नाश करनेवाले (विश्वे देवाः) सब देव (यां त्वा) जिस तुझको (असृजन्त) प्रगट करते हैं (तस्यै ते नमः अस्तु) उस तेरे लिये नमस्कार होवे । (सा) वह तू (विदथे गृणाना) युद्धमें प्रशंसित होनेवाली (नः मृड) हमें सुख दे ॥ ४ ॥

भावार्थ- हे देवि ! ईश्वरी ! तू बिजली आदिमें अपना तेज प्रकट करती है मेघमें गर्जना कराती है और अस्त्र शस्त्रोंके फेंकने में बलवान है इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर करती है इसलिये तुझे हम बड़ा प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ हे उत्तमोंसे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! तू सर्वोत्तम जीवनसे हमारे अंदर इकट्ठा करती है अर्थात् हमारेमें सब उत्तम बातोंको भरती है उस हर्षसे हमें तथा हमारी संतानोंको सुखी कर, तेरे लिये प्रणाम करते हैं ॥२॥ हे उत्तमोंसे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! हम जानते हैं कि तेरा स्थान हृदयरूपी गुप्त गुफामें है वहांसे समुद्रके अंदर तू नाभिवत् होकर रहती है इसलिये तेरा तेज और तेरे दुष्ट विनाशक वज्र आदि अस्त्रोंकी शक्तिके लिये हम सिर झुकाते हैं ॥३॥ हे देवी ईश्वरी ! शत्रुओंको दूर करनेके लिये बलवान् बनानेवाले सब देवोंने तुझ सर्वव्यापक सीमा रहित तेरी भक्ति करते हैं इस कारण युद्धोंमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे । हम सब तुझ प्रणाम करते हैं ॥४॥

सूक्त की देवता ।

इस सूक्तकी देवता " विष्णु " है । यद्यपि विष्णुका अर्थ व्यापक है और इस मन्त्रका आरंभ मेघरूपी विष्णुके वर्णन से हुआ है तथापि विष्णु का वर्णन करना मुख्य उद्देश इस सूक्त में नहीं है । जिस प्रकार अश्वमेध सूक्त में अग्नि आदि देवताओंके लिखसे परमात्माका वर्णन होता है उसी प्रकार विष्णु इस की देवताके लिखसे ईश्वरका सर्वव्यापक आदिरूपका

देवोंके रूपमें परमात्माका ही वर्णन यहां हुआ है इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्रभाग यहां देखने योग्य हैं

१ 'प्रवतो न पात्" — 'प्रवत्' शब्दका अर्थ उच्च स्थान है। उच्च अवस्था उन्नत आदि भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं। उन्नतोंसे भी उन्नत उच्च 'प्रवतो न-पात्' का भावार्थ है। परमात्मा ही मनुष्यमात्रको उच्च अवस्थामें रखनेवाला और महान् बनानेवाला है। (मंत्र २ ३)

२ 'यो परमं धाम गुहा"—जिस परम धाम हृदय की गुफामें है। हृदयमें आत्माका निवास है यही उपनिषदादिमें अनेक बार आया है।

३ समुद्रे अन्तः शयित निहितोऽपि।' —उसी समुद्रमें मध्यभाग है। हृदय गुफामें मानस सरोवर है समुद्र है जिसमें अनेक आकाशोंका प्रकाशवर है। उसको भी उसका आधार स्थान वही आत्मा है। क्योंकि इस समुद्रकी उच्च लहरें उसकी ही प्रेरणा से अथवा शक्तिसे उठती हैं और उसीकी शक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है।

४ यो नयो देवा अवृजन्त शिक्षे।" — जिस गुहामें सब देव प्रकट करते हैं। आत्माका देवोंद्वारा। प्रकाशित होना वेदमें अनेक स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है। घरा में मेघादि सब देवोंद्वारा आत्मा प्रकाशित हो रहा है। यदि मेघादि देवोंमें न हों तो आत्माका अस्तित्व भी हम नहीं हो सकता। इस प्रकार सब इंद्रियादि देवोंके शरीरमें आत्मा प्रकट करते हैं। विश्वमें सूर्यचंद्रादि सब परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं। मनुष्य समाजमें सब विद्वान् परमेश्वरकी प्रभा प्रकट कर रहे हैं। इस प्रकार सर्वत्र देवोंद्वारा आत्मा प्रकाशित होता है।

५ " विश्वमें सुजाता। " युद्धके समय इसकी अधिक आवश्यकता है। मनुष्य संघटनमें रहनेपर उसकी सहायताके लिये प्रयत्न करता है। थोड़े सज्जनोंको छोड़ दिया जाय तो प्रायः साधारण मनुष्य संकट समयमें ईश्वरकी भक्ति करने लगते हैं। मनुष्यपर संकट न आवे या वह ईश्वरकी पर्वाह भी नहीं करेगा। दुःखमें सच्ची भक्ति होती है। सुखमय युद्ध जीवन युद्ध है। मनुष्य युद्ध करके ही जीवित रहता है। विरोधोंसे घिरना युद्ध है।

इस तरह मंत्रभागोंका वर्णन देखनेसे पता लगता है, कि इस सूक्तमें परमात्माकी तेजस शक्तिकी सुन्दरतया वर्णन करना है। और वह वर्णन कौनसे देवोंके द्वारा यहां किया है।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थानीय आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियां आत्माकी शक्तिसे प्रेरित होकर ही अपना कार्य करती हैं। जैसी यह बात शरीरमें है, उसी प्रकार जगत्की सूर्यादि देवताएं तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं। विश्वव्यापी परमात्माकी शक्ति लेकर ही सूर्य प्रकाशन विद्युत् चमकती और बम बहता है। इसलिये सूर्यप्रकाशमें विद्युत्की चमकाहटमें अथवा बादलोंके बनने व बरसने इन देवताओंकी शक्तियां प्रकट हो रही हैं परंतु परमात्माकी ही विश्वव्यापी शक्तियां प्रकट हो रही हैं। यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको इस सूक्तमें विद्युत्की चमकाहटमें परमात्माका तेज फैल रहा है यही भाव विदित होगा। इसी दृष्टिसे इस सूक्तका विचार करना चाहिये।

प्रथम मंत्रमें विद्युत्की चमकाहट मेघोंकी प्रचंड गर्जना मेघोंमें बनती वृष्टि अथवा जलकी वृष्टि आदि द्वारा परमात्माका प्रकट कार्य दर्शाया उचित है। इसीसे परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है वृष्टिसे अन्न और अन्न प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंके अनेक क्लेश दूर हो रहे हैं। यही परमात्माकी कृपा है।

तपका महत्त्व।

द्वितीय मंत्रमें तपका महत्त्व वर्णन किया है। तप अनेक प्रकारके शरीरसे किया जाता है वाचिक तप मनका तप शरीरका तप ब्रह्मचर्यका तप इंद्रियों तप आदि अनेक तप मनुष्यको करने चाहिये। इन सब तपोंका मिलना बढ़ना (तपसा समूहसि) समूह होना इतना उच्च स्थान उच्च मनुष्यको प्राप्त होना। अर्थात् तपोंके जीवनपर मनुष्यका महत्त्व अवलंबित है।

जिस कारण तपके प्रभावसे मनुष्य उच्च होता है उसी कारण तपके प्रभावसे ही मनुष्य नहीं गिरता। इसीलिये इस द्वितीय मंत्रमें उच्चासे न गिरनेका हेतु तपका प्रभाव (प्रवतः न पात यत् तपसा समूहसि) कहा है। यहां पाठक इसका परस्पर प्रभाव देखें और विचारने बनानेका कारण आप अपने आपसे विचारने बनावें। जो तपसे अपने आपको गिरानेसे बचा सकता है वह इतरोंसे क्यों न बचा सकता है।

परमधाम।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वरके परम धामका पता दिया है। परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, विशेषतः मनुष्यके हृदयमें ही है। परमेश्वरके भक्त ही उस धामको जानते हैं और वर्णन करते हैं। कोन दूसरा उसको जान सकता है और वर्णन कर सकता है? यही स्थान जानना और इसीका अनुभव लेना महत्त्वका कार्य है।

मनुष्य समुद्रके अंदर गिर गया है इस समुद्र की लहरें बड़ी भारी लहरा रही है अर्थात् शत्रु चक्र चला रहा है, दुराचार मेघ बरस रहे हैं विषयिनी चञ्चलता रही है और यह मनुष्य ऐसे प्रबल समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है। उसका ख्याल है कि सहायता बाहरसे आनेवाली है। यही महत्त्वका भ्रम है यही अज्ञान है और यही अन्धेरी है।

यह तृतीय मंत्र स्पष्ट बतलाता है कि उस महत्त्व समुद्रका केन्द्र यही परमात्मा है और वह मनके हृदयमें स्थित है। हे मनुष्य! यदि तू समुद्र उसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमेंही उसे ढूंढनेका यत्न कर यही उसका परम धाम है। और वहांही वह अपने दैवकोष प्रकाश रहा है।

पाठको! आप यह ध्यानमें रखिये कि आत्मासे हरएक के हृदयमें यह आत्मज्योति है। यही उस उन्नति की सहायक शक्ति है। आप उसे पकड़ लीजिये तो आपकी उन्नति निःसंदेह हो जायगी। सब कुछ अन्दरसे बन रहा है बाहरसे नहीं। आपकी उन्नतिका भी यही नियम है।

युद्धमें सहायता।

युद्धके समय मनुष्य हमला होनेके भयसे अपने समस्त इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं। परन्तु इस लिये कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं। इसीलिये वे सदुपदेश दुःखको स्वीकारते हैं और अन्योंको दुःख देते हैं। यही दुःख महत्त्व है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि "सब देव उसके प्रकट करते हैं। इसीका स्पष्टीकरण इससे पूर्व किया जा चुका है। 'जिसमें उसकी अर्चना या स्तुति प्रार्थना होती है" इसका भी कारण स्पष्टतापूर्वक हमने देखा है। यह सब इसलिये करते हैं कि मनुष्य शुद्ध अन्तःकरणके लिये प्रबल शक्ति प्राप्त हो।" जो परमात्माके सच्चे भक्त होते हैं, वा तो उसके सम्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता अथवा जो उसकी अवज्ञा करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है। अर्थात् परमेश्वर मानवी एक ऐसी शक्ति है जो संपूर्ण शत्रुओंका नाश कर सकती है।

नमन।

इस चार मंत्रोंके सूक्तमें परमेश्वरके चरण पर नमन किया है, अर्थात् महान् अनेक वारका नमन सिद्ध कर रहा है कि परमेश्वरकी सर्वनाम सत्ताके सामने सिर झुकना उसके संबन्ध उपस्थित समस्या सहीपे सर्वोपरि समस्या मनुष्यकी उन्नतिके लिये आवश्यक है। उसको छोड़कर किसी दूसरेको नमन न करनेके संबन्धमें "तुभ्यं एव नमोऽस्तु" (मंत्र १) यह मंत्रभाग देखने योग्य है। "हे तुझे ही नमन करता हूं।" ऐसे लिख किसी अन्यकी उपासना मैं नहीं करता, हे ईश्वर! तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूं। तुझे अनुकूलित कर और कुछभी नहीं। इस सूक्तमें सर्वोत्कृष्ट उपासना यही है, पाठक इसका उपयोग उपासनाके समय कर सकते हैं।

कुलवधू-सूक्त

[ऋषिः— भृग्वङ्गिराः। देवता-पतिः]

(१४)

मणिमस्या वर्ष आदित्यायिं वृषादिव स्तभम्। महाबुध्न इव पर्वतो व्योह् पितृष्वास्याम् ॥१॥
एषा ते राजन्कन्या पतूर्नि पूयतां वधम। सा मातुर्वेद्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥
एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि ददामि। व्योह् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥३॥
अस्तिवस्य ते प्रक्षणा कुक्षयोस्तु गर्भस्य च। अन्तःकोशमिव भ्रामयाऽयिं नद्धामि ते भगम् ॥४॥

अर्थ—(वृक्षाद् अधि खन इव) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंको माला लेते हैं उस प्रकार (अस्या भगं वर्चः आदिषि) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं। (महाशुमः पर्वत इव) बडे ऊंचाईके पर्वतके समान स्थिरतासे यह कन्या (पितृषु क्षयेषु आसती) मातापिताके घर बहुत समयतक रहे ॥ १ ॥ हे (यम राजन्) नियमपूर्वक करनेवाले स्वामिन् ! (एषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (मिथूकृता) व्यवहार करे। (अथो) अथवा (सा) वह माताके भाईके (अथो) किंवा पिताके (गृहे वध्वताम्) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे (राजन्) हे स्वामिन् ! (एषा) यह कन्या (ते कुल-पा) तेरे कुलका पालन करनेवाली है। (तां) उसको (ऊ ते परिदधामसि) तेरे लिये देते हैं। यह (ज्योक्) उस समयतक (पितृषु वासती) मातापिताके घरमें निवास करे (आ शीर्ष्ण्या शमीप्यात्) जबतक सिर न सजाया जाये ॥ ३ ॥ (अस्तिवस्व) धनसे रहित (अदक्षिणस्य) इस (च) और (गवस्य) गाय खरीद करनेवाले (ते) तेरे (ब्रह्मज्य) ज्ञानके साथ मैं [ते मनसि अधि मनसानि] तेरे ऐश्वर्यको चाहता हूं [यामपश्यं अंतरा कोतं हृदः] जिसको अपनी पिताओंको अच्छे चाहती है ॥ ४ ॥

भावार्थ [१] वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसी माला बनाकर लोग पहनते हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं और उससे अपने आपको सजाना चाहता हूं। जिस प्रकार बडी ऊंचाईका पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निडर होकर बेरोकटोक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [२] हे नियमपूर्वक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे। जिस समय यह आपके घर न रहेगी उस समय यह पिता माता अथवा भाईके घर रहे परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं। जबतक इसका सिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ धनसंपत्तिसे रहित इस और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके मानसिक संबंध मैं करता हूं। जिस प्रकार स्त्रियां अपने जेवर संदूकमें बंद रखती हैं उस प्रकार इसका मान सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

पहला प्रस्ताव।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं। पहले मंत्रमें भावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है। पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है। इस विषयमें मंत्रका स्पष्ट अभिप्राय है—

"वृक्षसमानस्थितियोंसे पत्ते फूल और मंजरियां लेकर लोग माला बनाते हैं और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं। इस प्रकार यह कन्या सुशोभित फूलोंवाली वही है इसके फूल और पत्ते (मुखकमल और हस्तपल्लव) अथवा इसका सौंदर्य और तेज मैं लेता हूं और उससे मैं सुशोभित होना चाहता हूं। अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूं। जैसा पर्वत अपने स्थिरताके आधारपर रहता है उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुरक्षित आधार पर रहे। अर्थात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और तत्पश्चात् मेरे (पतिके) घर आजावे।"

यह मंत्र प्रथम मंत्रका है। इसमें भावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है। भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पसंद करता है और उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है। अर्थात् भावी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है। और साथ यह भी कहता है कि कन्या कुछ समयतक माता-पिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेपर कन्या माता पिताके घर रहे तत्पश्चात् पतिके घर आवे। योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जावेगी।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि, पुरुष अपनी सहधर्मचारिणी को पसंद करता है। पुरुष अपनी रुचि के अनुसार कन्याको चुनता है और अन्तमें मानस कन्याके मातापिताओंके निवेदन करता है। कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और भावी पतिको मान्य उत्तर देते हैं।

इस सूक्तसे यह स्पष्ट नहीं होता है कि कन्याका भी अपने पतिके विषयमें पसन्दगी नापसन्दगीका विचार प्रदर्शित करने का अधिकार है या नहीं। अन्तमें होनेवाला भी कन्याका मातापिताके घरमें बेरोकटोक वास्तव्य [पितृषु कन्या आसती] बता रहा है कि यह प्रस्ताव कन्याके स्वीकारके पूर्व ही अपना उत्तर होनेके पूर्व ही देना है। आज कल जिसको "सगाई" करते हैं उसके समान ही यह बात दीखती है। इस सूक्तमें कन्याका एक भी भाषण नहीं है

परन्तु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही भाषण है। इससे अनुमान होता है कि कन्याका उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम [ते तां परि ददामसि] तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं।" यह मंत्रभाग स्पष्ट बता रहा है कि कन्या इस विषयमें परतंत्र है। मंत्रमें दो बार आया है कि 'कन्या पिता माता अथवा भाईके घरमें रहे" अथवा आगे जाकर इस कह सकते हैं कि विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे। परन्तु वह कभी स्वतन्त्रतासे न रहे।

जिस प्रकार इसका आधार बतलाये गये हैं, अथवा वर्णितव्य आधार अत्यन्त अति विस्तृत सृष्टि रूप है उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मातापिता अथवा भाई है और पश्चात्तम आधार पति ही है इससे भिन्न किसी अन्यका आधार स्त्रीको लेना उचित नहीं है।

प्रस्तावका अनुमोदन।

प्रथम मंत्रमें कथित भावी पतिका प्रस्ताव सुननेके पश्चात् कन्याके मातापिता विचार करके भावी पतिसे कहते हैं; कि—

"हे नियमसे चलनेवाले स्वामिन्! यह कन्या तेरे साथ नियमपूर्वक व्यवहार करे। तबतक यह मातापिता अथवा भाईके घरमें रहे॥ हे स्वामिन्! यह कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है इसलिये हम तेरे लिये इसका प्रदान करते हैं। यह तबतक मातापितादके घर रहे जबतक इसके सिर सजानेका समय आता है तू ब्रह्मचर्यरहित ब्रह्मा जो ब्राह्मणोंसे पुत्र है इसलिये ज्ञान साथ इस कन्याको आदरसे अच्छी तरह बोध दे दे। जैसी स्त्रियां अच्छे वेषभूषामें घर रखती हैं उस प्रकार इसके साथ तू आदर पूर्वक रख। है।"

यह तीसरे मंत्रोंका तात्पर्य है यह बहुतही विचार करने योग्य है। पाठक इसका बहुत विचार करें। यहां कन्याकी परीक्षाके लिये कुछ विचार किया जाता है—

वरकी परीक्षा।

इस सूक्तमें पतिके गुण धर्म बतलाये हैं वे यहां प्रथम देखने योग्य हैं—

१ धर्म = वर्णितधर्मोंका पालन करनेवाला धर्मानुकूल आचार आचरण रखनेवाला।

राजनृराजा (राजधाने।) अपनी धर्मपत्नी। जिस घरमें राजा। (यहां पत्नी के स्थानका अर्थ होनेसे राजन् शब्दका अर्थ यह लेना योग्य है।) राज्य चलानेवाला अर्थ "संयमित रीतसे करनेवाला।" इत्यादि अर्थोंसे धर्मपत्नी पुरुष भी ग्रहण होते हैं। उस धर्मपत्नीका संयोग बतलाया।

२ अरिष्ट—(अ-रिष्ट अवयवः) हिंसारहित। अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रतासे चलनेवाला है। पुरुषादिके मारने जितने अंगमें नहीं है।

३ कल्पयः—(पदपाठ) देखनेवाला। अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्योंको ठीक प्रकार समझनेवाला।

४ तनूपा—(तनूरक्षकः) शरीरोंकी रक्षा करनेवाला। शरीरोंकी योग्यतासे विरुद्ध अपने प्राणोंका बल बढ़ाता है।

५ ब्रह्मचर्य पुरुषः—ब्रह्मचर्य पुरुष। ब्रह्मी।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं।

पतिके गुणधर्म।

धर्मोपदेशकोंके अनुकूल आचरण करना धर्मपत्नीको संतुष्ट रखना स्वार्थीपनेके लिये दूर करना, अपनी परिस्थितिकी ठीक प्रकार समझना योग्यादि ज्ञानसहित अपनी दीर्घ आयु नीरोगता तथा सुरक्षाका संरक्षण करना, तथा ज्ञान बढ़ाना ये गुण पतिकी योग्यता प्रदर्शित कर रहे हैं।

४। स्त्रीको संतुष्ट रखना धर्मानुकूल चलनेमें शिक्षा देना उचित है उसमेंही लाभ है क्योंकि "यम राजन्" ये दो शब्द मंत्रमें इसीसे प्रयुक्त हुए हैं।

अपनी कन्या के लिये वर ढूंढना हो तो उस के गुणोंकी कसौटीसे ही ढूंढना तथा पसंद करना चाहिये। जिसका आचरण धर्मानुकूल हो जो धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेवाला हो जो स्वार्थीपनेके लिये अयोग्य हो जो अपनी अवस्थाको जाननेवाला और तदनुकूल धर्म व्यवहार करनेवाला हो जो बलवान तथा नीरोग हो और स्वास्थ्य रक्षा कर सकता हो तथा जो ज्ञानवान और बहुश्रुत हो तो उस वरसे अपनी कन्या प्रदान करना योग्य है।

तथा जो धर्मानुकूल आचरण नहीं करता जो किसीके साथ प्रेमयुक्त आचरण नहीं करता जो परार्थीपनेमें रहता है जो अपनी अवस्थाके प्रतिकूल आचरण करता है तथा जो निर्बल और रोगी हो तथा जो ज्ञानी न हो उसको किसी भी अवस्थामें अपनी कन्याके लिये वर इसमें कभी नहीं करना चाहिये।

पाठक वर परीक्षाके विषयमें इस बातोंका ध्यान रखें। अब वधू परीक्षा करनेके नियम देखिये—

वधू-परीक्षा।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके निम्नलिखित मंत्र आये हैं—

१ कन्या— [कमनीया] कन्या ऐसी हो कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो। रूप तेज सुवर्णकी मुंदर रंग स्वच्छता ज्ञान आदि सब बातें जिनसे दर्शनमात्रके मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस शब्दसे ज्ञात हो जाती है।

२ वधू— [उशते पतिगृहं] जो पतिके घर आकर रहना पसन्द करती है। जो पतिके घरमें ही अपना सच्चा घर मानती है।

३ कुरुपा—कुरूप पालन करनेवाली। पिताके तथा पति के कुलोंकी मर्यादाओंका पालन करनेवाली। जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका यश बढ़ाती है।

४ ये [पत्युः] अगात् —वधूमें ऐसी होनी चाहिये कि जो पतिका मनोरथ सफल बनावे। जिसमें पतिकी सम्पत्ति अनुभव हो।

५ विश्वुः आस्तात्- विवाहके पूर्व अथवा आवश्यकतानुसार माताके अथवा अपने घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली। किसी कन्याके घर आकर रहनेकी इच्छा व ऐसी कन्या होनी चाहिये।

६ वृषाव् वधू इसमें पुत्रवधूके समान कन्या हो जिसके कुलकी इच्छा पुत्रवधूरूप कन्या पूर्णित करे।

ये छ मंत्रभाग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं। पाठक इसका मनन किया करें और इन नियमोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें।

कन्याके गुणधर्म।

कन्या सुरूप तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रह नेवाली हो दोनों कुलोंका यश अपने सदाचारसे बढ़ानेवाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली यौवनके पूर्व पिताके घरमें तथा यौवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली तथा पुत्रवधूके समान अपने कुलकी शोभा बढ़ानेवाली हो। इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसकोही पसंद करना योग्य है।

परंतु जो फीकी निस्तेज कुरूपी पतिके घर आनेकी इच्छा न करनेवाली, दुराचारिणी पतिके भाग्यको नष्ट करनेवाली तथा दोषयुक्त हो वह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है।

मंगनीका समय।

इस सूक्तसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता क्योंकि उसका स्पष्ट कोई प्रमाण यहां नहीं है। कन्या सिर्फ मंगनीके समयके पूर्व माताके घर दरसाल रहे' इस तृतीय मंत्रके कथन से मंगनीका समय ऋतुमती होनेके पूर्व एक वर्ष अथवा अधिकसे अधिक एक दो वर्ष- जैसा संभव है। तथापि वधूपरीक्षाके जो छ लक्षण ऊपर बताये हैं वे लक्षण स्पष्टतया व्यक्त होनेके लिये कुछ दशाकी प्राप्तिकी अवश्य आवश्यकता है। "पतिके घर जानेकी कन्या" जिस अवस्थामें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था मंगनीकी प्रतीत होती है। ये छ शब्द अच्छी तरह प्रयुक्त करके उपर कन्याकी अवस्था बता रहे हैं। पाठक इन सब बातोंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे तो उनको कन्या की किस आयुमें मंगनी होनी चाहिये इस विषयका निर्णय हो सकता है।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका पूरा विचार करके भावी पतिके प्रस्तावका स्वीकार वा अस्वीकार करें। इस सूक्तमें वरके मातापिताको तथा कन्याको अपना मत देनेका अधिकार है ऐसा समझनेके लिये एक भी प्रमाण नहीं है। यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें आवे मिल जायगी तो उस समय देखी जायगी।

सिरकी सजावट।

तृतीय मंत्रमें कहा है 'यद्वोढ़ विवृत्सावा आ सीष्यः समोप्यात् (वरके मातापिताके घरमें कन्या रहे जब तक कि मंगनीका समय आजावे।) यहां एक बात कहना आवश्यक है कि जिस समय जो ऋतुमती स्त्री है उस समय उसको पुष्पवती" कहते हैं। पुष्पवतीका अर्थ फूलोंसे अपने आपको सजाने योग्य अथवा रजोदर्शन अथवा ऋतु प्राप्त अथवा स्वयं पुष्पवती होने से उसका फूलोंका। मंगनीकी तथा विवाहमें उसका सिर फूलोंसे सजानेकी प्रथा आजतकमें इस समय में भी है। मैसूर ओर महाराष्ट्र ओर तो पहले मंगनीके लिये वरको दर्शनके हेतु इस तरहसे कन्याकी सजावट के लिये लाये जाते हैं। मुसलमानों की कई जातियोंमें यह प्रथा है। अन्य जातियोंमें कम है परंतु सिरमें फूल पहरनेका रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है। यह रिवाज अधिकतर कम हो रहा है। एक समाजमें आज भी कुछ उत्साहके समय के साथ यह रिवाज स्थूल हो रहा है।

बनी सोम इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती होके चतुर्थ दिनमें उसका सिर बहुत सजाते हैं। जिन प्रांतोंमें पूर्वत्र विवाहनेका रिवाज है उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है परंतु सच्ची बात वहांके लोग ही जान सकते हैं। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि पूंघटकी प्रथा अर्वाचीन कारणोंसे हमारे समाजमें घुस गई है।

सगनीके पश्चात् विवाह।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि सगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है। प्रथम मंत्रमें वरके पक्षका प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है। और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें तो कन्याके अर्पण का विषय आया है। देखिये –

१ एषा कन्या ते वधूः भिनृणुताम्=यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर विनोद व्यवहार करे। तथा—

२ एषा [कन्या] ते दुहिता सं उ ते परिदधामसि=- यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसीसे इसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं।

३ ते मणौ अपिनहामि= तेरा भाग्य [इस कन्या के साथ] बांधता हूं अर्थात् इससे तू अलग न हो।

ये मंत्रभाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् शीघ्र ही विवाहका समय होता है। यद्यपि इसमें समय का पश्चात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी [२] कन्यादान की संमति [३] फिर सजानेके समयतक अर्थात् दुल्हनी होनेतक कन्याके पितृगृहमें विवाह का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनी के पश्चात् विवाह होनेके बाद ऋतुमती और दुल्हनी होनेके अंतर कन्याका पतिके घर विवाह होनेका कम रिवाज होता है। पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें। यह विषय कल्याण सूक्तोंके साथ संबंधित है इसलिये इस विषय प्रकरणके सूक्त जहां जहां आवेंगे वहां वहां इसके साथ संबंध देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा। पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों को सहायता देंगे तो अधिक विशेष विवेचन संभव है

संगठन–महायज्ञ–सूक्त।

[ऋषि अथर्वा। देवता–सिंधु]

(१५)

स स्रवतु सिन्धुः सं वाता स पतत्रिणीः।
दुम यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां सप्ताध्वरेण हविषा जुहोमि ॥१॥
इहैव इतमा यात म इह सप्तावता उतेम वर्धयता गिरः।
इहेतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥२॥
ये नदीनां सुस्रवन्त्युरसासः सदमक्षिताः। तेभिर्मे सर्वैः सप्तभिर्वर्धनं स स्रावयामसि ॥३॥
ये समुद्रं सप्तवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च। तेभिर्मे सर्वैः सप्तभिर्वर्धनं स स्रावयामसि ॥४॥

अन्वय— [सिंधवः] नदियां [सं स स्रवन्तु] उत्तम रीति से मिलकर बहती रहें [वाताः सं] वायु उत्तम रीतिसे मिलकर बहा करें [पतत्रिणः सं] पक्षी भी उत्तम गतिसे मिलकर उडते रहें। इसी प्रकार (प्र दिवः) उत्तम दिव्य जन (मे इमं यज्ञं) मेरे इस यज्ञको (जुषन्तां) सेवन करें क्योंकि मैं (सप्ताध्वरेण हविषा) संघटनके आनंदसे (जुहोमि) दान कर रहा हूं ॥ १ ॥ (इह एव) यहां ही [मे इमं] मेरे यज्ञके प्रति (आयात) आओ

(उत) और हे (संजानानाः) संगठन करनेवाले [गिरः] वक्ताओ ! [इमं यज्ञपतं] इस संगठनरूप यज्ञको बढ़ाओ । [या पशुः] जो सब पशुमात्र है वह (इह पशुः) यहां आवे और (अस्मिन्) इसमें (या रविः) जो संपत्ति है वह (तिष्ठतु) रहे ॥ २ ॥ (नदीनां) नदियोंके जो (अक्षिताः उत्सासः) अक्षय स्रोत इस (नई) संगठन स्थानमें (संजग्मिरे) मिल रहे हैं (तेभिः मे सर्वैः संजानानैः) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब (यज्ञं) धन (संजानानासि) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥ (ये) जो (सप्तिय) पक्षी (क्षीरस्य) दूधकी (च उदकस्य) और जलकी धाराएं(संजग्मिरे) मिल रही हैं (तेभिःमे सर्वैः संजानैः) उन सब धाराओंसे हम (यज्ञं संजानानासि) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-नदियां मिलकर बहती हैं वायु मिलकर बहते हैं पक्षी भी मिलकर उडते हैं उस प्रकार हे मनुष्य तू भी इस मेरे यज्ञमें मिल जुलकर संमिलित हो, क्योंकि मैं संगठनके महत्वसे ही यह संगठनरूप महायज्ञ कर रहा हूं ॥ १ ॥ अतः मेरे इस संगठनके महायज्ञमें आजाओ और हे संगठनके चाहक वक्ताओ ! तुम अपने उत्तम संगठन बढानेवाले वक्तृत्वोंसे इस संगठन महायज्ञको बढ़ाओ । जो इस सबमें पशुमात्र हो, वह यहां इस यज्ञमें आवे और इस सबमें सम्पत्तिरूप भाव चिरकालतक निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन महायज्ञमें मिल रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ क्या पक्षी, क्या दूध और क्या जलकी जो धाराएं हमारे पास बह रही हैं, उन सब धाराओंसे हम अपना धन इस संगठनद्वारा बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥

संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

यह संगठन महायज्ञका सूक्त है । इसके प्रथम मंत्रमें संगठनसे शक्ति बढ़नेका वर्णन है यह संगठन करनेवालोंको देखना और उसपर खूब विचार करना चाहिये । देखिये—

१ नदियां—नदियां । जो जल बहती हैं उसको स्रोत कहते हैं । इस प्रकारके सैकडों और हजारों स्रोत जब इकट्ठे होते हैं और अपना भेदभाव छोडकर एकरूप होकर बहते हैं तब उसका नाम "नदी" होता है । नदी भी जिस समय महापूरसे बहती है उस समय विविध छोटे छोटोंके एकरूप होकर बहनेके कारण जो महाशक्ति प्रकट हो जाती है, वह अपूर्व ही शक्ति है । यह नदी इस समय बडे बडे वृक्षोंका संहार देती है; जो उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ बहा देती है । बडे बडे मकान बडे पहाड भी महानदीके वेगके सामने दुरुस्त हो जाते हैं । यह वेग कहांसे आता है ?

पाठक विचार करेंगे तो पता लग जायगा कि यह वेग छोटे स्रोतमें नहीं होता परंतु जब अनंत छोटे स्रोत एकरूप होकर और अपना भेदभाव बहाकर एकरूपसे बहने लगते हैं; अर्थात् अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं तभी उसमें यह अपूर्वपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार नदियां मनुष्यको "संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढानेका उपदेश" दे रही हैं।

२ वायुः—वायु भी इसी प्रकार मनुष्योंको संगठनका उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे वायु जिस समय बहते हैं उस समय इसके पत्ते भी नहीं हिलते परंतु वही सब एक होकर प्रचंड वेगसे जब बहने लगते हैं तब महावृक्ष टूट जाते हैं और मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन शब्दोंसे भी संगठनके बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार वायु भी संगठनका उपदेश मनुष्योंको दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी होता है तो उसको दूसरा कोई भी मार सकता है परंतु जब सैकडों और हजारों चिडियां एक स्थानमें रहकर अपना संगठन करती हैं तब उसकी शक्ति बडी भारी होती है । इस प्रकारके पक्षियोंके समूह बडे बडे खेतोंका धान्य अल्प समयमें साफ करके खा जाते हैं । यह संगठनका सामर्थ्य पाठक देखें और अपना बल बढाकर अपना ऐश्वर्य बढावें । पक्षी यह उपदेश मनुष्योंको अपने आचरणसे दे रहे हैं ।

इस प्रकार यहांके मंत्रमें ये तीन उदाहरण मनुष्योंके संमुख रखकर संगठनका महत्व बताया है । यदि पाठक इन उदाहरणोंका उत्तम मनन करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।

यज्ञमें संगतिकरण ।

'यज्ञमें संगठन होना ही है । और वह देखा गया है कि जिसमें संगतिकरण न हो । वह यज्ञ मुख्य अर्थ संगठन ही है । प्रथम मंत्रके द्वितीयार्धमें इसलिये कहा है कि नदियोंके वायुओंमें और पक्षियोंमें संगठनकी शक्ति अनुभव करके उस प्रकार अपने संगठन बढानेके उद्देशसे हमारे बढावके अवसर

सारे देश जाति वा राष्ट्रके लोग इस संगठन महायज्ञमें मिलित हों। एक स्थानपर जमा होना पहिली सीढ़ी है। उसके पश्चात् परस्पर समर्पण करनेसे संगठनकी वृद्धि बढ़ने लगती है। इसमें सब प्रकारकी अभिलाषाएं एकत्रित होती हैं और अभिलाषा प्रकाश करती हैं। यदि एक एक अभिलाषा अलग होती तो अग्नि कुछ जलता। इसी प्रकार जातिके सब लोग सम्मिलित होनेसे सब जातिका बल चारों दिशाओंमें फैलता है, परन्तु जिस जातिमें एकता नहीं होती उसकी दिन प्रति दिन अवनति होती जाती है। इससे यहां स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्परके लिये आत्मसमर्पणका भाव अवश्य चाहिये।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उत्तम उपदेश किया है।

संगठनका प्रचार।

सब लोग यहां आकर सभी एक परिषद् करें और संगठन बढ़ानेवाले उत्तम वक्ता अपने ऐश्वर्यमान बढ़नेवाले वक्तृत्वसे इस संगठन महायज्ञका फैलाव करें।" यह द्वितीय मंत्रके पूर्वार्धका भाव है।

सभा परिषद्, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्धमें कही है। सब लोग इसका महत्व जानते ही हैं। आगे आकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्वपूर्ण बात कही है वह अत्यन्त ध्यानसे देखने योग्य है—

पशुभावका यज्ञ।

" जो अब पशुभाव इस सभामें हो वह इस यज्ञमें आजावे और नहीं रहे अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहे। पशुभावकी प्रधानता जिस मनुष्योंमें होती है उसमें ही आपसके झगड़े होते हैं। यदि पशुभाव संगठनके लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्वका भाव बढ़ाया जाय तो आपसके झगड़े नहीं होंगे। इसलिये पशुभाव को यज्ञमें जलानेकी सूचना इस द्वितीय मंत्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना कोई संगठन हो ही नहीं सकता।

पशुभाव छोड़नेका फल।

पशुभाव छोड़ने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे अब संगठनसे अपनी जाति बढ़नेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

" जो बल है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे।" संगठनका यही परिणाम होता है। जिससे मनुष्य बलवान् होता है उसका नाम बल है। मनुष्यमें बल उत्पन्न होनेसे उस मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं। इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके लिये बताये हैं वे ये हैं—

१ एक स्थानपर सम्मिलित होना सभा करना
२ उत्तम वक्ता अपनेको संगठनका महत्व समझा देवें।
३ अपने अंदरका पशुभाव छोड़कर मनुष्यत्वसे युक्त होकर लोग आपस आंख खोल मनुष्य बनकर परस्पर वर्तालाप करें।

इन बातोंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है। इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे वे अवश्यमें बलवान् हो जावेंगे।

तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें फिर मनियोंके और अन्योंके लोगों का वर्णन आया है जो पूर्वोक्त रीतिसे एकत्रित प्रवेश पुनः कर रहा है। संगठन करनेवालोंको भी इन्हीं सब पदार्थ मरपूर मिल सकते हैं अतः उनमें इन पदार्थोंकी कमियां ही रहेंगी। इसलिये संगठन करना मनुष्योंके उन्नतिका एकमात्र प्रधान साधन है।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्धमें कहा है कि " इन संगठित प्रजाओंसे हम अपना बल बढ़ाते हैं।" संगठित प्रजासे ही बल बल और बल बढ़ता है।

आशा है कि पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करेंगे और संगठनद्वारा अपनी पुरुषार्थ शक्ति बढ़ाकर अपना बल चारों दिशाओंमें फैलावेंगे।

चोर-नाशन-सूक्त ।

[ऋषिः चातनः । देवताः अग्निः, इन्द्रः, वरुणः]

(१६)

येऽमावास्यां रात्रिमुदस्युर्व्रजमत्रिणः । अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमर्षति ॥१॥
सीसायाक्रन्दाग्ने वरुणः सीसायाग्निरब्रवीत् । सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदबध्नात् यातुधानम् ॥२॥
इदं सीसं च सहत इदं यावत् अत्रिणम् । अनेन विश्वा सहे या ज्ञातानि पितॄणाम् ॥३॥
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् । तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

अर्थ—(ये अत्रिणः) जो खाऊ चोर (अमावास्यां रात्रिं) अमावस्याकी रात्रिके समय हमारे (व्रजं) गोष्ठपर (उदस्युः) हमला करते हैं, उस विषयमें (यातुहा सः तुरीयः अग्निः) चोरोंका नाशक यह चतुर्थ अग्नि (अस्मभ्यं) हमें (अधि अवत्) सूचना दे ॥ १ ॥ वरुणने सीसेके विषयमें (अब्रवीत्) कहा है । अग्नि सीसेको (उपावसि) रक्षक बताता है । इतनेसे तो (मे) इस चोरको (प्रायच्छत्) दिया है । हे (अंग) प्रेम ! (तत् यातुधानम्) वह खाऊ इसनेको (अबध्नात्) बांधता है ॥ २ ॥ (इदं) यह सीसा (विश्वक्रंच) सब ओर (अत्रिणं) खाऊओंको [सहते] हराता है । यह सीसा (अत्रिणः) खाऊओंको (यावत्) जैसा हैसा है । (अनेन) इससे (पितॄणां या विश्वा ज्ञातानि) पितरोंकी जो भी जातियां हैं, उनको (सहे) मैं हराता हूं ॥ ३ ॥ (यदि नः गां हंसि) यदि हमारी गायको तू मारता है (यदि अश्वं) यदि घोड़ेको और (यदि पूरुषं) यदि मनुष्यको मारता है (तं त्वा) तो उस तुझको (सीसेन विध्यामः) सीसेसे हम बेधते हैं (यथा) जिससे तू (नः अवीरहा असः) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अमावास्या की अंधेरी रात्रिके समय जो खाऊ हमारे खबर हमला करते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानीसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलसे रक्षक तथा उपदेशक सीसेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा करते हैं । और वीरोंने तो सीसेकी गोली हमें दे रखी है । हे बंधुओ ! यह खाऊओंको हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीसेकी गोली खाऊओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे बहु पितरोंकी सब जातियोंको दूर भगाया जाता है ॥ ३ ॥ हे चोर ! यदि तू हमारी गाय घोड़ा अथवा मनुष्यका वध करना तो तुझपर हम गोली चलायेंगे जिससे तू हमारा नाश करनेके लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

सीसेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीसेकी गोली का प्रयोग खाऊओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल "सीस" शब्द है, गोली का वाचक शब्द नहीं है तथापि "सीसेन विध्यामः" (सीसेके द्वारा वेध करेंगे) इस प्रयोगसे सीस शब्दसे सीसेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीसेका उपयोग खाऊओंके नाशमें किसी अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दीखता है । (विध्यामः) वेध करनेका भाव दूरसे चांदमारीके समान सिद्ध किया जाता है । व्याकरण सीसेकी गोली बंदूकसे चलाकर दूरसे शत्रुको वेधते हैं । बाण भी शत्रुपरसे दूरसे ही सिद्ध कर सीध आता है । तात्पर्य इस मंत्रोंके शब्द बता रहे हैं कि सीसेकी गोलीसे दूरसे ही खाऊओंका वेध करना चाहिये । काटी छोरीके समान वह पासमें नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहां बताना है ।

शत्रु ।

"अत्रिन्, यातु" आदि शब्दोंके अर्थ प्रथम-सूक्तके विवरणमें लिखे हैं, पाठक वहां देखें । ये सब शब्द खाऊ चोर डाकेत अर्थात् गला काटे शत्रुओंके वाचक हैं । इससे भिन्न भिन्न शब्दोंका इससे पूर्व विचार नहीं हुआ इसका विचार यहां करते हैं—

१ विध्यामः—प्रतिबंध करनेवाला उपद्रवों उत्पात करनेवाला इत्यादि बातोंमें भिन्न भिन्न होता है ।

२ पिशाच, पिशाची—रक्त पीनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले क्रूर क्रोध को मनुष्यका मांस भी खाते हैं।

ये सब तथा (अदित्) भूखे चोर, (यातु) चोर ये सब प्रजाके शत्रु हैं। इनको उपदेशादि सुधारनेका विफल पूर्व आये हुए (को १ सू ७ ८) वर्णप्रचारके सूक्तोंमें बताया है। वहां नहीं सुधरते उनको दबाने लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी प्रथम सूक्तके अंतमें दी है। उपदेश और दण्ड इन दो उपायोंसे जो नहीं सुधरते उनपर क्षेपिकी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है। अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये। जिसका आपसमें उत्तम संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे तो संभव है कि वे अपने ही सहायक हो जावेंगे। इसलिये प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर चढ़ाई यह विशेष ध्यानमें रखना चाहिये।

इस सूक्तमें वरुण ' शब्द आया है। वरुण असुर नामक अग्निपति देवमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। उसकथन यहां आदि तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह जो उपदेश है। जिस प्रकार " अग्नि " शब्द ब्रह्मणस्पत्यवाचक " इन्द्र " शब्द क्षात्रधर्मका बोधक है उसी प्रकार वरुण " शब्द व्यवहारार्थसे आनेजानेवाले और देशांतरोंमें व्यापार करनेवाले वैश्योंका अथवा वैश्यधर्मका सूचक यहां प्रतीत होता है। इसलिये गोली चलानेके विषयमें (अग्नि) ब्राह्मण (इन्द्र) क्षत्रिय और (वरुण) वैश्यकी भी संमति ली है और (इन्द्र) क्षत्रिय से तो संक्षिप्त गोलियां हमारेपास रखी हैं इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है। प्रथम सूक्तमें दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि ये चोर डाकू सुधरते नहीं हैं क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक बार देहदंड देनेपर भी इन दुष्टोंका सुधार नहीं हुआ वैश्य तो बड़े व्यवहार कुशल होते हैं। वे इस प्रकार तीनों वर्णोंके परिवहके बाद गोली चलानेकी आज्ञा दी तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलाई जा सकती है। पाठक यह पूर्वापर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें।

सूक्तकी शेष बातें स्पष्ट हैं। इसलिये अधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं है।

(यहां तृतीय अनुवाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ।)

रक्तस्राव बंद करना।

[ऋषि प्रह्लाद। देवता-योषित्]

(१७)

अमूर्या पन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः। अग्नातरह्व स्वसारस्तिष्टन्तु दुर्वर्चसः ॥१॥
तिष्ठाविरे तिष्ठ परा उत स्व तिष्ठ मध्यमे। कनिष्ठिका च तिष्ठसि तिष्ठादिद्धर्मिनिर्मही ॥२॥
घृतस्य धुमन्तीनां सहस्रस्य हिरण्याम्। अस्थूरिन्मघ्यमा धुमाः साकमन्ता अरंसत ॥३॥
परि द्यः सिकतावती घृतेनैडस्यर्णवीत्। तिष्ठतेलयता सु कम् ॥४॥

अर्थ (अमूः याः) यह जो (लोहित-वाससः) रक्त जैसे वस्त्रोंसे पहनी हुई (योषितः) स्त्रियां हैं अर्थात् लाल रंगके वस्त्र ये अग्निशाली (हिराः) चमकियां शरीरमें हैं वे (तिष्ठन्तु) ऊपर जांय अर्थात् अपना चलना बंद करें (इव) जिस

प्रकार (अ आतरं) बिना भाईके (इत वर्धसः) निश्चेष्ट बनी (आमवा) बहिनें ठहर जाती हैं ॥ १ ॥ (अवरे तिष्ठ) हे नीचेकी नाडी ! तू ठहर । (परे तिष्ठ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर । (उत मध्यमे) और बीच वाली (त्वं तिष्ठ) तू भी ठहर । (कनिष्ठिका च तिष्ठति) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा (यमनि इव तिष्ठात्) बडी नाडी भी ठहर जावे ॥ २ ॥ (यमनीनां शतस्य) सैकडों यमनियोंके और (हिरण्या सहस्रस्य) हजारों नाडियोंके बीचमें (इमा मध्यमा अस्थुः) ये मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । (सार्क) साथ साथ (अक्षाः) अंग भाग भी (अरंसत) ठीक हुए हैं ॥३॥ (इहती धनुः) यह धनुष्यने (वः परि अक्रमीत्) तुमपर हमला किया है अतः (सिक्तावती तिष्ठत) रेतवाली अथवा सर्दरावाली बनकर ठहर जाओ जिससे (वं) सुख (नु इहवत) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ—शरीरमें रक्त रूपी रक्त शरीरभर पहुंचानेवाली यमनियां हैं । जब घाव लग जावे तब उनकी गति रोकनी चाहिये जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली ऊपरवाली तथा बीचवाली छोटी और बडी सब नाडियोंका बंद करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकडों और हजारों नाडियोंमेंसे आवश्यक नाडियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके कटे हुए अंतिम भाग ठीक किये जावें ॥ ३ ॥ बडे मनुष्यके बडे बाणोंसे यमनियोंपर हमला होकर नाडियां कट गई हैं उनको सर्दराके साथ संबंध करनेसे शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

घाव और रक्तस्राव ।

शरीरमें शस्त्रादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरकी और नीचेकी नाडियोंका बदने बांधनेसे रक्तका स्राव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय करना चाहिये कि कैसेसे घावपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तस्राव इस प्रकार बंद किया जाय तो ही रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है अन्यथा रक्तके बहुत स्राव होनेके कारण ही मनुष्य मर सकता है । इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

इससे पूर्व सूक्तमें शत्रुके शस्त्रोंसे मारनेकी सूचना दी है । इस लडाईमें शरीरपर घाव होना संभव है इसलिये इस रक्तस्रावके बंद करनेके विषयमें इस सूक्तमें उपदेश दिया है " सिक्तावती " अर्थात् रेतवाली अथवा सर्दरावाली बनकर करनेसे रक्तस्राव बंद होता है । बारीक मिश्रीका बारीक चूर्ण लगानेसे घाव बंद होता है यह बात विचार करनेयोग्य है ।

दुर्भाग्यकी स्त्री ।

(इत-वर्धसः आमवः) जिनका तेज नष्ट हुआ है ऐसी स्त्रियां दुर्भाग्यको प्राप्त हुई स्त्रियां अर्थात् पति मरनेके कारण जिनकी भाग्यहीन अवस्था हुई है ऐसी स्त्रियां पिता माता अथवा भाईके घर आकर रहें किसी अन्य स्थानपर न जावें यह उपदेश पूर्व आये चतुर्दश सूक्त (कां १ सू. १४) में किया है । परंतु यदि वही स्त्रियां (अ-भ्रातरः) भ्रातासे हीन हो अर्थात् उनको भाई न हो तो उनकी गति रुक जाती है, अर्थात् ऐसी स्त्रियां वहीं भी जा नहीं सकतीं । जिस प्रकार पति चाहिये रहनेपर स्त्रियां बडे बडे समारंभोंमें और उत्सवोंमें जा सकती हैं, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकतीं अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात् उसका भ्रमण नहीं हो सकता ।

यहां ऐतिहासिक एक वैदिक मर्यादाका पता लगता है कि पति मरनेके पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी पतिके होनेके समय घूम सकती है । घरमें रहना उत्सवोंके आनंद प्रसंगोंमें न जाना मंगलोत्सवोंमें भाग न लेना इत्यादि मृतपतिकी स्त्रीके व्यवहार की रीति यहां प्रतीत होती है ।

मृतपतिकी स्त्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है भाई न रहनेपर पिता पिता माता न रहनेपर उनको दुःखमें ही रहना होता है । इस समय यह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर भक्तिसे अपना समय गुजारे और परोपकार का कार्य करे ॥

विषवाके वस्त्र ।

" हतवर्चसः आमवः लोहितवाससः योषित । " ये शब्द विधवा स्त्रीके कपडोंका लाल रंग होना बता रहे हैं । 'जिसका दुर्भाग्यसे बहिने लालरंग पहनेवाली स्त्रियें' ये शब्द दुर्भाग्यसे स्त्रियोंके लाल रंगके कपडे होनेकी सूचना दे रहे हैं । दक्षिण भारतमें इस समय भी यह देशाचार प्रथा आती है इसलिये विधवा स्त्रियां यहां केवल लाल रंगके कपडे पहनती हैं । पतियुक्त स्त्रियां केवल लाल रंगका कपडा नहीं पहनती परंतु अन्य रंगोंसे युक्त कपडे अर्थात् लालके साथ

अन्यान्य रंग मिले हुये हैं तो वैसे सब रंगके कपड़े पहनती हैं। कच्छ देशकी स्त्रियां जिस वस्त्र को पहनती हैं वह वेश वहांकी स्त्रियोंके सिवाय सम्पूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है।

पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता है।

सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।

(१८)

(ऋषि—ब्रह्मविनोदा । देवता—वैनाषक सौभगम्)

निर्ऋत्यै॑ ललाम्य॒ै॒ निररा॑तिं सुवामसि ।
अप॒ या भ॒द्रा तानि॑ नः प्र॒जाया॒ अरा॑तिं नयामसि ॥ १ ॥
निररा॑तिं सवि॒ता सा॑विषद्‌ पु॒दोर्नि॒र्हस्त॑योरु॒भो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
निर॒स्मभ्य॒मनु॑मती॒ ररा॑णा॒ प्रेमां दे॒वा अ॑सावि॒षुः सौ॑भगाय ॥ २ ॥
यत्ते॑ आ॒त्मनि॑ तन्वां घो॒रम॑स्ति॒ यद्वा॑ केशे॒षु प्रति॑चक्षणे॒ वा ।
सर्वं॒ तद्वा॒चार्‌ह॒मा प॒शु दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता सू॑दयतु ॥ ३ ॥
रिश्य॑पदीं॒ वृष॑दतीं॒ गोषु॑यां॒ विद्ध॑मामुत ।
नि॒र्ऋ॒त्यै॒ ललाम्य॒ै॒ ता अ॒स्मिन्ब्रह्म॑णामसि ॥ ४ ॥

अर्थ (ललाम्यै) सिरपर होनेवाले (ललाम्यै) पुरे चिन्होंको (निर्ऋत्यै) निर्ऋतिनामसे दूर करते हैं तथा (अरातिं) कंजूसी आदि (निसुवामसि) से सब दूर करते हैं। (अप या भद्रा) और जो कल्याण कारक चिन्ह हैं (तानि नः प्रजायै) से सब हमारी संतानके लिये हम प्राप्त करते हैं जो (अरातिं) कंजूसी आदिको (नयामसि) दूर भगाते हैं ॥ १ ॥ सविता देवता मित्र और अर्यमा (पद्भ्यो हस्तयोः) पायों और हाथोंकी। (अरातिं) पीड़ाको (निः नि सावि॑षुः) दूर करें। (रराणा अनुमति) दानशील अनुमतिने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये नि:स्व प्रेरणा की है। तथा (देवाः) देवोंने (हमारे) इस कार्यके (सौभगाय) सौभाग्यके लिये(इमं असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ (यत् ते आत्मनि) जो तेरी आत्मामें तथा (तन्वां) शरीरमें (वा यत् केशेषु) अथवा जो केशोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोरं अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) वह सब (वाचा इमां) इस वाणीसे हटा देते हैं। (सविता देवा) सविता देव (त्वा सूदयतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् पारंगत बनावे ॥ ३ ॥ (रिश्यपदीं) हरणके समान पावोंवाली (वृषदतीं) बैलके समान दांतवाली (गोषुयां) गायके समान चलनेवाली (विद्धमां) विद्ध' शब्द बोलनेवाली जिसका शब्द कठोर है ऐसी (उत निर्ऋत्यै निर्ऋतिं) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् ब्राह्मणा असि) ब्राह्मणोंसे दूर करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—सिरपर तथा शरीरपर जो कुलक्षण होवे उसको दूर करना चाहिये तथा अंत करणमें कंजूसी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये और जो सुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके वास्ते स्थिर करना अथवा बढ़ाना चाहिये। तथा कंजूसी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता देवता मित्र, अर्यमा अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीड़ाको दूर करें इस विषयमें वे हमें उपदेश दें क्योंकि देवोंने ही और पुरुषोंके उत्तम भाग्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ तुम्हारे आत्मा अथवा शरीरमें वा केशोंमें वा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हो जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम

वचनसे हटाते हैं। परमेश्वर तुम्हें उत्तम अङ्गोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिणके समान पाँव बैलके समान दाँत, गायके समान चलनेकी आदत कठोर गुदा अ बाल होना तथा सिरपरके अन्य कुलक्षण यह सब हमसे दूर हो ॥ ४ ॥

कुलक्षण और सुलक्षण।

इस सूक्तमें शरीरके तथा मन बुद्धि आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हो उनको दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सु लक्षण युक्त बनानेका उपदेश किया है। इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं-

(१) अकाम्यं अकाम्यं सिरपरका अशुभ चपटा छोटा होना मालपर बाल होने बुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षण। (मंत्र १)

(२) अकाम्यं सिरपरके बालोंके गुछे रहने और इससे सिरकी शोभाका बिगाड़ आदि कुलक्षण। (मंत्र ३)

(३) रिक्खपदी—हरिणके समान कुछ पाँव। (मंत्र ४)

(४) वृषदती बैलके समान बड़े दाँत। (मंत्र ४)

(५) गोवेधा—गायके समान चलना। (मंत्र ४)

(६) वि वमा बालोंको बुरा लगनेवाला आवाज जिसका मीठा मंजुल आवाज नहीं। (मंत्र ४)

ये अंतिम (३-६) चार कुलक्षण स्त्रीलिंग शब्दोंसे लिखे हैं इसलिये बहुत दूर हैं अर्थात् स्त्रियोंमें ये न हों। वधू पसंद करनेके समय इन लक्षणोंका विचार करना चाहिये।

(७) केशेषु शोर्—बालोंमें रूखापन अथवा सफेदपना दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख रूखा दीखना। (मंत्र १)

(८) अक्षिभ्यामे शुर्—नेत्रोंमें रूखापन, भयानक नेत्र भयानक दृष्टि। (मंत्र १)

(९) तन्वा शुर्—शरीरमें भयानकता अर्थात् शरीरके अवयवोंके टेढ़ापनेका होनेके कारण भयानक दृश्य। (मं १)

(१०) आत्मनि शुर्—मन बुद्धि चित्त आत्मामें रूखापनके साथ होना। (मंत्र १)

(११) अ दृष्टि—कमजोरी, दूरदर्शकका अभाव। (मं १)

(१२) पद्भ्यो हस्तेभ्यो अ-शक्ति—पाँव और हाथों की पीड़ा अथवा कुछ विकार। (मं २)

ये बारह कुलक्षण इस सूक्तमें कहे हैं। इस सूक्तका विचार करनेके समय इससे पूर्व आया हुआ कुलक्षणयुक्त" (अथर्व. १ । १४) भी देखने योग्य है। अर्थात् इन दोनोंका विचार करनेसे ही यथार्थ परीक्षा करनेका ज्ञान हो सकता है। इसलिये पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें। इन कुलक्षणोंमेंसे कई लक्षण केवल स्त्रियोंमें और कई पुरुषों तथा कई दोनोंमें होंगे। अथवा सब लक्षण न्यूनाधिक भेदसे स्त्री पुरुषोंमें दिखाई देना भी संभव है।

ये कुलक्षण दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षण अपनेमें बढ़ाना हरएकका कर्तव्य है। इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है। जिसमें जितने कुदोष दिखाई देते हैं वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियों मन बुद्धि का। आदिक भी सुलक्षण हैं। इन सबका विधिवत ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढ़ाना हरएकका अत्यंत कर्तव्य है।

बाधीस कुलक्षणोंको हटाना।

मंत्र ३ में "अहं तद्बाधीय हस्ता वर्चः।" अर्थात् हम ये सब कुलक्षण बाधीसे दूर करते हैं, अथवा वा ये इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं" कहा है; तथा साथ साथ देवसखा सविता सुवतु अर्थात् सविता देव तुम्हें पूर्ण सु लक्षणयुक्त बनावें कहा है। परमेश्वर कृपासे मनुष्य सुलक्षणों युक्त हो सकता है, इसमें किसीका संदेह नहीं हो सकता परंतु बाधीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लोगोंको संदेह होना संभव है अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आयुक्त है। इसलिये पाठक इसका खूब विचार करें।

बाधीस प्रेरणा।

बाधीसे अपने आपको अथवा दूसरोंको भी प्रेरणा या सूचना देकर रोग दूर करना तथा मन आदिक कुलक्षण दूर करना समझनीय है यह बात वेदमें अनेक स्थानोंमें प्रकाशित हुई है। यह सूचना इस प्रकार दी जाती है— मेरे अंदर यह कुलक्षण है यह दोष दूर करनेवाला है यह निकाल नहीं रहेगा यह कम हो रहा है अतिशय कम होगा। मेरे अंदर कुलक्षण यह रहे हैं मैं कुलक्षणोंसे मुक्त होऊंगा। मैं निर्दोष बन रहा हूं। मैं बलवान रहूंगा। मैं बाधीसे हटाता हूं और अपनेमें सुगुणोंको विकसित करता हूं।"

इसादि तीनों अनेक प्रकारकी सूचनाएं मनमें लाने और उसका प्रतिदिन मनके अंदर स्मरण रखनेसे इष्ट सिद्धि होती है। वेदका यह मानसशास्त्रका विशेष हरएकने विचार

करने योग्य है। मैं हीन हूं, दीन हूं" आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिंबित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं। इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारही हमेशा करना चाहिये कभी भी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे युक्त शब्दोंका उच्चार नहीं करना चाहिये। वाणीकी शुद्ध प्रेरणाके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं इसलिये इस विषयमें यहां इतना ही लेख पर्याप्त है। अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने दुर्व्यसनोंको दूर करना और अपने अंदर सुसंस्कारोंको बढाना हरएक मनुष्यको योग्य है।

हाथों और पांवोंका दर्द।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता (सूर्य) वरुण (जल) मित्र (प्राणवायु) अर्यमा (आयका पोषा) ये हाथों और पांवोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें। सूर्यप्रकाश सहस्र आदिका जल शुद्ध वायु आदिके परोंका ठीक आदिक बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारंबार आनेवाला है। आरोग्य तो इससे ही प्राप्त होता है।

सौभाग्यके लिये।

" इमां देवा असपत्निं सुवध्वं। " इसको देवोंने सौभाग्यके लिये बनाया है। विशेष करके स्त्रीके उद्देशसे यह मंत्रभाग है परंतु उसके लिये भी यह मार्ग का कथन है। अर्थात् मनुष्य मात्र स्त्री हो या पुरुष हो यह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और यह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूक्तसे अपने मनको प्रसन्नचित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा। हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे। अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हरएकके पुरुषार्थपर अवलंबित है। यदि अपनी अवनति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें कुमी हुई है।

सन्तानका कल्याण

यदि अपनेमें कुछ कुसंस्कार रहे भी तथापि अपनी संतानमें उन कुसंस्कार आजाय (वा मद्या सावि कः प्रजायै) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक पुरुषोंको ध्यानमें धरना चाहिये। अपनी संतान निरोग और सुसंस्कारोंसे तथा सद्गुणोंसे युक्त बने यह भाव यदि हरएक पुरुषमें रहेगा तो प्रति पुरुषमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नतिके शिखरपर चढेगा। यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है इसलिये इसको कोई पुरुष न भूले।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने दुर्व्यसनोंको दूर करके अपने अंदर सुसंस्कार बढानेका प्रयत्न करें।

शत्रु-नाशन-सूक्त।

(१९)

(ऋषिः-ब्रह्मा। देवता-ईश्वर, ब्रह्म)

मा नो विदन् विभ्याधिना मो अभिभ्याधिनो विदन्। आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥ १ ॥
विषूचीनो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः। दैवीर्मनुष्येषवो मामामित्रान् वि विध्यत ॥ २ ॥
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्मां अभिदासति।
रुद्रः शरव्या एतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥ ३ ॥
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन्छपाति नः। देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ ४ ॥

अर्थ (वि-भ्याधिनः) विशेष वेधनवाले शत्रु (नः मा विदन्) हमतक न पहुंचें। (अभिभ्याधिनः) चारों ओरसे आघात करनेवाले शत्रु (नः मो विदन्) हमतक कभी न पहुंचें। हे (इन्द्र) परमेश्वर! (विषूचीः शरव्याः) इस ओर वैसे-

वाले बाण शत्रुओंको (अस्मत् आराद् पातय) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ (ये अस्याः) जो फेंके हुए और (ये च अस्याः) जो फेंक चुकने के बाद (विध्यन्तः सरवः) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र (अस्मत् पतन्तु) हमसे दूर आकर गिरें (दैवीः मनुष्येषवः) हे मनुष्योंके दिव्य बाणो ! (मम अमित्रान्) मेरे शत्रुओंको (विविध्यत) वेध कर डालो ॥ २ ॥ (यः नः स्वः) जो हमारा अपना अथवा (यः अरणः) जो दूसरा परकीय हो किंवा जो (स-जातः) समान वंश जातिका कुलीन (उत) अथवा जो (विदयः) भिन्न जातिवाला या उच्च जातिका हीन (अस्मान् अभिदासति) हमपर चढ़ाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे [एतान् मम अमित्रान्] इन मेरे शत्रुओंको [सः] उसीको [सरव्यया विविध्यतु] बाणोंसे वेध करे ॥ ३ ॥ [यः] जो [सपत्नः] विरोधी और [यः अ-सपत्नः] जो प्रकट विरोधी नहीं है। [च यः द्विषन्] और जो द्वेष करता हुआ [नः सपाति] हमको शापता है [तं] उसको [सर्वे देवाः] सब देव [धूर्वन्तु] मार डालें। [मम अन्तर वर्म] मेरा आंतरिक कवच [ब्रह्म] ब्रह्मज्ञान ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ-हमारे वीरोंका कोई ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले सब शत्रु हमसे सदा दूर रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें। उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें। और हमारे शत्रुओंपर ही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु हमारी जातिवाला या परजातीका कुलीन या हीन कोई भी क्यों न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश शस्त्रोंसे करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकट या छिपा हुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें बुरे शब्द बोलता है सब सज्जन उसको दूर करें। मेरा आन्तरिक कवच सत्य ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह "आभ्यमिक पर्व" का सूक्त है इस कारण 'अपराजित पर्व' के सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध है अतः पाठक इस पर्वके सूक्तोंके साथ इसका भी विचार करें।

आन्तरिक कवच।

इस सूक्तमें जो सबसे महत्त्व पूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवचकी है। देखने कवच पर्वत दुर्ग और समुद्र होते हैं इनके होनेके कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते। शमक कवच किले होते हैं इनके कारण शत्रु ग्राममें घुस नहीं सकते। शरीरके कवच लोहेके अथवा तारके बनाये जाते हैं जिनके कारण शत्रुके शस्त्र शरीरपर असते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है। शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है मन बुद्धि, चित्त और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है इसकी साथ आत्माके लिये रहती है। इस अन्तःकरण के लिये " अंतः कवच अथवा आभ्यन्तर कवच चाहिये तो इस मन्त्रात्मक सूक्तने " ब्रह्म वर्म ममान्तरम् " शब्दोंद्वारा बताया है।

ज्ञानरूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच है। जिसके आत्मा और अंतःकरण ज्ञानरूप कवचसे संरक्षण होता है उसको किसी शत्रुसे डर नहीं हो सकता वह अजात शत्रु ही बन जाता है। इस ज्ञानरूप कवचके बतानेमें जो ज्ञानवाचक ब्रह्म" शब्द सूक्तमें प्रयुक्त किया है। वही परमेश्वर का परब्रह्मका वाचक है और इसलिये इस ब्रह्म कवचसे परमात्म-विषयक आत्मिक्य बुद्धियुक्त ज्ञान इतना अर्थ इस शब्दसे समझना योग्य है।

इस सूक्तके दो विभाग।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं प्रथम विभागमें प्रारंभसे चतुर्थ मंत्रके तृतीय चरणतकके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें चतुर्थ मंत्रके चतुर्थ चरणका ही समावेश होता है। इन विभागोंको देखकर इस सूक्तका विचार करनेसे बड़ा बोध मिलता है।

वैदिकधर्मका साध्य। ब्राह्म कवच।

" परमात्माकी भक्तिसे परिपूर्ण सत्य ज्ञानत्व ब्रह्म ही मेरा कवच है " इस ब्राह्म कवचसे सुरक्षित होनेपर मुझे किसी भी शत्रुका भय नहीं यह आत्मविश्वास मनुष्यमें उत्पन्न करना वैदिक धर्मका साध्य है। यह भाव मनुष्यमात्रमें स्थापित करनेके लिये ही वैदिक धर्मकी शिक्षा है। परंतु यह ज्ञान सबको समानरूपसे थोड़ेसे परिशुद्ध महात्माओंमें उत्पन्न होता है और उनसे भी थोड़े संतोंमें इसका साक्षात् अनुभव होता है यह बात हम इतिहासमें देखते हैं। इसलिये यद्यपि वेदका यह साध्य है तथापि सब मनुष्योंमें यह साध्य साक्षात् प्रत्यक्षमें आना कठिन है इसमें भी संदेह नहीं है। इसीलिये वर्ण आश्रमरूप मनुष्य जातिमें दिव्य शक्तियुक्त संस्था उत्पन्न करनेकी अपेक्षा परमेश्वरका चिंतन करनेके समय शारीरिक पावती

अधिक ही आदर करते हैं। अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाश्चात्य अधिक विचार करते हुए साधारण अर्थका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रभाग आत्मिक दिव्य अधिक सत्यकी अधिक ओर बता रहा है।

आत्मिक बाध या आत्मिक ज्ञान ही मेरा सबसे बड़ा कवच है जिससे मैं सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूँ, मेरे अंदर अहिंसाका भाव पूर्ण रूपसे स्थिर रहे तो जो जो मेरे पास आवेंगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा"

इसादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अन्तिम साध्य है, मनुष्यको यही अंत में स्वीकारनी है परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये परंतु अंतःस्फूर्तिसेही होना चाहिये अपना कल्याण हो ऐसा समझ आना चाहिये। इसी मार्गसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है।

अन्य कवच । शास्त्र कवच ।

शरीरके संरक्षणके लिये जो अन्यान्य कवच ऊपर विवेचनके अन्तर्गत आवश्यक हैं। स्वसंरक्षणके उपाय आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं। अर्थात् जबतक मनुष्य पूर्वोक्त अधिकारके लिये योग्य नहीं होता तबतक शूरवीर क्षत्रियवत् राष्ट्रका संरक्षण इस प्रकारसे करें। ये बाह्य साधन हैं। ज्ञान कवचसे सुरक्षित होना आत्म साधन है और लोहेके कवचों तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित होना बाह्य-साधन है। आत्मसाधन स्वीकारने योग्य जनताकी उन्नति धर्मसाधनसे करनी चाहिये और जबतक उतनी उन्नति नहीं होती तबतक ज्ञानसाधनके शत्रुओंका प्रतिकार करना योग्य है। ज्ञानसाधनोंसे पूर्णरीति शत्रु होनेपर ही मनुष्य इन साधनोंकी क्रूरताका अनुभव करता है और ज्ञानसाधनको स्वीकारनेका यत्न करता है।

इस प्रकार पूर्व भी मनुष्यको ज्ञानसाधनतक पहुंचनेका मार्गदर्शक बनते हैं।

दासभावका नाश ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि "जो अपना या परका हमें दास बनाने की चेष्टा करता है उसका नाश करना चाहिये। राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीरिक दास भावका द्योतक है, इसी आत्मिक मानसिक बौद्धिक तथा वाचिक, पारतंत्र्य भी और ये सबसे अधिक घातक हैं। किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपने बाधक कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये परंतु उनके कारणको दूर करना चाहिये। आर्योंको दास कभी बनना चाहिये। स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है। ज्ञान और पुरुषार्थसे स्वाधीनता बंधनसे मुक्ति-आत्म होती है इसका भी आदर करो है। मनुष्यके सब दुःख दासत्वके कारण हैं। इसलिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यों या राष्ट्रको दासत्वमें डालनेका यत्न न करे और यदि किसी पर ऐसा प्रसंग हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें।

दासभावको हटानेका उपदेश पाठक इस सूक्तमें किस प्रकारसे देखें और उसको अपने आचरणमें लावें। हम इस सूक्तके इस प्रकार विचार करनेसे बहुत ही बोध ले सकते हैं।

महान् शासक ।

(२०)

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—सोमः)

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन्यज्ञे मरुतो मृळता नः ।
मा नो विददभिमा मो अश्नैस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥
यो मृत्य ईशे द्विपदो यश्चतुष्पदो निष्क्रीतेन वृत्रहा परि पातु नः । युष्मे तं पित्रावरुणावस्मद्योवयतु परि ॥ २ ॥
इतश्च यद्मुतश्च यद्वधं यमस्य पाशय । वि मद्दृष्ठमिव यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ३ ॥
शास इत्था महाँ असुरमित्रसाहा अस्तृतः । न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ ४ ॥

अन्व—हे (देव सोम) सोम देव ! (अ-दार-सद् भवतु) आपकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो। हे (मरुतः) मरुतो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः मृळत) हमें सुखी करो। (अभि-भा नः मा विदत्) पराभव हमारे पास न आवे (अशस्तिः मो) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो (या दुष्ट्या दुरिता) जो दुष्ट व्यवहारवाले दुरित रूप हैं वे भी (नः मा विदत्) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ (अघायूनां) पापमय जीवनवालोंका (यः सेम्यः वधः) जो सेमरके वृक्ष जैसी तीक्ष्ण (अद्य उद्गीरते) आज हो रहा है। हे मित्र और वरुण ! (युवं) तुम (तं अस्मत् परि पातयतं) उसको हमसे दूर रक्खो ॥ २ ॥ हे (मरुतः) सर्व भक्त ईश्वर ! (यत् इदः च यत् मधुदः) जो यहांसे और जो वहांसे मद होगा उस (सर्वं यावयत) उपद्रव भी दूर कर दो। (महत् शर्म विवक्ष) बड़ा सुख अथवा आश्रय हमें दो और (सर्वं वरीयः यावय) सबको अतिदूर कर दो ॥ ३ ॥ (इत्था महान् शासः) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर (अ-मित्र-साह अस्तृतः) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हारनेवाला (आयं) यह है। (यस्य सखा) जिसका मित्र (कदाचन न हन्यते) कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपकी फूट करानेवाला कोई कार्य हमसे न हो। इस सम्बन्धमें हमें सुख प्राप्त हो ! पराभव अपकीर्ति अथवा दुष्टताका हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! दुष्टोंके द्वारा जो पारिवारिक कष्ट हो रहे हैं वैसे कष्टोंके प्रसंग भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरोंके अंदर वध करनेका भाव न रहे। वधका भाव ही हम सबसे दूर कर और तेरा बड़ा अभय—सुखदायी आश्रय-धर्म दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेरा ही महान् सत्य शासन सबके ऊपर है तेरी सखा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वदा अपराजित है तेरा मित्र बनकर जो रहता है वह उसका वध कभी होगा और नहीं उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध।

पूर्व सूक्तके अंतमें "ईश्वरभक्तियुक्त सत्यज्ञान ही मेरा रक्षण करता है" यह विषय कहा है उसीका विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है। सबसे पहिले आपसकी फूटको दूर करनेकी सूचना दी है।

आपसकी फूट हटा दो।

"अ दार-सद् भवतु" हमारा आचरण फूट हटानेवाला हो, यह इस उपदेशका तात्पर्य है। देखिये—

दार=फूट (दृ=दरण वातु)
दार+सद=फूटका प्रयत्न फूटका कार्य।
अ+दार+सद्=फूट हटानेवाला कार्य।

"अ+दार+सद् भवतु" अर्थात् "आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे।" आपस की फूटके कारण शत्रु हमपर करते हैं और शत्रुओंके हमले हो जानेपर हमें शत्रुओंको भगानेका काम करना पड़ता है। इसलिये दुष्ट काम आपस की फूट है। यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मतसे रहेंगे तो दूसरे लोग हमला करनेके लिये भी डरेंगे। जहां आपसमें फूट होती है वहीं शत्रुओंका हमला होता है। इसलिये बुद्धिमान लोग आपसकी फूटमें देखना और आपस की फूटको दूर करना चाहिये। राष्ट्रीय सुखकी यही कुंजिका है।

आपसकी फूट हटा देनेके पश्चात् ही (मरुतः) सुख होने की संभावना है। अन्यथा सुखकी आशा नहीं है। आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्नांकित प्रकारसे प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें वर्णन किया है।

१ अभिभा नः मा विदत्=पराभव हमारे पास न आवे
२ अशस्तिः मो=दुष्कीर्ति हमारे पास न आवे
३ दुरिता नः मा=दुरित दुष्ट हमसे न हों
४ द्वेष्या नः मा विदत्=द्वेष भाव हमारे पास न आवें।

जिस समय हम आपसकी फूट हटायेंगे उस समय हमें किसीके दुष्ट करनेका कोई कारण नहीं रहेगा किसीसे कपट युक्त दुरित व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी हमारा कभी पराभव न होगा अथवा हमपर कोई आपत्ति नहीं आवेगी और हमारी अपकीर्ति भी नहीं होगी, अर्थात् जब हम आपसकी फूट हटाकर अपना उत्तम संगठन करेंगे और एकता के बलसे जो करेंगे उस समय सब लोग हमारे मित्र बनकर हमारे साथ मित्रताका व्यवहार करेंगे हम भी सबके साथ परम व्यवहार करते जावेंगे एकताके कारण हमारा वध वैरभाव और वध हेतुसे कभी पराभव नहीं होगा तथा हमारा वध कैसा असंभव। (मंत्र १)

द्वितीय और तृतीय मंत्रमें जो अविद्या वासनासे दुखोंके संहारका वर्णन है वह वर्णन भी हमारी आत्मासे दूर के कारण ही दुर भाग सताते हैं और उनका नष्ट करनेका प्रयोजन उत्पन्न होता है अर्थात् यदि हमारा समाज सुसंगठन होगा तो उस नष्टकी जड़ही नष्ट होजानेसे वह नष्ट भी नहीं होने और हमें (महत् शर्म) बड़ा सुख प्राप्त होगा। शर्म शब्दका अर्थ सुख और आश्रय है। पूर्वापर संबंधसे यहां परमेश्वरका आश्रय अभीष्ट है। क्योंकि वास्तव सुख भी परमात्माके आश्रयसे ही होता है। (मंत्र २ १)

बड़ा शासक।

एक ईश्वर ही सबसे बड़ा शासकवर्ग है उसके ऊपर किसी अन्यका अधिकार नहीं है सब उसीके शासनमें वर्ग करते हैं वही सर्वोपरि है। वह जगत्का सच्चा शासक और कभी पराजित न होनेवाला है। यदि ऐसे समर्थ प्रभुका मित्र बनकर रहें तो उसका कभी नाश न होगा और कभी पराजय भी न होगा। अर्थात् प्रभुका मित्र बनकर व्यवहार करनेवालेका यश सदा फैलेगा और उसका ही शासन होगा। (मंत्र ४)

पूर्व सूक्तमें जिस 'शान्त-कवच ब्रह्म-वर्म' का वर्णन किया है वह ब्रह्म-कवच यही है कि 'परमेश्वरका आश्रय सर्वोपरि मानना और उसका सच्चा सेवक बनकर व्यवहार करना।'

आशा है कि पाठक इस प्रकार प्रभुके मित्र बनेंगे और करेंगे

प्रजा-पालक-सूक्त।

(२१)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-इन्द्रः)

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्। वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अर्थ (स्वस्ति दाः) मंगल देनेवाला (विशां पतिः) प्रजाओंका पालक (वृषा हा) वेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाला (वि-मृधः वशी) विशेष हिंसकोंको वशमें करनेवाला (वृषा) बलवान् (सोम पाः) सोमका पान करनेवाला (अभय-करः) अभय देनेवाला (इन्द्रः) प्रभु (नः) हमारे (पुरः एतु) आगे चले, हमारा नेता बने ॥ १ ॥ हे इन्द्र! (नः मृधः) हमारे शत्रुओंका (वि जहि) नाश कर। (पृतन्यतः) सेनाके द्वारा हमपर हमला चढ़ानेवालोंको (नीचा यच्छ) नीचेही प्रतिबन्ध कर। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें दास बनाना चाहता है या हमारा नाश करना चाहता है उसको (अधमं तमः गमय) हीन अवस्थामें पहुंचा दे ॥ २ ॥ (रक्षः मृधः वि जिहि) राक्षसों और हिंसकोंको मार डाल [वृत्रस्य हनू वि रुज] घेरकर हमला करनेवाले शत्रुके दोनों जबड़ोंको तोड़ दे। हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक प्रभो! (अभिदासतः अमित्रस्य) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके (मन्युं वि रुज) क्रोधको तोड़ दे ॥ ३ ॥ हे (इन्द्र) प्रभो! राजन्! (द्विषतः मनः अप) द्वेषीका मन बदल दे। [जिज्यासतः वधं अप] हमारी शत्रुता नाश करनेवालेको दूर कर (महत् शर्म वि यच्छ) बड़ा सुख हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वधको दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रजाजनोंका हित और मंगल करनेवाला प्रजाओंका उत्तम पालन करनेवाला वैरकर नाश करनेवाले शत्रुको दूर करने वाला बलवान् अमृतपान करनेवाला प्रजाको अभय देनेवाला राजा ही हमारा अग्रगामी बने ॥ १ ॥ हे राजन्! प्रजाके शत्रुका नाश

का सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुओंके बच्चे या जो बालपात और गर्भ करना चाहता है उसको मगा दे ॥ १ ॥ हिंसक क्रूर शत्रुओंको मारडाल देकर सतानेवाले दुष्टोंको दूर हो सब प्रकारके शत्रुओंका उत्सादन नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही मन में अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड दें, नाश करनेवालोंको दूर कर दे बालपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

क्षात्रधर्म ।

यह " अमवयम " का सूक्त है । इस सूक्तमें क्षात्रधर्मका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका वर्णन है उसका मनन पाठक करें । इसमें राजाके गुण पचम मंत्रमें वर्णन किये हैं । इस मंत्रकी कसौटीसे राजा उत्तम है या नहीं इसकी परीक्षा हो सकती है । अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करनेका उपदेश है । सब प्रकारके अंतरायक शत्रुओंका प्रतिकार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है । यह सूक्त अति सरल है इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है ।

[चतुर्थ अनुवाक समाप्त]

हृदयरोग तथा कामिलारोग

की चिकित्सा

(२२)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-सूर्य, हरिमा, हृद्रोग)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि । यथाऽयमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥
यत्ते रोहिणीर्देवत्याः गावो या उत ते रोहिणीः । रूपं-रूपं वयोवयस्तासिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥
शुकस्ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ-(ते हृद्द्योतो च हरिमा) तेरे हृदयकी जलन (और पीलापन सूर्यं अनु उदयताम्) सूर्यके पीछे चला जावे । तेरे अवयव सूर्यके (रोहितस्य वर्णेन । उस लाल रंगसे (त्वा परि दध्मसि) तुझ सब प्रकारसे हम पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ (रोहितैः वर्णैः) लाल रंगोंसे (त्वा) तुझको । दीर्घायुत्वाय परि दध्मसि) दीर्घ आयुके लिये धरते हैं (यथा) जिससे (अयम्) यह (अरपा असत्) पापरहित हो जाय और (अ-हरितः भुवत्) पाण्डुरोगसे मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ (यत् देवत्या रोहिणीः गावः) जो दिव्य लाल रंगकी गौयें हैं (उत या रोहिणीः) और जो लाल रंगकी स्त्रियें हैं (तासु) उनसे (रूपं रूपं) सुंदरता और (वयः वयः) बलके अनुसार (त्वा परि दध्मसि) तुझे धरते हैं ॥ ३ ॥ (ते हरिमाणं) तेरे रोगको (शुकेषु रोपणाकासु च) तोते और सौंदाल वृक्षोंमें (दध्मसि) धारण करते हैं (अथो) और ते (हरिमाणं) तेरा पीलापन (हारिद्रवेषु) हरी वनस्पतियोंमें (नि दध्मसि) रख देते हैं ॥ ४ ॥

आशय—तेरा हृदय का और पीलक रोग सूर्योदयोंके साथ नष्ट करनेके लिये जाता है । लाल रंगकी गौयें और सूर्यकी लाल किरणें होती हैं इनके द्वारा चिकित्सा हो सकती है ॥ १ ॥ लाल रंगके प्रकाशसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है पीलक रोग

पूर्व होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी गौएँ और लाल रंगकी सूर्यकिरणें दिव्य गुणोंसे युक्त होती हैं। रूप और बलके अनुसार उनसे हम । रोगी मेरा जाने ॥ ३ ॥ इस लाल रंगकी किरणोंसे रोगीका परीक्षण तथा चिकित्सा हम लोग और यह हरे पत्ती और हरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीके पास फिर नहीं जायेगा ॥ ४ ॥

वर्णचिकित्सा।

यह सूक्त 'वर्ण-चिकित्सा' के महत्त्वपूर्ण विषयका उपदेश करता है। मनुष्यके हरएक रोग और व्याधिमें शामक पीला रोग कह होते हैं। अन्नका फेरफार, समाज, मनःप्रकाश आदि अनेक कारण हैं जिनके कारण हरएकके रोग उत्पन्न होते हैं। उसी अवस्थामें वीरदोष होनेके कारण भी हरएकके विकार उत्पन्न होते हैं। व्याधिका रोग विषके दूषित होनेके कारण उत्पन्न होता है। इन रोगोंके कारण मनुष्य कुछ विशेष चीजों पुराने और हीन होता है। इसलिये इन रोगोंको हटानेका उपाय इस सूक्तमें बताया है। सूर्यकिरणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगकी गौओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे उच्च दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है।

सूर्यकिरण-चिकित्सा।

सूर्यकिरणोंमें सात रंग होते हैं अथवा रंगवाली गौओंको उहापोहसे इन रंगोंके किरण प्राप्त किये जा सकते हैं। गीले शरीरपर इन किरणोंके रहनेसे आरोग्य प्राप्त होता है और रोग दूर होते हैं। यह रंगीन सूर्यकिरणोंका स्नान ही है। यह गीले शरीरसे ही करना चाहिये। अथवा लाल रंगके कांचे रखनेसे कमरेमें लालरंगकी किरणें प्राप्त हो सकती हैं इसमें गीले शरीरसे रहनेसे यह चिकित्सा साध्य हो सकती है।

जिस प्रकार उच्च रोगोंके लिये लाल रंगकी किरणोंसे चिकित्सा होती है उसी प्रकार अन्यान्य रोगोंके लिये अन्यान्य वर्णोंकी सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा होना संभवनीय है। इसलिये सुबोध वैद्य इसका अधिक विचार करें और वर्णकिरण चिकित्सासे रोगियोंके रोग दूर करके जनताके हृदयमें घर करें।

परिधारण विधि।

सूर्यकिरण-चिकित्सामें 'परिधारण विधि' का सम्बन्ध है इस सूक्तमें "परि धत्त" शब्द चार बार, "विधत्त" शब्द एक बार और "धत्त" शब्द एक बार आया है।

चारों ओरसे धारण करना" यह भाव इन शब्दोंसे व्यक्त होता है। शरीरके चारों ओरसे संवेष्टन करनेका नाम "परि धारण" है। जिस प्रकार तलावके पानीमें भीगेहुए शरीरके साथ लालका परिधारण हो सकता है, उसी प्रकार लाल रंगकी सूर्यकिरणें कमरेमें लेकर उसमें बैठे हुए शरीर रहस्य और कांचोंसे छनकर पुनः करके तथा शरीरके साथ लाल रंगके सूर्यकिरणोंका संवेष्टन करना परिधारण विधिका तात्पर्य है।

१ रोहितैः वर्णैः परिधत्त। (मंत्र १)
२ हरितपुष्पाय परिधत्त। (")
३ गो रोहितस्य वर्णेन तया परिधत्त। (मंत्र १)
४ तनिमुद्या परिधत्त। (मंत्र ३)

ये सब मंत्रभाग रक्त वर्णके सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् परिधारण" करनेका विधान कर रहे हैं। रोगीका सारे शरीर पूर्णतः रक्त वर्णके छोटे छोटे कमरेमें रखने और उसके शरीरका संचार रक्त वर्णकी सूर्यकिरणोंके साथ करनेसे यह परिधारण हो सकता है और इसके अतिरिक्त, रोगी मनुष्यकी प्रकृति तथा व्याधिप्रकृति भी हो सकती है। अन्यान्य रोगोंके निवारणके लिये अन्यान्य वर्णोंके किरणोंकी स्नानोंका संयोजन करना चतुर वैद्योंकी बुद्धिमत्तापर निर्भर है।

रूप और बल।

रूप और बलके अनुसार यह चिकित्सा, यह परिधारण-शक्ति अथवा किरण-स्नान करना योग्य है यह सूचना तृतीय मंत्रके उत्तरार्धमें पाठक देख सकते हैं। रूक्ष अर्थ शरीरका रंग और शरीरकी सुकुमारता है। यदि रोगी रूक्ष हो यदि सुकुमार मनुष्य शरीर हो तो उसके लिये किरण स्नान देना चाहिये उसके लिये सौम्य प्रकाश, या दोपहरका कठोर प्रकाश देना चाहिये इसलिये विचार करना वैद्योंका कार्य है। जो काले शरीरवाले तथा सुदृढ व कठोर शरीरवाले होते हैं उनके लिये किरणस्नानका प्रकाश भी मिल होना योग्य है। तथा जो घरमें बैठनेवाले लोग होते हैं और जो सूर्यमें कार्य करनेवाले होते हैं उनके लिये भी इस प्रकाश न्यूनाधिक होना उचित है। इस विचारका नाम ही "रूप और बलके अनुसार विचार" करना है। (सूर्य कार्य करो बस।) यह प्रमाण देखनेवाला मंत्रभाग अत्यंत महत्त्वका है। रोगीकी सौम्यता या कठोरता रोगीका रंग रोगीका रहना सहना रोगीका पेशा उसकी आयु तथा शारीरिक बल इन सबका विचार करके किरणस्नानकी योजना करनी चाहिये। नहीं तो सौम्य प्रकृतिवालेको अधिक तीव्र प्रकाश देनेसे शरीरमें

स्थानपर अयोग्य होगा । अथवा कठोर प्रकृतिवालेको अल्प प्रमाणमें देनेसे अन्दर कुछ भी परिणाम न होगा । इस दृष्टीसे तृतीय मंत्रका तात्पर्य बहुत मनन करने योग्य है ।

रंगीन गौके दूधसे चिकित्सा ।

इसी सूक्तसे रंगीन गौके दूधसे रोगोंकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बता दी है । गौयें सफेद काले लाल भूरे, मलवारी चाहती तथा विविध रंगके वर्णोंकी होती हैं । सूर्यकिरणें गौकी पीठपर गिरता हैं और इस वर्ण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है । श्वेत गौके दूधका गुणधर्म भिन्न होता काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होता लाल गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होता इसी प्रकार अन्यान्य रंगवाली गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे । एक बात वर्ण चिकित्सा का तत्व ध्यानपर रहे पोषण मात्रका । पडता है । इसीलिये इस सूक्तके मंत्र १ में " रोहिणी॰ पयः " अर्थात् लाल गौकीके दूधका तथा अन्यान्य गौओंका उपयोग हृदय विकार और क्षयिका रोगकी निवृत्तीके लिये करनेका विधान है । यह विधान मनन करनेसे बडा बोधप्रद प्रतीत होता है । और इसके मनन करनेसे अन्यान्य रोगोंके लिये अन्यान्य गौवोंके गोरसोंका उपयोग करनेका आदेश भी प्राप्त होगा । वर्ण-चिकित्सा का ही तत्व गोपुत्र-चिकित्साके लिये बर्ती जाएगा । दोनोंके बीचमें तत्व एक ही है ।

पथ्य ।

वर्ण-चिकित्साके साथ साथ गोरस-सेवनका पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होना संभवनीय है । अर्थात् आहारमेंके विषयोंके परित्याग करनेके दिन काल गौके दूधका सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है ।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

श्वेतकुष्ठ-नाशन-सूक्त ।

(२३)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ओषधि)

नुक्ष्णयाताश्वोपबे रामे कृष्णे आग्नीकिन च । इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् । आ त्वा रभो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥ २
अस्तिक्नि ते प्रलयनमास्थानमसितं तव । अस्तिक्न्यस्योपबे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥
श्वित्रिवस्य किलासस्य तनूवस्य च यत्राधि । दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा तस्मै मेघतमेनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे रात्रि कृष्णा और अग्नीकिन औषध ! तू (यत्तं जाता असि) रात्रिरूपसे प्रगट हुई है । हे (रजनि) रंग देनेवाली ! (यत् किलासं पलितं च) जो कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है (इदं रजय) उसको रंग दे ॥ १ ॥ (इतः) इसके शरीरके (किलासं पलितं) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा (पृषत्) बिंदु आदि तथा (निः नाशय) नष्ट कर दे । (शुक्लानि परा पातय) श्वेत बिंदु दूर कर दे (त्वा रभः) तुझे (आविशतां) प्राप्त हो ॥ २ ॥ (ते प्रलयनं) तेरा लयस्थान (असितं) कृष्ण वर्ण है तथा (तव आस्थानं) तेरा स्थान भी (असितं) काला है हे औषधे ! तू स्वयं (असिक्नी असि) काले रंगवाली है इसलिये (इतः) यहांसे (पृषत्) बिंदु (निः नाशय) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ (दूष्या कृतस्य) दोषके कारण उत्पन्न हुए (श्वित्रिवस्य तनूवस्य च) दाहीसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए (किलासस्य यत् त्वचि घोरं रूपम्) कुष्ठका जो त्वचापर घोर चिन्ह है उसको (ब्रह्मणा अनीनशम्) इस मंत्रसे मैंने नष्ट किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—रात्रि कृष्णा अग्नीकिनी ये औषधियां हैं, इनका पोषण रात्रिके समय होता है इनमें रंग चढानेका सामर्थ्य है ।

इसलिये इसके लेपनसे श्वेतकुष्ठ दूर होता है ॥ १ ॥ शरीरपर जो श्वेत कुष्ठके चट्टे होते हैं उन श्वेत चट्टोंको इस लेपके लेपनसे दूर कर दे और अपनी चमडीका असली रंग शरीरपर आने दे ॥ २ ॥ यह वनस्पति यद्यपि होनेपर भी आम्र रंगकी है उसका स्वभाव काले रंगका होता है और वनस्पतिभी स्वयं काले रंगवाली है इसी कारण यह वनस्पति श्वेत चट्टोंको दूर कर देती है ॥ ३ ॥ दुराचारसे दोषोंसे उत्पन्न हुईसे उत्पन्न मोहसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके श्वेत कुष्ठके चट्टोंको इस लेपसे दूर किया जाता है ॥ ४ ॥

अवकुष्ठ ।

शरीरका रंग चमडी का होता है। घोर कालेरा भेद होनेपर भी चमडी का एक विलक्षण रंग होता है। जो रंग यह होनेसे चमडीपर सेनसे चट्टे दिखाई देते हैं। उनका नाम ही श्वेत कुष्ठ होता है। यह श्वेत कुष्ठ शरीरपर होनेसे शरीरका सौंदर्य नष्ट होता है और सुंदर सुंदर मनुष्य भी कुरूपसा दिखाई देता है इसलिये इस(अव अवम) श्वेत चिह्न-श्वेत कुष्ठ -दूर करनेका उपाय वेदने बताया है।

निदान ।

वेद इस श्वेत कुष्ठके निदान इस सूक्तमें तिन प्रकार देता है—

(१) दूष्या कृतस्य-दोषयुक्त इस अर्थात् दोषपूर्ण आचरण। सदाचार न होनेसे अथवा आहार विहारमें कोई दोष घुसने रहनेसे यह कुष्ठ होता है। जिस प्रकारसे अग्निदोषसे तथा कुपथ्य दोषसे भी यह कुष्ठ होता है।

(२) अस्थिजस्य—अस्थिगत दोषसे यह होता है।

(३) तनूजस्य—शरीरिक अर्थात् मांसके दोषसे होता है।

(४) त्वचि चमडीके अंदर कुछ दोष होनेसे भी यह होता है।

ये दोष सबके सब हों या इनमेंसे थोडे हों यह कुष्ठ हो जाता है।

इस भेद और उनका उपाय ।

इस कुष्ठमें दो भेद होते हैं एक निदान और दूसरा पलित। पलित शब्दका केवल श्वेतरूप ही दोष होता है इस कारण यह श्वेत चट्टोंका वाचक स्पष्ट है इसको छोडकर दूसरे कुष्ठका काम निदान प्रतीत होता है जिसमें चमडी विकृत बनती है। सुयोग्य वैद्य इन शब्दोंका अर्थ निश्चय करें।

" रामा कृष्णा असिक्नी " इन औषधियोंका इस कुष्ठ पर उपयोग होता है। ये नाम निश्चयसे किन औषधियोंके वाचक हैं और किन औषधियोंका उपयोग इस कुष्ठके निवारण करनेके लिये हो सकता है यह निश्चय केवल शब्द शास्त्र नहीं कर सकता; न यह विषय केवल कोशोंकी सहायतासे हल हो सकता है। इस विषयमें केवल सुयोग्य वैद्य ही निश्चित मत दे सकते हैं तथा वे भी योग्य मार्गसे खोज कर सकते हैं। इसलिये इस विषयमें वैद्योंको प्रेरणा देना ही यहां हमारा कार्य है। वेदमें बहुत लिखा! होनेसे अनेक विद्वानोंके पंडित मिलनेपर ही वेदकी खोज हो सकती है। अतः सुयोग्य वैद्योंने आयुर्वेदविषयक वेदभागकी खोज करनी चाहिये और यह प्रयत्न स्थिर होनेसे इन औषधादेय प्रयोग करके ही इसका समयोग प्रतिपादन करना चाहिये। आशा है कि वैद्य और डाक्टर इस विषयमें योग्य सहायता देंगे।

रंगका घुसना ।

कई लोग समझते हैं कि ऊपर ही ऊपर वनस्पतिका रस आदि व्यवहारसे चमडीका ऊपरका रंग बदल जाता है, परंतु यह ठीक नहीं है। इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें—

आ रुधा रोहो विशतां वर्ण ।

' अपना रंग अंदर घुस जाय यह मंत्रसामर्थ्य बता रहा है कि इन औषधियोंका परिणाम चमडीके अंदर ही होना अभीष्ट है न कि केवल ऊपर ही ऊपर। ऊपर परिणाम ही परंतु " विशतां रुधा अंदर घुसने " का अर्थ नहीं है। इसलिये चमडीके अंदर रंग घुस जाता है और वहां वह स्थिर हो जाता है। यह मंत्रका कथन स्पष्ट है।

औषधियोंका पोषण ।

औषधियोंका पोषण विशेष समय होता है या रात्रिके समय, यह प्रश्न बडे महत्वका है। औषधियोंका राजा सोम कहे—वे इसलिये औषधियोंका पोषण और वर्धन रात्रिके समय होता है। यही बात " अक्तं अक्तम " शब्दोंसे इस सूक्तमें बतायी है। रात्रिके समय बनी बडी या पुष्ट हुई औषधि होती है। प्रायः सभी औषधियोंके संबंधमें यह बात लक्ष्यमें रखने योग्य है। वनस्पति तथा आनेवाले सोम इस कथनका अधिक विचार करें।

" सोमारुद्र-वर्धन " के (१८ वें) सूक्तमें सौवर्यबलका उपदेश दिया है इसलिये उस अर्थके लिये चेत कुछ यदि लिखेंगे तो उसका दुहराना आवश्यक हो है। अतः पाठक इस सूक्तको पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढ़ें। आशा है कि पाठक इस पक्षका पूर्वापर सूक्तोंका संबंध देखकर सूक्तार्थको अधिकसे अधिक काम लगावें।

कुष्ठ-नाशन सूक्त।

(२४)

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता आसुरी वनस्पति।)

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ। तदासुरी युघा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥ १ ॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासमेषजमिदं किलासनाशनम्। अनीनशत्किलासं सरूपामकरत्पुनः ॥२॥
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता। सरूपकरणेयं सा सरूपामिदं कृधि ॥ ३ ॥
इयमा रुरुकुर्करिणी पृथिव्या अप्युद्भृता। इदमु षु प्र सादय पुनः कृणोति कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ—सुपर्ण (प्रथमः जातः) सबसे पहिले हुआ (तस्य पित्तं) उसका पित्त (त्वं आसिथ) तूने ग्रास किया है। (युधा जिता) युद्धसे जीती हुई यह आसुरी (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंका (तत् रूपं चक्रे) यह रूप करती रही ॥ १ ॥ (प्रथमा आसुरी) पहिली आसुरीने (इदं किलास-भेषजं) यह कुष्ठका औषध (चक्रे) बनाया। (इदं) यह (किलास-नाशनं) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है। इसने (किलासं) कुष्ठका (अनीनशत्) नाश किया और (त्वचं) त्वचाको (पुनः) समान रंगवाली (अकरत्) बना दिया ॥ २ ॥ हे औषधि तेरी माता (सरूपा) समान रंगवाली है तथा तेरे पिता भी समान रंगवाले हैं। इसलिये (त्वं सरूप-करणी) तू भी समानरूप करनेवाली है (सा) वह तू (इदं सरूपं) इसको समान रंगरूपवाला (कृधि) कर ॥ ३ ॥ इयमा नामक वनस्पति (रुरुकुर्करिणी) समान रंगरूप बनानेवाली है। यह (पृथिव्याः अप्युद्भृता) पृथ्वीसे उखाड़ी गई है। (इदं उ षु प्रसादय) यह कर्म ठीक प्रकार सिद्ध कर और (पुनः कृणोति कल्पय) फिर पूर्ववत् रंगरूप बना दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुपर्ण नाम सूर्य है उसकी किरणोंने पित्त बढ़ानेकी शक्ति है। सूर्यकिरणों द्वारा यह पित्त वनस्पतियोंमें संचित होता है। योग्य उपायोंसे स्वाधीन की हुई वनस्पतियाँ रूप रंगका सुधार करनेमें सहायक होती हैं ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पतिसे कुष्ठ रोगके लिये उत्तम औषध बनता है। यह विकारसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इसने शरीर की त्वचा समान रंग रूपवाली बनती है ॥ २ ॥ जिन पौधोंसे संयोगसे यह वनस्पति बनती है वे पौधे (अर्थात् इसके माता पितारूपी पौधे भी) रंग रूप सुधारनेवाले हैं। इसलिये यह वनस्पति भी रंगरूप सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह इयमा वनस्पति शरीर की चमड़ीका रंग ठीक करनेवाली है। यह भूमिसे उखाड़ी हुई यह काम करती है। अतः इसके उपयोगसे शरीर का रंग सुधारना चाहिये ॥ ४ ॥

वनस्पतिके माता पिता।

इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें वनस्पतिके मातापिताओंका वर्णन है अर्थात् दो वनस्पतियोंके संयोगसे वनस्पतियाँ यह तीसरी वनस्पति है। दो वनस्पतियोंके रूपमें जोड़नेसे तीसरी वनस्पति विशेष गुणवाली बनती है यह वनस्पतिशास्त्र जाननेवाले जानते ही हैं। कुष्ठनाशक इयमा आदि वनस्पति इस प्रकार बनायी जाती है। शरीरके रंगरूप सुधार करनेवाली दो औषधियोंके संयोगसे यह इयमा बनती है। जो आचार्यका पौधा होता है उसका

बाल नाश और त्रिदोषी बाधा उत्पन्न विषमज्वरों का जोरी जाती है यह उसका लिंग तथा उस संबंधसे जो नयी वनस्पति बनती है यह उक्त दोनोंका पुत्र है। पाठक इस वर्णन-विवेचनसे इस मंत्रमें देखें। (मंत्र १)

स्वरूप-कथन।

शरीरके वास्तविक रोग तथा मनुष्योंके स्वभावके वर्णनेका रोग अथवा "ब्रह्मवर्चस" का तात्पर्य है। आसुरी प्रकृति वनस्पति जब करती है इसीलिये मनुष्योंपर इसका उपयोग होता है। (मं. २ १)

वनस्पतिपर विवेचन।

"मुखसे जोती हुई आसुरी वनस्पति औषध बनती है।" यह प्रथम मंत्रका प्रथम विशेष तात्पर्य है। वैद्यको हरएक वनस्पति इस प्रकार प्रयुक्त उपयोग करना पडता है। जोकि इसके हाथमें आनेकी आवश्यकता है वनस्पतिके गुणधर्मोंका पूर्ण परिचय और उनका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यको होना आवश्यक है। यहां तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता। (मं. १)

सूर्यका प्रभाव।

सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य हैं। वे वीर्य किरणों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं। वनस्पतिद्वारा वे ही वीर्य प्राप्त होते हैं और रोगनाश आरोग्य आदिका कार्य करते हैं। इस प्रकार यह सब सूर्यका ही प्रभाव है। (मं १)

सूर्यसे वीर्य-प्राप्ति।

सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (ऋग्वेद १ । ११५ । १)

सूर्य ही स्थावर जंगम का आत्मा है यह वेदका उपदेश भी यहां मनन करना चाहिये। अब सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य प्राप्त करके इस अधिक वीर्यवान हो जानेकी तथा यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है।

जैसे शरीर सूर्यकिरणोंमें विचरनेसे और सूर्यकिरणोंका अपनी चमडी आदिके प्रकार लगनेसे शरीरके अंदर सूर्यका वीर्य मिश्रित होता है उसी प्रकार सूर्यसे लगा हुआ वायु प्राणायाम करके अंदर लेनेसे अथवा खाने पीनेमें भी वहां आप पहुंचता है। इसी प्रकार कई रीतियोंसे हम सूर्यसे वीर्य प्राप्त कर सकते हैं। पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको बहुत बोध प्राप्त हो सकता है।

वैद्योंको उचित है कि वे औषधसे इलाज वनस्पतियोंमें जाने करें और उनके द्वारा कुछ रोग दूर करें। तथा सूर्यसे अधिक वीर्य प्राप्त करनेके उपाय ढूंढकर निकालें और उनका उपयोग आरोग्य बढानेमें करते रहें।

शीत-ज्वर-दूरीकरण सूक्त।

(२५)

(ऋषिः-भृग्वाङ्गिराः। देवता-अग्निः, तक्मा।)

यद्ग्निरापो अदहत्प्रविष्य यत्राकृण्वन् धर्महस्तो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ १ ॥
यद्ग्निर्वदति शासि ग्राभिः शंकस्पेषि यदि वा ते जनित्रम्।
मृडुर्नो मासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ २ ॥
यदि श्रोको यदि वाऽभिग्राको यदि वा राष्ट्रो वरुणस्यासि पुत्रः।
मृडुर्नो मासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ ३ ॥

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरन्येद्युष्कायु नमो अस्तु तक्मने ॥ ४ ॥

अर्थ—(यत्र) जहां (धर्म-कृतः) धर्मका पालन करनेवाले सदाचारी लोग (नमांसि कृण्वत्) नमस्कार करते हैं, जहां (प्रविश्य) प्रवेश करके (यत् अग्निः) जो अग्नि (आपः अदहत्) प्राणधारक जलतत्त्वको जलाता है (तत्र) वहां (ते परमं जनित्रं) तेरा परम जन्म स्थान है ऐसा (आहुः) कहते हैं । हे (तक्मन्) कष्ट देनेवाले ज्वर ! (सः संविद्वान्) जानता हुआ तू (वः परि वृङ्धि) हमको छोड़ दे ॥ १ ॥ (यदि अग्निः) यदि तू जलानेवाला (यदि वा सोचिः असि) अथवा ताप देनेवाला हो (यदि ते जनित्रं) यदि तेरा जन्म स्थान (सप्तधस्थ-हरितः) अंगप्रत्यङ्गमें परिणाम करता है तो तू (क्षुद्रः नाम असि) क्षुद्र [अर्थात् यति करनेवाला] इस नामका है । अतः हे (हरितस्य देव तक्मन्) पीलक रोगको उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! (सः संविद्वान्) यह तू यह जानता हुआ (वः परि वृङ्धि) हमें छोड़ दे ॥ २ ॥ (यदि शोकः) यदि तू मेरा देनेवाला अथवा (यदि असि शोकः) यदि अंग मेरा उत्पन्न करनेवाला हो (यदि वरुणस्य राज्ञः पुत्रः असि) किंवा वरुण राजाका तू पुत्र ही क्यों न हो तुम्हारा नाम क्षुद्र है । हे पीलक रोगको उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! तू हम सबको यह जानकर छोड़ दे ॥ ३ ॥ (शीताय तक्मने नमः) शीत ज्वरके लिये नमस्कार (रूराय शोचिषे नमः कृणोमि) रूक्ष उष्णके भी नमस्कार करता हूं । (यः अन्येद्युः) जो एक दिन छोड़कर आनेवाला ज्वर है (उभयद्युः) जो दो दिन आनेवाला (अन्येद्युः) होता है जो (तृतीयकाय) तिजारी है, उस (तक्मने नमः अस्तु) ज्वरके लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—वातपित्त कोप जहां प्राणवायुद्वारा पहुंचते और प्राणशक्तिका सहाय पाकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राणके मूलस्थानमें पहुंचकर यह ज्वरका कृमि प्राणवायुके साथ उसकी जन्म देता है । यही इस ज्वरका परम स्थान है । यह जानकर इससे मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह ज्वर बहुत जोरसे तपित करनेवाला हो किंवा ज्वर ही जोर उत्पन्न करनेवाला हो किंवा हरएक अंग-प्रत्यंगमें कमजोर करनेवाला हो यह हरएक लोगोंके अनुभवसे सिद्ध होता है इसलिये इसको " क्षुद्र " कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा पीलिया रोगको उत्पन्न करता है, यह जानकर हरएक मनुष्य इससे अपना बचाव करें ॥ २ ॥ कई ज्वर विशेष अंगमें दर्द उत्पन्न करते हैं और कई संपूर्ण अवयवसंधियों पीड़ा उत्पन्न करते हैं अथवा वातपित्तसे इसकी उत्पत्ति होती है यह हरएक अंगप्रत्यंगको शिथिल देता है और पीलक रोग शरीरमें उत्पन्न कर देता है । इसलिये हरएक मनुष्य इससे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत ज्वर, उष्ण ज्वर, प्रतिदिन आनेवाला एकदिन छोड़कर आनेवाला दो दिन छोड़कर आनेवाला तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो ज्वर हैं उनको नमस्कार हो अर्थात् वे हम सबसे दूर रहें ॥ ४ ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

यह तक्मनाशन सूक्त ' का सूक्त है और इस सूक्तने ज्वरकी उत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार बतायी है ।

वरुणस्य राज्ञः पुत्रः । (मंत्र १)

यह " वरुण राजाका पुत्र है । " अर्थात् वरुणसे इसकी उत्पत्ति है । जलका अधिपति वरुण है यह सब जानते ही हैं । वरुण राजाके जलकणी साम्राज्यमें यह कृमि रहता है । इसका जीवन जलमें ही है यह स्पष्ट ही कहा है कि जहां जल विशेषकरके रहता या उठता है वहांसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है । व्यवहारमें भी प्रायः यह बात निश्चितसी हो चुकी है कि जहां जल अधिक नहीं होता परंतु उष्ण रहता है वहां ही शीतज्वरकी उत्पत्ति होती है और शीतज्वर ऐसे ही स्थानोंसे फैलता है ।

यदि यह ज्ञान निश्चित हुआ तो ज्वरोत्पादक पहिला उपाय यही हो सकता है कि अपने घरके आसपास तथा अपने ग्राममें जलका निकट कोई ऐसे स्थान नहीं रखने चाहिये कि जहां जल रुकता और उठता रहे । पाठक ज्वरोत्पादक इस प्रथम और सबसे मुख्य उपायका विचार करें । और इससे अपना काम उठावें ।

ज्वरका परिणाम ।

इस सूक्तने ज्वरका नाम " क्षुद्र " किया है । इसका अर्थ " यति करनेवाला " है । यह ज्वर जब शरीरमें आता है तब शरीरके सूक्ष्म तथा अंगप्रत्यंगोंके जीवन-तत्त्वमें यति उत्पन्न करता है । और इसी कारण अंगप्रत्यंगका जीवनरस (आपः तक्म) जल जाता है । यही बात प्रथम मंत्रमें कही है—

अग्निः आपः अह्रहन् ॥ (मंत्र १)

"यह ज्वर जीवनरस को ही जला देता है।" इसका कारण ज्वरसे शरीरका अत्यन्त कम होना है। आपः तत्त्व जलतत्त्वका वाचक करनेवाला है। (आपोमयः) आपःतत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोंका कथन है। प्राण आयुरूप शरीरस्थ आपः तत्त्व इस ज्वर के द्वारा जल जाता है इसीसे ज्वरसे जीवन शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इस ज्वरको पीडक रोगों का उत्पादक कहा है। देखिये—

हरिरस्य देवः ! (मंत्र २ ३)

"पीडाजन्य उत्पन्न करनेवाला पीडा विशेष बननेवाला पीडारोग हरिता पांडुरोग जीवन तथा तेज करनेवाला।" इस मंत्रमें उत्पादक ज्वर है। यह ज्वर इतने भयानक होते हैं कि उनसे मनुष्यको अपने आपका बचाव करना कठिन है। यह ज्वर शरीरमें मूल स्थानसे इसका रक्त के द्वारा संचार करता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

यदग्निरापो अह्रहन् त्र यद्वन यशाकरम्।
तस्मैवतो वमामसि ॥[मंत्र १]

"जहां पार्थिव तत्त्व जाकर मिलन करते हैं इस प्रसिद्ध रोहिणी ज्वर—ताप—दाह आदि जीवनरसको जलाता है।

योगादि साधनद्वारा पार्थिव भोग समाप्त करनेमें हर्ष होता है उसी हर्षमें आनन्दका रस है वही रस-रसायन जलता है। अर्थात् ज्वरका हर्षभंग करने वाले पदार्थका होना है जिससे बहुत घबराहट भी उत्पन्न होती है। इस कारण यह ज्वर पित्त तेज अथवा वायु का उत्पन्न करता है ऐसा सूचक द्वितीय मंत्रमें कहा है। यह हिमज्वर जिसको आज कल "रोहिणी" कहा जाता है बहुत बडा ही हानिकारक है। इसलिये उसका इस एक प्रकरणमें विचार करना चाहिये यही निम्नलिखित मंत्रमें सूचन किया है—

स न संविद्वान् परिवेत्तवे वयम् ॥ (मंत्र १, २ १)

यह ज्वर जानता हुआ ज्वर दूर रखा जाय" अर्थात् ज्वरके कारण दूर करके उसका हानिकारक परिणाम इस विषयमें बाध उत्पन्न किया जाय। ज्वर आनेके बाद उसके लिये उपाय करना कठिन है इसलिये विचार ही हो करना चाहिये परंतु इस सूक्तद्वारा वेद यही उपदेश करता है कि ज्वर आनेके पहले ही उसके लिये उपाय करके उसके लिये उपाय करके उसके हानिकारक परिणाम न होने पावें। ज्वरसे यह हानि होती है कि एक बार आया हुआ हिमज्वर अपना परिवार स्थिर करके शरीरमें रह जाता है और उसके निवारणके लिये वर्षोंतक और बहुत व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं।

हिमज्वरके नाम।

इस सूक्तमें हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१ पहु—गति उत्पन्न करनेवाला शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला ज्वरका वीज जिस समय प्रारंभ होता है उस समय मनुष्य कांपने लगता है। मराठी भाषामें इस हिम ज्वरका नाम हुडहुडा सूप ' है यह शब्द में दीर्घ पहु शब्दके साथ मिलता जुलता है। यही कारण निघंटु इत्यादिमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है पहु, पहु, पहु, हुडु, हुडु, सह, पहु। अथवा पूर्व निरुक्तकारकी संहितामें ' हुडु पाठ है। यह " हुडु शब्द मराठी " हुडहुडा शब्दसेही उत्पन्न हुआ है। (मंत्र २ १)

२ शोचा—जो ज्वर शीत लगकर प्रारंभ होता है। यह प्रतिदिन आनेवाला लक्षणका उचित है। (मंत्र ४)

३ अन्येद्यु—एक दिन छोडकर आनेवाला। (मं ४)

४ उभयद्यु—दूसरे दिन आनेवाला अथवा दो दिन छोडकर आनेवाला। (मं ४)

५ तृतीयक—तीसरे दिन आनेवाला दिवा तीन दिन छोडकर आनेवाला अथवा नित्य दिन तीसरे दिन छोडकर आनेवाला। (मं ४)

६ तक्मा—शीत पूर्वक उत्पन्न होनेवाला ज्वर।

७ अग्निः—अग्निकी उपासना करनेके समान जिसमें उष्णता बहुत होती है। (मं २)

८ शोचिः शोक जिसमें शरीरमें कंप होता है (मं २)

९ शफवर हरि—अंग प्रत्यंग जलन अथवा दाहके समान जिसमें जलन होती है। (मं २)

१० अभिशोक—जिसमें सब शरीर जला हुआ करता है। (मं २)

इस प्रकारका विचार करनेसे इस ज्वरके अनेकता प्राप्त होती है और निश्चय होता है कि यह पवन शीतज्वर जिसे मलेरिया आदिक कहते हैं यही है।

शरीरका अंग अवयव न रहे शरीरका भी मृत्यु अवश्य रहता है और किसी भी कारणसे इस तो भी उत्पन्न होने योग्य परमात्माने न हो इसी प्रकार उसमें अंग अवयव आवश्यकी

स्थान योग्य और आरोग्य कारक हो जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा। क्योंकि यह ज्वर अपने दुष्कृत्योंसे उत्पन्न होता है। इसीलिये " अस्य देवस्यका पुत्र " इसका एक नाम इसी सूक्तमें दिया है। यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको इसमें बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है। आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचायेंगे ॥

नमः शब्द।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें " नमः " शब्द तीनवार आया है। यहांका यह नमनवाचक शब्द घातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानेवाले नमस्कारके समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है। कोषोंमें 'नमस्कार नमस्कारी' शब्द औषधियोंके भी वाचक हैं। यदि 'नमः' शब्दसे किसी औषधीका बोध होता हो तो वह बोध करना चाहिये। 'नमः" शब्दके अर्थ " नमस्कार, अन्न वज्र दण्ड " इतने प्रसिद्ध हैं, 'नमस्करी नमस्कार नमस्कारी ये शब्द औषधिबोधक भी वाचक हैं। अतः इस विषयका अन्वेषण वैद्य लोग करें।

सुख प्राप्ति सूक्त।

(२६)

(ऋषिः—ब्रह्मा। देवता—इंद्रादयः)

अरे॑ अ॒स्मदे॑तु हे॒तिर्दे॒वासो॑ अस॒त्। अरे॑ अ॒स्मा यमस्य॑य ॥ १ ॥
सखा॑सा॒वस्म॑न्यमस्तु रा॒तिः सखे॒न्द्रो भगः॑ सवि॒ता चि॒त्ररा॑धाः ॥ २ ॥
यू॒यं नः॑ प्रव॒तो नपा॒न्मरु॑तः सू॒र्यत्वचसः। शर्म॑ यच्छाथ सु॒प्रयाः॑ ॥ ३ ॥
सु॒पू॒दत॑ मृडत मृ॒डया॑ नस्त॒नू॒३॒॑भ्यो॑ मयस्तो॒केभ्य॑स्कृधि ॥ ४ ॥

अर्थ हे (देवासः) देवो! (असौ हेतिः) वह वज्र (अस्मत् अरे अस्तु) हमसे दूर रहे। और (यं अस्मय) जिसे तुम फेंकते हो वह (अस्मा अरे अस्तु) ज्वर भी हमसे दूर रहे ॥ १ ॥ (असौ रातिः) वह दानशील (मयः) वस्तुतः सविता विश्वराधः इन्द्रः) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त हम हमारा (सखा अस्तु) मित्र होवे ॥ २ ॥ हे (प्रवतः नपात्) अपने आश्रय रहण करनेवालोंको न गिरानेवालो हे (सूर्यत्वचसः मरुतः) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत् देवो! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिये (सुप्रयाः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छाथ) दो ॥ ३ ॥ (सुपूदत) तुम हमें आश्रय दो, (मृडत) हमें सुखी करो (मयः तनूभ्यः मृडय) हमारे शरीरोंको आरोग्य दो तथा (तोकेभ्यः मयः कृधि) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे देवो! आपका हंतस्य वज्र आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका अवसर न आवे अर्थात् हमसे ऐसा कोई कार्य न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें ॥ १ ॥ हम सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों ॥ २ ॥ मरुत देव हमारा सुख बढ़ावें ॥ ३ ॥ सब देव हमें उत्तम आश्रय दें हमारे शरीरका आरोग्य बढ़ावें हमारे मनकी शांति वर्द्धमान करें, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनंद बढ़ावें ॥ ४ ॥

देवोंसे मित्रता।

इन्द्र,सविता भग मरुत आदि देवोंसे मित्रता करनेसे सुख मिलता है और उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे दुःख प्राप्त होता है। इसलिये प्रथम मंत्रमें प्रार्थना है कि सब देवोंका रंज हमपर न चले और दूसरे मंत्रमें प्रार्थना है कि ये सब देव हमारे मित्र हमारे सहायक बनकर हमारा सुख बढ़ावें अथवा हमारा ऐसा आचरण बने कि वे हमारे सहायक बनें और विरोधी न हों। देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता सूर्यदेव है वह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है परन्तु उसका उदय होनेके समयमें अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहता है परंतु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपने आपको तंग मकानोंमें बंद रखते हैं और सविता देवके पवित्र हाथके पास जाते ही नहीं। सूर्य तो आरोग्य की देवता है उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्रपात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगरूपी दुःखोंसे छिरना आवश्यक होता है।

२ मरुत् नाम वायु देवता का है। यह वायुदेव भी हमारी सहायता करनेके लिये हरएक स्थानमें हमारे पहलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम खुली हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आवे ऐसी व्यवस्था नहीं करते इतना ही नहीं परन्तु वायुके विषजनेके अनंत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका कोप हमपर होता है और उसका वज्रपात हमें सहन करना पडता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके कोपसे हमें उत्पन्न होती हैं।

इसी प्रकार अन्यान्य देवोंका संबंध जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाध्याय को १ सूक्त १ ९ देखिये इस सूक्तोंके स्पष्टीकरणके अनुसार देवताओंसे हमारे जो कर्तव्य वर्णन किया है। इसलिये इस सूक्तके साथ अन्य सूक्तोंका उदय अवश्य देखना चाहिये।

जिस प्रकार ये सब देवताएं हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ सकता है उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे शरीरमें स्वाधीन स्थानमें रहे हैं उनको मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब थोडासा विवरण देखिये—

१ सविता सूर्य देव आकाशमें है उसीका प्रतिनिधि अवयव देव हमारी आंखमें तथा अग्निस्वरूपके सूर्यचक्रमें रहा है। इसका इसके साथ दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके साथ संबंधित है। पाठक यहां अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे मित्र बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है। यदि आंख किसी समय धोखा देने अथवा रुपके विषयमें मोहित होकर हम आगेके इस शरीरको जो चाहे तो उससे प्राप्त होनेवाली शरीर की कठिनसे कठिन दशा को अनुभव पाठक ही कर सकते हैं। इसी प्रकार पेटकी पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसका हम पाठकोंसे लिख नहीं है। अर्थात् शरीरस्थ अग्नि सूर्य—सविताके अंश रूप के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आयुष्यितीको कैसा विपत्ति पड सकती है इसका पाठक ही विचार करें।

२ इसी प्रकार मरुत् वायु देव फेफडोंमें तथा शरीरके अन्य स्थानोंमें रहते हैं। यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना विकारोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंतःकरण के स्थानमें तथा अन्यान्य देव शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें रहते हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि उनके " सखा " बनकर रहनेसे ही मनुष्य जीवनके स्वास्थ्य और आनंद बढ ही सकता है। इसके विरोधी बनेसे दुःखका पारावार नहीं होता।

पहले मंत्रमें देवोंके दर्शनसे सुख पहने की और दूसरे मंत्रमें " देवोंसे मित्रता रखने की " सूचनाका इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें लानेका प्रयत्न करें और परम आनंद प्राप्त करें। तीसरे मंत्रका इसी आचरणसे विस्तृत सुख मिलता है " यह कथन अब सुस्पष्ट ही हुआ है।

चतुर्थ मंत्रमें जो कहा है कि " ये ही देव हमें जगाए रखते हैं हमें सुखी रखते हैं हमारे शरीरका आरोग्य बढाते हैं और शत्रुओंको भी नामशेष रखते हैं, " यह कथन अब पाठकोंको भी दिनके प्रकाशके समान प्रकाश हुआ होगा। इसीसे स्वास्थ्य और सुखकी वृद्धिके इस उत्तम साधनका पाठक अवश्य करें।

विशेष सूचना।

विशेष कर पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें कि केवल सुख स्वास्थ्य और आनंदके साथ करनेके लिये यद्यपि साधन यही बताया है, परन्तु " अब वायु सूर्य अग्नि के साथ संबंध क्यों नहीं साधन बता रहा है। यह हरएक कर सकता है। यदि अब किसीको मिले या न भी मिले परंतु " अब वायु और सूर्य प्रकाश " तो हरएक को मिल सकता है। इस स्वास्थ्यके अति सुलभ साधनका पाठक अधिक विचार करें, देखकी इस दैवीय अवस्था मनन करें और उपदेशके अनुसार आचरण करके लाभ उठावें।

विजयी स्त्री का पराक्रम।

(२७)

(ऋषिः अथर्वा । देवता-इन्द्राणी)

अमूः पारे पृदाकवस्त्रिपत्ता निर्वैरायवः ।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३ वर्षि व्यषामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥
विधूम्येतु कन्तती पिनाकमिव बिभ्रती । विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसंमृद्वा अघायवः ॥ २ ॥
न बहवः समशकन्नभिका अभिदोहवुः । वेणोरग्रा इवाऽभितोऽसंमृद्वा अघायवः ॥ ३ ॥
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं बहतं पूषतो गृहान् । इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुपिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अमूः पारे) वह पारमें (निर्वैरायवः) बिनैरसे निकली हुई (त्रि-सप्ता) तीन गुना सात (पृदाकवः) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं । (तासां) उनकी (जरायुभिः) वेष्टनशीलोंसे (वयं) हम (अघ—अघायोः परिपन्थिनः) पापी दुष्टशत्रुके (अक्ष्यौ) दोनों आंखें (अपि व्यषामसि) ढके देते हैं ॥ १ ॥ (पिनाकं इव बिभ्रती) धनुष धारण करनेवाली और धनुषके (कन्तती) समान बाकी वीरसेना (विधूम्य एतु) चारों ओर आगे बढ़े । जिससे (पुनर्भुवाः) फिर इकट्ठीकी हुई शत्रुसेनाका (मनः विष्वक्) मन इधर उधर हो जावे । और उसके (अघायवः) पापी शत्रु (असमृद्धाः) निर्धन हो जावें ॥२॥ (बहवः न समशकन्) बहुत शत्रु भी उसके सामने ठहर नहीं सकते । फिर (अभिकाः) जो बालक हैं वे (न अभि दोहवुः) कैसे नहीं कर सकते । (वेणोः अग्राः इव) बांसके अंकुरोंके समान (अभितः) सब ओरसे (अघायवः) पापीलोग (असमृद्धाः) निर्धन होवें ॥ ३ ॥ हे (पादौ) दोनों पांवो ! (प्रेतं) आगे बढ़ो (प्र स्फुरतं) फुरती करो (पूषतः गृहान् बहतं) पोषण देनेवाले घरोंके प्रति हमें पहुंचाओ । (अजीता) बिना जीती (अमुषिता) बिना लूटी हुई और (अक्षता) अक्षित रही हुई (इन्द्राणी) महारानी (पुरः एतु) सबके आगे बढ़े ॥ ४ ॥

भावार्थ—वेणुकीसे बाहर आयी हुई सर्पिणीके समान चपल सेनाएं तीन गुने सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये सिद्ध हैं, उनकी दृढ़वर्मोंसे हम सब पापी दुष्टोंकी आंखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ शस्त्र धारण करनेवाली और शस्त्रको चलानेवाली वीरोंकी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढ़े जिससे शत्रुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी शत्रु निर्धन हो जावें ॥ २ ॥ ऐसी वीर वीरोंकी सेनाके सम्मुख बहुत शत्रु भी ठहर नहीं सकते फिर कमजोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बांसके कोमल और अक्षत अंकुरके समान चारों ओरसे पापी शत्रु कमजोर होकर नाशको प्राप्त होवें ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न लूटी गई वीर स्त्री महारानी मुखिया बनकर आगे बढ़े इतर लोग उसके पीछे चलें हरएक वीरके पांव आगे बढ़ें वीरोंमें फुर्ती बढ़े और सब लोग ऐश्वर्य बढ़नेवालोंके घरोंतक पहुंच जांय ॥ ४ ॥

इन्द्राणी ।

" इन्द्र " शब्द राजाका वाचक है जैसा-नरेन्द्र (मनुष्योंका राजा) मृगेन्द्र (मृगोंका राजा) खगेन्द्र (पक्षियोंका-राजा) इत्यादि । केवल इन्द्र शब्द भी राजाका ही वाचक है, और " इन्द्राणी " शब्द इन्द्रकी रानी राजाकी रानी महारानी इसी " का वाचक है । यह इन्द्राणी सेनाकी प्रेरक देवी है यह बात वैदिक संहितामें कही है देखिये—

इन्द्राणी वै सेनायै देवता । तै सं २।२।८।१

" इन्द्राणी सेनाकी देवता है । " क्योंकि इसकी प्रेरणासे सैनिक अपना पराक्रम दिखाते और विजय प्राप्त करते हैं ।

वीर स्त्री ।

" इन्द्राणी अर्थात् रानी सेनाकी मुखिया बनकर सेनाको

प्रोत्साहन देती हुई आगे बढ़े हरएकके पांव आगे बढ़ें हरएकका मन उत्साहसे पुष्ट रहे संतोष बढ़ाने वाले सज्जनोंके घरोंमें ही लोग जायें। " परंतु जो लोग संतोषको कम करने वाले उत्साहका नाश करने वाले और मनकी आशाका नाश करनेवाले हों उनके पास कोई न जावे क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं। यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियांभी ऐसी वीर और दक्ष होंगी, वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इसमें क्या संदेह है? जिस देश में स्त्रियां सेनाओंमें जाकर लड़ेंगी उस देशके पुरुष कितने वीर और कैसे शूर होंगे। क्या ऐसी वीर स्त्रियोंके कोई हीन स्वभावका आदमी धमका सकता है और ऐसी वीर स्त्रियोंपर किसी दबावसे कोई जोरजुल्मी कर सकता है। इसलिये आत्मसम्मान रक्षणेच्छु इच्छा करने वालोंको उचित है कि वे स्वयं सदैव वीर और अपनी स्त्रियोंको भी ऐसी शिक्षा दें कि वेभी शूरवीर बनकर अपने संभाल की रक्षा कर सकें।

२ मंत्रमें यज्ञ आरंभ करती हुई, वधुको कहती हुई आगे बढ़े जिसका वेग देखकर वधुका मन उत्साहरहित होवे और वधु निर्धन अर्थात् परास्त हो जावें।" यह द्वितीय मंत्रका भाव भी चतुर्थ मंत्रके साथ देखने योग्य है। क्योंकि यह मंत्र भी वीर स्त्रीका पराक्रम ही बता रहा है। यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीर स्त्रीका वर्णन करता है। (मंत्र २)

वीरस्त्रियोंको उपमा वेधुकोंसे निकली हुई सर्पिणीकी इस सूक्तमें दी है। खभावतः सर्पिणी बड़ी वेग वती होती है और अति फुर्तीसे शत्रुपर हमला करती है। परंतु जिस समय वह वेधुकोंसे बाहर आती है उस समय अतितेजस्वी और अतिरुष्ट रहती है क्योंकि इस समय वह नवजीवनसे पुष्ट होती है। और स्त्री ऐसी ही होती है। जो खभावतः चपल होती है, परंतु जिस समय कर्तव्यरूप राष्ट्रीय आपत्तिसे प्रेरित होकर, आत्मसंरक्षणकी रक्षाके लिये कोई वीर स्त्री अपने अंतर्गृह रूपी वेधुकोंसे बाहर आती है उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन क्या करना है? वह उस समय उन्मुक्त सर्पिणीकी भांति चमकती हुई बिजलीके समान तेजस्विनी बनकर वीरसेनाओंको प्रेरित करती है। उस समयका उत्साह और पुरुष ही कल्पनासे आ सकते हैं। " उसके तेजसे शत्रुकी आंखें ही अंधी बन जाती हैं " और उसके सब शत्रु निःशस्त्र हो जाते हैं। (मंत्र १)

जहां ऐसी वीरांगनाएं समर्थ हैं उस देशोंके सामने बड़े बड़े शत्रु भी ठहर नहीं सकते फिर अन्य साधिनाले कमजोर मनुष्योंकी बात ही क्या है? चाकके अंकुरोंके समान उनके शत्रु चक्राकार ही हो जाते हैं। " (मंत्र ३)

शत्रुनाशक शब्द।

इस सूक्तमें शत्रुनाशक दुष्ट शब्द हैं उनका विचार यहां करना आवश्यक है-

१ अघायु=आयु भर पाप कर्म करनेवाला।

२ परिपन्थिन्- बटमार बुरे मार्गसे लूटनेवाला।

पापीलोग ये हैं और इनके बुरे आचरणके नाश ही ये उपयुक्त करने योग्य हैं। अघशंस अघायवः" यह शब्द प्रयोग इस सूक्तमें दोबार आया है। पापी समृद्धिसे रहित होते हैं।" यह इसका भाव है। पापसे कभी इहे नहीं होती। पापी मनुष्य विरला ही आता है। यह भाव इसमें देखने योग्य है। जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाढ्य बनना चाहते हैं उनको यह मंत्र भाग देखना योग्य है। यह मंत्र उपदेश दे रहा है कि " पापी कभी उन्नत नहीं होगा; यदि किसी अवस्थामें वह धनवान् हुआ तो भी वह उसका धन उसके नाशका ही हेतु निःसंदेह बनेगा। तात्पर्य परिणामकी दृष्टिसे यह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे।

तीन गुप्त शत्रु।

वेदमंत्रोंमें तीन गुप्त शत्रु विख्यात हैं। रक्षोंकी यक्षोंकी अघोंकी पराती दुर्भिक्षोंकी अकल्पोंकी तथा कूटोंकी ये सात प्रकारके वर्णित होते हैं। प्रसंगमें अधिकारी व्यक्ति दुष्कालकी और उसके इन तीन भेदोंसे तीन गुप्त शत्रु वर्णित होते हैं।

निर्धनायु।

अरायु शब्द किसी वेदोक्त नामक है, परन्तु यहां वेदमंत्रमें प्रयुक्त है। यहां इसका अर्थ (अरा+आयु) दरिद्रावस्था अथवा जीर्णता लिया जायगा तथा आयुष्य। (नि+अरा-आयु) जो जीर्णता अथवा दरिद्रावस्था अथवा आयुकी पर्वा न करने वाले होते हैं अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी पर्वाह न करने वाले हैं जो अपनी अवस्थाकी तथा दुखदुःख की पर्वाह न करते हुए अपने धनके लिये ही लड़ते रहते हैं उनको 'निर्धनायु" अर्थात् " अरा और आयुके विचारसे मुक्त " कहते हैं। वीरांगना की आज्ञा लेकर लड़नेवाले सैनिक।

इस सूक्तके मंत्र वीरा की विजयक तथा सेना विजयक अर्थ बताते हैं, इसलिये ये मंत्र विजय मंत्रके साथ पढ़ने योग्य हैं।

तथा इसमें कई शब्द हेय अर्थ बतलाने वाले भी हैं जैसा कि ऊपर बतलाया है। इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस सूक्तका अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है।

आशा है कि इस प्रकार पाठक अपने राष्ट्रमें वीरता और वीर पुरुष उत्पन्न करेंगे और अपना यश बढ़ानेका परम पुरुषार्थ करेंगे।

यह सूक्त स्वस्त्ययन पर्व का है इसलिये इस पर्वके अन्य सूक्तोंके साथ पाठक इसका विचार करें।

दुष्ट नाशन सूक्त।

(२८)

(ऋषिः-चातनः। देवता स्वस्त्ययनम्।)

उप प्रागादेवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः। दहन्पर द्रयाविनो यातुधानान्किमीदिनः॥ १॥
प्रति दह यातुधाना प्रति देव किमीदिनः। अन्तर्वीः कृण्वत्वर्तने स दह यातुधान्यः॥ २॥
या कृष्णाप उपनिन पार्षं मूरमाहत्य। या रसस्य हरण्याय जातमारेभे तोकमत्त सा॥ ३॥
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो ३ वि घ्नतां यातुधान्यो ३ वि तृंहन्तामराय्यः॥ ४॥

अर्थ-(अमीव चातनः) रोगोंको दूर करनेवाला और (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला अग्निदेव (किमीदिनः) सदा मूर्खोंके (यातुधानात्) डाकुओं को तथा (द्रयाविनः) दुष्टके कर्तव्योंको (अप दहत्) जलाता हुआ (उप अगात्) पास पहुंचा है॥ १॥ हे अग्निदेव (यातुधानात् प्रति दह) डाकुओं को जलादे तथा (किमीदिन प्रति) सदा मूर्खोंको भी जलादे। हे (कृष्णवर्तने) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव (अन्तर्वीः यातुधान्यः) संमुख आनेवाली डाकू स्त्रियोंको भी (दह) ठीक जला दो॥ २॥ यह दुष्ट डाकू स्त्रियां (उपनिन अपाप) पापसे पाप होती हैं, (या अर्षं मूरं आहत्य) जो पाप ही प्रारंभसे स्वीकारती हैं (या रसस्य हरण्याय) जो रस पीनेके लिये (जातं तोकं आरेभे) जन्मे हुए बालकको खाना आरंभ करती हैं और (सा अत्तु) वह पुत्र खाती है॥ ३॥ (यातुधानीः) पापी स्त्री (पुत्रं अत्तु) पुत्र खाती है। (स्वसारं उत नप्त्यं) बहिन को तथा नाती को खाती है। (अध) और (मिथः विकेश्यः) केश पकड़ पकड़ कर (मिथः घ्नतां), आपसमें लड़ती हैं। (अराय्यः यातुधानीः) दानभाव-रहित पापकी स्त्री (विहंसन्तां) आपसमें मारपीट करती हैं॥ ४॥

भावार्थ-रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम वैद्य आदर भावसे हवनमें डाला अग्निके समान तेजस्वी उपदेशक स्वार्थी डाकुओं तथा कपटियोंको दूर करता हुआ आगे चले॥ १॥ हे उपदेशक! तू डाकुओं स्वार्थी दुष्टोंको नाश कर तथा सामने आने वाली दुष्ट स्त्रियोंको भी दुष्टता दूर कर दे॥ २॥ इन दुष्टोंका लक्षण यह है कि वे आपसमें पत्रिकाएं देते रहते हैं हरएक काम पाप हेतुसे करते हैं यहांतक वे क्रूर होते हैं कि रक्त पीनेकी इच्छासे बने जन्मते बालकको ही भक्षण आरंभ कर देते हैं॥ ३॥ इनको तो अपने पुत्रको खाती है बहिन तथा नातीको भी खाती है तथा एक दूसरेके बाल पकड़कर आपसमें ही लड़ती रहती हैं॥ ४॥

पूर्वापर संबंध।

इसी प्रथम कांडके ७ तथा ८ वें सूक्तकी व्याख्यासे अर्थमें धर्मप्रचार प्रकरणमें अग्निदेव किस प्रकार ब्राह्मण उपदेशक ही है तथा वह किस प्रकार जलाता है अर्थात्

दुष्टोंके दुष्टत्व है इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है। इसलिये इस ७ और ८ वें सूक्तके स्पष्टीकरण पाठक यहां पहिले पढ़ें और पश्चात् यह सूक्त पढ़ें

वैसहस्रमें " वि दस्य " (विशेष प्रकारसे उपक्षयकारक) यह शब्द " अग्नि विद्वान् " के लिये प्रयुक्त होता है। यहां अग्नि-शब्द यहन अक्षय आदि अर्थ समझना उचित है। जिस प्रकार अग्नि दोषों आदिको उपक्षय करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानाग्नि अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञानको क्षय कर दूर करता है। [illegible] अग्ने " के लिये वेदमें " अग्नि " शब्द आता है। ब्राह्मण और क्षत्रियके वाचक वेदमें " अग्नि और इन्द्र " शब्द प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणधर्म अग्नि देवताके और क्षात्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता है। इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं। यहां धर्म प्रचार की बात इस सूक्तमें है इसलिये पाठक प्रथम पूर्व सूक्तोंके साथ इस सूक्तका संबंध देखें।

इस सूक्तमें अमीव-चातनः " (रोगोंका दूर करनेवाला) यह शब्द विशेषण रूपमें आया है। यह यहां चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध करता है। उपदेशक वैसा ज्ञानमें प्रवीण चाहिये वैसा ही यह उत्तम वैद्य भी चाहिये। वैद्य होनेसे यह रोगोंकी चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है। धर्म प्रचारके अन्य गुण सूक्त ७ ८ में देखिये।

दुर्जनोंके लक्षण।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण करते हैं जो सूक्त ७ ८ में पहले लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं। इस लिये उनका विचार यहां करते हैं-

१ इषुकृत्- धनुषमें एक बाण और बाहर एक बाण ऐसा कपट करनेवाले। (मं १) 'निर्मथितेन, यातुधानु इन शब्दोंका भाव सूक्त ७ ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है। इस सूक्तमें दुर्जनों के कई व्यवहार बताये हैं वेसी यहां देखिये-

२ अपनेत्र जघाप- कार्पेट जाप देना बुरे शब्द बोलना गालियां देना इ । मं २

३ अर्क मूर्ध आददे- प्रारंभमें पापका भाव रखता है। हरएक काममें पाप रहोपे ही उसका प्रारंभ करना।

४ रसस्य हरणाय जातं क्षीरे आदिये रस चोसनेके लिये मनुष्य बनेरी जाती है।

५ यातुधानी पुरी रक्षसां भरन्ति अग्निं- यह दुष्ट बुद्धि की बच्चा यहिन अथवा गाली से आती है।

६ विकेशका मिथः विभ्रतां विरुजन्तां- आपसमें केश पकड़ कर परस्पर मार पीट करती है।

ये सब दुर्जन मनुष्योंके लक्षण हैं। आजकलोंके खानेके बोल इस समय अधिकांश वर्ग स्वभावोंपर हैं, परंतु कम देशोंमें अब ये नहीं हैं। यहां कहीं में [illegible] यहां धर्मोपदेशक जाने और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनाने उनकी दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे।

ऐसे मनुष्य-भक्षक दुष्ट, क्रूर हिंसक मनुष्योंमें भी जाकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका जब करनेका उपदेश होनेसे इस दूसरे हुए विविध प्रकारकी श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म प्रचार करनेका आशय स्पष्ट हो जाता है।

दुष्टोंका सुधार।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण ही वे अधर्म करते हैं। उनकी दुष्टता उपदेश आदि द्वारा हटाकर उनको सज्जन बनाना ब्राह्ममार्ग है और उनको दंड देकर अथवा उनका सुधार करनेका यत्न करना क्षात्र मार्ग है। वेदमें अग्निदेवता है ब्राह्ममार्ग और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है। उपाय तो उपाये तो दोनों ही हैं परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञान को नष्ट करता है और दूसरा बल दण्ड और इसीप्रकार के और उपायोंसे पीड़ा देकर उनको सुधारता है।

सुधार तो दोनोंसे होता है परंतु ब्राह्मणोंके द्वारा उपदेश के उपायसे ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्निद्वारा। उपदेशका उपाय अधिक उत्तम है और इसमें कष्ट भी कम है।।

पाठक अग्नि शब्द से आगका ग्रहण करके उससे दुष्टोंके जलानेका भाव इस सूक्तसे न निकालें क्योंकि इस सूक्तका संबंध आगेपीछेके अनेक सूक्तोंसे है और अग्निके गुणोंके प्रकाश देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तोंमें अर्थ है यह सूक्त ७ ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया [illegible] है। इसके अतिरिक्त 'रोग दूर करनेवाला अग्नि इस सूक्तमें क्या है यदि यह सब लोगोंको जलाही देवे तो उसके रोगमुक्त करनेके गुणसे क्या काम [illegible] सकता है। इसलिये यह अग्निका अलाना ज्ञानाग्निसे अज्ञानत्वका जलाना ही है। दुष्ट गुणोंको हटाना और वहां सद्गुण धर्म स्थापित करना [illegible] यहां अभीष्ट है और इसीलिये रोगमुक्त करनेवाला उत्तम

वैसही प्रभोत्पादकका अर्थ को यह सूक्तमें हमें मिलती है। क्योंकि रोगीके मकबर वैद्यके उपदेशका जैसा असर होता है वैसा वक्ताके व्याख्यानसे श्रोताओंपर नहीं होता। रोगीका मन आतुर होता है इसलिये अवध की हुई उत्तम बात उसके मनमें जम जाती है और इस कारण वह शीघ्र ही सुधर जाता है॥

[यह तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें अनु" शब्द है जिसका अर्थ 'जाने' ऐसा होता है परंतु "सशाप आदधे इस विधानके अनुसंधानसे 'अनु' के स्थानपर 'अति' मानना युक्त है। क्योंकि यहां यातुधानोंकी रीति बतलाई है जैसे (राशाप) शाप देते रहते हैं (अर्थ आदधे) पाप स्वीकारते रहते हैं, (तोदं अति) दूसरोंको खाते रहते हैं अर्थात् यह उनकी रीति है। पूर्वापर संबंधसे यह अर्थ यहां अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होता है। तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य बात इस सूक्तमें देखेंगे तो अर्थकी शोध होनेमें अवश्य सहायता होगी

इति पंचम अनुवाक समाप्त।

राष्ट्र-संवर्धन-सूक्त।

(२९)

(ऋषिः वसिष्ठः। देवता अमीवर्तो मणिः)

अमीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे। तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः। अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्। अभि त्वा विश्वा भूतान्यमीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥
अमीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः। राष्ट्राय महां बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ ४ ॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः। यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः। यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

अर्थ-हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानी पुरुष! (येन इन्द्रः अभिवावृधे) जिससे इन्द्रका विजय हुआ था (तेन अमिवर्तेन मणिना) उस विजय करनेवाले मणिसे (अस्मान्) हमको (राष्ट्राय अभिवर्धय) राष्ट्रके लिये बढ़ा दो॥ १॥ (याः नः अरातयः) जो हमारे शत्रु हैं उनको तथा अन्य (सपत्नान्) वैरियोंको (अभिवृत्य) पराभूत करके (यः नः दुरस्यति) जो हमसे दुष्टताका आचरण करता है तथा जो (पृतन्यन्तं) सेनासे हमपर चढ़ाई करता है उससे (अभि अभि तिष्ठ) युद्ध करनेके लिये सिर हो जाओ॥ २॥ (सविता देवः) सूर्य देवने तथा (सोमः) चंद्रमा देवने भी (त्वा) तुझे (अभि अभि अवीवृधत्) सब प्रकारसे बढ़ाया है। (विश्वा भूतानि) सब भूत (त्वा अभि) तुझसे बढ़ रहे हैं जिससे तू (अमिवर्तः असि) शत्रुको दबानेवाला हुआ है॥ ३॥ (अमिवर्तः) शत्रुको नीचे दबानेवाला (अमिभवः) शत्रुका पराभव करनेवाला, (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला यह (मणिः) मणि है। यह (सपत्नेभ्यः पराभुवे) प्रतिपक्षियोंका पराभव करनेके लिये तथा (राष्ट्राय) राष्ट्रके अभ्युदयके लिये [मह्यं बध्यतां] मुझपर बांधा जावे॥ ४॥ (असौ सूर्यः उदगात्) यह सूर्य उदयको प्राप्त हुआ है (इदं मामकं वचः उत्) यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है (यथा) जिससे (अहं शत्रुहा) शत्रुका नाश करनेवाला (सपत्नहा) प्रतिपक्षिका नाश करनेवाला होकर मैं (असपत्नः असानि) शत्रुरहित होऊं॥ ५॥

(यथा) जिससे (अहं) मैं (सपत्न क्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला (वृषा) बलवान् और (विराजामि) विजयी होकर (अभिराष्ट्रः) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रकी सहायता प्राप्त करके (एषां वीराणां) इन वीरोंका(जनस्य च) और सब लोगोंका (वि राजानि) विशेष प्रकारसे रक्षण करने वाला राजा होऊं ॥ ३ ॥

भाषार्थ-हे राष्ट्रके प्यारी पुरुषो ! जिस राजचिह्न रूपी मणिको धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था उसी विजयी मणिको हमें राष्ट्र हितके लिये बंधवाये ॥ १ ॥ जो अनुचर शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनको परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे बुरा व्यवहार करते हैं और जो हमपर सेना भेजकर चढ़ाई करते हैं उनको ठीक करनेके लिये अपनी तैयारी करके आये क्यों ॥२॥ सूर्य चन्द्र आदि देव तथा सब मूलभूत तुझे सहायता देकर बढ़ा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है। ॥ ३ ॥ शत्रुओं घेरनेवाला वैरीका पराभव करनेवाला प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राजचिह्न रूपी मणि है । इसीने प्रतिपक्षियोंका पराभव करके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊं ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन करूंगा ॥ ६ ॥

अनुसन्धान

यह सूक्त एक प्रकरणका है इसलिये इसी कांडके अपराजित मणिके सब सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है। तथा आगे आनेवाले एक प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है। इससे पूर्व अपराजित मणिके सूक्त २ १९ २ २१ में आये हैं इसके अतिरिक्त अमव वस सोमामिक मणिके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये।

अमीवर्त मणि।

जिस प्रकार राजाके चिन्ह राजदंड छत्र चामर आदि होते हैं उसी प्रकारका 'अमीवर्त मणि' भी एक राजचिन्ह है। इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है।

देवोंका राजा इन्द्र है उसका पुरोहित बृहस्पति ब्रह्मणस्पति है। यह पुरोहित इन्द्रके शरीरपर यह अमीवर्त मणि बांधता है। अर्थात् सब पुरोहित ही राजाके शरीरपर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देते। यहां संवाद देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संवाद रूप है। यह संवाद इस प्रकार है। देखिये—

इस सूक्तका संवाद।

राजा-हे पुरोहित जी ! जो अमीवर्त मणि इन्द्रके शरीरपर देव गुरु बृहस्पतिने बांध दिया था और जिससे इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, वह राजचिन्हरूपी मणि मेरे शरीरपर आप धारण कराइये जिससे मैं राष्ट्रका संरक्षण करनेमें समर्थ हो जाऊं ॥ १ ॥

पुरोहित- हे राजन्! जो अनुचर शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ बुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सैन्यसे चढ़ाई करते हैं उनको परास्त करनेकी तैयारी क्यों ॥ २ ॥ सूर्य चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहे हैं जिससे तू शत्रुओंका दमन करनेवाला है ॥ ३ ॥

राजा- पुरोहित जी ! यह राजचिन्ह रूपी मणि शत्रुओंको घेरने वैरीका पराभव करने और प्रतिपक्षियोंको दूर करनेमें सामर्थ्यदेनेवाला है। इसीसे विरोधियोंका पराभव और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समर्थ बनानेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयसे प्रकट होता है वैसाही मेरेसे वाक्योंका प्रकाश होता है इसलिये आप ऐसा करें कि जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूं ॥ ५ ॥ मैं बलवान् बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित करूंगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारसे पढ़िये तो उपरके प्रश्नोंके उत्तर सूक्तका आशय शीघ्रतासे आजायेगा। राजा राजचिन्ह धारण करता है उस समय पुरोहित राजासे प्रजाहितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रतिज्ञा उस समय करता है। पुरोहित ब्राह्मशक्तिका और राजा क्षात्र शक्तिका प्रतिनिधि है। राष्ट्रकी ब्राह्मशक्ति पुरोहित मुखसे राजकर्तव्यका उपदेश राजाको करती है राजशक्ति राजाकी रक्षणा का न रक्षणा राष्ट्रकी ब्राह्मशक्तिके आधीन रहना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मशक्तिके आधीन क्षात्रशक्ति रहनी चाहिये। यह बात यहां अपेक्षित होती है। इसी दृष्टिसे

दूतोंकी हुकूमत न रहे परंतु वह ज्ञानविज्ञानोंके आधीन काम करें। राष्ट्रकी (Civil and military) लाइन तथा क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा वर्ताव करे यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है। ब्राह्मशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर आरूढ होने योग्य है अन्य नहीं।

राजाके गुण।

इस सूक्तमें राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दोंद्वारा पाठक देख सकते हैं-

१ अस्मात् राष्ट्राय अभिवर्धय=हमारी शक्ति राष्ट्रकी उन्नति के लिये बढ़े अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बसती है वह राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ही कार्यरूपमें लाये यही भाव राजाके अंदर रहे। अपनी बढ़ी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोगके लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी रक्षाके लिये ही है यह जिस राजाका निश्चय होगा वही सच्चा राजा कहा जानेयोग्य है॥ (मंत्र १)

२ राष्ट्राय महां बध्नतां सपत्नेभ्यः पराभुवे=राष्ट्रकी उन्नति और वैरियोंका पराभव करनेके लिये राजचिह्नरूप मणि मेरे (राजाके) शरीरपर बांधा जावे। मणि आदि रत्न तथा अन्य राजचिह्न जो राजा धारण करता है वह अपनी शोभा बढ़ाने के लिये नहीं है प्रत्युत वे केवल दो ही उद्देश के लिये हैं (१) राष्ट्रकी उन्नति हो और (२) शत्रुओंके लिये वह दूर किये जांय। राजाके अंदर यह शक्ति संचार करनेके लिये ही उसपर राजचिह्न चढ़ाये जाते हैं। (मंत्र ८)

३ अभिराड्-(अभितः राड् यस्य) जिसके चारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो। अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्रके बन रहे राष्ट्रका बनकर रहे। राजाका हित राष्ट्रहित हो हो और राष्ट्रका हित राजहित हो अर्थात् दोनोंके हित सर्वथैव करक न रहे। राजाके लिये राष्ट्र अनुकूल रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुकूल हो। राष्ट्रहितका उच्च ध्येय अपने सामने रखनेवाले राजाका योग इस शब्दसे होता है। जिस राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है। यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है। (मंत्र ६)

४ अनुराट् अनुकूल बनकर रहने वाला। (मं ५)

५ असपत्न—अंदरके प्रतिपक्षी या विरोधी जिसके न हों। (म ५)

६ सपत्न-हा—प्रतिपक्षीका नाश करनेवाला अर्थात् प्रतिपक्षियोंका पराभव करने वाला। (मंत्र ५) सपत्न-क्षयणः"

यह शब्दभी इसी अर्थमें (मं ६ में) आया है।

७ वृषा- बलवान्। सब प्रकारके बलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्यथा वह पराभूत होगा। (मं ६)

८ विषासहिः-शत्रुके हमले होनेपर उनको सहन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला। (म ६)

९ वीरान्ां जनस्य च विराजनि-राष्ट्रके शूरवीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सबको संगठित करनेवाला। (मं ६)

१ प्रतिपक्षियोंको दबाना वीरोंको साथ करना उनके साथ चढ़ाई करनेवालेका प्रतिकार करना और जो युद्ध स्वयं हार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य(मंत्र २) में कहे हैं।

ये सब कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं वे सब मनन करने योग्य हैं। ये सब कर्तव्य यही भाव बता रहे हैं कि राजा अपने भोगके लिये राजगद्दीपर नहीं बैठता है प्रत्युत राष्ट्रका हित करनेके लिये ही आता है। यदि राजालोग इस सूक्त का अधिक मनन करके अपने लिये योग्य योग्य लेंगे तो बहुत ही उत्तम होगा।

राजचिह्न।

छत्र चामर, राजदण्ड मणि रत्न रत्नमाला मुकुट विशेष प्रकारके राजवस्त्र ठाठ, हाथी घोड़े आदि सब जो राजचिन्ह समझे जाते हैं इन चिन्होंके धारण करनेसे मनुष्यपर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव के कारण राजाके हाथ निर्दय शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है। यद्यपि इस प्रत्येक चिन्हमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती तथापि राजचिन्ह धारण करनेवाले साधारण सिपाहीमें भी अन्य सामान्य मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करता है; इसी प्रकार उक्त चिन्होंके धारण करनेसे राजा साधारण एक विशेष प्रभाव मनुष्यपर पड़ता है जिस कारण राजा शक्तियोंका केन्द्र बनता है। जिस समय अपने चिन्होंसे और संपूर्ण ठाठसे राजा आता है उस समय उसका बड़ाभारी प्रभाव सामान्यजनता पर पड़ता है इसी कारण राजामें शक्ति इकट्ठी होती है। इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें यह मणि ही शत्रुनाश करने वाला प्रभाव बढ़ानेवाला राष्ट्रहित साधन करनेवाला है इत्यादि कहा है उसका भाव सकल प्रकार ही समझना योग्य है। सिपाहीकी शक्ति उसके चिन्होंसे ही उसमें आती है और वह शक्ति वास्तविक नहीं प्रत्युत एक विशेष भावनासे ही उत्पन्न होती है। संपूर्ण राजचिन्हों की शक्ति इसी प्रकार भावनात्मक है। अस्तु अब मंत्रोंके भाष्य देखिये—

शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकारसे शत्रुके लक्षणोंका वर्णन किया है—

१ यः दुरस्यति = जो दुष्ट व्यवहार करता है । (मं २)

२ सपत्नः = मिल पक्षका मनुष्य । राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे उतने पक्षवाले आपसमें सपत्न होंगे । सपत्न शब्द (Party Politics) पक्ष भेदका राजकारण बता रहा है ।

३ अरातिः = अनुदार जो मनमें प्रेमभाव नहीं रखता ।

४ पृतन्यन् = सम्मुख चढाई करनेवाला ।

इन शब्दोंके विचारसे शत्रुका पक्ष बन सकता है । इसमें कई अन्दरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं ।

सबकी सहायता ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि " सूर्य चन्द्र और सब भूतमात्र जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है ॥ (मं ३) इसमें सूर्य चंद्र आदि शब्द बता रहे हैं (Nature s help) निसर्गकी सहायता राजकी शक्तिका एक महत्त्वपूर्ण भाग है । राष्ट्रकी रचना ही ऐसी हो कि जहां शत्रुका प्रवेश सुलभतासे न हो सके । यह एक शक्ति ही है ।

दूसरी शक्ति (विद्या भूतानि) सब भूत मात्रसे प्राप्त होती है । पंचमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुलभतासे कह हो सकती है । भूत शब्दका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ प्राणी मनुष्य " ऐसा होता है । जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों उसकी शक्ति विशेष होगी ही इसमें क्या संदेह है ? यही सब जनताकी शुभ इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि इसीपर राजाका चिरस्थायित्व अवलंबित है ॥

वैदिक राजप्रकरणके विषयमें इस सूक्तमें बड़ा अच्छा उपदेश है । यदि पाठक अधिक मनन करेंगे तो उनको राजप्रकरणके बहुत उत्तम निर्देश इस सूक्तमें मिल सकते हैं ।

केवल राष्ट्रके लिये ।

इस सूक्तके अंदर कई सामान्य निर्देश भी हैं जिनका यहां विचार करना आवश्यक है । इससे पाठकोंको इस बातका भी पता लग जायगा कि वेदके विशेष उपदेशोंसे भी सामान्य निर्देश कैसे प्राप्त होते हैं । देखिये प्रथम मंत्रमें कहा है—

अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय । (मंत्र १)

इसका अर्थ— हमें राष्ट्रके लिये बढ़ाओ " अर्थात् हमारी उन्नति इसी में करो कि हम राष्ट्रहित साधन करनेके योग्य बनें । हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु पौर्ण हो हमारे इंद्रिय अधिक कार्य क्षम बनें हमारा मन सत्यसंकल्पसे युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो हममें आत्मिक बल बने तथा हमारी शैक्षणिक सामाजिक तथा अन्यान्य शक्तियां बढें । ये सब शक्तियां इसलिये बढें कि इनके योगसे हमारा राष्ट्र अन्य-राष्ट्रोंसे युक्त हो । इन शक्तियोंकी वृद्धि इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्तिका ही भला बने केवल एक व्यक्तिके हाथमें अधिकार रहे या किसी एक कुलके पास परम अधिकार हो जाय, परंतु ये शक्तियां इसलिये बढानी चाहियें कि इनके उपयोगसे राष्ट्रकी प्रगति हो राष्ट्रकी उन्नति हो ।

सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथम मंत्रका अस्मान् शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । इसका अर्थ होता है " हम सबको " । अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र हितके लिये वृद्धिंगत करो । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एककी ही उन्नति या किसी एककी अधिक विकास ही यहां अपेक्षित नहीं है परंतु सबकी अधिक विकास यहां अपेक्षित है । राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजावर्गोंकी अधिक विकास करना है वह हरएक प्रजाजनका किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए करना चाहिये । अर्थात् जातिविशिष्ट या संघविशिष्ट पक्षपातके लिये यहां कोई स्थान रहना नहीं चाहिये ।

जो मैं करता हूं वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो यही भाव हरएकके मनमें रहना चाहिये ।

राष्ट्राय मह वर्चसे ।
सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ (मं ४)

" मुझे राष्ट्रके लिये वर्चस दे ताकि मैं राष्ट्रके शत्रुओंका पराभव कर सकूं । यह भाव मनमें धारण करना चाहिये । मैं राष्ट्रके साथ बांधा जाऊं मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे राष्ट्रका हित और मेरा हित एक बने मैं राष्ट्रके लिये ही जीवित रहूं, इत्यादि प्रकारके भाव इस मंत्रमें हैं । जो जिसके साथ बांधा जाता है वह उसीके साथ रहता है । यदि अन्योन्याभिमुखसे मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अच्छी प्रकार जकड़कर बांधा जाय तो वह वहांसे नहीं हटेगा । इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जांय और ऐसा परस्पर संबंध जुड़नेके कारण राष्ट्रमें अपूर्व ऐक्य शक्ति उत्पन्न हो यह भाव वेदको अभीष्ट है ।

हरएक मनुष्य अभिराट् (मं ६) बने अर्थात् सम्पूर्ण करनेका ध्येय अपने सम्मुख रखे । वह मनुष्य कहीं भी जाय, कुछ भी कार्य करे, उसके सम्मुख अपने राष्ट्रके सम्पूर्णताका विचार

आगत रहे। इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्रका विचार सदा जाग्रत रहता है उसीको वेद अभिराट् कहता है (अभितः राट्) अपने चारों ओर अपना राष्ट्र है ऐसा मानसेवाला हरएक अवस्थामें अपने संमुख अपने राष्ट्रको देखनेवाला जो होता है उसका यह नाम है।

'राष्ट्र' का अर्थ

राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनताका वाचक वेदमें नहीं है। केवल भूमिक एक विभागपर रहनेवाले मनुष्य समाजका बोध 'राष्ट्र' शब्दसे वेदमें नहीं होता है। इस प्रकारके राष्ट्र भूमिपर बहुत होंगे, परंतु वेद किसको राष्ट्र कहता है वैसे राष्ट्र कितने होंगे इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये वेदमें राट्' शब्द (राजते शब्द राट्) जो चमकता है वह राष्ट्र है' इस अर्थका द्योतक है। जो मनुष्योंका समुदाय भूमंडल पर अपने कर्तव्यसे चमकता है और उस कर्तव्य लोगोंकी आंख अपनी ओर खींच सकता है वही वैदिक दृष्टिसे राष्ट्र है। अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं है। इस प्रकारके राष्ट्र विस्तारसे छोटा हो या बडा हो वह राष्ट्र ही कहलावेगा। परंतु जो विस्तारसे अति प्रचंड हो परंतु जिसकी राष्ट्रीय जिसमें चमकाहट न हो तो वह राष्ट्र नहीं होगा। वैदिक धर्मियोंको अपने परिश्रमसे अपने राष्ट्रमें इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिये और बढाना चाहिये तभी उनके देशका नाम वैदिक रीतिसे राष्ट्र होगा। वेदमें राष्ट्रवर्धन विषयक अनेक सूक्त हैं और उनका परस्पर निकट संबंध भी है। पाठक जिस समय इन सूक्तोंका विचार करने लगें उस समय आगे पीछेके राष्ट्रीय सूक्तोंका संबंध अवश्य देखें और उन उपदेशका इकट्ठा मनन करें।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशोंसे अधिक मनन करके बोध उठावें। वेदमें राष्ट्र हितके उपदेश किस प्रकार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पाठक देख सकते हैं।

आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।

(३०)

(ऋषिः— अथर्वा आयुष्यकामः । देवता विश्वे देवाः)

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या आगत यूयमस्मिन् ।
मेम सनाभिरुत बान्धवनाभिर्मेम प्रापत् पौरुषपो वधो यः ॥ १ ॥
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येत स्वस्त्ययेन जरसे वहाथ ॥ २ ॥
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ ३ ॥
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुताश्च पुरोडाः ।
येषां पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान्वो अस्मै सं नयति कृणोमि ॥ ४ ॥

अर्थ- हे (विश्वे देवाः) सब देवो ! हे (वसवः) वसुदेवो ! (इमं रक्षत) इसकी रक्षा करो। (उत) और हे (आदित्याः) आदित्य देवो ! (यूयं अस्मिन् आगत) तुम इसमें आकर रहो। (इमं) इस पुरुषको (सनाभिः) अपने बंधुगण (उत बा-) धव-बांधवः) अथवा किसी दूसरेका (वधः मा प्रापत्) घातकारक वज्र न प्राप्त करे, न प्रहार करे तथा (यः पौरुषेयः वधः

जो पुरुष अस्त्रसे होनेवाला अतिपात है वह भी (इमं मा आपत्) इसको प्राप्त न करे ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो (ये वः पितरः) जो आपके पिता हैं तथा (ये वः पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब (स-चेतसः) सावधान होकर (मे इदं वचः शृणुत) मेरा यह कथन श्रवण करें (सर्वेभ्यो वः पथः परिददामि) सब आपकी निगरानीमें इसको मैं देता हूं (पूर्णं जरसे स्वस्ति वहात) इसको पूर्ण अस्सीवर्ष सुखपूर्वक पहुंचा दो ॥ ॥ (ये देवाः दिवि स्थ) जो देव द्युलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अन्तरिक्षमें हैं और जो (ओषधीषु पशुषु अप्सु अन्तः) ओषधि पशु और जलोंके अंदर हैं (ते अस्मै वरं आयुः कृणुत) वे इसके लिये इच्छानुसारी दीर्घ आयु करें। यह पुरुष (शत शारदान् पुरुषून् परिपश्यतु) सैकड़ों अन्न अपक्वपुरुषों को देखे ॥ २ ॥ (येषां) जिन तुम्हारे अंदर (प्रचराजाः) विशेष भ्रमण करनेवाले (उत वा अनुचराजाः) अनुकूल भ्रमण करनेवाले तथा (हुत-भागा अहुतादः च देवाः) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं (येषां वः पञ्च प्रदिशः विनम्काः) जिन आपकी ही पांच दिशायें विनम्र की गई हैं, (तान् वः) उन तुमसे (अस्मै) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये (सत्र-सदः हवामहे) सहाय्य करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब देवो ! मनुष्यकी रक्षा करो ! हे आदित्य देवो ! तुम मनुष्यमें आश्रय दो । मनुष्यका कोई शत्रु अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे वध न हो ॥ १ ॥ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें । मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयुतक ले जाना तुम्हारा आशीर्वाद है, अतः मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव पूर्वोक्त अंतरिक्षगोक भूलोक, औषध पशु जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें। तुम्हारी सहायतासे मनुष्य सैकड़ों अपक्वपुरुष देखें ॥ ३ ॥ विशेष भ्रमण करनेवाले अनुकूल भ्रमण करनेवाले हवनका भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशायें विनम्र की हैं वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक समाके परस्पर बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ करनेमें सहायता करें ॥ ४ ॥

आयुका समर्थन ।

मनुष्यका आयुष्य न केवल पूर्ण होना चाहिये प्रत्युत अति-दीर्घ होना चाहिये । पूर्ण आयुष्यकी मर्यादा तो १२ वर्षोंकी है इससे कम१ वर्षकी और इससे कम १ सौ वर्षकी है। सौ वर्षकी मर्यादा तो हरएकको प्राप्त होनी ही चाहिये परन्तु उसके प्रयत्न इससे अधिक आयुष्य प्राप्त करनेकी ओर होने चाहिये इसका सूचक मंत्र यह है—

भूयश्च शरदः शतात् । यजुर्वेद १९ । २४

सौ वर्षोंसे भी अधिक आयु प्राप्त हो । १२ वर्षोंसे अधिक आयु जितनी भी होगी वह रोग या अतिहीनसे संज्ञाको प्राप्त होगी । अपार अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका पुरुषार्थ करना ही एक ऐसा अनुकूल है इस दीर्घ आयुष्यकी प्राप्तिको वैदिक रीति इस सूक्तमें दर्शाई है इसलिये पाठक इस सूक्तका विचार कर तथा जो जो सूत्र इस विषयके साथ दीर्घ रखनेवाले हैं उनका । मनन इसके विचारके साथ करें ।

सामाजिक निर्भयता ।

अब आयुष्यकी प्राप्तिके लिये समाजमें-सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिमें तथा धार्मिक और अध्यात्म दृष्टियोंसे निर्भयता रहनी अत्यन्त आवश्यक है । निर्भयता-सुरक्षितता न रहेगी तो मनुष्य दीर्घायु हो नहीं सकते । समाजमें कोई एक दूसरेपर हमला करनेवाला न हो इस प्रकारका समाज बनना चाहिये । राजकीय कारणसे दो वर्षके नामपर हो अथवा किसी दूसरे निमित्तसे हो कानून अपने हाथमें लेकर एक दूसरेपर हमला करना किसीको भी उचित नहीं है यह दर्शानेके लिये प्रथम मंत्रका उत्तरार्ध है इसका आशय यह है—

" इस मनुष्यका वध कोई सजातीय अन्य व्यक्ति या कोई अन्य मनुष्य किसी कारणसे न करे ॥ (मंत्र १)

यह वेदका उपदेश मनुष्य मात्रके लिये है हरएक मनुष्य यह ध्यानमें रखे और अपने आचारमें लानेका प्रयत्न करे ।

मैं किसीका वध न करूंगा किसी दूसरेकी हिंसा मैं नहीं करूंगा । मैं अहिंसक शस्त्रोंसे आघात न करूंगा । यह प्रतिज्ञा हरएक मनुष्य कर और तदनुकूल आचरण करे ।

इस मंत्रमें जो शांति वर्णित की है वह मनुष्य मात्रमें स्थिर रहनी चाहिये यह बुनियाद है और इसी अहिंसा शांतिपर दिर्घायुका मेरु खड़ा होता है । जबतक मनुष्यमें हिंसक वृत्ति रहेगी तबतक वह दीर्घायु बन नहीं सकता । घातपात करनेकी वृत्ति कैसी करुर है इसका सूत्र करनेकी बजाय हरएकको समान अपनी समजनीत बढ़ानेकी अभिलाषा अवश्य रहेगी

तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी। इसलिये सब करनेकी वृत्ति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करें।

देवोंके आधीन आयुष्य।

मनुष्यका समाज जितना अधिकाधिक विद्वान होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होसकती है। यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके आयेका मार्ग सुकर करना चाहिये। आयेका मार्ग यह है कि— "हमारा आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं" यह सत्य मनमें धारण करना। इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वार्धने दी है उसका आशय यह है—

"हे सब वसुदेवो! मनुष्यकी रक्षा करो। हे सब अदितिपुत्रो! मनुष्यमें आयते रहो। (मंत्र १)

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं। पहिले भागमें वसु देवोंको रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें अदितिपुत्र देवोंको मनुष्यके अंदर मनुष्यके देहमें आयत रहनेकी सूचना दी है। ये दोनों बातें दीर्घ आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं। अब इनका स्वरूप देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं परमेश्वर परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आज्ञानुसार में पृथिवि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं। मैं परमात्माका अमृत पुत्र हूं इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था करता है और करताही रहेगा। परमात्माके आधीन सब देव होनेके कारण वे भी उस परमात्माके पुत्रकी रक्षा अवश्य करेंगे ही।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं निर्भय हूं यह विचार मनमें दृढ करके मनके अंदर जो भी चिन्ताके विचार आयेंगे उनको हटाना चाहिये और विश्वासके मनकी ऐसी दृढ अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें चिन्ताका विचार ही न उठे और चिन्तारहित निर्भय होनेके साथ आनंद होनेके साथ मनमें रहें। दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मा पर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तिपर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव है।

कई पाठक शंका करेंगे कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं। इस विषयमें इससे पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आया है। तथापि संक्षेपसे यहांभी इसका विचार करते हैं। पाठक जानते ही हैं कि प्रथम मंत्रमें वसु देवोंका उल्लेख है वे सब जगत्के निवासक देव होनेके कारण ही इनको "वसु" कहते हैं। सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे।

सब वसुओंमें भी परम वसु परमात्मा है क्योंकि वह जैसा सब जगत् को बसाता है इसी प्रकार जगत्के संरक्षक सब देवोंको भी बसाता है। उसके बाद पृथ्वी आप अग्नि वायु आकाश सूर्य चन्द्र नक्षत्र ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है। भूमि जल अग्नि वायु, आकाश सूर्य, आदि के साथ हमारे शरीरके आयुष्यका संबंध है इनमें से एकका भी संबंध इससे टूट गया तो हमारा नाश होगा। इतना महत्त्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षणमें सदा मनुष्य रहता है ऐसा ऊपरके मंत्रमें कहा है। इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निष्पक्षपातसे हो रही है। ये देव कभी किसीका पक्षपात नहीं करते हैं। सूर्य सबपर एकसा प्रकाशता है वायु सबके लिये एकसा बह रहा है जल सबके लिये आकाशसे गिरता है पृथ्वी सबको समानतया आधार दे रही है इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निष्पक्षपातका भी बर्ताव कर रहे हैं।

हमारे जीवनके साथ इनका संबंध इतना घनिष्ठ है कि इनके बिना हमारा जीवन ही असंभव है। वायुके बिना प्राण धारणा कैसी होगी? सूर्यके बिना जीवन ही असंभव होना इत्यादि प्रश्न पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं।

हम क्या करते हैं?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षामें रहनेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्नमें हैं। इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। देखिये परमात्माकी और देवोंकी रक्षासे हम कैसे बाहर जाते हैं—परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षासे बाहर हो जाते हैं। दयामय परमात्मा तब भी उनकी रक्षा करता ही रहता है यह उसकी दया है परंतु वे अविश्वासी लोग उसकी अपार दयासे लाभ नहीं उठाते। अविश्वासके कारण कितनी हानि है किसी अन्य कारणसे नहीं हो सकती। दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये इसी कारण मनमें परमात्मविषयक दृढ विश्वास चाहिये।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाशसे सबको जीवनाधार देकर सबकी रक्षा कर ही रहा है परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं तथा पक्षियोंके तुल्य मकानोंमें रहते हैं जिनमें कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी संरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इसके लिये भगवान् सहस्ररश्मी सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ? इसी प्रकार वायु और अग्नि आदि देवोंके विषयमें समझना उचित है। ये देव तो सबकी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उत्तम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और यहांतक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपने आपको अधिक रखें।

पाठक यहां समझ ही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्रकी किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षासे किस प्रकार दूर होते हैं और सूर्य अपना गुरुकाम किस प्रकार कर रहे हैं।

आदित्य देवोंकी आवश्यकता।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्णनके एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है- हे आदित्य देवा! इस मनुष्यमें आयत रहो। मनुष्यके अंदर आदित्यसे ही उस जीवन शक्ति आती है। यह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार उस जगत्में कार्य कर रही है। इसी शक्तिसे उस जगत् चल रहा है। परंतु यहां मनुष्यका ही हमें विचार करना है। मनुष्यमें यह आदित्य शक्ति मस्तिष्कमें रहती है नेत्रमें रहती है और पेटमें रहती है। मस्तिष्कमें मज्जादेह चलाती है पेटमें पाचक केंद्रको चेतना देती है और नेत्रमें देखनेका व्यापार कराती है। इसमेंसे कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जाता। मस्तिष्कका मज्जादेह आदित्य शक्तिसे हीन होनेसे तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है पेटका पाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होनेसे तो हाजमा बिगड जाता है नेत्रकी आदित्यशक्ति हटनेसे तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं। इतना महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है। इसलिये वेदमें कहा है कि—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋग्वेद. १। ११५। १

यह आदित्य सूर्य ही स्थावर जंगम जगत्का आत्मा है।

पाठक इस मंत्रका भावार्थ ध्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति सदा जागृत रखनेका अनुष्ठान करें। सूर्यसेवन व्यायाम और सूर्यसेवी प्राणायाम द्वारा पेटके स्थानमें रहनेवाली आदित्य शक्ति जागृत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मस्तिष्ककी आदित्य शक्ति जागृत होती है तथा त्राटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्रकी आदित्य शक्ति जागृत हो जाती है। इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जागृत और बलयुक्त करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। ' ध्यानमें निर्भयता परमेश्वरपर दृढनिष्ठा वायु बल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संपर्क करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंको जागृती करना " यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका थोडासा स्पष्टीकरण आगेके मंत्रोंमें है, वह अब देखिये-

देवोंके पिता और पुत्र।

इस आयुष्यवर्धन सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है कि " हे देवो! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें! मैं तुम्हारे ही आशीर्वाद इस मनुष्यसे करता हूं, इस इसको दीर्घ आयुष्य तक तुमसे पहुंचावें। (मंत्र १)

इस द्वितीय मंत्रमें " देव देवोंके तथ पिता और देवोंके तथ पुत्र ये तथ मनुष्यको तुमसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं " ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्ववेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

इत्था सतश्चमत्थता देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तानिद्विजानात्येषां स वा अत महद्देवेषु गच्छति ॥ ६ ॥
आगायत्री चक्षुरोजसमक्षितिरक्षितिर्वा।
स्वाधीदानीं वाङ्मनसस्ते वा आकूतिमाभरन् ॥ ४ ॥
कृत इन्द्र कुतो सोम कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो वायुरजायत ॥ ८ ॥
इन्द्राद्विष्णुः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्वायुर्वायोरजायत ॥ ९ ॥
ये त आयन्पञ्च जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा ऽमुष्मिंस्ते लोक आसते ॥ १ ॥
[अथर्व. १११८।१]

(पुरा) उनसे प्रथम (देवेभ्यः इत्था देवाः) देवोंने इस देव (सतः चमत्थता) साथ साथ उत्पन्न हुए। जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा (स वा अत महत् देवेषु) वह बडे महत्त्व विषयमें

बोलेगा। यही ब्रह्मका ज्ञान कहेगा ॥ ३ ॥ प्राण अक्षम चक्षु, श्रोत्र, (अ-क्षितिः) अविनाशी बुद्धि और (क्षितिः) नाशवान् चित्त ध्यान करता था और मन ये इस देह तेरे (आयुर्वि आवहन्) ऊर्ध्वस्थको उठाते हैं ॥ ४ ॥ कहाँसे इन्द्र सोम और अग्नि हुआ ? कहाँसे स्थूल हुआ और आत्मामें कहाँसे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम अग्निसे अग्नि स्थूलसे स्थूल और आत्मासे आत्मा हुआ है ॥ ९ ॥ (ये पुत्रा देवेभ्यः दत्ता देवाः) जो पहिले देवोंसे दत्त देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा) पुत्रोंको स्थान देकर ये स्वयं (अस्मिन् लोके आसते) किस लोकमें बैठे हैं ? ॥ १ ॥

इन मन्त्रोंमें देव देवोंके पिता और पुत्र दोनोंसे हैं इसका वर्णन है। प्राण अपानादि दश देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और ये पुत्र रूप देव इस शरीरमें रहते हैं इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं इसका स्पष्टीकरण यह है—प्रारम्भ इस मनुष्य शरीरमें है यह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है और इस वायु आदि पिता-वायुका भी वायु परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार चक्षुकी पुत्रदेव शरीरमें रहता है उसका पिता सूर्यदेव द्युलोकमें है और सूर्यका पिता-सूर्यका भी सूर्य-परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके विषयमें जानना चाहिये। यह विषय इससे पूर्व आचुका है इसलिये यहां अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है।

इसका सारांश यह है कि पुत्र रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अपने शरीरमें रहते हैं। इनके पितादेव सूक्ष्म-सूक्ष्म रूप इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं।

हमारी आंख सूर्यके बिना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्माकी और महाशक्तिके बिना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है। इसी प्रकार संपूर्ण इन्द्रों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना चाहिये। इस उनके आधीन मनुष्यका दीर्घायु बनना है।

इसलिये जो दीर्घ आयुष्यके इच्छुक हैं वे भक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे दृढ करें। वह परम पिता परमात्मा सूर्यका भी सूर्य वायुका भी वायु प्राण का भी प्राण अर्थात् देवोंका भी देव है और वही इस सबका पिता है। इसकी भक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ हो जाय तो मनकी चंचलता स्थिर हो सकती है और उससे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। इस प्रकार देवोंके पितासे मनुष्यका घनिष्ठ संबंध होता है और यह संबंध अत्यंत लाभकारी है।

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें वर्णन किया ही है इसलिये उसको दुहरानेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

प्राण चक्षु कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं। योगादि साधनोंसे इनका बल बढ़ सकता है। इसलिये इनके व्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर नीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्यके साथ देवों, देवोंके पितरों और देवोंके पुत्रोंका संबंध है। यह जानकर योग्य-अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें।

परमपिता परमात्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य चंद्र वायु, इन्द्र आदि अनेक देवताओंकी विविध शक्तियोंसे युक्त है इसलिये संपूर्ण देवताओंका सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है यह उचितही है। इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का सार इस मंत्रमें उत्तम और स्पष्ट शब्दोंद्वारा बताया है। पाठक इसका विशेष विचार करें।

देवोंके स्थान।

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान कहे हैं। यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है कि पूर्वोक्त अंतरिक्ष पृथिवी औषधि पशु अन्न इन स्थानोंमें देव रहते हैं वे मनुष्यके लिये दीर्घ आयु करते हैं और जिनकी सहायतासे देवगण अमर्त्य हो जाते हैं।" (मंत्र १) यह मंत्र कैसा विचार करने योग्य है।

पूर्वोक्त सूर्यादि देव अंतरिक्षमें वायु, रुद्र इन्द्र चन्द्र आदि देव पृथ्वीमें अग्नि आदि देव औषधियोंमें रसात्मक सोमदेव पशुओंमें दुग्धादिरूपसे अमृत देव अन्नमें वरुण आदि देव निवास करते हैं। ये सब देव मनुष्यकी आयु बढ़ानेके कार्यमें सहायक होते हैं। सूर्य देव चक्षुमें रहता है वायु प्राण देता है; इन्द्र और चन्द्र क्रमशः सुषुप्ति और जागनिके व्यापार और अन्नमय मनके संचालक देव हैं इस प्रकार प्राणोंका चालक है अग्नि वाणीसे संबंध रखता है औषधिवनस्पतिसे अन्न तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती हैं पशुओंसे दुग्ध रूपी अमृत मिलता है अन्न देवसे दीर्घ बनता है इस प्रकार अन्यान्य देव मनुष्यके सहायक हैं। परंतु प्रयत्न द्वारा

मनुष्यसे उनसे काम उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

इन सब देवोंसे अपना संरक्षण सुरक्षित करके, उनसे यथा योग्य काम लेनेका यत्न करनेसे मनुष्य बड़ा समर्थ है। इन देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनी हैं जैसेकि सौरचिकित्सा वर्षाचिकित्सा प्रकाशकिरण चिकित्सा। अंतरिक्ष स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा विद्युचिकित्सा, मानसचिकित्सा अथवा मंत्रचिकित्सा। पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा खनिजपदार्थोंसे रसचिकित्सा वनस्पतिचिकित्सा औषधिभोंसे तथा वनस्पतियोंसे भैषज्यचिकित्सा पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा अर्थात् पशुओंसे विविध औषधियां सिद्धकर तथा विविध रसोंकी गौओंसे दूधका उपलब्ध करनेसे तथा पशुके मूत्रादि के उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं; वनसे वन चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीतिसे इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे काम उठाना। प्राचीन काल के ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे काम उठानेके जो जो प्रयत्न किये उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं। आवश्यक थी इस दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं। इन देवताओंमें विविध और अगत शक्तियां हैं, उनकी समाप्ति नहीं होगी इसलिये मनुष्यों को विविध रीतिसे यत्न करके इन देवताओंसे विशेष काम उठानेके लिये यत्न करना चाहिये। इसी प्राचीन समयमें ऋषिलोग यज्ञ उपयोग करते थे और काम उठाते थे और दीर्घजीवी भी बने थे। यह सिद्धसिद्ध दृष्ट बात है तथापि आवश्यक प्रयत्न करनेपर उसी मार्गसे बहुत लोग होना संभव है। जो पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति करें तथा वनसे नागरी बनें। अस्तु। इस प्रकार इन देवताओं की शक्ति अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है।

आधारसे साधारण प्रयत्नसे भी बड़ा काम हो सकता है। जैसा सूर्य किरणों में अपना संबंध शरीर उपयोगसे बायुमें भरे शरीर घूमनेसे आकाशमें तैरनेसे उत्तम औषधियोंका रस पीनेसे और गोदुग्ध आदिके सेवनसे साधारण परिस्थितिमें रहने वाले मनुष्य भी बहुत काम कर सकते हैं। फिर जो विविध यंत्र निर्माण द्वारा इन दैवी शक्तियोंसे अधिक काम उठानेका पुरुषार्थ करेंगे उनके विषयमें क्या कहना है। इस प्रकार ये देवताएं सोनेके समान हैं इससे जितना दूर दौड़ना चाहो आप उतना दूर दौड़ सकते हैं। इनमें अनंत अमृत रख गया है। जो जितना पुरुषार्थ करेगा उसको उतना अमृत मिलेगा और वह उतना अमर होगा।

देवताओंके चार वर्ग।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंसे आयुष्य प्राप्त करके अमरत्व प्राप्त करके अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठानका वर्णन करनेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गोंका निर्णय किया है और इन देवताओंके अपने सहकारी बनाने का उपदेश किया है। इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

देवोंमें प्रयाज अनुयाज हुतभाग और अहुताद ये चार वर्गके देव हैं। इन देवोंसे ये पांचों दिशाएं निर्माण हुई हैं। ये सब देव मनुष्यके सहकारी बनें।" (मंत्र ४)

इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके नामसे उनमें ही स्पष्ट होते हैं। वे लक्षण देखिये—

१ प्रयाजाः— विशेष यजन करने वाले
२ अनुयाजाः— अनुकूल यजन करने वाले
३ हुतभागाः— हवन का भाग लेने वाले
४ अहुताद्यः— हवनका भाग न खानेवाले।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें कैसे प्रयत्न देखें—(१) विभुपर इच्छा शक्तिका परिणाम नहीं होता परंतु जो अवयव अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवोंका काम प्रयत्न है जैसे हस्त पाद आदि अवयव। (२) जो अवयव अपनी इच्छा शक्तिसे अनुकूल कार्यमें लगाये जा सकते हैं उनको अनुयाज कहते हैं जैसे हाथ पांव आंख आदि। (३) हुतभाग के इन्द्रियां हैं जो लोग की इच्छानुकूल हैं और कार्य करनेसे बनती हैं और विषयसे तथा आहारसे सिद्ध होती हैं। (४) शरीरमें अहुताद देनेवाले व्यवहार प्राण ही हैं क्योंकि वे प्राण शरीरमें रहते कार्य करते हैं और स्वयं कुछभी भोग नहीं लेते, उनसे केवल अन्नेतक बराबर कार्य करते हैं।

इस प्रकार वर्णन तथा अन्य इन्द्रियोंका वर्णन इसी प्रकार उपनिषदोंमें किया है। प्राणाग्निहोत्र उपनिषदमें शरीर यज्ञके प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शरीरयज्ञस्य के प्रयाजाः केऽनुयाजाः ॥
महाभूतानि प्रयाजाः ॥
भूतान्यनुयाजाः ॥ प्राणाग्निहोत्र ॥ १—४

शरीरमें चलते हुए यज्ञके प्रयाज और अनुयाज कौन हैं? महाभूत प्रयाज और भूत अनुयाज हैं। इसीप्रकार हुतभाग और अहुताद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा ब्राह्मणोंमें किया है जिसका तात्पर्य ऊपर दिया ही है।

इसी आभ्यंतर यज्ञका सकल वर्णन यज्ञोपवीतमें किया गया है

इसका वर्णन यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। अनुयायी से प्रधान अधिक महत्त्व के हैं तथा हृदयभागों से अनुवाद विशेष महत्त्व रखते हैं। जो शरीरशास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते ही हैं कि इच्छा-शक्तिकी नियंत्रणासे चलनेवाले हस्तपादादि अवयवोंकी अपेक्षा अनियन्त्रणसे कार्य करनेवाले हृदयादि अवयव बहुत अधिक महत्त्वके हैं। तथा अनुवाद अर्थात् कुछ भी भोग न लेते हुए अन्यसे सम्बन्धित अनियन्त्रित कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक श्रेष्ठ हैं और नेत्र कर्ण आदि अवयव जो उससे बद्धते हैं, विश्राम करते हैं और भोग भी भोगते हैं वे उनसे गौण हैं।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इंद्रियशक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अन्यों को भी बलवान करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवों की शक्ति कम न होने पाये। उदाहरण के लिये पहलवानोंके व्यायाम ही लीजिये। पहलवान लोग अपने शरीरके पुट्ठोंको बलवान बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवोंका व्यायाम नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका स्थूल शरीर बडा बलवान् होता परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं। इसका परिणाम अल्पायुमें अवश्य मृत्यु हो जाती है।

यदि ये लोग साथ हृदयको भी बलवान बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा इसलिये यहां कहना पडा है कि अपने अंदर जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष व्यायाम करना उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न पडे इसका विशेष विचार करना चाहिये। इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है। घासस्थान मज्जा-संस्थान और हृदयसंस्थान आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानोंका बल बढना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहनेयोग्य शक्तिशाली बनने चाहियें।

मंत्रका प्रधान शब्द मुख्यका भाव और अनुवाद शब्द गौणका भाव बताता है। ये सब देव हमारी चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थानको विभक्त किया है। ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले यज्ञसंस्थारूप यज्ञके यागी अर्थात् अथवा ये इस सौ वर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं। परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेमें समर्थ हों अथवा यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करें और निर्विघ्नतासे यह यज्ञसंस्थारूप यज्ञ चलनेमें हमारे सहायी बनें।

इस प्रकार इस सूक्तका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं। यदि पाठक इस ढंगसे अनुष्ठान करेंगे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है। यह "आयुष्य-सूक्त" का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार करें।

आशा-पालक-सूक्त।

(३१)

(ऋषिः— ब्रह्मा। देवता— आशापालाः; वास्तोष्पतिः)

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः। इदं मूनस्याध्यूहेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥
य आशानामाशापालाश्चतस्रः स्थन देवाः। ते नो निर्भक्तस्या पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो भद्रम् ॥ २ ॥
अशीमस्त्वा हविषा यशाम्यक्षीणस्त्वा पुनेन जुहामि।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः समृतमेह वंधत् ॥ ३ ॥
स्वस्ति मात्र उत पित्र नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ- (भूतस्य अध्यक्षेभ्यः) अधर्वके अध्यक्ष (अमृतेभ्यः) अमर (आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः) दिशाओंके चार दिशापालोंके लिये (वयं) हम सब (हविषा हृद विधेम) हविद्रव्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो! (ये आशानां चत्वार आशापालाः स्थन) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो (ते यः) वे तुम हम सबको (निर्ऋताः पाशेभ्यः) अधर्मरूप पाशोंसे तथा (अंहसः अहसः) हरएक पापसे (मुञ्चत) छुडाओ ॥ २ ॥ (अ आमः) मैं अज्ञ मुझ मैं (हविषा त्वा यजामि) हविद्रव्यसे तेरा यजन करता हूं । (अ-क्षोणः त्वा क्षयेण क्षिणोमि) क्षयरहित न होता हुआ तुझको क्षीण अर्पण करता हूं । यह (आशानां आशापालाः तुरीयः देवः) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है (सः नः तुमूर्तं हर आवहत्) वह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुचावे ॥ ३ ॥ (नः माता उत पिता स्वस्ति अस्तु) हम सबकी माताके लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा (गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति) गौओंके लिये चलने फिरनेवालोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । (नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम (सूर्य पश्येम उत्तरं) सूर्यको बहुत अवस्तक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुषी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल है वे इस बने हुए अथर्वके अध्यक्ष हैं । उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं वे हमें हरएक पापसे बचावे और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें । २ ॥ मैं न समझता हुआ उनका सत्कार करता हूं, उनका क्षय न करके मैं उनको भी देता हूं, जो इन चार दिक्पालोंके चतुर्थ देव है वह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्थातक पहुंचावे ॥ ३ ॥ हमारे माता पिता हमारे अन्य इष्टमित्र हमारे गाय घोडे आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हैं वे सब इस प्रकार सुखी हों । हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढे तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

दिक्पाल ।

पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर ये चार दिशाएं है । उनकी रक्षा करनेवाले चार दिक्पाल हैं वे अपनी अपनी दिशाका संरक्षण कर रहे हैं । ये दिशाके रक्षक इतने एक हैं कि इनको न समझते हुए कोई मनुष्य किसी भी प्रकार बुरा कार्य कर नहीं सकता । हरएक मनुष्यको उचित है कि वह उक्त बात मनमें धारण करे और इन दैवी लोकपालोंके सम्बंधे कोई आचरण न करे ।

राजा अपने राज्यकी व्यवस्था और राज्यका सुशासन कर सके लिये अपने राज्यमें चार विभाग करके उनपर एक एक मुख्य शासक अधिकारी नियत करे, वह अधिकारी वहां रहके अपने विभागका योग्य शासन करे । दुष्टोंको दंड दे और सुजनोंका प्रतिपालन करे । और कहीं भी अनाचार होने न दें । यह राष्ट्रघटनाका पाठ इस सूक्तसे हमें मिलता है ।

विपदे अवर राष्ट्र और राष्ट्रके अंदर व्यक्तिका देह है । और इन तीनों स्थानोंमें नियम एक जैसा ही है । इसलिये राष्ट्रशासनका विचार होनेके पश्चात् जिन व्यक्तियोंका राष्ट्र बनता है उन व्यक्तियोंके अन्दर चार दिशाओंके चार दिक्पाल किस रूपमें हैं और उनका शासन इस अध्यात्मभूमिकामें कैसा चल रहा है और उसमें हमें कैसा व्यवहार विषयमें कौनसा बोध लेना है इसका विचार अब करना चाहिये ।

देहमें चार दिक्पाल ।

देहमें मुखको "पूर्व द्वार" कहते हैं और गुदाको "पश्चिम द्वार" कहते हैं । ये द्वार एक दूसरेके साथ सर्वथा विरुद्ध भी हैं । पूर्व द्वारसे अर्थात् मुखसे अन्न पान शरीरके अंदर दुरुस्त है यहां का कार्य करता है और शरीरके रक्तादिके रूपमें परिणत होकर पश्चिम द्वारसे अर्थात् गुदासे बाहर हो जाता है । अर्थात् पोषक अन्नका प्रवेश पूर्व द्वारसे इस शरीरमें होता है और अन्नको दूर करनेका कार्य पश्चिम द्वारसे होता है । दोनों कार्य शरीरके स्वास्थ्य के लिये अत्यंत आवश्यक ही हैं । परंतु यह तो स्थूल शरीरके स्वास्थ्य के साथ का संबंध है इससे और दो द्वार हैं जिनका संबंध मनुष्यकी उन्नति या अवनतिके साथ अधिक है, वे दो द्वार मनुष्यके शरीरमें ही हैं जिनको 'उत्तर द्वार' तथा 'दक्षिण द्वार' कहते हैं ।

"उत्तर द्वार" मस्तकमें है जिसका नाम 'ब्रह्मरंध्र द्वार' उपनिषदोंमें कहा है इस द्वारसे शरीरमें श्रीपरमात्माका प्रवेश होता है और इसी द्वारसे अपने प्रयत्नसे जिस समय यह बाहर जाता है उस समयसे यह जन्ममरण के झंझटसे छूटता है और पुनः शरीरके बंधनमें पडता नहीं । बालकके मस्तकमें छोटेपनमें इस स्थानपर हड्डी नहीं होती । इसका नाम उत्तर द्वार है क्योंकि

इस द्वार से आनेसे उत्तरोत्तर अवस्था प्राप्त होती है।

यह द्वार मध्य केन्द्रके साथ सम्बन्धित है। इसी मध्य केन्द्रके साथ सम्बन्ध रखनेवाला विष्णुका द्वार लिखा है जिससे वीर्यका पात होता है। इसके सोम्य नियम पालनसे पुनर्जन्म रोगादि उत्पन्न होती हैं परंतु इसके अनियम से चलनेसे मनुष्यकी अधोगति होती है। ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच स्थानोंमें ले जानेवाले हैं। ब्रह्मचर्य पालनद्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनिषदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गको सूचित करता है इसीका नाम उत्तरायण (उत्तर+अयन) अर्थात् उत्तर मार्गसे चलना है। इसके विरुद्ध "दक्षिणायन" अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संबन्धसे उत्तम गृहस्थधर्मपालनपूर्वक उन्नति होना संभव है परंतु अधोगमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता। ये दो मास संवत्सरानुयोग साथ संबन्ध रखनेवाले हैं।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ये शरीरमें अवलम्बिका के साथ संबन्ध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार ये दो अर्थ संवत्सरानुयोग साथ सम्बन्ध रखते हैं। ये चार द्वारोंके चार उपद्वार देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमलेके अंदर रक्षने नहीं चाहिये।

आशा और दिशा।

इस सूक्तमें दिशावाचक 'आशा' शब्द है और उसका पर्यायवाचक नाम "अथर्ववेद" मन्त्रोंमें आया है। आशा शब्दके दो अर्थ हैं। एक दिशा" और दूसरा आशा महत्त्वाकांक्षा उम्मीद"। मनुष्यकी जैसी आशा इच्छा महत्त्वाकांक्षा और उम्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी अर्थ करनेकी दिशा होती है। मनुष्य जिस समय आशाहीन हो जाता है निराश होता है हताश होता है उस समय वह इस जगतसे हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है। यह विचार यदि पाठकोंके मनमें जम जायगा तो उनको पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्यके साथ कितना घनिष्ठ संबन्ध रखता है।

जिस समय आशा" शब्दका अर्थ आशा आकांक्षा आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयका मार्ग बताता है। तथा जिस समय इसी "आशा" शब्दका अर्थ "दिशा" किया जाता है, उस समय यही सूक्त योग्य जगत् तथा शरीरके प्रबंधका भाव बताता है। सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और यह हरएक को बेहद्द अद्भुत वर्णन शैलीका स्वरूप बता रही है।

सूक्तका मनुष्यवाचक भावार्थ।

मनुष्यकी चार आशाएँ हैं उनके चार अवसर पाठक हैं। इन मूलाध्यक्षोंकी हम इनसे पूजा करते हैं (१) मनुष्यकी चार आशाओंके चार पाठक हैं वे इसे पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें (२) मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ इनसे तथा इनसे इनको पूजा करता हूँ इन चार आशाओंके पाठकोंमें से मुख्य पाठक जो हैं वह हमें उत्तम आनन्दके प्राप्त करनेमें सहायक होवे (३) इनकी सहायतासे हमारे माता पिता इष्ट मित्र गाय घोड़े आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे और हम दानी बनकर रहें परंतु बनें।

केवल एक 'आशा' शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आनेसे व्यक्तिविषयक उन्नतिके मार्गके सम्बन्धमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहां देखें। यह उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य अभिनव अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है। इस सूक्तपर बहुत लिखा जा सकता है परंतु यहां संक्षेपसे ही इतना विवरण करते।

मनुष्यमें
चार द्वारोंकी चार आशाएँ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व किया गया है। इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएं मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है, उसी प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्मदेवकी आशाएं इस घरके द्वारोंके अवलंबसे उत्पन्न करके बाहरके कार्यक्षेत्रमें पुरुषार्थ करनेकी होती है। आत्मामें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं इसमें भी द्वार ८ ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है। देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
(अथर्व १०।२।३१)

"आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें हिरण्मय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है।

इस अथर्व सूक्तमें शरीरका और इसमें पुरुषका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक दो आंख दो कान एक मुख गुदा और शिश्न ये नौ द्वार यहां कहे हैं। इसमें से मुख पूर्व द्वार गुदा पश्चिम द्वार शिश्न दक्षिण द्वार इन तीनोंका संबंध इस अपने प्रचलित सूक्तके मन्त्रमें है। जो चतुर्थद्वार है वह आठ चक्रवाले पुरुषके ऊपर मस्तिष्कमें भी ऊपर के भागमें सिवनि नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कमूर्ध्वा प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥
(अथर्व १ ११६)

'मस्तक और हृदय को सीकर अर्थात् एक केन्द्रमें लाकर मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण प्रेरक वायु है।"

विद्युति-द्वारसे प्रवेश।

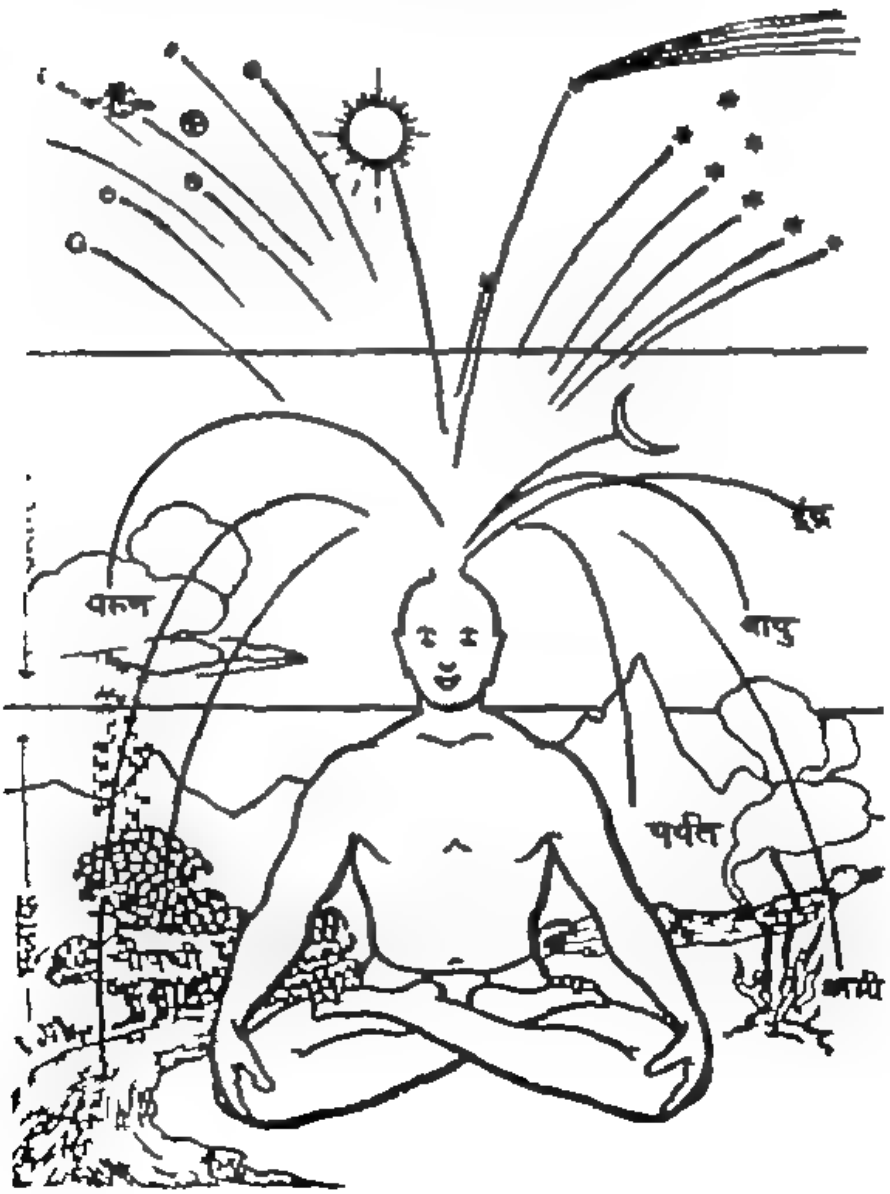

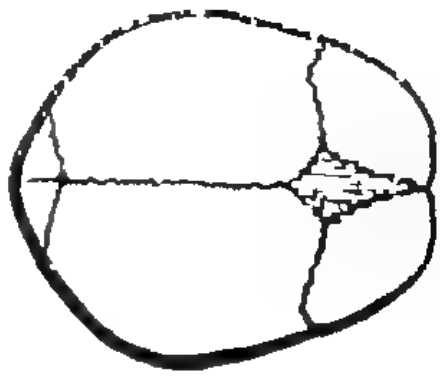

मस्तकमें विदतिद्वार

विदतिद्वारसे वैराज देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश। अंदर आनेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राण्यापान द्वारा अपनी इच्छासे इसी द्वारसे बाहर आनेपर मुक्ति। साधारण जन देहत्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे बाहर जाते हैं परन्तु केवल योगी ही अथर्ववेदके कहे मार्गसे मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।

इस मंत्रमें 'मस्तिष्कात् ऊर्ध्वा। यदि शीर्षत।' आदि शब्दों द्वारा मस्तकके ऊपर के उत्तर द्वारका वर्णन किया है। अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें लिखित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है। जो द्वारोंसे तीन और इस मस्तक-सम्बन्धका एक मिलकर चार द्वार हैं और उनकी चार आशाएं अथवा विधाएं हैं। अब ये आशाएं देखिये—

द्वार		आशा
१ पश्चिमद्वार = गुदा	= की आशा	विसर्जन करना। शरीरधर्म।
२ पूर्वद्वार = मुख	= „	मधुर भोजन करना। अर्थप्राप्ति।
३ दक्षिणद्वार = लिंग	= „	भोगका उपभोग करना। काम।
४ उत्तरद्वार = विदति	= „	बंधनसे मुक्त होना। मोक्ष।

आरोग्यका आधार

इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल "शरीरधर्म" पालन करने की ही है तथापि इस शौच धर्मसे अर्थात् पवित्र बनने के अर्थसे शरीर शुद्धि होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है। इस अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह बात हरएक जान सकते हैं। इस द्वारका धर्म नियत अवधिसे शरीर रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएं पूर्ण होने की असमर्थ हो होती है। इसके उत्तम प्रकार धर्म करनेपर अन्य आशाएं सफल होनेकी संभावना है। इसलिये हम कह सकते हैं कि इस पापम द्वारकी आशा मनुष्यके मनमें "आरोग्यकी प्राप्ति" रूपसे रहती है। इस आशाका कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है मनुष्य इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा और वह यदि ऐसे व्यवहार करना कि इस पश्चिम द्वारके व्यवहार ठीक न चलें तो उसके रोगी होनेमें कोई संशय नहीं है।

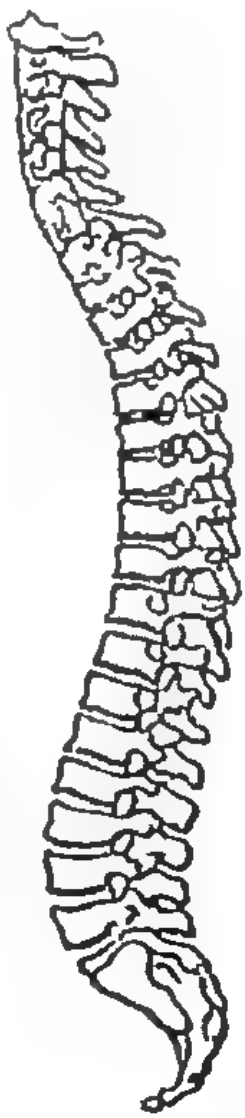

पृष्ठवंश

विदतिद्वार

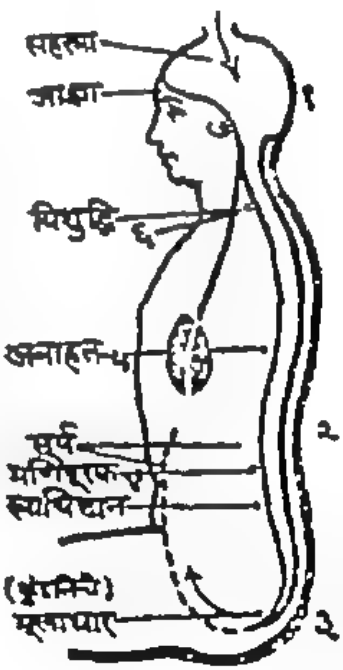

सहस्रार चक्र
पृष्ठवंशमें चक्रोंके स्थान।

स्नानपान ।

अब पूर्वद्वारकी आज्ञा देखिये । वैसेतो इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वारसे मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है । मधुरताका प्रेम करते करते मनुष्य इतना आसक्त जाता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है । इसलिये इस विषयमें अति सावधान संयम रखना चाहिये । अधिका गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसकी आयु कमजोर ही होती है । हरएक इंद्रियके विषयमें यही बात है । इस प्रकार इंद्रिय भोगके लिये जिसकी आवश्यकता है इस हेतु इस द्वारकी आज्ञा "अजरी प्राप्ति" की है । यह आज्ञा अक्षरशः पालनेसे यह देवि और उत्तम द्वारा अप्रमादपूर्वकताके अनुसार मोक्ष जानेसे सुख बढ़ेगा उन्नति होगी । सुखद्वारसे शब्द बोलनेका भी एक क्रम होता है । उत्तम शब्द प्रयोगसे जगत्में शांति फैलती है और कुशब्दके प्रयोगसे अशांति फैलती है । इस विषयमें भी सिद्धहस्त संयम रहना आवश्यक है । अन्यथा अनर्थ होनेमें कोई देर नहीं लगेगी । इस प्रकार इस तिसरे द्वारकी आज्ञाका संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है ।

कामोपभोग ।

तीसरा दक्षिण द्वार है । इस द्विरन्द्वारा जगत्में उत्तम प्रजनन अर्थात् सुप्रजाजनन करना आवश्यक है । परंतु जगत् में इसके असंयमसे जो अनर्थ हो रहे हैं वे किसीसे छिपे नहीं है । इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है । अर्थात् होना ही वैदिक धर्मका साध्य है । इसके विचारसे इस द्वारकी आज्ञाका पता लग जायगा । यह केंद्र अत्यंत महत्त्वका है, परंतु जगत का लक्ष इसके कार्यमें विनाश के तरफ और अधिक है और सुधारके मार्गमें प्रयत्न अति कम है ।

पश्चिमका नाम ।

अब चतुर्थ विरति द्वारपर हम आते हैं । यह विरति-द्वार है । इससे जीवात्मा इस शरीरमें मुक्त है परंतु इसी द्वारसे बाहर आनेका मार्ग इसको मिलता नहीं है । मुक्तभूमिमें प्रवेश करना यह जानता है परंतु मर्यादित वापस फिरनेकी विद्या इसे पता नहीं है । चक्रव्यूहमें घुसनेकी विद्या जाननेवाला परंतु चक्रव्यूहमें घुसकर युद्धमें विजय प्राप्त करके और सुरक्षित वापस आनेकी विद्या न जाननेवाला अभिमन्यु कुमार अभिमन्यु यही है । यदि यह सुरक्षित वापस आनेकी विद्या जानेगा तो यह विजय अर्जुन होगा फिर इसमें क्या विशेष है ? विजयी बननेके लिये ही ये सब धर्ममार्ग है । जिस क्रमसे आये हुए मार्गसे यह जीवात्मा वापस आनेकी शक्ति प्राप्त कर लेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता । हरएक बंधन को दूर करनेकी इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आज्ञाएं हैं और हरएक मनुष्य इन आज्ञाओंके कार्यक्षेत्रमें कुछ या सब कार्य करता है और गिरता है या उठता है । इन आज्ञाओंके कार्यक्षेत्रकी कल्पना पाठकोंको ठीक प्रकार हो गई तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी । इसलिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक बारबार मननद्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्पश्चात् विवेचनिक स्वाध्याय करें—

अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके चरणमें तीन बातें कही हैं—"(१) चार आज्ञाओंके चार अमर आज्ञा पालक हैं । (२) वेदी चार मुखात्मक है । (३) उसकी पूजा इन इनसे करते हैं ।"

मनुष्यमें चार आज्ञाएं कौनसी है उन आज्ञाओंका स्वरूप क्या है और उसके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्कर्षका किस प्रकार संबंध है यह पूर्व स्थलमें बताया ही है । चार आज्ञाएं मनुष्यके अंदर स्वाभाविक हैं, (१) शरीरधर्मका स्वीकार करना (२) मोक्ष प्राप्त करना (३) क्रमसे मोक्ष करना और (४) बंधनसे निर्मुक्त होना ये चार आज्ञाएं अथवा आज्ञाएं मनुष्यमें सदा जागती हैं मुक्तमें तथा प्राकृतमें ये समानतासे रहती हैं । पशुपक्षियोंमें भी अल्पांशसे ये रहती हैं अर्थात् मूलस्वरूपमें ये सदा रहती हैं इसलिये इनका स्वाभाविक अधिकार प्राणीमात्रपर है यानी ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं । इनको अध्यक्ष इसलिये कहा कि ये इनकी प्रेरणासे ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आज्ञाएं प्राणियोंके अंदर न रहीं तो उनकी हलचल भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनतामें ही हो रहे हैं । इसलिये ये ही चार आज्ञा —पालक मनुष्यके चार अधिकारी है । इनकी आधीनतामें रहता हुआ मनुष्य अपने व्यवहार करता है और उसका हुआ या सब परिणाम भोगता है ।

इनसे पूजन ।

इनका पूजन इनसे ही हो रहा है । पूर्वद्वार सुख है, उसमें अज्ञानतासे इनका हो रहा है । कौन प्राणी ऐसा है कि जो यह इनका नहीं करता । इसी प्रकार दक्षिणद्वार सिद्ध देवके पूजक सब ही प्राणी हैं, इसमें शंका नहीं परंतु इस आराधना की अति

पूजा से लोग अपना [illegible] बात कर रहे हैं। इतनी बात सत्य है कि उत्तरद्वार विरूप नाम विरति है उसके पूजक अत्यंत अल्प हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना चाहे हो जानते हैं। पश्चिमद्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध "अपानायाम" से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वारसे करनका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वारसे अपानायाम किया जाता है। इसको क्रिया भी लोग नेत्य जानते हैं। यह क्रिया योग शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे वन्हिके निकट भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तरद्वार विरतिके उपासक खास योगी होते हैं वे इस स्वामकी चाबना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी इनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार—— (मुख) अन्नपानादिके द्वारसे पूजा
२ दक्षिणद्वार (सिरस) भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा।
३ पश्चिमद्वार – (गुदा)– अपानायाम–अपानका प्राणमें हवन करके पूजा। इसका उल्लेख मैत्रायणीयमें भी है – अपाने जुह्वति प्राणे ऽपानं तथा परे। (म को ७।१९)
४ उत्तरद्वार– (विरति)– मस्तिष्कके मध्याकेन्द्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा।

यहां पाठक जान गये होंगे कि पहिली दो उपासनाएं अल्प से अधिक हैं और दूसरी दो श्रेष्ठ हैं। परंतु श्रीमन्त्रमें "इन चारों द्वार आप्तकामोंकी हवनद्वारा पूजा करेंगे" ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इसलिये कि हरएक मनुष्य अपनी उपासनाद्वार अपना उद्धार करे।

यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। यह नियमन इस प्रकार है—

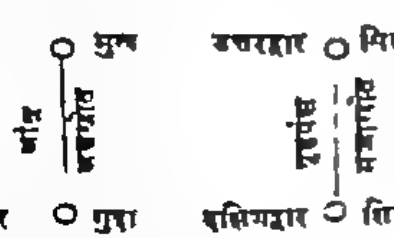

पूर्व तथा पश्चिमद्वार से इसारे नीतिके विरुद्ध विषय सुख है। सुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगडता है और गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी वृत्ति ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क और लिंग ये परस्परका नियमन करते हैं। यदि लिंगद्वारा आतरक्त रहा तो मस्तिष्क हलका होता है, और मनुष्य बुद्धि का काम करनेमें असमर्थ होता है पागल बनता है विक्षिप्त होता है। तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंका स्थिर करनेसे सुविचार लिंगद्वारा संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और पातक भी हैं। पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे पातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकोपसे किस प्रकार बचना चाहिये। अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे—

पापमोचन।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है— "चार आशाओंके चार आशापाशक रूप हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिके पापसे बचावें।"

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव [illegible] किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं। देखिये—

१ पूर्वद्वार–मुख=विद्याकी मुलभीसे खानपानमें आतरेक होकर, रोग विषाद और स्वास्थ्यका नाश। इसी विद्याके संयमसे आरोग्यप्राप्ति।

२ पश्चिमद्वार–गुदा=पूर्वोक्त संयम और असंयमसे ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संभव है।

३ दक्षिणद्वार लिंग=ब्रह्मचर्यद्वारा संयमसे उन्नति संयम पूरक पुरुषत्वका पालनसे सुखसमाधान और असंयमसे क्षय।

४ उत्तरद्वार–विरति—पूर्वोक्त संयम और असंयमसे इसके संयम और हानि प्राप्त होनेका संभव है।

इनका मनन करनेसे वे किस नियमसे पापसे छुडा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है। पापसे छुडानेमें [illegible] निर्ऋति के पाश से मनुष्य छूट जाता है। निर्ऋतिका अर्थ नाश है। पाश करने वालेको निर्ऋतिके अर्थात् विनाशके पात्र कहा है। और पुण्यवानोंको उससे दूर कही होता। इस मंत्रका यह रहस्य बडा बोधप्रद है कि ये चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुडा सकती हैं और संयमसे ही मुक्त कर सकती हैं। पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आत्मनिरीक्षण करनेका यत्न करें कि उसके जीवनमें क्या हो रहा है। यदि

और आशापाशके उनके विरुद्ध कर्म करता हो या वशुके आधीन हुआ हो तो सावधानीसे अपने यथायथ करने करें। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला। अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

चतुर्थ देव।

तृतीय मंत्रका आशय यह है—"मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ इनसे तथा जीसे इनकी तृप्ति करता हूं। इस चार आशापाशोंमें जो चतुर्थ आशापाशक देव है वह हमें सुखसे यहां आकर स्थानमें पहुंचावे।

इस मंत्रमें कहा हुआ "तुरीयः देवः" अर्थात् चतुर्थ देव निरतिशयरूप सहज मोक्षमें आशापाशक है। इसी देवकी कृपासे अन्य सब द्वारोंका निरसन हो सकता है। इसी दृष्टिसे अन्य सब कर्म-व्यवहारका विसर्जन होना चाहिये। वेदिक धर्मके संपूर्ण कर्म-व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं। मोक्षके मार्गके प्रयासके अवलंबके सब व्यवहार होने चाहियें। इसीका नाम धर्म है। बंधनसे मुक्त होना मुख्य साध्य है उसके सहायकारी सब अन्य व्यवहार होने चाहियें। अन्यथा अवलंबके व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्मको कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें कोमलादि होनेके कारण बड़ा अनर्थ होता। स्वाभाविक जीवन और सोद्देश जीवनका भेद यहां स्पष्ट होता है।

मंत्रमें कहा है कि न थकता हुआ और अवयवोंसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करता। इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ़ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उत्साह मनमें स्थिर करे।

इन चार देवोंकी आज्ञादिसे तथा जी आदिसे तृप्ति करनी चाहिये। जिसका जो इष्ट है उसीके अनुकूल उसका जी भी है अथवा जिसके देवता हैं वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये। इस विषयमें थकावट करना योग्य नहीं। न थकते हुए और न श्रांत होते हुए वे भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये। अर्थात् बड़ी सहायसे अन्नका व्यवहार करना उचित है। परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा संपादन करनेका अनुसंधान रखना चाहिये। क्योंकि उसीकी कृपासे आनंद उन्नति यश आदि की वरा प्राप्ति होती है और सद्गति भी मिल सकती है।

दीर्घ आयु।

पूर्वोक्त प्रकार तीन मंत्रोंका विचार करनेके पश्चात् अब चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सम्मुख आता है—"इस आजकलमें जो सहायतासे हम तथा हमारे माता पिता, सब मित्र बांधव आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयसके भागी बनें और दीर्घायु बनें।" इस मंत्रमें चार बातें कही हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुखपूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो यह उत्तम अभ्युदयका सूचक विधान है।

३ सुविदत्र = (सु + विद् + त्र) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्मज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयसका हेतु है। वह हमें प्राप्त हो।

४ उषोः = दीर्घकाल जीवन हो। यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेदमंत्रोंमें बारबार "उषोः च सूर्यं दृशेम" अर्थात् "दीर्घकालतक सूर्यको हम देखते रहें। यह एक मुहावरा है इसका तात्पर्य "हमारी आयु अतिदीर्घ हो" यह है। परंतु यहां ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहां जहां दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश वेदमें आया है वहां वहां सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इसलिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्यसंबंधका संबंध है यह बात न भूलें। ब्रह्मने कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद अमृतेन हिरण्मयीम् ॥ ३ ॥
(अथर्व १०।८)

जो निश्चयसे ब्रह्मकी अमृतसे परिपूर्ण सुवर्णकी नगरीको जानता है उसको स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके सच्चे अन्य देव चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं ॥ २९ ॥ अति वृद्धावस्थासे पूर्व उसको प्राण और चक्षु छोड़ते नहीं जो ब्रह्मपुरीको जानता है और जिस पुरीमें रहनेके कारण इसको पुरुष कहते हैं ॥ ३ ॥"

भाव स्पष्ट है कि ब्रह्मको कृपासे दीर्घ आयु इन्द्रिय और आरोग्य पूर्ण इंद्रियोंसे युक्त उत्तम शरीर प्राप्त होता है। यही भाव संक्षेपसे अपने प्रकाशित सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कहा है

इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इस परलोकमें यशस्वी होता है। यही इस सूक्तका उपदेश है।

विशेष टिप्पणी।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाओं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है। बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिश शब्द न प्रयुक्त करते हुए 'आशा' शब्द का प्रयोग इसमें इसलिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंको अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे।

इस सूक्तका यह ढंगका अलंकार बड़ा ही महत्व पूर्ण है। और जो इस सूक्तको केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्वपूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं। पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें।

इस सूक्तका ऋषि आयुष्य गव अपराजित गव आदि अवक यज्ञोंसे विषयकी अनुकूलतासे है। यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पति गव अथवा वसु गव का है। इसलिये 'यज्ञोंके निवास' के साथ इसका अपूर्व संबंध है। इस प्रकारकी दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसके आचरणमें लाकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन-रसका महासागर।

(३२)

(ऋषिः— ब्रह्मा। देवता—द्यावापृथिवी)

इदं वनाशो विदथं महद्वद॑ वदिष्यति। न सरपृथिभ्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥
अन्तरिक्ष आसां स्याम आन्तसदामिव। आस्थानमस्य भुवस्य विदुष्टद्वेधसो न वा ॥ २ ॥
यद्द्यावापृथिवी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम्। आदर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्या ॥ ३ ॥
विश्वमन्यामसीषद॒ तदन्यस्यामधिश्रितम्। दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (वनाशः) लोगो! (इदं विदथ) यह ज्ञान प्राप्त करो। यही ज्ञानी (महद् ब्रह्म वदिष्यति) बड़े ब्रह्मके विषयमें कहेगा। (येन वीरुधः प्राणन्ति) जिससे ओषधियां आदि प्राण प्राप्त करती हैं, (तत् पृथिभ्यां न नो दिवि) वह पृथ्वीमें नहीं और नहीं द्युलोक में है ॥ १ ॥ (आसां अन्तरिक्षे स्याम) इन ओषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है (आन्तसदां इव) घर कर बैठे हुओंके समान (अस्य भुवस्य आस्थानं) इस बने हुए स्थान को है (तत् वेदथः विदुः वा न) यह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ ॥ (यत् रेजमाने द्यावापृथिवी) जो हिलनेवाले द्यावापृथिवीने और (भूमिः च) देवक भूमिने भी (निरतक्षतं) बनाया (तत् अद्य सर्वदा आर्द्रं) वह आजतक सदाकाल रसमय है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ (विश्वं) सब में (अन्यां अधीषद) दूसरीको बैठनिया है, (तत्) वह (अन्यस्यां अधिश्रितम्) दूसरीमें आश्रित हुआ है। (दिवे च) द्युलोक और (विश्ववेदसे च पृथिव्यै) संपूर्ण धनोंसे युक्त पृथिवीके लिये (नमः अकरं) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे लोगो! यह समझो कि जो तत्त्वज्ञान हमसे कहा जानेवाला है उसका विस्तार करना। तत्त्वज्ञान यह है कि—जिससे ओषधियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं वह जीवका रस पृथिवीमें नहीं है और नहीं द्युलोक में है ॥ १ ॥ इस बनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है। जैसे घरोंमें बैठे विश्राम करते हैं वैसेही वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं। इस बने हुए जगत्का जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ हिलने डुलनेवाले

द्युलोक और पृथ्वीलोक के हमारे जो कुछ बनाया गया है वह सब इस समयतक बिलकुल नया अर्थात् ओषध रसोंसे परिपूर्ण जैसा है जैसे सरोवरसे चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ वह सब जगत् दूसरी शक्तिके ऊपर रहा है और वह भी दूसरी के ही आश्रयसे रही है। द्युलोक और सब पर्वतोंके मुख्य पृथ्वी देवीकी मैं नमन करता हूं (क्योंकि ये दो देवताएं इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं।) ॥ ४ ॥

स्थूल सृष्टि।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है इसमें मिट्टी पत्थर आदि अतिस्थूल पदार्थ वृक्षवनस्पत्यादि बढ़नेवाले पदार्थ पशुपक्षी आदि बढ़ने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढ़ने हिलने और बढ़त होनेवाले उच्च कोटीके प्राणी हैं। पत्थर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोड़ा जाय और वनस्पति पशु तथा मनुष्य सृष्टिमें देखा जाय तो ये उत्पन्न होते हैं बढ़ते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें दिखाई देनेवाला चौथनतत्व कौनसा तत्व है? क्या वह स्थूल ही है या इससे भिन्न और कोई तत्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है।

सब लोग इस जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें। यदि उनको चौथनसे आनंद प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस (जगत्। विश्व) ज्ञानको प्राप्त करें। यह सत्य करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है। (मंत्र १)

यह जीवन रसकी विद्या कौन देगा? किससे यह प्राप्त होगी? यह संशय यहां आती है, इस विषयमें प्रथम मंत्रमें ही आगे आकर कहा है कि जो इस विद्याके जानता होगा वही (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बड़े ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानके विषयमें कहेगा। जिसको इस विद्याकी प्राप्ति करनेकी इच्छा हो वह ऐसे विद्वानके पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे। किसी अन्यके पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जीवन का रस

सारांश यहांसे यह समझो कि "जिस जीवनतत्वके आश्रयसे बढ़नेवाले वृक्ष वनस्पति प्राणी आदि प्राण धारण करते हैं वह जीवनका आधारतत्व न तो पृथ्वीपर है और नहीं द्युलोकमें है। (मंत्र १) वह किसी अन्य स्थानमें है इसलिये उसको इस सारे द्यावापृथिवीसे भिन्न किसी अन्य स्थानमें ही ढूंढना चाहिये।

इस प्रथम मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि जिससे जीवनका रस मिलता है वह तत्व इस स्थूल संसारसे बाहर अर्थात् वह अतिसूक्ष्म है। वह क्या है इसका पूर्ण उत्तर आगे के मंत्रोंमें आजावेगा।

भूतमात्रका आश्रय।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि- इस सृष्टिका संपूर्ण पदार्थ मात्र आधारस्थान अंतरिक्ष है। इस स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी यों जानते हैं या नहीं? अर्थात् इसका ज्ञान सब ब्रह्मविद्योंको भी एकसा है या नहीं। ब्रह्मविद्यामें भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं। सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते परंतु आत्मविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथार्थ जानते हैं। (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें "भूत शब्द है इसका अर्थ 'बना हुआ पदार्थ।' जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है। इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक भूततत्व है जिसका ज्ञान अध्यात्मविद्या जाननेवाले ही प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये जीवनरस मिलाने अभ्यास करनेवाले ऐसे महापुरुषके पास जावें कि जो इसका ज्ञान दे और उससे पासके यह जीवनकी विद्या प्राप्त करें। यह ही ज्ञानी (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बड़े ब्रह्मका ज्ञान करेगा। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है।

सनातन जीवन।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि-"जो इस द्यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र है वह सदा सर्वदा जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है इसमें जीवन रस ऐसा भरा है जैसा सरोवरसे चलनेवाले निर्मल स्रोतोंमें सरोवरका जल भरपूर रहता है।"

जगत्के माता पिता।

अदिति भूमि जगत्की माता है और द्यौरदिति जगत् का पिता है। भूलोक और द्युलोक भूमि और सूर्य शक्ति और पुरुष शक्ति जल शक्ति और अन्न शक्ति, रवि शक्ति और प्राण शक्ति प्रकृति और पुरुष प्रकृति और आत्मा इस प्रकारके दो शक्तियोंसे यह जगत् बना है इसलिये इसको जगत्के माता पिता कहा है। विविध मंत्रभागोंमें उक्त दोन शक्तियोंके

विविध नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्की मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है।

जीवनका एक महासागर।

वेदमें जगत् द्यावापृथिवी — द्युलोक और पृथ्वीलोक — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् इनके अंदर समाता है। यह बना हुआ जगत् नवीन बननेके पश्चात् बहुत और विचित्रता भी है तथापि बने हुए संपूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहा है वह एक समान व्यापता है इसलिये संपूर्ण जगत्के विश्व सदृश और एक जैसे हैं। हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है। इससे जीवनशक्तिकी अगाध सत्ता भी कल्पना हो सकती है।

जिस प्रकार एक ही सागरसे अनेक स्रोत चलते हों तो उनमें एक ही जीवन रस सबमें एकसा प्रवाहित होता रहता है उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए जगत पदार्थोंमें एक ही अगाध जीवनके महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो संपूर्ण पदार्थ सब जीवनशक्तिसे ओतप्रोत भरपूर हो रहे हैं।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें ओतप्रोत भरनेवाले एक बड़ेके समान समझें और अपने अंदर वही जीवन स्रोत चल रहा है इसका ध्यान करें। जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारोंओर जलका अनुभव करता है उसीप्रकार मनुष्य भी उसी जीवन महासागरमें तैरनेवाला एक प्राणी है इसलिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनशक्तिके महासागर की अच्छी कल्पना हो सकती है। यह जीवन सदा ही नवीन है, कभी भी यह पुराना नहीं होता कभी विचित्रता नहीं। अन्य पदार्थ बनने और बिगड़ने पर भी यह एकसा नवीन रहता है। और यही सबको जीवन देता है। (तत् जल इदम् आसीत्) यह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिन्न रसपूर्ण रहता है। सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमात्र भी कम नहीं होती इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है।

सबका एक आश्रय।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि—"संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके आश्रय रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रही है। यही आधारका तत्त्व पृथ्वी और द्युलोकके स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इसलिये मैं द्युलोकमें उसकी ऊर्ध्वधारणशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूं।" अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूपमें प्रकट होगई है ऐसा जानकर जगत्को देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विश्वमें अपनी ममता प्रकट करता है।

स्थूल सूक्ष्म और कारण।

इस मंत्रमें विश्व 'जगत्' स्थूल जगत्का बोधक है इस स्थूलका आधार (जगत्) दूसरा है इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है। प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तीसरे अतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है। यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मात्र आधार है और इसीका जीवन जगत् रूपमें एक रस होकर व्याप रहा है। इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा स्थूल पदार्थ इसी बड़े बड़े स्रोत उसी एक अद्वितीय जीवनमहासागर से चल रहे हैं। इसमें इसीका जीवन कार्य कर रहा है यह बताना इस सूक्तका उद्देश है। अनेकों में एक ही जीवन भरा है इसका अनुभव यहां होता है।

यह सूक्त केवल पढ़नेके लिये नहीं है प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणाके स्थिर करनेके अनुष्ठानके लिये ही है। जो पाठक इसकी उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे। पाठक यहां देखें कि छोटेसे छोटे सूक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है। निःसंदेह यह उपदेश जीवन परिवर्तनमें समर्थ है। परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवनमें ढालनेका यत्न करेगा।

जलसूक्त

(३१)

(ऋषिः-अन्तातिः । देवता आपः । चन्द्रमाः)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः श स्योना भवन्तु ॥ १ ॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः श स्योना भवन्तु ॥ २ ॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः श स्योना भवन्तु ॥ ३ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः श स्योना भवन्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—जो (हिरण्य-वर्णाः) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्णसे युक्त (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता बढ़ानेवाला (यासु सविता जातः) जिनमें सविता हुआ है और (यासु अग्निः) जिनमें अग्नि है (याः सुवर्णाः) जो उत्तम वर्णवाला जल (अग्निं गर्भं दधिरे) अग्निको गर्भमें धारण करता है (ताः आपः) वह जल (नः शं स्योनाः भवन्तु) हम सबके शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ १ ॥ (यासां मध्ये) जिस जलके मध्यमें रहता हुआ (वरुणः राजा) वरुण राजा (जनानां सत्यानृते अवपश्यन्) मनुष्योंके सत्य और असत्य कर्मोंका अवलोकन करता हुआ (याति) चलता है । (याः सुवर्णाः) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबके शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ (देवाः दिवि) देव सुलोकमें (यासां भक्षं कृण्वन्ति) जिनका भक्षण करते हैं, और जो (अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख-देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ हे (आपः) जल ! (शिवेन चक्षुषा मा पश्यत) कल्याणकारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो । (शिवया तन्वा मे त्वचं उपस्पृशत) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो । जो (घृतश्चुतः) तेज देनेवाला (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्र (आपः) जल है (ताः नः शं स्योनाः भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले मेघमण्डलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है जिन मेघोंमेंसे सूर्य किरणें देता है जिनमें विद्युत् रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाई देता है वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमेंसे वरुण राजा घूमता है और जाते जाते मनुष्योंके सत्य और असत्य विचारों और कर्मोंका निरीक्षण करता है जिन मेघोंमें विद्युत् रूपी अग्निको धर्मने गर्भमें धारण किया है उन मेघोंका जल हमें सुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ पूर्वोक्त के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध स्वरूपवाले अंतरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विद्युत्को धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये सुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके साथ होनेवाला स्पर्श हमें आह्लाद देनेवाला प्रतीत हो । मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

वृष्टिका जल।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंद भी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठकको एक अद्भुत आनंदका अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण "वृष्टि पावक हु वर्ष आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले विद्वज्जन इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और निरोग होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणें भी प्रकाशती हैं उसकी विशेषता अधिक है। इसी प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है- जलका स्पर्श हमारी चमडीको आल्हाद देवे।" जबतक शरीर नीरोग होता है तबतक ही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है परंतु शरीर रुग्ण होते ही वह स्पर्श दुरा लगने लगता है।

मधु-विद्या।

(३४)

(ऋषिः— अथर्वा। देवता-मधुवल्ली)

इयं धीरुन्मधुमाती मधुना त्वा खनामसि। मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ १ ॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्। ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्। वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥ ३ ॥
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः। मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥
परि त्वा परितत्नुषेक्षुणागामविदिषि। यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ५ ॥

अर्थ- (इयं धीरुन्मधुमाती) यह वनस्पति मधुरतासे युक्त उत्पन्न हुई है, मैं (त्वा मधुना खनामसि) तुझे मधुसे खोद ता हूं। (मधोरधि प्रजाता असि) मधुरके साथ तू उत्पन्न हुई है अतः (सा) वह तू (नः मधुमतः कृधि) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ (मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे। (जिह्वामूले मधूलकम्) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे। हे मधुरता! तू (मम कर्तौ इत् मह असः) मेरे कर्ममें निश्चयसे रह। (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ (मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा चालचलन मीठा हो। (मे परायणं मधुमत्) मेरा दूर होना भी मीठा हो। मैं (वाचा मधुमद् वदामि) वाणीसे मीठा बोलता हूं जिससे मैं (मधुसन्दृशः भूयासं) मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं (मधोः मधुतरः अस्मि) शहदसे भी अधिक मीठा हूं। (मदुघात् मधुमत्तरः) मधुरपदार्थोंसे अधिक मधुर हूं। (मां इत् किल त्वं वनाः) मुझपर ही तू प्रेम कर (मधुमतीं शाखां इव) जैसे मधुर रसवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ (अभि-विदिषे) मेरे दूर करने के लिये (परितत्नुषा इक्षुणा त्वा परि अगाम्) फैले हुए इक्षुके साथ तुझे घेरता हूं। (यथा मां कामिन्यसः) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली होवे और (यथा मत् न अपगाः असः) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ- यह ईख नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगानेवाला और उत्पन्न करनेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह वनस्पति परमात्माके मीठास अपने साथ लाती है इसलिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्रभागमें मधुरता रहे जिह्वाके मूल में और मनमें मधुरता

रहे। मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चालचलन मीठा हो, मेरा आस्य भाव मीठा हो मेरे इशारे और भाव तथा मेरे वस्त्र भी मीठे हों। ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठास की मूर्ति ही बनूंगा। ॥ ३ ॥ मैं सहजसे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलादी खानेपर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू मुझपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देशसे व्यापक मधुरविचारोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाढ़ चारों ओर बहाता हूं ताकि इस बाढ़में सब मधुरता ही बहे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

मधुविद्या।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या देवविद्या ब्रह्म विद्या युद्ध विद्या इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है। मधुविद्या जगत् की ओर किस प्रकार देखना चाहिये यह दृष्टिकोण ही मनुष्यमें उत्पन्न करती है। उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है। यह जगत् मधुमय है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है। दूसरी विद्या जगत् को कड़वा बतलाती है; इसको पाठक कटुविद्या कह सकते हैं। परंतु यह कटुविद्या वेदमें नहीं है। वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखनेका उपदेश नहीं न ही दुःख दृष्टिसे जगत्को देखनेका उपदेश करता है। वेदमें मधुविद्या इसलिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें। इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यहां विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तके मंत्र ही सर्व दृष्टि विचारसे उत्तम उपदेश देते हैं। पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें।

जन्म स्वभाव।

इहलोकमें क्या और प्राणिमात्रमें क्या हरएक का व्यक्तिनिष्ठ जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं। जैसा सूर्यका प्रकाशक अग्निका उष्ण होना ईखका मीठा होना करेलेका कडवा होना इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं। ये जन्मस्वभाव कहांसे आते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। ईख मिठास खाता है और करेला कडवाहट खाता है। एक ही भूमिमें तथा ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं। कभी करेलेमें मीठा रस नहीं होता और नहीं ईखमें कडुवा। ऐसा क्यों होता है। कहते हैं रस आते हैं।

कोई कहेगा कि भूमिसे। क्योंकि भूमिका नाम "रसा" है। इस भूमिमें विविध रस होते हैं। बीज जो पौधा उसके पास जाता है वह अपने स्वभावके अनुसार भूमिसे रस खींचता है और अपनाता है। करेलेका स्वभाव-कडुवा है और ईखका मीठा है। ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुकूल रस लेते हैं और उसको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं।

मनुष्यमें भी यही बात है। विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रगट कर रहे हैं उनको एक ही वातावरणसे एकही जीवनके महासागरसे जीवन रस मिलता है परंतु एकमें वही जीवन शान्ति बढ़ानेवाला और दूसरेमें अशान्ति फैलानेवाला होता है। ये स्वभाव धर्म हैं। पृथ्वी जल लेकर जाता है और मीठा बनकर झरनेसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसको पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है यही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है जिसको कोई भी पी नहीं सकता यह स्वभाव भेद है।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनियां अपने स्वभाव बदल नहीं सकती। मरणोत्तर उनमें बदल नहीं होता। परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनिके लोग सुविचारोंके आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं। दुष्टके हृदय बन सकते हैं मूर्खके मधुर बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं इसीलिये वेद मनुष्योंकी भलाई के लिये यह मधुविद्याका उपदेश दे रहा है। मनुष्य अपनी कायापलट करे और अपनेमें मिठास बढ़ाने यही यहां इस विद्याका उद्देश है।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये- "यह ईख नामक वनस्पति मिठास के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी भाषणके साथ उसे खोदते हैं। यह मधुरता लेकर जाती है इसलिये मैं उसको यहां भी मिठाससे युक्त करें।" (मंत्र १)

यह प्रथम मंत्र कैसा अर्थपूर्ण है। इसमें चार बातें हैं -(१) स्वयं मीठे स्वभाव का होना (२) मीठे स्वभाव वालोंसे संपर्क करना (३) स्वयं मधुर जीवनको व्यतीत करना और (४) दूसरोंको मीठा बना देना। पाठक देखें कि-(१) ईख स्वयं स्वभावसे मीठा होता है (२) मीठा रहस्य जाननेवाले के हाथोंसे उसकी मिठास होती है (३) ईख स्वयं मीठा जीवन रस अपने साथ लाता है और (४) जिस खेत के पास

मिलता है उसको मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईश्वर अपने व्यवहारसे मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इसके मननसे प्राप्त होनेवाले नियम ये हैं –

(१) अपना स्वभाव मीठा बनाना। अपनेमें यदि कोई कटुता कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढ़ानेका यत्न करना।

(२) मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

(३) अपना जीवन ही मीठा बनाना चाहकर अपना बोलना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

(४) प्रयत्न इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर प्रकृतिवाले मनुष्य भी सुधर कर उत्तम मधुर प्रकृतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करेंगे तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं। " ईश्वर सर्व मीठा है मीठा चाहनेवाले विद्वान से मित्रता करता है अपनेमें मधुर जीवन रस आता है और जिसमें मिल जाता है उसको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंको अपनानेका प्रयत्न करें। (मंत्र १)

यहां सम्बोधि अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे मधुर उपदेश दिया है।

मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें सम्बोधि अलंकारसे सूचित किया है कि मनुष्य मिठास के साथ जीवन व्यतीत करें।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनावे। इसी बातकी व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें स्वयं वेद करता है। इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका भाव थोड़ा विस्तार से यहां देते हैं–

(दूसरा मंत्र)– मेरी जिह्वाके मूल मध्य और अग्रभागमें मिठास रहे अर्थात् मैं वाणीसे मधुर शब्द ही बोलूंगा। कभी कटु शब्दका प्रयोग बोलनेमें और लेखमें नहीं करूंगा कि जिससे जगत्में कटुता फैले। मेरा चित्त भी मीठे विचारोंका चिंतन करेगा। इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चार एक रूपता से मीठे बन गये तो मेरे (कर्तृ) आचार व्यवहार अर्थात् कर्म भी मीठे हो जावेंगे। इस प्रकार विचार उच्चार आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊंगा। मेरे विचार से मेरे मुखसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मिठास फैलेगी।'

(तीसरा मंत्र)– ' मेरा आचार व्यवहार मीठा हो मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही शब्द उच्चारूंगा और उस भाषणका अङ्गभूत मधुरता बढ़ानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चार और आचार में स्वाभाविक और अकृत्रिम मधुरता टपकने लगेगी उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूंगा।'

(चतुर्थ मंत्र)–" अब सहदसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा और कहूंसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा तब तुम सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करोगे कि जैसा पक्षिगण मीठे फलोंसे पुष्ट वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं।'

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। ऊपर भाषार्थ देते समय ही भाषार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ अधिक शब्द रखे हैं, उनके कारण इसका अब अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूं यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे यही प्रतिज्ञा करें यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकार उनका आचरण हुआ तो उनका बड़ा सर्वत्र फैल जायगा। यह पूर्ण अहिंसा की प्रतिज्ञा है। अपने विचार उच्चार आचारसे किसी प्रकार किसीको भी हिंसा न हो किसीका द्वेष न हो किसीका वैर न हो, किसीको अप्रसन्नता न हो इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्में आनंदका ही साम्राज्य बन जायगा। इस आनंदका साम्राज्य स्थापन करना वैदिक धर्मियोंका परम धर्म ही है और इसीलिये इस मधुविद्याका उपदेश इस सूक्तमें हुआ है।

मीठी बाड़।

लोग्रंथी बाड़ लगाते हैं जिससे खेतका नाश करनेवाले पशु उस खेततक पहुंच नहीं सकते और खेत सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार स्वयं मीठा और मधुरता फैलानेवाला मनुष्य अपने चारों ओर मीठा बाड़ बनावे। जिससे उसके विरोधी शत्रु कोई द्वेष

मात्र अहङ्कार शत्रु-रूप तक न आवे। यह बात अपने मनमें सुविचारोंसे हो अपने इंद्रियोंके साथ संयम की हो। अपने घरमें परस्पर प्रेमभरी हो। समाजमें परस्पर मित्रताकी हो। अपने सब मित्रमें उत्तम मीठे विचार बोलने में अपने और मधुरता फैलाने वाले हों ऐसी बात होगई तो अंदरका मिठासका खेत बिगडेगा नहीं। इस विषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है

(पंचम मंत्र)—"मैं विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईंखोंकी बात तुम्हारे चारों ओर करता हूं जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और मुझसे दूर भी न होगी।"

यह विद्या जो पुरुषके आपसके विद्वेषके लिये उत्तम है उसका भी अन्य परिवारों और मित्रजनोंके विद्वेष और प्रेम बढानेके विषयमें उपयोग है। परंतु अपने चारों ओर मीठी बात करनेकी पुष्टि पाठकोंको अवश्य करनी चाहिये। अपने आप इस की पंक्तियां बनेसे यह कार्य नहीं होगा। यह कर्म करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार उच्चार और आचारके उत्तम मनोभावना की ईख चाहिये। जो पाठक अपने अंतःकरणके खेत में ईख जमावेंगे और उसकी पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे वे ही वेदके उपदेश आचरणमें लाय सकते हैं।

ये मंत्र स्पष्ट हैं। अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है परंतु पाठक इसको काव्य की दृष्टिसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे सम्यक् समझ सकेंगे।

तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति।

(३५)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—हिरण्य, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवा)

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १ ॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ३ ॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा नय संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

अर्थ—(सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः) शुभ मनवाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष (यत् हिरण्यं अबध्नन्) जो सुवर्ण बांधते रहे (तत्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्चसे) जीवन तेज (बलाय) बल और (शतशारदाय दीर्घायुष्टवाय) सौ वर्षोंके दीर्घ आयुके लिये (ते बध्नामि) तेरे ऊपर बांधता हूं ॥ १ ॥ (न रक्षांसि न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं सहन्ते) इस पुरुषका हमला सह सकते हैं (हि) क्योंकि (एतत् देवानां प्रथमजं

ओजः) यह देवोंने प्रथम उत्पन्न हुआ सामर्थ्य है। (यं दाक्षायणा हिरण्यं बिभर्ति) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है (सः जीवेषु दीर्घं आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अपां तेजः ज्योतिः ओजः बलं च) अपना तेज कान्ति पराक्रम और बल (उत) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) ओषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अपि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं (इन्द्रे इन्द्रियाणि इव) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं। इस प्रकार (वृक्षमाणः हिरण्यं बिभ्रत्) बल बढ़ाने की इच्छा करनेवाला सुवर्णका धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मासां ऋतुभिः) सम महिनोंके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूपी गौके दूधसे (त्वा वर्षं पिपर्मि) तुझे हम सब पूर्ण करते हैं। (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अ-हृणीयमानाः) क्रोध न करते हुए (ते अनु मन्यन्ताम्) तेरा अनुमोदन करें ॥४॥

भावार्थ- बल बढ़ानेवाले और सबमें शुभ विचारों की वार्ता करनेवाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष जैसा संचालकके देहपर बलवृद्धि के लिये विद्वान सुवर्णके आभूषणको धारण देते हैं, वही आभूषण मैं तेरे शरीरपर इसलिये धारण कराता हूं कि इससे तेरा जीवन सुधरे तेज बढ़े बल तथा सामर्थ्य वृद्धिमान हो और तुझे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले और पुरुषके इससे मैं न राक्षस और नहीं पिशाच रह सकते हैं। वे इसके इससे चमत्कार दूर भाग जाते हैं, क्योंकि यह देवों से निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढ़ानेवाला सुवर्णका आभूषण है। जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इसलिये इस पुरुषमें जीवन का तेज पराक्रम सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं। और साथ साथ ओषधियोंसे नाना प्रकारके वर्धनशक्ती बल भी धारण कराते हैं। जिस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मामें इंद्रिय शक्तियां रहती हैं उसी प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले मनुष्यके अंदर सब प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रगट हो जांय ॥ ३ ॥ दो महिनोंका एक ऋतु होता है। प्रत्येक ऋतुकी खूबी अलग अलग होती है; मानो संवत्सररूपी गौका दूध ही संवत्सरकी छह ऋतुओं में निचोड़ा हुआ है। वह दूध मनुष्य पीवे और बलवान् बने। इसकी अनुकूलता इंद्र अग्नि तथा सब देव करें ॥ ४ ॥

दाक्षायण हिरण्य।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है। यह वेदमें भी लिखा जाता है और शरीरपर भी धारण किया जाता है। श्री यास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं- हितरमणीयं हृदयरमणीयं" अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढ़ानेवाला है। सुवर्ण बलवर्धक तथा शोभा साधक है इसलिये आरोग्य चाहनेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं।

इस सूक्तमें दाक्षायण शब्द (दक्ष-बलवान) अर्थात् बलके लिये प्रयत्न करनेवाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है। तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका दक्ष-मात्र" शब्द है जो प्रतिमानका वाचक है। पाठक विचार करेंगे तो उनको विदित होगा कि "दाक्षायण और दक्षमात्र" ये दो शब्द क्रमशः सक्तिमान् के वाचक हैं। एक शब्द वेदमें बलवाचक प्रसिद्ध है। इसप्रकार इस सूक्तमें बल बढ़ानेका जो मार्ग बताया है उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है। हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा सुवर्ण शरीरमें भक्षण करना। सुवर्ण शरीरमें कच्चेकी रीति वैद्यकग्रंथों में प्रसिद्ध है। सब अन्य धातु तथा ओषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती परंतु सुवर्ण की यह विशेषता है कि वह शरीरके अंदर हड्डियोंके जोड़ोंमें जाकर स्थिर रूपसे रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है। इस प्रकारकी सुवर्णधारणासे अनेक रोगोंसे मुक्तता होती है। इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण यह मूल होनेपर उसके जलानेके बाद शरीरकी राख में सुवर्ण सत्व सब मिलता है। अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह तोलाभर सुवर्ण मृत शरीरके दाह होनेके पश्चात् उसके अवशिष्टोंमें प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार कोई हानि न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है।

जो वैद्य इस सुवर्ण धारण विधिको जानते हैं उनका नाम "दाक्षायण प्रथम मंत्रमें कहा है। इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उसका नाम भी " दाक्षायण " है यह बात द्वितीय मंत्रमें बता दी है। जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना आयुष्य बढ़ाना चाहता है उसका भी नाम वेदमें

तृतीय मन्त्रमें' दक्ष-भाव ' बताया है। इस प्रकार यह सूक्त ब्रह्मवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है।

दाक्षायणी विद्या।

इस ब्रह्मवर्धनकी विद्याका नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष+अण्) से प्राप्त करनेके कार्यका उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है (सु+मनस्यमान) उत्तम मनस्क युक्त अर्थात् मनकी विशेष शक्तियोंसे संपन्न बनकर ही मानवोंसे मन अलंकृत होता है और सामर्थ्य की प्राप्ति इस अवस्थामें होती है। मनकी शक्ति बढ़ानेकी जो विद्या है उस विद्या अनुसार मंत्र सूक्तियोंसे युक्त बतानेवाले ऐसे लोग 'सुमनस्यमानाः दाक्षायण्या' शब्दों द्वारा वेदमें बताये हैं। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपने शरीर एवं वेदों और इन शब्दों द्वारा जो सुमनस्क होने की सूचना मिलती है, वह देखें और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढ़ावें।

सुवर्ण धारण।

यद्यपि प्रथम मंत्रमें केवल स्थूल शरीरपर सुवर्ण बांधनेका विधान किया है तथापि आगे आकर वेदमें दीर्घजीवन प्राप्त पानेका उपदेश इसी सूक्तमें आनेवाला है। सुवर्ण तथा लोग कई रत्न हैं कि जो शरीरपर धारण करनेसे भी बलवर्धन तथा आरोग्य वर्धन कर सकते हैं। यह बात सूर्यकिरण चिकित्सा तथा वर्णचिकित्साके साथ ऐसेच रहनेवाली है अर्थात् सुवर्ण रत्नादिका धारण करना भी शरीरके लिये आरोग्यप्रद है। जो व्यक्तियोंकी अंगोंके मणी शरीरपर धारण करनेसे भी आरोग्यकी रक्षासे बल प्राप्त करते हैं। सुवर्णजन्य रोगोंमें तथा मणिके धारणसे अनेक लाभ हैं। यही बात सुवर्ण इत्यादि धारणसे होती है। परंतु इसलिये कुछ युक्ति चाहिये।

इस विषयमें प्रथम मंत्रमें कहा है कि— बल बढ़ानेकी विद्या जाननेवाले और उत्तम मनःशक्तिसे युक्त ऐसे पुरुषोंके द्वारा शरीरपर रक्षाका हुआ सुवर्ण जीवन तेज बल तथा दीर्घ आयुष्य देता है। "इसमें शरीरपर सुवर्ण धारण करनेवाले मनुष्यों की उत्तम मनोभावना भी आवश्यक होती है यह सूचित किया है, यह लक्ष्य रखने योग्य है।

इस मंत्रमें "सहस्रायुषे हिरण्यं बध्नामि" का अर्थ "हजार विद्यार्थियोंके संचालकके शरीरपर सुवर्ण रक्षणार्थ बांधता हूं" ऐसा किया है, परंतु इसमें और भी एक गूढ़ता है वह यह है कि अयोक" शब्द दस वाचक है। वह शब्द संख्या वाचक और बल वाचक भी है। विशेषतः अयोक" शब्दमें अय्-आप्तौ" धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्तिका अर्थ भी अयोक शब्दमें है। इस अर्थके लेनेसे 'सहस्रायोक' शब्दका अर्थ 'सौ जीवन शक्तियां अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त' होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

सहस्रायोकाय हिरण्यं बध्नामि। (मंत्र १)

"सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये मैं सुवर्णका धारण करता हूं। सुवर्णके अंदर लेकर सौ वर्ष के बल सबकी प्राप्तिके लिये मैं उसका धारण करता हूं। यह आशय प्रथम मंत्र भाग का है। इस प्रथम मंत्रमें इसमेंसे कुछ गुप्त कहे भी हैं—

आयुषे। वर्चसे। बलाय। दीर्घायुत्वाय। शतशारदाय।

आयु तेज बल दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु' इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं। इसका खोलासा परिचय नहीं किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियां" हैं उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक कर्मका उद्देश्य है। इस विचारसे ज्ञात हो सकता है कि यहां "सहस्रायोक" शब्दका अर्थ " जीवनके सौ वर्षमें जीवन की सैकड़ों शक्तियां" अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने खोलकर करके उल्लेख किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहां अभीष्ट हो रहा है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ ऊपर देकर यहां यह अर्थ लिखा है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका मनन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र ब्रह्मचर्यमें बोलेते पाठमेंसे आया है उसके पाठकोंके विचारके लिये यहां [illegible] है—

ब्रह्मचर्यसत्याशाया हिरण्यं सहस्रायोकाय सुमनस्यमानाः।
तत्त्व आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्शरदश्चिदेवाहम्॥
(अ वेद. ६४।५२)

उत्तम मनस्कोंके दाक्षायण लोग सहस्रायोकके लिये जिस सुवर्ण सूक्तको बांधते रहे, (तत्) वह सुवर्ण सूक्त (ते आबध्नामि) मैं अपने शरीरपर बांधता हूं इसलिये कि मैं (आयुष्मान्) उत्तम आयुसे युक्त और (अरदश्चित्) पूर्ण अवस्थाका आयुष्य करनेवाला होकर (अहं शतशारदाय आयुषे) जिस प्रकार सौ वर्षकी पूर्ण आयुसे प्राप्त होऊं।

इससे अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त मंत्रकी इस मंत्रमें अक्षर रीतिसे और भिन्न शब्दोंसे व्यक्त हुआ है। इस मंत्रका विशेष अर्थ ही लिख है।

प्रथमार्ध वैसाका वैसा ही है। यहां प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं। —

राक्षस और पिशाच।

मांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं। ये सबसे क्रूर होनेके कारण सब लोग इनसे डरते रहते हैं। परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार सुवर्ण प्रयोग करता है उसके समीपमें राक्षस और पिशाच भी नहीं आ सकते।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है। सुवर्णमें इतनी शक्ति है। क्योंकि " यह देवोंका पहिला ओज है।" अर्थात् सब देवोंकी अनेक शक्तियां इसमें संगृहित हुई हैं। इसलिए द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि—"जो यह बल वर्धक सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंसे भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है।" अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ़ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है। यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है इसलिये इसका इतना ही मनन पर्याप्त है। यही मंत्र यजुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ यजु १९।७१

यह देवोंसे उत्पन्न हुआ पहिला तेज है, इसलिये राक्षस और पिशाच भी इसके पास नहीं हो सकते। जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करता है।'

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें थोडा भेद है और जो अधिक पाठमें ओषेषु कृणुते दीर्घमायुः इतनाही था वहां ही इसमें 'देवेषु और मनुष्येषु" ये शब्द अधिक हैं। ओषेषु शब्दका ही यह " देवेषु, मनुष्येषु " आदि शब्दोंद्वारा अर्थ हुआ है। इस प्रकार अन्य शाखाविहितोंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करनेमें बडी सहायता होती है।

यहां तक दो मंत्रोंका मनन हुआ। इन दो मंत्रोंमें शरीर में सुवर्ण धारण करनेकी बातका उपदेश किया है अब अगले दो मंत्रोंमें उस वनस्पति तथा ऋतुधर्मानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अंतर्बाह्य सेवन करनेकी महत्वपूर्ण विधा दी जाती है उसका पाठक विशेष ध्यानसे मनन करें।

तृतीय मंत्रमें कहा है—"बल और ओषधियोंके तेज शक्ति यदि, बल और दीर्घायुष्य इनको इस लिये धारण करते हैं कि जैसे आरामसे इंद्रिय शक्तियां धारण हुई हैं। इसी प्रकार बल बढानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णको भी धारण करे।

बलमें माता ओषधियोंके गुण हैं यह बात इसके पूर्व आये हुये बल सूक्तोंमें वर्णन हो चुकी है। वे सूक्त पाठक यहां देखें। औषधियोंके अंदर दीर्घायुष्य रस हैं इसीलिये वैद्य ओषधि प्रयोग करते हैं, अथर्ववेदमें भी यह बात आगे आजायगी। जिस प्रकार बल और अंतर्बाह्य पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है इसी प्रकार नाना प्रकारके दीर्घायुष्य ओषधियोंके पक्व हिम मिश्र अन्न सेवन पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घ जीवन भी प्राप्त करता है। सुवर्ण सेवनसे भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवनसे भी इसी प्रकार लाभ होते हैं इसका वैद्यशास्त्रमें नाम " रस प्रयोग" है। यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये। यहां यजुर्वेदका इसी प्रकारका मंत्र देखिये—

सुवर्णके गुण।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्वायाविशतादु माम्॥
वा यजु. १४।५

" (आयुष्य) दीर्घ आयु करनेवाला (वर्चस्यं) कान्ति बढानेवाला (रायस्पोषं) शोभा और पुष्टि बढानेवाला (औद्भिद) वनसे उत्पन्न होनेवा । अथवा ऊपर उठ नेवाला (वर्चस्वत्) तेज बढानेवाला (जैत्राय) विजयके लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मां उ आविशतात्) मुझ अथवा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो।

सुवर्णका सेवन।

यह मंत्र सुवर्णके अनेक गुण बता रहा है। इतने गुणोंकी वृद्धि करनेके लिये यह सुवर्ण मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हो यह इच्छा इस मंत्रमें स्पष्ट है। अर्थात् परिशुद्ध सुवर्णके सेवनसे ये गुणोंकी शरीरमें वृद्धि हो सकती है। इस मंत्रमें ' हिरण्य आविशात" ये शब्द सुवर्णका शरीरमें घुस जाने का भाव बताते हैं अर्थात् वह केवल शरीरपर धारण करना ही नहीं। प्रस्तुत अन्यान्य आधारोंके समान इसका अंदर ही सेवन करना चाहिये शरीरपर सोनेका धारण करना और सुवर्णका अंदर सेवन करना इन दोनों रीतियोंसे मनुष्य पूर्वोक्त गुण बढाकर अपना दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है। अब चतुर्थ मंत्र देखिये—

मनुष्यके शरीरमें देवोंके अंश।

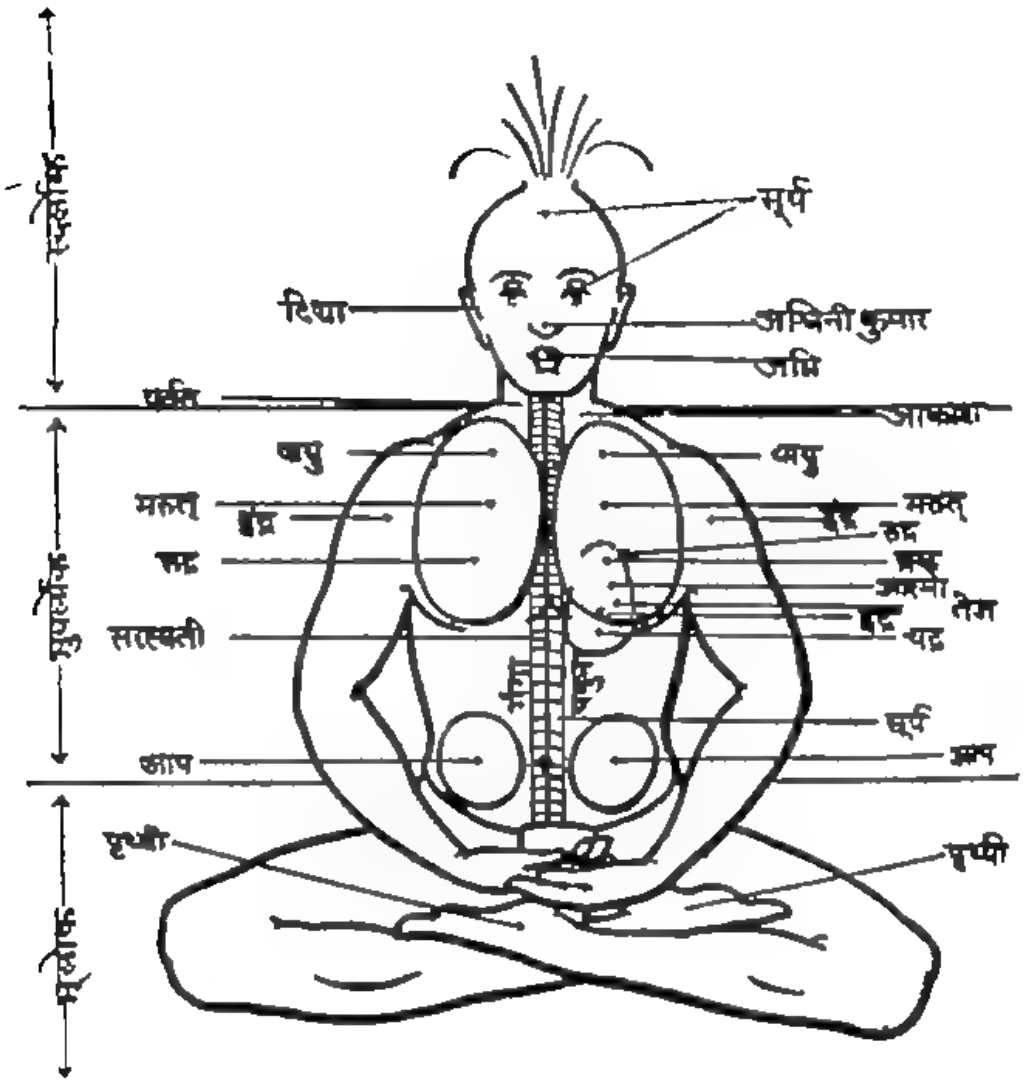

जगत्में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में है। इनके स्थान इस चित्रमें बताये हैं। इससे मालूम होता है कि बाह्य जगत् के अग्नि आदि देवोंकी सहकारिताके साथ शरीरके स्वास्थ्यका कितना घनिष्ठ संबंध है।

काली कामधेनुका दूध।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है—काल्यसौ संवत्सरः (काली काम धेनुका) दूध जो ऋतुओंके द्वारा मिलता है उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विश्वेदेव आदि सब पूर्णतासे अनुकूल रहें।"

संवत्सर—वर्ष अथवा काल—यह एक कामधेनु है। काल श्यामवर्ण होनेसे इसको काली धेनु कहते हैं यह इसलिये कामधेनु कही गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित सब काम्य अन्न पदार्थ ऋतुओंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल भाला प्रकारके अन्न और फूल संवत्सर देता है इसलिये वेदमें संवत्सरको पिप्पली कहा है और वहां स्मरण रखने देनेवाली कामधेनु कहा है। हरएक ऋतुमें कुछ अमीन अन्न फूल काम्य आदि मिलता है वही इस धेनुका दूध है। यह दूध हरएक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निचोडकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं यह अद्भुत अलंकार इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का आस्वाद करें।

प्रत्येक मासमें प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक दिनमें जो जो

फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल तेज वीर्य आयुष्य आदि बढ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको समझ करने योग्य है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ व प्रयत्नसे ऋतुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंको लाभ पहुंचावे।

पूर्व मंत्रमें "(अपां ओषधीनां च वीर्यादि) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रमें किया है। जिस ऋतुमें जो फल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना है उस ऋतुमें उसका संग्रह करके उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु बल तेज कांति शक्ति वीर्य आदि गुण अपने में बढाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरणमें लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि कोई निर्वीर्य निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान् बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्योंका ही दोष है। पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेशको आचरणमें नहीं लाते वे लोग प्रयत्न करके इस विषयमें योग्य सुधार अवश्य करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव मनन करने योग्य है। इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनुकूलतासे सहायता करें" अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके बिना कौन मनुष्य कैसे उन्नतिको प्राप्त हो सकता है? अग्नि ही हमारा अन्न पकाता है वायु ही हमारी शुद्धि श्वास करता है, पृथ्वी हमें आधार देती है जिसकी सबको चिंता होती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करनेसे हमारा सहायक बनता है इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं। इनके प्रतिनिधि हमारे शरीरमें रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनांश हमतक पहुंचा रहे हैं। इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है इसलिये यहां अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मनमें आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे [illegible] हो रही है और यदि इनकी सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक काम उठानेकी विधि ज्ञात हो तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु आरोग्य बल और वीर्य बढाकर जगत् में चमकते होंगे।

यहां यह अनुवाक और प्रथम खण्ड समाप्त।

प्रथम काण्डका मनन।

थोडासा मनन।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक ७ अनुवाक पैंतीस सूक्त और १५२ मंत्र हैं। इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय वस्तुमेलाभ होनेके वास्ते हैं—जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभदायक होगा—

अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वा	वाचस्पति	अथर्वण गण	वेदाध्ययन
२	"	पर्जन्य	अथर्वणिवत्य	विजय
			कौशिक गण	
३		मैत्रावरुण(वृष्टी, मित्र		
		वरुण चंद्र, सूर्य)	——	आरोग्य
४	सिंधुद्वीप।	आप।	——	
			——	
५		"	——	"
		(इति प्रथमोऽनुवाकः)		
६	चातन।	इन्द्राग्नी	——	अनुवासन
८		अग्नि, बृहस्पति।	——	
९	अथर्वा	वनस्पतय।	अथर्वण गण	तेजस्वी प्रगति
१०		अश्वत्थो वनस्पति।	——	पापनिवृत्ति
११		पृथ्वी	——	सुखसमृद्धि
		(इति द्वितीयोऽनुवाकः)		
१२	सूर्यसावित्र	वनस्पतयः	वनस्पत्यवयव	रोगनिवारण
१३		सिंधु	——	ईप्सितप्राप्ति
१४	"	वनो वनस्पतयो वा	——	दुःखदुरितनिवारण
१५	अथर्वा	सिन्धु	——	सैन्यठण
१६	चातन।	अग्नि इंद्र, वरुण। अनुवासन गण		अनुवासन
	(इति चतुर्थोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ।)			
१	ब्रह्मा	रोहित्	——	ऐश्वर्य-वृद्धिकरण
१८	इध्मवाह।	विनायक कौशाग्नि	——	सौमनस्यवर्धन
१	ब्रह्मा	ईश्वर। अग्नि	कौशिकगण	अनुवासन
२	अथर्वा	रोहित	——	सहाय प्राप्ति
११		इन्द्र	अथर्वण	अनुवासन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः)

२२	ब्रह्म	सूर्यः हरिमा हरोगः	——	हरण तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	——	कुष्ठनाशन
४	ब्रह्मा	आसुरी वनस्पतिः	——	
२५	सूर्यचिरा	अग्निः तक्मा	तक्मनाशनपक्ष	ज्वरनाशन
२६	ब्रह्म	इन्द्राग्नयः	स्वस्त्ययनपक्ष	सुखप्राप्ति
२७	अथर्वा	इन्द्राणी	,,	विजयी स्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययन	,,	कुष्ठनाशन

(इति पंचमोऽनुवाकः)

२९	वसिष्ठः	अयोदष्टेऽग्निः	——	रक्तदूषण
१	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्यपक्ष	आयुष्यवर्धन
११	ब्रह्मा	आत्मपाकाः वास्तोष्पतिः	वास्तुपक्ष	आत्मपाकन
१२		द्यावापृथिवी	——	जीवनतत्त्व
१३	इन्द्राति	आपः । चन्द्रमाः	क्षांतिपक्ष	अन्न
१४	अथर्वा	मधुमती	——	मीठा जीवन
१५		हिरण्यं इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः	——	दीर्घायु

(इति पञ्चमोऽनुवाके द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः)

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और मन्त्रोंका विभाग जाननेकी भी अत्यंत आवश्यकता है। इसलिये वे नीचे देते हैं—

ऋषि विभाग ।

१ अथर्वा ऋषिः- १ ३; ९ ११; १५; २ ; २३; २३ २७; १ ;१४; १५; इन चौदह सूक्तोंका अथर्वा ऋषि है।

२ ब्रह्मा (विश्वा ब्रह्म) ऋषिः- १७ १९ २२, २४ २६ ३१ ३२ इन सात सूक्तोंका ऋषि ब्रह्मा है।

३ चातन ऋषिः-७ ८ १६ २८ इन चार सूक्तोंका चातन ऋषि है।

४ सूर्यचिरा ऋषिः-१२—१४; २५ इन चार सूक्तोंका सूर्यचिरा ऋषि है।

५ विप्रुषीय ऋषिः- ४ ६ इन तीन सूक्तोंका विप्रुषीय ऋषि है।

६ विश्वेदेवा ऋषिः- १८ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

७ वसिष्ठ ऋषिः—२९ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

८ इन्द्राती ऋषिः—११ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

इस प्रकार आठ ऋषियोंके देखे मंत्र इस काण्डमें हैं। यह जैसा ऋषियोंके नामसे सूक्त विभाग हुआ है उसी प्रकार एक एक ऋषिके मंत्रोंमें किस किस विषयोंका विचार हुआ है यह अब देखिये—

१ अथर्वा ऋषि—मेधाजनन विश्वेजनप्राप्ति आरोग्यप्राप्ति तेजःप्राप्ति पापनिवृत्ति सुखप्रसूति संग ठन राजशासन प्रजाशासन कुष्ठरोग निवृत्ति विजयी स्त्री आयुष्यवर्धन मीठा जीवन आयुष्य यज्ञादिसंवर्धन ।

२ ब्रह्मा ऋषि—राजशासन कुष्ठरोग यक्ष्मनाशन संग्राम हरण तथा कामिला रोग हरीकरण कुष्ठनाशन सुखवर्धन आत्मपाकन दीर्घजीवन ।

३ चातन ऋषिः—शत्रुनाशन सुखसाधन।
४ भृग्वंगिरा ऋषिः—दीर्घजीवन ज्वरनाशन ईप्सितलाभ विचार।
५ सिंधुद्वीप ऋषिः—जलसे आरोग्य।
६ अथर्वा ऋषिः—सौभाग्यवर्धन।
७ वसिष्ठ ऋषिः—शत्रुपराजयन।
८ शान्ताती ऋषिः—वृद्धि बलसे स्वास्थ्य।

इस प्रकार जिन ऋषियोंके नामोंसे जिन जिन विषयोंका संबंध है यह देखना बड़ा बोधप्रद होता है। (१) सिंधुद्वीप ऋषिके नाममें "सिंधु" शब्द बड़े प्रवाह का वाचक है और यही बड़े देवताके मन्त्रोंका ऋषि है। (२) चातन ऋषिके चातन अर्थात् "चातन" शब्दका अर्थ जबरदस्त मच्छेदना चतुरो उखाड़ देना " है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है। इस प्रकार सूक्तोंके अवर अनेकका विषय और ऋषियोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर अनिष्ट संबंध दिखाई देता है। इसका विचार करना योग्य है।

सूक्तों के गण।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तोंपर विचार किया था; उन्होंने इन सूक्तोंके गण बना दिये हैं। एक एक गणके संपूर्ण सूक्तोंका विचार एक साथ होना चाहिये। ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुलभ हो जाता है। इस प्रथम काण्डके तैंतीस सूक्तोंमें कई सूक्त कई गणोंके अंदर आगये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं। जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अर्थकी दृष्टिसे इन अन्यगणोंके साथ पढ़ सकते हैं। इस प्रकार गणशः विचार करनेसे सूक्तोंका बोध शीघ्र हो जाता है देखिये—

१ वर्चस्य गण इसके सूक्त १ २ ३ ये हैं। तथापि तेज आरोग्य आदि वर्चस्यका उपदेश करनेवाले सूक्त इस इस गणके साथ पढ़ सकते हैं, जैसे — सूक्त १—६, १८ २५, २६ १ ३१ ३४ ३५ आदि।

२ अपराजित गण, सांग्रामिकगण इसके सूक्त २ १५ ये हैं तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले अभय गणके सूक्त हैं। तथा राष्ट्रभृद्गण और राज्य पालनके सब सूक्त इसके साथ संबंधित हैं जैसे—सूक्त ७ ८ १५ १६ १७ २ २१ २७ २९ ३१ आदि।

३ तक्मनाशन गण—इस गणके सूक्त ११ २५ ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्यवर्धक सूक्त इस गणके सूक्तोंके साथ पढ़ने चाहिये। जैसे सूक्त १–६, १७ २१ २१ २५, ३१ ३५, आदि—

४ दीर्घायुष्यगण—इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं।

५ आयुष्यगण—इस गणके सूक्त १, ३५ ये हैं, तथापि दीर्घायुष्यगण वर्चस्यगण तक्मनाशनगण तथा सांग्रामिकगणके सूक्तोंका इसमें संबंध है।

६ सांग्रामिकगण—सब देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं।

७ अभयगण— इसका सूक्त २१ वां है तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण दीर्घायुष्यगण अपराजितगण तक्मनाशनगण, चातन सूक्त ये हैं।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है।

अध्ययन की सुगमता।

कई पाठक पूछा करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब जगहों क्यों दिये हैं। इसका उत्तर यह है कि यदि सब आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते तो अध्ययन करनेवालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बड़ा श्रम हो जाता। अध्ययनकी सुविधाके लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं। अच्छे पाठशालाओंमें अच्छे दो पण्डितों भिन्न भिन्न विषय पढ़ाते जाते हैं इसका यही कारण है कि पढ़नेवालोंके मस्तिष्कको श्रम न हो। सर्वदेवी सामान्य एक ही विषयका अध्ययन करना हो तो पढ़ने पढ़नेवालोंको अतिश्रम होते हैं। इस बातका अनुभव हरएकको होगा।

इससे पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयोंके सूक्त मिलेजुले दिये हैं।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है वह यह है कि, पूर्वापर संबंधका अनुसंधान करने और पूर्वापर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो। यदि अनुसूक्त प्रथम काण्डमें आया हो तो आगे जहां जहां सूक्त आयावं वहां वहां इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये। इस प्रकार स्मरणशक्ति भी बढ़ सकती है। स्मरणशक्तिका बढ़ना और पूर्वापर संबंध बोधनेका

अभ्यास होना है दो महत्वपूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य है दो पाठ हैं। दो प्र-पाठ-क" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। गुरुसे एकबार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक-प्र-पाठ-क होता है। इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढ़ाई है। अथवा एक अनुवाकका एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथमकाण्ड दो पढ़ाई या पाठोंकी मानी जा सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढ़ने पढ़ानेवालोंको बड़ी रोचकता उत्पन्न हो सकती है

आवश्यक इतनी पढ़ाई नहीं हो सकती यह बुद्धि कम होना या ग्रहणता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रबुद्ध विद्यार्थीके ही पढ़नेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रबुद्ध तथा अन्य छात्रोंमें कुछपरिश्रम उक्त प्रकार पढ़ाई कर सकते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है।

अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता।

जो पाठक इस प्रथम कांडके सब मन्त्रोंको अच्छी प्रकार पढ़ेंगे और थोड़ा मनन भी करेंगे तो उनको उसी समय इस शास्त्रका पता लग जायगा कि इस वेदका उपदेश इस समयमें भी अधीव और अत्यंत उपयोगी तथा व्यक्ति ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। कुछ पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि यह उपाय आज ही इस आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठायेंगे। उपदेश की सार्वत्रिकता और आत्मतत्व इसी बातमें पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे खड़ी हो जाती है।

वेद सब ग्रंथोंसे पुराने ग्रंथ होनेपर भी नवीन से नवीन है और यही इसकी "सनातन विद्या" है, यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पढ़ेगा उसको उसी अवस्थामें और उसी समय अपनी उन्नतिका उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम कांडके सूक्त पढ़कर पाठक इस बातका अनुभव करें और वेद विद्याका महत्व अपने मनमें स्थिर करें।

ये उपदेश जैसे व्यक्तिके विषयमें उसी प्रकार सामाजिक राष्ट्रीय और धर्म प्रचारके विषयमें भी सार्थ और सनातन प्रतीत होंगे। इस समय जिनका उपयोग नहीं हो सकता ऐसा कोई विचार इसमें नहीं है। परंतु इन उपदेशोंका महत्व देखनेके और अनुभव करनेके लिये पाठकोंको इस काण्डका पाठ कमसे कम इस पांच बार मनन पूर्वक करना चाहिये।

व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १९ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्यके स्वास्थ्य आरोग्य नीरोगता, बल आयुष्य बुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हरएक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेशसे काम उठा सकता है। आरोग्यवर्धनके वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस काण्डके सूक्त हैं उनका मनन पाठक उससे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें इन उपायोंको ग्रहणमें जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्यवर्धनके उपायोंमें सारांशरूपसे इन उपायोंका वर्णन विशेष रूपसे इस काण्डमें किया है—

सबसे आरोग्य- सबसे आरोग्य होता है, शरीरमें शांति सुख नीरोगता आदि प्राप्त होती है यह बतानेवालेके रूप देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके रोगोंका इन सूक्तोंसे वर्णन करनेके बाद दिव्य जल अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाले जलका महत्व बताया है यह कभी भूलना नहीं चाहिये। वृष्टिके दिनोंमें जिस दिनोंमें खूब जलकी वृष्टि होती है-उन दिनोंमें इस जलका संग्रह हरएक एरस्थी कर सकता है। जहां वृष्टि बहुत थोड़ी होती है वहांकी बात छोड़ दो बाकी तो सर्वत्र यह जल साधारणके पीनेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु स्मरण रखना चाहिये कि घरके छापरपर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर खुले और बड़े मुखवाला बर्तन रखकर उसमें सीधी वृष्टिधाराओंसे जल संगृहीत करना चाहिये। अर्थात् ऐसा इंतजाम करना चाहिये कि वृष्टिजल की धाराएं सीधी अपने बर्तनमें आवें। बीचमें छत छापर आदि किसीका स्पर्श न हो। इस प्रकारका इकट्ठा किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोतलोंमें भरकर रखनेसे खराब नहीं रहता है और विषहर नहीं। यह जल यदि अच्छा रखा तो दो वर्षतक रहता है और इसका यह न बिगड़नेका गुण ही मनुष्यका आरोग्य वर्धक करता है।

उपवासके दिन इसका पान करनेसे शरीरके सब दोष दूर होते हैं। चौबीस घंटोंका उपवास करके उसमें जितना यह दिव्य जल पिया जाय उतना पीना चाहिये। यह प्रयोग हमने आजमाया है और हर अवस्थामें इससे लाभ हुआ है। इस प्रकारके उपवासके पश्चात् थोड़ा थोड़ा दूध और पी अथवा

चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये। हरीतकी भी पीनेके लिये इसका उपयोग करनेवालेको बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसका नाम 'अमरताकी का पात्र' है। इसीसे सुरा भी कहते हैं। सुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है परंतु प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका अर्थ 'दृष्टि बल' भी था। वरुण का जन साम्राज्य मेघ मंडल में है और वही इस आरोग्य वर्धक दृष्टि बल को देता है। इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है।

वेदका यह आरोग्य प्रक्रिया कोवा सुलभ और स्वल्प व्यय साध्य उपाय यदि पाठक व्यवहारमें लावेंगे तो वे बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये हम अनुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हो और अपना काम उठावें।

आरोग्य साधनके अन्य उपाय।

अबके पश्चात् आरोग्य साधनके उपाय जो वेदमें बताये गये अब देखिये-

(१) तैजस उपायोंसे आरोग्य- अग्नि विद्युत् और सूर्य किरण ये तीन तैजस तत्व हैं। इनसे आरोग्य प्राप्त करनेके विषयमें वेदमंत्रोंमें बारंबार उपदेश आता है। इनमें से सूर्य प्रकाशका महत्व तो सबसे अधिक है यहां तक इसका महत्व वर्णन किया है कि इसको प्राणदाता, जीवन दाता इतना ही नहीं परंतु प्रत्यक्ष आत्मा भी कहा है। सूर्य प्रकाशसे आरोग्य और दीर्घ आयु प्राप्त होनेके विषयमें वेदका निश्चित और असंदिग्ध मत है। संपूर्ण आधुनिक शास्त्र भी आजकल इसकी पुष्टि कर रहे हैं।

विद्युत प्रकार वृष्टिजल नदीसे नदीको और समीरसे समीरको प्राप्त हो सकता है उसी प्रकार सूर्य प्रकाश भी हरएक को प्राप्त हो सकता है। सबसे प्राप्त होनेवाले आरोग्य साधक उपाय तो सभी लोग ही प्राप्त कर सकते हैं परीक्षोंको उससे काम नहीं हो सकता। परंतु जो साधन वेद बता रहा है वे उपाय परीक्षको भी प्राप्त हो सकते हैं। यह इन पंक्तियोंका महत्व देखें और इन उपदेशोंकी सचाई अनुभवमें लानेका यत्न करें।

आजकल कपड़े बहुत पतले बनते हैं इसलिये शरीरकी चमड़ी अति कोमल हो रही है। इस कारण व्याधियां शरीरमें शीघ्र घुसती हैं। जो लोग मोटे कपड़े जाड़ेमें काम करते हैं उनको उतनी व्याधियां नहीं होती जितनी कमतीमें विशेष तंग कपड़े पहननेवाले बाबू लोगोंको होती हैं इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके साथ संयोग होनेके कारण सतेज रहता है वे तन्दुरस्त रहते हैं और जो पतला कपड़े पहननेके कारण कमजोर चमड़ी वाले बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं।

रामायण महाभारतके समयमें रामकृष्णादि वीर अतिवीर्यवाले थे। वे वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढ़ते थे। प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे। पाठक इनके वर्णन यदि पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजावेगी कि समरांगणमें भी वे लोग केवल धोती पहनकर ही बैठते थे। इसप्रकार इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाशका संयोग अच्छी प्रकार होजाता था। अनेक प्रकारोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु से अतिवीर्यवान्‌वाले और अति बलवान् थे। यह बातभी इस समय नहीं रही है और इस समय बड़ी हानिकारक हमारे जीवन व्यवहारमें आगयी है इसका परिणाम हमारे अल्पायु दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है। पाठक वेदके उपदेशके साथ इस ऐतिहासिक बातका भी मनन करें।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें सृष्टिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुना अधिक है। इतना होते हुए भी हम लोगोंने घर मकान अंधेरे कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्यों की संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यप्रकाश हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रतिदिन आता है तथापि हमारेलिये वह उतना काम नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पहुंचाने में समर्थ है। वे सब दोष मनुष्यकृत हैं। सद्विवेकबलसे हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और यथोचित हो उसे वहां तक शीघ्र करके यह आरंभी हमारे चारपास यथाशक्य उत्तम सामान्य व्यवहारमें आनी चाहिये। वेदके उपदेशानुसार यदि हमारा व्यवहार रहते से इसलिये यदि लोगोंमें अतिवीर्य आयु प्राप्त होती थी और हम उससे वंचित बनते जा रहे हैं इसलिये हमारे बलमें हम अधिक हो रहे हैं।

(२) वायुसे आरोग्य- सूर्य प्रकाशके समान ही वायु महत्व है। यही प्राण बनकर मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरमें रहता है और इसीके कारण प्राणी प्राण धारण करते हैं। यदि वायु अशुद्ध हुआ तो मनुष्य रोगी होनेमें बिलकुल देरी नहीं लगेगी। यह बात सब लोग जानते हैं मानते हैं और बोलते भी हैं, परंतु इसका पालन कितने लोग करते हैं इसका विचार करनेसे पता लग जावेगा कि इस विषयकी मनुष्योंकी उदासीनता कितनीय

ही है। चन्द्रमा वायु और सूर्य प्रकाश मनुष्योंको पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका काम कैसे हो सकता है? वशिष्ठजी सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढ़ानेवाले बताते हैं और आजकलके डाक्टरी उस बातको पुष्टि कर रहे हैं इतना ही नहीं परंतु युरोप अमेरिकामें जहां शीत अधिक होता है उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहां आरोग्य वर्धनके लिये सूर्य प्रकाशमें शरीर खोल रखना आवश्यक माना गया है। जिन लोगोंने सेन डलके पहननेके रिवाज जारी किये थे वही युरोप अमेरिकाके लोग इस प्रकार फादिरमिन की ओर मुड़ रहे हैं यह देखकर हमें बड़ी सचाइस्य जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है। जिन प्रकार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सचाईका इस प्रकार ग्रहण कर रहे हैं, ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वेदका अध्ययन करेंगे उन वेद मंत्रोंके उपदेशको अपने आचरणमें लायेंगे और अनुभव लेनेके पश्चात् अपने धार्मिक जीवनसे उस सचाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत्में इस सचाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इसलिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजकताके लिये न करें, केवल पारलौकिक मानवाले भी न करें, प्रत्युत यह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार लाया जा सकता है, इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब इसके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

राष्ट्रीय जीवन।

जैसे वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशकी उपयोगिता है उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके लिये भी वेदके उपदेश अति मनन करने योग्य है। यह विषय आगेके कांडोंमें विशेष रीतिसे आनेवाला है और वहीं इसका अधिक विस्तार होगा। इस प्रथम कांडके भी राष्ट्र विषयक मंत्र बड़े ओजस्वी और आवेश पोषक हैं।

उनतीसवें सूक्तमें 'राष्ट्रके लिये मुझे बढ़ाओ' तथा 'राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आयुष्य मेरे शरीरमें बांधा जावे' इत्यादि ओजस्वी उपदेश हरएक समयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप है। राष्ट्रीय दृष्टिसे यह संक्षिप्त सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आगये हैं उन सबका यहां विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उस उस सूक्तके प्रारंभमें ही विशेष बातका विवरण किया है। इसलिये उसको दुहराने की यहां कोई आवश्यकता ही नहीं है। पाठक इस कांडका बारंबार मनन करेंगे तो मनमें उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जायगी जो उपरके विवरणमें लिखी गई है। वेदका अर्थ जाननेके लिये मनन ही करना चाहिये।

आशा है कि पाठक मनन पूर्वक इस कांडका अभ्यास करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करेंगे। अन्त करेंगे तथा जो विशेष बात अनुभवमें आ जायगी उसका प्रकाशन अवश्यकी मर्यादाके लिये करेंगे। इस प्रकार कामसे सबका ही भला हो जायगा।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

प्रथमकाण्डकी विषय-सूची।

सूक्त	विषय	पृष्ठ
	अथर्ववेदके विषयमें स्मरणीय कथन।	१
	अथर्ववेदका महत्व।	
	अथर्वशाखा।	
	अथर्वके कर्म।	
	मनका सम्बन्ध।	४
	शान्तिकर्म के विधान।	
	मन्त्रोंके अनेक अर्थत्व।	५
	सृष्टिके पद।	६
	अथर्ववेदका महत्व।	,,
	अथर्ववेद प्रथम काण्ड।	८
१ मेधाजनन।		९
	बुद्धिका संवर्धन करना।	,,
	मनन।	११
	अनुसंधान।	१२
२ विजय-सूक्त।		,,
	वैयक्तिक विजय।	१३
	पिताके गुण धर्म-कर्म।	
	माताके गुण-धर्म-कर्म।	,,
	पुत्रके गुण-धर्म-कर्म।	,,
	एक अद्भुत अलंकार।	१४
	कुटुम्ब का विजय।	
	पूर्वापर सम्बन्ध।	१५
	कुटुम्बका आदर्श।	
	ओषधि प्रयोग।	
	राष्ट्रका विजय।	१६
३ आरोग्य सूक्त।		
	आरोग्य का साधन।	१
	धर्मसे आरोग्य।	७
	मित्र (प्राण) वायुसे आरोग्य।	
	वरुण (जल) देवसे आरोग्य।	,,
	चन्द्र (क्षेम) देवसे आरोग्य।	१८
	सूर्यदेवसे आरोग्य।	
	उपसंहार विधि।	,,
	पृथ्वीमें जीवन।	
	मृत्युसे निवारण।	१९
	पूर्वापर सम्बन्ध।	
	शरीर शास्त्र का ज्ञान।	,,
४ अज सूक्त।		
५	,,	२१
६	,,	२२
	अजकी नित्यता।	
	अजमें जीवन।	२३
	समता और विषमता।	
	अजकी वृद्धि।	२४
	दीर्घ आयुष्यका साधन।	
	प्रजनन शक्ति।	,,
७ धर्म प्रचार-सूक्त।		२५
	अग्नि कौन है?	६
	ज्ञानी उपदेशक।	,,
	अग्न क्षत्रिय।	
	इन्द्र कौन है?	
	धर्मोपदेश का क्षेत्र।	
	पृथ्वीका सुधार।	२७
	मित्र मोक्षप्रद हो	२८
	दुष्ट जीवनका पश्चात्ताप	
	धर्मोपदेशक कार्य चलाने	
	पृथ्वीकी पश्चात्तापसे शुद्धि।	२९
	धर्मका दूत।	,,
	वायुओंको दण्ड।	
	आकाश और द्यावापृथिवीके प्रजापति प्रमाण।	३
	धर्म-प्रचार-सूक्त	,,
	धर्मोपदेशका परिणाम।	३१
	धर्मविरोधका आदर।	,,
	पृथ्वीकी कल्याणमय सुधार।	३२
	घरोंमें प्रचार।	,,

९ वर्चः-प्राप्ति-सूक्त। ३३
देवताओंका सम्बन्ध।
उपनिषद मूलमन्त्र। ३४
विद्यार्थीके लिये संयम। ३५
ज्ञानसे आत्मिक भेड़ियोंकी गति।
अन्तरात्मा मजबूत करना।
उपनिषदें चार बीडियां। ३६
इस सूक्तोंका स्मरणीय उपदेश। "
१० असत्य आचरणादि दोषोंसे छुटकारा। ३७
पापसे छुटकारा पानेका मार्ग। ३८
एक शासक ईश्वर।
ज्ञान और भक्ति।
प्रायश्चित्त।
पापी मनुष्य। ३९
११ सुख-प्रशंसा-सूक्त। "
प्रशंसा प्रकरण। ४०
ईश्वरभक्ति।
देवोंका धर्ममें विश्वास। ४१
धर्मपत्नी स्त्री।
धर्म।
सुख प्रशंसाके लिये आदेश। ४२
गार्हपत्य व्यवस्था
सूचना। १
१२ व्याधादि-रोग निवारण सूक्त। ४३
महत्त्वपूर्ण शब्द। ४४
आरोग्य का दाता।
सूर्य किरणोंसे चिकित्सा। ४
सर्व व्याधिहरण उपाय।
१३ अन्तर्यामी ईश्वरका भजन। ४६
सूक्त की देवता।
उषाका महत्व। ४
परम धाम। ४८
मुक्तिमें सहायता।
भजन।
१४ शुकवत् सूक्त। ,
पहिला प्रस्ताव। ४९
प्रस्तावका अनुमोदन। ५
वरकी परीक्षा। "
पतिके गुणधर्म।
वधू परीक्षा। ५१
कन्याके गुणधर्म।
मंगलीक समय। "
विदाकी तय्यारी।
मंगलीके पश्चात् विवाह। ५२
१५ संगठन-महायज्ञ-सूक्त
संगठनसे अधिकी वृद्धि। ५३
यज्ञमें संगतिकरण। "
संगठन का प्रचार। ५४
पशुमात्र का यज्ञ। "
पशुमात्र होमनेका फल। "
१६ वीर-आवाहन-सूक्त ५५
वीरोंकी वीरी।
वधू। "
आर्य वीर। ५६
१७ रक्षाबन्धन करना।
पाश और रक्षाबन्ध। ५
दुर्भाग्य की जड़।
विषयोंके पाश। "
१८ सौभाग्य वर्धन- सूक्त। ५८
दुर्भाग्य और सुभाग्य। ५९
पतीके सुभाग्योंसे इतना।
अग्निसे प्रेरणा।
हाथों और पगोंका वर्णन। ६
सौभाग्यके लिये। "
अन्तरात्मा बलवान।
१९ वधू-नारायण- सूक्त। "
आन्तरिक बन्धन। ६१
इस सूक्तके दो विभाग। "
वैदिकधर्मका सत्य। आशीर्वाद
आत्म बन्धन। ज्ञान बन्धन। ६२
राष्ट्रबन्धका मंत्र। "
२० महान् शासक। ६३
पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध।
आपकी पूर्ण दया हो।
महा शासक। ६४

२१ प्रजा-पालक- सूक्त। ,
धात्र धर्म। ६५
२२ हृद्रोग तथा कामिलारोगकी चिकित्सा। ६५
धर्म चिकित्सा। ६६
सूक्तिरेण चिकित्सा।
परिधारण विधि। "
रूप और बल।
रक्तीन गोंदे सूक्तसे चिकित्सा। ६७
पथ्य।
२३ कृत-कुल्ल- साधन सूक्त। ६७
श्वेतकुष्ठ। ६८
निदान। ,
दो भेद और उनका बताव
रोगका लक्षण।
औषधियोंका पोषण।
२४ कुष्ठ नाशन-सूक्त। ६९
वनस्पतिके नाम गिनाए।
संख्या-क्रम। ७
वनस्पतियोंका विभाग।
सूक्तका प्रभाव।
सूक्तके दोनों भाग। "
२५ शीत—ज्वर—दूरीकरण सूक्त। ७
ज्वरकी उत्पत्ति। ७१
ज्वरका परिणाम।
हिमज्वरके नाम। ७२
मन्त्र छन्द। ७३
२६ सुख-प्राप्ति-सूक्त। ७३
देवोंसे विनय।
विशेष सूचना ७४
२७ विजयी की का वर्णन। ७५
इन्द्राणी।
वीर स्त्री। "
अनुष्टुप छन्द। ७६
तीन मुख्य भाग।
निर्देशन।
२८ कुष्ठ-नाशन-सूक्त। ७
कुष्ठोंका सम्बन्ध। "
कुष्ठोंके लक्षण। ७८
कुष्ठोंका सुधार।
२९ राजू-संवर्धन-सूक्त। ७९
अनुसन्धान। ८
अभीवर्त मणि
इस सूक्तका संवाद।
राजाके गुण। "
राजचिह्न। ,
राजुके लक्षण। ८२
उसकी उपयोगिता।
केवल राजूके लिये। ,
राजू का अर्थ। ८३
३० आयुष्य-वर्धन-सूक्त। "
आयुका संघर्षण। ८४
सामाजिक निर्भयता।
देवोंके आशीष आयुष्य। ८५
हम क्या करते हैं।
आदित्य देवोंकी आयुष्य। ८६
देवोंके पिता और पुत्र। ,
देवोंके स्थान। ८७
इक्यावनोंके चार वर्ग। ८८
३१ आत्मा-पालक-सूक्त। ८९
दिव्यपाल। ९
देहमें चार दिव्यपाल। ,
आत्मा और दिशा। ९१
सूक्तका मनुष्य शरीर भागार्थ।
मनुष्यमें चार द्वारोंकी चार आत्माएं।
विश्रुति द्वारमें प्रवेश। (चित्र) ९२
द्वार, आत्मा। ,
आरोग्यका आधार।
मस्तकमें विश्रुति द्वार। (चित्र)
मुख पंक्ति (चित्र)
विश्रुतिद्वार सहकारक मुख
मंत्रमें चक्षुरोंके स्थान। (चित्र) "
आत्मराम। ९
कामभोग। "
पंचमका भाग।
अमर विश्राम। ९

इन्द्रसे पूजन।	"
पापमोचन।	९५
अद्भुत देव।	९६
दीर्घ आयु।	
विशेष वृद्धि।	९७
१२ जीवन रसका महासागर	९७
स्थूल सृष्टि।	९८
जीवन का रस।	"
भूतमात्रका आत्मा।	
सनातन जीवन	१
अमृत के सदृशत्व	
जीवनका एक महासागर	९९
सबका एक आश्रय	
स्थूल सूक्ष्म और कारण	१
१३ अन्न सूक्त।	१
वृष्टिका अन्न	१ १
१४ मधु विद्या।	
मधु विद्या।	१ २
अन्न स्वभाव	
मीठा जीवन	१ ३

प्रतिष्ठा	"
मीठी वाक	"
१५ तेजस्विता अन्न और दीर्घानुष्ठानकी प्राप्ति।	१ ४
दाक्षायण हिरण्य	१ ५
दाक्षायणी निष्ठा	१ ६
सुवर्ण धारण	"
दाक्षायण और विश्वास	१
सुवर्णके गुण	"
सुवर्ण का विकल्प	
शरीरमें देवोंके अंश (चित्र)	१ ८
अग्नी कामधेनुका दूध	
अन्न अन्नका मनन।	११
सूर्योदय कोहरा	"
अग्निविमान	१११
सूर्यरोंके अन्न	१११
अन्नकी सुगमता	"
अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता	११२
व्यक्तिके विषयमें उपदेश	
आरोग्य आयुके अन्न उपाय	११४
राष्ट्रीय जीवन	११५

ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्यवाचस्पति, वेदालंकार मीमांसाकेसरी

अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल आनन्दाश्रम पो० पारडी (जि सूरत)

तृतीय वार

संवत् २००८, शके १८७३ सन १९५१

सबका पिता।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्न भुवना यन्ति सर्वा ॥ २ ॥

अथर्ववेद २।१।२

"वह ईश्वर हम सबका पिता उत्पादक और बन्धु है वही सब स्थानों और लोकोंको यथावत् जानता है। उसी अकेले ईश्वरको अन्य सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण मुवन उसी वन्दनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं।"

मुद्रक तथा प्रकाशक– पण्डित श्रीपाद सातवलेकर
भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मंडल, पारडी (जि. सूरत)

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
३	६	अंगिराः	मैत्रकर्णं आयुः, पन्थास्पतिः	अनुष्टुप्	६ स्वराडुपरिष्टाद्बृहती, स्वराडनुष्टुप्
४	,,	अथर्वा	चन्द्रमाः अग्निः	,	१ विराट् बस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः (आथर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्	१ २उपरिविष्टाद्बृहती (१ त्रिष्टुप्, १ विराट्) विराट् पथ्या बृहती, ३ अनुष्टुप् पुरोविराट्
द्वितीयोऽनुवाकः					
६	५	औशनाः (उपस्तम्भः)	अग्निः	,	१ चतुष्पदार्षी पंक्तिः ५ विराट् बस्तारपंक्तिः
७	,,	अथर्वा	मैत्रकर्णं आयुः वनस्पतिः	अनुष्टुप्,	१ भुरिक् २ विराडुपरिष्टाद्बृहती ३ पथ्यापंक्तिः ४ विराट् ५ त्रिष्टुप् पथ्यापंक्तिः
८		भृगुः (वांगिरसः)	वनस्पतिः पत्नीसंयाजार्थं,		१ विराट् बस्तारपंक्तिः
९	,,	,,	, ,,	,,	२ उपरिष्टाद्बृहती १-९ ७ ८ (१) उपरिष्टाद्बृहती, ६ उपरिष्टाद्बृहती ८ (१ १) द्वौ मन्त्रौ अनुष्टुभौ।
१०	८	,,	निर्ऋतिः, आपाग्निषोमौ यजादेवताः	१ त्रिष्टुप्,	
तृतीयोऽनुवाकः					
११	५	भृगुः	इन्द्राग्नीपर्वं इन्द्राग्निपरिहरणं		१ चतुष्पदा विराट् २-५ त्रिपदा परोष्णिहः ४ विपरीतविराजस्पदा त्रिष्टुप्
१२	८	अथर्वाणः	आपादेवताः	त्रिष्टुप्,	१ भुरिक् ७ ८ अनुष्टुभौ
१३	५	अथर्वा	अग्निः	, ,	३ अनुष्टुप्-पुरोविराट् भुरिक्
१४	१	भृगवः	आपः अग्निः अग्नीषोमदेवताः	अनुष्टुप्,	१ भुरिक्, ४ उपरिविष्टाद्बृहती, त्रिपदा प्राजापत्या बृहती
१५		अथर्वा	प्राणः अपानः आयुः		
१६	७	,,	,,		१ १ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी अनुष्टुप्, ४ ५ द्विपदासुरी भुरिक्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छन्द
१७	"	"		१ ६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक्.

चतुर्थोऽनुवाकः

१८	५	मातरः (सपत्न क्षयकामः)	अग्निः	आसी द्वितीया
१९		अथर्वा		१-४ त्रिपदाविराड्गर्भा गायत्री ५ भुरिग्विषमा
२	"	"	बाहुः	" "
२१		"	सूर्यः	"
२२			चंद्रः	
२३		"	आपः	" "
२४	८	ब्रह्मा	आयुष्यं	पंक्तिः
२५	९	मातरः	वनस्पतिः	अनुष्टुप् ४ भुरिक्
२६	"	अथर्वा	एतुः	त्रिष्टुप् १ उपरिष्टाद्बिराड्बृहती ४ ५ अनुष्टुभौ (४ भुरिक्)

पञ्चमोऽनुवाकः

२७	७	अथर्वाङ्गिरसः	वनस्पतिः आः इन्द्रः	अनुष्टुप्
२८	५	अथर्वा	अरिष्टा आयुः	त्रिष्टुप् १ जगती ५ भुरिक्
२९	७	अथर्वा	बहुदेवता	" १ अनुष्टुप् उपरिबृहती त्रिष्टुप् प्रस्तारपंक्तिः
३	५	प्रजापतिः	अग्निर्वा	अनुष्टुप् १ पञ्चपदापंक्तिः १ भुरिक्
३१	"	अथर्वा	मही चन्द्रमाः	२ उपरिष्टाद्बिराड्बृहती ३ आर्षीत्रिष्टुप् ४ प्रागुष्णिक् बृहती ५ प्रागुष्णिक् त्रिष्टुप्

षष्ठोऽनुवाकः

३२	१	"	अदितिः	१ त्रिपाद्भुरिग्गायत्री १ चतुष्पादतिशक्वरी
३३	७	ब्रह्मा	पञ्चमर्चं चन्द्रमाः आयुष्यं	१ ककुम्मती, ८ चतुष्पादुष्णिक् ५ उपरिष्टाद्बिराड्बृहती ६ उष्णिगर्भा त्रिपदानुष्टुप् ७ पञ्चपदापंक्तिः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
३४	५	अथर्वा	पशुपतिः	त्रिष्टुप्	
३५	,,	अंगिराः	विश्वकर्मा	,	१ बृहतीगर्भा, ४, ५ भुरिक्
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमौ		१ भूरिक् २ ५-७ अनुष्टुप् ८ विकृतिर्ब्राह्मी

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं। स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके जानने बहुत लाभ हो सकता है। अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कोष्टक देते हैं-

१ अथर्वा १ ७ ११ १९-२३, २१ ३१ ये सात सूक्त।
२ ब्रह्मा— १५-१७ २३ ३३, ये पांच सूक्त।
३ आंगिरसो भृग्वं—८-१ ये तीन सूक्त।
४ चातनः— १३, १८, २५ ,,
५ अंगिराः—३, ३५, ५ दो सूक्त।
६ काश्यः ११ ३२
७ आथर्वणो भृग्वं—५ यह एक सूक्त।
८ वेनः— १ ,, ,
९ मातृनामा— २
१० गौपथ — ६ ,,
११ ब्रह्म— ११ ,, ,,
१२ भरद्वाजः— १२ ,, ,,
१३ अथर्वा— १६ ,, ,
१४ कश्यपः— १७ ,,
१५ स्वयंभू— १८
१६ प्रजापतिः— १ ,,
१७ पतिवेदनः १६

ये ऋषि—क्रमानुसार सूक्त हैं। अब देवता—क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये-

१ ब्रह्म बहवः १ यह एक सूक्त।
२ गंधर्वः— २ ,,
३ इन्द्रः— ५ , ,,
४ अग्निः— ६ १३, १४ १८ १९ ये पांच सूक्त।
५ बृहस्पतिः— १ ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त।
६ द्यौर्वायुर्वा— १ ७ १५-१७, २४ २८ ये सात सूक्त।
७ आदित्यः— ८, ९ ११ १५-१७, २८ ये सात सूक्त।
८ चन्द्रमाः— ४ २१ ३१, ३३ ये चार सूक्त।
९ अग्निः —४ यह एक सूक्त —
१० निर्ऋतिः —१ , ,
११ वायुः —१७
१२ सूर्यः —२१ , ,,
१३ आदित्यः —३९ , ,,
१४ आपः —२३ ,, ,,
१५ अग्नीषोमौ —३ ,
१६ विश्वकर्मा —३५ ,, ,,
१७ अग्नीषोमौ —३६ ,
१८ पशुपतिः —३४
१९ पशुः —३९

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएं हैं जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं। प्रधान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिए। अर्थविचार करनेके समय ये कोष्टक पाठकोंके लिए बड़े उपयोगी हो सकते हैं। इस कोष्टकसे किसी सूक्त का विचार साथ साथ करना चाहिए। बहुत पाठक जान सकते और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तोंका अनुसंधान कर सकते हैं।

इतने व्याख्यान बस यहां पहले अब इस द्वितीय काण्डका अर्थ विचार करते हैं-

अथर्व वेदका सुबोध भाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

(१)

[ऋषिः-वेनः । देवता-ब्रह्म, आत्मा]

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो नाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्न भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अर्थ— (वेनः तत् परमं पश्यत्) भक्त ही उस परमश्रेष्ठ परमात्माको देखता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफामें है और (यत्र विश्वं एकरूपं भवति) जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है। (इदं पृश्निः जायमानाः अदुहत्) इसीका प्रकृतिने दोहन करके ही जन्मनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिए (स्वर्विदः व्राः) प्रकाश को जानकर जप ध्यान करनेवाले मनुष्यही इसकी (अभ्यनूषत) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(यत् गुहा) जो हृदयकी गुफा में है (तत् अमृतस्य परमं धाम) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रवोचत्) ज्ञानी वक्ता कहे। (अस्य त्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निहिता) हृदय की गुफामें रखे हैं, [यः तानि वेद] जो उनको जानता है (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता अर्थात् बड़ा समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥

[सः नः पिता] वह हम सबका पिता है, (जनिता) जन्म देनेवाला (उत सः बंधुः) और वह भाई है, वह (विश्वा भुवनानि धामानि वेद) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है। (यः एकः एव) वह अकेलाही एक (देवानां नाम—धाः) सम्पूर्ण देवोंके नाम धारण करनेवाला है (तं सं—प्रश्न) उसी उत्तम प्रकारसे पूछने योग्य परमात्मा के प्रति (सर्वा भुवना यन्ति) संपूर्ण भुवन पहुचते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिसमें जगत्की विविधता मेदका स्थान कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है उस परमात्माको भक्तही अपने हृदयमें साक्षात् देखता है। इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंके मिलाप कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् को निर्माण किया है इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य वहा उसी एक आत्माका गुणगान करते हैं ॥ १ ॥

जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी वैभवी वक्ता ही कर सकता है। इसके तीन पाद हृदयमें गुप्त हैं जो उसका जानता है वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥

यही हम सबका पिता जन्मदाता और भाई भी है यही संपूर्ण प्राणियोंके सब अवस्थाओंको यथावत् जानता है। यह देवोंका अकेलाही एक है और अग्नि आदि संपूर्ण अन्य देवोंके नाम उसीका प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके ही दिये जाते हैं। विद्वान् जन उसीके विषयमें बारबार प्रश्न पूछते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिष्ट्वा वक्तारं भुवनेष्ठा वास्तुरेष नन्वेतद्वो अग्निः ॥ ४ ॥
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं वितत दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

अर्थ- (अहम्) मैं ही (द्यावा-पृथिवी परि आयं) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूं और अब (ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे) सत्यके पहिले उत्पादक की उपासना करता हूं। (वक्तारं वाचं इव) वक्तामें जैसी वाणी रहती है उसी प्रकार यह (भुवनेषु—स्थाः) सब भुवनोंमें रहता है और (एष वास्तुः) यही सबका धारक और पोषक है, (नु एषः अग्निः) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥

(यत्र) जिसमें (अमृतं आनशानाः देवाः) अमृत पानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अध्यैरयन्त) प्राप्त होते हैं उस (ऋतस्य) सत्यके (विततं तन्तुं दृशे) फैले हुए सूत्रधारक धागेको देखनेके लिए मैं [विश्वा भुवनानि परि आयम्] सब भुवनोंमें घूम आया हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ- द्युलोक और पृथ्वी लोकके अन्दर जो अनंत पदार्थ हैं उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि सकल सत्य त्रिभुवनोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है इसलिए मैं उसीकी उपासना करता हूं। जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है उसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों सकल सब प्राणियोंमें यह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कहते हैं अर्थात् जैसा अग्नि अवयवोंमें गुप्त रहता है उसी प्रकार यह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥

जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति संपूर्ण सब देवोंमें कार्य कर रही है वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है उसी का साक्षात्कार करनेके लिए सब वस्तुमात्रका निरीक्षण मैंने किया है और पश्चात् उसके अंदर वही एक सूत्र फैला है यह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

गूढ विद्या ।

गूढ विद्या का अर्थ है गूढ तत्त्वके जाननेकी विद्या। कई समझते हैं कि यह विद्या गुप्त रखनी है इसलिए इसको गूढ अथवा गुप्त विद्या कहते हैं परंतु यह ठीक नहीं है। इस संसारके अंदर सबका आधारभूत एक तत्त्व है, संसारके पदार्थ क्षण हैं और वह सर्वव्यापक अक्षरतत्त्व अक्षय है। हरएक मनुष्य उन पदार्थोंके रूप आकार लोक आदिको देख सकता है, परंतु उन पदार्थ के अंदर व्याप्त रहनेवाले तत्त्वको जिससे कि उन पदार्थ का अस्तित्व अनुभव होता है उस अक्षर तत्त्वको, वह कहीं जान सकता, बहुत थोडे ही उसका अनुभव कर सकते हैं। मनुष्य का स्थूल देह सब देख सकते हैं, परंतु उसी देहमें रहनेवाले गुप्त अथवा गुप्त आत्माका दर्शन कौन करता है? परंतु जितना देहका अस्तित्व सत्य है उससे भी अधिक सत्य देहधारी आत्माके अस्तित्वमें है। इसी प्रकार संपूर्ण जगत् के अंदर व्याप्त रहनेवाले गुप्ततत्त्व के विषयमें समझना चाहिए।

दृश्य आकारवाला जगत् दिखाई देता है इसलिए यह गुप्त नहीं है परंतु इस दृश्य जगत् को आधार जिस गुप्त तत्त्वने दिया है, वह इस प्रकार दृश्यतासे नहीं दिखाई देता है इसको हृदय अनुभव होना हृदय साक्षात्कार करना इस गुप्त विद्या का कार्य क्षेत्र है। इसलिए इसको गुप्तविद्या गूढविद्या गुप्तिका गुप्ततरा च ब्रह्म आत्मब्रह्म अक्षरविद्या परविद्या विद्या आदि अनेक नाम हैं। इस सब संज्ञाओंका तात्पर्य उस अक्षराधार आत्मतत्त्वका ब्रह्म ही है।

वेदमंत्रोंमें यह विद्या विशेष रीतिसे बताई है। स्थान स्थानमें तथा विविध रीतियोंसे इसका वर्णन किया है। कई मंत्रोंमें स्पष्ट वर्णन है और कईयोंमें गुप्त वर्णन है। यह सूक्त स्पष्ट वर्णन करनेवाला है इसलिए उपासकोंको इसके मननसे बडा लाभ हो सकता है।

गूढविद्याका अधिकारी ।

इस विद्याओंमें यह गुह्य विद्या मुख्य है, इसलिए हरएक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिए । भारतमें वैसा अब तो सभी मनुष्य इसकी प्राप्तिके मार्ग में लगे हैं कई दूर के मामपर हैं और कइनोंने समीपका मार्ग पकड़ा है इन अनेक मार्गोंमेंसे वैज्ञानिक मार्ग इस सूत्रकी अभीष्ट है यह बात यहां अब देखेंगे—

वेदः तत्प्रत्यक्षत्व ॥ १ ॥

'वेदही उसके देखता है यह प्रथम मन्त्रका विधान है। यहां प्रत्यक्ष देखता है, किस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह मक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है यह भाव स्पष्ट है। यह आर्ष और 'वेद का ही है यह वेद शब्द है ! 'वेद् धातुके अर्थ— 'मजन पूजन करना विचार से देखना मक्ति करना, तथा इसी प्रकार के उपलब्धके अर्थ करनेके लिये आया ' ये हैं। ये ही अर्थ यहां वेद शब्द में हैं। जो ईश्वर का मजन पूजन करता है, हृदयसे उसकी मक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसका आत्मैक्य प्रकाश करता है इस प्रकारका जो आर्ष मन्त्र है वह वेद शब्दसे यहां अभिप्रेत है। इसलिए केवल पुस्तिकाज्ञ अर्थ ही यहां वेद्य सूचित नहीं है । कितनी भी पुस्तिकी विद्वत्ता क्यों न हुई हो जबतक उसके हृदयमें मक्ति की लहरें न उठती हों तबतक उस प्रकारके शुष्क ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता यह यहां इस सूत्र द्वारा विशेष रीतिसे बताया है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य नाम विद्वान् मंपर्यः ॥ २ ॥

'अमृतके नाम को जाननेवाला संपर्य ही उसका वर्णन कर सकता है।" इसमें संपर्यः शब्द विशेष महत्वपूर्ण है। संपर्य शब्द का अर्थ 'उत्तम परिज्ञान्य कोशों में प्रविष्ट है और यह शब्द वेद शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है। तथापि "नं वाची धारयेत्" अर्थात् अपनी वाणीका धारण करनेवाला यह अर्थ यहां विशेष योग्य है। वाणीका धारण तो सब करते ही हैं परंतु यहां वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाग्वृत्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आवश्यकता होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ संपर्य शब्दमें है। विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान संपर्य शब्दसे यहां लिया जाता है। प्रायः आत्मज्ञानी अवस्थाका वस्तुतः मूल्यसे ही होता है किंतु थोड़े परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञानी पवित्रात्मा आप्त पुरुष जो कुछ कहता है वह देता है। अबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें उलझनों मचाता रहता है, तब तक ही मनुष्य वेदमर्मज्ञोंके उपदेश वक्तृत्व करता रहता है परंतु इसका परिचय श्रोताओंपर विशेष नहीं होता। जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है। परंतु प्रभाव बढ़ता जाता है। वाग्वृत्तियां उपरम होने लगती हैं। यह कर्मयोग अवस्था समझिये।

यहां वेद और संपर्य ' ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं। उपनिषद मंत्र तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करने वाला जो होता है वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और वही उसका वर्णन भी कर सकता है।

पूर्व तैयारी । (प्रथम अवस्था)

इस उपनिषद आत्मज्ञानी हो सकता है परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, वह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा इस सूत्रमें बताई है—

उषः खाखादुषिणी पति आयत् ॥ ७ ॥
क्रिया भुक्तानि पति आयत् ॥ ८ ॥

'एकवार पुत्रोंके और पुत्रीओंके पास जाकर आया है। पूर्व भुक्तोंमें पूछकर आया है।" अर्थात् पुत्रोंके और पुत्रीओंके तथा अन्यान्य मुखों और स्त्रियों में जो जो इसका प्राप्तव्य और भोक्तव्य है उसको इसने प्राप्त किया और भोगा है। अपने में पूर्व प्रथम किया अर्थ व्यवहार किये पदार्थोंका उसकी राज्यादि भोग प्राप्त किये विषय उसके यह भोग्य था उस

कुछ किया मनुष्यको जो जो अभ्युदय विषयक करना उचित है, वह सब किया । यह गृहस्थाश्रमकी प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें मोक्षेच्छा प्रबल होती है ।

द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि मैं याज्ञिकत्व भोग जितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इसलिये सच्ची तृप्ति, तथा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये । इस द्वितीय अवस्थामें मोक्षोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अभौतिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है–

अमृतस्य विस्रसं क उन्नुं इत्से किया सुवर्गादि परि आयम् ॥ ५ ॥

अमृतका ऐश्वर्य देनेवाला सुखसाधक मुख्य सूत्र देखनेके लिए कैसे उस सुखोंमें चक्कर मारा, अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका चक्कर इसलिये होता है कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल क्षेत्र होगा तो उसे देखें; इस दृश्य जगत्के अनेक अवयवों से परिपूर्ण जगत्में मुख्य आधार ऐक्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको देखेंगे, इस उद्देशसे इसका भ्रमण होता है । यह त्रिशंकुकी दूसरी अवस्था है । इस अवस्था का मनुष्य तीनों लोकों और पृथ्वीप्रदेशों में जाता है, वहां पदार्थोंसे मिलता है देवदेवताओंमें पहुंचता है और पहिले कुछ प्राप्त करता है इसका इस समय का उद्देश यही रहता है, कि इस विशेष पूर्ण दुःखमय अवस्थासे अमेरमय सुखसाधक अवस्थाको प्राप्त करें । इसमें परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानसे अपने में स्थिर रहनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है । इस प्रकार यह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुंचता है । इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इस सूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है–

तृतीय अवस्था ।

द्यावापृथिवी परि आयं सद्यः अमृतस्य प्रथमजां उपाविदे ॥ ७ ॥

मैं द्युलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूं और अब मैं उस से पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूं ।

अमृत मार्गमें घूमकर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि इस विश्वमें जगत् में एक अमृतत्व तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसको होता है, तब वह उसके लाभ करनेकी इच्छा करता है । अमृतत्वके सिवा कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है इसलिये इस मार्ग में अब यह उपासक जाता है । इस अवस्थामें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा व्यक्त होती है इन मंत्रों के साथ कठोपनिषदकी वल्लीके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक खुल जाता है। इसलिये ये मंत्र अब यहां देते हैं–

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥
परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य सर्वं विसृत विचृत तदपाश्चरत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥ वा पद्य ब्रा १२

(भूतानि परीत्य) सब भूतोंको आनकर या भूतोंमें घूमकर के (लोकान् परीत्य) सब लोकोंमें भ्रमण करके (सर्वा दिशः प्रदिशः च परीत्य) सब दिशा और उपदिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इस सबको यथावत् जानकर (ऋतस्य प्रथमजां उपस्थाय) उसके पहिले विषयके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अभि सं विवेश) इस प्रकारसे प्रविष्ट होता हूं ॥ ११ ॥

(द्यावापृथिवी परि इत्वा) एक समय द्युलोक और पृथ्वीलोकके सब पदार्थोंको देखकर (लोकान् परि) सब लोकोंको देखकर (दिशः परि) दिशाओंका परीक्षण करके (स्वः परि) आत्म प्रकाशको जानकर (ऋतस्य विसृतं तन्तुं) अटल उसके फैले हुए धागेको अवलंब करके जब (तत् अपश्यत्) उस बातको देखता है तब (तत् अभवत्) वह ऐसा बनता है कि जैसा (तत् आसीत्) वह पहिले था ॥ १२ ॥

ये दो मंत्र उपासककी उपासिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं। अतः में पूर्व आनेकी जो बात अथर्ववेदमें कही थी उसका विशेष ही स्पष्टीकरण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्थोद्वारा हुआ है। सब भूत, सब लोकलोकान्तर सब उपाधियाँ व और पृथ्वीके अतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहां तक जासकती है वहां तक जाकर, वहांतक विजय करके वहां के पुरुषार्थ प्रकाशसे सब फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है वह सब करके देख लिया। इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अखंड सच्चिदानंदोंके चमत्कारोंका एकही सूत्रबद्ध आशय सर्वत्र भरा है उसीके आधारसे सब कुछ है उसके आधार के बिना कोई ठहर नहीं सकता। अब यह जान लिया सब उपाधी की उपासना छोड़, और केवल अपने आत्मस्थितिही उसमें प्रवेश किया। अब यहांका अनुभव लिया तब उपासक जैसा बन गया, जैसा चाहिये था।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके पदों द्वारा आशय स्पष्ट हुआ है वही क्रम विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है। और ये मंत्र उपासिकी अवस्थाएं जो स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं देखिये—

१ प्रथम अवस्था—(अज्ञानावस्था)—अपने या ब्रह्म के विषय का पूर्ण अज्ञान।

२ द्वितीय अवस्था—(भोगावस्था)—ब्रह्म अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना और ब्रह्मको अपने स्वार्थीय कर्मोंका बल करना। ब्रह्म पर प्रभुत्व स्थापित करना। इसी अवस्थामें राजसूयादि यज्ञ कराये जाते हैं।

३ तृतीय अवस्था—(जागरावस्था)—ब्रह्मके भोगोंसे असमाधान होकर विश्वरूपोंमें व्यापक अतिसूक्ष्म सत्तामात्र वस्तुको ढूंढनेका प्रयत्न करना। यह विज्ञानमयी अवस्था है।

४ चतुर्थ अवस्था (मनस्तावस्था)—मनुष्य विविध विश्वमें व्यापक एक अखंड आत्मतत्वको देखने लगता है और उसी सच्चिदे ब्रह्मकी उपासना करने लगता है।

५ पंचम अवस्था—(स्वरूपावस्था)—उपासना और भक्ति दृढ और सहज होनेपर वह लुप्त हो जाता है मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है या जैसा था वैसा बन जाता है। यही साक्षात्कार की अवस्था है यहां इसके पर ज्ञान प्रसन्न होता है।

यही आशय इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है। यहां पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कैसी है और अपेक्षा मार्ग क्या है।

पूर्णावस्था।

पूर्वोक्त ऋग्वेदके मंत्रोंमें कहा ही है कि—

उपस्थाय प्रथमजामृतस्य
आत्मनात्मानमभि सं विवेश
स्तभ्नन्द्यामुत पृथिवीं सूतेमाः
तदप्नसवदभवत्तदासीत् ॥१२॥ ऋ मं १० सू १२१

= उसके पहिले प्रजापति परमात्माकी उपासना करके आत्माने परमात्मामें प्रविष्ट हुआ॥ उसके फैले हुए चालेको अलग रखकर वैसा हुआ जैसा कि पहिले था।" यह सब वर्णन पूर्व अवस्थाका है॥ इसीको निम्नलिखित शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है-

स्वर्विदः यः अस्तभ्नात् ॥ १ ॥
अमृतस्य नाम विद्वान् ॥ २ ॥
सप्तापि वेद स पितुष्पितासत् ॥ ३ ॥

(आः) व्रत पालन करनेवाले (स्वर्विदः) आत्मज्ञानी जनों की स्तुति करते हैं । वे अमृतके धामको जानते हैं । जो ये भाग आकाश है वह पिताका पिता अर्थात् सबसे अधिक ज्ञानी अथवा सबसे अधिक समर्थ होता है । " यह अंतिम पक्ष है पूर्व अन्वयमें पहुचनेका विवेचन इससे हो सकता है ।

प्रथम मन्त्रमें ' स्व. ' शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । व्रतों या नियमोंका पालन करनेवाला अपनी उन्नतिके लिये या नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करनेवालेका यह भाग है। नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना सबसे दुष्कर कार्य होता है । इसमें असफल होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है स्वयं ही प्रायश्चित करना होता है। महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं । दूसरेके मनुष्य दूसरे पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है । अपनी स्थूल सूक्ष्म इन्द्रियां अपने आधीन रखनी और कभी दुर्विचार आदि शत्रुओंके आधीन न होना इत्यादि महत्व पूर्ण बातें इस आत्मज्ञानमें आती हैं । परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उसीका महत्त्व उस लोक गायेंगे ।

सूक्तात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सबमें एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं । सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं । जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है उसी प्रकार इस जगत् के सूक्ष्मादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूक्ष्म तन्तु या भाग है, जिसके आधारसे यह सब स्थिर रहा है इसीका दर्शन नहीं होता सब माला ही दर्शन करते हैं परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रह हैं, उस सूत्रका महत्व तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है और वह उस जगदाधार का प्राप्त कर सकता है ।

वेदमें तन्तु, सूत्र आदि शब्द इस अर्थमें आये हैं । जगत्के सैकड़ों पदार्थ आपके अंदर यह परमात्माका सूत्र देख है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके बिना नहीं है। यह जानना इस ज्ञानका प्रारंभ करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना सूक्त विवेच्य विषय है जो इस सूक्त द्वारा बताया है ।

अमृतका धाम ।

यही आत्मा अमृतका धाम है इसका ढूंढना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है। इसके यहां ढूंढना यही प्रश्न बड़ा विचारणीय है इसकी प्राप्तिके लिये ही संपूर्ण जगत् दौड़ रहा है विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो पता चल जायगा कि, सुख और आनंदके लिये हरएक प्राणी प्रयत्न कर रहा है और हरएकका ख्याल है कि बड़ा पदार्थकी प्राप्तिसे सुख होता है । इसलिये मनुष्य क्या अन्य कीटपतंगादि प्राणी क्या प्रयत्न कर रहे हैं एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा रहे हैं इस पदार्थ प्राप्त होनेपर क्षणभर सुखका अनुभव लेते हैं और पश्चात् दुःख जैसा का तैसा बना रहता है। इसका अनुभव करते करते मनुष्यके मनमें विचार आजाता है कि आनंद और सुख आने के बाहर इधरे रहने की अपेक्षा उसको अपने अंदर ही ढूंढकर देखेंगे । यही बात मैंने याज्ञवल्क्यमें प्रत्यक्ष किया मैंने संपूर्ण भूतोंमें घूमकर माता पत्र विचारें और विरिंचाई देख ली और अब में सर्वत्र व्यापक एक सूत्रात्माको जानकर उसकी उपासना करता हूं । इत्यादि जो भाग चतुर्थ और पंचम मंत्र का है उसमें वर्णन है । गूढ विवाद्य प्रारंभ इसके पश्चात् के मंत्रमें है यहांसे ही गूढ तत्त्वकी खोज शुरू होती है । जिस प्रकार आंख अनेक पदार्थोंको देखती है परंतु आंखमें पड़े हुएको देख नहीं सकती इसी प्रकार मनुष्य सब जगत् का विवेचन करता है परंतु अपने अंतरका निरीक्षण करना उसको कठीन होता है। यही गूढ विवाद्य मंत्र है। इसलिए इसको कहां ढूंढना है यह देखना चाहिये । इस सूक्तमें इस आवश्यक स्पष्टीकरण करनेवाला मंत्र ये है-

गुहा ।

यत् परमे गुहा ॥ १ ॥ यत् धाम परमं गुहा ॥ २ ॥

यह परम धाम गुहामें है । इसलिये इसको गुहा में ही ढूंढना उचित है । इसी हेतुसे बहुतसे लोग पर्वतोंकी गुफाओंमें जाते हैं और वहां एकान्त सेवन करते हैं । कोई गुफाके पास रहकर पर्वत फलोंसे एकान्त सेवन करके और अनुष्ठान करनेसे

इसे पुरुष त्रिपाद अनुभव करनेके विषयमें बड़ा भ्रम सिलसिला होता है, परंतु यह एक गाढ़ साधन है। सभी गुप्त हरण की पुष्टा ही है। हरण को गुप्त रख जानते ही हैं। इसी में इस गुप्ततत्वकी खोज करनी चाहिए।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस दृष्टिकोणसे गुप्ततत्वकी खोज नहीं हो सकती। इस कार्य के लिए दृष्टि अन्तर्मुख होनी चाहिए, अपनी इंद्रिय खिड़कियों का प्रवाह अन्दर की ओर अर्थात् उल्टा मुख होना चाहिए। तभी इस गुप्त तत्व की खोज हो सकती है। अपने हृदयमें ही उस गुप्त आत्माको देखना चाहिए। अर्थात् इसकी प्राप्तिके लिए बाह्य दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिए।

चार भाग

यह अमृतरूप धाम हृदयमें है। यदि इस अमृत के चार भाग मान लिए जाँय तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर स्पष्ट है। जो बाहर दिखता है जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है परंतु जो अंदर गुप्त है वह बहुत विस्तृत भी है। अपने शरीर में भी देखिए आत्मा-बुद्धि, मन प्राण ये हमारी अंतःशक्तियां अधिक हैं और स्थूल शरीर वह दृश्य है। यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियां बहुत ही प्रभावशाली हैं। अर्थात् स्थूल और स्पष्ट की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अस्पष्ट की शक्ति बहुतही बड़ी है। यही यहां निम्नलिखित मन्त्रोंद्वारा स्पष्ट हुआ है—

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ १५ ॥

इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं जो उसको जानता है वह उसके भी उपर होता है। अर्थात् स्थूलशरीरकी शक्तिकी स्पष्टीकरता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियोंपर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है। इसी विषयमें ये मंत्र देखिये—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥ ऋ १ । १५ । अ. ४ । ३१
त्रिभिः पवित्रैर्वामरोहत्पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ अथर्व १९ । ६
त्रिपादूर्ध्व पुरुषमं दिवि देव ईयते सदिवसस्पराः ॥ अथर्व १।१ ।११

" इसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत द्युलोक में है ॥ तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है और एक पाद पुरुष यहां बारबार प्रकट होता है ॥ तीन पादोंसे स्वर्गपर बना है और एक पाद यहां पुनः पुनः होता है ॥ तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके ठहरा है जिससे चारों दिशाएं व्याप्त रहती हैं।

इन सब मन्त्रोंका तात्पर्य यही है जो इस वृक्ष के ऊपर दिए हुए भाष्यमें बताया है। उस अमृतकी अल्पसी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यक्त में कार्य होता रहता है। पाठक अपनी शरीर की शक्तिके साथ तुलना करेंगे तो उक्त बातका पता उनको लग जायगा। अपनी शक्ति-बहुत है उसका थोड़ासा भाग शरीरमें प्रकट है और वही कार्य कर रहा है। यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अल्परूप मन बारंबार मूल गुप्तमनकी शक्तिसे प्रभावित होता है मनशक्ति प्राप्त करता है और बारंबार शरीरमें आकर कार्य करता है। यही बात अधिक स्पष्टताके अमृतस्वरूपके साथ घटित होती है। उसका केवल एक अंश प्रकट है शेष अनंत शक्ति गुप्त है इसके साथ अपना संबंध जानना गुप्तविद्याका साध्य है।

एक रूप।

अमृतमें विविधता है और इस आत्मतत्वमें एकरूपता है। अमृतमें अति है इसमें शांति है अमृतमें भिन्नता है इसमें एकता है। इस प्रकार अमृतरूप और आत्माका वर्णन किया जाता है यह जीव इस वर्णन के साथ परिचित है इस सूक्तमें भी देखिए—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्
इदं पृश्निरदुहज्जायमाना: स्वर्विदो अभ्यनूषत वा: ॥ १ ॥

' ज्ञानी भक्त ही उसके वैभवको देखता है जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एकरूप हो जाता है । इसकी वाणियोंसे प्रकृति चेतती है और जन्म देनेवाले पदार्थ पैदा करती है । इसलिये आत्मज्ञानी मननशील मेधावी भक्त सब आत्माओंको पुण्य मान करते हैं ।

साधक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें जाग्रतीमें अपनेकी विविधता का अनुभव आता है, स्वप्नमें भी अनेकविध सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है परंतु तृतीय अवस्था याने निद्रा—सुषुप्ति में विविधताका अनुभव नहीं आता और केवल एकताका अनुभव स्पष्ट करना अशक्य है इसलिए उस समय किसी प्रकारका ज्ञान नहीं होता । सुषुप्ति उपाधि और मुनियोंमें अखंड एकता होती है तब—एक—उस गुणोंकी विविधता छोड़ दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें अखंडता अद्वैतता अथवा साधारण मानोंमें ईश्वरता होती है और इस अवस्थामें विश्वरूपका अनुभव मिट जाता है इसलिए इस अवस्थाको ' एक—तत् " कहते हैं । इसी दृष्टिसे इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

' जहां संपूर्ण विश्व एकरूप होता है । ' अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती परंतु उस एक विविधता को एकताका रूप जो आत्मज्ञ है । वृक्ष के बड़ जाता पक्षी आदि विश्व एकताका अनुभव है परंतु पुष्पों में इस विविधता की एक एकता दिखाई देती है । इसी प्रकार इस जगत्की सृष्टिकी विविधता मूल कारणतिकारण में जाकर ईश्वरीय एकताको दिखाई देती । इसी सृष्टिके कारणके विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति पालने पदार्थ निर्माण करती है। इस दृष्टिसे ये उत्पन्न होनेवाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक तत्त्व दीखते हैं । इसका ही नाम उक्त मंत्रमें आत्मवान् कहा है। इसमें मनुष्यकी समिलित है और अन्य प्राणी तथा अप्राणी भी हैं । इसमें मनुष्यादी (वा:) अतएवत्वादि मुनियोंने अपनी उन्नति करके आदि मूलकी आत्मा और अनुभव करके (स्वर्विद:) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ सदैव रहता आता है ।

अनुभव का स्वरूप ।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अपना आत्मा अनुभव किस प्रकार होता है उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये—'आत्मज्ञानी मनुष्य अपने आत्मा को अपनी हृदयकी गुहामें अनुभव करता है अनंत शक्तियां वहां हो रही हैं, वह उसका अनुभव है । (मंत्र २ देखो)

और वह अनुभव करता है कि— वहां परमात्मा इस उसका पिता उत्पादक और नाई है वही बंधु है । (मंत्र ३) इत्यादी वही परंतु "वही हमारी माता और वही हमारा सखा मित्र है" यह भी उसका अनुभव है । यहां ऋग्वेद और अथर्व मंत्रोंकी तुलना कीजिये—

स न: पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ अथर्व २।१।२
यो न: पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋग्वेद १ ।८२।३
स यो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥ यजु. ३२।१०

इसमें कुछ पाठभेद है परंतु उसका तात्पर्य ऊपर बताया ही है। यही ज्ञानी भक्त का अनुभव है। और एक अनुभव वसुमेरुके मंत्रमें दिया है वहां भी यह देखिये—

जगत् का ताना और बाना।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
अस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वमोतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ यजु १२।८

'ज्ञानी मनुष्य उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुहायें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व एक घोसले में रहनेके समान रहता है तथा जिसमें यह सब विश्व एक समय (सं एति) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय (वि एति) अलग होता है। (सः विभूः) वह सर्वत्र व्यापक तथा वैभवसे युक्त है और (प्रजासु ओतः प्रोतः) प्रजाओं में ताना और बाना किये हुए वस्त्रों के समान वैसा है।'

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में वैसा है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता बड़े भाई बहन दादा दादी आदिके पास सहायतार्थ जाता है। यही बालक बड़ा होनेपर आपत्ति आनेपर अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है। इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु राजा आदिकों की सहायता लेता है। वे सब संकट परमात्मामें ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी मनुष्यके लिये परमात्माही सम्राट् राजा सरकार, बालक शिक्षक गुरु, माता पिता मित्र भाई आदि रूप हो जाता है।

एकके अनेक नाम

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है स्त्री पति कहती है उसका भाई उसको बंधु कहता है इस प्रकार विविध संबंधी सब एकही पुरुषके विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं। इस दृष्टिसे एक मनुष्यके विविध नाम मिलने पर भी उसमें एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है।

इसी प्रकार परमात्मा एक होनेपर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत पुत्र सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें आनेके कारण उसके अनंत नाम दिये जाते हैं। जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिये अग्निका अग्नि नाम वास्तविक गुणकी दृष्टीसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निकाही अग्नि है। इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है।

शरीरमें भी देखिये—आंख नाक कान आदि इंद्रियां स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकती, परंतु आत्माकी शक्तिसे अपने अंदर रहकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं। इसलिये उन इंद्रियोंके नाम आत्मामें आये होते हैं अतः आत्माके आंख नाक कान कहते हैं। इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य विद्युतका विद्युत है। देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है वह इस प्रकार सत्य है।

वह एकही है।

परमात्मा एक ही है यह बात इस तृतीय मंत्रमें एक एव (वह एक ही है) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है। किसी को परमात्माके अस्तित्वके विषयमें शंकित भी संशय न हो, इसलिये इस पदकी योजना यहां की है। सच तो ईश्वरके एकत्वका अनुभव होना ही कठिन है क्योंकि विभक्तोंमें अविभक्त आदि अनुभव उसको होता है, इसलिये विषय पूर्ण बताना ही हेय है

ज्ञानी मनुष्य विशेष अनुभव यह है कि वह परमात्मा "सं-प्रश्न" है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उसके उत्तर देने योग्य है। इसलिये जब मनुष्य उसे प्रश्न पूछता है तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है। कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायता की याचना की, और एकान्त में अनन्य शरण वृत्ति से उसकी प्रार्थना की तो वह प्रार्थना निःसंदेह सुनता है, और मनुष्यका रक्षण करता है। अन्य मित्र सहायतार्थ समयपर आवेंगे या नहीं इसका नियम नहीं परंतु वह परमात्मा ऐसा मित्र है कि वह अनन्य भावसे शरण जानेपर कदा सहायतार्थ सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह सहायता न करे। इसलिये सहायतार्थ यदि किसीसे पूछना हो तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्योंकि हर समय वह सुखदेने लिये तैयार है और इसका उत्तर सदासमय हस्त सदा हम ऊपर है।

वह सबका (वासु:) धारण पोषण करनेवाला है और (अग्ने-त्वा) अग्नि स्वरूप होकर सबमें ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। सचमुच वह अग्नि है है। (मंत्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह दूसरे हैं और वह तीसरे है क्योंकि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही क्या है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहां अपनी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। वस्तुतः वस्तु आत्मस्वरूपसे अलग होता है उसी प्रकार दूसरे भी अलग अलग अस्तित्व ही सकारता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें कहा है कि सब परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये नाके अधि विश्वे अरेरन्त ॥ ५ ॥

'यह देवा अमृतमानशानास्तृतीये नाके अधि विश्वे अरेरन्त ॥ ५ ॥

परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए तृतीय अर्थात् एकही आत्मामें पहुंचते हैं।'

अर्थात् सब देव अपनी अपनी विभिन्नताको छोड़कर एक रूप बनकर उसमें और होते हैं और वहां का अमृतपान अवश्य पीते हैं।

तृप्ति, तथापि और तृप्ति है यह बात अनुभवमें आती है तृप्ति और अतृप्ति तो हरएक के अनुभवमें नहीं है,परंतु तृप्ति हरएक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय बाहरी शरीरमें रहनेवाले देव अर्थात् सब इन्द्रियां-अपना भेदभाव छोड़कर एक आत्मा शरीरमें जीव होती हैं और वहां आत्मामें लीन होकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी तृप्ति हो जाती है और तब सुषुप्ति से उठकर ये इंद्रियां जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली तो अनुभव-शरीर निराशी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीचमें में भी अखंड सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है तथापि पोषार थी अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती। परंतु यदि चार पांच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यकी ज्ञात है कि, यह रोगी असाध्य हुआ है। इतना महत्व अमृतमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और सुषुप्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

अथर्ववेदमें यही मंत्र थोड़े पाठ भेदसे आया है वह भी यहां देखने योग्य है—

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ अ. वेद. १९।१०।७

यहां देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुंचते हैं। पूर्वोक्त मंत्र में जहां समाने योनौ शब्द है वहां इस मंत्रमें "तृतीये धामन्" शब्द है। समान योनी या ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और ये तीन अवस्थाएं सब ही जीव की तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोड़कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृतपान करते हैं। इसी सूक्त के प्रारंभ में ब्रह्मविदके रूप यहां दिये जाने तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता खोकर एक ब्रह्ममें जीव होकर अमृत रूप होते हैं। ज्ञानी भक्त महात्मा साधुसंत के भेष अपने समान मानवसे मुक्त अवस्थामें जीव होते हुए अमृत भोगके महानंदमें मग्न होते हैं। इस प्रकार हरएक स्थानमें इसका अर्थ देखना चाहिये। [पाठक इस सूक्तका प्रथम कां १। सू० १३ और २ इन दो सूक्तोंके साथ करें]

यहां इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक शब्दका विचार करेंगे और उसपर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें गूढ़तियोंकी बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द बहुत थोड़े हैं और हरएक शब्द विशेष भाव भरा रहा है। सिर्फ विचार करनेकी सुलभता के लिये ऋग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहां दिये हैं इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदकी यह विशेष विद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे जितना अधिक लाभ उठायेंगे उतना अधिक अच्छा है।

एक पूजनीय ईश्वर ।

(२)

[ऋषिः मातृनामा । देवता-गन्धर्वाप्सरसः]

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्योऽ विश्वाभ्यः ।
त त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ १ ॥
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मूर्धाद्य धुवो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवा ॥ २ ॥
अनवद्याभिः सꣳ अग्म आभिरप्सुरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदन म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ— (यः दिव्यः गन्धर्वः) जो दिव्य पृथिव्यादिका धारक देव (भुवनस्य एक एव पतिः) भुवनोंका एक ही स्वामी (विश्व नमस्य ईड्यः च) जगत्में वही एक नमस्कार करने और स्तुति करने योग्य है । हे (दिव्य देव) दिव्य अद्भुत ईश्वर ! (तं त्वा) उस तुझसे (ब्रह्मण्या यौमि) उपासनाद्वारा मिलता हूं । (ते नमः अस्तु) तेरे लिए नमस्कार हो । (त सद्य स्वं दिवि) वैसा आप तुझमेंमें है ॥ १ ॥

(भुवनस्य एकः एव पतिः) भुवनोंका एकही स्वामी वह (गन्धर्वः) भूमि आदिकोंका धारण कर्ता (नमस्यः सुशेवः) नमस्कार करने और सेवा करने योग्य है वही (मूर्धात्) सबसे आगाड़ एक । वही दिव्य एक (दिवि स्पृष्टः) द्युलोकमें व्याप्त होता है (यजतः) पूज्य है और (सूर्य-त्वक्) सूर्य की त्वचा है अर्थात् सूर्यके अंदर भी व्यापनेवाला, तथा (दैव्यस्य हरसः) दैवी आपत्तिको (अवयाता) दूर करनेवाला है । इसीलिए सबसे वह पूज्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—पृथ्वी सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि संपूर्ण जगत् का धारण करनेवाला और संपूर्ण जगत् का एकही अद्वितीय स्वामी परमेश्वर ही है और वही सब लोगोंका पूज्य और उपासना करने योग्य है । स्तुति प्रार्थना उपासनासे अर्थात् मनसे सबकी प्राप्ति होती है । वह ईश्वर अपने स्वर्गधाममें है वहांसे सब लोग नमस्कार करें ॥ १ ॥

संपूर्ण जगत् का एक स्वामी और सब जगत् का धारण और पालन करनेवाला परमेश्वर ही सब मनुष्योंसे नमस्कार करने और उपासना करने योग्य है उसी की भक्ति और सेवा सबको करना चाहिए, क्योंकि वही सबका सच्चा कल्याण करनेवाला है । वह दिव्य अद्भुत देव स्वर्गधाममें प्राप्त होता है । सबके अंतर्यामी एक वही देव है वह सबमें रहता है वही एक सूर्यके अंदर भी है जब इसकी प्राप्ति होती है तब सब आधार और अनाधार आधारवाला हो जाती है ॥ २ ॥

अप्रिये दिवुजर्वप्रिये वा विश्वावसु गन्धर्वे सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥
याः छन्दास्तर्पिपीषयोऽवक्रामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकर नमः ॥ ५ ॥

अर्थ— (अद्-अवयवाभिः आसिः) दोषरहित देवी इन मातृशक्तियोंके साथ वह (उ सः अस्मे) निश्चयसे मिला रहता है और (अप्सरासु अपि) इन मातृशक्तियोंमें भी (गन्धर्वः आसीत्) भूमि आदिलोकका धारक देव विद्यमान है। (आसां स्थानं समुद्रे) इनका स्थान अन्तरिक्षमें है, (ततः) वहांसे (एताः) शीघ्र ही ये (वा चरन्ति) चारों ओर (परा चरन्ति च) दूर जाती हैं। यह बात (वे आहुः) मुझे बतलाई है ॥ ३ ॥

(अप्रिये दिवुजर्व) वायुकोशकी विद्युत् में जन्मने (वा अप्रिये) अन्तरिक्षके प्रकाशमें भी (वा) जो तुम (विश्व—वसु गन्धर्व) विश्वमें बसानेवाले धारक देव को (सचध्वे) प्राप्त करती हो अथवा उसकी सेवा करती हो इसलिए हे (देवीः) देवियो ! (ताभ्यः वः) उन तुमको (इत् नमः कृणोमि) निश्चय पूर्वक मैं नमन करता हूं ॥ ४ ॥

(याः छन्दाः) जो तृप्त करनेवाली वा प्रेरणा करनेवाली (तर्पिपीषयः—अवः) रक्षादिको इच्छनेवाली (अव—क्रामाः) ओषधियोंकी कामना पूर्ण करनेवाली, (मनः—मुहः) मनको हिलानेवाली हैं (ताभ्यः गन्धर्व—पत्नीभ्यः अप्सराभ्यः) उन गन्धर्वपत्नीरूप अप्सराओंको—अर्थात् पूर्वधारक धारणादी मातृशक्तियोंको (नमः अकरम्) मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसके पूर्व जीवनकी अवधि समाप्त हुई है इतना ही नहीं परन्तु वह उस जीवन शक्तियोंके अन्दर भी है। इस अपने निवास मध्यलोक—अन्तरिक्ष से जहांसे ये सब शक्तियां प्रकट होती हैं और जहां फिर पुनः हो जाती हैं ॥ ३ ॥

वायुकोशके अंदर चमकनेवाली विद्युत्में तथा और नक्षत्रोंके प्रकाशमें क्या वह सब जगत्का पालन करनेवाला एक रस भरा है और इसीकी सेवा संपूर्ण जीवनकी आवश्यकता पूरी कर रही हैं इसलिए उनको भी नमन करना योग्य है ॥ ४ ॥

ये मातृशक्तियां हमको प्रेरणा करनेवाली, हमको चलानेवाली चमकटको दूर करनेवाली ओषधियोंकी कामना पूर्ण करनेवाली और मनको हिलानेवाली हैं। यही आत्माकी अवस्थायें हैं इस दृष्टिसे मैं इनको नमस्कार करता हूं (अर्थात् यह इनको किया हुआ मेरा नमस्कार भी उस अद्वितीय ईश्वरको ही पहुंचता क्योंकि ये शक्तियां उसीके आधारसे रहती हैं) ॥ ५ ॥

पूर्व सम्बन्ध

प्रथम सूक्तमें गुप्त आत्मशक्तिका जो वर्णन किया गया है उस सूक्तमें जिस परमशक्ति देवका वर्णन किया गया है, उसीका वर्णन यहां " गंधर्व " शब्द से किया गया है। इस प्रथम सूक्तके द्वितीय मंत्रमें भी " गंधर्व " शब्द है इससे पूर्व सूक्तका इस सूक्तके साथ संबंध स्पष्ट हो जाता है।

गन्धर्व और अप्सरा ।

" गंधर्व " शब्दका अर्थ पूर्व सूक्तके स्पष्टीकरणके प्रसङ्गमें किया ही है। (गां-धर्वः) अर्थात् (गां) भूमि पूर्व सर्व, पृथिवी अन्तरिक्ष—द्यौलोक आदिकों का (धर्वः) धारण पोषण करनेवाला आत्मा वह इसका अर्थ है। भूमि सूर्य तथा अन्यान्य चराचर स्थूल सूक्ष्म सब पदार्थोंका धारण पोषण करने वाला परमात्मा यह नाम है। इसी प्रकार अन्य सर्व देहोंके अंदर रहनेवाली प्राणशक्ति इन्द्रियशक्ति आदिक व तथा स्थूल सूक्ष्मादि देहका धारण करनेवाले शरीरात्मा का भी यही नाम है। इस सूक्तमें मुख्यतया परम आत्मा वर्णन है परन्तु अन्य अर्थ न छोड़ वह वर्णन अर्थोंका समझ लेनेपर जीवात्मार्थमें भी लगाया जा सकता है वह पाठक इस पाठसे ठीक लगा लेंगे। गंधर्व शब्दके अन्य अर्थ प्रथम सूक्तमें पाठक देखें।

गंधर्वपत्नीरप्सराभ्यः ॥ [मंत्र ५]

गवर्यकी पत्नी ही अप्सराएं हैं। गंधर्व एक है परंतु उसकी अप्सराएं अनेक हैं। (अप्+सरस्) अर्थात् (अप्) जलके आश्रयसे (सरस्) चलनेवाली वह नाम जलाश्रित प्राणका वाचक है। 'आपोमयः प्राणः' —जलमय अथवा जलके आश्रयसे प्राण रहता है यह उपनिषदोंका कथन है और यही बात इस शब्दमें है इसलिए 'अप्सराः' शब्द प्राण शक्तियोंका वाचक वेदमें है, श्वास और उच्छ्वास अर्थात् प्राण आयुष्यकी बढ़ते रहने की जानेके लिये पुरु रहे हैं ऐसा भी वेदमें अन्यत्र वर्णन है—

यमेव धीरं परिधिं ययस्तोऽप्सरस इव मेधुर्मसिष्टाः ।

ऋग्वेद ७।३३।९

" (अप्सरसः मसिष्टाः) जलाश्रित प्राण (यमेव धीरं) जिसके लिये गई (परिधिं) रहनेकी मर्यादा तक (ययस्तः) आयुष्यकी बढ़ते हैं।

धीरं = आयुष्यका ज्ञाता कालज्ञान जुलाहा।
धीरा = आयुष्यकी अवधि अथवा आयुष्यमर्यादा।
प्राण = जलका कुलमेंढ़ेसे बुना है।
अप्सरा = आयुष्य।

' मनुष्य का आयुष्य एक कपड़ा है जो मनुष्य देहरूपी खूंटीपर बुना जाता है वहां बुननेवाले प्राण हैं। यहां अप्सरस् शब्द और परिधि ये दो शब्द प्राणवाचक आये हैं। (अप्सरस्) जलाश्रयसे रहनेवाले (परिधि) निवासके हेतु प्राण हैं।

इससे भी अनुमान हो सकता है कि जलतत्वके आधार से रहनेवाला प्राण जो कि आत्माकी गंधर्वपत्नी रूप है एवं यहां कहा है वह प्राणशक्ति जीवन की कला ही निःसंदेह है। यजन यदि आत्मा है तो उसकी गंधर्वपत्नी अप्सरा निःसंदेह प्राणशक्ति अथवा जीवन शक्ति ही है। आत्मा और शक्ति ये दो शब्द यहांके गंधर्व और अप्सरा के वाचक उत्तम रीतिसे मानें जा सकते हैं। शरीर में श्रेष्ठ प्राण और जगत् में नियन्त्रणात्मक प्राण है इस कारण गंधर्वका अर्थ आत्मा परमात्मा मानेनेपर दोनों स्वार्थोंमें गंधर्वकी सङ्गति हो सकती है।

महान् गवर्य।

इस सूक्तमें पहले दो मंत्र बड़े महत्त्व गंधर्व। प्रमुख वर्णन कर रहे हैं वह वर्णन देखने से विदित होता है कि, यहां गवर्य शब्द परमात्माका वाचक है। यथा—

१ सुपर्णस्य एक एव पक्षः—सुपर्णका एकही एक पंख है। इसके सिवाय और कोई भी जगत् का पात्र नहीं है। यही पर वेदपुरुष एक प्रभु है। (मं १)

२ एक एव अमर्त्यः— यही एक आहर्तार्य परमात्मा एक ही अमरस्वरूप चेतन तत्त्व है। इसके सिवायपर किसी भी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये। (मं १)

३ दिव्यः गवर्यः—यही अद्भुत है दिव्य पदार्थ है यहां मनकी गति कुंठित हो जाती है और यही (यां) भूमि से लेकर द्युलोक जगत् का सर्वः) भारक पोषक है। (मं १)

४ विप्रः इत्थाः—यह जगत् में यही प्रशस्तके कारण है।

५ दिवि ते सधस्थं—स्वर्गधाम में गुप्तधाममें अथवा तृतीय धाममें उसका स्थान है (मं १)। [इस विषयमें प्रथम सूक्तके मंत्र १२ देखें जिसमें इसके गुहामें निवास होनेका वर्णन है।]

६ दिवि स्पृशः—इसका स्पर्श अर्थात् इसकी प्राप्ति पूर्वोक्त तृतीय गुप्त स्थानमें ही होती है। यह भी पूर्वोक्त सम्मेलन का समर्थन है। (मं २)

*

७ सूर्यवत्—महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् ही इसका देव है अर्थात् यह सब में भी है इतनाही नहीं परंतु उसका सब तेज भी इसीसे प्राप्त हुआ है। यह इसकी महिमा है (म २)। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंमें इसकी सत्ता देखनी चाहिए। यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है।

८ विश्वा-वसुः (संबंधः -विश्वका यही विधायक है। (मं ४)

ये लक्षण स्पष्ट कर रहे हैं कि यहांका यह मंत्रवर्णन वर्तमान निःसंदेह परमात्मा का वर्णन है। किसीभी अन्य पदार्थ में ये सब अर्थ पूर्णरूपसे घटते नहीं हो सकते। इसलिए पाठक इन लक्षणों का मनन करके अपने मनमें इस परमात्म देव की मूर्ति स्थिर करें क्योंकि यही एक उसके लिए यथायोग्य देव है।

ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना।

इस परमात्माकी प्राप्ति इसकी उपासनासे होती है। इस सूक्तमें इसकी ब्राह्म उपासना करनेका विधान बड़ा महत्त्व पूर्ण है।

१ तं त्वा भौमि ब्रह्मणा। (म १)
२ वसस्वः। (सं १२) वसस्ते अत्तु। (मं २)
३ विश्वा ईळा। (म १)
४ सुश्रेवा। (मं २)

ये चार मंत्र मात्र इसकी ब्राह्म उपासना करनेके मार्ग की सूचना दे रहे हैं। ब्राह्म उपासना का अर्थ ब्रह्मका अनन्य मन द्वारा करने की मानस उपासना ही है। अपना बुद्धि चित्त मन आदि अंतःकरणोंसे ही यह परमात्म पूजा होती है, इन शक्तियोंका अलग अलग करनेमें ब्राह्म है। ब्राह्म शब्दका अर्थ मंत्र भी है और मंत्रका भावार्थ मनन है। मननसे यह उपासना करनी होती है मननके मनन से ही यह हो सकती है, किसी अन्य रीतिसे यह नहीं होती है यह स्पष्टता बतलानेके लिए यहां ब्रह्मणा शब्द इस मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यह बात ध्यान में धारण करके उक्त चार मंत्रभागोंका अर्थ ऐसा होता है—

१ तं त्वा भौमि ब्रह्मणा—उस तुझ परमात्माको मननसे प्राप्त होता हूं। (मनन)
२ वसस्वः [वसस्ते] —तू ही एक बसानेवाला होने योग्य है। (बसना)
३ विश्वा ईळा—सब उपासनें तू ही प्रशंसा करनेके लिए योग्य है। (उपास्य उपास्य)
४ सु—श्रेवः—तूही उत्तम सेवाके लिए योग्य है। (सेवन)

इन चार मंत्र भागोंसे मननसे मानस उपासना विधि ज्ञात हो जाती है। (१) प्रभुके गुणोंका मननसे मनन करना, (२) उसी को मननसे बसाना (३) प्रत्येक पदार्थ में तथा प्राणिमात्रमें उसका दर्शन करना और (४) उस सर्व उसकी सेवा करने के लिए करना ये चार भाग उस प्रभुकी उपासना के हैं। इन चार भागोंमें से जितने भागोंका अनुष्ठान हुआ होगा उतनी उपासना उतनेही प्रमाण से हुई है ऐसा समझना चाहिए। पाठक विचार करें और अपनी उपासनाकी परीक्षा इस कसौटीसे करें। हरएक मनुष्य अपने आपको परमात्माका उपासक मानताही है परंतु उसने जो उपासना ली है वह इस वैदिक मनन उपासना की उक्त कसौटीके किस दर्जेपर घिसी जा सकती है यह भी देखना चाहिये। इस दृष्टीसे ये चार मंत्र भाग विशेषही महत्त्व रखते हैं।

मनन बसन सर्वत्र दर्शन और सेवन ये चार भाग लीजिए ये मानस उपासना के चार अंगोंके दर्शक समझे जा सकते हैं।

१ " मनन से परमात्माके महत्त्वकी मनमें स्थिरता होती है। इस दृष्टिसे इसकी अत्यंत आवश्यकता है।
२ बसन जब मननसे उसका महत्त्व ज्ञात हुआ तब स्वभावतः ही मनुष्य उस प्रभुके आश्रयमें लीन होता

६ । मननके पश्चात् की यह स्वाभाविक ही अवस्था है ।

३ " दर्शन " मननसे ही उसकी साक्षात्कार दशा का भी अनुभव होता है । स्थिर चरमें एक रस व्यापक होनेका साक्षात्कार होनेकी यह तीसरी उच्च अवस्था है। समाधिके अंदर प्रभुका ही अखंड साक्षात्कार इस अवस्था में होता है ।

ये तीनों मानसिक क्रियाएं हैं । इसके पश्चात् वह भक्त अपने आपको परमात्माके परम चरणमें समर्पण करता है यह सेवा-अवस्था है ।

४ " सेवन " यह इस अवस्थामें उसका सहज बनता है । सेवन और 'भजन' ये दोनों शब्द समान अर्थके ही हैं- सेवन और भजन एकही अर्थ बताते हैं । प्रभुके कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना, यही भक्ति का सेवा है ।

तीनों का उद्धार करना साधुओंका परित्राण करना सज्जनोंकी रक्षा करना दुर्जनोंको दूर करना, ये ही परमात्मा के कर्म हैं। इन कर्मों को परमात्मार्पण बुद्धिसे करनेका नाम ही उसकी भक्ति या सेवा है ।

नामस्मरण ।

नामस्मरण का भी यही तात्पर्य है जैसा ' हरि (दुःखोंका हरण करनेवाला) शब्द है इसलिए मैं भी दुःखितोंका दुःख यथाशक्ति हरण करना और दूसरों को सुख देने के कर्म ये ईश्वर की सेवा करूंगा । राम (आनंद देनेवाला) ईश्वर है इसलिये मैं भी दीन दुःखी मनुष्यों का अविद्योंको पीडा दूर करनेके कर्म द्वारा परमात्माकी भक्ति या सेवा करूंगा । नामस्मरण का यही तत्त्व है । यद्यपि आजकल केवल नामका स्मरणही रहा है और उससे प्राप्त होनेवाले कर्तव्य का पालन नहीं होता है तथापि वस्तुतः इससे महान् कर्तव्य सूचित होते हैं; यह पाठक विचारसे जानें और परमेश्वरके इसमें नाम स्मरणका मुख्य उद्देश समझ लें । अनेक ग्रंथ पढ़ने से जो कर्तव्य नहीं समझता वह एक नाम के मननसे समझमें आता है इसलिये वेदादि ग्रंथोंमें परमात्माके अनेक नाम दिये होते हैं और वे सब बड़े मार्गदर्शक हैं परंतु देखनेवाला और कर्म करनेवाला मन चाहिये ।

अस्तु । ईश्वर उपासना के ये चार नाम हैं इसका अधिक विचार पाठक करें और इस मार्गसे चलें । यही सीधा सरल और अतिसुलभ मार्ग है ।

ब्राह्म उपासना का फल ।

पूर्वोक्त प्रकार ब्राह्म उपासना करनेसे जो फल प्राप्त होता है उसका वर्णन भी इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं-

१ तं त्वा भौमि-परमेश्वरके साथ मित्रता ब्रह्मानंद अवस्था प्राप्त करना । (मं १)

२ वैश्वस्य हरसः अवयासा-परमात्मा सब महापीडाओंको दूर करनेवाला है इसलिये सब पीडा उसकी प्राप्ति से दूर हो जाती है । (मं. २)

३ मृळात्-वह आनंद देता है । (मं १)

इन मन्त्रोंके मननसे पाठकोंको पता लग जायगा कि उपासना का फल परमानंद प्राप्ति ही है । वह प्रभु हृदयमंदिर सजाने से उसके साथ मित्र जानेसे वही आनंद उपासकमें आ जाता है और जितनी उपासनाकी दृढता और पूर्णता होगी उतना वह आनंद दृढ और पूर्ण होता है । यह फल प्राप्त करनेकी पूर्वोक्त वैदिक मार्ग है ।

यहां पहिले दो मन्त्रोंका विचार हुआ । इसके पश्चात् के तीन मन्त्रोंका वर्णन ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये उस वर्णनको प्रथम अपने शरीरमें अनुभव करना चाहिये और पश्चात् वही भाव चित्तमें रखना चाहिये-

अपने अंदरकी जीवन शक्ति ।

इससे पूर्व बताया गया है कि जगत्तरके आनंदमय कर्म करनेवाली प्राणशक्ति या आनंदशक्ति ही अन्नतः सारे इस सृष्टिमें बसी है देखिये इसका वर्णन-

१ क्लम्दा:—पुरुषार्थकी इच्छा करनेवाली। प्राणशक्ति अथवा जीवनशक्ति प्राणियोंको धारित करती है इस अर्थका वाचक यह शब्द है।

२ तमिषी—चय:—(तमिषी) स्थायी अथवा बलवत्तरको (चय:) दूर करनेवाली, पलायन को हटानेवाली प्राणशक्ति है। जो उत्साह प्राणीमात्र में है वह प्राणशक्ति का ही है प्राणायाम से भी उत्साह बढ़ने और पलायन दूर होनेका अनुभव है।

३ अह—कामा— (अहि+कामा:) आंखोंकी कामना पूर्ण करनेवाली। पाठक देखें कि जबतक शरीरमें प्राण रहता है तभी तक शरीर आंखोंको तृप्त कर सकता है। सुंदर देखकर किसी मनुष्य के आंख तृप्त नहीं होते। इससे आंखोंकी तृप्ति प्राण शक्तिसे होती है यह स्पष्ट है।

४ मदो—मुदा:—मनको मोहित करनेवाली। इसका भाव भी उक्त प्रकार ही है।

ये चार शब्द शरीरमें प्राण शक्तियों अथवा जीवन की शक्तियोंके वाचक हैं। पाठक इन शब्दोंके अर्थोंका अनुभव अपने अंदर करें। इसके (मंत्र ५में) गंधर्व-पत्नी अप्सरा: कहा है। गंधर्व इस शरीरके अंदर जीवात्मा है और उसकी पत्नियां भोग शक्तियां अथवा प्राण शक्तियां हैं प्राण शक्तियोंके आश्रयसे रहता है इसलिये पलायित होनेके कारण (अप्+सर:) यह शब्द प्राणमें अत्यंत सार्थ होता है। इन प्राणशक्तियों को यहां पंचम मंत्रमें लिया है। प्राणके आधीन सर्व शक्ति है यह देखनेसे प्राण का महत्व जाना जाता है। पाठक भी अपने शरीरमें प्राण का महत्व देखें, प्राण रहने तक शरीर की शोभा कैसी होती है और प्राण जानेके पश्चात् शरीरकी कैसी अवस्था हो जाती है; इसका अनुभव करनेसे अपने शरीरमें प्राणका महत्व जाना जा सकता है। जो विषय एक शरीरमें है वही सब शरीरों के लिये है। इस प्रकार अपनी भिन्न शक्तियों अनुभव करके इस मंत्र ५ में उन शक्तियों को नमन किया है।

प्राण का प्राण।

यहां प्रश्न होता है कि क्या यह पत्नियां स्वतंत्र हैं या परतंत्र? पत्नी' शब्द कहने मात्रसेही यह पतिके आधीन पतिके साथ रहनेपर भोग्य और कहनेवाली पतिके रहित होनेसे दुःखी पति ही जिसका उपास्य देवत है इत्यादि बातें ज्ञात होजाती हैं। वेदके मंत्रोंमें पतिके साथ धर्माचरण करनेवाली सहधर्मचारिणी या पत्नी होती है। इसलिये गंधर्व (आत्मा) और अप्सरा (प्राणशक्ति) इसी दृष्टिसे देखने चाहिये। जिस प्रकार पतिके भोग्या प्राप्त करके पत्नी गृहस्थधर्म करती है उसी प्रकार इस छोटे गंधर्व (जीवात्मा) के उपयोगी अप्सरा स्त्री (प्राणशक्ति) यह प्राप्त करके अपने गृह (शरीर) के अंदरके सब व्यवहार चलाती है। इसलिये जो सौंदर्य अथवा शोभा वनस्पतीकी दिखाई देती है वह वास्तवमें पतिके ही प्राप्त हुई होती है इसलिये गंधर्वपत्नीके लिया हुआ नमस्कार गंधर्वपत्नीके लिये नहीं होता है परन्तु वह उसके पतिके लिये ही होता है क्योंकि पति विरहित विधवा स्त्रीको अशुभ समझकर कोई नमस्कार नहीं करते। इसी प्रकार यहां बताना यह है कि प्राणशक्ति अथवा कौशल्यशक्ति जीवात्माके आश्रयसे कार्य करनेवाली है उसके अभावमें वह कार्य नहीं कर सकती। इसलिये जो वर्णन यहांपर प्राणका महत्व प्राणशक्तिका बताया जाता है वह योग्य यही है, परंतु प्राणके प्राणका-अर्थात् आत्माका- है यह बात भूलना नहीं चाहिये। इसी कारण यहांपर प्राणशक्तिको लिया हुआ नमन आत्माके ही संबंधसे है न कि केवल प्राणके लिये।

ऐसा क्यों कहा है?

इतने लंबे ढंगसे यह बात क्यों कही है? यहां बतलाना यह है कि अन्न स्थूल विषय जो रूप, रस गंध आदि हैं वे सब आत्माकी शक्तिके कारण सब हैं, यदि जगत्‌से आत्माकी शक्ति हटाई जाय तो न जगत् रहेगा और न उसकी शोभा रहेगी। जिस प्रकार पति रहित स्त्री विधवा होकर शोभा रहित होजाती है उसी प्रकार आत्मा रहित शरीर मृत मुर्दा और तेजहीन हो जाता है देखने लायक नहीं रहता। इसी प्रकार जगत्‌को आत्मा रहित होनेपर निरर्थक होगा। इसलिये बाह्य की ओर देखनेके बजाय आत्मदृष्टि रखनी चाहिए, न कि स्थूल दृष्टि। जिस प्रकार किसी सुंदरस्त्री की ओर देखनेके बजाय

पतिकी पत्नी देवरानी होती है पतिदेव की पुत्रवधिनी समझी जाती है; इसी प्रकार आत्मारहित शरीर और परमात्मासहित जगत् है।

पुरुष का मुख आत्मा दृश्य, दृश्य प्रकाश इसी प्रकार प्राणियोंका प्राण आदि सब देखते हुए सर्वत्र परमात्मा शक्ति अनुभव करनी चाहिये। यही वेदका भाव " सर्वम् " सर्वत्र उपस्थित है और उसीके प्रभावसे यह सब प्रभावित हो रहा है, ऐसा भाव मनमें सदा जागृत रहना चाहिये। इस विचार से देखनेसे अप्सराओंको किया हुआ नमन पंचमंत्रके लिये कैसा पहुचता है यह बात स्पष्ट होगी और यह मनमें मुक्तियोंका एक अतिरिक्त पतिहो है यही सब के लिये (नमस्तः) नमस्कार करने योग्य है यह जो प्रथम और द्वितीय मन्त्रमें कहा है उस विधान के साथ भी इसकी सङ्गति अब जानना। यहीं तो पहिले दो मन्त्रोंमें यह परमात्मा (नमस्त) नमस्कार करने योग्य है ऐसा कहा है परंतु आगे चतुर्थ और पंचम मंत्रमें अप्सराओंको नमस्कार किया है। यह विरोध प्रतीत होता। यह विरोध पूर्वोक्त रीतिसे विचार करनेसे नहीं रहता है—

विरोधालङ्कार।

नाम्यो वो धर्मपत्नीभ्य इदमुदकम्॥ (म ७)
नाम्यो मरुद्देवपत्नीभ्यः अप्सराभ्यो अदरं नमः॥ (म ८)

इन मंत्रमें पानी अप्सरा देवियोंको मैं नमस्कार करता हूं। पहिले दो मन्त्रोंमें एक ही जगत्पालक मंत्रमें नमस्कार करने योग्य है ऐसा कहकर अंतिम दो मंत्रोंमें उसको नमन न करते हुए उसकी धर्मपत्नीयोंको ही नमस्कार किया है यह विरुद्ध-संकार है। पहिले कथन के सिवाय विरुद्ध दूसरा कथन है। जो (नमस्तः) नमस्कार करने योग्य है उसको तो नमन किया ही नहीं परंतु जिनको नमस्कार योग्य होनेके विषयमें किसी प्रकारका नहीं कहा उनको नमस्कार किया है। इस सूक्तमें विरोध भी चमत्कृत है। पहिले दोनों मंत्रोंमें मंत्रपतिके नमस्कार योग्य होने के विषयमें होकार कहा है इतनाही नहीं परंतु—

एक एव नमस्यः। (मं १२)

' यही एक नमस्कार करने योग्य देव है। ' ऐसा निश्चयार्थक वाक्यसे कहा है जिससे किसीको संदेह नहीं होगा। परंतु आश्चर्य की बात यह है कि जिस समय नमस्कार करनेका समय आगया उस समय उसी प्रकार दो मंत्रोंमें (मं. ४ ५में) उसकी पत्नियोंको ही नमस्कार किया है और जिसको पतिको नमन नहीं किया। यह साधारण विरोध नहीं है। इसका हेतु देखना चाहिए।

व्यवहारकी बात।

जिस समय आप किसी मित्रको नमस्कार करते हैं उस समय आप विचार कीजिये कि क्या आप उसके आत्मा को नमस्कार करते हैं या उसके शरीरका अथवा उसके प्राणोंको या उसकी इंद्रियोंका करते हैं। आपके सामने तो उसका आत्मा रहता ही नहीं न आप आत्मादेख सकते न उसको स्पर्श कर सकते हैं जिसको देख भी नहीं सकते उसको आप नमस्कार कैसा कर सकते हैं। विचार कीजिये तो पता लग जायगा कि आपका नमस्कार आपके मित्रकी आत्मा के लिए नहीं है।

परंतु यदि आत्माके लिए नमन नहीं है, ऐसा पक्ष स्वीकार लिया तो कहना पड़ेगा कि कोई भी मनुष्य अपने मित्रके मृत शरीरको—मृत शरीरको—नमस्कार नहीं करता। तो फिर नमस्कार किस के लिए किया जाता है? यह बात हमारे प्रतिदिनके व्यवहार की है परंतु इसका उत्तर हरएक मनुष्य नहीं दे सकता। परंतु हरएक मनुष्य दूसरा का नमस्कार तो करता ही है।

जड़चेतन का संधि—प्राण।

यहां वास्तविक बात यह है कि स्थूल शरीर और उसकी इंद्रियां प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं और प्राण यद्यपि अदृश्य है तथापि पाणेन्द्रियों की अपेक्षा प्रत्यक्ष होता है परंतु मन बुद्धि और आत्मा अदृश्य हैं। इनमें भी मनबुद्धि कभीके अनुभवमात्र आती या सकती हैं परंतु आत्मा तो सर्वथा अदृश्य है। देखिये—

शरीर —— इंद्रियां —— प्राण —— मनबुद्धि —— आत्मा
दृश्य —×——○——×— अदृश्य

प्राण ऐसा स्वभाव रखता है कि जो एक ओर दृश्य और दूसरी ओर अदृश्य को जोडनेका बिंदु है । इसी लिए स्थूल दृश्य से सूक्ष्म अदृश्य तक पहुंचनेके लिए यागादि कार्यों में प्रायशः ही आलंबन कहा है क्योंकि यही एक प्राण है कि, जो स्थूल दृश्य अवयव जड चेतन आदि पुरुष इनको जोड देता है। इस कारण यह मुख्यतया मध्य कहा जाता है। और आध्यात्मिक दृष्टिसे साधन के लिए प्राणकाही आलंबन सबसे मुख्य माना गया है । क्योंकि यह अदृश्य होते हुए अनुभवमें आसकता है और इसके सूक्ष्मतरत्वका अनुसंधान होता है ।

साधारण मनुष्य लोग तो स्थूलशरीर को देखकर ही करते हैं, उससे अधिक ज्ञानी प्राणका अस्तित्व जानकर करते हैं उससे भी उच्च कोटीके ज्ञानी इसमें जो अधिष्ठाता है उसको देखकर उसे मनन करते हैं । यद्यपि मनन एकही है तथापि करनेवाले के अधिकार भेदके अनुसार मनन विभिन्न वस्तुओंके लिए होता है ।

स्थूलसे सूक्ष्मका ज्ञान ।

इसमें एक बात स्पष्ट है और वह यही है कि यह मनुष्यमें स्थूल शरीर–स्थूल पदार्थ– एकभी न रहा तो चेतन आत्मा की कल्पना होना-असंभव है; इसलिए चेतन आत्माकी शक्ति जाननेके लिए स्थूल विषयकी रचना अत्यंत आवश्यक है । अतः स्थूल के आलंबन से सूक्ष्मका कल्पना की जाती है और इसीलिए शरीरमें कार्य करनेवाली प्राणशक्तियोंको (मंत्र ४ ५) में मनन करके शरीरके सूक्ष्माधिष्ठाता आत्मा तक मनन पहुंचाता है । यहां ध्यानमें रखने योग्य बात यह है कि यह शरीर को मनन नहीं किया; परंतु शरीरमें जो हलचल करनेवाली प्राणशक्तियोंको मनन किया है; अर्थात् स्थूलको पीछे रखकर जहां सूक्ष्मकी कल्पना प्रारंभ होती है वहां उन सूक्ष्म शक्तियों को मनन किया है । यहां बिलकुल स्थूल का आलंबन छोडनेका भी उपदेश मिलता है ।

प्रत्यक्षसे अप्रत्यक्ष ।

इस विवरणसे पाठक समझही गये होंगे कि प्रत्यक्ष वस्तुके निमित्तसे अनुसंधानसेही अप्रत्यक्षका मनन किया जा सकता है। जो एक जगद्व्यापक प्रभु है वह सर्वव्यापक और पूर्ण अदृश्य है वास्तवमें वही मनके लिए मनस्कार करने योग्य है और दूसरा मनस्कार के लिए योग्य नहीं है, तथापि जगत् के स्थूल–सूर्य पृथिवि पदार्थों-के प्रत्यक्ष करनेसे ही उसके सामर्थ्य का कुछ अनुमान हो सकता है जगत् के अणु देखने से ही उसके अद्भुत रचना चातुर्य का अनुमान होता है इसलिए जगत्में— हरएक पदार्थमें– उसकी सत्ताका अनुभव करना चाहिये और प्रत्येक पदार्थ को देखकर प्रत्येक पदार्थका महत्त्व उसीके आश्रय है यह समझ कर उसमें उसका मनन करना चाहिए । तभी तो उसका मनन हो सकता है । सूर्यको देखकर उसके प्रकाश का तेज परमात्माके प्राप्त है यह समझकर उसकी अनंत सामर्थ्यका उसमें अनुभव करते हुए अंतःकरणसे उसका मनन करना चाहिए । यही बात हरएक वस्तु विषयमें हो सकती है । यही बात इसी सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कही है–

अग्निर्ने विद्युदभिर्ने वा
विद्यावसुं गन्धर्वं सचध्वं ॥ (मंत्र. ४)

अग्निसे विद्युत्से क्या और यज्ञशाले प्रकाशसे क्या तुम विश्वके पदार्थवाले सर्वाधार परमात्माको प्राप्त करती हैं । इस मंत्रमें यही बात कही है कि विद्युत् की चमकदार रोशनीसे या तत्तेजोगोलकों की दृश्यसे उस अदृश्यरूप आत्माको समझने आसानी होती या इसे उस परमात्माकी सामर्थ्य जानने आती या इसे उस आदि देवका अद्भुत रचना चातुर्य मनमें खडा होना चाहिये। यही प्रमुख तत्त्व उपदेश समझना है यही रीति है कि जिससे ज्ञानी मनका तत्त्व साक्षात्कार करता है ।

पाठक यहां देखें कि मनन और द्वितीय मंत्रमें यह प्रभु ही अवेद्य संज्ञासे है ऐसा कहा और मनन करनेके वस्तुमें कार्य करनेवाली प्राण शक्तियोंका (मंत्र ४ ५ में) मनन किया इसकी संगति पूर्वोक्त प्रकार है। इस दृष्टिसे इसमें कोई विरोध नहीं है और विचार करनेसे पता लगता है कि यही सीधा मार्ग है। इसी उपासना मार्गसे आगे हर एक मंत्र सुबोध है।

मेघोंमें चमकने वाली विद्युत्में तथा तेजो गोलकों के प्रकाशमें उस प्रमुख आत्मको देखना ही उसका साक्षात्कार करना है, यदि विश्वके अतर्गत पदार्थोंका विचार करना ही छोड़ दिया जाय तो उस प्रमुख आत्मको देखा समझमें आसका।

यहां चतुर्थ और पंचम मन्त्रोंका विचार समाप्त हुआ और इस विचार की प्रसन्नता हमने अपने अंदर देखी क्योंकि यही स्थान है कि, जहां हमें प्रसन्न अनुभव होता है। अब इसको अगले अध्यायमें संक्षेपसे देखना है, परंतु इसके पूर्व हमें तृतीय मन्त्रका विचार करना चाहिये। इस तृतीय मंत्रमें दो कथन बड़े महत्व पूर्ण हैं वे अब देखिये—

प्राणोंका आना और जाना।

समुद्र आपो सवान स आहुर्वेनः सव आ च परा च यन्ति ॥ (मं ३)

समुद्र इसका स्थान है एसा मुझे कहा गया है जहांसे चर चर इधर आती हैं और परे चली जाती हैं। इस मन्त्रमें प्राणशक्तिका वर्णन उत्तम रीतिसे किया है। (आवन्ति परावन्ति) इधर आती हैं और परे जाती हैं प्राणकी ये दो गतियां हैं एक आना' और दूसरी जाना है। श्वास और उच्छ्वास ये दो प्राणकी गतियें प्रसिद्ध हैं। प्राण अपान ये भी दो नाम हैं। एक गति बाहरसे अंदर आनेका मार्ग बताती है और दूसरी अंदरसे बाहर जानेका मार्ग बताती है। ये दो गतियां उनसे विदित हैं।

इस प्राणोंका स्थान हृदयके अंदरका आकाश समुद्र है इसका स्थान है इस सरोवर या समुद्रमें बाहर प्राण तुरंती जन्मता है और वहां स्नान करके फिर बाहर आता है। वेदोंमें अन्यत्र कहा है कि

एक पादं नोत्क्षिपति सलिलादंस उच्चरन्।
सहस्रं स समुस्क्षिपश्चरायं न वा स्याच्छती वाजी स्वधयेत्कृताच्च ॥

अथर्व ११।४ (९) २१

'यह (इन्द्र) प्राण अपना एक पांव उठा नहीं रखता है यदि यह पांव बाहरसे इसलिये तो इस जगत्में कोई भी नहीं जीवित रह सकता। न दिन होता और न रात्री होती। (अथर्व ११।४ (९) २१) 'प्राण अंदरसे बाहर जाने के समय अपना संबंध नहीं छोड़ता यदि इसका संबंध बाहर जानेके समय छूट जावेगा तो प्राणोंका प्रभु होगी। यही बात इस सूक्त के तृतीय मन्त्रमें कही है। हृदयका अंतरिक्षरूपी समुद्र इस प्राणका स्थान है वहांसे यह एक बार बाहर आता है और दूसरी बार अंदर जाता है, परंतु बाहर आता है उस समय यह उसके लिये बाहर नहीं रहता, यदि यह बाहर ही रहा और अंदर न गया तो प्राणी जीवित नहीं रह सकता। यह प्राणका जीवन के साथ संबंध यहां देखना आवश्यक है। यह देखनेसे ही प्राणका महत्व समझमें आसकता है। और प्राण की शक्ति का महत्व जाननेके पश्चात् प्राणका भी जो प्राण है उस आत्माका भी महत्व इसके अंदर इसी रीतिसे और इसी युक्तिसे जाना जा सकता है।

प्राणोंका पति।

यह वास्तवमें एकही प्राण है तथापि विविध स्थानोंमें रहने और विविध काम करनेसे उसके विविध भेद माने जाते हैं। मुख्य प्राण पांच और उपप्राण पांच मिलकर एक अन्य नाम विशेषसे या संख्यासे भिन्न हैं परंतु वह कोई मर्यादा नहीं है अनेक स्थानोंकी और अनेक कार्योंकी कल्पना करनेसे अनेक भेद माने जा सकते हैं। इसलिये अथर्वा ऋषि ने इस सूक्तमें प्रतिपादन किया है और वह एक आत्मासे प्राण रहता है ऐसा भी आवश्यक वर्णन किया है। इसी दृष्टिसे मिश्र मंत्र भाग अब देखिये—

अयमग्निः सहस्रजिद्धनदा वनादधि
अध्यारुरुक्षन्नर्यो अजीजनत् ॥ (मं ३)

इस निर्जीव अनेक अप्सराओंके साथ यह एक मनुष्य उत्पन्न करता है और उन अप्सराओंसे यह संबंध रहता है।'

यदि गंधर्व और अप्सराएं ये शब्द हटादिये और अपने लिखित किन अर्थोंके अनुसार शब्द रखे तो उक्त मंत्र भाष्यका अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है— इन निर्देश अवेक प्राण शक्तियोंके साथ यह एक आत्मा संगति करता है, सम्मिलित होता है और सब प्राणोंके अंदर भी यह सर्वधारक आत्मा रहता है। '

यह अर्थ अति सुबोध होनेसे इसके अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्यों कि इस के हरएक शब्दका विशेष स्पष्टीकरण इससे पूर्व आचुका है। इसलिये यह क्रमक पाठक अर्थ समझ जावेंगे। सब प्राण आत्माके आश्रय लेकर शरीरमें अर्थ करते हैं और आत्मा भी प्राणोंके अन्दर रहता है। इस विषयमें यजुर्वेद कहता है—

सो अहमस्मि। यजु अ ४ ।१०

(सः) वह (अहं) अस्मि अर्थात् प्राणके बीचमें रहनेवाला आत्मा (अहं) मैं हूं। अर्थात् प्राणोंके अन्दर आत्मा रहता है और आत्माके बाहर प्राण या अन्य शक्ति रहती है और ये दोनों अन्यत् का सब व्यवहार कर रहे हैं।

ब्रह्माण्ड देह।

पाठक ये सब बातें अपने अंदर देखें। परंतु यहां केवल अपने अंदर देखकर और अनुभव कर के ही ठहरना नहीं है जो बात छोटे क्षेत्रफलके अपने देहमें देखी है वही बड़े ब्रह्मांड देहमें देखना है अथवा विराट पुरुषमें अनन्त करुणा है। इस सूक्तमें विश्वव्यापक आत्मतत्व वर्णन करना मुख्य कारण है। तथापि समझमें आनेके लिये हमने ये सब बातें अपने अंदर देखनेका विचार किया अब इसी क्रमसे ब्रह्मांड देहकी कल्पना करना चाहिये।

जिस प्रकार प्राणीके देहमें प्राण है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड देहमें विश्वव्यापक प्राण का महासमुद्र है। इसी महाप्राण समुद्रसे हम षोडशा प्राणका ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अन्यान्य शक्तियां भी ब्रह्माण्ड देहमें वैसी विद्यमान रहती हैं। दोनों स्थानोंमें शक्तियां एकही प्रकारकी हैं परंतु व्यष्टि और समष्टि का भेद है। इसीलिये अपने अंदरकी व्यवस्था देखनेसे बाह्य व्यवस्था जानी जा सकती है।

सारांश

पाठक इस सूक्तमें परमात्माकी सर्व व्यापक सत्ता देख सकते हैं। वही एक उपास्य देव है वही सबका आधार है। वह सबके दुःख दूर करता है और सबको सुख देता है।

इसकी प्राप्ती मानव कल्पनासे करनी चाहिये। इसको सब स्थानमें व्याप्त मानकर, इसका मनन करना चाहिये। हरएक धूलिके अतिसूक्ष्म पदार्थमें इसका अर्थ देखनेका अभ्यास करनेसे इसके विषयमें ज्ञान होने लगता है और इसके विषयमें श्रद्धा बढ़ती जाती है।

इसके साथ प्राणशक्ति रहती है जो कहीं किसी समय प्रकट होती है और किसी समय गुप्त छिपी रहती है। वह कहां प्रकट होती है और कहां छिपी रहती है यह देखनेसे मनुष्यें चमत्कारसे इसके अस्तित्वकी कल्पना हो सकती है।

यह जैसा मेघोंकी बिजलीमें प्रकाश रूपसे है वैसी प्रकार वनस्पतिमें भी प्रकाश रूपसे है। प्रकाशकोंमें भी यही प्रकाशक है अंधेरेमें भी यह बसा है सूक्ष्मोंसे भी यह सूक्ष्म है इस प्रकार इसको जानकर सब भूतोंमें इसका अनुभव करके इसमें मग्न रहना चाहिये। इसके सामने सिर झुकाना चाहिये।

सब मनुष्यों को जैसा उत्साह और प्रेम हो रहा है वह इसकी जीवन शक्तिसे ही है। यह जानकर सर्वत्र इसकी महिमा देखकर इसकी पूजा करनी चाहिये।

प्रथम नमन सर्वत्र दर्शन करनेके पश्चात् इसकी सेवा करनेके लिये इसके अर्थमें अपने आपको समर्पित करना चाहिये। सबल पालन दुर्बल निर्दलन इस परमात्माके अर्थमें पूर्वोक्त रीतिके अनुसार अपने कर्तव्यका भाव आदरसे करना ही इसकी भक्ति करना है और यह करनेके लिये दुःखितोंके दुःख दूर करनेके कार्य अपने सिर पर आदरसे लेने चाहिये। उपरोक्तिया यह सोचा उपास्य इस सूक्त द्वारा प्रकाशित हुआ है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

—: ०—

आरोग्य-सूक्त ।

(३)

[ऋषिः-आङ्गिराः । देवता भैषज्य, आयुः, धन्वन्तरिः ।]

अदो यदवभारत्यवल्कमधि पर्वतात् । तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥ १ ॥
आदङ्गा कविदङ्गा शुत या भेषजानि ते । तेषामसि त्वमुत्तममनाखावमरोगणम् ॥ २ ॥
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुत्साणमिद महत् । तदाखावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ३ ॥
उपवीका उदुरन्ति समुद्रादधि भेषजम् । तदाखावस्य भेषजं तदु रोगमजीजमत् ॥ ४ ॥
अरुत्साणमिद महस्पृथिव्या अभ्युद्भृतम् । तदाखावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ५ ॥

अर्थ-(अदः यत्) वह जो (अवतः-के) रक्षक है और जो (पर्वतात् अधि अवभरति) पर्वतके ऊपरसे नीचेकी ओर दौड़ता है । (तत् ते) वह तेरे लिये ऐसा (भेषजं कृणोमि) औषध करता हूं (यथा सुभेषजं असासि) जिससे तेरा उत्तम औषध बन जावे ॥ १ ॥

हे (अङ्ग अङ्ग) प्रिय! (आत् कविदङ्ग) अब बहुत प्रकारसे (या ते) जो तेरेसे उत्पन्न होनेवाले (उत भेषजानि) अनेकों औषधें हैं । (तेषां) उनमेंसे (त्वं) (अनाखाव) घावको हटानेवाला और (अ रोगणं) रोगको दूर करनेवाला (उत्तमं असि) उत्तम औषध है ॥ २ ॥

(असुराः) प्राणोंको बचानेवाले वैद्य (इदं महत् अरुत्साणं-खाव) इस बड़े अच्छी पकड़कर घर देनेवाले औषधको (नीचैः खनन्ति) नीचेसे खोदते हैं । (तत् आखावस्य भेषजं) वह घावका औषध है, (तत् उ रोगं अनीनशत्) वह रोग का नाश करता है ॥ ३ ॥

(उपवीकाः) अच्छे काम करनेवाले (समुद्रात् अधि) समुद्रसे (भेषजं उदुरन्ति) औषध ऊपर निकालकर लाते हैं, (तत् आखावस्य भेषजं) वह घावका औषध है (तत् रोगं अजीजमत्) वह रोगका शमन करता है ॥ ४ ॥

(इदं अरुत्साणं) यह कोड़ेको पकड़कर भरनेवाला (महत्) बड़ा औषध (पृथिव्याः अधि उद्भृतं) भूमीसे ऊपरसे निकालकर लाया है । (तत् आखावस्य भेषजं) वह घावका औषध है (तत् उ) वह (रोगं अनीनशत्) रोगका नाश करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— एक औषध पर्वतके ऊपरसे नीचे लाया जाता है उससे उत्तम से उत्तम औषधी बनती है ॥ १ ॥ उससे तो अनेकप्रकारके औषधियां बनायी जाती हैं परन्तु घावको हटाने अर्थात् रक्तस्रावको ठीक करनेके काममें वह औषधि बहुत ही उपयोगी है ॥ २ ॥ प्राणको बचाने वाले वैद्य क्षेम इस औषध को खोद खोद कर लाते हैं उससे घावको ठीक करने का औषध बनाते हैं जिससे रोग दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ अच्छे काम करने वाले भी समुद्रसे एक औषध ऊपर लाते हैं वह भी घावको ठीक कर देता है और रोगको शान्त कर देता है ॥ ४ ॥ यह पृथ्वीपरसे लाया हुआ औषध भी घावोंको ठीक करता है घावको भर देता है और रोगका नाश करता है ॥ ५ ॥

य नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आरादस्मद्दिव्या इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥ ६ ॥

अर्थ- (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां (नः) हमारे लिये (शिवाः अं भवन्तु) सुख और शान्तिदायक हों। (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रका वज्र (रक्षसः अपहन्तु) राक्षसोंका हनन करे। तथा (रक्षसां विसृष्टाः इषवः) राक्षसोंद्वारा छोड़े हुए बाण हमसे (आरात् पतन्तु) दूर गिरें ॥ ६ ॥

जल और ओषधियां हमारे लिये आरोग्य देनेवाली हों। हमारे क्षत्रियों के वज्र शत्रुओंपे प्रहार करें और शत्रुओंके हमपर फेंके हुए शस्त्र हम तक न पहुंच दूर गिरें ॥ ६ ॥

औषधि

इस सूक्तका 'अप्+र' शब्द प्रथम राक्षस वैद्यका वाचक है व कि राक्षस का।

पर्वतके ऊपरसे बहनेवाले तथा पृथ्वीके ऊपरसे अनेकस्थानों और बहती आती हैं और उन से वैद्यने तैयार दवाइयां बनायी जाती हैं। इन औषधीसे मनुष्योंके पाप ताप तथा अन्यान्य रोग दूर होकर उनको आरोग्य प्राप्त होता है। जल और ओषधियोंसे इस प्रकार आरोग्य प्राप्त करके मनुष्योंका कल्याण हो सकता है।

इस सूक्तमें यदि किसी विशेष औषधका वर्णन होता तो वह इधर ध्यानमें नहीं आता है।

सुविज्ञ वैद्य इस सूक्तका विशेष विचार करें। इस समय इस सूक्तमें सामान्य वर्णन ही हमें दिखाई देता है।

वज्रोंका उपयोग

क्षत्रियोंके वज्र शत्रुओंपर ही गिरें अर्थात् आपसमें लड़ाई न हो, यह अन्तिम मंत्र का उपदेश आपसमें एकता रखनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है यह ध्यानमें रखने योग्य है।

इस सूक्तके यह मंत्रमें ' हमारे घर पुरुषका वज्र शत्रुपर गिरे परंतु शत्रुके वज्र हम तक न पहुंच जांय ' ऐसा कहा है, इससे अनुमान होता है कि यह सूक्त विशेष कर वज्र रक्षा के श्लोक इकट्ठा करनेके लिये है कि जो राजाओं युद्धमें वज्रोंके आघातसे होते हैं। युद्ध करनेके समय जो एक दूसरेसे संघर्ष होता है और उसमें चोट आदि लगने तथा वज्रोंके घात होनेसे जो व्रण आदि होते हैं उनसे कैसा रक्त स्राव होता है उसी प्रकार सूजन होना और पाके उत्पन्न होना भी संभव है। इस प्रकारके व्रणोंके घावोंके स्थान बताने के लिये यह सूक्त है। परंतु ऐसी पीड़ा दूर करनेके लिये कौनसा उपाय करना अथवा किस चिकित्सा आदरण प्राप्त करना इत्यादि बातोंका पता इस सूक्तसे नहीं लगता है। इस लिये इस समय इस सूक्तका अधिक विचार करनेमें अप्रस्तुत है।

—o—

जङ्गिड-मणि ।

(४)

[ऋषिः-अथर्वा । देवता चन्द्रमाः, जङ्गिडः]

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दर्शमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥ १ ॥
जङ्गिडो ब्रह्मराजिष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥ २ ॥
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अस्त्रिणः । अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥ ३ ॥
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा । विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥ ४ ॥

अर्थ-(दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयुको प्राप्तिके लिये तथा (बृहते रणाय) बड़े आनंद के लिये (वि-स्कन्ध-दूषणं) शोषक रोग को दूर करने वाले (जङ्गिडं मणिं) जंगिड मणिको (अ-रिष्यन्तः दर्शमाणाः वयं) न हटने वाले परंतु पक्के बनानेवाले हम सब (बिभृमः) धारण करते हैं ॥ १ ॥

यह (सहस्र-वीर्यः) हजारों सामर्थ्योंसे युक्त (जङ्गिडः मणिः) जंगिड मणि (ब्रह्म-राजात्) बहुताई बढ़ानेवाले रोगसे (वि-राजात्) शरीर क्षीण करनेवाले रोगसे (वि-स्कन्धात्) शरीरको दुष्ट करनेवाले शोषक रोगसे (अभि-शोचनात्) रोगोंकी ओर प्रवृत्ति करनेवाले रोगसे (विश्वतः) सब प्रकारसे (नः परि पातु) हम सबका रक्षण करे ॥ २ ॥

(अयं) यह जंगिड मणि (विस्कन्धं सहते) शोषक रोगसे बचाता है (अयं) यह मणि (अस्त्रिणः बाधते) मांसक मस्त रोगसे बचाता है । (अयं जंगिडः) यह जंगिड मणि (विश्व-भेषजः) सर्व औषधियोंका रस ही है, वह (नः अंहसः पातु) हमें पापसे बचाये ॥ ३ ॥

(दैवैः दत्तेन) दिव्य मनुष्यों द्वारा दिये हुए (मयोभुवा) सुख देनेवाले (जङ्गिडेन मणिना) जंगिड मणिसे (विष्कन्धं) शोषक रोगको और (सर्वा रक्षांसि) सब रोगजन्तुओंको (व्यायामे) संघर्ष में (सहामहे) दबा सकते हैं ॥४॥

भावार्थ— दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेके लिये और महत्त्वपूर्ण बड़ा आनंद अनुभव करनेके लिये जंगिड मणिको शरीर पर हम धारण करते हैं इससे हमारी क्षीणता नहीं होगी और हमारा बल भी बढ़ेगा क्यों कि यह मणि दुष्टता अर्थात् शोषक रोगको दूर करता है ॥ १ ॥

यह मणि आधारतः हजारों सामर्थ्योंसे युक्त है, परंतु विशेष कर अनुचित बढ़ानेवाले क्षीणता करने वाले शरीरको दुबलेपनेवाले बिना कारण व्यर्थमें रोगोंके आसू आनेवाले रोगोंसे यह मणि बचाता है ॥ २ ॥

यह मणि शोषक रोगको दूर करता है और जिसमें बहुत बल पाया जाता है परंतु शरीर कृश होता रहता है; इस प्रकार के गरम रोगसे भी बचाता है । इस मणिमें अनेक औषधियोंके गुण हैं इस लिये यह हमें सामर्थ्यसे बचाये ॥ १ ॥ और पुरुषार्थसे प्राप्त हुआ और सुख देनेवाला यह जंगिड मणि शोषक रोग और रोग बीज मूल रोगजन्तुओंसे हमारा बचाव करे ॥४॥

२ वचायुष्या वातरक्तघृष्णाशी स्थूलविवर्धिनी ।

३ वचापर्यायाः ' मङ्गल्या । विजया । हरोन्मी । भद्रा ।

(१) वचके गुण—तीक्ष्णता चतुता उष्णता से गुण कफ आम पीनि और सूजन का नाश करनेवाली । वात ज्वर अतिसार का नाश करनेवाली । वमन करानेवाली । उन्माद और भूतरोग का नाश करनेवाली यह वचा है ।

(२) वचाके आयुष्य वचता है वात-रक्त-तृष्णका नाश करती है । स्थूल वार्धिकी दूर करती है ।

(३) वचाके पर्याय शब्दोंका अर्थ-(मङ्गल्या) मंगल करनेवाली (विजया) विजय करने वाली (हरोन्मी) राक्षसोंका नाश करनेवाली पूर्वोक्त रोगसमूहक कृमियोंका नाश करनेवाली, (भद्रा) कल्याण करनेवाली । '

यह वचाका वैद्यकशास्त्रोक्त वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि इसकी जंगिडसे गुण धर्मोंमें समानता है । पाठक पूर्वोक्त वर्णनके धर्मोंके साथ इसकी तुलना करेंगे, तो पता लग जायगा कि इसके गुणधर्म समान हैं । इस लिये हमारा विचार हुआ है, कि वैद्यक वनि वनस्पत इसका ही बनाया जाता होगा । यह समानता देखिये—

वैद्यक ग्रंथ के शब्द	—[वचाके गुण]—	इस सूक्तके शब्द
१ वायुष्या	—	१ दीर्घायुत्वाय (मं. १) आयुर्वे वारिषत् (मं ६)
२ रक्षोघ्नी । भूतघ्नी	—	२ रक्षांसि सहामहे (म ४)
३ वातघ्नी उन्मादघ्नी	—	३ उन्मादात् पातु (मं. २) आधिद्योतनात् पातु । (मं २)
४ मंगल्या भद्रा स्थूलविवर्धनी ।	—	४ अरिष्टतातः (म २) वृक्षमाजात । सहजदीर्घः (म २)
५ विजया	—	५ अरातिदूषिः (मं ६)
६ अतिसारघ्नी	—	६ विश्वरात् (वि-सारात्) पातु (म २)
७ शोफघ्नी ज्वरघ्नी कफघ्नी श्लेष्मघ्नी	—	७ विश्वभेषजः (म ३)

इस प्रकार पाठक देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि वैद्यक ग्रन्थोक्त वचाके गुणधर्म और अथिरवनि के गुणधर्म अक्षरशः मिलते जुलते हैं । इससे अनुमान होता है कि वनस्पतः जंगिड वाम वचा के ही बनाया जाता होगा । वैद्यकशास्त्र ग्रन्थोंके लोकपि प्रारम्भमें आयुर्वेदमें कही गयी जाती अथवा कही गयी जायेगी चाहिये यह हमें पूरा पता है तथापि किसी लोकाभके अक्षरमें उस स्थानपर या अक्षरमें लीजाती है वह गुणसाधम्य देख कर ही की जाती है ।

चरकादि ग्रन्थोंमें जहां वच वचा आयुष्य वचस और वचवर्धक रसायन प्रयोग लिखे हैं वहां लोग्यादि लिख और वैद्योंने अथवा इस प्रकार गुण साधम्यसे अन्य लोगोंके लेख का विचार किया है । इसलिये यदि जंगिड वनिका ठीक पता नहीं चलता तो इस वनिके गुण धर्मोंके समान गुणधर्मवाला वनस्पतिका वनि बनाना और उसका धारण करना बहुत अच्छा ही होगा । तथापि हम यह अर्थ गुरुजन वैद्योंपर ही छोड देते हैं तथा इस विषयमें आपको कुछ भी शंका आवश्यक है वह भी यहां स्पष्ट कर देते हैं । गुरुजन वैद्य इस महत्त्वपूर्ण विषयकी खोज अवश्य करें ।

मणि धारण ।

कई वर पाठक करेंगे कि यह क्या अंध विश्वास की बात है कि केवल मणि या रत्नके वेष्टन धारण करने से ही विजय मिल जाता है ? क्या इससे तलवार चलाना बन्दूक चलाना आदिकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी ? इस प्रकारके वचार यहां उपस्थित होना स्वाभाविक है । इस लिये इस विषयका यहां विचार करना आवश्यक है—

इस सूक्तमें जो ' वयिष्टमणि ' का वर्णन है वह तावीज या गाया डोरा या आदूकी चीज नहीं है। वह वास्तविक औषधि पदार्थ है। इसके पूर्वके तृतीय सूक्त में पर्वत, और पृथ्वीके ऊपर होने तथा समुद्रके तलेमें उत्पन्न होनेवाली औषधि वनस्पतियों का वर्णन अपरिचय रीतिसे आया है इस औषधिवनस्पतियोंकी अनुवृत्ति इस सूक्तमें है। ये दोनों सूक्त साथ साथ हैं और दोनोंका रोगनिवारण और आरोग्य साधन यह विषय समान ही है। इसलिये यह औषधीय मणि है यह बात स्पष्ट है।

मणिपर संस्कार।

स्वयं यह मणि वनस्पतिका है अर्थात् वनस्पतिकी जड़ीसे यह बनता है तथा यह जिस धातुमें पोयाजाता है वह भी विशेष गुणकारी वनस्पतिका अवयव होता है यह बात पूर्व सूक्तमें बतायी है। विशेष गुणकारी धातु और विशेष गुणकारी मणि इनके मिलापसे शरीरपर विशेष परिणाम होना संभव है। इसके अनंतर—

अरण्यान्यन्य आभृतः।
कृत्या अन्यो रक्षेभ्यः॥ (मंत्र ५)

' एक अरण्यकी वनस्पतिसे बनता है और दूसरा झाड़ीसे उत्पन्न हुए वनस्पतियोंके रसोंसे भरा जाता है। यह पंचम मंत्रका विधान विशेष ही मनन करने योग्य है। इसमें आ—भृतः शब्द है, इसका तात्पर्य (आ) चारों ओर से (भृतः) पूर्ण किया चारों ओरसे भर दिया है, ऐसा होता है। अर्थात् मणि और धातु अनेक वनस्पतियोंके रसों में भिगोकर सुखानेसे वे सब रस उस धातुमें और मणिमें भर जाते हैं अथवा जम जाते हैं और इस सब रसोंका परिणाम शरीरपर हो जाता है। इसलिये औषध मणिका धारण यह एक वैद्य शास्त्रका महत्त्वपूर्ण और उपयुक्त विषय है इसमें अन्धविश्वासकी बात नहीं है।

आजकल जो तावीज कवच, धागा डोरा, आदूका पदार्थ है वह केवल विश्वास की चीज है अथवा भयसूचक उपाधि है। वैसा वैदिक मणि नहीं है। इस में औषधियोंका संयुक्त विशेष रीतिसे शरीरके साथ होता है। यद्यपि शरीरके बाहर औषधि नहीं लेकर जो जाती तथापि शरीरके बाहरके स्पर्शसे असर पहुंचाता है।

हमने यह बातें देखी हैं, कि तमाखूके पत्ते पेटपर बांध देनेसे वमन होता है। [इसी प्रकार हरीतकी (हिरड़) की एक तीव्र जाती होती है उस को हाथमें पकड़नेसे वमन होते हैं ऐसा कहते हैं परंतु यह बात अभीतक हमने देखी नहीं है।] इसके अतिरिक्त हमने अनुभव की हुई बातें भी यहां विशिष्ट करना योग्य है कोल्हापुर रियासतके अंदर वाघवा (बाघवा) नामक एक छोटी रियासत है। वहां के श्री नरेश के पास वनस्पतिके जंगली मणि मिलते हैं, इस मणिके धारणसे दांतकी पीड़ा दूर होती है। इस विषयका अनुभव हमने कई बार अपने ऊपर किया है और अपने परिचितों पर भी किया है। यह मणि किसी वनस्पतिकी जड़का बनाया जाता है, परंतु उस वनस्पतिका नाम अभीतक हमें पता नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रवास दुर्घर्ष, उग्र विषैले रोग आदिके धारणसे बालकोंके शरीरोंपर विशेष प्रभाव होता है यह भी देखा है। इसलिये यदि रसों और मणि उक्त वनस्पतियोंसे बनाकर उनको विशेष रसोंसे सुसंस्कृत करके धारण किया जाय तो रोगोंका दूर होना शास्त्रदृष्टिसे युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

रक्त के विषयमें हमने कई वैद्योंकी सलाह ली है उनका कहना है कि यथार्थ मणि उस प्रकार शरीरपर धारण किया जाय तो वह स्पर्शजन्य रोग (छूत से फैलनेवाले रोग) की बाधा से दूर रख सकता है अर्थात् जो धारण करेगा उसको उक्त रोग होनेकी संभावना कम है। इस बातका हमने कई बार प्रयोग भी किया है और आम ही प्रतीत हुआ है।

इसी प्रकार अधिक प्रतिपात रोगके दिनोंमें इमीटिशिया नामक वनस्पतिके बीज धारण करनेसे कुछ आराम होनेकी बात कई डाक्टर कहते हैं तथापि हमें इसका विशेष अनुभव नहीं है। परंतु सुनते हमने देखा था कि उक्त रोगके प्रादुर्भावमें इसका धारण कई लोग करते थे।

इस थोड़ेसे अनुभवसे हम कह सकते हैं, कि अधिक मणिका धारण भी एक शास्त्रीय महत्त्वका विषय है और इसमें कई अन्धविश्वासकी बात नहीं है। अब विशेष खोज करनेवालोंका यह विषय है कि वे मणिवनस्पतिकी ठीक विदित्या करने की रीतिको

यमर्क मा वह्निरुदज्रु विष्कन्धाद्भि रक्षताम्। अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५॥
कृत्यादूषिरय मणिरथो अरातिदूषिः। अथो सहस्वाञ्छत्रुहा प्र णु आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

अर्थ–(सप्तः च) सप्त और (अंगिरः च) अंगिरः ये दोनों (विष्कंधात्) स्कोपक रोगसे (मा अभिरक्षताम्) मेरा बचाव करें। इन में से (अन्यः) एक (अरण्यात् आभृतः) वन से लाया है और (अन्यः) दूसरा (कृष्याः रसेभ्यः) खेतीसे उत्पन्न हुए रसोंसे बनाया है ॥ ५ ॥

[अयं मणिः] यह मणि [कृत्या-दूषिः] हिंसासे बचानेवाला है [अथो] और [अ-राति-दूषिः] कृपणता रोगों को दूर करनेवाला है [अथो] ऐसा यह [सहस्वान् अयिकः] बलवान अंगिरःमणि [नः आयूंषि तारिषत्] हमारे आयुष्योंको बढ़ावे ॥ ६ ॥

भावार्थ– सप्त और अंगिरः ये रोगों को रोकने से हमारा बचाव करें। इनमेंसे एक वनसे प्राप्त होता है और दूसरा खेतीसे उत्पन्न हुए औषधियोंके रसोंसे बनाया जाता है ॥ ५ ॥

यह मणि नाशसे बचाता है और आरोग्यके शत्रु सभी रोगोंसे दूर रखता है। यह प्रभावशाली मणि हमारा आयुष्य बढ़ावे ॥ ६ ॥

सप्त और अंगिरः ।

इस सूक्तमें 'सप्त' और 'अंगिरः' इन दो वस्तुओंका उल्लेख है (मं ५)। सप्त अथवा सप्त यह अंगिरः पदार्थ है भाषामें भी इसका वही नाम है। इसके विषयमें राजनिघण्टु नामक वैद्यक ग्रंथमें यह वचन है–

१ सप्तपर्णे रसायने हिते मेधाकरे च।
वीर्ये क्षोभितमुद्दिष्टम् ॥ राज ३ प
२ सप्तः कषायो मेधार्थोऽवृष्यो वातनिद्रहृत्
वातकफहरः ॥ राजनिर्घंटु व २

" (१) सप्तपर्ण वृक्ष रसायन रोगमें हितकारक है मेधाकारक है और उसका वीर्य रसकी वृद्धि करनेवाला है। (२) उसके ये गुण हैं—कषाय रसयुक्त मेधा–मर्म—रसका वृद्धि करनेवाला वृष्य करनेवाला तथा वात रोग और कफ रोगको दूर करनेवाला है।

अब हमें इसका अधिक विचार करें। यह सप्त (कृष्याः रसेभ्यः आभृतः) खेतीसे उत्पन्न होनेवाले रसोंसे बना है (मं. ५)। यह वर्णन सप्त नाम पदार्थ है इसका निश्चय करता है। सप्त शब्दके जो अनेक विकृत हैं उनमेंसे भाषा या बनाने का रस्सी यही अभिप्रेत है। रस्सी, वाध या बनाने को हमारे व्यवहारमें बहुत उपयोग आता अभिप्रेत है; जो विविध औषधियोंके (रसेभ्यः । मंत्र ५) रसोंमें भिगोकर बनाया जाता है। इस सप्त का नाम त्वक्सार है इसका अर्थ होता है (त्वच्+सार) त्वचामें विद्यमान सत्व रहता है; इसीलिये इसकी त्वचाका धागा बनाकर उसको विविध औषधियोंमें भिगोकर हाथपर बांधनेमें अथवा गलेमें यह धागा बांधा जाता है। व्यायाम करनेके समय जब पसीना आता है तब उस पसीनेसे सप्त उसके धागेके औषधियोंके रस शरीरपर बनते हैं और शरीर पर इष्ट प्रभाव करते हैं।

इस बनाये धागेपर कौन कौनसे रस कब्जमें आते हैं और किस प्रकार यह तैयार किया जाता है, इसका विचार पुरोगम वैद्योंसे करना उचित है। क्योंकि इस बारेमें इस सूक्तमें कुछ भी कहा नहीं है।

सप्तः च मा अंगिरसः अभिरक्षताम् ॥ (मं. ५)

सप्त और अंगिरसमणि मेरा सब प्रकार रक्षण करें यह पहला मंत्रभाग कथन है, इस कथनसे स्पष्ट हो जाता है कि, सप्तके धागेमें अंगिरसमणिको ग्रथित करके गलेमें या शरीरपर धारण करनेका अभिप्राय इस सूक्तमें स्पष्ट है। सप्त प्रकार औषधिरसोंमें बनाया सप्तका धागा भी अवश्य गुणकारी है और अंगिरसमणि भी अवश्य गुणकारी है तथा दोनों इकट्ठे हो जावें, तो भी इन दोनोंका मिलकर विशेष लाभ होना संभव है। जबतक विशेष खोज नहीं हुई है तबतक हम यही कहें जहांतक कि उसके सूक्तमें अंगिरस मणि रखकर शरीर पर धारण करनेके मंत्रोक्त लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

अंगिड मणिके लाभ ।

१ दीर्घायुत्वं—आयुष्य दीर्घ होता है । (म १)
आयुषि पवित्रपत्—आयुष्य पवित्र बनाता है । (म १)
२ महत् रत्न (रमणीयं)—बड़ा आनंद, बड़ा उत्साह रहता है जो आनंद शीतोष्णतासे प्राप्त होता है वह इससे मिलता है । (मं १)
३ अरिष्यन्तः—अपघातसे अथवा रोगसे वह न होना । (मं १)
४ दक्षमायुः— (दक्षं) बल बढ़ाया बलवान् होना । (मं १)
५ निष्कवदृषभः—शेषक रोगको दूर करना । जिस रोगसे मनुष्य प्रतिदिन क्षय होता है उस रोगकी निवृत्ति इससे हो जाती है । (मं १)
६ सहस्रवीर्यः—इस मणिमें सहस्रों सामर्थ्य हैं । (मं १)
७ त्रिक-नेत्रः—इसमें तीन नेत्रशक्ति हैं । (म १)
८ मधोसुः—सुख देता है । (म ४)
९ कृत्यादूषिः—अन्यके बाससे अथवा अपनी हिंसा होनेसे बचाने वाला यह मणि है । (मं १)
१० अराति-दूषिः—शत्रोंके मनुष्य जिससे रोग हैं उनको दूर करनेवाला है । (म १)
११ सहस्वान्—बलवान् है अर्थात् शरीरका बल बढ़ाता है । (मं १)
इस अद्भुत मणिके निम्नलिखित रोग दूर होनेका उल्लेख इस सूक्तमें है वह भी यहां इस स्थानपर देखने योग्य है—
१२ अस्थाराव् पक्षु—अस्थाई जिससे बढ़ती है वह शरीरका भाग इससे दूर होता है । (म १)
१३ नि-शरात् पक्षु—जिस रोगसे शरीर विशेष क्षीण होता है, उस रोगसे यह मणि बचाता है । (मं १)
१४ नि-शंसात् पक्षु—जिससे शरीर सूखता जाता है उस रोगसे यह बचाता है । (मं १)
१५ अभि-शोचनात्—जिससे रोगकी वृद्धि हो जाती है उस बीमारीसे यह बचाता है । (मं. १)
१६ अत्रिणः वाजसे— (अद् त्रिन्) बहुत अन्न खानेकी आवश्यकता जिस रोग में होती है परंतु बहुत खानेपर भी शरीर कृश होता रहता है, उस भस्मक रोगकी निवृत्ति इससे होती है । (मं १)
१७ अंहसः पक्षु—पापवृत्तिसे बचाता है, अथवा दीन मानना मनसे हटाता है । (मं. १)
१८ रक्षांसि सहस्वते—रोगबीज तथा रोगोत्पादक क्रिमियोंको रक्षस् (क्षत) कहते हैं क्योंकि इनसे शरीरके घातक धातुओंका (क्षत) नाश होता रहता है । इन रोगबीज या रोग धातुओंका नाश इससे होता है । (म ४)

ये सब गुण इस अद्भुत मणिमें हैं । यहां रक्षस् शब्दके विषयमें थोड़ासा कहना है । [पाठक कृपा करके आधुनिक संशोधन द्वारा प्रकाशित वैद्यमें रोग धातु शास्त्र नामक पुस्तक देखें इस पुस्तकमें बताया है कि ये राक्षस अतिसूक्ष्म कृमि होते हैं जो नेत्रोंपर दिखते हैं तथापि आंखसे दिखाई नहीं देते । ये रोगोंमें कारण होते हैं । इस वर्णन के पढ़नेसे पाठकोंको विदित होगा कि रोग बीजोंका या रोगधातुओंका नाम राक्षस है । इसीको रक्षस् कहते हैं । क्षद् (क्षीण होना) इस धातुसे असुरको उलटा पुलटा लेकर रक्षस् शब्द बनता है जैसेकि रोगोंके रोगधातुओंको यह मणि नाश करता है यह यहां भाव है अर्थात् यह (Highly disinfectant) उत्तम प्रकारका रोगकी वृत्तिके रोग को दूर करनेवाला है यह बात इस विवरणसे पाठकोंके मनमें आ चुकी ही होगी ।

यह अद्भुत मणि किस वनस्पतिका बनाया जाता है । यह बड़ा प्रयत्न करने पर भी पता नहीं चला । तथापि जो गुण उक्त मंत्रोंमें बताये हैं इनमें से बहुतसे गुण बच्चा वनस्पतिके गुण धर्मोंके साथ मिलते जुलते हैं इस लिये हमारा विचार ऐसा होता है कि यह मणि बच्चाका होना बहुत संभवनीय है देखिये बच्चाके गुण—

१ बचाशुक्लः— तीक्ष्णा कटुः उष्णा कफामयविबोधिनी
वातश्लेष्मविसारी वान्तिकृत् हृद्याहृद्यपूतिघ्नी च । राजनिघण्टु व १

१ वचायुष्या वातकफघ्न्याऽऽयुष्यवर्धिनी ।
२ वचापर्यायाः मङ्गल्या । विजया । रक्षोघ्नी । मेधा । '

(१) वचाके गुण—तीक्ष्णता कटुता उष्णता ये गुण कफ आम मेदि और सूजन का नाश करनेवाली । बल उम्र अतिसार का नाश करनेवाली । वमन करानेवाली । उन्माद और भूतदोष का नाश करनेवाली यह वचा है ।

(२) वचाके आयुष्य बढता है वात-कफ-सूजनका नाश करती है । स्मरण शक्तीको वृद्धि करती है ।

(३) वचाके पर्याय शब्दोंका अर्थ—(मङ्गल्या) मंगल करनेवाली (विजया) विजय करने वाली (रक्षोघ्नी) राक्षसोंका नाश करनेवाली दुर्गुण दोषसमूहादिक दुर्गतियोंका नाश करनेवाली, (मेधा) उन्माद करनेवाली । '

यह वचाका वैद्यकग्रंथोक्त वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि इसकी अथिरके गुण धर्मोंमें समानता है । पाठक पूर्वोक्त मन्त्रोंके शब्दोंके साथ इसकी तुलना करेंगे, तो पता लग जायगा कि इसके गुणधर्म समान हैं । इस लिये हमारा विचार हुआ है, कि औषधि मणि समजना इसका ही बनाया जाता होगा । वह समानता देखिये—

वैद्यक ग्रंथ के शब्द	—[वचाके गुण]—	इस सूक्तके शब्द
१ आयुष्या	—	१ दीर्घायुत्वाय (म. १)
		आयुषि धारिषत् (मं १)
२ रक्षोघ्नी । मेधा	—	२ रक्षांसि सहामहे (म ४)
३ वातघ्नी उन्मादघ्नी	—	३ उन्मात् पातु (मं २)
		अभिशोचनात् पातु । (मं २)
४ मंगल्या मेधा	—	४ अरिष्यन्तः (मं २)
स्मृतिवर्धनी ।	—	ब्रह्मणाः । सहस्रवीर्यः (म १)
५ विजया	—	५ अरातिदूषिः (मं १)
६ वातघ्नी	—	६ रिषरात् (वि शरात्)
		पातु (मं २)
७ रोगघ्नी ज्वरघ्नी	—	७ निर्ऋतेरुपस्थात् (मं १)
कफघ्नी प्रतिश्यायघ्नी		

इस प्रकार पाठक देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि वैद्यक ग्रन्थोक्त वचाके गुणधर्म और अथिरमणि के गुणधर्म प्रायः मिलते जुलते हैं । इससे अनुमान होता है कि संभवतः अथिर मणि वचा से ही बनाया जाता होगा । केवल गुण धर्मोंके औषधि प्रकरणमें औषधियां नहीं मणी जातीं उनका नहीं मणी जानी चाहिये; यह भी पूरा पता है तथापि किसी औषधिके अवयवों द्वय लगाकर भी औषधि बनाती है यह गुणधर्म देख कर ही की जाती है ।

परन्तुमणि प्रयोगमें यहां बडे बडे आयुष्य वर्धक और बलवर्धक रसायन प्रयोग लिखे हैं यहां सोमादि दिव्य औषधियोंके अभावमें इसी प्रकार गुण साधर्म्यसे अन्य औषधि लेने का विधान किया है । इसलिये यदि अथिर मणिका ठीक पता नहीं लगता तो इस मणिके गुण धर्मोंके समान गुणधर्मवाली वनस्पतिका मणि बनाना और उसका धारण करना बहुत असंभव नहीं होगा । तथापि हम यह कार्य सुयोग्य वैद्योंपर ही छोड देते हैं, तथा इस विषयमें अधिक खोज होनी अत्यंत आवश्यक है यह भी यहां स्पष्ट कह देते हैं । सुयोग्य वैद्य इस महत्त्वपूर्ण विषयकी खोज अवश्य करें ।

मणि धारण ।

यहां कई पाठक कहेंगे कि यह क्या अंध विश्वासकी बात है, कि केवल मणि धारणसे रोग मुक्त होंगे यह ही विधान किया जा रहा है ! क्या इससे डाक्टरी दवाका दोष आदिकी अंधश्रद्धा की बातें सिद्ध नहीं होंगी ? इस प्रकारकी शंकाएं यहां उपस्थित होना संभव है, इस लिये इस विषयमें यहां विचार करना आवश्यक है—

इस सूक्तमें जो ' अंजिरमणि ' का वर्णन है वह तावीज या धागा डोरा या आदमी चीज नहीं है। वह वास्तविक औषधि पदार्थ है। इसके पूर्वके तृतीय सूक्त में पर्वत, और पृथ्वीके ऊपर होने तथा समुद्रके तलेमें उत्पन्न होनेवाली औषधि वनस्पतियों का वर्णन अर्थवादरूप रीतिसे आया है, इस औषधिवनस्पतियोंकी अनुवृत्ति इस सूक्तमें है। ये दोनों सूक्त साथ साथ हैं और दोनोंका ऋषिनिर्देश और आरोग्य साधन यह विषय समान ही है। इसलिये यह औषधीय मणि है यह बात स्पष्ट है।

मणिपर संस्कार।

स्वयं यह मणि वनस्पतिका है अर्थात् वनस्पतियोंके अवयवोंसे यह बनता है तथा यह जिस धातुमें बांधा जाता है वह भी विशेष गुणकारी वनस्पतिका पाषाण होता है यह बात पूर्व सूक्तमें बतायी है। विशेष गुणकारी पाषाण और विशेष गुणकारी मणि इनके मिलनेसे शरीरपर विशेष परिणाम होना संभव है। इसके बारे--

अरण्यात्स्व आभृतः।
कृत्या अग्नो रक्षेभ्यः॥ (मंत्र ५)

' एक अरण्यकी वनस्पतिसे बनता है और पृथ्वी इत्यादि उत्पन्न हुए वनस्पतियोंके रसोंसे भरा जाता है। यह पंचम मंत्रका विधान विशेष ही मनन करने योग्य है। इसमें आ-भृतः शब्द है इसका तात्पर्य (आ) चारों ओर से (भृतः) पूर्ण किया चारों ओरसे भर दिया है ऐसा होता है। अर्थात् मणि और पाषाण अनेक वनस्पतियोंके रसों में मिलाकर डुबानेसे वे सब रस उन मणिमें और मणिमें भर जाते हैं अथवा जम जाते हैं और इन सब रसोंका परिणाम शरीरपर होता है। इसलिये जपिर मणिका धारण यह एक वैद्य शास्त्रका महत्त्वपूर्ण और पवित्र विषय है इसमें अन्धविश्वासकी बात नहीं है।

आवश्यक जो तावीज बनाना, धागा डोरा बांधना पदार्थ है वह केवल विश्वास की चीज है अथवा भावनासे उसकी उपयुक्तता है। ऐसा अंजिर मणि नहीं है। इस में औषधियोंका संस्कार विशेष रीतिसे शरीरके साथ होता है। यद्यपि शरीरके अंदर औषधि नहीं खिलाई जाती तथापि शरीरके बाहरके स्पर्शसे अंग पहुंचाता है।

इसमें यह बातें देखी हैं, कि उमरखके पत्ते पेटपर बांध देनेसे वमन होता है। [इसी प्रकार इरवलकी (हिरन) की एक सींग बांधी होती है, उस को हाथमें धारणसे दस्त होते हैं ऐसा कहते हैं, परंतु यह बात अभीतक हमने देखी नहीं है।] इसके अतिरिक्त हमने अनुभव की हुई बातें भी यहां निर्देश करना योग्य है कोल्हापुर रियासतके अंदर वाघवा (व्याघ्र वाघवा) नामक एक छोटी रियासत है। वहां के श्री घोरप के पास वनस्पतिके बहुतसे मणि मिलते हैं, इन मणिके धारणसे सांपकी पीडा दूर होती है। इस विषयका अनुभव हमने कई बार अपने ऊपर किया है और अपने परिचितों पर भी किया है। यह मणि किसी वनस्पतिकी अवयव बनाया जाता है परंतु उस वनस्पतिका नाम अभीतक हमें पता नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रवास इसमें साथ विशेष एक व्यक्तिके धारणसे आसपासके शरीरोंपर विशेष प्रभाव होता है यह भी देखा है। इसलिये कई एक और मणि उत्तम वनस्पतियोंसे बनाकर उनको विशेष रसोंसे सुसंस्कृत करके धारण किये जांय तो ऐसोंका रोग होना साध्यासाध्यसे इलाज प्राप्त होता है।

इस के विषयमें हमने कई रोगोंकी उपपत्ति भी दी है उसका कहना है कि यथोक्त मणि उक्त प्रकार शरीरपर धारण किया जाय तो वह स्पर्शजन्य रोग (छूत से फैलनेवाले रोग) को नाश से दूर रख सकता है अर्थात् जो धारण करेगा उसको उक्त रोग होनेकी संभावना कम है। इस बातका हमने कई बार प्रयोग भी किया है और सम ही प्रतीत हुआ है।

इसी प्रकार अनेक अभिशाप रोगके विषयमें इसीलिये नामक वनस्पतिके योग धारण करनेसे कुछ लाभ होनेकी बात कई वाचक कहते हैं तथापि हमें इसका विशेष अनुभव नहीं है। परंतु सुवर्णमें हमने देखा था कि उक्त रोगके आयुर्वेदमें इसका धारण कई योग करते थे।

इस थोडेसे अनुभवसे हम कह सकते हैं, कि अंजिर मणिका धारण भी एक शास्त्रीय महत्त्वका विषय है और इसमें कोई अंधविश्वासकी बात नहीं है। अब विशेष खोज करनेवालोंका यह विषय है कि वे अंजिरमणिकी ठीक विधिका करने की रीतिको

१ वचायुष्या वातकफतृष्णाघ्नी स्मृतिमेधिनी ।

१ वचापर्यायाः ' मङ्गल्या । विजया । इन्द्रोग्नी । भद्रा ।

(१) वचाके गुण—तीक्ष्णता कटुता उष्णता ये गुण कफ आम मेधि और सुख का नाश करनेवाली । वात ज्वर अतिसार का नाश करनेवाली । वमन करानेवाली । उन्माद और भूतरोग का नाश करनेवाली यह वचा है ।

(२) वचाके आयुष्य वचा है वात-कफ-तृष्णका नाश करती है । स्मरण शक्तीको वृद्धि करती है ।

(३) वचाके पर्याय शब्दोंका अर्थ—(मङ्गल्या) मंगल करनेवाली (विजया) विजय करने वाली (इन्द्रोग्नी) इन्द्रियोंका नाश करनेवाली पूर्णोक्त रोगसमूहरूप कृमियोंका नाश करनेवाली, (भद्रा) कल्याण करनेवाली । '

यह वचाका वैद्यकग्रंथोक्त वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि इसकी अथिदसे गुण धर्मोंमें समानता है । पाठक पूर्वोक्त मन्त्रोंके साथ इसकी तुलना करेंगे, तो पता लग जायगा कि इसके गुणधर्म समान हैं । इस लिये हमारा विचार हुआ है, कि अथिद मणि समानता इसका ही बनाया जाता होगा । वह समानता देखिये—

वैद्यक ग्रंथ के शब्द	—[वचाके गुण]—	इस सूक्तके शब्द
१ वचायुष्या	—	१ दीर्घायुष्टाय (मं. १) आयूंषि तारिषत् (मं १)
२ रक्षोघ्नी । पूतनाघ्नी	—	२ रक्षांसि सहामहे (म ४)
३ वातकफघ्नी	—	३ उन्मादात् पातु (मं. २) आविशोक्थात् पातु । (म १)
४ मेधाघ्नी भद्रा स्मृतिमेधिनी ।	—	४ अरिष्यन्तः (मं १) दक्षमाणाः । सहस्रवीर्यः (मं. २)
५ विजया	—	५ अरातिदूषिः (मं ६)
६ अतिसारघ्नी	—	६ विश्वतः (वि-अरात्) पातु (मं २)
७ इन्द्रोग्नी ज्वरघ्नी कण्डूघ्नी प्रमेहिघ्नी	—	७ विश्वभेषजः (मं १)

इस प्रकार पाठक देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि वैद्यक ग्रन्थोक्त वचाके गुणधर्म और अथिदमणि के गुणधर्म प्रायः मिलते जुलते हैं । इससे अनुमान होता है कि संभवतः अथिद मणि वचा से ही बनाया जाता होगा । केवल गुण समानके बोधके प्रकरणमें बोधविधा नहीं बतलाई जाती अथवा नहीं बतलाई जानी चाहिये यह हमें पूरा पता है तथापि किसी बोधविके समानधर्म इस स्थानपर भी आपत्ति लीजाती है यह गुणसमानधर्म देख कर ही की जाती है ।

परन्तु प्रयोगमें यहां बड़े बड़े आयुष्य वर्धक और बलवर्धक रसायन प्रयोग लिखे हैं यहां सोमादि दिव्य औषधियोंके अभावमें इसी प्रकार गुण समानधर्मसे अन्य औषधि लेने का विधान किया है । इसलिये यदि अथिद मणिका ठीक पता नहीं चलता तो इस मणिके गुण कर्मोंके समान गुणधर्मवाली वनस्पतिका मणि बनाया और धारण करना बहुत अच्छा नहीं होगा । तथापि हम यह अर्थ पुरोभाग देखकर ही लेते हैं, तथा इस विषयमें अधिक खोज होनी अत्यंत आवश्यक है यह भी यहां स्पष्ट कर देते हैं । सुबोध वैद्य इस महत्त्वपूर्ण विषयकी खोज अवश्य करें ।

मणि धारण ।

यहां कई पाठक कहेंगे कि यह क्या अंध विश्वासकी बात है, कि केवल मणि धारणसे रोग मुक्त होने का ही विधान किया जा रहा है ! क्या इससे ताबीज कवच माला रोग आदिकी अंधश्रद्धा की बातें सिद्ध नहीं होंगी ! इस प्रकारकी शंका यहां उपस्थित होना संभव है। इस लिये इस बातका यहां विचार करना आवश्यक है—

इस सूक्तमें जो 'मणिबन्धनि' का वर्णन है वह तावीज या माला डोरा या लाखकी चीज नहीं है। वह वास्तविक औषधि पदार्थ है। इसके पूर्वके तृतीय सूक्त में पर्वत, और पृथ्वीके ऊपर होने तथा जलमें तलेमें उत्पन्न होनेवाली औषधि वनस्पतियों का वर्णन अर्थदिग्दर्शन रीतिसे आया है इस औषधिवनस्पतियोंकी अनुवृत्ति इस सूक्तमें है। ये दोनों सूक्त साथ साथ हैं और दोनोंका ऋषिविचारण और आरोग्य भावना यह विषय समान ही है। इसलिये यह औषधीय मणि है यह बात स्पष्ट है।

मणिपर संस्कार।

स्वयं यह मणि वनस्पतिका है अर्थात् वनस्पतियोंके लकड़ीसे यह बनता है तथा यह जिस धातुमें संयोजनता है वह भी विशेष गुणकारी वनस्पतिका भाग होता है यह बात पूर्व सूक्तमें बतायी है। विशेष गुणकारी भाग और विशेष गुणकारी मणि इनके मिश्रणसे शरीरपर विशेष परिणाम होना संभव है। इसके बारे—

वरण्वात्स्म्य आजातः।
क्षुमा अन्तो रक्षेभ्यः॥ (मंत्र ५)

'एक वरण्वती वनस्पतिसे बनता है और दूसरा क्षुमा जिसे उत्पन्न हुए वनस्पतियोंके रक्षोंसे भरा जाता है। यह पंचम मंत्रका विषय विशेष ही मनन करने योग्य है। इसमें आ—क्षुमा शब्द है इसका भावार्थ (आ) चारों ओर से (क्षुमा) पूर्ण किया चारों ओरसे भर दिया है ऐसा होता है। अर्थात् मणि और धातु अनेक वनस्पतियोंके रसों में मिश्रकर तुलानेसे ये सब रस सब धातुमें और मणिमें भर जाते हैं अथवा जम जाते हैं और इन सब रसोंका परिणाम शरीरपर ही जाता है। इसलिये औषध मणिका धारण यह एक वैद्य दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण और उपयुक्त विषय है इसमें अन्धविश्वासकी बात नहीं है।

मणिका जो तावीज, कवच, धातु डोरा, लाखका पदार्थ है वह केवल दिखाव की चीज है अथवा भावनासे उसमें श्रद्धा है। वहां संयोजित मणि नहीं है। इस में औषधियोंका संस्कार विशेष रीतिसे शरीरके साथ होता है। यद्यपि शरीरके अंदर औषधि यही खाने की होती तथापि शरीरके ऊपरसे स्पर्शसे अंग पहुंचाता है।

हमने यह बातें देखी हैं, कि रामफलके पत्ते पेटपर बांध देनेसे दस्त होता है। [इसी प्रकार हरीतकी (हिरड़) की एक फांक होती है, उस को हाथमें धरनेसे दस्त होते हैं ऐसा कहते हैं परंतु यह बात अभीतक हमने देखी नहीं है।] इसके अतिरिक्त हमने अनुभव की हुई बातें भी यहां विशेष करना योग्य है, कोल्हापुर रिसालदारके अंदर बायका (दमका बायका) रामफल एक छोटी रिसालत है। यहां के भी अनेक के पास वनस्पतिके लकड़े मणि मिलते हैं, इस मणिके धारणसे हांतकी पीड़ा दूर होती है। इस विषयका अनुभव हमने कई बार अपने ऊपर किया है और अपने परिचितों पर भी किया है। यह मणि किसी वनस्पतिकी लकड़ी बनाया जाता है परंतु उस वनस्पतिका नाम अभीतक हमें पता नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रवाल हरताल, उग्र विषैले एवं आदिके धारणसे बालकोंके शरीरोंपर विशेष प्रभाव होता है यह भी देखा है। इसलिये कांसे रखी और मणि उत्तम वनस्पतियोंसे बनाकर उनमें विशेष रसोंसे सुसंस्कृत करके धारण किये जाय तो रोगोंका दूर होना शास्त्रदृष्टिसे युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

धनुष के विषयमें हमने कई रोगोंकी जगती की है उसका कहना है कि धनुष मणि उस प्रकार शरीरपर धारण किया जाय तो वह स्पर्शजन्य रोग (छूत से फैलनेवाले रोग) को बाधा से दूर रखता है अर्थात् जो धारण करेगा उसको छूत रोग होनेकी संभावना कम है। इस बातका हमने कई बार प्रयोग भी किया है और काम ही प्रतीत हुआ है।

इसी प्रकार अधिक अतिपात रोगके दिनोंमें इमीलिया नामक वनस्पतिके बीज धारण करनेसे कुछ लाभ होनेकी बात कई डाक्टर कहते हैं तथापि हमें इसका विशेष अनुभव नहीं है। परंतु सुदर्शनमें इसका देखा था कि उस रोगके प्रादुर्भावमें इसका धारण कई लोग करते थे।

इस रीतिसे अनुभवसे हम कह सकते हैं, कि संयोजित मणिका धारण भी एक शास्त्रीय महत्त्वका विषय है और इसमें कोई अंधविश्वासकी बात नहीं है। अब विशेष खोज करनेवालोंका यह विषय है कि वे अनिष्टमणिकी ठीक विशेषता करने की रीतिसे

खोज करें और इसका उपयोग करके आरोग्य प्राप्त करनेका निश्चित उपाय सबके लिये सुलभ करें। वैद्यकशास्त्रोंके अंग देखनेसे बहुत कुछ पता लगना संभव है।

खोजकी दिशा।

यहां खोज करनेकी दिशाका भी थोडासा वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा। श्री सायणाचार्यजीने अपने भाष्यमें लिखा है कि काशी प्रांतमें जन्मित हुए हैं इस मुद्दके विषयमें काशी प्रांतके लोग खोज करें और जो कुछ अनुभव हो वह प्रकाशित करें।

वनस्पति वनस्पति या पौधा है। इसकी जडसे अर्थात् उसमेंसे जो इसके परमाणु हवामें फैल जाते हैं वे रोग-जन्तुओंका नाश करते हैं तथा रोगके विषको भी दूर कर देते हैं। यही कारण है कि वनस्पति शरीरपर धारण करनेसे हुए रोगोंके फैलानेवाले रोग दूर होते हैं या उनकी बाधा नहीं होती है। प्रायः छूतसे फैलनेवाले रोग सूक्ष्म जंतुओं द्वारा फैलते हैं, वे रोगजन्तु वनस्पतियोंके कारण तत्काल मर जाते हैं। ऐसे उपयोगी पदार्थ अश्वत्थ, पूतीका, कपूर नेपरीट आदि वनस्पति हैं। आर्य वैद्यक शास्त्रमें इन पदार्थोंका परिचय किया है और इनको क्रमिनाशक भी कहा है। यदि खोज करनेसे पूर्वोक्त रोगनाशक वनस्पतियोंका या अन्य अधिक सुलभ वनस्पतियोंके अनेक रसोंके योग संस्कार करेंगे तो इस प्रकारसे चिन्तामणि अथवा तत्सदृश मणि जैसा भी प्राप्त होना संभवनीय है। इसलिये हम सुयोग्य वैद्योंको इस विषयकी खोज करनेके लिये सादर प्रार्थना करते हैं।

अंगिरा मणिसे दीर्घ आयुष्य।

प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही अंगिरामणिसे दीर्घायुष्य प्राप्त होनेकी बात कही है। यह दीर्घायुष्य प्राप्ति किस प्रकार होती है, यह बात यहां विचार करके देखनी आवश्यक है। इस विचार के लिये प्रथम आयुष्य की आवश्यकता क्यों होती है यह देखिये।

रोग—व्याधि और व्याधि—यह मुख्य कारण है जिससे आयुष्य क्षीण होता है। व्याधिजन्य रोगोत्पादक क्रिमियों और रोगजन्य जन्तुओंको दूर करना है अथवा नाश करना है इससे नीरोगता प्राप्त होने द्वारा जो स्वास्थ्य प्राप्त होता है वह आयुष्य वर्धक करता है।

कई लोग समझते हैं कि आयुष्यकी वृद्धि नहीं होती है। परंतु वेदमें सैकडों स्थानोंपर दीर्घ आयुष्यके वचन आये हैं इसलिये वैदिक दृष्टिकोणसे आयुष्यकी वृद्धि होनेके विषयमें कोई संदेह नहीं है। यदि दीर्घायुष्य होता है या नहीं इस विषयमें हम आर्य वैद्यक की साक्षी देखेंगे तो हमें यह साक्षी अनुकूल ही होगी; क्यों कि आयुष्य वर्धक के कई रसायन प्रयोग वैद्यकशास्त्रमें कहे हैं। इसलिये आर्य ग्रंथोंकी संमति आयुष्य की वृद्धि होती है इस विषयमें निश्चित है। इसलिये जो कुछ साधारण अल्पताका विचार है कि आयुष्य वर्धक नहीं होता यह अयुक्त है और ऐसा विचार वैदिक वाङ्मयोंके मननमें रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

संक्रिमणि (Disinfectant) स्वभावतः रोगके हटानेवाला होनेके कारण यदि यह शरीरपर धारण किया जाय तो उससे रोग दूर होनेमें संशय ही नहीं हो सकती और इस प्रकार यदि नीरोगता की स्थिरता हुई और आयुष्य वर्धक अन्य प्रकारोंसे वैदिक उपायोंका अवलंबन किया तो निःसंदेह आयुष्य वर्धन होगा। इसलिये पाठक इस बातका विशेष मनन करें।

बडा रण।

प्रथम मंत्रमें 'महते रणाय' शब्द है। इसमें जो रण शब्द है उसका वास्तविक अर्थ रणभूमिका होना स्वाभाविक होता है। यह अर्थ पूर्व स्थानमें दिया ही है। परंतु सायणादिके मतसे यहांके रण शब्दका अर्थ युद्ध है। इसलिये महद् रण शब्द का अर्थ 'बडा युद्ध' है। यह अर्थ लेनेसे प्रथम मंत्रके इस भाग का अर्थ निम्नलिखित होता है।

महते रणाय वर्ष्मिणं वर्म बिभृमः ॥ (मं १)

बडे युद्धके लिए हम वर्ष्मिक मणिका धारण करते हैं। अर्थात् बडे युद्धमें हमारा विजय हो इसलिये हम वर्ष्मिक मणिका धारण करते हैं। वर्ष्मिक मणिके धारण से हमारे शरीरमें ऐसा बल बढेगा कि जिससे हम बडे बडे युद्धमें विजयी बनेंगे। यह युद्ध जैसा है। यह युद्ध अपना जीवनका ही है। मनुष्यका जीवन एक बडा भारी युद्ध है।

अतएव यह युद्ध है। जो वर्म इस युद्धमें व्यतीत होवे। इसलिये यह साधारण युद्ध नहीं है। शरीर क्षेत्रमें जो कर्म आरम्भ हुए थे वह यह है उसमें विविध रोग मित्र शत्रुत हैं और उनके साथ हमारा युद्ध चल रहा है। अपना आरोग्य स्थापित करनेसे ही इस युद्धमें हमें विजय प्राप्त होता है। अक्षिण मणिसे रोगनिवृत्तिद्वारा आरोग्य प्राप्त होता है इस हेतु से यह मणि इस बड़े युद्धमें भी हमें सहायक है ऐसा इस मंत्रमें जो कहा है वह योग्यही है।

बलवर्धन।

इस प्रथम मंत्रमें और दो शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। अ-रिष्यन्तः। दक्षमाणाः इस दो शब्दोंका क्रमशः अर्थ 'अहिंसित होते हुए,वर्धित होनेवाले यह है। रोगादिके हमलोंके कारण अथवा अन्य दुष्ट शत्रुओंके आक्रमण के कारण हम (अरिष्यन्तः) हिंसित न हों अर्थात् हम क्षीण दुर्बल त्रस्त अथवा मृत न हों यह प्रथम पद का अर्थ है। परन्तु थोड़ासा विचार करने पर पाठकोंके मनमें यह बात स्पष्टताके साथ आजायगी कि केवल क्षीण न होने अथवा मृत न होनेसे ही अर्थात् केवल जीवन धारण करनेसे ही जगत् में कार्य करना और विजय प्राप्त होना असम्भव है। विजय प्राप्त करने के लिये यह निषेधात्मक गुण विशेष उपयुक्त नहीं होता। इस कार्य के लिये विधेयात्मक गुण अवश्य चाहिऐ। यह गुण (दक्षमाणाः) शब्दसे इस सम्बन्धसे बताया है। दक्षम अर्थ बलवान होना है। पाठक थोड़ासा विचार करेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजायगी कि

बल और विजय।

इस गुणकी बड़ी आवश्यकता है। रोग नहीं हुए, अवश्य न हुआ क्षय नहीं हुआ तो भी कार्य नहीं बनेगा विजयकी इच्छा है तो अपना बल सर्व दिशाओंसे बढ़ानेका यत्न होना आवश्यक है। जितना बल बढ़ेगा उतना विजय अधिकसे प्राप्त होनेकी सम्भावना अधिक है। पाठक इस दो शब्दोंका परस्पर महत्व पूर्ण सम्बन्ध देखें और वेदकी शब्द योजनाकी मर्मज्ञता अनुभव करें।

दूषण।

इस सूक्तमें दूषण, दूषि इस शब्दोंका प्रयोग विलक्षण अर्थमें हुआ है। देखिये-

विष्कन्ध दूषण -विष्कन्धको विदारनेवाला
इषा दूषि -इषाको दोष लगानेवाला
अराति दूषि -अराति को दोष लगानेवाला

पाठक सूक्ष्म दृष्टिसे देखेंगे तो उनको इस शब्द प्रयोगमें यह बात स्पष्ट दिखाई देगी कि 'शत्रुमें दोष उत्पन्न करना यही सूचित किया है। कई कहते हैं कि शत्रुको मारो अथवा शत्रुका नाश करो। वेदमें भी शत्रुका नाश करनेका उपदेश कहींपर किया है। परन्तु यहां दूसरी बातका उपदेश शत्रुके नाश करनेके विषयमें किया है। शत्रुमें दोष उत्पन्न करना, शत्रुमें हीनता उत्पन्न करना शत्रुकी कार्यशक्ती के नाश उत्पन्न करना। जिस समय शत्रुका क्षीण नाश नहीं होता है उस समय अनेक उपायोंसे शत्रुके अन्दर दोषोंको बढ़ानेसे शत्रुका बल घटता जाता है और अपना बल बढ़ता जाता है। यह जितना व्यक्तिगत रोगोंके विषयमें सत्य है उतनाही सामाजिक और राष्ट्रीय शत्रुओंके विषयमें भी सत्य है शत्रुमें दोष उत्पन्न करनेसे दोषोंके प्रभावसे शत्रुका पराभव होता है और अपने लिये विजय प्राप्त होता है।

यह मणि धारण करनेसे शरीरके जो रोगादि शत्रु हैं उनकी शक्तिमें क्षीण उत्पन्न होता है इससे उन शत्रुओंकी शक्ति क्षीण होती जाती है और अपना बल बढ़ता जाता है।

यह शरीरके अवयव उपदेश पाठक पहले क्षेत्रमें देखेंगे तो उनको राजनीतिके अनुकरण विषयक एक बड़ा विलक्षण ज्ञान हो जायगा है।

खोज करें और इसका उपयोग करके आरोग्य प्राप्त करनेका विधित उपाय सबके लिये सुलभ करें। वैद्यकशास्त्रोंके ग्रंथ देखनेसे बहुत कुछ पता लगना संभव है।

खोजकी दिशा।

यहां खोज करनेकी दिशाका भी थोडासा वर्णन करना अयोग्य न होगा। श्री सायणाचार्यजीने अपने भाष्यमें लिखा है कि काली प्रांतमें अधिक वृक्ष है इस वृक्षके विषयमें काली प्रांतके लोग खोज करें और जो कुछ अनुभव हो वह प्रकाशित करें।

वरुण अथर्ववेदी वनस्पति का वीज है। इसकी गंधसे अर्थात् उसमेंसे जो इसके परमाणु हवामें फैल जाते हैं वे रोगजन्तुओंका नाश करते हैं, तथा रोगके विषको भी दूर कर देते हैं। यही कारण है कि वरुण का शरीरपर धारण करनेसे हूए रोगोंको फैलानेवाले रोग दूर होते हैं या उसकी बाधा नहीं होती है। प्रायः छूतसे फैलनेवाले रोग सूक्ष्म जन्तुओं द्वारा फैलते हैं, ये रोगजन्तु वरुण की उग्रगंधिसे शीघ्र तत्काल मर जाते हैं। ऐसे उग्रगंधी पदार्थ अजवायन, पूतीका, लहसुन कपूर देवदारु आदि अनेक हैं। आर्य वैद्यक शास्त्रमें इन पदार्थोंका परिचय किया है और इनको क्रमिनाशक भी कहा है। यदि खोज करनेवाले पूर्वोक्त रोगनाशक वनस्पतियों पर या अन्य अधिपर सुलभ उग्रगंधीवाले अनेक रसोंसे खोज संस्कार करेंगे तो इस प्रयोगमें अधिकांशमें अथवा उत्तरोत्तर मणि अवश्य प्राप्त होना संभवनीय है। इसलिये इस सुयोग्य वैद्योंको इस विषयकी खोज करनेके लिये सादर प्रार्थना करते हैं।

अग्नि मणिसे दीर्घ आयुष्य।

प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही अग्निमणिसे दीर्घायुष्य प्राप्त होनेकी बात कही है। यह दीर्घायुष्य प्राप्ति किस प्रकार होती है यह बात यहां विचार करके देखना आवश्यक है। इस विचार के लिये प्रथम आयुष्य की आवश्यकता क्यों होती है यह देखिये।

रोग—अग्नि और व्याधि—यह मुख्य कारण है जिससे आयुष्य क्षीण होता है। अग्निजन्य रोगोत्पादक विषैले और रोगपोषक जन्तुओंको दूर करता है अथवा नाश करता है, इससे नीरोगता प्राप्त होने द्वारा जो स्वास्थ्य प्राप्त होता है वह आयुष्य वर्धक करता है।

कई लोग समझते हैं कि आयुष्यकी वृद्धि नहीं होती है। परंतु वेदमें सैकडों स्थानोंपर दीर्घ आयुष्यके उपाय कहे हैं इसलिये वैदिक दृष्टिकोणसे आयुष्यकी वृद्धि होनेके विषयमें कोई संदेह नहीं है। मणि दीर्घायुष्य होता है या नहीं इस विषयमें इस आर्य वैद्यक की साक्षी देखेंगे तो हमें यह साक्षी अनुकूल ही होगी; क्यों कि आयुष्य वर्धक के कई रसायन प्रयोग वैद्यकशास्त्रमें कहे हैं। इसलिये आर्य प्रयोगकी संगति आयुष्य की वृद्धि होती है इस विषयमें निश्चित है। इसलिये जो सर्व साधारण समझका विचार है कि आयुष्य वर्धक नहीं होता वह अशुद्ध है और ऐसा विचार वैदिक धर्मियोंके मनमें रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

अग्निजन्य (Disinfectant) स्वास्थ्यजन्य होनेसे हवनेवाला होनेके कारण यदि यह शरीरपर धारण किया जाय तो उससे रोग दूर होनेमें संशय ही नहीं हो सकती और इस प्रकार यदि नीरोगता की स्थिरता हुई और आयुष्य वर्धक अन्य प्रयोगोंसे वैदिक उपासोंका अवलंबन किया तो निःसंदेह आयुष्य वर्धन होगा। इसलिये पाठक इस बातका विशेष यत्न करें।

बडा रण।

प्रथम मंत्रमें महते रणाय शब्द हैं। इसमें जो रण' शब्द है उसका वास्तविक अर्थ रमणीयता होता इत्यादि होता है। यह अर्थ पूर्व स्थानमें दिया ही है। परंतु कईयोंके मतसे यहांपर रण शब्दका अर्थ युद्ध है। इसलिये महते रण' शब्द का अर्थ बडा युद्ध है। यह अर्थ करनेसे प्रथम मंत्रके इस भाग का अर्थ निम्नलिखित होता है।

महते रणाय अग्निमणिं बध्नामि ॥ (म १)

बडे युद्धके लिए हम अग्निजन्य मणिका धारण करते हैं। अर्थात् बडे युद्धमें हमारा विजय हो इसलिये हम अग्निजन्य मणिका धारण करते हैं। अग्निजन्य मणिके धारण से हमारे शरीरमें ऐसा बल बढेगा कि जिससे हम उस बडे युद्धमें विजयी बनेंगे। यह युद्ध अपना है। यह युद्ध अपना आत्मबल ही है। मनुष्यका जीवन एक बडा भारी युद्ध है।

क्षत्रिय का धर्म ।

(५)

(ऋषिः भृगुः आथर्वणः । देवता इन्द्रः)

इन्द्रे॒ प्रस्व॒ प्र व॒दा भा॑हि शूर॒ हरि॑भ्याम् ।
पिबा॑ सु॒तस्य॑ म॒तेरि॒ह मधो॑श्चकानश्चा॒रुर्मदा॑य ॥ १ ॥
इन्द्रे॒ गृ॒ठरं॑ नृ॒म्णो न पृ॑णस्व॒ मधो॑र्दि॒वो न ।
अ॒स्य सु॒तस्य॒ स्व॑१॒॑र्णोप॑ त्वा॒ मदा॑ सु॒वाचो॑ अगुः ॥ २ ॥
इन्द्र॑स्तु॒राषा॒ड्यु॒क्त्रो घृ॒ष्वि॒र्यो व॒ज्री पु॑रुष्टु॒तः ।
वि॒भेद॑ व॒लं भृगु॒र्न स॑सहे श॒त्रून्मदे॒ सोम॑स्य ॥ ३ ॥
आ त्वा॑ विशन्तु सु॒वास॑ इन्द्र पृ॒णस्व॑ कु॒क्षी वि॒दथे॑ शक्र वि॒श्वहा॑ नः ।
भ॒वी॒ हवं॑ गिरो॑ मे जुषस्वेन्द्र स्वयु॒क्भि॒र्मम॑स्ये॒ह म॒हे रणा॑य ॥ ४ ॥

अर्थ— हे शूर इन्द्र ! (इषस्व) तू प्रसन्न हो (प्र वह) आगे बढ़ ! (हरिभ्यां आ याहि) घोड़ोंके साथ तू यहां आ । (चकानः) तृप्त होता हुआ तू (मदाय) हर्षके लिए (इह) यहां (मतेः) बुद्धिमान् पुरुषका (सुतस्य मधोः चारुः) निचोड़ा हुआ मधुर सुंदर रस (पिब) पिओ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (मन्दः न) प्रसन्नतीके समान और (स्वः न) स्वर्गीय आनंद के समान (मधोः अन्धः पृणस्व) इस मधुर रससे अपना पेट भर दो । [अस्य सुतस्य] इस निचोड़े रसकी (स्वः न) स्वर्गके आनंदके समान सुखी और (सुवाचः मदाः) उत्तम भाषणोंके साथ आनंद (त्वा उप अगुः) तेरे पास पहुंचते हैं ॥ २ ॥

(यतीः न) यत्न करनेवाले पुरुषके समान (या तुरण्यात् त्रिधातः इन्द्रः) जिस त्वराके साथ शत्रुपर हमला करनेवाला तिहरे इन्द्रवाले [वृत्रं जघान] घेरनेवाले शत्रुका नाश किया था तथा [भृगुः न] भूननेवालेके समान जिसने [बलं विभेद] शत्रुके बलका भेद किया था और (सोमस्य मदे) सोमरसके आनंदमें (शत्रून् ससहे) शत्रुओंका पराभव किया था ॥ ३ ॥

हे [शक्र इन्द्र इन्द्र] शक्तिमान् प्रभु इन्द्र ! (सुवासः त्वा आ विशन्तु) निचोड़े हुए ये रस तुझमें प्रविष्ट हों । ([illegible] पृणस्व) दोनों कुक्षियोंको तू भर और [विदथे] आहवमें कर [विश्वा नः आ—हवि] अपनी बुद्धिसे तू हमारे पास आ । हमारी (हवं भुवि) पुकार सुन (मे गिरः जुषस्व) मेरा भाषण स्वीकार कर । और [इह] यहां [महे रणाय) बड़े युद्ध के लिए (स्वयुग्भिः) अपनी योजनाओंके साथ (आ मन्दस्व) हर्षित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे शूर वीर ! तू उत्तम प्रसन्न और आनंदित रह और बुद्धिसे मार्गसे आगे बढ़ । अपने उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथमें बैठकर इधर उधर जा । और उत्तम पौष्टिक रहता हुआ अपने हर्षको बढ़ानेके लिये तुझे वर्धक मधुर रसका पान कर ॥ १ ॥

हे शूरवीर ! प्रसन्न के कीमत और हर्ष बढ़ानेवाले मधुर रसोंसे अपना पेट भर ऐसा करनेसे ही उत्तम प्रबंधवाली बातें ही तेरे पास सब ओरसे पहुंचेंगी अर्थात् सब तेरी प्रशंसा करेंगे ॥ २ ॥

पुरुषार्थी उद्यमी पुरुषके समान प्रसन्नचीत्त और तीव्रवेगके साथ शत्रु पर हमला करनेवाला शूरवीर अपने शत्रुका नाश क्षीण करता है । जिस प्रकार भूननेवाला मनुष्य धान्योंको भूनता है, उसी प्रकार यह शूरवीर शत्रुओं सेनाको भून देता है और शेषरूप रह जाता हुआ हर्षित और उत्साहित होकर शत्रुका पराजय करता है ॥ ३ ॥

अग्नि ।

वेद मंत्रोंमें अग्नि ' शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त हुवा है। कई स्थान पर इसका अर्थ है अग्नि कई स्थानपर परमेश्वर और इस सूक्तमें यह एक रोग विशेषका नाम है। इतने भिन्न अर्थोंमें इसका उपयोग होनेसे इसके विषयमें पाठकोंके मनमें संशय होना संभव है, इसलिये इस विषयमें खुलासा लिखना आवश्यक है ।

'अद् (खाना) इस धातुसे यह शब्द बनता है इसलिये इसका अर्थ भक्षक है। दूसरा 'अद्'(प्रथम करना) इस धातुसे बनता है, इस प्रथम इसका अर्थ प्रथम करनेवाला होता है । पहिला अर्थ हमने इससे पूर्व लिखा है । यहां यह अग्नि शब्द रोगनाशक होनेसे भक्षक रोग अर्थात् भस्म रोग ऐसा लिखा है, जिसमें रोगी अन्न बहुत खाता है परंतु कृश होता जाता है। इस अग्नि शब्द प्रथम करनेवाला यह अर्थ बताता है यह अर्थ रोगनाशक होनेकी अवस्थामें पाचक का वाचक हो सकता है। पूर्व बहुत सो परिपक्व विषय खानेसे पाचक होजाता है खाद्य के लिये भी यह भटकता रहता है इस लिये इसका वाचक यह शब्द होसकता है। इससे यह भी सिद्ध होता कि यह अग्निमांद्य अपरिपक्व विषय खानेसे रोगमें भी हितकारी होता। परंतु पाठक यहां स्मरण रखें कि यह केवल व्युत्पत्तिकी बात है इसलिये वैद्यकशास्त्रमें इसका बहुत प्रमाण नहीं होसकता, जबतक कि बहुतसे वैद्यक ग्रन्थोंमें यह उपयोग सिद्ध न हो। तथापि यह अर्थ औषधविधी खोज करनेमें सहायक होना इसलिये यहां दिया है। क्योंके इन मंत्रोंमें स्मृतिवर्धिनी और उन्मादनाशनी ये दो पुत्र इस अग्निके सहायक हैं यह खोजसे उत्तम व्यक्तमें धारण करने योग्य है।

इस प्रकार यह सूक्त बहुत पूर्व श्लोक वार्तोक्त वर्णन कर रहा है। पाठक विचार करते रहेंगे तो उनको इस रीतिसे बहुत बोध प्राप्त हो सकता है।

क्षत्रिय का धर्म ।

(५)

(ऋषिः भृगुः आथर्वणः । देवता इन्द्रः)

इन्द्रं स्तुपस्व प्रपुरा याहि शूर हरिभ्याम् ।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥
इन्द्रं स्तवाम नृभ्यो न पृणस्तु मघोनिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वर्णोपे त्वा मदा सुवाचो अगुः ॥ २ ॥
इन्द्रस्तुतापाभिश्रो वृत्र यो वधानं युतीर्न ।
विमेदं वृत्र भृगुर्न ससहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥
आ त्वो विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विदृदि शंक्र विपेधा नः ।
भुवो हव गिरो मे शृणुष्वेन्द्र स्तुयुग्भिर्मस्वेह मृहे रणाय ॥ ४ ॥

अर्थ— हे शूर इन्द्र ! (उपस्व) तू समीप हो (प्र यह) आगे बढ़ ! (हरिभ्यां आ याहि) घोड़ोंके साथ तू यहां आ । (सुतस्य) तैयार होता हुआ तू (मतेः) इसके लिए (इह) यहां (मधोः) बुद्धिमान् पुरुषका (सुतस्य मधोः चारुः) निचोड़ा हुआ मधुर सुरस रस (पिब) पीले ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (नृभ्यः न) मनुष्योंके समान और (स्वः न) स्वर्गीय आनन्द के समान (मधोः इव पृणस्व) इस मधुर रससे अपना पेट भर दो । [अस्य सुतस्य] इस निचोड़ रसकी (स्वः न) स्वर्गके आनन्दके समान सुखी और (सुवाचः मदाः) उत्तम आनन्दोंके साथ आनन्द (त्वा उप अगुः) तेरे पास पहुंचते हैं ॥ २ ॥

(यतीः न) यज्ञ करनेवाले पुरुषके समान (नः पुरोहाद् भिन्नः इन्द्रः) जिस स्वतंत्र बहुपुर हमला करनेवाले मित्र इन्द्रने [वृत्रं जघान] घेरनेवाले शत्रुका नाश किया था तथा [भृगुः न] भृगुवंशजके समान जिसने [वज्रं विभेद] शत्रुके बलका भेद किया था और (सोमस्य मदे) सोमरसके आनन्दमें (शत्रून् ससहे) शत्रुओंका पराभव किया था ॥ ३ ॥

हे [वज्र इन्द्र इन्द्र] शक्तिमान् प्रभु इन्द्र ! (सुतासः त्वा आ विशन्तु) निचोड़े हुए रस तुझमें प्रविष्ट हों । (कुक्षी पृणस्व) दोनों कुक्षियोंको तू भर और [विदृदि] आसन कर [विधेम नः आ—हि] अपनी बुद्धिसे तू हमारे पास आ । हमारी (इमं गिरः) पुकार सुन (मे गिरः शृणुष्व) मेरा आवाहन स्वीकार कर । और [इह] यहां [मंहे] रमण) बड़े युद्ध के लिए (स्तुयुग्भिः) अपनी योजनाओंके साथ (आ मस्व) हर्षित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे शूर वीर ! तू सदा प्रबल और आनंदित रह और उत्तमतासे मार्गमें आगे बढ़ । अपने उत्तम घोड़ोंके युक्त रथमें बैठकर इधर उधर जा । और यहां पहुंच कुछ अपने इष्टका पवित्र किये हुये अत्यंत मधुर रसका पान कर ॥ १ ॥

हे शूरवीर ! प्रबल के लोभ और हर्ष पदार्थोंसे मधुर रसके अपना पेट भर लेना करनेसे तो उत्तम प्रबंधवाली बाधी तेरे पास यह ओरसे पहुंचती अर्थात् सब तेरी प्रशंसा करेंगे ॥ २ ॥

पुरवासी अपनी पुरवाद समान प्रबलताके साथ शत्रु पर हमला करनेवाला पूरीका आने शत्रुका नाश करता है । जिस प्रकार भृगुवंशका मनुष्य घमण्डीका मुकाबला है उसी प्रकार वह पूर्वोक्त शत्रुओं सेनाके मुख सेना है और भेदकर या नष्ट करता हुआ हर्षित और सावधान होकर शत्रुका पराभव करता है ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ५ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाण त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ ६ ॥
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेन प्रथमजामहीनाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—(इन्द्रस्य वीर्याणि नु प्रवोचं) इन्द्रके पराक्रम मैं अच्छी प्रकार वर्णन करता हूं । (यानि प्रथमानि) जो पहिले मेघोंके पराक्रम [बड़ी भारी] वज्रधारी इन्द्रने किए थे । उसने [अहिं अहन्] क्रम न होनेवाले शत्रुका नाश किया और [अपः अनुवर्तत] प्रवाहोंको सुख किया और [पर्वतानां] पर्वतोंके (वक्षणाः प्र अभिनत्) भाग तोड़ भी दिए थे ।

(पर्वते शिश्रियाणं अहिं) पर्वतके आश्रयसे रहनेवाले शत्रुको (अहन्) नष्ट किया । [अस्मै] इसके लिए (त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष) कारीगरने तेज वज्र बना दिया था । (वाश्राः धेनवः इव) रंभाती हुई गौओंके समान (स्यन्दमानाः आपः) वेगसे बहनेवाले जलप्रवाह (अञ्जः समुद्रं अवजग्मुः) सीधे समुद्रतक जा पहुंचे ॥ ६ ॥

(वृषायमाणः) बलवान् वीर [सोमं अवृणीत] सोम रसको ग्रहण करता है । (सुतस्य त्रिकद्रुकेषु आपिबत्) रसका तीन बार स्वादोंसे पान किया । (मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त) इन्द्रने बाण रूप वज्र लिया और (अहीनां प्रथमजां वधं अहन्) शत्रुओंमें पहिले इस वीरको मार डाला ॥ ७ ॥

भावार्थ- हे शक्तिमान् शूरवीर ! अब मधुर रस तुम्हें प्राप्त हों और उससे तू अपना अपना पेट भर ले। अब समय तू अपने बलसे दुष्ट शत्रुओंको भी समाप्त कर और अब की पुकार श्रवण कर तथा बड़े जीवनसंग्राम में विजय प्राप्त करनेके लिये अपनी शस्त्रास्त्रविद्योंके साथ आगेसे तैयार रह ॥ ७ ॥

शूर पुरुषके पराक्रमों का मैं वर्णन करता हूं, जो कि उन्होंने किये थे । बलशाली शत्रुका उसने नाश किया और उसके प्रवाह उसके लिये खुले कर दिये तथा पर्वतोंके भागोंको तोड़कर अंगल भी साफ किया ॥ ५ ॥

पर्वतके भागोंपर छिपकर रहनेवाले शत्रुओंका उन्होंने वध किया ऐसे शूरके लिये कारीगरों ने विशेष प्रकारके तीक्ष्ण वज्र तैयार कर दिये थे । जिस प्रकार गौयें रंभाती हुई अपने खटालके पास आती हैं उसी प्रकार वेग वीरसे खुले किये हुए मार्गसे प्रवाह समुद्रतक जा पहुंचे ॥ ६ ॥

अपना बल बढ़ानेवाला शूरवीर सोमरस का पान तीन समय और तीन स्वादोंसे करता है । जभी शूरवीर अपने बल बढ़ा तैयार रखता है और बढ़ने वाले शत्रुके आक्रमणको वीरता पूर्वक नाश करता है [और इस रीतिसे अपना विजय प्राप्त करता है ।] ॥ ७ ॥

१ क्षात्रधर्म ।

अब इन सूक्तोंमें क्षत्रियधर्म बताया होता है। इस सम्पूर्ण सूक्तमें शत्रुका नाश करनेवाले शूरवीरका वर्णन है और उसका वर्णन शूरवीरके क्षात्रधर्मका प्रकाशक होता है । इस सूक्तमें भी पाठक बड़ा मार्ग देख सकते हैं । इस सूक्तमें जिस प्रकार हुआ शूरवीर का वर्णन होकर क्षात्र धर्मका प्रकाश हुआ है उस सम्बन्धका अर्थ देखिये-

क्षत्रियके गुण ।

१ इन्द्रः (इदि+रन्) = शत्रुका नाश करनेवाला शत्रु ऐश्वर्यका नाश करनेवाला । (प १)
२ वज्री = शूरवीर । (मं १)
३ अपः = तुम शत्रुके वेगवती प्रवाहोंका । शत्रुका प्रतिकार करनेमें समर्थ । (मं १)

४ मित्राः = अनेकोंके मित्र, अनेकोंका हित करनेवाला। सुवसत्यायमान। (मं १)
५ वसीः = प्रशस्तरूपसे, पुरुषार्थी। (म १)
६ भूयः = भूतकालमें अनुचो भूतकालका। (मं. १)
७ पुरस्तात् = स्वराष्ट्रे शत्रुपर हमला चढ़ानेवाला। (मं १)
८ शक्रः = बलवान् शत्रुओंके बलघ्न। (म ४)
९ वज्री = वज्र अर्थात् शस्त्रोंसे युक्त। (मं ५)
१ पुरोयावायाः = आगेसे बल प्रतिदिन बढ़ानेवाला, अपनी शक्ति सब प्रकारसे बढ़ानेवाला। (मं ७)
११ मघवा (मघ-वान्) = धनवान् (मं ७)

ये ग्यारह शब्द इस सूक्तमें पूरेपूरे क्षात्रबलके वाचक हैं। इस सम्पूर्ण क्षत्रियके कर्तव्योंका भी बोध होता है। क्षात्रबलके साथ धीर्य पराक्रम आदि गुण जैसे चाहियें उसी प्रकार पुनः पुनः प्रयत्न करनेका गुण और बलवान् शत्रुपर हमला चढ़ानेका भी गुण अवश्य चाहिए। शत्रुसे अपना बल अधिक रखनेकी तैयारी भी क्षात्रबलमें अपनी चाहिये और इस बलके लिये बलके पशु विपुल धन भी चाहिये इत्यादि क्षात्रधर्मका उपदेश इसमें यहां प्राप्त होता है। पाठक इस सूक्तका इस पद्धतिसे विचार करें। अब मन्त्रों द्वारा जो क्षत्रियके कर्म इस मंत्रोंमें कथन हुए हैं उनका विचार करेंगे—

क्षत्रियके कर्तव्य।

१ एहि ! हरिभ्यां आयाहि = हे वीर ! घोड़ोंसे युक्त रथपर बैठ। रथ घोड़ों द्वारा वेगसे आनेका क्षात्रबल चाहिये। (मं १)
२ म वह = आगे बढ़। क्षत्रियमें ऐसी तैयारी चाहिये कि जिससे वह संग्रामको आगे बढ़ सके। पीछे कभी न रहे। (मं २)
३ इमं सवनं = मेरेलिये अथवा शत्रु मारकर भगाई हुई प्रजाके शत्रुका नाश करनेमें उद्यत क्षात्रबल हो। (मं ३)
४ वज्र सिग्रय = शत्रुके बलका नाश कर। शत्रुसे अपनेमें मेल उत्पन्न कर शत्रुकी उन्नतिमें सहायक बन और शत्रुबलसे तितर बितर कर। (म १)
५ शतुद्र सवह—शत्रुका पराभव कर। शत्रुके हमलेको वहां अर्थात् शत्रुके देशमें ले जा। (मं ३)
६ सिन्धि (वा सिन्धि) = उत्तम रीतिसे शत्रुका नाश कर। शत्रुबल कम करना अथवा शत्रुपर हमला करना ये क्षत्रियके कर्म हैं। (मं ४)
७ महते रणाय रथमुपेमं आयत = बड़े युद्धके लिए अपनी शक्ति पूर्णतासे युक्त रथसहित तैयार हो। शत्रु आगे बढ़ता है या उसको अपनी शक्ति और बुद्धिबलसे दूर करो। (मं ४)
८ अहिं अहन् = शत्रुका नाश करो। (म ५)
९ वर्षन्तो मघवन् अभिवृत्र = वर्षाके समान अपने बलसे तेज कर शत्रु जिस रथपर रहनेसे रथसहित हत हो। अथवा शत्रुके बलनाशके वर्षा समान शस्त्र छोड़ो। (मं ५)
१ अथा शत्रु तवं = अपने बलसे अपने आक्रमणसे तू शत्रुका अपने लिए नाश कर। (मं ५)
११ अपने शिक्षितान् आहं अहन् = शस्त्रविद्या का अभ्यास कर के अपनेसे शत्रुका वध करो। (म ६)
१२ आवो रथा रथेभं वज्र अस्मै = हमारे लिए शस्त्रास्त्र सहित रथोंको भेजो अथवा हमारे आगे रहनेवाले वज्र सहित रथोंसे शत्रुके बलका नाश करो। शत्रुके बल और आक्रमणका वज्र से नाश करो। (मं ६)
१३ वसव रुद्रा आ वहन्त = बल और वज्र आदि शस्त्र हमारे रथमें लाओ। (मं ७)
१४ वसोर्धारा हवमानं वहन्त = बलसे ये शत्रुके [illegible] नाश करनेवाले [illegible] (मं ८)

इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ५ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाण त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ ६ ॥
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेन प्रथमजामहीनाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—(इन्द्रस्य वीर्याणि नु प्रवोचं) इन्द्रके पराक्रम मैं अच्छी प्रकार वर्णन करता हूं । (यानि प्रथमानि) जो पहिले सेनापति [वज्री चकार] वज्रधारी इन्द्रने किए थे । उसने [अहिं अहन्] क्रम न होनेवाले शत्रुका नाश किया और [अपः अनुततर्द] प्रवाहोंको खुला किया और [पर्वतानां] पर्वतोंके (वक्षणाः प्र अभिनत्) भागों को भेद भी दिए थे ।

(पर्वते शिश्रियाणं अहिं) पर्वतके आश्रयसे रहनेवाले शत्रुको (अहन्) नष्ट किया । [अस्मै] इसके लिए (त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष) कारीगरने तेज वज्र बना दिया था । (वाश्राः धेनवः इव) रंभाती हुई गौवोंके समान (स्यन्दमानाः आपः) वेगसे बहनेवाले जलप्रवाह (अञ्जः समुद्रं अवजग्मुः) सीधे समुद्रतक जा पहुंचे ॥ ६ ॥

(वृषायमाणः) बलवान् वीर [सोमं अवृणीत] सोम रसको प्राप्त हुआ । (सुतस्य त्रिकद्रुकेषु आपिबत्) रसका तीन वार स्वादोंसे पान किया । (मघवा सायकं वज्रं आ ददत्त) इन्द्रने बाण रूप वज्र लिया और (अहीनां प्रथमजां वज्रं अहन्) शत्रुओंके पहिले इस वीरको मार डाला ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे क्षत्रियवीर शूरवीर ! अब मधुर रस तुम्हें प्राप्त हों और उससे तू अपना अपना पेट भर दे। इस समय तू अपने सबसे इस अवसर की सफलता विचार कर और अब की पुकार अवश्य कर तथा बड़े पौरुषसहित मैं विजय प्राप्त करनेके लिये अपनी सेनाके क्षत्रियोंके साथ आनंदसे तैयार रह ॥ ५ ॥

शूर पुरुषके पराक्रमों का मैं वर्णन करता हूं, जो कि उन्होंने किये थे । वज्रधारी शत्रुका उसने नाश किया और उनके प्रवाह सबके लिये खुले कर दिये तथा पर्वतोंके भागोंको तोड़कर चूर्ण भी नाश किया ॥ ५ ॥

पर्वतके भागोंपर छिपकर रहनेवाले शत्रुओंका उन्होंने नाश किया ऐसे शूरके लिये कारीगरों ने विशेष प्रकारके तीक्ष्ण वज्र तैयार कर दिये थे । जिस प्रकार गौवें रंभाती हुई अपने बछड़ेके पास जाती हैं उसी प्रकार वेग वीरसे खुले किये हुए उनके प्रवाह समुद्रतक जा पहुंचे ॥ ६ ॥

अपना बल बढ़ानेवाला शूरवीर सोमरस का पान तीव्र करता और तीन स्वादोंसे करता है । उसी शूरवीर अपने वज्र को तैयार रखता है और बड़े भारी शत्रुके अगुवाकी वीरका शीघ्र नाश करता है [और इस रीतिसे अपना विजय प्राप्त करता है ।] ॥ ७ ॥

क्षात्रधर्म ।

अब इस सूक्तमें क्षत्रियधर्म बताया होता है। इस शब्द सुस्पष्टतः शत्रुका नाश करनेवाले शूरवीरका बोधक है और उसका वर्णन शूरवीरके क्षात्रधर्मका प्रकाशक होता है । इस सूक्तमें भी पाठक उक्त बात देख सकते हैं । इस सूक्तमें जिस प्रकार शूरवीर का वर्णन होकर क्षात्र धर्मका प्रकाश हुआ है उस सम्बन्धका अर्थ देखिये—

क्षत्रियके गुण ।

१ इन्द्रः (इदि+रक्) = शत्रुका नाश करनेवाला शत्रु सैन्यका नाश करनेवाला । (य. १)
२ शूरः = शूरवीर । (सं १)
३ वज्रवः = तीव्र, शत्रुका तेजस्वी प्रतिकार करनेमें समर्थ । (सं १)

१ सोम = सोम वल्लीका रस जो दूध मधु (शहद) मिश्री भूने धान्यका आटा, दही आदि अनेक पदार्थोंके मिश्रणके साथ अच्छा स्वादिष्ट पेय बनाकर पीया जाता है और गौ आदि पशुओंको भी पिलाया जाता है। यह वनस्पतियोंका केवल रस होता है। इसके गुण अमर दिए हैं।

२ शुक्र = किसी रसकी भांप बना कर फिर उसको शीतता देकर रस बनाया जाय, तो उसको वह नाम है। (Distilled water) पानीकी भांप बनाकर फिर उस भांप का पानी बन जानेसे भी उस जलका वह नाम होता है, वृष्टिजल का भी यही नाम उच्च आदरणीय है क्योंकि सूर्य परके जलकी भांप होकर मेघ बनते हैं और उससे वृष्टि होती है। किसी भी रसकी इस प्रकार शुद्धि होती है। यह शुद्धिकी रीति है। व्यावहारिक इस रीतिसे शराब बनाते हैं इसलिए इस नामकी बदनामी हुई है यह बात असंभवित है। वास्तव में वनस्पतिका केवल शुद्ध सम्यक् उत्तमविधि से बनाये परिशुद्ध जल या रस का वाचक है।

३ वारुणी, अमरवारुणी = ये भी सम्यक् उक्त प्रकारके रसोंके या जलके वाचक हैं। इन शब्दोंमें व्यावहारिक या दुर्गुण वास्तवमें नहीं है। परंतु व्यावहारिक इस रीतिसे खराब बनती है इसलिए ये सब नाम बुरे अर्थोंमें व्यावहारिक प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन समयमें भी क्वचित् बुरे और क्वचित् अच्छे अर्थोंमें इनका उपयोग दिखाई देता है।

४—५ आसव और अरिष्ट = ये नाम औषधि पेयोंके होते हैं। इनमें कुछ सड़ावट होनेके कारण मद्य उत्पन्न होना अपरिहार्य है तथापि इनमें मद्यकी मात्रा प्रति शतक दो मात्राके उपरांत होती है। इसलिए शराबमें इसकी गिनती नहीं होती।

ऑलेक्जरने इसकी जांच करके लिखा है कि यह मद्य नहीं है। इसलिए वैद्य ये आसव तथा अरिष्ट तैयार कर सकते हैं, अन्यथा सरकारी मतिभ्रम उनके पीछे लग जाता।

६—७ मद्य और सुरा मादक होनेसे निःसंदेह बुरे हानिकारक पेय हैं।

पाठक इस विवरणसे समझ गये होंगे कि सोममें दोषकी कल्पना अथवा मद्यकी कल्पना कदापि संभवित भी नहीं हो सकती। इसमें तीन बार रस निचोड़ा जाता है और उसी क्रमसे आहुतियां देकर पीया जाता है। सवेरे, दोपहरको और सायंकालको रस निचोड़ना और पीना होता है उसका वर्णन इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें आयुक्त है। इसलिए जो लोग सोमरस को सुरा मानते हैं वे ही उक्त मंत्र मद्यकी पुष्टिमें कहते हैं ऐसा यदि किसीने कहा तो वह असत्य न होगा।

इस सूक्तमें क्षत्रियका मोक्ष वनस्पतिका मधु रस है यह बात स्पष्टतासे कहा है जो साक्षात्कारकी पुष्टि करनेवाली है।

जीवन संग्राम।

वेदमें " महते रणाय " ये शब्द बारंबार आते हैं। क्या युद्ध चल रहा है यानेक रहकर अपना कर्तव्य करो, यह वेदका उपदेश जीवन संग्राममें रहनेवाले मनुष्य मात्रको मार्गदर्शक है। प्रत्येक मनुष्य क्या युद्धभूमिपर खड़ा है, किसी न किसी प्रकारके युद्धमें सांमिलित हुआ है उसकी इच्छा हो या न हो उसको युद्धमें रहना ही पड़ता है फिर वह मानवका श्रेष्ठ है इस लिए उसको अपने युद्धका स्वरूप जानना चाहिए और उस संघर्षके कारण होनेवाला अपना, कर्तव्य अवश्य करना चाहिए। अन्यथा उसका जन्म निरर्थक हो जायगा। चाहे वह अहिंसावृत्तिसे युद्ध करे या हिंसा वृत्तिसे करे युद्धके बिना उसकी स्थिति नहीं है और इस युद्धमें विजय पानेके बिना उसकी उन्नति नहीं है। यह हुई सब मनुष्योंकी बात क्षत्रिय की तो पूछना ही क्या है, उसका जीवन ही युद्ध रूप है उसको युद्ध तो अनिवार्य है।

इस प्रकार यह सूक्त सारे मर्मस्पर्श उपदेश करता है। पाठक इसका मनन करनेके समय प्रथम मण्डलके २ १५ १९ २१ १८ ९१ इन सूक्तोंको भी ध्यानमें रखें।

(यहां प्रथम अनुवाक समाप्त हुआ)

ये वाक्य क्षत्रियके कर्तव्य बता रहे हैं। इनकी विशेष व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये वाक्य स्वयं स्पष्ट हैं और थोड़ेसे मननसे इनका आशय व्यानमें आ सकता है।

अब राज्यशासन विषयक कर्तव्योंकी सूचना करनेवाले वाक्योंको देखिए—

राज्य शासन।

१ मित्रः—प्रजाओंका मित्र बन कर राजा राज्य करे। कभी शत्रु बनकर राज्य न करे। [मं १]

२ इमं भुवि, गिरः शृणुत—पृथ्वी पुत्र वाणीका स्वीकार कर अर्थात् प्रजाकी व्यवहार श्रवण कर। प्रजाकी इच्छाका आदर कर। [म ४]

३ यथा अन्धाः अमुर्दं अवजग्मुः—अन्धतमस कहने वाले वहर पत्थरसे और उससे होनेवाली महायता करे। [मं १]

इस प्रकारका राज्यशासन केवल प्रजाके हितकी वृद्धि करनेके लिए जो क्षत्रिय करता है, उसीकी प्रजा प्रशंसा करती है, इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र भाग देखिए—

प्रजासे सन्मान।

१ एषा मघाः सुवाचः अप अगुः—तेरे पास इसकी उत्तम वाणी पहुचती है अर्थात् इसित और आवश्यित हुई प्रजा तुझे उत्तम वाणीसे प्रशंसा करती है। कृतज्ञताके भावसे सन्मान करती है। मानपत्र अर्पण करती है। [मं २]

प्रजा सन्तोषित होनेके पश्चात् ही उत्तम राजाकी इस प्रकार प्रशंसा कर सकती है। अन्यथा त्रस्त हुई प्रजा राजासे भिन्न या राजाका द्वेष करती रहेगी। इस प्रकार राजाके अथवा क्षत्रियके दार्शनिक कर्तव्य क्या हैं इस विषयमें इस सूक्तसे उपदेश दिया है। यहां ऊपर जो वाक्य उद्धृत किए हैं, उनमें अर्थकी सुबोधताके लिए हमारोंने अर्थोंका पुरुषव्यत्यय करके योग्य परिवर्तन आवश्यक कर दिया है। यह बात सहृदय पाठक स्वयं जान सकते हैं। इतना परिवर्तन इस प्रकारके स्पष्टीकरणमें अन्तर्भूत होता है। इसलिए इस विषयमें कुछ न लिखकर अब क्षत्रियका व्यक्ति गत आचार भोग आदि विषय रहा और इस विषयमें इस सूक्तका उपदेश देखते हैं—

भोग।

१ सुश्रस्य मघोः मघस्य पित्र—आयादि वनस्पतिसे निचोड़े मधुर रसका पान हर्षके लिए कर। [मं १]

इस विषयमें मधुर रसका पान करनेका उपदेश है। यही मधुपर्क प्राशन है। वनस्पतिमें सोम मुख्य है। इसका अन्य करनेके कारण औषध और हर्षजनक वनस्पतियोंका महत्व स्पष्ट हुआ है। इस सूक्तके प्रथम मन्त्रमें सोम का नाम है और यही इस मंत्रके वर्णनीय है। इस सूक्तमें इसके उपदेश निम्न लिखित हैं—

२ सुश्रस्य मघोः अस्य पृणस्व। (मं २)

३ सुप्रायः त्वा कुक्षीः प्रायेषम्नु। [म० ४]

४ सुश्रस्य सोमं शिक्षतेनु अरिषत्। (मं ७)

इन सब मन्त्रोंका भी यही भाव है। [२] सोम रससे पेट भर दे। [३] पान रस से दोनों कुक्षियां भर दे, [४] निचोड़ा हुआ सोम वर्तनों द्वारा तीन स्थानोंमें बैठ कर तिनमें तीन बार पिओ। यह सोम रस मधुर अभिषव हुआ और अखण्ड वर्षपर्यन्त यज्ञयागादि द्वारा अनुष्ठान करनेयोग्य, पुष्टि बढ़ानेवाला और रोग बीमारीसे शरीरको हटाने वाला है।

सोम और मद्य

यह मन्त्रोंके अनभिज्ञ सोम सोम को मद्य मानते हैं व इसी भूल करते हैं कि उससे अधिक भूल और भी क्या कोई हो सकती। सोम पुष्ट करनेवाली औषध अवश्य है परन्तु मद्य और मादक वस्तु कभी स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सके हैं और पुष्ट व हृष्ट इनमें अधिकतर दुष्ट है यह बात हमें पता है। इसलिए हम कहते हैं कि इस सम्बन्ध अधिक स्पष्ट अनुवाद होना चाहिए

अग्नेर्वयं प्रथमस्य प्रजावतः सं रमस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ४ ॥
अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तरेमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! (अग्नेः प्रजावतः) अपने ब्रह्मतेजसे (सं रमस्व) उत्तम प्रकारसे उत्साहित हो । हे अग्ने ! (मित्रेण मित्रधा यतस्व) अपने मित्रके साथ मित्रकी रीतिसे व्यवहार कर । हे अग्ने ! (सजातानां मध्यमेष्ठाः) सजातीयोंकी संसदमें मध्यस्थानमें बैठनेवाला होकर [राज्ञां वि—हव्यः] क्षत्रियोंके बीचमें भी विशेष आदरसे बुलाने योग्य होकर [इह दीदिहि] यहां प्रकाशित हो ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! [विषः अति] मारीच करनेके भावका अतिक्रमण कर [सृधः अति] हिंसक वृत्तियोंका अतिक्रमण कर, (अ—चित्तीः अति) पापी वृत्तियोंका अतिक्रमण कर (द्विषः अति) द्वेष भावोंका अतिक्रमण कर । हे अग्ने ! (विश्वा दुरिता तर) सब पापवृत्तियोंको पार कर । (अथ नः) और तू [अस्मभ्यं] हम सबके लिए [सहवीरं रयिं दाः] वीर पुरुषोंके साथ रहनेवाला धन दे ॥ ५ ॥

भावार्थ-अपना बल बढ़ाकर सदा उत्साह धारण कर, मित्रके साथ मित्रके समान यथा व्यवहार कर अपनी जातीमें प्रमुख स्थानमें बैठनेका अधिकार प्राप्त कर इतनाही नहीं परंतु राजा लोग भी बड़े आदरसे बुलावें ऐसी तू अपनी योग्यता बढ़ा और यहां तेजस्वी बन ॥ ४ ॥

मारीच अथवा घातकपनेके भाव दूर कर घातक या हिंसक वृत्ति इसी पापवृत्तियोंको अपने मनसे हटा दे द्वेष भावों को समाप्त कर सारी दुष्ट हीन वृत्तियोंके परे जाकर अपने आपको पवित्र बनावे और हमारे लिये ऐसी संपत्ति आवा कि जिसके साथ बड़ा वीरभाव होते हैं ॥ ५ ॥

अग्निका स्वरूप ।

अथर्ववेद काण्ड १ सू ७ की व्याख्याके प्रसंगमें 'अग्नि वीर है इस प्रकरणमें अग्नि पद ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मी पुरुष का वाचक है यह बात विशेष स्पष्ट की है। पाठक इसका करके वह प्रकरण यहां अवश्य देखें। उस प्रकरणके अग्निका स्वरूप स्पष्ट होता तत्पश्चात् अग्निका वर्णन करते हुए इस सूक्तके जो शब्द प्रयोग किये हैं उनका विचार देखिये-

हे अग्ने ! तू सजातानां मध्यमेष्ठाः राज्ञां विहव्यः इह दीदिहि ॥ (मं ४)

हे अग्ने ! तू अपनी जातिमें मध्य स्थानमें बैठनेकी योग्यता धारण करनेवाला और राजा महाराजाओं द्वारा विशेष आदरसे बुलाने योग्य होकर यहां प्रकाशित हो ।'

यह वर्णन इस मंत्रमें या इस सूक्तमें प्रतिपादित अग्नि केवल जाय ही नहीं है, परंतु वह मनुष्यरूप है यह बात सिद्ध करता है। 'सजातियोंकी सभामें प्रमुख स्थानमें बैठनेवाला (सजातानां मध्यमेष्ठाः) ये शब्द तो निःसंदेह उत्तम मनुष्य होना सिद्ध करते हैं। तथा इसी मंत्रके (राज्ञां विहव्यः) राजाओं या क्षत्रियों द्वारा विशेष प्रकारसे बुलाने योग्य ' ये शब्द उत्तम क्षत्रियजातिके मित्र जातीय होना भी अच्छे मालूम सूचित करते हैं। क्षत्रिय जातिसे भिन्न ब्राह्मण वैश्य शूद्र और निषाद ये चार जातियां हैं। क्या कभी क्षत्रिय अपनेसे भिन्नकी जातीका सहज वैसा सम्मान कर सकते हैं ? इस प्रश्न का मनन करनेसे यहां इसका संभव दीखता है, कि यहां जिसका वर्णन हुआ है वह ब्राह्मण वर्णका मनुष्य ही होगा । अर्थात् इस सूक्तमें अग्नि शब्द ब्राह्मण वाचक है। यह बात अथर्ववेद प्रथम काण्ड सू ७ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया है और उसी बातको विशेष इस सूक्त के इन वाक्यों द्वारा दिखाई है। इस प्रकार यहांका अग्नि शब्द ब्राह्मण का वाचक है बिना यह कहना आवेश होगा कि ब्राह्मण कुमार का वाचक है। ब्राह्मण कुमार को इस सूक्त द्वारा बोध किया है। वैसे अग्नि देवताके सूक्तों द्वारा ब्राह्मणधर्म और इस देवता

ब्राह्मण धर्मका आदेश।

(६)

(ऋषिः शौनकः सम्पत्कामः। देवता अग्निः)

(२) समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्चा तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्मार्यस्ते युशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे विशो अग्ने सुवर्यमे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद्भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ३ ॥

अर्थ—हे अग्ने! (समाः ऋतवः संवत्सराः) मास ऋतु और वर्ष (ऋषयः) ऋषि लोग तथा (यानि सत्या) जो सत्यधर्म हैं वे सब (त्वा वर्धयन्तु) तुझे बढ़ावें। (दिव्येन रोचनेन) दिव्य तेजसे (दीदिहि) अधिक प्रकाशित हो और [विश्वाः चतस्रः प्रदिशः] सब चारों दिशाओं में [आ भाहि] प्रकाशित हो ॥ १ ॥

हे अग्ने! (सं इध्यस्व) अधिक दीप्तिसे प्रज्वलित हो [च इमं प्र वर्धय च] और इसको बहुत बढ़ावे। (च महते सौभगाय तिष्ठ) बड़े ऐश्वर्यके लिये खड़ा रह। हे अग्ने! (ते उपसत्तारः) तेरे उपासक [मा रिषन्] नष्ट न हों। और (ते ब्रह्मणः) तेरे पास रहनेवाले ब्राह्मण (यशसः सन्तु) यशसे युक्त हों [मा अन्ये] दूसरे नहीं ॥ २ ॥

हे अग्ने! [इमे ब्राह्मणाः त्वा वृणते] ये ब्राह्मण तेरा स्वीकार करते हैं। हे अग्ने! (नः सुवर्यमे विशः भव) हमारे स्वीकार में तू सुख हो। हे अग्ने! [सपत्नहा अभिमातिजित् भव] वैरियोंका नाश करनेवाला तथा अभिमानियोंको जीतनेवाला हो तथा [अ—प्रयुच्छन्] भूल न करता हुआ (स्वे गये जागृहि) अपने घरमें जागता रह ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी ब्रह्म कुमार! महिने ऋतु और वर्ष अर्थात् काल ऋषि लोग अर्थात् तत्वदर्शी विद्वान् और जो सब सत्यधर्म नियम हैं वे सब तुझे बढ़ावें इस प्रकार दिव्य तेजसे युक्त होकर तू सब दिशाओंमें अपना प्रकाश कर ॥ १ ॥

तेजस्वी होकर तू इस सबको वृद्धियुक्त कर और बड़ा सौभाग्य अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्त करनेके तैयारी करके उठकर खड़ा हो और तेरे पास तेरे पासी दुर्दशाको कभी प्राप्त न हों इतनाही नहीं परन्तु तेरे सम्पर्कमें आनेवाले ज्ञानी लोग यशसे युक्त बनें और ऐसा कभी न हो कि तेरे पासी तो दुर्दशामें जांय और तेरी पलटीमें दूसरे लोग उन्नति प्राप्त करें ॥ २ ॥

ये ज्ञानी लोग तेरा सम्यक्‌ स्वीकार करते हैं इसलिये तू सुख विचारवाला हो। तेरे जो भी वैरी हों और जो तेरे साथ स्पर्धा करनेवाले हों उनको जीत कर तू आगे बढ़ और कभी भूल न करते हुए अपने स्थानमें जागता रह ॥ ३ ॥

सुत्रेणाग्ने स्वेन स रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ४ ॥
अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर स्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥

अर्थ– हे अग्ने ! (स्वेन सूत्रेण) अपने ब्राह्मतेजसे (सं रभस्व) उत्तम प्रकारसे उत्साहित हो । हे अग्ने ! (मित्रेण मित्रधा यतस्व) अपने मित्रके साथ मित्रकी रीतिसे व्यवहार कर । हे अग्ने ! (सजातानां मध्यमे स्थाः) सजातीयोंकी मंडलीमें मध्यस्थानमें बैठनेवाला होकर [राज्ञां वि—हव्यः] क्षत्रियोंके बीचमें भी विशेष आदरसे बुलाने योग्य होकर [इह दीदिहि] यहां प्रकाशित हो ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! [निहः अति] मारपीट करनेके भावका अतिक्रमण कर [सृधः अति] हिंसक वृत्तियोंका अतिक्रमण कर, (अ—चित्तीः अति) पापी वृत्तियोंका अतिक्रमण कर (द्विषः अति) द्वेष भावोंका अतिक्रमण कर । हे अग्ने ! (त्वमा दुरिता तर) सब पापवृत्तियोंको पार कर । (अथ नः) और हम [अस्मभ्यं] हम सबके लिए [सहवीरं रयिं दाः] वीर पुरुषोंके साथ रहनेवाला धन दे ॥ ५ ॥

भावार्थ–अपना बल बढ़ाकर उत्तम उत्साह धारण कर, मित्रके साथ मित्रके समान धीरा व्यवहार कर अपनी जातीमें प्रमुख स्थानमें बैठनेका अधिकार प्राप्त कर, इतनाही नहीं परंतु राजा लोग भी सबके पूजनेके लिये तुम्हें आदरसे बुलावें ऐसी तू अपनी योग्यता बढ़ा और यहां तेजस्वी बन ॥ ४ ॥

मारपीट अथवा कातरपनेके भाव दूर कर आलस या हिंसक वृत्ति हटा दे पापाचरणोंको अपने मनसे हटा दे द्वेष भावों को समीप न कर सम्पूर्ण सब हीन भावनाओंके परे जाकर अपने आपको पवित्र बनाओ और हमारे लिये ऐसी उन्नति आज कि जिसके साथ वीरजन होते हैं ॥ ५ ॥

अग्निका स्वरूप ।

ऋग्वेद मण्डल १ सू० ७ की व्याख्याके प्रसंगमें अग्नि शब्द है इस प्रकरणमें अग्नि पद ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मी पुरुष का वाचक है यह बात विशेष स्पष्ट की है। पाठक कृपा करके वह प्रकरण यहां अवश्य देखें। उस प्रकरणके अग्निका स्वरूप स्पष्ट होने उपरान्त अग्निका वर्णन करते हुए इस सूक्तके जो शब्द प्रयोग किये हैं उनका विचार देखिये–

हे अग्ने ! तं सजातानां मध्यमेष्ठाः राज्ञां विहव्यः इह दीदिहि ॥ (मं ४)

हे अग्ने ! तू अपनी जातिमें मध्य स्थानमें बैठनेकी योग्यता धारण करनेवाला और राजा महाराजाओं द्वारा विशेष आदरसे बुलाने योग्य होकर यहां प्रकाशित हो ।

यह मन्त्र इस मन्त्रमें या इस सूक्तमें प्रतिपादित अग्नि केवल जड़ ही नहीं है, परंतु वह मनुष्यरूप है यह बात सिद्ध करता है। 'सजातियों समामें प्रमुख स्थानमें बैठनेवाला (सजातानां मध्यमेष्ठाः) ये शब्द तो निःसंदेह उसका मनुष्य होना सिद्ध करते हैं। तथा इसी मंत्रके (राज्ञां विहव्यः) राजाओं या क्षत्रियों द्वारा विशेष प्रकारसे बुलाने योग्य ' ये शब्द उसका क्षत्रिय जातिसे भिन्न जातीय होना भी अच्छे प्रकारसे सूचित करते हैं। क्षत्रिय जातिसे भिन्न ब्राह्मण वैश्य शूद्र और निषाद ये चार जातियां हैं। क्या कभी क्षत्रिय अपनेसे भिन्नजी जातीय बहिन बेटा समझकर करते हैं ? इस प्रश्न का मनन करनेसे यहां हमको प्रतीत होता है, कि यहां जिसका वर्णन हुआ है वह ब्राह्मण वर्णका मनुष्य ही होना । अर्थात् इस सूक्तका अग्नि शब्द ब्राह्मण वाचक है। यह बात ऋग्वेदके प्रथम मण्डल सू० ७ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया है और उसी बातको सिद्ध इस सूक्त के इन शब्दों द्वारा होती है। इस प्रकार यहांका अग्नि शब्द ब्राह्मण का वाचक है जिससे यह कहना आवश्यक सिद्ध होता कि ब्राह्मण कुमार का वाचक है। ब्राह्मण कुमार को इस सूक्त द्वारा बोध दिया है। जैसे अग्नि देवताके सूक्तों द्वारा ब्राह्मणधर्म और इस देवता के

सूक्तद्वारा क्षत्रियधर्म विशेषतया बताया जाता है, यह बात पाठकोंने इस प्रथम मंत्र कई बार देखी है इसलिये अब इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। अब अग्नि सम्बन्धी यह मंत्र ध्यानमें धारण करके इस सूक्तके वाक्य देखिये—

दीर्घ आयु।

१ हे अग्ने! त्वा समाः क्षपवः संवत्सराः स वर्षवस्तु—हे ब्राह्मण कुमार! हे बालक! महिने ऋतु और वर्ष तेरा धर्मपूर्वक करें अर्थात् उत्तम दीर्घ आयुष्यसे युक्त हो। योगादि साधनोंसे ऐसा यत्न कर कि तेरी आयु दिन के पीछे दिन, मास के पीछे मास, ऋतु के पीछे ऋतु और वर्षके पीछे वर्ष इस प्रकार बढ़ती रहे। (मं १)

ज्ञान प्राप्ति।

२ अहरहः त्वा वर्षवस्तु—प्रतिदिन विद्याके उपदेशसे तुझे बढ़ावें। अर्थात् ऋषि प्रणालीके अनुसार अध्ययन करता हुआ तू ज्ञानी बन। [मं १]

सत्यनिष्ठा।

३ यानि यमानि यानि त्वा वर्षवस्तु—जो सब उत्तम धर्म नियम हैं वे सब तुझे बढ़ावें। अर्थात् तू उक्त धर्मनियमोंका उत्तम प्रकारसे पालन कर और उसके बलसे बलवान् हो। सत्यपालनसे ही आत्मिक बल बढ़ता है। (मं १)

अपने तेजका वर्धन।

दिव्येन शोचनेन सहीदिति—दिव्य तेजसे पहिले सूर्य प्रकाशमान है। पूर्वोक्त तीनों उपदेशों द्वारा तीन बल बढ़ानेसे, तूभी मिली है (१) दीर्घ आयुष्य और निरोग शरीरसे शारीरिक बल (२) ऋषि प्रणालीके अध्ययनसे ज्ञानका बल और (३) सत्यपालनसे आत्मिक बलकी प्राप्ति होती है। इन तीनोंका मिल कर जो तेज होता है वह दिव्य तेज कहलाता है। वह दिव्य तेज तूने अपने अंदर बढ़ाना चाहिये जिससे वह दिव्य तेज दूसरोंको देनेका अधिकार अपने अंदर आ सकता है। (मं १)

तेजका प्रकार।

४ विशः पतत्र प्रविशः आसादि—सब वीरो विशाएं प्रकाशित करो। उक्त तीन तेजोंसे स्वयं पुष्ट होकर आप विशाओंमें रहनेवाले मनुष्योंको उक्त तेजोंसे तेजस्वी करो अर्थात् ऐसे उपाय करो, कि जिससे सारी विशाओंमें रहनेवाले मनुष्य उक्त तीन दिव्य तेजोंसे पुष्ट बनें। स्वयं तेजस्वी होनेके पश्चात् दूसरोंको प्रकाशित करना आवश्यक है। अर्थात् स्वयं दीर्घायु और बलवान् बनकर उसका सिद्धिके मार्ग दूसरोंको बताओ, स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंके ज्ञानी करो और स्वयं सत्यपालनसे आत्मिक शक्ति युक्त होकर दूसरोंमें आत्मिक बल बढ़ाओ। (मं १)

५ स इध्यस्व इम वर्धय च—स्वयं प्रदीप्त हो और इसको भी बढ़ाओ। पहिले स्वयं प्रदीप्त होते रहो और बादमें दूसरोंको प्रदीप्त करो। (मं २)

ऐश्वर्य प्राप्ति।

७ महते सौभगाय उद्यते—बड़े ऐश्वर्यके लिये उठकर खड़ा रह अर्थात् बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए आवश्यक पुरुषार्थ प्रबल करनेके उद्देश्यसे अपने आपको सदा उत्साहित और सिद्ध रखो। [मं २]

स्वपक्षीयोंकी उन्नति।

८ ते उपसत्तारः सन्तु शिवम्—तेरा आश्रय करनेवाले कभी बुरी अवस्थामें न गिरें। तेरा पक्ष लेनेवालोंको तेरे अनुयायी होकर कार्य करनेवालोंकी अवनति न हो। तू ऐसा यत्न कर कि जिससे तेरे अनुयायी दुर्गतिको न प्राप्त हों। [मं २]

९ ते ब्रह्मणः वसवः सन्तु, मयि मा—तेरे साथ रहनेवाले ज्ञानी जन बसनेवाले हों अन्य न हों। अर्थात् तेरे साथ रहनेवाले लोग बड़े भारी बनें परन्तु ऐसा कभी न हो कि तेरे साथ वाले अब तेरी त्रुटियोंके ग्रहण करनेमें पड़ें और तेरे

नष्टतीके कारण तेरे प्रतिपक्षी ही सुख भोगे। तेरी पक्षतीका लाभ शत्रु न उठावें अतः सावधानीसे अपना कर्म करते हुए स्वस्थिरीका यत्न बढ़ाओ। [मं ३]

१ इमे ग्रावाणः एषां वृणते। वः संवरणे त्रिषः भव—ये ज्ञानी तुझे चुनते हैं इस चुनावमें तू सबके लिए कल्याणकारी हो। तू परा चक्रवाक दित करनेवाला हो जिससे सब ज्ञानी लोग विश्वास पूर्वक तेरा ही स्वीकार करें। अवक्षाक हितकारी होकर जनताका विश्वास उपलब्ध कर। [मं० ३]

११ अपन्वहा अभिमातिजित् भव—प्रतिपक्षीका पराजय कर अर्थात् तू सब विरोधियोंको अपने ऊपर आक्रमण करने न दो। [मं ३]

अपने घरमें जागना।

१२ अवसुष्कम् एते गावे जागृहि—पक्षती न करता हुआ अपने घरमें जागता रह। अपना घर शरीर घर, समाज और राष्ट्र इतनी मर्यादा तक विस्तृत है। हर एक घरमें जागृत रहना आवश्यक है। घरका स्वामी जागृत न रहा तो शत्रु घरमें घुसेंगे और स्वामी को ही घरसे निकाल देंगे। इसलिए अपने घरकी रक्षा करने के उद्देशसे घरके स्वामीको सदा जागते रहना चाहिए। [मं ३]

उत्साहसे पुरुषार्थ।

१३ स्वेव क्रतव सारमस्व—अपने ज्ञान तेजसे उत्साह पूर्वक पुरुषार्थ आरंभ कर। शत्रुका प्रतिकार करनेका बल अपने में बढ़ाकर उस बलसे अपने पुरुषार्थका आरंभ कर। [म ४]

मित्रभाव।

१७ मित्रेव मित्रया यतस्व—मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर। मित्रका द्वेष कभी न कर। [म ४]

१९ सजातानां मध्यमेष्ठाः भव—स्वजातीयों के मध्यमें—अर्थात् प्रमुख स्थानमें बैठनेकी योग्यता प्राप्त कर। अर्थात् स्वजातीयों तेरी योग्यता इतनी बढ़नी चाहिये। स्वजातीके लोग तेरा मान आदर पूर्वक करें। [मं ४]

१६ राज्ञां वि-इम्वः ईरिरे—क्षत्रियों अथवा राजाओंकी सभामें विशेष आदरसे बुलाने योग्य बन और प्रकाशित हो। अर्थात् केवल अपनी जातीमें ही आदर पानेसे पर्याप्त न समझ हो चुकी ऐसा न समझ परंतु राज्यका कार्यव्यवहार करनेवाले क्षत्रिय भी तुझे आदरसे बुलाने इतनी योग्यता प्राप्त कर। [म० ४]

चित्तवृत्तियोंका सुधार।

१० निंदा सपत्नी अधिरंधिः शिवा अति ह्व—अपना करनेकी वृत्ति निंदाका भाव पास फटकने और द्वेष करनेका स्वभाव दूर कर। अर्थात् इन दुष्ट मनोभावोंको दूर कर और अपने आपको इनसे दूर रख। [मं० ५]

१८ निंदा दुरिता तर———इन पाप भावोंको दूर कर। पाप विचारोंसे अपने आपको दूर रख। [मं० ५]

१९ त्वं सहवीर रयिं अस्मभ्यं दाः—तू वीरभावोंसे युक्त धन हमें दानको दे। अर्थात् हमें धन प्राप्त कर और साथ साथ धनकी रक्षा करनेकी शक्ति भी उत्पन्न कर। हरएक मनुष्य धन कमाने और धनकी रक्षा करनेका बल भी बढ़ाये अन्यथा उस बलके अभावमें प्राप्त किया हुआ धन पास नहीं रहेगा।

इस सूक्तमें उपदेश वाक्य हैं। हर एक वाक्य का भाव ऊपर दिया है। प्रत्येक वाक्य का भाव इतना सरल है कि उसकी अधिक व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक गंभीरता पूर्वक करेंगे तो उनको इस सूक्त का दिव्य उपदेश उत्तम प्रकारसे आचरण। इस सूक्तका प्रत्येक वाक्य हृदयमें सदा जागृत रखने योग्य है।

अन्योक्ति अलंकार।

अभिषेक वर्णन या अभिषेकी आवश्यकता बतानेके लिये ब्रह्म कुमारका उपनिषदके आदेश किस अपूर्व ढंगसे दिए हैं यह वैदकी आलंकारिक वर्णन करनेकी शैली वहां पाठक ध्यानसे देखें। यहां अन्योक्ति अलंकार है। व्यक्तिके उद्देशसे ब्रह्मचारी कुमारको उपनिषद उपदेश किया है।

ज्ञानी मनुष्यके हृदयकी वेदीमें जो अग्नि जलते रहना चाहिये वह इस सूक्तमें पाठक देखें। यदि इस सूक्तके अग्नि शब्द अन्योन्य हाथ योग होनेसे अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें न आया तो सूक्तका अर्थही ठीक रीतिसे ध्यानमें नहीं आसकता। और वा वेदका ज्ञान के अजनेका मानही यहां समझें, वें तो इस सूक्तसे योग्य ज्ञान कभी प्राप्त नहीं कर सकते।

अरणियोंसे अग्नि।

दो अरणियों—लकडियों—के घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है। यज्ञमें इसी प्रकार अग्नि उत्पन्न करते हैं। अधरारणि [अधर अरणि] नीचे रखी जानेवाली लकडी स्त्रीरूप और [उत्तर अरणि] ऊपरवाली लकडी पुरुषरूप मानी जाती है और इन दो अरणियोंसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि पुत्र रूप माना जाता है। इस प्रकार से देखा जाय तो अग्नि पुत्ररूप है।

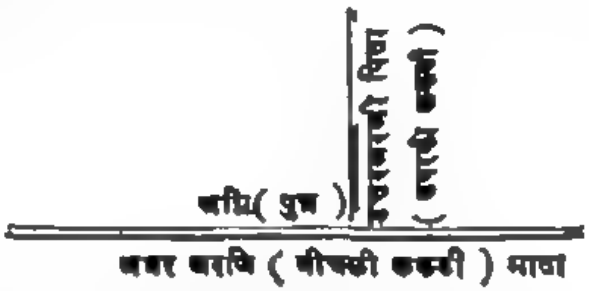

यदि इस सूक्तमें सामान्यतया शब्दोंसे अग्नि रूप माना जाय और उस दृष्टिसे इस सूक्तके शब्दोंका अर्थ लगाया है ऐसा माना जाय, तो भी सामान्य रीतिसे चल सकता है। परन्तु विशेष कर यहां यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण कुमारोंके लिये है, इसके कारण रीतसे बताये ही हैं। इस सूक्तके साथ प्रथम काण्डके ७ वें सूक्तका भी मनन कीजिये।

[सूचना—ऋग्वेद म० १० में इस सूक्तके पांचों मंत्र १-३ ५,६ इस क्रमसे आये हैं। कुछ शब्दोंका पाठ भिन्न है तथापि अर्थमें विशेष भिन्नता नहीं है, इस लिए उसका विचार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है]

शाप को लौटा देना ।

(७)

(ऋषिः—अथर्वा । देवता भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः)

अपहिता देवजाता वीरुल्लेपप्रयोपनी ।
आपो मलमिव प्राणैक्षीरसर्षान् मच्छपथाँ अधि ॥ १ ॥
यत्र सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः ।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥ २ ॥
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम् ।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥ ३ ॥
परि मां परि मे प्रजां परि यः पाहि यद्धनम् ।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिष्टुरभिमातयः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अप-हिता) पास का देव अलेखाली, (देव-जाता) देवोंके द्वारा उत्पन्न हुई (अपध-लोपनी वीरुत्) शाप को दूर करनेवाली औषधि (सर्वान् अपपात्) सब शापोंको (मत्) मुझसे (अधि-अ अवेक्षीत्) दूर डालती है [शापः मलं इव] जल जैसा मलको दूर करता है ॥ १ ॥

[यः च सापत्नः शपथः] जो सपत्नीका शाप (यः च जाम्याः शपथः) और जो स्त्री का दिया शाप है तथा (यत् ब्रह्मा मन्युतः शपात्) और जो ब्रह्मज्ञानी क्रोधसे शाप देवे (तत् सर्वं नः अधस्पदं) वह सब हमारे नीचे हो जावे ॥ २ ॥

[दिवः मूलं अवततं] द्युलोकसे मूल नीचे आता है और (पृथिव्याः अधि उत्ततं) पृथिवीसे ऊपर को फैला है, (तेन सहस्रकाण्डेन) उस सहस्र काण्डवालेसे (नः विश्वतः परि पाहि) हमारी सब ओर से रक्षा कर ॥ ३ ॥

(मां परि पाहि) मेरी रक्षा कर [मे प्रजां परि] मेरे संतानोंकी रक्षा कर (नः यत् धनं परि पाहि) हमारा जो धन है उसकी रक्षा कर । (अ-रातिः नः मा तारीत्) अनुदार शत्रु हमसे आगे न बढ़े और (अभिमातयः नः मा तरीषुः) हम दुर्जन हमको पीछे न रखें ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह वनस्पति पापनाशिनी हमारे पास दिव्य गुणोंसे बढ़नेवाली, औषधसे शाप देनेवाली प्रवृत्तियों को दूर करनेवाली है, यह औषधी शाप देनेके मलको हमसे दूर करे जैसे जल मलको दूर करता है ॥ १ ॥

सपत्न भार्याओं बहिनोंसे स्त्रीपुत्रोंसे अथवा विद्वान् पतियोंके क्रोधसे जो शाप दिया जाता है वह हमसे दूर हो ॥ २ ॥

इस वनस्पति का मूल तो द्युलोकसे यहां आया है जो पृथ्वीके ऊपर छाया है; इस सहस्रों काण्डवाली वनस्पतिसे हमारा कल्याण सब प्रकारसे होवे ॥ ३ ॥

मेरा मेरी संतान का तथा मेरे धन ऐश्वर्य आदिका इससे संरक्षण हो । हमारे शत्रु इस उपाय से आगे न बढ़ें और इस उपाय से पीछे न रहें ॥ ४ ॥

अप्सारमेतु अपथो यः सुहार्दं तेन नः सह ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥ ५ ॥

अर्थ-(अपथः अप्सारं एतु) आप आप देनेवालेके पास ही वापस चलाजावे। (यः सुहार्दं तेन सह नः) जो उत्तम हृदय वाला है उसके साथ हमारी मित्रता हो। (चक्षुः-मन्त्रस्य दुर्हार्दः) आंखोंसे बुरे इशारे देनेवाले दुष्ट मनुष्यकी (पृष्टीः अपि शृणीमसि) पसलियां ही हम तोड देते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ- आप देनेवाले के पास ही उसका आप वापस चला जावे। जो उत्तम हृदयवाला मनुष्य हो उससे हमारी मित्रता हो। जो आंखों से बुरे इशारे करके बिगाड मचानेवाले दुष्ट हृदय के मनुष्य होते हैं उनको हम दूर करते हैं ॥ ५ ॥

आपका स्वरूप। आपसे सब जानते ही हैं। पानी देना आदेश करते हुये दूसरेका आप होनेकी बात कह देना, हृदयोंका उद्धार करना इत्यादि सब हृदयित बातें इस आपमें आती हैं। जिस प्रकार आचरण की पुस्तक वालियां देते हैं, उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य भी क्रोधके समय हुआ करता कहते ही हैं। यह एक क्रोधकी औषध है। यदि क्रोध हट गया और उसके स्थानपर विचारी शांत स्वभाव आगया तो आप देनेकी प्रवृत्ति हट जायगी। इसलिये इस सूक्तमें 'सहस्र कान्द' नामक वनस्पति की प्रशंसा करते हुए सूचित किया है कि इस वनस्पतिके प्रयोगसे आप देनेकी क्रोधी प्रवृत्तिको दूर किया जाय।

पूर्वार्धका उपयोग। सहस्रकान्द वनस्पति का प्रसिद्ध नाम 'दूर्वा' है। जहां पानी होता है उस स्थानपर इसकी बहुत वनस्पति होती है। हरएक कान्डसे अर्थात् कोनेसे यह बढती रहती है। सिरदर्द मूर्च्छारोग वस्तिरुजादि अवयवोंकी पर्वी अन्धारोंमें आदिपर यह उत्तम है। इसके सेवनसे क्रोधकी वृत्ति शांत होती है। इसका रस गौरा और मिश्रीके साथ पीया जाता है वाहे वासके ताजे दूध के साथ लिया जाय। सिर फटता होनेके समय इसको पीसकर सिरपर लगा देने वैसे ही मस्तक की पर्वी हट जाती है। इसलिये इस सूक्तमें कहा है कि यह वनस्पति आप देनेकी क्रोधवृत्तिको कम करती है अथवा इसके सेवन से क्रोध कम होता है।

सप्तम मन्त्रमें इसके वर्णन के प्रसंगमें (अप-हिंसा) पापका हेय करनेवाली' यह शब्द स्पष्ट बता रहा है कि यह दूर्वा पापवृत्तिको भी रोकती है अर्थात् अन्यान्य इंद्रियोंसे होनेवाले पाप भी इसके सेवनसे कम हो सकते हैं। मन ही शांत हो जानेसे अन्य इंद्रियां भी उन्मत्त नहीं होती, यह तात्पर्य नहीं लेना है। अन्य क्रोध आदि दोष इसके सेवनसे कम होते हैं इसलिये संयम करनेकी इच्छा करनेवाले इसका सेवन करें। मन और इंद्रियोंके सात्विक वृत्तिको यह पूर्ण करती है। इसका सेवन करनेकी कई रीतियां हैं। इसका रस या दूध बनाकर सिरपर मला जाता है रस अथवा दूध सेवन किया जाता है लेप लगाया जाता है। इस प्रकार सेवन लेप इत्यादि विषयका अधिक विचार कर सकते हैं।

यह पाप विचारसे मनसे हटाती है मनको शांत करती है मनका मल दूर कर देती है। पहिले और दूसरे मन्त्रोंका यही तात्पर्य है। आप देना पानी देना आदि जो दानकी प्रवृत्तिके कारण दोष उत्पन्न होता है वह इसके प्रयोगसे मेरे उनके बीचे इस भाव अर्थात् उस दोषका प्रभाव मेरे ऊपर न हो। यह द्वितीय मंत्रका तात्पर्य है। दूसरेके मनकी दी या आप दिया हो भी उसका परिणाम मेरे मन पर न हो, और मेरे मनमें वैसा विचार कभी न आवे; यह तात्पर्य है पहले दोनों दोषोंके दूरीकरण।

तीसरे मंत्रमें यह वनस्पति स्वर्गसे यहां आयी है और भूमिसे उगी है यह पूर्वोक्त प्रकार मनकी शांतिकी स्थापना करते हुए मेरी रक्षा करे यह प्रार्थना है।

चतुर्थ मंत्रमें अपनी अपनी संतान की और अपने धनादि ऐश्वर्यकी रक्षा इससे हो यह प्रार्थना है। और शत्रु अपने आगे न बढे तथा हम शत्रुओंके पीछे न पडें यह इच्छा प्रकट की गई है। इसका खोलासा स्पष्टीकरण करना चाहिये।

मनोविकारोंसे हानि। आप क्रोधादि दुर्गुणक होनेवाली मनोवृत्तियां यदि समयको प्राप्त न हुई तो वह अवसर आनेपर करती हैं और मनुष्यका नाश उसके परिवार के साथ करती हैं। एक ही आप के कारण कितने परिवार उध्वस्त हो गये हैं और उपरवर एक क्रोधके स्थायीभाव न रहने से कितने कुटुंब सिद्धियें मिले हैं। तथा अन्यान्य हीन मनोवृत्तियोंसे कितने वंश नाश हो चुके हैं, इस का पाठक मनन करें, और समझें कि मनकी अवांछनीय वृत्तियां मनुष्यका कैसा नाश करती

है। यदि उक्त औषधि मेवमें खाई जा सकती है तो उससे परिवार और समाजोन्नतके साथ मनुष्यकी रक्षा कैसी हो सकती है, यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

इसके प्रयोगसे मन शांत होता है, उद्विग्नता नहीं, और मन सुविचार पूर्ण होनेसे मनुष्य आपत्तियोंसे बच जाता है। और इसी प्रकार मनुष्य आपत्ति अपने संताप या और अपने ऐश्वर्यका बचाव कर सकता है।

यदि मन पूर्ण सुविचारी हुआ तो नीच समयपर नीच कर्तव्य करता हुआ मनुष्य आगे बढ़ जाता है और उन्नत होता जाता है। परंतु जो मनुष्य अशांत चंचल और अशुद्ध मनोवृत्तियोंवाला होता है वह स्थान स्थानपर प्रमाद करता है और गिरता जाता है इस प्रकार वह पीछे रहता है और इसके प्रतिपक्षी उसको पीछे रखते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। परंतु जो मनुष्य मनका संयम करता है मनको उच्छृंखल नहीं होने देता कामक्रोधादिकोंको मर्यादासे अधिक बढ़ने नहीं देता वह कर्तव्य करनेके समय चूकता नहीं करता है, इस कारण सदा प्रतिपक्षियोंको पीछे छोड़कर स्वयं उनके आगे बढ़ता जाता है। चतुर्थ मंत्रका यह आशय पाठक देखें और खूब विचार करें।

आपको वापस करना। पंचम मंत्रमें तीन उपदेश हैं और वेही इस सूक्तमें पहली दफेसे देखने योग्य हैं। संपूर्ण सूक्त में यही मंत्र अति उत्तम उपदेश दे रहा है। देखिये–

यन्म उशन्नेमि पणु ॥ (मं ५)

हाय आप देनेवाले के पास वापस आवे! पानी पानी देनेवालेके पास वापस आवे!! यह किस रीतसे वापस जाती है यह एक मानव शास्त्रके महान् शक्तिशाली विषयका चमत्कार है। मन एक बड़ी शक्तिशाली विद्युत है मनके उच्च नीच भले या बुरे विचार उसी विद्युत्के न्यूनाधिक आन्दोलन का रूप हैं। वे रूप जहां पहुंचने के लिए भेजे जाते हैं वहां पहुंचकर यदि क्षीण न हुए या कुंठावरी न हुए; तो उसी वेगसे भेजनेवाले के पास वापस आते हैं और उसी वेगसे उसी भेजनेवालेका नाश करते हैं। यह मानस शक्तिका चमत्कार है और पानी या हाय देनेवालेको इस विषयका अवश्य मनन करना चाहिए। इसका विचार ऐसा है—

१ एक अ मनुष्यने पानी हाय या दुर्भाव क का नाश करनेकी प्रबल इच्छासे क मनुष्यके पास भेज दिये

२ यदि क भी साधारण मनोवृत्तिवाला मनुष्य रहा तो उसके मनपर उसका परिणाम होता है उससे मन क्षुब्ध हो जाता है और वह भी फिर अ को पानी हाय या नाशक शब्द बोलने लगता है।

इस प्रकार एक दूसरे के हाय परस्परके ऊपर आने लगे तो दोनोंके मन समानतया दूषित होते हैं और समान रीतिसे पतित भी होते हैं परंतु–

१ यदि क उच्च शांत मनोवृत्तिवाला मनुष्य रहा तो अ के आये हुए नीच मनोवृत्तिके कणों को अपने मनमें रहनेके लिए स्थान नहीं देता; इसलिए आधार न मिलनेके कारण वे विचारके भाव छिटककर वापस होते हैं और वे सीधे भेजनेवाले अ के पास जाते हैं। और उसका मन उसी अवस्थामें होनेके कारण वे वहां स्थान पाते हैं।

इस प्रकार कुविचार वापस जानेसे चमत्कार यह हो जाता है कि प्रथमसे कुविचार भेजनेवाले अ का दुष्ट नाश हो जाता है। पहिले अ कुविचार उत्पन्न हुए उस समय उसका नाश हुआ ही था और इस प्रकार उसके ही कुविचार बाहर स्थान न पाते हुए जब वापस होकर उसके पास पहुंचते हैं तब फिर उसका और नाश होता है। एकही प्रकारके कुविचार दोबार उसके मनमें आघात करनेके कारण उसका दुगना नाश हो जाता है। परंतु जो सज्जन शांतिसे अपने अंदर समता धारण करता हुआ बाहरके कुविचार अपने मनमें आने दो भी स्थिर होने नहीं देता और उनको वापस भेजता है वह अपना मन अधिकाधिक दृढ़ करता है। इसलिए वह शांत मनुष्यका कल्याण होता है।

पाठक इसका भाव यही होगा कि बुरे विचारकी लहरें वापस भेजनेसे अपनी उन्नति कैसी होती है और प्रतिपक्षी की दुष्कर्म अवनति किस कारण होती है। इस पंचम मंत्रमें इसी कारण कहा है कि यदि किसीका अपनी उन्नति करनेकी अभिलाषा हो तो उसको हाय वापस करनेकी विद्या अवश्य जानना चाहिए। अपने मनको पवित्र और दृढ़ बनानेका यही उपाय है। पाठक इसका खूब विचार करें और हाय वापस करनेका बहुत अभ्यास करें; तब स्वयं उनको किसी भी कारण किसीका हाय वापसी

क्षेत्रिय रोग ।

जो रोग मातापिताके शरीरसे अथवा इनके भी पूर्वजोंके शरीरसे चला आता है उसे आनुवंशिक रोग कहते हैं। वैद्यकशास्त्रमें क्षेत्रिय रोगको प्रायः असाध्य कहा जाता है। क्षेत्रिय रोग प्रायः सुसाध्य नहीं होता, इसलिए ऐसी माता पिताओंको सन्तानोत्पत्तिका कर्म करना उचित नहीं है। प्रथमतः ऐसे व्यवहार करना चाहिये कि जिससे रोग उत्पन्न न हो आवश्यक यदि आरोग्य साधक ही होना चाहिए। जो वीरोग होवे उनको ही सन्तानोत्पत्ति करनेका अधिकार है। ऐसी मातापिता अवश्य करते हैं और अपने सन्तानोंको क्षेत्रियरोगोंसे दूरमें डाल देते हैं। ऐसे असाध्य आनुवंशिक रोगों को चिकित्सा करनेकी विधि इस सूक्तमें बतायी है, इसलिए यह सूक्त विशेष उपयोगी है।

दो औषधियां ।

मयमती और तारका ' ये दो औषधियां हैं जो शरीरको कान्ति बढाती हैं और क्षेत्रिय रोगोंको दूर करती हैं, इन दो औषधियोंकी योग्य रीतीसे करनी चाहिए—

१ मयमती—इसको मेथ्यवी, वसु बलदायी तुलसी अपराजिता विष्णुक्रान्ता कहा जाता है, तथा-

२ तारका—इस औषधिको देवताओंकी और इन्द्राणी कहा जाता है। इसका अर्थ पलाश और बोही भी है।

शब्दोंके अर्थ जानने मात्रसे इस औषधकी विधि नहीं हो सकती और कोई व्यक्ति शब्दार्थ करने मात्रसे ही औषध नहीं बन सकता। यह विशेष महत्वका विषय है अरे ये किस वनस्पतिके वाचक नाम यहां हैं इसका विवरण सुनिश्चित होना चाहिए और इनके उपयोग की रीति भी निश्चित रूपसे जानना उससे ही अधिकारमें है। " मयमती और तारके ये औषधी वाचक दोनों शब्द यहां दिखलायी हैं इससे बोध होता है कि, इस एक एक नामसे दो दो वनस्पतियां जाना है इस प्रकार इन दो नामसे चार वनस्पतियां होती हैं जो क्षेत्रियरोग को दूर करती हैं और शरीरकी कान्ति उत्तम तेजस्वी करती हैं अर्थात् क्षेत्रिय रोगोंसे उससे उद्धार देती हैं। यह प्रथम मन्त्रका स्पष्ट तात्पर्य है। (मं १)

दूसरे मंत्रमें कहा है कि जिस प्रकार रात्री जाने और दिन शुरू होनेसे हिंसक प्राणी स्वयं कम होते हैं उसी प्रकार इस औषधीके प्रयोगसे क्षेत्रिय रोग अपने आप कम जाता है ॥ (मं २)

तीसरे मंत्रमें इस औषधिके प्रयोग विधीमें करने योग्य पथ्य भोजन का उपदेश किया है। जिस बीजके कण पूरे और श्वेत वर्णवाले होते हैं उस बीजका वेष बनाना और उसमें तिलादी मधुरीसे मास किये ताजे तिल भी बनाना। अर्थात् उस प्रकार के बीज वेष उन तिलोंके साथ बनाना। यही भोजन इस चिकित्सके प्रयोग में विहित है। इस पथ्यके साथ सेवन किया हुआ पूर्वोक्त औषध क्षेत्रिय रोगसे मुक्त करता है यह सूक्तका तात्पर्य है ॥ (मंत्र ३)

चतुर्थ और पंचम मन्त्रमें इन पूर्वोक्त औषधियोंको तथा इस पथ्य आहारसे उत्पन्न करनेवाले किसान इस खेतको योग्य प्रकार में पानी देनेवाले, इस खेतीके लिये हल चलानेवाले हल के दण्ड ठीक करनेवाले तथा इस औषध और पथ्यका सेवन क्षेत्रिय रोगसे रोगी हुए मनुष्यों तक पहुंचाने वालोंका सत्कार किया है। यदि इस पथ्यसे और इन औषधियोंसे आनुवंशिक रोग सम्पूर्ण दूर होते हों तो इस उपक्रम मानव करना अत्यंत आवश्यक है। आज कल तो ये औषध विशेषही आदर करने लायक हैं। (मं ४-५)

ज्ञानी वैद्य इन औषधियोंका और इस पथ्यका मिश्रण करें और इसकी योग्य विधि लिखित करके आनुवंशिक असाध्य समझे हुए बीमारोंको रोग मुक्त करें।

सन्धिवातको दूर करना।

(९)

[ऋषिः मृगुः अङ्गिराः । देवता वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् ।]

दर्भवृष्ट प्रुष्वेम रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं अग्राह पर्वसु ।
अथो एन वनस्पते जीवानां लोकमुत्तय ॥ १ ॥
आगादुदगादुप जीवानां व्रातमर्व्यगात् । अभूत् पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥ २ ॥
अवीतीरर्व्यगादुयमर्षिं जीवपुरा अगन् । शुत्र इत्स्य भिषजः सहस्रमुत वीर्यः ॥ ३ ॥
देवास्ते चीतिमविदन्ब्राह्मणा उत वीर्यः । चीतिं ते विश्वे देवा अविदन्भूम्यामधि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (दर्भ—दृढ) दृढ वृक्ष ! (रक्षसः ग्राह्याः) राक्षसी पकड़नेवाली गठियाके को पीसके (इमं प्रुष्व) इसे चुराके (या एनं पर्वसु अग्राह) जिस रोगने इसको जोड़ोंमें पकड़ रखा है । हे (वनस्पते) औषधि ! (एन जीवानां लोकं उत्तय) इसको जीवित लोगोंके स्थानमें आनेयोग्य करके रक्षा कर ॥ १ ॥

(अथ) यह मनुष्य (जीवानां व्रातं) जीवित लोगों के समूहमें (अगात्, आगात्, उदगात्) आया आरोग्य पाकर आया है । अब यह (पुत्राणां पिता) पुत्रोंका पिता और (नृणां भगवत्तमः) मनुष्योंमें अत्यन्त भाग्यवान् (अभूत् ह) बना है ॥ २ ॥

(अयं) इसने (अवीतिं अव्यगात्) प्राप्त करने योग्य पदार्थ प्राप्त किए हैं । और (जीवपुराः अपि अगन्) जीवोंकी संपूर्ण आवश्यकतायें भी प्राप्त की हैं । [हि] क्योंकि (अस्य शत भिषजः) इसके सैकड़ों वैद्य हैं और (उत सहस्रं वीर्यः) हजारों औषध हैं ॥ ३ ॥

[एवाः मघवानः उत वीर्यवा] इस आहार और वनस्पतियों [ते चीतिं अविदन्] तेरे आहार प्रदान आदिको जानती हैं; [विश्वे देवाः] सब इन्द्र (भूम्यां अधि) पृथिवीके ऊपर (ते चीतिं अविदन्) तेरे आहार प्रदान को जानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—दर्भवृक्ष आदिक वनस्पति पीड़ेका राक्षसी दूर करती है । यह जकड़ेका रोग सांधियोंमें पकड़ रखता है । जबसे मनुष्य चलकर नहीं सकता । इसकी चिकित्सा दर्भवृक्ष को जान तो यह रोगी पुनः आरोग्य प्राप्त करके अन्य जीवित मनुष्योंकी तरह अपने व्यवहार कर सकता है ॥ १ ॥

यह आरोग्य प्राप्त करके सोलहमार्गोंमें आकर यथायोग्य अपने व्यवहार करता है अपने अन्य बान्धवोंसे संबन्ध करता है और मनुष्योंमें अत्यंत भाग्यवान् भी बन सकता है ॥ २ ॥

यह नीरोग बनकर सब प्राप्तव्य पदार्थ प्राप्त कर सकता है जीवोंको या जो आवश्यकतएं होती हैं सबको प्राप्त कर सकता है । यह रोग बड़े बड़े वैद्य नहीं है बनाक इसके चिकित्सक सैकड़ों हैं और हजारों औषधियां भी हैं ॥ ३ ॥

इसका अनेक औषधियां या वृक्षांतर ही हैं उनको देख लेना और उनका प्रयोग क्या करना यह सब विश्वमुखवर्योंसे मुख महर्षियों आदिक सब जानते हैं ॥ ४ ॥

अथवा बुरे विचार न भेजें। क्योंकि यदि ये कुविचार वापस आवेंगे तो प्रतिपक्षीकी अपेक्षा वे अपना ही अधिक अहित करेंगे। पाठको ! मनःशक्तिका यह नियम ठीक तरह ध्यानमें रखिये। यह नियम इस पंचम मन्त्रके प्रथम चरणसे सूचित हो गया है। ये इसको ठीक तरह समझेंगे वेही अपने कल्याणका साधन कर सकेंगे।

योग्य मित्र । मित्रता किससे करनी चाहिये इस विषयका उपदेश पंचम मंत्रके द्वितीय चरणमें दिया है, देखिये—

यः सुहार्दः तेन सः सह । (म ५)

जो उत्तम हृदयवाला हो उसके साथ हमारी मित्रता हो, उत्तम हृदयवालेके साथ मित्रता करनेसे, उत्तम हृदय वालोंकी पंक्तियें रहनेसे ही मन शांत गंभीर और प्रसन्न रहता है और पूर्वोक्त प्रकार साथ वापस भेजनेकी शक्ति भी उत्तसंगतिसे ही प्राप्त होती है। इसलिये अपने लिये ऐसे सुयोग्य मित्र चुनने चाहिये कि जिनका हृदय पंचक नियमोंसे परिपूर्ण हो।

दुष्ट हृदय । जो दुष्ट हृदयके मनुष्य होते हैं उनकी संगतिसे अनेकविध हानियां होती हैं। दुष्ट मनुष्य किसी समय बुरे शब्द बोलते हैं, शाप देते हैं गालियां बकोच देते हैं हीन आचरणके कटु शब्द बोलते हैं, हाथसे अथवा शस्त्रोंसे बुरे भावके इशारे करते हैं तथा (चक्षु मन्त्र:) आंखोंसे दाक्षण्यसे ऐसे इशारे करते हैं, कि जिनका अंतरंग बहुत बुरा होता है। ये आंखके इशारे किसी किसी समय इतने बुरे होते हैं कि उससे बड़ा भयानक परिणाम भी होजाते हैं। इनका परिणाम भी शाप जैसा ही होता है। शापके वापस होनेसे जो परिणाम होते हैं, वैसे ही इनके वापस होनेसे परिणाम होते हैं। इसलिये कोई मनुष्य स्वयं ऐसे दुष्ट हृदयके मनुष्य अपनेमें बढ़ने न दें। किसी दूसरे मनुष्यसे ऐसे दुष्ट इशारे किये तो उसकी उपेक्षा करें और हरएक प्रकारसे अपने आपको इन दुष्ट वृत्तियोंसे बचावें। आंखोंके इशारे भी बुरे भावसे कभी न करें। जो दुष्ट होंगे उनकी संगतिमें कभी न रहें अच्छी संगतियें ही रहें। इस विषयमें यह मंत्र ध्यान रखिये—

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः प्रतीरपि शमीमसि । (मं ५)

आंखसे बुरे इशारे करनेवालेकी पीठ तोड़ देते हैं। अर्थात् जो मनुष्य इस प्रकारके बुरे भाव प्रकट करता है उसका पीछा करके उसको दूर अपने पास उसको रखना नहीं चाहिये या ही उसको संगतिमें स्वयं रहना चाहिए। यह मनुष्यका उपदेश है, पाठक इसका स्मरण रखें। बुरी संगतिसे मनुष्य बुरा होता है और भली संगतिसे भला होता है। इस करण कभी बुरी संगतिमें न फंसे परंतु भली संगतिमें ही सदा रहें और पूर्वोक्त प्रकार बुरे विचारोंको अपने मनमें स्थान न दें और उनको अपने मनसे दूर करता रहे। ऐसा नेक व्यवहार करनेसे मनुष्य सदा संगतिके मार्गके ऊपर ही चलता रहेगा।

सूक्तके दो विभाग । इस सूक्तके दो विभाग हैं। पहिले विभागमें पहिले चार मंत्र हैं जिसमें औषधि प्रयोगसे मनको क्षोभ रहित करनेकी सूचना दी है यह बात स्पष्ट है। दूसरे विभागमें अकेला पंचम मंत्र है। जिसमें कुसंगतिसे बचने और सुसंगति करनेका उपदेश है और साथ ही साथ अपने मनको पवित्र रखने तथा आये हुए बुरे विचारोंको उसमें वापस भेजनेका महत्व पूर्ण उपदेश दिया है। आशासे इस उपदेशका स्मरण रहे। यदि इस सूक्तके उपदेश मनन पूर्वक पाठक अपनायेंगे तो उनकी मनःशक्ति सुधार हुआ इसमें कोई संदेहही नहीं है; पाठक इस सूक्तके साथ प्रथम कांडके १ , ११ और १४ वे तीन सूक्त देखें।

क्षेत्रिय रोग दूर करना।

(८)

[ऋषिः भृगुः आंगिरसः । देवता-यक्ष्मनाशनम्]

उद्गातां भगवती विचृतौ नाम तारके । वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ १ ॥

अपेयं राज्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकुत्वरीः । वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ २ ॥

वृत्रोरर्दनकाण्डस्य यवस्य ते पलाशया तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।

वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ३ ॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नमः ईषायुगेभ्यः । वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ४ ॥

नमः सनिस्रसाखेभ्यो नमः सवेशेभ्यः ।

नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ५ ॥

अर्थ—(भगवती) वैष्णवी औषधि तथा (विचृतौ नाम) खेत पकानेवाली प्रसिद्ध (तारके) तारका नामक वनस्पतियां (उद्गातां) उगी हैं । वे दोनों (क्षत्रियस्य अधमं उत्तमं च पाशं) बलसे पकड़ आनेवाले रोगके उत्तम और अधम पाशको (वि मुञ्चताम्) छोड़ देवें ॥ १ ॥

(इयं रात्री अप उच्छतु) यह रात्री चली जावे और उसके साथ (अभि कुत्वरीः अपोच्छन्तु) हिंसा करनेवाले दूर हों तथा [क्षेत्रियनाशनी वीरुत्] बलसे पकड़ आनेवाला रोगका नाश करनेवाली औषधी [क्षेत्रियं अप उच्छतु] आनुवंशिक रोगको दूर करे ॥ २ ॥

(वृत्रोः अर्दनकाण्डस्य ते यवस्य) मूरे और श्वेत रंगवाले पत्तेवाले जवकी [पलाशया] रक्षक सखिसे तथा (तिलस्य तिलपिञ्ज्या) तिलकी तिलमञ्जरीसे आनुवंशिकरोग दूर करनेवाली यह वनस्पति क्षेत्ररोगसे मुक्त करे ॥३॥

(ते लाङ्गलेभ्यः नमः) तेरे हलोंके लिए सत्कार है (ईषायुगेभ्यः नमः) हलकी जुवाड़ीके लिये सत्कार है ॥ ४ ॥

(सनिस्रसाखेभ्यः नमः) अन्न प्राप्त कराने वाले बड़का सत्कार (सवेशेभ्यः नमः) सदैव देनेवाले का सत्कार (क्षेत्रस्य पतये नमः) खेतके स्वामीका सत्कार हो । (क्षेत्रियनाशनी क्षेत्रियं अप उच्छतु) आनुवंशिक रोगको हटानेवाली औषधि आनुवंशिक रोगको दूर करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—दो प्रकारकी वैष्णवी और दो प्रकारकी तारका ये चारों औषधियां खेतोंसे पकड़नेवाली हैं जो भूमिपर उगती हैं । ये चारों आनुवंशिक रोगको दूर करें ॥ १ ॥

रात्री चली जाती है तो उसके साथ हिंसक प्राणी भी चले जाते हैं इसी प्रकार यह औषधी आनुवंशिक रोगको उसके मूल कारणोंके साथ दूर करे ॥ २ ॥

मूरे और श्वेत रंगवाले जौ के अवके साथ तिलोंके मञ्जरियोंके तिलोंके सेवनसे यह औषधि आनुवंशिक रोगको दूर कर देती है ॥३॥

हल और उसके अवयवोंसे जिससे भूमि ठीक की जाती है उसके पूर्वोक्त वनस्पतियां तैयार होती हैं इस लिए उनकी प्रशंसा करना योग्य है ॥ ४ ॥

जिसके खेतमें पूर्वोक्त वनस्पतियां उगाई जाती हैं जो उनको अन्न देता है अथवा जिस यंत्रसे पानी दिया जाता है तथा जो इस वनस्पतिका यह क्षेत्र आनेसे रक्षा करता है उस सबकी प्रशंसा करना योग्य है । यह वनस्पति आनुवंशिक रोगसे मनुष्यको बचाती ॥ ५ ॥

क्षेत्रिय रोग ।

जो रोग मातापिताके शरीरसे अथवा इनके भी पूर्वजोंके शरीरसे चला आता है उसे आनुवंशिक रोगभी क्षेत्रिय कहते हैं। वैद्यशास्त्रमें क्षेत्रिय रोगको प्रायः असाध्य कहा जाता है। क्षेत्रिय रोग प्रायः सुसाध्य नहीं होता। इसलिए ऐसी माता पिताओंको सन्तानोत्पत्ति तक कर्म करना उचित नहीं है। अथवा ऐसे व्यवहार करना चाहिये कि जिससे रोग उत्पन्न न हो अथवा यदि आरोग्य साधक ही होना चाहिए। जो नीरोग हो उनको ही संतानोत्पत्ति करनेका अधिकार है। ऐसी मातापिता घोषणा करते हैं और अपने बंधुजनोंको क्षत्रियरोगोंके कष्टमें डाल देते हैं। ऐसे असाध्य आनुवंशिक रोगों की चिकित्सा करनेके लिये इस सूक्तमें बताई है इसलिए यह सूक्त विशेष उपयोगी है।

दो औषधियां ।

अगदा और तारक' ये दो औषधियां हैं जो शरीरकी शक्ति बढाती हैं और क्षेत्रिय रोगको दूर करती हैं, इन दो औषधियोंकी खोज वैद्योंको करनी चाहिए—

१ अगदा—इसको वैद्यकमें, अमृत संजीवनी, तुलसी अपराजिता विष्णुक्रान्ता कहा जाता है तथा—

२ तारक—इसे औषधियोंमें देवताओंका वृक्ष, और इन्द्रवारुणी कहा जाता है। इसके अर्थ पहचान और साक्षी भी है।

यद्यपि अब जानने मात्रसे इन औषधियों सिद्धि नहीं हो सकती और दोनों द्वारा सफलार्थ करने मात्रसे ही औषध नहीं बन सकता। यह विषय बहुत बड़ा विषय है और वे किन वनस्पतियोंके साधक बाधक नहीं हैं इसका निश्चय सुविज्ञ वैद्योंसे करना चाहिए और इनके उपयोग की रीति भी निश्चित करके करना उनके ही अधिकारमें है। " अगदा और तारके " ये औषधी साधक दोनों सूक्त यहां दिखलाती हैं इससे बोध होता है कि, इन एक एक नामसे दो दो वनस्पतियां लेना है इस प्रकार इन दो नामोंसे चार वनस्पतियां होती हैं जो क्षत्रियरोग को दूर करती हैं और शरीरकी शक्ति उत्तम तेजस्वी करती हैं अर्थात् क्षत्रिय रोगको जड़से उखाड़ देती हैं। यह प्रथम मंत्रका स्पष्ट तात्पर्य है। (मं १)

दूसरे मंत्रमें कहा है कि जिस प्रकार रात्री जाने और दिन हुए होनेसे दिनके प्राणी स्वयं कर्म होत हैं उसी प्रकार इस अगदीके प्रयोगसे क्षेत्रिय रोग जड़से उखड़ जाता है॥ (म २)

तीसरे मंत्रमें इस आनुषंगिक प्रयोग विधिमें करने योग्य कर्म मीजन का उपदेश किया है। जिस जौके खेत सूखे और पानी बरसनेसे हरे हैं उस खेत पेर बनाना और उसमें तिलोंकी मजदीके साथ किये साथे तिल भी डालना। अर्थात् उस प्रकार के जौका पेर उस तिलोंके साथ बनाना। यही भोजन इस चिकित्साके प्रयोग में विहित है। इस पदार्थके साथ सेवन किया हुआ पूर्व कहे अनुसार क्षेत्रिय रोगको मुक्त करता है यह मूलका तात्पर्य है॥ (मंत्र ३)

चतुर्थ और पंचम मंत्रमें इस पूर्वोक्त आनुषंगिक तथा इस रोग समूहको उत्पन्न करनेवाले किसान इस खेतके बोने समय में पानी बरसनेसे इस खेतीके लिये इस वनस्पतियोंके इस के समान ठीक करनेवाले तथा इस औषध और वनस्पतियोंके सेवन करनेवाले क्षेत्रिय रोगसे पीड़ित हुए मनुष्यों तक पहुंचने वालेका आधार लिया है। यदि इस पदार्थसे और इन औषधियोंसे आनुषंगिक रोग बहुत दूर होते हों तो इस प्रकार करना अधिक अच्छा है। आज कल तो ये लोग विशेषही आदर करने योग्य हैं। (मं ४-५)

हम सब इन औषधियोंका और इस पदार्थका विचार करें और इसकी योग्य विधि निश्चित करके आनुषंगिक अथवा असाध्य समझ हुए रोगोंसे सब मुक्त रहें।

—:—

सन्धिवातको दूर करना।

(९)

[ऋषिः भृगुः अङ्गिराः । देवता वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् ।]

दर्भोऽसि मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि येनं जग्राह पर्वसु ।
अयो एन वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥ १ ॥
आगादुदगादयं जीवानां व्रातमर्ध्यगात् । अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥ २ ॥
अवीतीरवर्ध्यगादयमविं जीवपुरा अगन् । सुतं हास्य भिषजः सुहस्तमुत वीरुधः ॥ ३ ॥
देवास्ते चीतिमविदन्ब्रह्माणं उत वीरुधः । चीतिं ते विश्वे देवा अविदन्भूम्यामधि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (दर्भ—दर्भ) इस वृक्ष ! (रक्षसः ग्राह्याः) राक्षसी पकड़नेवाली पक्षवातरोग की पीड़ाओं (इमं मुञ्च) इसे छुड़ादे (या एनं पर्वसु जग्राह) जिस रोगने इसको जोड़ोंमें पकड़ रखा है । हे (वनस्पते) औषधि ! (एन जीवानां लोकं उन्नय) इसको जीवित लोगोंके स्थानमें जानेयोग्य करो ॥ १ ॥

(अयं) यह मनुष्य (जीवानां व्रातं) जीवित लोगों के समूहमें (अगात् आगात्, उदगात्) आया आपहुचा उठकर आया है । अब यह (पुत्राणां पिता) पुत्रोंका पिता और (नृणां भगवत्तम) मनुष्योंमें अत्यन्त भाग्यवान् (अभूत् उ) बना है ॥ २ ॥

(अयं) इसने (अवीतिः अध्यगात्) प्राप्त करने योग्य पदार्थ प्राप्त किए हैं । और (जीवपुराः अधि अगन्) जीवोंकी सपूर्ण आवश्यकताएं भी प्राप्त की हैं । [हि] क्योंकि (अस्य सुत भिषजः) इसके लेकको वैद्य हैं और (उत सहस्र वीरुधः) हजारों औषध हैं ॥ ३ ॥

[देवा ब्रह्माणः उत वीरुधः] इस ब्राह्मण और वनस्पतियों [ते चीतिं अविदन्] तेरे आहार ग्रहण आदिको जानती हैं; [विश्वे देवाः] सब देव (भूम्यां अधि) पृथिवीके ऊपर (ते चीतिं अविदन्) तेरे आहार ग्रहण को जानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—दर्भरूप वानस्पतिक वनस्पति पक्षवात रोगको दूर करती है । यह पक्षवात रोग संधियोंमें पकड़ रखता है जिससे मनुष्य चलफिर नहीं सकता । इसकी चिकित्सा करनेसे जो यह रोगी चंद्र आरोग्य प्राप्त करके अन्य जीवित मनुष्योंकी तरह अपने व्यवहार कर सकता है ॥ १ ॥

यह आरोग्य प्राप्त करके जीवसमाजमें आकर कार्यजनक कार्य व्यवहार करता है घरमें अपने बालबच्चोंके संबंधके कर्तव्य करता है और मनुष्योंमें अत्यंत भाग्यवान् भी बन सकता है ॥ २ ॥

यह नीरोग बनकर जब प्राप्तव्य पदार्थ प्राप्त कर सकता है जीवोंकी जो जो आवश्यकताएं होती हैं उनको प्राप्त कर सकता है । यह रोग कोई अंत में नहीं है क्योंकि इसके चिकित्सक वैद्यों हैं और हजारों औषधियां भी हैं ॥ ३ ॥

इसके अनेक औषधियां तो पूर्वापार ही हैं उनको लेना और उनका प्रयोग करना यह सब दिव्यगुणकर्मोंसे युक्त ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण वैद्य जानते हैं ॥ ४ ॥

यश्चकार स निष्कर्त्त स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद्भिषजां शुचिः ॥ ५ ॥

अर्थ- [यः चकार स निष्कर्त्त] जो करता रहता है वही निःशेष करता है और वही (सु-भिषक्-तमः) सब से उत्तम वैद्य होता है । (स एव शुचिः) वही शुद्ध वैद्य (भिषजां) अन्य वैद्योंसे विचारणा करके [ते भिषजानि कृणवत्] तेरे लिए औषधोंको करेगा ॥ ५ ॥

भावार्थ- जो यह चिकित्साका कार्य करता रहता है वही इसको प्रवीणतासे सिद्ध कर सकता है। बारंबार चिकित्सा करते रहनेसे ही जो प्रारंभमें साधारणसा वैद्य होता है वही श्रेष्ठ धन्वन्तरी बन सकता है। ऐसा श्रेष्ठ धन्वन्तरी अन्य वैद्योंकी सम्मतिसे रोगीकी चिकित्सा उत्तम प्रकारसे कर सकता है ॥ ५ ॥

संविवात ।

वेदमें संविवात रोगका नाम आया " है क्योंकि वह (पर्वसु लगाद) पर्वोंमें किंवा संधिस्थानोंमें लगकर रहता है, जिससे चलने नहीं देता । संधियोंकी हलचल बंद होजाती है । रक्षस् अथवा पिशाच ये भी इसके नाम हैं । ये नाम रक्षके साथ इस रोगका संबंध बताते हैं क्योंकि ये नाम संधिस्थित अर्थात् जिससे रक्षके साथ मेल है, ऐसोंके वाचक हैं । इस लिये रक्षः ग्राही का अर्थ रक्षका विनाश होनेवाला संधिवात है ।

दक्षवृक्ष ।

इस संधिवातकी चिकित्सा दक्षवृक्षसे की जाती है । दक्षमूल आमसे वैद्य ग्रन्थोंमें इस औषधिका प्रसिद्ध है । वातरोग नाशक होनेके विषयमें इसकी बड़ी प्रसिद्धि है । संभव है किसी ही दक्षवृक्ष यहां अभिप्रेत हों । इस दक्षवृक्षोंका तैल, मूल क्वाथ, आसव अरिष्ट आदि भी बनाया जाता है जो वातरोगको दूर करनेमें प्रसिद्ध है ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें मुञ्च किया है इस मुञ्च धातुसे एक मोक्ष शब्द बनता है जो सोडिवना या छुड़ाना अर्थात् सोमान्यभाव पृथक्का वाचक है । यह पृथक्भी वात रोग दूर करनेवाला है । इस पृथक्के लंबी वैद्य आती है जो साथ आहारमें उपयोगी होती है । इस संधिस्थित पृथक्की अवस्थाका यदि जकड़े हुए संधिपर लंबी आय तो रोगवार संधिके अंदर जकड़े हुए संधि छूट जाते हैं यह अनुभवकी बात है । अन्य औषधियों से जो संधिरोग महिनोंतक दूर नहीं होता वह इस अवस्थासे कई घंटोंमें दूर होता है । रोगीको चलने दोचार या चार घंटेतक कष्ट सहन करने पड़ते हैं, क्योंकि यह अन्तस्थता जोड़ोंपर बांधनेसे कुछ समयके बाद उस स्थानपर बड़ी गर्मी या जलन जैसा होती है । दोचार घंटे यह कष्ट सहनेपर संधिस्थानके सब रोग दूर होते हैं । यहां मंत्रमें मुञ्च " शब्द है और रक्षका नाम संस्कृतमें मोक्ष ' है, इसलिये यह नाम यहां कही है । जो पाठक वैद्य हों वे इस बातका अधिक विचार करें । हमने केवल दूसरोंपर अनुभवकी देखा है इसका शास्त्रीय तत्त्व हमें ज्ञात नहीं है ।

इस प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें आये आकर कहा है कि इस वनस्पतिसे संधिवातसे जकड़ा हुआ रोगी बीरोगी जोड़ोंके सम्पर्कमें आता है और नीरोग जोड़ोंके समान अपने कर्तव्य करने लगता है । (मं १)

मंत्र दो और तीन में कहा है कि इस औषधिसे मनुष्य नीरोग होकर लोक समाजमें आता है और घरके कार्य भी कर सकता है । अर्थात् वैयक्तिक सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्य कर सकता है । सब मानवी कर्तव्य करनेमें सक्षम होता है । इन मंत्रोंकी भाषा देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह चिकित्सा अति शीघ्र गुणकारी है । जो अभी विस्तारपूर्वक जकड़कर पड़ा है वही रोगी कुछ घण्टोंके बाद मनुष्यसमाजोंमें आकर कार्य करने लगता है । पहिले तीन मंत्रोंका सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर ऐसा आकलन प्राप्त होता है इस शीघ्रताके दर्शक शब्द प्रमाण द्वितीय मंत्रमें पाठक अवलोकन करें—

अयं अविद्वां अवीं अभ्यगात् ।
आगात्, अदर्शात् ॥ (मं २)

' वह औषधके समूहोंमें गया पहुंचा उठकर खड़ा होकर गया ॥ ' अपने पांवसे गया अर्थात् जो वह विस्तरेपर सोया पड़ा था वही इसपर औषधसे मनुष्य समूहोंमें घूम रहा है ॥] वह आश्चर्य व्यक्त करनेके लिये एकही क्रियापदकी तीन क्रियाएं (गयात्, अप्यगात्, उदगात्) प्रयुक्त की हैं। इससे यह चिकित्सा शीघ्रगुणकारी है ऐसा स्पष्ट व्यक्त होता है।

इस चिकित्साकी अवधियें बहुतों हैं और इसके चिकित्सक भी बेशुमार हैं (मं ३) यह तृतीय मंत्रका कथन क्या रहा है। यह सुलभ चिकित्सा है। असाध्य नहीं है। ऊपर जो ' सोम ' वृक्षसे चिकित्सा बतायी है वह प्रायः वहांके ग्रामीण भी जानते हैं और करते हैं इससे कुछ वर्षोंमें आरोग्य होता है।

ये वृक्ष पृथ्वीपर बहुत हैं और उनको लाना और उनका प्रयोग करना (विश्वेदेवाः देवाः अकामयन्त) सब मनुष्य आसान जानते हैं। अथवा आसान तथा अल्प खेदमें भी आजाते हैं। इस में ' क्षेति ' शब्द (आसान संभाल) लेना और प्रयोग करना यह अर्थ व्यक्त कर रहा है किंवा (आसान--संभव) अर्थात् औषधका उपयोग करना और औषधके दुष्परिणामोंको दूर करना यह सब वैद्य जानते हैं। (मं ४)

उत्तम वैद्य।

चतुर्थ मंत्रमें उत्तम वैद्य कैसे बनते हैं इस विषयमें कहा है वह बहुत मनन करने योग्य है।—

यः चकार सः भिषक्तरः, स एव सुभिषक्तमः ॥ (म ५)

जो करता रहता है वही निःशेष कर्म करता है और वही सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक होता है॥

जो कर्म करता रहता है वही आगे आकर उत्तम प्रवीण बनता है। इस प्रकार अनुभव क्षेत्रेक्षाद्य ही आगे उत्तमोत्तम वैद्य बन जाता है।

प्रवीणताकी प्राप्ति।

प्रवीणता की प्राप्ति करनेका साधन इस मंत्रमें कैसे बताया है। किसी भी बातमें प्रवीणता संपादन करना हो तो उसका उपाय यही है कि—

यः चकार, सः भिषक्तरः। (म ५)

जो सदा कर्म करता रहता है वही परिणामी पुरुष उस कार्यके निःशेष करनेकी योग्यता अपनेमें ला सकता है। ' हम भी अनुभवमें यही देखते हैं जो बालविद्यामें परिश्रम करते हैं वे पण्डित्व पा जाते हैं जो चित्रकारीमें दत्तचित्त होकर परिश्रम करते हैं वे कुशल चित्रकार होते हैं इसी प्रकार अन्यान्य कारीगरीमें प्रवीण बननेकी बात है। एकलव्य नामक एक भील क्षत्रिय कुमार था उसने इच्छा शास्त्रविद्या प्राप्त करनेकी की, और पाण्डवोंकी पाठशालामें उसको शिक्षा सिखाई नहीं गई, परंतु उसने प्रतिदिन अविश्रांत रीतिसे अभ्यास करके कार्यही अपने दृढ़ निश्चय पूर्वक किये हुए परिश्रमसे ही शास्त्र विद्या प्राप्त की। यह बात भी इस नियमके अनुकूल ही सिद्ध हुई है। यह कथा महाभारतमें आदिपर्वमें पाठक देख सकते हैं।

इसी नियमसे जो उत्तम पाकज करेंगे वेही हरएक विषयमें प्रवीण बन सकते हैं। यहां चिकित्साका विषय है इसलिये इसमें प्रवीणता भी इसीमें कर्म करनेसे ही प्राप्त होती है। बहुत अनुभवसे ज्ञानी बना हुआ वैद्यही विशेष श्रेष्ठ समझा जाता है, अल्प अनुभवी वैद्य उतना श्रेष्ठ समझा नहीं जाता इसका कारण भी यही है।

कर्म करनेसे ही उसको श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है यह नियम सर्वत्र एकसा लागू है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें अश्विनौ पद है। यह अश्वनौका वाचक है। इससे पता लगता है कि चिकित्सकका यह व्यवसाय अश्वनौके व्यवसायोंमें संमिलित है। यहमें अश्वका विग्र या घोड़ेसे मिलना (ऋ मंडु ७ सू १२।८) कहा है इसमें भी यह विग्र वैद्य कहलाता है यह ज्ञात है। यहांके विग्र शब्दके साथ इस मंत्रके अश्विनौ शब्दकी संगति अच्छी बैठे इसी दृष्टि हो जाता है कि अश्वनौके व्यवसायोंमें चिकित्सा संमिलित है। जागीरदारोंके वैद्य विद्यामें प्रवीणताके चमत्कार प्रसिद्ध ही हैं। इस बातको देखनेसे इस विषयमें संदेह नहीं हो सकता।

यह सूक्त दाम्पत्य-व्यवहार-ज्ञान का सूक्त है। इस लिये रोगनिवारक अन्य सूक्तोंके साथ इसका अध्ययन पाठक करें।

दुर्गतिसे बचनेका उपाय ।

(१०)

(ऋषिः भृगुः अङ्गिराः । देवता निर्ऋतिः, द्यावापृथिवी, नानादेवताः)

क्षेत्रियात्त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् दुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागस ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १ ॥
श्व ते अग्निः सुहार्हिरस्तु श्व सोमः सहोषधीभिः ।
एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् दुहो मुञ्चा०।० ॥ २ ॥
श्व ते वातो अन्तरिक्षे वयां धान्छ ते मपन्तु प्रदिशश्चतस्रः । एवाहं०।० ॥ ३ ॥
इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वास्तपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं०।० ॥ ४ ॥
तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्मं एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाह०।० ॥ ५ ॥

अर्थ— (त्वा) तुझको (क्षेत्रियात्) शारीरिक रोगसे, (निर्ऋत्याः) कष्टोंसे (जामि—शंसात्) बंधुजनोंके अपराध उत्पन्न होनेवाले कष्टोंसे (दुहः) द्रोहसे (वरुणस्य पाशात् मुञ्चामि) वरुणके पाशसे छुडाता हूं । [त्वा ब्रह्मणा अनागसः कृणोमि] तुझ ब्रह्मके विशेष करता हूं, (उभे द्यावा—पृथिवी ते शिवे स्ताम्) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक तेरे लिए कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

(ते अग्निः सह अग्निः वै अस्तु) तेरे लिए अग्नि अग्निके साथ अग्नि कल्याणकारी हो । तथा (ओषधीभिः सह सोमः वै) ओषधियोंके साथ सोम तेरे लिए सुखदायी हो (एवं अहं त्वा क्षेत्रियात् मुञ्चामि) इस प्रकार ही मैं तुझको क्षेत्रिय रोगसे छुडाता हूं । ॥ २ ॥

(अन्तरिक्षे वातः) अन्तरिक्षमें संचार करनेवाला वायु (ते वयः च धात्) तेरेलिए बलयुक्त कल्याण देवे । तथा [चतस्रः प्रदिशः ते च मपन्तु] चारों दिशायें तेरे लिए कल्याणकारी हों । (एवं अहं) इस प्रकार मैं तुझको बचाता हूं । ॥ ३ ॥

(इमाः याः देवीः चतस्रः प्रदिशः) ये दिव्य चारों दिशाएं जो (वास्तु-पत्नीः) वास्तुकी रक्षा करती हैं, वे तथा (सूर्यः अभिविचष्टे) जो सूर्य चारों ओर देखता है वह तुझको कल्याणकारी होवे (एवं अहं) इस रीति से मैं बचाता हूं । ॥ ४ ॥

(तासु त्वा) उनमें तुझको (अन्तः जरसि आदधामि) मैं तुझशरीरके अंदर धारण करता हूं । तेरे पास से (यक्ष्मः निर्ऋतिः पराचैः प्र एतु) क्षयरोग तथा सब कष्ट पीछे मुंह करके दूर चले जांय । (एवं अहं) इस प्रकार मैं तुझे बचाता हूं । ॥ ५ ॥

भावार्थ— शारीरिक रोग आपत्ति कष्ट बंधुजनोंके ऐसे द्रोहसे होनेवाले कष्ट ईश्वरीय नियम तोडनेसे होनेवाले वरुण आदि रूप दुर्गतियोंसे निर्भय होकर पवित्र बननेका एकमात्र उपाय ब्रह्म ही है दूसरा उपाय नहीं है ॥ १ ॥

इस ब्रह्म से ही द्युलोक अन्तरिक्षलोक और पृथ्वी लोक के अन्तर्गत संपूर्ण पदार्थ अर्थात् जल अग्नि, ओषधियां सोम वायु, सब दिशाओंमें रहने वाले सब पदार्थ सूर्य आदि सब लोक हितकारक और सुखदायक होते हैं आलस्य छोडकर स्वादियोंसे इनसे अपने कष्टोंको दूर करते हैं ॥ २-४ ॥

अमुंकथा यक्ष्मांद् दुरितादंवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याः पेदमुंकथाः। एवाह०।०॥ ६ ॥
अहा अरांतिमविदः स्योनमर्प्यभूद्रे सुंकृतस्य लोक। एवाह०।० ॥ ७ ॥
सूर्यमृत तमंसो ग्राह्या अधि वेदा मुञ्चन्तो असृजन्निरेंणसः।
एवाह त्वां धेंत्रियाभिर्धेत्या जामिंशसाद् द्रुहो मुंञ्चामि वरुंणस्य पाशांत्।
अनागंस ब्रह्मणा त्वा कृणोमि क्षिवे ते द्यावांपृथिवी उभे स्तांम् ॥ ८ ॥

अर्थ-(यक्ष्मात्) सब रोगसे (दुरितात्) पापसे (अवद्यात्) निंदनीय कर्मसे, (द्रुहः पाशात्) द्रोहके बंधनसे (ग्राह्याः) जकड़ने वाले संक्लेशोंसे तू (अमुष्याः) मुक्त हुआ है, (उत् अमुष्याः) तू छूट चुका है। [एव अहं] ऐसे ही मैं तुझे छुड़ाता हूं। ६॥

[अ-रांतिं अहाः] कृपणताको तूने छोड़ा है, [स्योनं अविदः] सुखको तूने पाया है। (अपि सुकृतस्य भद्रे लोके अभूः) और भी पुण्यकारक आनंददायी लोकमें तू आया है। [एव अहं] ऐसे ही मैं तुझे बचाता हूं। ७॥

(देवाः) देवोंने [तमसः ग्राह्याः] अंधकारकी पकड़से तथा [एनसः अधि मुञ्चन्तः] पापसे मुक्त करते हुए (अत सूर्यं निः असृजन्) सब प्रकारसे सूर्यको प्रकट किया है, (एव अहं) इसी प्रकार मैं तुझे बचाता हूं ॥ ८॥

भावार्थ- इसी ज्ञानसे मैं तुझे पकड़नेवाली पूर्ण रोग आपत्तिसे छुड़ाता हूं। इसी ज्ञानसे तेरे पाप सब रोग दूर भाग जावेंगे ॥ ५ ॥

कृपणता पाप निंदकर्म, द्रोहके पाश संक्लेशात्मक आदि सब आपत्तियोंसे तू इसी ज्ञानसे मुक्त हो सकता है और मैं भी इसी ज्ञानसे तुझे छुड़ाता हूं ॥ ६ ॥

इस ज्ञानसे ही तू अपने अंदरकी कृपणता छोड़ और सुखरूपसे प्राप्त होनेवाले सुखरूप भद्रलोक को प्राप्त कर। मैं भी इस ज्ञानसे ही तुझे अभिषिक्त बनाता हूं ॥ ७ ॥

जिस प्रकार सूर्य अंधकारको हटाकर स्वयं अपना उदय करता है इसी रीतिसे चन्द्रादि अन्य देव भी सब अंधकारको दूरकर करते हुए स्वयं अपने उदयसे प्रकाशित होते हैं इसी तरह हम अपने पुरुषार्थसे अपने पाप दूर करके ज्ञानसे यहां सबके अपना उद्धार करें क्योंकि यही एक उन्नतिका सच्चा सुखदायक है ॥ ८ ॥

दुर्गतिका स्वरूप।

इस सूक्तमें दुर्गतिका वर्णन विस्तारसे किया है और उससे बचनेका विधि उपाय भी उपदेशसे परंतु विशेष जोर देकर कहा है। अनेक आपत्तियोंसे अपना बचाव करने और अपना अभ्युदय करनेका विधिपूर्वक उपाय आगे मंत्रोंमें बहुत अच्छा कहा गया है। और वह हर एक को विशेष मनन करने योग्य है। इस सूक्तमें जो दुर्गतिका वर्णन किया है वह उससे संक्षिप्त रीतिसे—

१ यक्ष्मात्—सब रोगोंसे प्राप्त होनेवाले रोग अपकीर्ति अपयशोंसे अति आपत्तियां। ये उत्पन्न हो दूसरे सब ही उपद्रव आते हैं। (मं १)

२ निर्ऋतिः—संसार निंदित अशोभन अवगतिसे दूर पापकर्मोंका फल न होना दुरवस्था दारिद्र परिस्थिति। ऐसे पापी दुःख विपाक आदिक कारण होनेवाला हीन स्थिति। (मं १)

३ जामिशंसात्- इसमें दो शब्द हैं जामि+शंसात्। इसके अर्थ ये हैं जामि अपना बांधव। अन्य। अपनी। कुटुंबकी स्त्री। दुष्ट। ये अर्थ ए ६ अर्थ बेजोड़ हैं। अब एक एकके अर्थ पर पृथक् पृथक् करना चाहिये। शंस का अर्थ अशुभ कर्म जो अनेक अनर्थोंका मूल है। इन दोनों अर्थोंका मेल करनेसे यह अर्थ निकला

प्रकार बन सकता है 'नातेके कारण आनेवाली आपत्ति या दुर्गतिसे होनेवाला संकल्प या कल्प' इसी। इसी प्रकार अन्यान्य अर्थ भी पाठक विचार करके कर सकते हैं परंतु अर्थोंमें आपत्ति या कष्ट का प्रसंग अवश्य आवेगा, क्योंकि विपत्ति दोष आदिके वर्णनमें यह 'आभिवंश' शब्द आया है इसलिए इसका आपत्ति दुर्गति अर्थही यहां अपेक्षित है। (मं १)

२ हुवः = होह आह पाह विचार देकर बात करना। (मं १)

५ परमस्य पाराः = परम नाम मेरु परमेश्वरका है। उससे जो दूर है उसको परम कहते हैं। उस परमेश्वरके पास कुछ जगहमें कैसे हैं और उनसे कुकर्मी पुरुष बचे जाते हैं। जगत्में उस परमात्माकी ऐसी व्यवस्था है कि दुरे कर्म छल बल कर होकर दुराचारीको बांध लेते हैं और उससे बचा हुआ वह मनुष्य आपत्तिमें पड़ता है। (मं १)

६ वसः = क्षय रोग क्षोभ करनेवाला रोग। (मं ५)

७ दुरित = (दुः+इत) जो दुरता अंदर घुसी होती है। मन बुद्धि इंद्रिय और शरीरमें जो विजातीय दुष्ट भाव या कर्म घुसे होते हैं जिनसे उक्त स्थानोंमें विघ्न होकर कष्ट होते हैं उन का नाम दुरित है। यही पाप है (मं ६)

८ अवद्य = निंदा करने योग्य। जिससे अपकीर्ति होती है आपत्ति आती है, और कष्ट होते हैं उसका यह नाम है (मं ६)

९ ग्राही = जो पकड़ कर रखता है, छोड़ता नहीं जिससे मुक्त होना कठिन है। शरीरमें संधिवात आदि रोग जो जोड़ों को पकड़ रखते हैं। मनमें विषयासक्ति आदि और बुद्धिमें आसुरिक विपरीतता आदि हैं। (मं ६)

१ अराति = (अ+राति) अनुदारता, कृपणता कंजूसी। (म ०)

११ तमः = अज्ञान अंधकार आलस्य। (मं ८)

ये शब्द मनुष्यकी दुर्गतिका स्वरूप बता रहे हैं। इन शब्दोंका शारीरिक इंद्रियविषयक मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक अवनतिके साथ संबंध यदि पाठक विचार पूर्वक देखेंगे तो उनको पता लगा जायगा कि इस दुर्गतिका कितना बड़ा अंश मानव समाजमें हो रहा है और इस अधोगतिसे बचनेके लिये कितनी दृढ़ताके साथ कमर कसके तथा दृढ़ताके साथ कर्म करना चाहिये। मनुष्यके मन बुद्धि चित्त अहंकार इंद्रियगण तथा शारीरिक व्यवहारमें इस दुर्गतिके नाश करनेका संचार देखकर विचारी मनुष्यका मन चक्करमें आता है और वह अपने कर्तव्यके विषयमें मोहित सा हो जाता है उसको इस दुर्गतिके सामान्यसे वचनेका उपाय नहीं सूझता, ऐसी अवस्थामें यह सूक्त उस मूढ़ बने मनुष्यसे कहता है कि हे मनुष्य! क्यों मूढ़ बना है, मैं इस मानसे तुम्हें बचाता हूं और तुम्हें निर्दोष अर्थात् पवित्र भी बनाता हूं।' (म १)

एकमात्र उपाय।

आपत्तियां अनंत हैं। यद्यपि पूर्वोक्त ग्यारह शब्दों द्वारा इस सूक्तमें आपत्तियोंका वर्णन किया गया है तथापि ग्यारह शब्दों द्वारा मानो अनन्त आपत्तियोंका वर्णन होचुका है। इन अनन्त क्लेशोंसे बचनेका एकमात्र उपाय है और वह इस सूक्त के हर एक मंत्रमें यह शब्दसे बताया है। प्रत्येक मंत्रमें—

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

.. तुम्हें छुड़ाता हूं और तुम्हें ज्ञानसे निर्दोष करता हूं। यह वाक्य पुनः पुनः कहा है। बारंबार इसके कारण इस बातपर विशेष बल दिया है यह स्वयं स्पष्ट है। दुर्गतिग्रस्त मनुष्यका बचाव करनेवाला एक मात्र उपाय 'ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्मज्ञान ही है। ज्ञानसे ही मनुष्य बच सकता है और अज्ञानसे गिरता जाता है। जो अवनति, जो पतन, जो संकटसे मुक्ति होती है वह ज्ञानसे ही होती है। परम पुरुषार्थ द्वारा अपना अभीष्ट साधन करना भी ज्ञानसे ही साध्य हो सकता है। ज्ञानहीन मनुष्य किसी भी प्रकार उन्नति नहीं कर सकता।

ज्ञानका फल।

ज्ञानसे क्या क्या हो सकता है इसका वर्णन करना कठिन है क्योंकि ज्ञानसे ही सब कुछ उन्नति होती है। अर्थात् ऐसा कोई ऐसा नहीं है कि जो बिना ज्ञानके सिद्ध हो सकता है। तथापि इस सूक्तमें ज्ञानसे जो कुछ सिद्ध किया जा सकता है उसका

संक्षेपसे वर्णन किया है। अब इसी बातका विचार करेंगे। यज्ञशालाका पहिला खम्भा यह है-

(१) ऋचे वाचाधुविकी ते त्विषे स्वाम्। (मं १)

'पृथ्वीलोक और पृथ्वी लोक के तेरे लिये कल्याणकारी खम्भा हों' अर्थात् जो यज्ञशालासे युक्त है उसके लिये पृथ्वीसे लेकर द्युलोक पर्वतके सब पदार्थ खम्भारी होंगे। पृथ्वीसे लेकर द्युलोक पर्वतके सम्पूर्ण पदार्थ अपने लिये कल्याणकारी बनानेकी क्रिया अवश्य ज्ञानी मनुष्यको ही प्राप्त होती है। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह बड़ी भारी प्रबन्धशक्ति है कि जो ज्ञानीको प्राप्त होती है। द्युलोकसे लेकर पृथ्वी पर्वतके सब पदार्थ उसके वशवर्ती होकर उसका हित करने में तत्पर रहते हैं। यह अद्भुत सामर्थ्य ज्ञानीही प्राप्त करता है।

(२) अग्निः सह अग्निः खम्॥ (म २)

अग्निके साथ अग्नि कल्याणकारी होता है ज्ञानी मनुष्य ही अग्निसे तथा अग्नि से -दोनोंके संयोगसे या वियोगसे- अपना काम कर सकता है, अपनेका भला कर सकता है।

(३) ओषधीभिः सह सोमः खम्। (मं २)

ओषधियोंके साथ सोम सुखकारी होता है। सोम एक बड़ी भारी प्रभावशाली औषधि है यह वनस्पति सब ओषधियोंका राजा कहलाती है। सोम और ओषधियों से प्राणिमात्र का हित साधन करनेका ज्ञान वैद्यशास्त्र में कहा है। नानाप्रकार के रोग दूर करनेके लिये ओषधियोग उस शास्त्र में कहे हैं और वह विद्या आजकल प्रचलित भी है। इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। पूर्वोक्त मन्त्रोंमें जो रोगनिवारक कहे होते हैं वे सब इस विद्यासे दूर होते हैं। अग्निचिकित्सा और अग्निचिकित्सा भी इसी में अंतर्भूत है।

(४) अन्तरिक्षे वातः खधा ते वातः। (मं २)

'अन्तरिक्षमें संचार करनेवाला वायु आरोग्य पूर्ण सुख देनेवाला होता है। विद्युत से ही वायु कल्याणकारी हो सकता है। दीर्घजीवन प्राणायाम इस विद्याका पोषक है। प्राणायाम करनेवाले योगी वायुसे अलौकिक बल प्राप्त करते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। आरोग्य शास्त्रके सब नियम इस मन्त्रमें अन्तर्भूत हैं। वायुशुद्धि द्वारा आरोग्य संपादन करने का विषय इस में आता है। रोगनिवारक तथा रोग प्रतिबंधक होम इत्यादि यह सब इस विद्याके अन्तर्गत हैं।

(५) देवीः चतस्रः प्रदिशः वातपत्नीः ते खम्। (मं ३,४)

' दिव्य चारों दिशाएं, जिनमें वायुका पालन होता है तेरे लिये सुखकारक होवे। चार दिशाएं और चार उपदिशाएं अर्थात् उनके अन्दर रहनेवाले सब पदार्थ ज्ञानसे ही मनुष्यके लिये कल्याणकारी होते हैं। इसका मर्म पूर्वमन्त्र ही समझना योग्य है।

(६) सूर्यः अग्निर्भिषक्। (मं ४)

सूर्य जो चारों ओर प्रकाशता है वह भी ज्ञानसे तेरे लिये अनुकूल हो सकता है। सूर्य प्रकाशसे मनुष्य मात्रको अनंत लाभ होते हैं। इस विद्याको जो जानते हैं वे इससे अपना लाभ कर सकते हैं।

(६) त्वा जरसि अन्तः आदधामि। (मं० ५)

तुझे अतिशय वायुके अंदर धारण करता हूं' अर्थात् ज्ञानसे तेरी आयु अति दीर्घ हो सकती है। ज्ञानसे जीवनके सुविचार ज्ञात होते हैं और उनके पालनसे मनुष्य दीर्घायु हो जाता है।

(७) यक्ष्मः निर्बाधितः परायैः पशु। (मं ५)

यक्ष्मा आदि रोग तथा अन्यान्य आपत्तियां ज्ञानसे दूर होती। ज्ञानसे आरोग्य संपादन के सब नियम ज्ञात होते हैं और उनके पालन से मनुष्य नीरोग होकर सुखी होता है।

(८) यक्ष्मात्, दुरितात्, अवद्यात्, दुष्वप्न्यात्, पाप्मनः च अनुकथाः अवद्यन्तु। (मं ६)

'ज्ञानसे यक्ष्म रोग पाप निंद्य कर्म दुष्ट स्वप्न अकीर्ति आदिसे मुक्ति होती है। अर्थात् इनके बन्ध दूर होते हैं। यह बात पाठकोंके ध्यानमें पूर्ववत् आजायगी।

(२) स्योनं अधिहवः (मं ०)

सुख प्राप्त होना ज्ञानसे ही उत्तम और सच्चा सुख प्राप्त होता। पृथ्वीसे लेकर द्युलोक पर्यन्तके सभी पदार्थ ज्ञानसे समझमें होते हैं और उस कारण सुख प्राप्त होता है। यह मानवी अभ्युदय की परम सीमा है। इसीको कहते हैं–

(३) सुकृतस्य लोके अधि । (मं ०)

सुकृतके फलस्वरूप पूर्ण स्वातंत्र्य मिलता होना। ज्ञान से ही सुकृत किये जाते और उस सुकृतोंके कारण मनुष्यकी उत्तम गति होती उसको अक्षय भोग अवस्था प्राप्त होती। ज्ञानसे ही उस अवस्थाकी इतनी उन्नति होती कि वहाँ मूलोक उत्पन्न हो जाता। सब ज्ञानके प्रकारसे इतना श्रेष्ठ है इसलिये हरएक वैदिकधर्मी आर्यको उसका प्रकार करना चाहिये।

उक्त ज्ञानके ये दस फल इस सूक्तमें कहे हैं। सब उन्नतिका यह मुख्य साधन है। इसके बिना अन्य साधन रहे तो भी उनसे कोई लाभ नहीं होता। इसलिये पाठक ज्ञानको उन्नति का मुख्य साधन मानकर ज्ञानार्जन और ज्ञानदान के विषयमें परिश्रम करें। अब इस सूक्तमें जो उन्नतिका मार्ग बताया है वह यहां देखिये–

उन्नतिका मार्ग ।

अष्टम मंत्रमें एक विलक्षण अपूर्व अलंकार के द्वारा उन्नतिका मार्ग दर्शाया है वह भी यहां अब देखना चाहिये

तमसो मायया अधिसुजातः देवाः अहः पूर्वं
एतसः असृजन् ॥ (म ८)

जिस प्रकार अन्धकारकी पकड़से छुड़ाते हुए सब देव सब उठनेवाले सूर्यको अधोअवस्थासे ऊपर प्रकट करते हैं।'

अलंकार की भाषा ।

इस अष्टम मंत्रमें एक अलंकार है। सूर्य और अन्य देवोंका अन्योन्ति अलंकार से एकत्र करके यहां वर्णन किया है। वेदमें सूर्य और चन्द्र विषयक कई रूपक आते हैं उनमें यह विशेष महत्व का रूपक है। यह रूपक [illegible] प्रकार देखना चाहिये—

चन्द्र रूपी पुरुष पाक्य रात्री जाती माता करती है और सूर्य रूपी बालक का पालन दिवसरूपी आती माता करती है। प्रारंभमें सूर्य अंधेरेमें दबा रहता है, उसी प्रकार वह भी अति अन्धकार में दबा रहता है। मानो इसको मार्ग दिखानेका कार्य अन्य देव अर्थात् उस समय पृथिवी वायु आदि सभी देवताएं करती हैं। सूर्य सदा ऊपर उठनेका यत्न करता ही रहता है, अंतमें वह ऊपर आता है उसको प्राप्त होता है प्रतिक्षण अधिकाधिक चमकने लगता है और मध्यान्हमें ऐसा चमकता है कि इस समय उसके अतिरिक्त तेजमें कोई सहन कर नहीं सकता। इसी प्रकार चन्द्र भी अपनी छोटी अवस्थासे प्रगति करता हुआ पूर्णिमामें अपना पूर्ण विकास करता है।

अन्य प्रकारसे उन्नति करनेवाले की इस ढंगसे उन्नति होती है यह दर्शाया इस रूपक का तात्पर्य है। जो कार्य अन्य नहीं करेंगे उनकी उन्नति होना कठिन है। दूसरोंकी सहायता भी तब तक सहायक नहीं होती जब तक [illegible] अपना प्रयत्न उसमें सम्मिलित नहीं होता। यह उन्नतिका मूल मंत्र है।

स्वकीय प्रयत्न ।

इस मंत्रमें अहः पूर्वं एतसः सुम्नवः अर्थात् सब चलनेवाले सूर्य को ही देव अंधकारसे मुक्त करते हैं ऐसा कहा है। यदि सूर्यमें स्वयं अपना प्रयत्न न होता तो न उसका अन्धकारसे मुक्त कर यही सकते। इसी प्रकार मनुष्य भी जो स्वयं अपना उद्धारका यत्न रात्रिदिन करता रहता है उसीको अन्य गुरुजन सहाय्यकारी होते हैं।

इस रीतिसे विचार करनेपर पता लग सकता है कि इस मंत्रमें अहः पूर्वं बहुत महत्वका भाग बता रहा है देखिये इसका आशय। अहः = ज्ञान ठीक वक्त इसका करनेवाला आत्मा। प्रमादशील मनुष्य सब विषय ईश्वरीय नियम, सृष्टि व्यवस्थित कर्मफल अदल विदल दिव्य शक्तियां।

जो (ऋतं) सत्य नियम पालन करता है वही अंधकारके परे जा सकता है और जो स्वयं प्रयत्न करता है उसीको दूसरे सहायता कर सकते हैं। सूर्य स्वयं प्रकाशमान है उदय होना चाहता है नियम पूर्वक प्रयत्नशील है, इसलिये उदयको प्राप्त होकर ऐसा तेजस्वी बनता है, कि सब अन्य तेज उसके सामने फीके हो जाते हैं। जो मनुष्य ऐसा प्रयत्न करेगा वह भी वैसा ही प्रभावशाली बनेगा।

वायु अग्नि नक्षत्र आदि अपने देव विद्वान् और आदि मानवोंके अंदरके देव तथा इंद्रियगण ये शरीरस्थायी देव सभी पुरुष की सहायता करते हैं कि जो स्वयं सत्यनियम पालनमें सदा दक्ष रहता है और स्वयं अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करनेका प्रयत्न करता रहता है। पापसे मुक्त होकर निर्दोष बनना पारतंत्र्यके बंधसे मुक्त होकर स्वयं शासित होना ऐश्वर्यमुक्त होकर वीरोचित होना अपमृत्युके बंधनसे छूटकर दीर्घायु होना आदि उसके लिये स्वयं सत्य-पालनी होना अत्यंत आवश्यक है। यही ऊपरके मंत्रमें ऋतं शब्द द्वारा बताया है। जो सत्य पालनी होता है वही बंधनोंको विनष्ट कर सकता है पापोंको दूर कर सकता है और सूर्यके समान अपने तेजसे प्रकट हो सकता है। इस प्रकार यह मंत्र अत्यंत महत्व पूर्ण उपदेश दे रहा है इसलिये इस दृष्टिसे पाठक इसका अधिक विचार करें।

प्रार्थना का बल।

वेदमें ब्रह्म शब्दका दूसरा अर्थ स्तोत्र स्तुति प्रार्थना भी है। जो प्रार्थना बोधक वैदिक सूक्त हैं उनके पुरुष स्वरूपसे दूसरे भी अर्थ होते हैं परन्तु उनका स्तुत्यर्थ या प्रार्थना रूप अर्थ हटाया नहीं जा सकता। ईश प्रार्थना से बल प्राप्त करना या अपने बलका विकास करना प्रार्थनासे आत्मिक बल प्राप्त करना वैदिक धर्मका प्रधान अंग है। इसीलिये प्रारंभ से अंत तक वेदके सूक्तोंमें उन्हीं सूक्त प्रार्थना के हैं। जो आज पश्चिमवासी आकर दिन दोपहर ईश प्रार्थना करना जानते हैं वेही प्रार्थना का महत्व समझ सकते हैं अन्य लोग उसकी शक्ति नहीं जान सकते। इस लिये यहां कहना इतना ही है कि रोगादि आपत्तियोंकी निवृत्तिके लिये जितना उपयोग औषधादि प्रयोगों का हो सकता है उससे कई गुना अधिक लाभ ईश प्रार्थना से हो सकता है। यह मानो एक प्रार्थना-योग ही है। अष्टांग योग से 'प्रार्थना योग' अधिक बलवान है। दुःखकी बात आजकल यही हो रही है कि, लोग प्रार्थना का महत्व नहीं समझते और उस से होने वाले लाभसे वंचित ही रहते हैं! यह बड़ी भारी हानि है।

इस सूक्तमें ब्रह्म शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। ईश गुणवर्णन ईश गुणगान करते करते जिसका मन प्रभुके गुणोंमें तल्लीन हो जाता है वह सपूर्ण आपत्तियोंसे दूर हो जाता है क्योंकि वह उस समय अमृत अक्षय रस का आस्वाद लेता हुआ सुख सुख हो जाता है। पाठक इस दृष्टिसे इस बातका विचार करें और अनुभव भी लें।

मनको धीरज देना।

यदवे मे मुहाता इत्यादि प्रकार कई वाक्य हैं ये वाक्य मानस चिकित्सा या मानसिक चिकित्सा के सूचक हैं। अपने अंदरके आरोग्य पूर्ण विचार अपनी आत्म शक्तिकी प्रेरणासे अपने शब्दों द्वारा रोगीके निर्बल मनमें प्रादुर्भूत करनेसे यह चिकित्सा साध्य होती है। इसमें रोगीके चित्त मनको धीरज देना होता है। इस क्रमसे—

१ त्वा अभिवाद् मुञ्चामि। (मं १)
२ त्वा ब्रह्मणा अजरसे शृण्वेमि। (मं १)
३ त्वा जरसि अन्त आदधामि। (म ५)
४ यस्मात् अयक्ष्मा (मं ६)
५ प्राणाः अपानाः ।(म ६)

ऐसे वाक्य बोलकर रोगीका धीरज देना होता है जैसा —(१) तुझको अभिवाद रोगसे मुक्त करता हूं। (२) तुझे ईश प्रार्थना द्वारा निरोग करता हूं। (३) तुझको अंते दीर्घ आयुष्यका करता हूं। (४) तू अब यक्ष्म रोगसे मुक्त हुआ है। (५) जकड़नेवाले रोगसे तू अब पार हो गया है। इत्यादि प्रकारके वाक्योंसे रोगीका धीरज धरकर उसके मनका आत्मिक बल बढ़ाकर और उसमें दृढ़ विश्वास पैदा करके आरोग्य उत्पन्न करना होता है। यह बड़ा भारी गहन विषय है। जो पाठक इस प्रार्थना का बल जानते हैं वेही इस बातको समझ सकते हैं।

परमेश्वर पर जो दृढ विश्वास रखते हैं जबकी उपासना करते हैं, उसकी भक्ति करने में जिनको प्रेम आता है, उनके पास बीमारियां कम आती हैं। पाठक देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि परमेश्वर के विश्वासी प्रायः अक्सर में मस्त रहते हैं और अविश्वासी ही रोगी होते हैं।

पाठक यह विश्वास का बल अपने में बढ़ावें और अपना अत्यधिक काम करें।

यह सूक्त भी तत्त्वसाधन पक्ष का है और यह इस पक्षके अन्य सूक्तों के साथ पढ़ने योग्य है।

—:—

आत्माके गुण

(११)

(ऋषिः-शुक्रः। देवता-कृत्यादूषणम्)

दृष्या दूरिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥
सक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रस्पशेचरणोऽसि। आप्नुहि० ॥ २ ॥
प्रति तमभि चर योऽस्मान्द्वेष्टि य वय द्विष्मः। आप्नुहि० ॥ ३ ॥
सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि। आप्नुहि० ॥ ४ ॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ५ ॥

अर्थ—(दृष्याः दूरिः असि) दोष को दूर करनेवाला अर्थात् दोषरूप दोषोंको दूर करनेवाला तू है। (हेत्याः हेतिः असि) हनिवालेका हननेवाला तू है। (मेन्याः मनिः असि) वज्रका वज्र तू है। इसलिये (श्रेयांसं आप्नुहि) श्रेष्ठ कल्याणको प्राप्त कर और (समं अतिक्राम) अपने समानोंसे अधिक आगे बढ़ ॥ १ ॥

(सक्त्याः असि) तू गतिशील है (प्रतिसरः असि) तू आगे बढ़नेवाला है, (प्रस्पशेचरणः असि) तू दुष्टताका दमन करनेवाला है। ॥ २ ॥

(यं प्रति अभिचरं) उसपर चलाईहुई कि (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो अपना द्वेष करता है तथा (यं वयं द्विष्मः) जिस अपने का हम द्वेष करते हैं। ॥ ३ ॥

(सूरिः असि) तू ज्ञानी है (वर्चोधाः असि) तू तेजका धारण करनेवाला है तथा (तनूपानः असि) शरीरका रक्षक तूही है। ॥ ४ ॥

(शुक्रः असि) तू वीर्यवान् अथवा शुद्ध है (भ्राजः असि) तू तेजस्वी है (स्वः असि) तू आत्मिक शक्ति से युक्त है (ज्योतिः असि) तू तेज स्वरूपी है इसलिये तू श्रेष्ठ प्राप्त कर और समानोंसे आगे बढ़ ॥ ५ ॥

भावार्थ-आत्मा दोषोंका दोष हटानेवाला है यही वज्रोंका महावज्र और शस्त्रोंका महा शस्त्र है ॥ १ ॥
आत्मा प्रगति करनेवाला है आगे बढ़नेका उसका स्वभाव है, और दुष्टताका दूर करनेवाला है ॥ २ ॥
जो अपना शुद्ध रूप बदलनेको उद्यत है और जिस अपने शुद्धरूप पर आक्रमण किया करते हैं। उसपर हम है ॥ ३ ॥
तू ज्ञानी है तेजका धारक है, शरीरका तथा रक्षक तूही है ॥ ४ ॥
तूही शक्तिमान् है तूही तेज है तथा आत्मिक बलसे युक्त है तू स्वयं प्रकाशरूप है इसलिये तू प्रकाश आगे बढ़ और सि अपने अपना सुधि अच्छ कर ॥ ५ ॥

शरीरमें आत्माका कार्य।

अनुवाकार शरीरमें निर्गुण निराकार आत्माके गुण प्रत्यक्ष करवाके उपरांत इस सूक्तमें किया है। वे गुण अब देखिये–

(१) कृष्णः सूचि अस्ति–दोषयुक्त को दोष देनेवाला अर्थात् दोषका दूर करनेवाला है। देखिये, अपने शरीरमें ही इस बातका अनुभव लीजिये। अपना शरीर मजबूत होता हुआ भी उसको जीवित रखना है और इसीका मरनेपर इसने बनाया है। खानेवाले शरीरको न खानेवाला, मरनेवाले शरीरको जीवित रखनेवाला दोषयुक्त शरीरसे निर्दोष आनंदधाम प्राप्त करनेवाला यह आत्मा है। (मं १)

(२) हेतायः हेतिः, मेन्याः मेनिः अस्ति = वज्रोंका वज्र और शस्त्रका शस्त्र यह आत्मा है। शत्रुका नाश शस्त्र करता है परंतु शस्त्रको चलानेवाला अर्थात् शस्त्रका भी शस्त्र यह आत्मा शस्त्रके पीछे न होता तो शस्त्र कैसे शत्रुका नाश करेगा? इससे आत्माकी प्रेरक शक्तिका महत्व ज्ञात हो सकता है। (मं १)

(३) शतवाः अस्ति = आत्मा शतक्रतु है। शत–सततसमर्थ (सतत शक्ति करना) इस धातुसे यह आत्मा शब्द बनता है। सतत प्रयत्नशीलताका यह द्योतक है। यही भाव इस शब्दमें है। छोटे बालकमें क्या अथवा बड़े मनुष्यमें क्या सतत प्रयत्न दीखता है। कोई भी चुपचाप बैठना नहीं चाहता उद्यमसे अपनी उन्नति करनेकी इच्छा हरएक प्राणीमें स्पष्ट है। (मं २)

(४) प्रतिशूरः अस्ति = आगे बढ़नेवाला शत्रुपर हमला करके उसको दूर करनेवाला अथवा अभ्युदय करनेवाला है। आत्मा इन्द्र है और वह उसे अपने शत्रुका पराभव करता ही है। (मं २)

(५) प्रसहिष्णुः अस्ति = दुष्ट शत्रुको पराभूत करनेवाला। (यह शब्द भी पूर्व शब्दके समान भावयुक्त ही है।) (मं २)

यहांतक इन दो मंत्रोंके इन पांच शब्दों द्वारा आत्माके जन गुणोंका वर्णन हुआ है कि जिनका बाहरके शत्रुओंसे संबंध है। अब आत्माके आभ्यंतरिक स्वकीय निज गुणोंका वर्णन चतुर्थ और पंचम मंत्रके द्वारा करते हैं–

(६) सूरिः अस्ति = तू ज्ञानी है। आत्मा चित्स्वरूप होनेसे ज्ञानवान है अतः एव सब यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। (मं ४)

(७) वर्चो धाः अस्ति = तेज बल ओज आदिका धारण करनेवाला है। शरीर में जब तक आत्मा रहता है तब तक ही इस शरीर में तेज बल ओज आदि रहता है यह हरएक जान सकते हैं। (मं ४)

(८) तनू–पाः अस्ति = शरीरका रक्षक है। जबतक आत्माका निवास इस शरीरमें रहता है तबतक ही शरीरका रक्षण उत्तम प्रकार होती है। जब यह आत्मा इस शरीरसे चले जाता है तब शरीर सड़ने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि शरीरका क्या रक्षक यह आत्मा है। (मं ४)

(९) शुभः अस्ति = शोभायुक्त, सुंदर तथा शुद्ध है। आत्माका ही शुभ्र (यजु ८।८ में) कहा है। इसलिये इसका अधिक विवरण करना आवश्यक नहीं है। (मं ५)

(१०) भ्राजः अस्ति = तेजस्वी है अर्थात् इंद्रियोंको प्रकाश देनेवाला है। आत्मा ही उनका प्रकाशक है वह मध्यमें रहता हुआ सबको तेजस्वी बनाता है। (मं ५)

(११) स्वः अस्ति = आत्मिक बलसे युक्त है (स्व+र्) अपने निज बलसे युक्त है। अर्थात् वह स्वयं प्रकाश है। (मं ५)

(१२) ज्योतिः अस्ति = स्वयं ज्योति है। प्रकाश स्वरूप है। (मं ५)

ये सब शब्द आत्माका स्वभाव धर्म बता रहे हैं। मनुष्य स्वयं अपने आपको अज्ञात निर्बल अंधकार और पूर्ण पराधीन मानता है और अज्ञानसे वैसा अनुभव भी करता रहता है। इन सूक्त मंत्रोंके स्वभावगुणधर्म बताये हैं। जिनके विचारसे पाठकोंको विदित होगा कि वह आत्मा निर्बल नहीं है। इसमें भी वैसेही प्रभावशाली गुण भरे हैं कि जैसे परमात्मामें हैं। वह आत्मा ज्ञानी पुरुषोंमें प्रत्यक्षरीति स्वयंज्योति प्रभावशाली बलवान् तथा शरीर रक्षक है। इसलिये अपने आपको सदा पराधीन कमजोर मानना और समझना छोड़ दो। यद्यपि यह सत्य है तथापि इसकी शक्ति विषयों की अपेक्षा बहुत ही बड़ी है।

जिस समय अपने अंदर निर्बलताओं घर करती है उस समय यदि पाठक इस सूक्तका मनन करेंगे और इस सूक्तके भावोंको अपने आत्मामें प्रकट देखेंगे तो उनके मनकी कमजोरी दूर हो जायगी और वे इस सूक्तके बलसे निःसंदेह ही बन्धुत्व कि श्रेयस प्राप्त करनेमें योग्य बलवान् बन जायेंगे। आत्मशक्तिका वर्णन करनेवाले जो अनेक सूक्त हैं उनमें यह विशेष महत्वका सूक्त है। यह अत्यंत सरल और बड़ा भावपूर्ण होनेसे बहुत मनन करने योग्य है। यह सूक्त निर्बलोंको भी बलवान् बना सकता है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि ' उस शत्रुको दूर कर जो अनेकों को सताता है। इस मंत्रमें यह बात विचार करने योग्य है कि शत्रुता करनेवाला एक है सतानेवाला एक है और सताने आनेवाले अनेक हैं। अल्प संख्याकों के द्वारा बहु संख्याकों को कष्ट होनेकी संभावना इसमें है। ऐसे प्रसंगमें शत्रुको दूर करना ही योग्य है। जो दुर्जन अनेक सज्जनों को सताता है वह निःसंदेह दण्डनीय है।

श्रेय प्राप्ति।

इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रका द्वितीय चरण एकसा ही है। वह यह है—

आप्नुहि श्रेयांस समतिक्रामं ॥ [मं १–५]

' समान लोगोंके आगे बढ़ और परम कल्याण प्राप्त कर ' यह इस वाक्य का सार है। अब प्राप्त कर वह श्रेय वैदिक धर्म का श्रेय है, मुक्ति मोक्ष निर्वाण श्रेय विश्रेयस आदि सब एक ही भाव बता रहे हैं। वैदिक धर्मने यही श्रेय सबके सामने रखा है। इस श्रेय की विधि प्राप्त करनेके लिए ही इस सूक्तमें आत्माके गुप्त उपासकोंको विशेष लिए हैं। इन गुणोंका मनन करता हुआ आत्मा उन्नतिके पथसे आगे बढ़ता हुआ निःश्रेयस तक पहुंच जाय। इसका मार्ग यह है—

उन्नतिका मार्ग

इसकी उन्नतिका मार्ग एक ही वाक्यसे बताया है वह चिरस्मरणीय वाक्य यह है—

सम अतिक्रामम । [मं १—५]

अपने समान योग्यता वाले लोगोंसे आगे बढ़। यह मार्ग है। जब यह प्रथम श्रेणीमें पढ़ता हो तो वह निश्चय कर ले रखे कि प्रथम श्रेणीमें रहनेवालोंसे आगे बढ़ें अब द्वितीय श्रेणीमें पहुंचे तब यही विचार मनमें धारण करे कि मैं द्वितीय श्रेणीवालोंसे आगे बढ़ें। इस प्रकार अपनी श्रेणीवालोंसे आगे बढ़ता हुआ यह अपनी उन्नतिका साधन करे।

अपनी उन्नतिका तो साधन हर एक को करना ही है परंतु उस उन्नतिके साधन के लिये अपनी श्रेणीवालोंसे आगे बढ़नेका ध्येय सामने रखना ही उचित है। प्रथम श्रेणीमें पढ़नेवाला प्रथम श्रेणीवालोंसे आगे बढ़नेकी महत्वाकांक्षा मन में रखे, परंतु उस समय दूसरे श्रेणीसे आगे बढ़नेके विचार से अपना प्रथम श्रेणीके कर्तव्य न भूले। प्रायः लोग अधिकांश ध्येय सामने रखकर अपने कर्तव्यसे वंचित रहते हैं। ऐसा कोई न करे इस उद्देश्यसे यह मंत्र कह रहा है, कि अंतिम साध्य जो भी हो; उसका विचार न करते हुए इस समय तुम जिस श्रेणीमें हो उस श्रेणीमें प्रथम स्थानमें स्थित रहकर उस समय के अपने कर्तव्य अच्छी तरह बजाते चलो। इस प्रकार करते रहनेसे अपनी यथायोग्य उन्नति होती रहेगी और कम समय अपनी उन्नतिके परम सोपानपर पहुंच जायेंगे।

परंतु अपनी श्रेणीसे भिन्न श्रेणीवालोंसे स्पर्धा करते रहनेसे मनुष्यको स्थिर रहना कठिन होता इतनाही नहीं परंतु अवनति होना ही अधिक संभव है। यदि खेलाड़ी कुमार अपनी व्यायामके अन्य कुमारोंसे मल्लयुद्ध न करता हुआ यदि बड़े पहिलवानोंसे मल्ल युद्ध करनेका आग्रह करेगा तो न तो उसमें उसकी स्थिति स्थिर रहती है और नाही उसकी उन्नति हो सकती है। परंतु कमजोर अपनी श्रेणीवालोंसे कुश्ती करता हुआ वह स्वयं आगे आकर बड़ा मल्ल हो सकता है इसी प्रकार अन्यान्य सम्बन्धोंके विषयमें समझना चाहिए। सृष्टिके पथके विषयमें भी यही मार्ग अधिक सुरक्षित है।

पाठक इसका अधिक विचार करें। हमारे विचार में यह उन्नतिके मार्गका उपदेश सबके लिये सर्वदा मनन करने योग्य है। अपनी अधोगति न होते हुए क्रमसे निःसंदेह उन्नतिकी प्राप्ति होना इसी मार्गसे साध्य है।

मनका बल बढाना ।

(१२)

(ऋषिः भरद्वाजः । देवता द्यावापृथिव्यादिनानादेवतम् ।)

द्यावापृथिवी उर्वेऽन्तरिक्ष क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं स इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥ १ ॥
इदं देवाः शृणुत ये यजियास्थ भरद्वाजो मर्यमुक्थानि शंसति ।
पात्रे स पक्षो दुरिते नि पद्यतां यो अस्माकं मनइदं हिनस्ति ॥ २ ॥
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यस्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
पृथामि ते कृकलासेनेव पृक्ष यो अस्माकं मनइदं हिनस्ति ॥ ३ ॥
अष्टीतिभिस्त्रिसप्तेभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥ ४ ॥

अर्थ—[द्यावापृथिवी] पुरोक्त द्यौ और पृथिवी लोक [उरु अन्तरिक्ष] विस्तीर्ण आकाश (क्षेत्रस्य पत्नी) क्षेत्रका पालन करनेवाली पृथिवी [अद्भुतः उरुगायः] अद्भुत और बहुत प्रशंसनीय सूर्य [उत] और [वातगोपं उत अन्तरिक्ष] वायुको स्थान देनेवाला अन्तरिक्ष आदि सब [मयि तप्यमाने] मैं गर्म होने पर [इह ते तप्यन्तां] यहां वे सब सन्तप्त होवें ॥ १ ॥

हे [देवाः] देवो ! (ये यजियाः स्थ) जो तुम सत्कार करने योग्य हो वे सब [इदं शृणुत] यह सुनो कि [भरद्वाजः मह उक्थानि शंसति] यह बडाने वाला मुझको उत्तम उपदेश देता है । परंतु [यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति] जो हमारे इस मनको विगाडता है [सः दुरिते पात्रे पक्षः विपद्यताम्] वह पापके पात्रमें पंखा जाकर विपत्तिमें रहा करे ॥ २ ॥

हे [सोम-प इन्द्र] सोमपान करनेवाले इन्द्र ! [शृणुहि] सुन कि [यत् शोचता हृदा जोहवीमि] जो शोकपूर्ण हृदयसे मैं पुकारता हूं। [यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति] जो हमारा यह मन बिगाडता है [तं] उसको [वृक्कं कृकलासेन इव] वृक्कको कृकलासके खानेके समान [पृथामि] खाता हूं ॥ ३ ॥

[त्रिसप्तेभिः अष्टीतिभिः सामगेभिः] तीन सप्तकोंके अस्सी मंत्रोंद्वारा सामगान करनेवालोंके साथ तथा [आदित्येभिः वसुभिः आङ्गिरोभिः] आदित्य वसु और अङ्गिरसोंके साथ [पितृणां इष्टापूर्तं नः अवतु] पितरों द्वारा किया हुआ यज्ञयागादि शुभ कर्म हमारी रक्षा करे । मैं [दैव्येन हरसा अमुं आददे] दिव्य क्रोध या बलसे इस को पकडता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—पुरोक्त द्युलोक अन्तरिक्ष आदि तथा इस अन्नादिसे रहनेवाले सब लोक लोकान्तर मेरे अनुकूल हों अर्थात् मेरे यज्ञ इत्यादि से संतुष्ट हों और मेरे यज्ञ होने पर वे भी प्राप्त हों ॥ १ ॥

हे सत्कार करने योग्य देवो ! सुनो । नियम यह है कि यज्ञ बढानेवाला ही दूसरों को उत्तम उपदेश करता है परंतु यज्ञ पवित्रताके पुरे विचारों को फेरने से मनका दूषित करना है उस पापीको पकड कर बंधनमें रखना उचित है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सुन कि जो मनको बिगाडता है उसका नाश करना योग्य है यह बात मैं हृदयसे आपके पास कहता हूं ॥ ३ ॥

द्यावापृथिवी अनु मा दीधीयां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥ ५ ॥
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत्क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं शोरुमिसर्तवा उ ॥ ६ ॥
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृणामि ब्रह्मणा ।
अयं यमस्य सादनमग्निर्वृतो अरंकृतः ॥ ७ ॥
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्वस्तु वातमपि गच्छतु ॥ ८ ॥

अर्थ- [द्यावापृथिवी मा अनुदीधीयाम्] पुथ्वीलोक और पृथ्वीलोक मेरे अनुकूल होकर प्रकाशित हों। हे [विश्वे देवासः] सब देवो! [मा अनु मा रभध्वं] मेरे अनुकूल होकर कार्यारंभ करो। हे [अङ्गिरसः सोम्यासः पितरः] अंगिरस सोम्य पितरो! [अपकामस्य कर्ता पापं मा ऋच्छतु] अविहित कार्यका करनेवाला पापको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

हे [मरुतः] मरुतो! [यः अतीव मन्यते] जो अपने आपको ही बहुत भारी समझता रहे, [यो वा नः क्रियमाणं ब्रह्म निन्दिषत्] अथवा जो हमारे किए जानेवाले ज्ञान की निंदा करे। [वृजिनानि तस्य तपूंषि सन्तु] सब कर्म उसके लिये तापदायक हों। तथा [सोः ब्रह्मद्विषं शरुमिसर्तवा उ] पुथ्वीलोक उस ज्ञाननिरादीको बहुत ताप देवे ॥ ६ ॥

[ते प्राणान् सप्त मन्यान्] तेरे उन सात प्राणों को और [अष्टौ मन्यः] आठ यज्ञाग्नियों को मैं [ब्रह्मणा वृणामि] ज्ञानके बलसे लेता हूं या रोकता हूं। तू [अग्निगृतः अरंकृतः यमस्य सादनं अयं] अग्निसे घृत बनकर सिद्ध होकर यमके घरमें जा ॥ ७ ॥

[समिद्धे जातवेदसि] प्रदीप्त अग्निमें [ते पदं आदधामि] तेरा स्थान रखता हूं। [अग्निः शरीरं वेवेषु] यह अग्नि शरीर में प्रवेश करे [वातं आयुः अनु गच्छतु] वायु भी प्राण को प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ- जिसमें ठीक कर्मों के अच्छे मंत्रों द्वारा संस्कार करते हैं उस यज्ञमें बहु घृत औषधियों के साथ मिलाए हुए मिला-जुला यह सामग्री धूम रूप हमारा रक्षक होवे। उस सत्कर्मसे हमारा मन शुद्ध रहे। जो पापी हमारा यज्ञ विघ्न करनेका यत्न करता है उसको मैं विघ्न करके खूब पकड़ता हूं ॥ ४ ॥

पृथ्वीलोक और मृत्युलोक के अंतर्गत सब वस्तुमात्र मेरे अनुकूल हों, सब देवादि देव मेरे अनुकूल कार्य करें। हे पितरो! अविहित कार्य करनेवाला पापी बनकर पतित होवे ॥ ५ ॥

हे मरुतो! जो घमंडी मनुष्य अपने आपको ही महान् बड़ा समझता है इतना ही नहीं परंतु हम जो ज्ञान अर्जन करते हैं उसकी भी जो निंदा करता है उसके सब कर्म व्यर्थ हों क्योंकि जो ज्ञानसाधनका विरोध करता है उसको पृथ्वीलोक बहुत ताप देवे ॥ ६ ॥

तेरे सातों प्राणोंको और आठों मन्यास्थानों को मैं ज्ञानसे रोकता हूं, तू अग्निपूत बनकर यमके घरमें जा ॥ ७ ॥
इस प्रदीप्त ज्ञानाग्निमें मैं तेरा स्थान रखता हूं। यह अग्नि तेरे अंदर प्रविष्ट होवे और तेरी वायु भी प्राण को प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

मानस शक्तिका विकास ।

जबकी अग्निसे मनुष्य की मानसता निश्चित होती है। जिसका मन शुद्ध और पवित्र वह महात्मा होता है और जिसका मन अशुद्ध और मलीन विचारोंवाला वह दुष्ट कहलाता है। इसके पूर्व सूक्तमें आत्माके गुण वर्णन करते हुए आत्मिक बल बढ़ाने

अ उपास्य कहा। उसी की पूर्ति करने कलिए इस सूक्तमें मानसिक शक्ति विकास का उपाय बताया है क्योंकि आत्मिक साम्य विकास के लिये मानसिक सुदृढ़ता भी अत्यंत आवश्यकता है। मन सबल रहा तो आत्मिक बल बढ़ ही नहीं सकता।

मानस शक्ति विकासके साधन।

त्यागभाव।

मानसिक बल बढ़ानेवालेका नाम इस सूक्तमें भरद्वाज, अर्थात् (भरत् + वाजः = वाजः + भरत्) बल भरनेवाला कहा है। 'वाजः' का अर्थ पंख, अन्न, ज्ञानवान्, अर्थात् बल शारीरिक बल, मन बल गति, युद्ध इत्यादि है। इसमें पंख, अन्न, ज्ञान ये तीनों शारीरिक बलकी वृद्धि करनेवाले हैं, परंतु येही मुख्य शारीरिक बलका विनाश भी करते हैं। अन्न प्राणी के बलका साधन कथन किया है। पर आत्मिक बलका शोषक है। अर्थात्, आत्मसमर्पण यह जिसमें आत्मसमर्पणरूपी आहुति देना प्रधान अंग होता है, व बलवान् धर्म आत्मिक बल बढ़ाते हैं। युद्ध क्षात्र बल बढ़ाता है। परमेश्वरकी प्रार्थना मानसिक बलकी वृद्धि करती है। पात्र शब्दके जितने अर्थ हैं इनकी संगति इस प्रकार है। यहां कहने वाले शापवाक्यका भी ज्ञान हुआ। पाठक यदि इस बातका विचार करेंगे, तो उनको इसमें अपना बल बढ़ानेके उपाय ज्ञात हो सकते हैं। यह बल का मंत्र इस है जिसका नाम 'भरद्-वाजः' होता है। यह भरद्वाज आत्मिक बल बढ़ाने का शापन इस प्रकार यत्न का कथन करता है—

सुभवचन।

भरद्वाजः प्रति उरुक्षाणिं संयति ॥ (म ६)

'बल बढ़ानेवाला मुझे सुख कहता है' अर्थात् उत्तम वचन अथवा इस सुखसाधनके स्थान कहता है। ये सुभवचन कहने से, इनका मनन करनेसे इनको अपने मनमें स्थिर करने से ही मनकी शक्ति बढ़ सकती है। परमेश्वर भक्ति उपासना स्तुति प्रार्थना का मनन यही सुखसाधन है। इससे मनकी पवित्रता होने द्वारा मानसिक शक्ति विकसित होती है।

ज्ञान।

इस 'अग्नाग्नि' का ही अर्थ—यह अग्नि कहते हैं जिसका पेट बढ़ा हुआ है यही अग्नि आत्मवेद है। जिस ज्ञान प्रकाशित हुआ है वही यह अग्नि है। इसीसे ज्ञानाग्नि ब्रह्माग्नि, आत्मवेद आदि अनेक नाम हैं। मानसिक शक्ति विकास या आत्मिक बल वृद्धि करनेकी जितना इच्छा है उतना इस अग्निकी उपासना करना चाहिये। इस विषयमें अथर्व मंत्रमें कहा है—

आ दधामि ते पदं समिद्धस्य तिष्ठसि आयवसि।
अग्ने शरीरं वर्धयन्नुप यन्तारं तपन्तु ते ॥ (अ ८)

'इस प्रदीप्त आत्मवेद आपके ज्ञानाग्नि रूपी पांव मैं स्थापता हूं। यह ज्ञानाग्नि तेरे शरीरके रोम रोम में प्रविष्ट हो। और तेरी सभी भी प्रकाश के पास जाओ' जो मनुष्य अपना आत्मिक बल तथा मानसिक बल बढ़ानेका इच्छुक है उसको अपने ज्ञानाग्नि प्रदीप्त करने चाहिये। जिस प्रकार अग्नि पदार्थ में प्रवेश होकर वह मनुष्य आदि ही उसमें अपने आत्मिक ज्ञानाग्नि—आत्मवेद अग्नि—प्रदीप्त हुआ रहता है। यह उचित है।

जीवित यज्ञ:—इस मंत्रमें इसके पहलेमें एक यज्ञकी प्रार्थना प्रकाशित होती है मानो इसमें यज्ञ अवश्य ही होना चाहिये। (यज् अनु कथयति) कभी यज्ञसे ही करता है। पाश्चात्य मनुष्योंको यज्ञकी गुप्त होती है परंतु इस ज्ञानीका यज्ञकी जीवित होती है। यह सिद्ध पुरुष जो कहता है वह बन जाता है वह जीवित यज्ञका साक्षात्कार है।

यज्ञका स्वरूप:—तेरा मेरा यह सब भाव छोड़ कर सबका सुख बनाने का यत्न करता है। पुरुषार्थसे अन्न धन आदि, पुरुष यज्ञके लिए यज्ञ और यज्ञ करना अवश्यक होता है। अर्थात् यज्ञादिक पुरुषोंका मेरे चाहिये वेद यज्ञ करना भी यही है। इसीप्रकार यज्ञ अनेक पुरुष विषयमें जानना चाहिये। इस विषयमें भी मंत्रकारने कहा है—

ऊर्ध्वमूलमवः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥ गीता अ १५

ऊपर मूल और नीचे शाखा विस्तार पाया है ऐसा यह अक्षय वृक्ष है। ऊपर नीचे इसकी शाखाएं बहुत फैली हैं। इन शाखाओंको असंग शस्त्रसे छेद करके यहां इसको ठीक करना चाहिए तत्पश्चात् उत्तमोत्तम मार्ग विदित हो सकता है। इस विषयमें सप्तम मंत्रमें कहा है वह अब देखिये—

सप्त प्राणान्नवी मन्यस्तांस्ते वृक्षामि ब्रह्मणा।
तथा यज्ञस्य तन्वमपि पूतो अरक्षतः ॥ (मं ७)

सात प्राणोंको और आठ प्रकृतियोंको मैं इनसे काटता हूं या छेदता हूं अथवा घोषित हूं। तू इस आशिष सिद्ध हुए स्वरूप यज्ञ के करने को जा। इस सप्तम मंत्रमें सात प्राणोंका और आठ मनआदिप्रकृतियोंको (वृक्षामि) काटनेका संकेत है। और यहां काटनेका शस्त्र 'ब्रह्म' अर्थात् ज्ञान भक्ति आत्मिक उपासना स्तोत्र इत्यादि प्रकार का है। ब्रह्म शब्दका ज्ञान आदि अर्थ प्रसिद्ध है। पाठक यहां विचार करें कि क्या कभी ज्ञान अथवा ईश उपासना (ब्रह्मणा वृक्षामि) शस्त्र शस्त्र किसी को काट सकते हैं? यदि ये शस्त्र बन कर किसीको काटने होते तो किससे काटते हैं? यह विचार करना चाहिए।

असंगशस्त्र और ब्रह्मशस्त्र।—गीतामें असंगशस्त्र से वृक्ष काटनेका संकेत है यहां शाखा शस्त्रशाखाओंको असंग शस्त्रसे काटनेका भाव है। वासनाएं भी लोक की इच्छासे ही फैलती हैं और लोक भी इंद्रियोंके विषयों के ही होते हैं। अर्थात् असंग शस्त्रसे जिन शाखाओंका काटना है, वे शाखाएं इंद्रियलोक की वृत्तिरूप ही हैं। अथवा यदि आशय मनमें लेकर यदि इस मंत्र के सप्त प्राणोंको ब्रह्मशस्त्रसे काटनेका वर्णन देखेंगे तो स्पष्ट होगा कि यहां भी एक विशेष अलंकार ही है, दोनों स्थानोंमें क्रियाका अर्थ एक ही है—

असत्त्व असंगशस्त्रेण छित्त्वा ॥ (य गीता १५। ३)
सप्त प्राणान् ... ब्रह्मणा वृक्षामि ॥ [अथर्व १। १२। ७]

वृक्षामि का अर्थ भी छेदन ही है। दोनों स्थानोंके शस्त्र भी अभेदसिद्ध हैं। (असंग) वैराग्य और (ब्रह्म) ज्ञान उपासना; यद्यपि वैराग्य और ज्ञान ये दो शब्द भिन्न हैं तथापि एकही मार्गमें चलनेवाले हैं आत्मसाक्षात्कारमें ये दोनों परस्पर उपकारक ही होते हैं। वैराग्य के बिना आत्मज्ञान होना कठिन है या असंभव है। इस प्रकार विचार करनेसे पता लगता है कि जिस शाखाविस्तार को भगवद्गीता काटना चाहती है उसी शाखाविस्तारको यह वेद मंत्र काटना चाहता है। इसको विस्तृत करनेके लिये हमें सात प्राण कौन हैं इसकी खोज करना आवश्यक है—

सप्त प्राण—

१ प्राणा इंद्रियाणि ॥ ताण्डयब्रा २। १३।२; १२। ७। ३
२ सप्त शिरसि प्राणाः ॥ ताण्डय ब्रा २।१३।२; १२।७। ३
३ सप्त क्षीर्यन् प्राणा । शत ब्रा ९।५।२।८
४ सप्त वै क्षीर्यन् प्राणाः । तै ब्रा ३। १०; तै ब्रा ३। २।३।१

(१) प्राण ये इन्द्रियों ही हैं। (२–४) शिरमें सात प्राण अर्थात् इंद्रियां हैं। इस प्रकार यह स्पष्टीकरण ब्राह्मणोंके वैदिक वाङ्मयमें किया गया है। इससे सप्त प्राण ये आठ इंद्रिय हैं इस विषयमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। कर्णोंके बलसे ये इंद्रिय दो आंख दो कान दो नाक और एक मुख मिलकर सात हैं और कर्णोंके मल के अन्न तथा वेग सिद्ध नाक

शिव और मुख है इन सबोंके क्रमशः छन्द स्पर्श रूप रस गंध काम और मानव ये सात भोग हैं। इनके उत्तम मध्यम अथवा निकृष्ट यदि इस मनुष्यको होती है। दोनों मंत्रोंका तात्पर्य इतनाही है कि जिन इन्द्रियोंके साधनसे यह मनुष्य वासनाओंके वशमें पड़ता है और मोक्ष मोगनेकी इच्छासे रोगके मनमें प्रस्त होता है ये सात इंद्रियोंकी शाखाएं शमके सहसे कटना चाहिये। जिस प्रकार माली अपने उद्यान के वृक्षोंको जैसा वैसा बढ़ने नहीं देता उसी प्रकार इस शरीर के अंगमें कर्म करनेवाला यह जीवात्मा रूपी माली है उसको अपने उद्यान के इन सात वृक्षोंको टेढ़े मेढ़े बढ़ने देना उचित नहीं है, वैसे बढ़ने लगे तो ज्ञानकी कैंचीसे मर्यादासे बाहर बढ़नेवाली शाखाओंको काटकर उनको अपनी मर्यादामें ही रखना उचित है।

इसका स्पष्ट आशय यह है कि ये ही इन्द्रिय यदि बुरे व्यवहार करने लगे तो उनको अंकुशके नियमसे नियम बद्ध करके उपायपूर्वकयुक्तिसे दमन करना चाहिये। इन्द्रिय दमन से ही आध्यात्मिक शक्ति विकसित हो सकती है। शाखा छेदन का तात्पर्य यही है।

आठ प्रथी— इस सप्तम मन्त्रमें (अष्टो मन्थः) आठ ग्रंथि, या चक्रोंका है उनको भी छेदन करने का विधान किया है। ये आठ मज्जा ग्रंथियां हैं उनके विशेषरूप जीवन रस शरीरमें प्रकाशित होते हैं। गुदा, मणि पेट हृदय कण्ठ तालु भ्रूमध्य मस्तिष्क इन स्थानोंमें ये प्रधान आठ मज्जा ग्रंथियां हैं और इससे भी जीवन रस आता है उससे उक्त स्थानमें जीवन प्राप्त होता है। इससे प्राप्त होने वाला जीवन रस तो आवश्यकही है परंतु यदि इसीसे हीन प्रवृत्ति होने लगी तो उस हीन वासना का नाश करना चाहिये। देखिये गुदाके पास की मज्जा ग्रंथीसे वीर्यके साथ जीवन रस प्राप्त होता है। इसीसे स्त्री पुरुष विषयक काम होता है और इसके अतिरेकसे मनुष्य निरता भी है; तथापि धर्ममर्यादाके अंदर काम रहा और शेष ब्रह्मचर्य पालन हुआ तो वही वीर्य ओज तेजमें परिणत होती है। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रंथियोंके विषयमें समझना चाहिये। इससे पाठक समझ गये होंगे कि जिस प्रकार बाहर दिखनेवाले इंद्रियोंका संयम आवश्यक है, उसी तरह इन ग्रंथियोंकी स्वाधीनता भी अत्यंत आवश्यक ही है। योगमें इसको ग्रंथिभेद चक्रभेद आदि संज्ञाएं हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि जिस प्रकार अपनी मनकी प्रेरणासे हाथ पांवका हिलना वा न हिलना होता है, उसी रीतिसे इन सब ग्रंथियोंका कार्य भी अपनी इच्छानुसार हो। इंद्रियोंको और इन केन्द्रोंको पूर्णतया अपने आधीन रखनेका नाम यहां शाखा छेदन है। यह भेद संयम है। और यही शाखाछेदन (ब्रह्मणा इषव सि) ज्ञान रूपी शस्त्रसे होता संयम है। अब यहां मन्त्रोंकी संगति देखिये—

संयमका मार्ग— १ तस्मिन्हे आत्मनेदृशि पर्वं = जिसने प्रदीप्त आत्मदेव अर्थात् ज्ञान अग्निमें अपना स्थान स्थिर किया है (मं ८) । २ अग्निः शरीरं वेवेष्टु = जिस के शरीरके रोमरोममें यह ज्ञानाग्नि भडक उठा है (मं ८) । ३ वायुः यदि मनुं गच्छन्तु = जिसको वायु भी प्राणमयताको अर्थात् जीवित दशाको प्राप्त हुई है। (मं ८) । ४ उत प्राण्यन् पुरुषान्= यह प्राणोंका अर्थात् यह इंद्रियोंका शासन जिसने किया है अर्थात् इंद्रियों को वशमें किया है (मंत्र ७) । ५ अष्टौ मन्थान्पृथाग्नि = आठ मज्जा केन्द्रोंका भी छेदन किया है अर्थात् यह चक्रभेद द्वारा उनको वशवर्ती किया है।

मरनेकी विद्या— यही आत्मिक बल से बलवान् होना और यही मायुक्त मन दूर करना अवश्य निडर होकर यमके घर जाना। सब प्राणी मरते ही हैं परंतु निडर होकर मरना और बात है और डर डर के मरना और बात है। सब लोग मनुष्य करते रहते हैं परंतु कैसे मरना इसीकी विद्या इस सूक्तमें कही है। देखिये मंत्र के शब्द—

अवृक्तं अग्निरूतः अमस्य सादन अगात् (मं ७)

(अवृक्तं) अवर्जित (अग्नि–) ज्ञानाग्निका (ऊतः) सेवक अमस्य अमके घर जा। अर्थात् अब तुम्हें अमका यह घर नहीं है जो अज्ञानावस्थामें था। यह परमेश्वर ने दिया है। मानो यह परमेश्वर ने दिया है। अर्थात् इसमें यह विद्या प्राप्त करना चाहिये। जिसने इंद्रियोंका संयम किया है जिसने अपनी जीवन शक्तियोंको अपने आधीन किया है, जिसका जीवन ज्ञानसे परिशुद्ध प्रकाशतम कर्मसय हुआ है और जो ज्ञानप्रकाशके प्रचारके लिये अपने अंगोंको समर्पित करता हुआ अपना जीवनही ज्ञानाग्नि में समर्पण करता है क्या कभी वह मृत्युसे डर सकता है। वह तो निडर होकर ही मृत्युके पास पहुंचेगा। इसी प्रकार देखिये—

सिंधव ऋषिकुमार— ऋषि पंचवर्षमें कहा है कि सविकेता ऋषिकुमार यम के पास गया था। वह तीन रात्री यमके घर रहा उसको देखकर यमको भी भय मालूम हुआ। उसको प्रसन्न करनेके लिये यमने तीन वर दिये। वे तीन वर बडी दीर्घ प्रकरण शक्तियां थीं परंतु इस ऋषिकुमारने इन तीन शक्तियोंसे अपने भोग नहीं बढाये; परंतु ज्ञान प्राप्तिमें ही इन शक्तियों का स्वयं उसने विनियोग किया। यमने नाना भोग उसके सन्मुख रखे परंतु ऋषिकुमारने अपने ज्ञानबलसे वासना रूपी आसक्तियोंका क्षय किया था इसलिये भोगोंको स्वीकारनेकी इच्छा नहीं की भोगोंको छोडकर ज्ञान प्राप्तिकी ही उसने इच्छा की और इस ज्ञानबलसे अन्त में उसने ज्ञान प्राप्त किया। यमके साथ बराबरीके नातेसे यह ऋषि कुमार रहा बराबरीके नातेसे भोजन और बराबरीके साथ बैठने आसन आया। ऐसा क्यों हुआ ? पढिये ! विचार तो कीजिये। सविकेता ऋषिकुमार अग्निका इस प्रकार कुण्ड तैयार कर सावित्र्याग्नि स्थापन करके यमके पास गया था; इसलिये वह विजय था। जो लोग सावित्र्याग्निके यम के पास जानेके ये अर्थ हुए जानेके इन्होंने पकड जानेके। यही भेद है साधारण मृत्युमें और ज्ञानीकी मृत्युमें। यही वेदकी मृत्युविद्या है।

आत्मबन्धुत्व। एकके दुःखसे दूसरा दुःखी।

यहां तक जो आत्मैवेदसर्वम् वर्णन किया है उसका विचार करनेसे ज्ञानीकी अवस्थाकी कल्पना पाठकोंको हो सकती है। इस ज्ञानीके मनमें जो मनुष्यत्व इस समय जीवित और जागृत होता है सब मनुष्योंके वह आत्मस्वरूप आपसे होने लगता है। जो जैसा सुख दुःख इसको होता है वैसा ही सुख दुःख दूसरोंको होता है ऐसा इसका भाव इस समय बन गया है। वह अपनेमें और दूसरोंमें भेद नहीं देखता; दूसरोंके दुःखों से अपनेको दुःखी और दूसरोंके सुखसे अपनेको सुखी मानने की उसकी जब मनोवृत्ति इस समय बन चुकी होती है। इसलिए जिस समय वह सचमुच सन्तप्त होता है उस समय सब प्राणीमात्र सन्तप्त हो जाते हैं। जब दूसरोंका दुःख अपनी मनुष्य अपनेपर लेने लगता है और सब जगत् के दुःखका भार अपने सीधारता है उस समय इसके दुःखमें भी सब जगत् हिस्सेदार होता है। यह नियम ही है। यह परस्परसंवेदनका अपरिहार्य नियम है। जिस प्रकार एक स्वरमें मिलती हुई तन्तुवाद्यकी तारें एक बजाई जानेपर अन्य सब स्वयं बजने लगती हैं इसी प्रकार यह ज्ञानीके सर्वात्मभावके जीवन से सब जगत्के साथ समान संवेदना उत्पन्न होती है। यह आत्मबन्धुत्व की परम उच्च अवस्था है। यही इस सूक्तके प्रथम मंत्रने बताई है—

यावि मन्यमाने ते इह स्मस्यारे [मं १]

मरे सन्तप्त हो जाने पर भी हे यहां होंगे हों। पृथ्वी अन्तरिक्ष द्युलोक, पंचभूत अवकाश मेघमंडल सूर्य आदि जितना भी कुछ स्थान है और उस अपूर्व स्थानमें जो भी भूतमात्र हैं उनके दुःखोंसे मैं अपने ऊपर लेता हूं जगत् की दुःखी अवस्थाके लिये मैं अपने आपको उत्तरदायी मानता हूं, मैं जगत् की दुःखी नहीं देख सकता जगत् दुःखी हो और उसका दुःख दूसरा आनन्द इस प्रकार की भावना जिस के रोम रोममें भरी है जिसके दैनिक जीवन में आती नहीं है वह अपने आपको जगत् के साथ एकरूप देखता है जगत् को अपने आत्मरूप समान समझता है या यों कहो कि वह जगत् के सुखसे सुखी होता है। ऐसा महात्मा जब उत्पन्न होता है उस समय सब भूत भी सन्तप्त हो जाते हैं। यह अवस्था प्रथम मंत्रद्वारा बताई है।

यह मनुष्य की उन्नतिकी परम उच्च अवस्था है इस अवस्थामें पहुंचा हुआ ज्ञानी दूसरोंके दुःखोंसे दुःखी होता है और इसके सुख भी सब दूसरे सुखी होते हैं। इस पूर्ण अवस्था में जगत् के साथ इसकी समान संवेदना होती है। यमका सब भाई बहने और आत्मीय प्रति करत करत मनुष्य यहां तक ऊंचा हो सकता है। अब जो लोग इस ज्ञानवार्ता के विरोधी होते हैं उनकी भी क्या अवस्था होती है यह देखना है—

ज्ञानद्वेषियोंकी। जो ज्ञानके विरोधी होते हैं जो अपने मनके विरुद्ध कार्य करते हैं जो दूसरोंके सुखोंको विघ्न करनेके लिये तयार रहते हैं उनकी क्या क्या दशा होती है यह इस सूक्तके मन्त्रोंके द्वारोंसे ही देखिये—

१ या अवीच मन्यत न या आसे आसतो दीर्घमनसो दूरकं वयतिरे ऐवा मे मा रिषत खेवा मा न उज्जिहीर्षुः प्रतरं नयायुः प्रतरं दीर्घायुत्वाय शातय (मं ९)

१ किल्बिषात् = अज्ञ या मिथ्याज्ञानी । किल्बिषात् = किया जानेवाला हमारा ज्ञानसंग्रह जो निंदित है हमारे ज्ञानसंपादन ज्ञानरक्षण और ज्ञानवर्धनके प्रयत्नोंको जो विघ्न करता है (मं १)

२ दुरितानि तस्मै यन्तु = सब कर्म उसके लिए पापरूपक हों उसको हरएक कर्मसे बड़े कष्ट होंगे किसीभी कर्म से उसको कभी शांति नहीं मिलेगी (मं ७)

४ यो३ ब्रह्मद्विषं तपसि स तपाति = ब्रह्मसंबंधी पुरोक्त ज्ञानके विद्वेषीको चारों ओरसे संतप्त करता है ज्ञानके विद्वेषीको किसी ओरसे भी शांति नहीं मिल सकती (मं ७)

ज्ञान के विरोधी (ब्रह्मद्विष्) का उत्तम वर्णन इस मंत्रमें हुआ है यह इतना स्पष्ट है कि इसका अधिक स्पष्टीकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अज्ञानिक वर्णन करना भी अज्ञान या मिथ्या ज्ञानका ही द्योतक है और वह अत्यंत घातक है । यदि स्वयं ज्ञान वर्धन का प्रयत्न कर नहीं सकते तो न सही परंतु दूसरे कर रहे हैं उनका तो विरोध करना नहीं चाहिये । परंतु यदि स्वयं मिथ्याज्ञानसे ग्रसित हुआ मनुष्य दूसरे ज्ञानियोंका सताने लगे तो वह अधिक ही गिर जाता है । इस प्रकार के विरोधात्मक अज्ञानी मनुष्यका हरएक प्रयत्न कष्टदायक ही होता है उसके कर्म जैसे उसके कष्ट बढ़ते हैं वैसे अन्योंके भी कष्ट बढ़ते हैं क्योंकि उसका अज्ञान और मिथ्याज्ञानके कारण वह जो करता है वह प्रायः विपरीतही करता है इस कारण जैसा उसका भाव होता है वैसा उसके साथ संबंध रखनेवालोंका भी भाव हो जाता है । यह बात इस छठे मंत्रने बताई है । अब इस दुरे कर्मके कर्ताकी अवस्था सातके सात मंत्रोंने बताई है वह देखिए—

१ अपक्रामतस्य कर्ता पापं वा अप्यसु । (म ५)
२ यो३ अस्माकं इदं मनः विद्मस्ति स दुरितेषु परमे बहोः निबुध्यताम् । (म ३)
३ अधु एवैव इहसा आहरे [मं ४]
४ यो३ अस्मा३ इदं मनः विद्मस्ति स कृत्विषय सुवामि । (म ३)

"(१) इस दुष्कर्मके करनेवालेके पाप जाये । [२] जो हमारा मन विद्यमान है उसको पापके पाशमें बांधकर निधनमें रखा जावे । (३) उसको निम्न कोष या बंधसे पकड़ रखता हूं । [४] जो हमारा यह मनरूपी विद्यमान है उसको शस्त्रसे काटता हूं ।

ये चार मंत्रोंके चार अंतिम वाक्य हैं वे एकसे एक अधिक दृढ़ बंधन कहते हैं । पहिले वाक्य ने कहा है कि उसके पाप जाये । दूसरे वाक्य ने कहा है कि उसको बांध कर निधनमें रखा जावे यहां निधनमें रखनेका आशय अंधकारमें रखनेका है । तीसरे वाक्यमें देवताओंके कोप उसपर हो ऐसा कहा है और चतुर्थ वाक्यमें उसके उसके सिर काटने की बात कही है । यह एकसे एक कड़ी सजा निकली है । अब इस विषयका थोड़ासा विचार यहां करना चाहिए । मनको विगाड़नेका पाप बड़ा भारी है परंतु यों एक बात है इस पापको करता है और एक मनुष्यके संबंधमें करता है उसका अपराध न्यून है और जो मनुष्य अपने विशेष सेवाद्वारा दूसरी आत्मिक मन विगाड़नेका प्रयत्न करता है, या आत्मिक ज्ञान प्राप्तिमें बाधा डालता है उसका पाप बहुत अधिक होता है । इस प्रकार दुष्कर्मोंके पापकी न्यूनाधिकता समझना योग्य है और अपराधके अनुकूल दण्ड देना उचित है । यह दण्ड भी स्वयंसिद्ध देख नहीं होता अनुभव राजसभा द्वारा देखा होता है ।

दूसरे की ज्ञानवृद्धिमें बाधा डालना बड़ामारी पाप है इससे अपनी दूसरेकी बड़ी हानि भी अधोगति होती है । इसलिये कोई मनुष्य इस प्रकारका पापकर्म न करे ।

आनुषंगिक संस्कार- सबसे पहिली बात आनुषंगिक संस्कार की है । जिसका जैसा मुख होता है जिसके वचनमें साधु भाव हुए हैं जिसके वाक्यसिद्धि शुद्ध अंतःकरणके होते हैं, अर्थात् वचन से जिसके मनमें शुद्ध धार्मिक साधु संकल्प होता है वह ब्रह्मचर्य पूर्ण आनेका संभव कम है इस विषयमें मंत्र कहता है—

तिसभिः अष्टाभिः सामगेभिः यमुभिः अङ्गिरोभिः आदित्येभिः
पितृभिः इडाघद्भिः अन्वहं नः (म ४)

'वसु रुद्र आदित्य देवोंका सामर्थ्य पूर्वक हमारे पितरों द्वारा किया हुआ यज्ञ याग आदि शुभ कर्म हमें बचावे।' परिवारमें जो जो प्रशस्ततम कर्म होता है वह निःसंदेह पारिवारिक जनोंको पुरे संस्कारोंसे बचाता है। मातापिताओंका किया हुआ शुभ कर्म इसी प्रकार सकलजनोंको शुभ कर्मपथपर सुरक्षित रखता है। येही आनुवंशिक शुभसंस्कार हैं। हम यह नहीं कहते कि जिसके ऐसे शुभ संस्कार नहीं होंगे वे अधम मार्गपर ही जाते रहेंगे, परंतु हम यही कहते हैं कि वे शुभ कर्म अवश्य सहायक होते हैं। इसलिये परिवारों के सुज्ञ पुरुषों को उचित है कि वे स्वयं ऐसे कर्म करें कि जिससे उनके पारिवारिक जनोंपर शुभ संस्कार ही होते रहें यह उनका आवश्यक कर्तव्य है।

ईश प्रार्थना।

आनुवंशिक संस्कार अपने आधीन नहीं होते क्योंकि उन कर्मोंको करनेवाले दूसरे होते हैं। इसलिये यदि वे अपने लि ते अच्छा ही है परंतु यदि वे बुरे संस्कार हुए तो भी उन्हें करनेकी बात नहीं है। स्वयं अपनी सुबुद्धि प्रसन्न करनेपर निःसंदेह सिद्धि मिलेगी। इस दिशासे आत्मशुद्धिके प्रयत्न करनेके लिये ईशप्रार्थना सुंदर साधन है परंतु यह प्रार्थना किसे करनेसे ही होनी चाहिये इस विषयमें, इस सूक्तके मन्त्र बडे मनन करने योग्य हैं–

वे सोमप इन्द्र! मत्सखि। वरुण दोधता हृदा दोहसीमि ॥ (म १)

हे ज्ञानियोंके रक्षक प्रभु! सुनो जो मैं बडते हुए हृदय से तुमसे कह रहा हूं। हृदयके अंतरसे आवाज आना चाहिये, अपनी पूर्ण भावनासे प्रार्थना होनी चाहिये हृदयकी उत्कटतासे तपे हुए शब्द होने चाहिये, प्रेमपूर्ण हृदयसे प्रार्थना निकलनी चाहिये। ऐसी प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। तथा–

ये यजिषाः स्थ ते देवा इदं मनुत। (यं १)

'जिनका यजन किया जाता है वे देव मेरी प्रार्थना सुनें। इस प्रकार देवोंके विषयमें श्रद्धाभक्तिके साथ दिलमें हृदय निश्चय करे तो वे सुने जाते हैं तथा–

आपश्चिदस्मै सुतुकं दीदीयाम्। विश्वेदेवासो मा अवन्तु यज्ञम् ॥ (म ५)

'आपाततः मुझे अनुकूल होकर प्रकाशित हों और सब देव मुझे अनुकूल होकर आशीर्वाद करें। अर्थात् देवोंसे हमारे मेरा कार्य प्रकाशित हो और देवोंकी अनुकूलता के साथ मेरा कार्य चलता रहे। कोई भी ऐसा कार्य मुझसे न होने कि जो देवताओंके प्रतिकूल वा विरोधी हो। मेरे अंतःकरणमें देवताओं की कृपासे शुद्ध स्फूर्ति होती रहे, उस स्फूर्तिके अनुकूल ही मुझसे उत्तम कर्म होते रहें। देवोंके साथ अपने आपको एकरूप करना चाहिये और इस प्रकार अपने आपको देवतामय अनुभव करना चाहिये।

अपने अंतःकरणमें देवोंका मन्दिर करना चाहिये तभी वहां अशुभ विचार नहीं आवेंगे और सदा वहां ऐसे शुभ विचार ही कार्य करेंगे। इस प्रकार देवोंका आप्त विश्वास अपने विचारोंके अंदर भावनासे होवे तथा तो फिर अपने मानसिक पवित्रता पूर्ण होनेमें देरी नहीं लगेगी और जो जो उच्च मानसोन्नति और आत्मोन्नतिके इस सूक्तके प्रारंभिक विवरणमें कहे हैं वे सब उच्च फल भी अवश्य प्राप्त होंगे।

प्रथम वस्त्र-परिधान ।

[१३]

(ऋषिः अथर्वा । देवता—अग्निः, नानादेवताः ।)

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥ १ ॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेम जरामृत्यु कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ।
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ३ ॥

अर्थ—हे [अग्ने अग्ने] तेजस्वी अग्ने ! तू [आयु—दा] जीवनका दाता [जरसं वृणानः]स्तुतिका स्वीकार करनेवाला [घृत प्रतीकः] घृतके समान तेजस्वी धार [घृत—पृष्ठः] घीका सेवन करनेवाला है । अतः [मधु चारु गव्यं घृतं पीत्वा] मीठा सुंदर गाय का घी पीकर [पिता पुत्रान् इव] पिता पुत्रोंकी रक्षा करनेके समान तू [इमं अभिरक्षतात्] इसकी सब ओरसे रक्षा कर ॥ १ ॥

[नः इमं] हमारे इस पुरुषको [परिधत्त] चारों ओरसे धारण कराओ [वचसा धत्त] तेजसे युक्त करो इसका [दीर्घं आयुः जरामृत्यु कृणुत] दीर्घ आयु तथा वृद्धावस्थाके पश्चात् मृत्यु करो । [बृहस्पतिः ददत् वासः] बृहस्पतिने यह कपडा [सोमाय राज्ञे परिधातवे] सोम राजाको पहनानेके लिये [उ प्रायच्छत] निश्चयसे दिया है ॥ २ ॥

[इदं वासः स्वस्तये परि अधिथाः] यह वस्त्र अपने कल्याणके लिये धारण करो [गृष्टीनां अभिशस्तिपाः उ अभूः] तू मनुष्योंके विवाहसे बचानेवाला विद्वान् हुआ है । हम सबका [पुरूचीः शतं च जीव] परिपूर्ण सौ वर्षतक जीओ । और [रायः पोषं च उप सं व्ययस्व] धन और पोषणको करता हुआ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे तेजस्वी देव ! तू जीवन देनेवाला स्तुतिका सुननेवाला तेजस्वी और धनादिके पोषण करनेवाला है। अतः मधुर सुंदर गायका घी पीकर इस बालक को ऐसी उत्तम रक्षा कर कि जैसे पिता अपने पुत्रोंकी उत्तम रक्षा करता है ॥ १ ॥

इस बालक को चारों ओरसे वस्त्र धारण कराओ इसका तेज बढाओ और इसकी आयु बढाकर दे दो, अर्थात् अति वृद्धावस्थाके पश्चात् ही इसका मृत्यु हो । यह वस्त्र इसके लिये बृहस्पति ने सोम राजाके पहनानेके लिये दिया था जो इस बालकको पहनाया जाता है ॥ २ ॥

यह वस्त्र अपने कल्याणके लिये धारण करो मनुष्योंको विवाहमें बचानेवाले विद्वान् बनो सौ वर्षतक जीओ और पोषणको करते हुए ॥ ३ ॥

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥ ४ ॥
यस्ये ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
स त्वा शतंरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥ ५ ॥

अर्थ–[एहि अश्मान मातिष्ठ] आ शिला पर चढ़ [ते तनूः अश्मा भवतु] तेरा शरीर पत्थर जैसा दृढ़ बने। [विश्वे देवाः] सब देव [त शतम् शरदः सर्वं कृण्वन्तु] तेरी आयु सौ वर्षकी करें॥ ४ ॥

[यस्य ते प्रथमवास्य वासः हरामः] जिस तेरे लिये पहले प्रथम पहनने योग्य ऐसा यह वस्त्र हम लाये हैं [त त्वा विश्वे देवाः अवन्तु] उस तेरी सब देव उत्तम रक्षा करें। [सं त्वा सुजातं] उस तुझ उत्तम जन्मे हुए और [वर्धमानं] बढ़ते हुए बालकके [बहवः सुवृधाः शतंरः अनु जायन्तां] पीछेसे बहुतसे उत्तम बढ़नेवाले भाई उत्पन्न हों ॥ ५ ॥

भावार्थ— यहां आ इस शिलापर चढ़ा रह ऐसा शरीर पत्थर जैसा दृढ़ बने और इससे सब देव तेरी आयु सौ वर्षकी बनावें ॥४॥

हे बालक ! तेरे लिये यह पहिले पहिनने के लिये वस्त्र हमने लाया है, सब देव तेरी पूर्ण रक्षा करें, तू इस उत्तम जन्मा है और जैसा तू उत्तम प्रकार से बढ़ रहा है इसी प्रकार तेरे पीछे बहुतसे हृष्टपुष्ट और बलवान् भाई उत्पन्न हों, और तेरी कुलकी वृद्धि हो ॥ ५ ॥

प्रथम वस्त्र परिधान ।

बालक के शरीरपर प्रथम वस्त्र परिधान करानेका समारंभ इस सूक्तद्वारा बताया है। इस सूक्तका प्रथम मंत्र कुछ इस अग्निमें हो जानेका विधान करता है अर्थात् इसके पूर्वक सब विधान इससे पूर्व होचुका है ऐसा समझना उचित है। बालके ऊपर परमात्माकी कृपा है इस अग्निको भी आदिसे प्रदीप्त किया जाता है, और उसकी साक्षीमें वस्त्र परिधान आदि विधि किया जाता है। सभी संस्कार अग्निमें हवन करनेके साथ होते हैं। परमेश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना आदि समर्पणपूर्वक हवन होकर प्रथम मंत्रमें प्रभु की प्रार्थनाकी गई है कि यह परम पिता इस सब पुत्रोंकी रक्षा करें। इस प्रकार वस्त्र परिधानकी पूर्ण तैयारी होनेके पश्चात् वस्त्र लाया जाता है—

पुत्रके लिये वस्त्र ।

यहां स्मरण रखना चाहिये कि यह वस्त्र सूत लेकर घरमेंसे बनाया नहीं रहता। परंतु अपने पुत्रके लिये माताएं बनाती हैं, इस विषयमें वेदमें अन्यत्र कहा है वह यहां देखिये—

वितन्वते विश्वो अस्मा अपांसि वसा
पुत्राय मातरो वयन्ति ॥ ऋग्वेद ५।४७।६

इस मंत्रमें दो शब्द हैं और वे विचार करने योग्य हैं। देखिये इनका अर्थ—

(१) मातर पुत्राय वसानि वयन्ति = माताएं अपने पुत्रके लिये कपडे बुनती हैं। और–

(२) अस्मै विश्व अपांसि वितन्वते = इस बच्चेके लिये सुविचारों और सत्कर्मोंका बरतेव देती हैं।

यह मंत्र पुत्रविषयक माताओंका कर्तव्य बता रहा है। माताएं अपने पुत्रके लिये कपडा बुनती हैं इसमें प्रत्येक कपडेके साथ कितना प्रेम उस कपडेके तन्तुओंमें बुना जाता है इसका विचार पाठक अवश्य करें। यह कपडा केवल कपडा नहीं है परंतु इसके तृतीय मंत्रमें कहा है, कि—

राया व पोषै उपसंव्ययस्व । (मं ३)

यहां प्रत्येक तागा ऐश्वर्य है और धागा पुष्टि है। इस प्रकार यह कपडा बुना जाता है। अवश्य देखनेकी है कि, यहां माता अपने पुत्रप्रेमसे अपने छोटे बालकके लिये कपडा बुनती होगी। धन्य है वह माता और वह बालक जो इस

[illegible]

[illegible]

[illegible]

के लिये आशीर्वाद परक है, तथापि उसमें अपने पुत्रोंका महत्व इस प्रकार सूक्ष्म रीतिसे दर्शाया है। पाठक इसका विचार करें और इससे बोध प्राप्त करें तथा अपने घरमें इस महत्व पूर्ण बातका प्रचार करें। विशेषतः जो वैदिक धर्मी हैं उनको इसका आचरण अवश्य करना चाहिये।

सुदृढ शरीर।

हाथसे कते हुए सूतका कपडा पहननेसे शरीरमें कोमलता नहीं आती जैसे अन्य नरम कपडे पहननेसे आती है। यह कोमलता बहुत बुरी है इससे सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त नहीं होती। अतः अपना शरीर सुदृढ बनानेकी बहुत आवश्यकता है, बालकपनमें ही यह उपदेश इस सूक्त द्वारा सुनाया है इस " प्रथमवस्त्र परिधापन " के समय ही एक विधि बताया जाता है जिसमें वस्त्र पहनते ही उस बालकको पत्थरपर रखा जाता है और यह मंत्र बोला जाता है–

एधि वर्धमार्वा जातिष, ये तवेमे पञ्चवृक्षाः।
तं दासतः सर्वमायुः विश्वे देवाः कृणवन्तु हे (मं ४)

यहां जो इस पत्थरपर चढ, तेरा शरीर पत्थर जैसा सुदृढ हो तेरी सौ वर्षकी आयु सब देव करें। "

बालक सुदृढांग हो इस विषयका उत्तम उपदेश इस मंत्रमें है। छोटेपनमें मातापिता अपने बालक और बालिकाओंके सुदृढांग बनानेका यत्न करें और कभी ऐसा प्रसंग न करें कि जिससे बालक अरुग्न शरीरवाले हों। बडी आयु में कुमार और कुमारिका भी अपना शरीर सुदृढांग बनानेके प्रयत्नमें दत्तचित्त हों। इस प्रकार किया जाय तो आजी बजरेही बच जायगी। योगशास्त्र द्वारा भी वज्रकाय बनायी जाती है, इस विषयके प्रयोग योगशास्त्रमें पाठक देखें। घीत उत्तम आदि द्रव्योंके सेवन करनेके अभ्याससे भी मनुष्यका देह सुदृढ हो जाता है।

आगे पंचम मन्त्रके पूर्वार्धमें कहा है कि हे बालक! तेरे लिये जो इस यह प्रथम परिधान करने योग्य वस्त्र (प्रथम वास्तं वासः) बनाते हैं उस तुझको सब देव सहायकारी हों। ' इस मंत्रमें ' प्रथम परिधान करने योग्य वस्त्र " का उल्लेख है। इससे बालककी आयुका अनुमान हो सकता है। जन्मसे कुछ मास तक विशेष वस्त्र परिधानका ही नहीं आता। चतुर्थ मंत्रमें पत्थर पर खडा करने " का उल्लेख है। अपने पंजेसे न भी खडा हो सके तो भी दूसरेकी सहायतासे खडा होने योग्य बालक चाहिये। इस मंत्रसे इतनी बात निश्चित है कि यह बालक कमसे कम दो तीन वर्षकी आयुवाला हो जिस समय यह प्रथम वस्त्रपरिधापन किया जाता है। इसी आयुमें बालक कभी दूसरेकी सहायतासे क्यों न सही पत्थर पर खडा हो सकता है। कमसे कम हम इतना कह सकते हैं कि इससे कम आयु इस कार्यके लिये योग्य नहीं है। अस्वार्थ अतिशय से वस्त्र प्रयोग करने वालेके पत्थर पर चढनेका भाव बताते हैं। इसलिये तीन वर्षकी आयु कमसे कम मानना अनुचित नहीं है। चार या पांच वर्षकी आयु मानना भी कदाचित् योग्य होगा। इस आयुमें यह वस्त्र धारण समारंभ किया जाता है। इस समय जो अंतिम आशीर्वाद दिया जाता है वह भी देखिये यह बडा बोधप्रद है–

ओं त्वा सुजात सर्वमायुषे
बहवः सुयुजाः सवयः अनुजावरस्तामु ते (मं ५)

उत्तम जन्मे और उत्तम प्रकार बढने वाले तुझ बालकके पीछे बहुतसे बढनेवाले भाई तुम्हारी माताओंके उदरसे हों

कई माता पिता प्रतिवर्ष सन्तान उत्पन्न करते हैं यह उचित है या नहीं इसका विचार इस आशीर्वाद वचनसे किया जा सकता है। तीन चार वर्ष की बालक की आयुमें यह प्रथम-वस्त्र धारण-विधि किया जाता है इस विवरणमें इससे पूर्व कहा ही है। इसी समय यह आशीर्वाद दिया जाता है कि जैसा यह बालक हृष्टपुष्ट और तेजस्वी बलवान हुआ यह एक है वैसे और भी बच्चे इसके पीछे उत्पन्न हों। मानना कि यह आशीर्वाद प्रथम बालककी चतुर्थवर्षकी आयुके समय दिया है तो पंचम वर्षमें द्वितीय बालक के जन्मका समय आजाता है। इस प्रकार प्रत्येक दो बालकोंके जन्मोंके बीचमें पांच वर्षोंका अंतर होता है। देखिये—

(१) प्रथम बालकका जन्म। (२) उसके चतुर्थ वर्षमें यह प्रथम वस्त्र धारण विधि " करना है (३) इसमें बालक को पत्थर पर चढाकर खडा करना है और पत्थर जैसा सुदृढांग बन जानेका उपदेश सुनाया है। (४) इसी समय आशीर्वाद देना है कि तुम्हें इस पुत्र भाई भी पीछेसे हों।

यदि इसी प्रकार दूसरा बालक हो गया तो पहिले से पांचवें वर्ष दूसरे बालक का जन्म होना संभव है। अर्थात् पहिले बालकको माताका दूध अच्छीतरह मिलेगा जिससे पुत्रकी पुष्टि भी अच्छी प्रकार होगी माताके अवयव भी द्वितीय गर्भ धारण के लिये योग्य होंगे और सब कुछ ठीक होगा। जहां प्रतिवर्ष गर्भ धारण होती है वहां दूध न मिलनेके कारण बच्चे कमजोर होते हैं बीचमें पूर्ण विश्राम न मिलनेके कारण माता भी कमजोर होती है और सब प्रकार सब ही भय होता है। इसलिये पाठक इसका सौम्य विचार करें और यदि यह प्रथा अपने परिवारमें अच्छे योग्य प्रतीत हो, तो अनेक यत्न करें।

हमने प्रतिवर्ष प्रति तीन वर्ष प्रति पांच वर्ष और प्रति सात वर्ष सन्तानोत्पत्तिका कर्म करनेवाले कुटुंब देखे हैं। पहिले की अपेक्षा दूसरेकी और दूसरेकी अपेक्षा तीसरेकी शारीरिक निरोगता हमने अधिक देखी है। यह विचार विषय महत्व पूर्ण है इसलिये कुछ विस्तारसे यहां लिखा है। पाठक इसे अश्लील न समझें क्योंकि इसके साथ परिवारके स्वास्थ्यका विचार संबंधित है।

आशा है कि पाठक इस सूक्तका सौम्य विचार करेंगे और लाभ उठावेंगे।

—:०:—

विपत्तियोंको हटानेका उपाय ।

(१४)

[ऋषिः-चातनः । देवता शालाग्निर्देवत्य ।]

निःसालां धृष्णु विषमेकवाषां त्रिवृत्स्रजम्। सर्वाण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥१॥
निर्वो मोष्ठादजामसि निरक्षाभिरपानसात्। निर्वो मगुन्या दुरितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥
असौ यो अंघराद् गृहस्तत्र सन्तराण्यम्। तत्र सेदिर्नि च्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ३ ॥

अर्थ-[निःसालां] घरद्वार न होना, [धृष्णु] अपमान सहना अथवा दूसरोंके घरमें [एकवाष्यं त्रिवृत्स्रजं] विषयरूप एक मापक अन्नोत्पादी त्रिविधप्रकार वृद्धिका नाश करनेवाली तथा [सर्वाण्डस्य सदा नप्त्यः] क्रोधकी सब ही सब सन्तानें और [स—दान्वाः] दानवोंकी राक्षस वृत्तियोंका हम [नाशयामः] नाश करते हैं ॥ १ ॥

[वः मोष्ठात् निः अजामसि] तुमको हमारी गोशालासे हम निकाल देते हैं [अक्षात् निः] हमारी इंद्रियों बाहर तुमको करते हैं [अपानसात् निः] अन्नपानके गड्ढेसे आसपास तुमको हटाते हैं [मगुन्याः वः निः] मूर्खके मोह से तुमको हटाते हैं। हे [दुरितरः] दूर रहने योग्य ! तुम्हें [गृहेभ्य चातयामहे] घरोंसे हटाते हैं ॥ २ ॥

[असौ यः अंघरात् गृहः] वह जो नीच घराना है [तत्र सन्तराण्यं सन्तु] वहां विपत्तियां रहें [तत्र सेदिः] वहां ही क्षय [नि च्यतु] निवास कर [सर्वाः यातुधान्यः] सब दुष्ट वहां ही जाय ॥ ३ ॥

भावार्थ— आसुरी भावनाओंसे प्राप्त होनेवाली कई विपत्तियां हैं उनमें कुछ ये हैं—

(१) घरद्वार कुछ भी न होना

(२) अन्न और पान सब प्रतीत होना या दूसरोंके घरमांगा

भूतपतिर्निरृत्यिन्द्रश्रेतः सदान्वाः ।
गृहस्य वृक्षा आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणार्चे विष्वतु ॥४॥
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः। यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः॥५॥
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् । अर्वैप सर्वानाजीन्यो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६॥

अर्थ-[भूतपतिः इन्द्रः] प्रजापालक राजा [सदान्वाः इतः निरृत्यु] राक्षसी दुष्टियोंको यहांसे दूर करे। [गृहस्य वृक्ष आसीनाः] घरकी जडमें निवास करनेवाली दुष्टताएं [इन्द्रः वज्रेण अधिनिष्विदु] इन्द्र अपने वज्रसे हटावेरे ॥ ४ ॥

हे [स दान्वाः] आसुरी वृत्तिसे होनेवाली पीडाओ ! [यदि क्षेत्रियाणां स्थ] यदि तुम वंश संबंधी रोगसे उत्पन्न हुई हो, [यदि वा पुरुषेषिताः] यदि मनुष्य की प्रेरणासे उत्पन्न हुई हो [यदि दस्युभ्यः जाताः] यदि तुम डाकुओंसे हुई हो तुम सब [इतः नश्यत] यहांसे दूर जाओ ॥ ५ ॥

[आशुः गाष्ठां इव] जैसे घोडा अपने स्थान को पहुंचता है उसी प्रकार [आसां धामानि परि असरन्] इन विपत्तियोंके मूल कारणको दूर कर विनाश हो। [यः सर्वान् आजीन् अर्वैव] तुम्हारे सब संबंधोंको जीत लिया है जिससे हे [स-दान्वाः],पीडाओ ! [इतः नश्यत] यहां से दूर जाओ ॥ ६ ॥

---

(१) निश्चयात्मक एक बुद्धि कभी न होना अर्थात् सदा संदेह रहना

(२) मन सदा कोलाहलसे युक्त होना ये सब विपत्तियां हैं इनको पुरुषार्थसे हटाना चाहिये ॥ १ ॥

जिसप्रकार पुत्रियोंको विवाहादि करके घरसे दूर करते हैं उसी प्रकार इन विपत्तियोंको भी अपने घरसे दूर हटाना चाहिये। योगाभ्यासे घरोंसे अपनी दृष्टिसे अज्ञानरूप या गंदी रूप आदिके स्थानसे तथा मनकी वृत्ति से विपत्तियोंको हटानेका पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ २ ॥

जो नीच वृत्तिवालोंके घर हैं वहीं विपत्ति नाश तथा दुख इत्यादिभी रहते हैं ॥ ३ ॥

प्रजापालक राजाको चाहिये कि ऐसे दुष्टोंको अपने सुयोग्य शासनद्वारा दूर करे। किसी भी घरके अंदर दुष्टभाव आदर देने न पावे ॥ ४ ॥

इन पीडाओंमें कई तो आनुवंशिक रोगसे होनेवाली पीडाएं होती हैं कई तो मनुष्यके अपने व्यवहारसे उत्पन्न होती हैं, कई तो डाकुओंसे होती हैं इन सबको दूर करना चाहिये ॥ ५ ॥

जिसप्रकार घोडा अपना पांव उठा कर अभीष्ट स्थानपर पहुंचता है उसीप्रकार इन सब विपत्तियोंके मूल कारण देखकर उन मूल कारणोंको अपनेसेभी हटाना चाहिये। सब जीवनकालोंमें अपना विजय निःसंदेह हो जाने ऐसे अपनी तैयारी करने से और हरएक जीवनकालमें आप्त रहते हुए विजय प्राप्त करनेसे ही ये सब पीडाएं हट सकती हैं॥ ६ ॥

विपत्तियोंका स्वरूप।

इस सूक्तमें अनेक विपत्तियोंका वर्णन किया है वह क्रमशः देखिये—

१ निः साळा = साळा अर्थात् घर द्वार न होना निवास स्थान न होना विश्रामके लिये कोई स्थान न होना। (म १)

२ सृष्णु = सदा भयभीत रहना दूसरोंसे डरते रहना अधिकारियोंसे या कर्मोत्पादोंसे डरना ऐसे कुछ कुकर्म करना कि जिससे मनमें सदा डर रहे कि कोई आकर हमें पकडे। इसका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ दूसरोंका सताना भी है। दूसरोंको भय दिखाना धमकाना दूसरोंको भयभीत करके अपना स्वार्थ साधन करना है (म १)

३ एकयाचां चिरयं जिघांसस्य = एक निश्चय करनेवाली बुद्धिका नाश करनेवाला पाप पापरूप स्वभाव। बुद्धिसे कार्याकार्यका निश्चय होता है इस निश्चयात्मक बुद्धिका नाश करनेवाला स्वभाव। जिसमें निश्चयात्मक बुद्धिही नहीं होती, सदा संदेहमें ही रहता है। (मं १)

४ सर्वस्य सर्वा मपदः = सबका सब संतान। अर्थात् जोपसे जो जो आपत्तियां आना संभव है वे सब आपत्तियां। (म १)

५ स-दान्वाः (स-दानवाः)= असुरोंका नाम दानव है। दानवका अर्थ है दान पात्र करनेवाला। गीतामें आसुरी संपत्तिका वर्णन विस्तार पूर्वक है उस प्रकारके लोक जो पात्र पात्र करते हैं उनका यह नाम है। दानव भावसे युक्त होना यह भी बड़ी भारी आपत्ति ही है। (मं १)

६ अ-रात्यः = कृपणोंका भाव निर्धनता ऐश्वर्यका अभाव। (मं ३)

७ रोदिः = दुःख महादुःख। शारीरिक दुर्बलता दुर्बलता। कुछ भी काम करनेकी सामर्थ्य न होना। (मं ३)

८ मातुधान्यः = धन्यता न होना। चोर डकैति करनेवाले आग और उनके दिये दूषित भाव। (म ३)

ये सब आपत्तियां हैं। इनका विशेष विचार करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रायः सबका परिचय इनके साथ है अर्थात् सब इनसे भलीभांति परिचित हैं। इसलिये सभी चाहते होंगे कि ये सब दुःख दूर हों। इनके तीन भेद होते हैं-

तीन भेद।

१ क्षत्रियाः = अर्थात् कई आपत्तियां ऐसी होती हैं कि जो मनुष्य के स्वभावमें क्षत्रसे आती होती हैं वंशपरंपरासे प्राप्त होती हैं जन्म स्वभावसे होती हैं। (म ५)

२ पुरुषेषिता = दूसरी आपत्तियां ऐसी होती हैं कि जो (पुरुष-इषिता) अन्य मनुष्योंकी दुष्टिक प्रेरणाओंके कारण होती हैं। (मं ५)

३ वस्तु-न्याः आताः = तीसरी आपत्तियां ऐसी हैं कि जो वस्तु चोर डाकू आदि दुष्टोंसे उत्पन्न होती हैं। (मं ५)

आपत्तियोंके तीन भेद हैं (१) अपने जन्म स्वभावसे होनेवाली (२) दूसरे पुरुषोंकी दुष्टिक प्रेरणासे होनेवाली और (३) दुष्टोंसे उत्पन्न होनेवाली। इन सब आपत्तियोंको अवश्य दूर करना चाहिये।

कई आपत्तियां आत्मदोष आनेके स्थानसे ही उत्पन्न होती हैं जैसे रोगादि आपत्तियां हैं उनको दूर करनेके लिये उनके उद्गम स्थानमें ही प्रतिबन्ध करना चाहिये इस विषयमें द्वितीय मन्त्रका क्रम देखिये-

आत्मशुद्धि और गृहशुद्धि।

१ गोशपात् निः अजामसि— गोशालासे हटाता हूं अर्थात् गोशाला के दुःखसे जिन रोगादि आपत्तियोंकी उत्पत्ति हो सकती है उनको दूर करता हूं। गोशालाकी पवित्रता करनेसे इन आपत्तियोंका नाश हो सकता है। (म २)

२ उपावसात् निः अजामसि — अवघासके गृह अथवा शयन आदिके स्थानमें जो दुःख दोष होनेसे आपत्तियां आसकती हैं उनको शुद्धतासे इन आपत्तियोंसे मैं हटाता हूं। (मं २)

३ अवात् निः अजामसि- अपनी इंद्रियोंके दोषसे जो जो बुरे भाव पैदा होते हैं उनकी शुद्धि करने द्वारा मैं अपने अंदरके दोषोंको दूर करता हूं। इस प्रकार अपूर्ण इंद्रियोंके शुद्धिकरण द्वारा बहुतसी आपत्तियोंसे दूर किया जा सकता है। आत्मशुद्धि की सूचना यहां मिलती है। (मं २)

४ मनुष्याः निः अजामसि = (म-नुष्याः = मम अनुकूलाः) मनको मोहित करनेवाली वृत्तियोंसे तुमको हटाता हूं। मनकी मोहनिद्रा दूर करता हूं। यह मनकी शुद्धि है। (मं० २)

इस द्वितीय मंत्रमें अपने नेत्र आदि इंद्रियोंकी शुद्धि मनकी शुद्धि गोशालाकी शुद्धि घरकी शुद्धि बाड़ी आदि बाहर यहां रखे जाते हैं उन स्थानोंकी शुद्धि करने द्वारा आपत्तियोंको दूर करनेका उपदेश है। इस मंत्रके अंदर जिन बातोंका उल्लेख है उनमें जो जो अशुद्धि स्थान अवशिष्ट रहे होंगे, उन सबका ग्रहण यहां करना उचित है। इसका तात्पर्य यही है कि जहांसे आपत्तियां उठती हैं और मनुष्योंको सताती हैं उन स्थानोंकी शुद्धता करना चाहिये। पवित्रता करनेसे ही उन स्थानोंसे आपत्तियां दूर होती हैं। अशौचता आपत्तियोंको उत्पन्न करनेवाली और पवित्रता आपत्तियोंको दूर करनेवाली है। यह विषय पाठक प्रायः सर्वत्र समझ सकते और आपत्तियोंको हटा सकते हैं तथा सम्पत्तियां प्राप्त भी कर सकते हैं।

नीचस्थानमें विपत्तियोंका उगम ।

विपत्तियोंका उगम नीचस्थानमें है इस बातको अधिक स्पष्ट करनेके लिये तृतीय मन्त्रका उपदेश है । इसमें कहा है कि- 'जो यह (अवरात् गृहः) नीच घरमें है वहां ही सब कठिनियां विपत्तियां भय रोग, कलह और चोरी आदि दुष्ट भाव रहते हैं। नीच घरमें इनकी उत्पत्ति है। अपर शब्द यहां नीचताका द्योतक है। जो ऊपरवाला नहीं वह नीचस्थान है। यहां हीनता होगी वहीं आपत्तियोंका उगम होगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है ।

राजाका कर्तव्य ।

चतुर्थ मन्त्रमें कहा है कि ' (भूतपतिः इन्द्रः) प्राणिमात्रोंका पालक ऐसा राजा अपने सजातीय (सधस्थाः) सब बन्धुओं को और (यद्दस्य दुष्ट आवपाः) घरके अंदर किये हुए सब दुष्टोंको दूर करे । अर्थात् राजा अपने दुष्कर्मशील राजपुरुषों दुष्टोंको दूर करे और अपना राज्य सज्जनोंका घर जैसा बनावे । इस प्रकार उत्तम राजा सब प्रजाके दुष्टोंको प्रतिबन्ध होनेसे सज्जनोंका मार्ग सुलभ होता है । सुराज्य होना भी एक बड़ा साधन है कि जिससे आपत्तियां कम होती हैं या दूर होती हैं ।

जीवनका युद्ध ।

आपत्तियोंके साथ झगड़ा करना, विपत्तियोंसे लड़ना और उनका पराभव करके अपना विजय संपादन करना यह एक बड़ा उपाय है जिससे आपत्तियां दूर हो सकती हैं । पाठक विचार करेंगे तो उनके ध्यान में आयेगा कि यह युद्ध हरएक स्थानपर करना पड़ता है । शरीरमें व्याधियोंसे झगड़ना है समाजमें डाकु तथा दुष्टोंसे लड़ना होता है, राष्ट्रमें विदेशी शत्रुओंसे युद्ध करना होता है और विश्वमें अतिदुष्ट अनार्य लोगोंसे युद्ध करना पड़ता है। इस छोटे मोटे सर्वक्षेत्रोंमें छोटे मोटे युद्ध करने ही होते हैं । इन युद्धोंके बिना और यहां अपना विजय प्राप्त किये बिना सुखमय जीवन होना असंभव है । यही बात इस सूक्तके पांच मन्त्रमें कही है—

यः सपत्नो यो अरातिर्यो द्वेषति । (मं ५)

सब युद्धोंमें है विजय पाता हूं । इस प्रकार सब युद्धोंमें विजय पानेसे ही मनुष्यके पासके सब विपत्तियां दूर हो जाती हैं और मनुष्य ऐश्वर्य संपन्न हो जाता है । प्रत्येक युद्धमें अपना विजय होने योग्य शक्ति अपने घरमें बढ़ानी चाहिए । अन्यथा विजय होना असंभव है । शत्रुशक्तिसे अपनी शक्ति बड़ी रही तभी विजय हो सकता है अन्यथा पराजय होना । पराजय होनेसे विपत्तियां बढ़ेंगी । इस लिये शत्रुशक्तिसे अपेक्षा अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए। और अपना विजय संपादन करना चाहिये। विपत्तियों को दूर करनेका यह सुलभ उपाय है इसका विचार पाठक करें और अपनी विपत्तियां हटानेके प्रयत्नमें कृतार्थ हों।

पहिले जितनी भी आपत्तियां गिनी हैं सब उनके निवारण करनेके लिये यही एक मात्र उपाय है। इससे पहिले कई उपाय बताये हैं । राम लक्ष्मण सुग्रीव आत्मबुद्धि भाव बुद्धि आदि सभी उपाय उत्तम ही हैं, परन्तु उनमें इस आत्मबुद्धि के उपाय की विशेषता है यह बात भूलना नहीं चाहिये ।

जिस प्रकार चींटा चलकर अपने प्राप्तव्य स्थानपर पहुंचता है उसी प्रकार मनुष्य भी प्रयत्न करके ही प्रत्येक इस स्थानपर पहुंचता है । इसलिये मनुष्य प्रयत्न करके ही पुरुषार्थसे सिद्धिको प्राप्त करे । प्रत्येक पुरुषवान मनुष्यको पुरुषार्थसे ही प्राप्त हो सकता है । पुरुषार्थ प्रयत्नके बिना विपत्तियां दूर होना असंभव है ।

विपत्तियोंको हटानेके विषयमें यह सूक्त बड़े महत्व पूर्ण आदेश दे रहा है । पाठक यदि इसका उत्तम विचार करेंगे तो उनको अपनी विपत्तियां हटानेका और संपत्तियां प्राप्त करनेका मार्ग अवश्य दिखाई देगा । आशा है कि पाठक इस सूक्तसे लाभ प्राप्त करेंगे ।

—:०:—

निर्भय जीवन ।

(१५)

[ऋषिः ब्रह्मा । देवता प्राणः, अपानः, आयुः]

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ १ ॥
यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा० ॥ २ ॥
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा० ॥ ३ ॥
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा० ॥ ४ ॥
यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा० ॥ ५ ॥
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ६ ॥

अर्थ (यथा द्यौः च पृथिवी च) जिस प्रकार द्यौः और पृथिवी (न बिभीतः) नहीं डरते इसलिये (न रिष्यतः) नहीं नष्ट होते, (एवा) वैसे ही (मे प्राण) हे मेरे प्राण ! (मा बिभेः) तू मत डर ॥ १ ॥
जिस प्रकार (अहः च रात्री च) दिन और रात्री नहीं डरते इसलिये विनाशको प्राप्त नहीं होते ॥ २ ॥
जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र ॥ ३ ॥
ब्रह्म और क्षत्र ॥ ४ ॥
सत्य और अनृत ॥ ५ ॥
भूत और भविष्य नहीं डरते इसलिये विनाशको प्राप्त नहीं होते, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू मत डर ॥ ६ ॥

भावार्थ- द्युलोक पृथ्वी दिन रात्रि सूर्य चन्द्र ब्रह्म क्षत्र आनी सृष्टि सत्य अनृत भूत भविष्य आदि सब विशेष भी कभी डरते नहीं इसलिये विनाशको प्राप्त नहीं होते । इस से बोध मिलता है कि निर्भय वृत्ति से रहना विनाशसे बचनेकी साधना है अतः हे प्राण ! तू इस शरीरमें निर्भय वृत्ति से रह और अमृतत्व को प्राप्त कर ॥ १ ॥ ६ ॥

निर्भयतासे अमरपन ।

इस सूक्तका मुख्य उपदेश यह है कि जो नहीं डरते या निर्भयतासे अपना कार्य करते हैं वे मरणको प्राप्त नहीं होते । उदाहरणके लिये द्यौः पृथ्वी दिन रात सूर्यचन्द्र इनका नाम इस मन्त्रमें लिया है । दिन रात या सूर्यचन्द्र किसीका भय न करते हुए नित्यप्रयत्नसे अपना काम करते हैं । उसमें होत ही अपना होना या अस्तसे अपना अस्तित्व इसी कार्य में व्यवस्थित चलते रहते हैं । इसीको वेद नहीं करते विनाशी विचारसे नहीं सुनते विचार करते नहीं अथवा विचार बोध भी नहीं करते । अपना नियमित कार्य करते आते हैं इसलिये ये विनाशको प्राप्त नहीं होते । इसलिये जो मनुष्य निडर होकर अपना कर्तव्यकर्म करता वह भी विनाश को प्राप्त नहीं होता । (म १ २)

ब्रह्म क्षत्र ।

अन्ने मनुष्य जन्मसे ब्रह्म और क्षत्र का उदय है । इसका अर्थ ब्रह्म और क्षत्र है जिस प्रकार द्यौ और पृथ्वी अथवा सूर्य चन्द्र आदि का उदय भी है । सूर्यचन्द्रादिकोंका उदय होना ब्रह्म और क्षत्रका उदय होना है । जिस प्रकार सूर्य चन्द्र आदि अपने अपने कार्य में निडर होकर अपना कार्य करते हैं वैसे ही मनुष्य को भी निडर होकर अपना कर्तव्यकर्म करना चाहिये ।

हुए अपना कर्तव्यकर्म योग्य रीतिसे करते जाव। जिन ब्राह्मण क्षत्रियोंने ऐसा विचार मनमें धरकर अपने कर्तव्य कर्म किये हैं वे अपने यश से इस समय तक अंकित रहे हैं। और आगेभी वे मार्गदर्शक बनेंगे। ऐसे आदर्श ब्राह्मणों और आदर्श क्षत्रियोंका उदाहरण सन्मुख रखकर अन्य लोग भी मन छोडकर अनासक्तीसे अपने कर्तव्य कर्म करते रहेंगे तो वे भी अमर बनेंगे।

सत्य और अनृत ।

सत्य और अनृत भी इसी प्रकार किसीकी अपेक्षा नहीं करते। जो सत्य होता है वही सत्य होता है और जो असत्य होता है वही असत्य होता है। कई प्रसंगोंमें स्वार्थपरी मनुष्य अपने अधिकारके बलसे असत्यको सत्य और सत्यको असत्य सिद्ध कर देते हैं। परंतु यह बात थोडे समयके बाद प्रकट होजाती है और अधिकारियोंकी पोल भी उसके साथ खुल जाती है। इस लिये कुछ समय किसीके दबावसे कुछ न कुछ चल जाय यह बात असत्य है, परंतु अंतमें सत्य और अनृत अपने असलीरूपमें प्रकट हुये बिना नहीं रहते। इसलिये सदा सत्य पक्षका ही अवलंब करना चाहिये जिससे मनुष्य निर्भय बनकर सदाके परम अधिकारी होता है।

भूत और भविष्य ।

इस मंत्रमें भूत और भविष्य इन दो कालोंके विषयमें कहा है कि वे किसीसे डरते नहीं। यह बिलकुल सत्य है। सत्य सदा वर्तमान कालमें ही होता है। जो कालेपनके बादशाह थे जिन्होंने अपनी तलवारके डरावेसे लोगोंसे सलाम ले अब भूत कालमें होगये हैं। उनका घर अब नहीं रहा है और वे अपने असली रूपमें जनताके सन्मुख खडे होसके हैं!! साधारणसे साधारण इतिहास वाचक विचार करनेवालेको भी उसको अपने मतसे दोषी ठहराता है और वे अब उसका कुछ भी बिगाड नहीं कर सकते। क्योंकि वे भूत कालमें दब गये हैं। इसलिये बडे प्रतापी राजा भी भूत कालमें दब जानेके बाद एक साधारण मनुष्य के सदृश असहाय हो जाते हैं। इतना भूतकालका प्रभाव है। पाठक इस कालके प्रभाव को देखें। समर्थसे समर्थ भी इस भूत कालमें जब दब जाता है तब उसका सामर्थ्य कुछ भी नहीं रहता। परंतु जो सर्वात्मा सत्यनिष्ठ सत्पुरुष होते हैं उनकी कीर्ति इसी भूतकालसे चमकती जाती है। रावणका पराक्रम कौन समझ हरएकको भी हुआ था परंतु सत्यवादी रामचंद्रजीका चरित्र उस समयही जितनी तुच्छ दृष्टिसे नहीं प्रत्युत आज भी अनंत लोगोंके मार्गदर्शक होरहा है!! यह भूत कालकी महिमा होगई। भूतकाल निडर है किसीकी पर्वाह नहीं करता और उसके असली रूपमें उसके सामने कर देता है।

भविष्य काल भी इसी प्रकार है। अज्ञानलोकोंको भविष्य कालमें भी अपने सदृश्य विजय होनेकी आशा रहती है। अपने शासनके अंदर दूसरे लोग भविष्य कालकी ओर देखकर ही चकित रहते हैं। क्योंकि वर्तमान कालका घर भविष्यमें नहीं रहता वह भूत कालका घर आज बन रहा है।

पाठक इससे जान गये होंगे कि भूत और भविष्य इन दो कालोंके विषय होनेका तात्पर्य क्या है। इस बातको देखकर मनुष्य मात्र यह बात समझें कि सत्यका ही जय होता है इसलिये सत्यके आधारसे ही मनुष्य अपना व्यवहार करे और निडर होकर अपना कर्तव्य पालन करें।

अमर वृत्तिसे ही अमरपद प्राप्त हो सकता है।

विश्वंभर की भक्ति।

(१६)

(ऋषिः ब्रह्मा । देवता-प्राणः, अपानः, आयुः)

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ-हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (मृत्योः मा पातं) मृत्युसे हमसे बचाओ (स्वाहा) मैं आत्म समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

हे पृथिवी और द्युलोक ! (उपश्रुत्या मा पातं) श्रवण शक्तिसे मेरी रक्षा करो० ॥ २ ॥

हे सूर्य ! (चक्षुषा मा पाहि) दर्शन शक्तिसे मेरी रक्षा कर ॥ ३ ॥

हे वैश्वानर अग्ने ! (विश्वैः देवैः मा पाहि) समस्त देवोंके साथ मेरी रक्षा कर ॥ ४ ॥

हे विश्वभर ! (विश्वेन भरसा मा पाहि) संपूर्ण पोषण शक्तिसे मेरी रक्षा कर, (स्वाहा) मैं आत्मसमर्पण करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ-प्राण और अपान मृत्युसे बचावें ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी अर्थात् द्युलोकी महाशक्तिसे सुन दर्शन शक्तिसे मेरा बचाव करें ॥ २ ॥ ३ ॥

विश्वम्भापक पुरुष सब दिव्य शक्तियों द्वारा तथा विश्वंभर ईश्वर अपनी पालन पोषक शक्ति द्वारा मेरी रक्षा करें। मैं अपने आपको उनकी रक्षामें समर्पित करता हूं ॥ ४-५ ॥

विश्वभर देव ।

इस सूक्तके अंतिम पांचवें मंत्रमें विश्व-भर शब्द है विश्वका भरण और पालन करनेवाला देव यह इसका अर्थ है। सम्पूर्ण जगत्का भरण पोषण करनेवाला एक देव यहां विश्वंभर शब्दसे कहा है। यह विश्वंभर शब्द परमात्मवाचक वेदमें पहली बार है। और इस शब्द द्वारा यहां जगत् के एक देव की उत्तम कल्पना स्पष्ट की गई है। मं ५

इस जगत् के भरण पोषण करनेवाले इस देवके पास (विश्वेन भरसा) विश्वम्भापक पालक रस है जिससे यह देव सब जग का पोषण करता है।

वैश्वानर ।

अगले मंत्रमें इसीका नाम देवा-नर' है इसका अर्थ है विश्वका नेता विश्वका संचालक सैंकड़ों जगत् का भर यह जगत् म मुख्य एक जगत् में मुख्य पुरुष। यही विश्वेका नायक अ व पालक विष्णु कहा है। [एक प्रकार नाम पालक वाचक है इसी प्र।

यह जगत्का मुख्य पुरुष भी सर्व जगत् में व्यापक हो रहा है। सूर्य चंद्रादि सब (विश्वेदेवैः) अन्य देव इसीके पास्ते रहते हैं और अपना अपना कार्य करते हैं। इसीकी आज्ञा पालन करनेवाले सब अन्य देव हैं। ये अन्य देव इसीके सहचारी देव हैं।

एक उपास्य।

पाठक इस सूक्तके ये दो शब्द 'विश्वंभर और वैश्वानर' देखें और इनके मतलबसे अद्वितीय उपास्य परमात्म देवकी भक्ति करना सीखें। यह सब जगत्का भरण पोषण करनेवाला है इस लिये यह हमारा भी भरण पोषण करेगा ही इसमें क्या संदेह है। जिस ने अन्य देवोंके पूर्व ही माताके स्तनोंमें बालकके लिये दूध तैयार रखा होता है उसकी सार्वत्रिक भरण पोषण शक्ति कितनी कि आप है इसकी कल्पना हो सकती है। ऐसे अनंत सामर्थ्यवाली विश्वंभरकी भक्ति करना ही मनुष्य मात्रका कर्तव्य है।

देवोंद्वारा रक्षा।

सूर्य नेत्र इन्द्रियमें दर्शन शक्ति रख कर मनुष्य की रक्षा कर रहा है वायु पृथिवीमें चारों ओर फैली हुई दिव्यशक्ति द्वारा मनुष्यकी रक्षा कर रही है। इसी प्रकार आप और अन्नमय शरीरमें रक्षा कर रहे हैं यह बात हरएकके पास प्रत्यक्ष हो सकती है। इसी तरह अन्यान्य देव अन्यान्य स्थानोंमें रहते हुए हमारी रक्षा कर रहे हैं।

यह सब उषा विश्वंभर की कृपासे होरहा है इस का मनुभव करके उसी एक अद्वितीय प्रभुकी भक्ति करना हरएक मनुष्यके लिये कर्तव्य है। आशा है कि इस रीतिसे विश्वंभरकी भक्ति करके पाठक शाश्वत कल्याणके भागी होंगे।

आत्मसंरक्षण का बल।

(१७)

(ऋषिः ब्रह्मा। देवता-प्राणः, अपानः, आयुः)

ओजोऽस्योजो मयि धाः स्वाहा ॥ १ ॥
सहोऽस्यसहो मयि धाः स्वाहा ॥ २ ॥
बलमस्यबलं मयि धाः स्वाहा ॥ ३ ॥
आयुरस्यायुर्मयि धाः स्वाहा ॥ ४ ॥
भोर्त्रमस्यभोर्त्रं मयि धाः स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ (ओजः असि) तू शारीरिक सामर्थ्य है (मे ओजः धाः) मुझ शरीर सामर्थ्य दे ॥ १ ॥
तू (सहः असि) सहन शक्तिसे युक्त है (मे सहः धाः) मुझे सहनशक्ति दे ॥ २ ॥
तू बल स्वरूप है मुझे बल दे ॥ ३ ॥
तू (आयुः असि) आयु अर्थात् जीवनशक्ति है मुझ में वह जीवनशक्ति दे ॥ ४ ॥
तू (भोत्रं) भक्षणशक्ति है मुझे वह भक्षणशक्ति दे ॥ ५ ॥

चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥ ६ ॥
परित्राणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥ ७ ॥
(इति तृतीयोऽनुवाकः ।)

अर्थ- तू (चक्षुः) दर्शन शक्ति है मुझ दर्शन शक्ति दे ॥ ६ ॥

तू (परित्राणं असि) सब प्रकारसे आत्मरक्षा करनेकी शक्ति है मुझे आत्मसंरक्षण करनेकी शक्ति दे। (स्वा हा) मैं आत्मसमर्पण करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू सामर्थ्य पराक्रम, बल जीवन चक्षु दर्शन और परित्राण इन शक्तियों से युक्त है, इसलिये मुझे इन शक्तियोंका प्रदान कर ॥ (१—७)

(१८)

(ऋषिः चातनः । देवता अग्निः)

आतृव्यक्षयणमसि आतृव्यचातन मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातन मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥
अरायक्षयणमस्यराय-चातन मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥ ४ ॥
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वचातन मे दाः स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ-तू (आतृव्य चातन) शत्रुओंका नाश करनेकी शक्तिसे युक्त है मुझे वह बल दे ॥ १ ॥

तू सपत्नोंका नाश करनेकी शक्तिसे युक्त है मुझे वह बल दे ॥ २ ॥

तू (अ-राय क्षयण) निर्धनताका नाश करनेका बल रखता है मुझे वह बल दे ॥ ३ ॥

तू (पिशाच-क्षयण) मांस भूमनेवालोंका नाश करनेकी शक्ति रखता है मुझे वह बल दे ॥ ४ ॥

तू (स दान्वाक्षयण) आसुरी वृत्तियों को दूर करनेकी शक्ति रखता है मुझे वह बल दे मैं (स्वा हा) आत्मसमर्पण करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ मेरी शत्रु कृत्रिम सूक्ष्मरूप और स्थूलशरीरसे इनसे बचनेकी शक्ति तो अवश्य है यह शक्ति मुझमें स्थिर कर मैं अपना आप को तेरे लिये अर्पण करता हूं ॥ १ ५ ॥

बलकी गणना ।

इस दो सूक्तमें आत्म संरक्षणके लिये आवश्यक बलोंकी गणना की है वह बल ये हैं-

१ ओजः स्थूल शरीरकी शक्ति पुट्ठोंका बल

२ सहः-शीत उष्ण आदि अन्य आक्रमण । सहन करनेका बल। अथवा शत्रु व शत्रुके बलको जो भी कष्ट सहन करनेकी आवश्यकता हो वे कष्ट आक्रमणसे सहन करनेकी शक्ति उसका नाम है। शत्रुका हमला आनेपर न डरना तथा अपना स्थान न छोड़ना अर्थात् शत्रुका हमला आनेपर तो भी अपने स्थानमें डटे रहना। यह भी एक सहन करना ही है। सहन ही से शत्रु पराभूत न होना इसका ही नाम शत्रु शत्रुके कष्ट पहुंचाने ही न देना। शत्रुके हमले सहते रहने तथापने स्थिर रहना और शत्रुको पराभूत करना या शत्रुके ऊपर आक्रमण करना।

३ बल-बल पराक्रमके बल। अग्निके दो रूप आध्यात्मिक इस दिखाई देनेवाले शरीरके अन्दर भी बल शत्रु नाश करनेवाले आवश्यक होते हैं वह बल।

४ आयु—दीर्घ आयु आरोग्य पूर्ण दीर्घायु ।

५ श्रोत्र—कान आदि इंद्रियोंकी शक्तियां । श्रवणसे प्राप्त होनेवाला अपरोक्ष सम्बन्धित ।

६ चक्षुः—चक्षु आदि इंद्रियोंकी शक्तियां । प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य विज्ञान ।

७ परिपाण—परित्राण की शक्ति । अपनी (पूर्व) सरक्षण करनेकी शक्ति । (परि) सब प्रकारसे तथा (पालं) सरक्षण करनेकी शक्ति ।

८ प्रातृव्य—शत्रुत्व—प्रातृव्य शब्दका अर्थ यहां विशेष मननसे देखना चाहिये । दो भाईयोंके पुत्र आपसमें प्रातृव्य बन जाते हैं । यह घरमें प्रातृव्यपन है । इसी प्रकार दो राजा आपसमें भाई होते हैं और उनकी प्रजा आपसमें " प्रातृव्य " कहलाती है । इसमें घरंपार युद्ध प्रसंग होते हैं । ऐसे राष्ट्रीय युद्धोंमें शत्रु पक्षका निराकरण करनेकी शक्ति मनमें आनी चाहिए तभी विजय होगा । अन्यथा पराभव होगा । राष्ट्रीय शत्रुत्व नष्ट करनेकी बात इस शब्द द्वारा बताई है । यह घरके बाहरके शत्रुसे युद्ध है ।

९ अपवरहणम्—एक दूसरेके घरमें घुस प्रतिपक्ष हानि करते हैं । इस चोर भेदी का नाम " अपवर " है क्योंकि ये एक्दी पतिके घरमें हानि करते हैं । इसमें विशेष प्रकारकी सतर्कता होना स्वाभाविक है । इस स्पर्धामें विजय प्राप्त करने या कम करनेके लिये हथियार अथवा विजय सिद्ध करनेका यह नाम है । यह राष्ट्रके अंतर्गत युद्ध है ।

१० अवावहणम्—इस शब्द अवघा वाचक है और अवम शब्द निर्धनताका वाचक है । यह निर्धनता दूर प्रकारसे दूर करना आवश्यक है । वैद्यों और औषधोंके उपयोगसे यह बात साध्य हो सकती है ।

११ पिशाचक्षयणम्—रक्तमांस चूसनेवालोंका नाम पिशाच है । (पिशितासृ- पिशाच) रक्त पीनेवाले रोग भी हैं जिनमें रक्त की क्षीणता होती है । मनुष्योंमें ये लक्षण कि जो रक्त मांस चूसते होते हैं। इसमें भी कपडा बांध खानेवाले विशेषतः पिशाच कहलाते हैं । समाज से इनको दूर रखना योग्य है ।

१२ क-दान्वाक्षयणम्—(क—दानव—दुर्जन) असुर राक्षसोंका नाश करना, या उनको दूर करना । यह पुराणोंमें देव असुर युद्ध नामसे प्रसिद्ध है । आज भी अपने समाजमें तथा तथा अन्य समाजोंमें तथा देवासुरोंके झगडे चलते रहे हैं और उसमें असुरोंका पराभव होना ही आवश्यक है यह सब बात स्पष्ट होनेके कारण इसका अधिक विचार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

स्वाहा विधि ।

ये बारह यक्ष अपने अपने घरसे भगाने चाहिये । इन यक्षोंका उपशम करनेकी रीति भी विभिन्न हो सकती है। पाठक प्रत्येक यक्ष और उसके प्रशम उपाय अच्छी प्रकार मनन करेंगे तो उनको इस बातका पता लग सकता है । दूसरोंका आचमन करनेके अर्थ में अपने मनका उपशम करना तो सब जानते ही हैं परंतु इन दो सूक्तोंमें इन सबों का उपशम स्वाहा विधिसे करनेको कहा है । " स्वाहा विधिका तात्पर्य आत्मसर्वस्वात्मक समर्पण करना है । पूर्णाहुति अग्निमें जिसे भोजन यज्ञ करना स्वाहाका तात्पर्य है ।

इस स्वाहा यज्ञ द्वारा सब यक्षोंका अपने अपने घरसे भगाना और इसी स्वाहा विधि द्वारा उनका उपशम किया जाना इस उपदेश इन सूक्तोंमें विशेष महत्त्व रखता है ।

स्व = अपना
हा = त्याग } — आत्म—सर्वस्व—समर्पण ।

यह विधि आत्मयज्ञका ही दूसरा नाम है । यह विधि अग्निहोत्रका उपशम करनेकी अवस्थिति बता रहा है । आजतक इस विधिमें तो दूसरोंका विनाश सुलभ बात है और आत्मसमर्पण सुलभ बात है । सब असुरोंका या असुरी वृत्तियोंका इसी विधिसे वैसा करना यह एक बडी आवश्यकता है । परंतु पाठक इसका बहुत विचार करेंगे तो इस समस्याका हल स्वयं हो सकता है । क्योंकि यह स्वाहाविधि बहुत सुलभ सरल है ।

[illegible] सूक्त में बारह मंत्र हैं । प्रत्येक मंत्र में आ प्राप्त होना है [illegible] "इदम्" का उत्तर हुआ है । पाठक विचार करेंगे तो उनको यह अच्छा है कि यह एक प्रकार ज्ञान है । [illegible] मनु सबसे विलक्षित हो गई और अब अब बहुत दूर से भी बहता जल तो जितनी दूरी से बन सका है । एकही आत्मिक शक्ति की बात स्थिर । [illegible] बना मंत्र है बना बलवान् है [illegible] यह [illegible] सूक्त में हुआ तो यह बहुत कुछ [illegible] पर बहना है । परंतु और यह मंत्र अपनी विज्ञान शक्ति [illegible] करने व [illegible] करने में [illegible] अपना आने व [illegible] परमात्मपर्यन्त [illegible] । तो कितना काम हो सकता है । इसी प्रकार [illegible] करने में [illegible] । और [illegible] ही [illegible] [illegible] हो सकता है । और [illegible] भी हो सकता है ।

इसलिए इस [illegible] सूक्त में बारह बार "इदम्" का उच्चारण करके [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] करने में [illegible] [illegible] [illegible]

सूर्य यत्तेऽर्चिस्तेन ꣳ ह प्रस्पर्च यो० ॥ ३ ॥
सूर्य यत्ते शोचिस्तेन त प्रति शोच यो० ॥ ४ ॥
सूर्य यत्ते तेजस्तेन तमंतेजसं कृणु यो० ॥ ५ ॥
(२२) चन्द्र यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो० ॥ १ ॥
चन्द्र यत्ते हरस्तेन त प्रति हर यो० ॥ २ ॥
चन्द्र यत्तेऽर्चिस्तेन त प्रस्पर्च यो० ॥ ३ ॥
चन्द्र यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो० ॥ ४ ॥
चन्द्र यत्ते तेजस्तेन तमंतेजसं कृणु यो० ॥ ५ ॥
(२३) आपो यद्वस्तपस्तेन तं प्रति तपत यो० ॥ १ ॥
आपो यद्वो हरस्तेन त प्रति हरत यो० ॥ २ ॥
आपो यद्वोऽर्चिस्तेन तं प्रस्पर्चत यो० ॥ ३ ॥
आपो यद्वः शोचिस्तेन त प्रति शोचत यो० ॥ ४ ॥
आपो यद्वस्तेजस्तेन तमंतेजसं कृणुत यो३स्मान्द्वेष्टि य वयं द्विष्मः॥ ५ ॥

अर्थ हे अग्नि वायु सूर्य चन्द्र, और आप् देवता ! आपके अन्दर जो (तपः) तपानेकी शक्ति है उससे (तं प्रति तप) उसको तप्त करो (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है और (यं वयं द्विष्मः) जिसका हम द्वेष करते हैं ॥ १ ॥

हे देवो ! जो आपके अन्दर (हरः) हरण करनेकी शक्ति है उससे उसका (प्रतिहर) दोष हरण करो जो हमसे द्वेष करता और जिसका हम द्वेष करते हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! जो आपके अन्दर (अर्चिः) दीपन शक्ति है उससे उसका (प्रस्पर्च) संदीपन करो जो हमारा द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं ॥ ३ ॥

हे देवो ! जो आपके अन्दर (शोचिः) शुद्ध करनेकी शक्ति है उससे उसको (प्रति शोच) शुद्ध करो जो हमसे द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! जो आपके अंदर (तेजः) तेज है उससे उसको (अतेजसं) अतेजस्वी करो जो हमसे द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे अग्नि वायु, सूर्य चन्द्र और आप् देवो ! आपके प्रत्येकके अंदर तप हर, अर्चि शोचि और तेज ये गुण शक्तियां हैं इसलिये कृपा करके हमारे द्वेषियोंसे परिशुद्ध करो, अर्थात् उनको तपाकर उनके दोषोंको हरकर उन में आंतरिक प्रकाश उत्पन्न करके उनकी शुद्धि करके और उनको आपके दिव्य तेज से प्रभावित करके शुद्धि करो। जिससे वे कभी विरोधिक द्वेष न करेंगे और बिलकुल कर आपसमें रहेंगे ॥

पांच देव

इन पांच सूत्रोंमे पांच देवताओंकी प्रार्थना की गई है अथवा दुर्गोक्त सुधारके अर्थ में उनके शक्तियोंकी याचना की गई है। वे पांच देवताएं वे हैं—

अग्नि वायु सूर्य चन्द्र आपः ।

अग्निमें तपानेकी शक्ति वायुमें हिलानेकी शक्ति सूर्यमें प्रकाश शक्ति, चन्द्रमें शैत्यता और आप (जल) में पूत शक्ति है। अर्थात् ये देवताएं इस व्यवस्थासे एकके पश्चात दूसरी आयी है कि पहिले तपानेसे प्रारंभ होकर सबके अन्तमें शांति मिल जाय। अतिम दो देव चंद्र और आप् पूत शांति देनेवाले है। अग्नि और सूर्य तपाने वाले हैं और वायु प्राणपति या जीवन अतिरिक्त दाता है। बाद पठक यह व्यवस्था देखकर तो उनसे दुर्गोक्त सुधार करनेकी विधि विधिवत् ज्ञात होगी।

पंचायतन ।

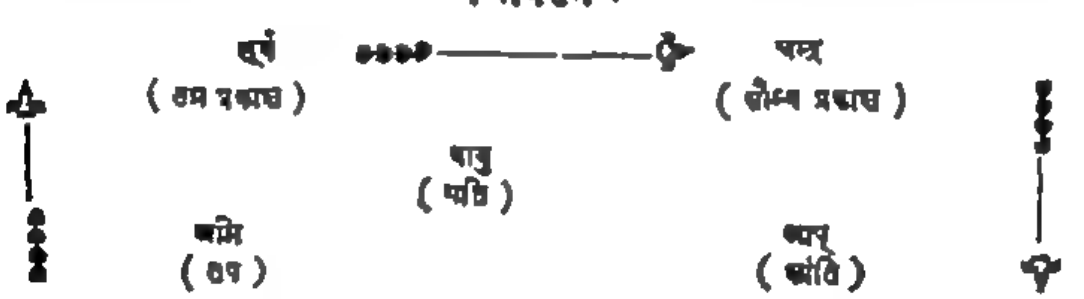

पहिले अग्नि तपाता है वायु उसमें गति करता है और वे दोनों सूर्यके तम प्रकाशमें उसे रख देते हैं। उसके पश्चात् चंद्रमाका शैत्य प्रकाश आता है और पश्चात् जल उसकी पूर्ण शान्ति या शांतिमय जीवन उसे प्राप्त होता है। शुद्ध होनेपर वह सूर्य है। वह तम विशेष मात्रामें पूर्ण है। और इसी लिए इन पांचों सूत्रोंमें विचार यहां इकट्ठा किया है।

पांच इन्द्रोंकी पांच शक्तियाँ ।

पांच इन्द्रोंकी पांच शक्तियां इन सूत्रोंमें वर्णन की है। उनके नाम ये है।

' तम, हरः अग्निः ओषधि, तमः ' ये पांच शक्तियां हैं। ये पांचों शक्तियां अलग अलग हैं। इनके पृथक् काम करते हैं कि हरएक की ये शक्तियां भिन्न हैं। जो अग्नि तम तेज और जलका शैत्य मिल होनेमें दिखाने भी अग्नि नहीं हो सकती। इसलिए अलग देवताके पास ये पांच शक्तियां हैं परंतु उनका स्वरूप और काम भिन्न भिन्न ही है। जैसा हरः नामक शक्ति विषयमें जानेंगे। हरः का अर्थ है " हरण करना " हरनेवाला। यहां इस एकही शक्तिका उपयोग पांच देव भिन्न प्रकार करते हैं देखिये—

१ अग्नि—शीतलताका हरण करता है तपता है।
२ वायु—जडता का हरण करता है तपाता है।
३ सूर्य—तमका हरण करता है आयु बढाता है।
४ चन्द्र—तप्तताका हरण करता है तमका प्रकाश देता है।
५ जल—शारीरिक मलका हरण करता है शुद्धता करता है।

प्रत्येक हरण करता है परंतु अलग हरण करनेके प्रकार भिन्न हैं इसी प्रकार " तमः हरण तपन शैत्य और तमः ये इन्द्रोंके अनुभवका सुधार होता है। अलग अलग ये पांच तत्त्व हैं और पांच इन्द्रों हैं इस तरह सुधार होकर

लिए पवीस ज्ञानेन्द्रियोंसे छाना आवश्यकता है यह बात पाठक विचार करनेसे सहज ही में जान सकते।

यह शुद्धिकी विधि देखनेके लिए हमें यहां इन पांच गुण शक्तियोंका अवश्य विचार करना चाहिये—

१ तपः तपाना, तपना। इसका महत्त्व बड़ा भारी है। सुवर्णादि धातु अग्निमें तपने से ही शुद्ध होते हैं। अधिक अधिक मानसिक तपसे ही मनुष्यकी शुद्धि होती है। तपना अनेक प्रकारसे होता है। तप बहुत प्रकारके हैं इन सब का संक्षेप कुछ करना ही है।

२ हरः—हरण करना हरलेना। दोषोंको हरण करना दोषोंको दूर करना। सुवर्णादि धातुओंके अग्निमें तपनेसे दोष दूर होते हैं और उनकी शुद्धता होती है। इसी प्रकार अन्यान्य तप करनेसे दोष दूर होते हैं और शुद्धि होती है।

३ अर्चिः—अर्च् धातुका अर्थ 'पूजा और प्रकाश' है। पूर्वोक्त दो विधियों द्वारा शुद्धता होनेके पश्चात् वह पूजा या सत्कार का प्रकाश उस मनुष्यके अंदर आया जाता है। दोष दूर होनेके पश्चात् ही यह होना है इससे पूर्व नहीं।

४ शोचिः—शुच् धातुका अर्थ शोचन करना है। शुद्धता करना। तप दोषहरण और अर्चनके पश्चात् शोचन कृत्य करता है। शोचन का अर्थ बारीकसे बारीक दोषोंको हटाना। हरण और शोचन में जो भेद है वह पाठक अवश्य समझें। स्थूल दोषोंका हरण होता है और सूक्ष्म दोषोंका शोचन हुआ करता है इस प्रकार शोचन होनेके पश्चात्—

५ तेजः—तेजन करना है। तिज् धातुका अर्थ तेजकरना और पालन करना है। खड्ग को भी तेज की जाती है उस प्रकारका तेजन यहां अभीष्ट है। तीक्ष्ण करना तेज करना बुद्धिकी तीव्रता संपादन करना।

उदाहरण के लिये लोहा लीजिये। पहिले (तपः) तपाकर उसको अर्च किया जाता है पश्चात् उसके दोष (हरः) दूर किये जाते हैं पश्चात् उसको किसी आधारमें रखा (अर्चिः) जाता है तदनंतर (शोचिः) पानीमें बुझाकर अब निकाला जाता है और तत्पश्चात् (तेजः) उस उसको तेज किया जाता है। यह एक वस्तु छुरी आदि बनानेकी साधारण बात है, इसमें भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रमाणसे इन विधियोंका उपयोगपूर्वक होती है। फिर मनुष्य जैसे श्रेष्ठ जीवकी शुद्धताके लिये इसकी उपर्युक्तित कितनी विधियोंसे होनी इसमें कहनेकी क्या आवश्यकता है! तात्पर्य तपन हरण अर्चन शोचन और तेजन यह पांच प्रकारकी शुद्धिका विधि है जिससे होती मनुष्यकी शुद्धता हो सकती है। शुद्ध मनुष्य का सुधार करके उसको पवित्र महात्मा बनानेकी यह वैदिक रीति है। पाठक इसका बहुत मनन करें।

मनुष्यकी शुद्धि।

अब यह विधि मनुष्यमें किस प्रकार प्रयुक्त होती है इसका विचार करना चाहिए। इस कार्य के लिए पूर्वोक्त देव मनुष्यके कहां और किस रूपमें रहते हैं इसका विचार करना चाहिए। इसका निश्चय होनेसे इस शुद्धीकरण विधिका पक्ष हमें सरल सुगम होता है। इस लिये पूर्वोक्त पांच देव मनुष्यके अंदर कहां और किस रूपमें विराजमान हैं यह देखिये—

देवतायतन।

मनुष्यमें अग्नि वायु सूर्य चंद्र और आप् ये पांच देवताएं निम्नलिखित रूपसे रहती हैं—

१ अग्निः [वाङ्मयेन मुखेन मुखं प्राविशत्] = अग्नि वाणीका रूप धारण करके मनुष्यके मुखमें प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् मनुष्यके अंदर अग्निका रूप वाक् है।

२ वायुः (वायुः प्राणेन नासिके प्राविशत्) = वायु प्राण का रूप धारण करके नासिका द्वारा अंदर प्रविष्ट हुआ है। और यह प्राण दशधा विभक्त होकर सब शरीरमें व्याप्त है।

३ सूर्यः (सूर्यं चक्षुषी चक्षिणी प्राविशत्) = सूर्य नेत्रेन्द्रिय बनकर आंखोंमें प्रविष्ट हुआ है।

४ चन्द्रः (चन्द्रमा मनसे मनो हृदयं प्राविशत्) = चंद्र देव मनरूप रूप धारण करके हृदयमें आ बसा है।

५ आपः (आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्) = जल रेत बन कर लिंगके स्थानपर बसा है।

ये पांच देव इन पांच कर्मोंमें अपने आपको डाल कर मनुष्यके देहमें आकर इन स्थानोंमें बसे हैं। यह बात विशेष विस्तार पूर्वक ऐतरेय उपनिषद्में लिखी है, वहांही पढ़ कर देखें। यहां जो वाक्य ऊपर लिए हैं वे ऐतरेय उपनिषद् (ऐ उ - १।२) मेंसेही लिए हैं। इन वाक्योंके मननसे पता लगता कि इन इन्द्रोंका शरीरमें निवास कहां है। अब वे अर्थ सहित पूर्वोक्त मन्त्रोंके अर्थ देखिए-

सूक्त १९ ८ [अग्नि-वाणी] = हे वाणी ! जो तेरे अंदर तप है उस तपसे उसको तप्त कर जो हमारा द्वेष करता है। तथा जो तेरे अंदर हरण शक्ति है उससे उसीके दोष हरण कर जो तेरे अंदर दीपन शक्ति है उससे उसको अंत काल प्रज्वलित कर जो तेरे अंदर शोषक गुण है उससे उसकी सुखी कर और जो तेरे अंदर तेज है उससे उसीको तेजस्वी बना ॥ १—५ ॥

सूक्त २ = [वायु = प्राण] = हे प्राण ! जो तेरे अंदर तप दोष-हरण- शक्ति, दीपन शक्ति शोषण शक्ति और तेजस्विता है, उन शक्तियोंसे उसके दोष दूर कर कि जो हम सबका द्वेष करता है ॥ १—५ ॥

इसी प्रकार अन्यान्य सूक्तोंके विषयमें जानना योग्य है। प्रत्येक की पांच शक्तियां हैं और उनसे जो शुद्धता होती है उसका सार्थ निर्णय यह इस अर्थसे अच्छा स्पष्ट हो चुका है। जो बाह्य देवताएं हैं उनके सब हमारे अंदर विद्यमान हैं; उन सबोंकी अनुकूलता प्रतिकूलतासे ही मनुष्यका सुधार या असुधार होता है। यह जानकर इस रीतिसे अपनी शुद्धता करनेका यत्न करना चाहिये तथा जो द्वेष करनेवाले दुर्जन होवे उनके सुधारके भी इसी रीतिसे यत्न करना योग्य है।

शुद्धिकी रीति।

शुद्धिकी रीति पंचविध है अर्थात् पांच स्थानोंमें शुद्धि होनी चाहिए तब सर्वांगसुंदर मनुष्यकी शुद्धता हो सकती है। इसका संक्षेपसे वर्णन देखिए—

१ वाचीक तप—सबसे पहिले वाणीका तप करना चाहिए। जो शुद्ध होना चाहता है या जिसके दोष दूर करने हैं उसे उसे प्रथम वाचीक तप करना चाहिये। उस मौन आदि वाचीक तप प्रसिद्ध है। वाणीके अंदर जो दोष होंगे उनको भी दूर करना चाहिये। वाणीमें प्रसन्नता या प्रसन्नता लानी चाहिए, जो बोलना है वह सत्यतासे परिशुद्ध विचारों से युक्त हो बोलना चाहिए। इस प्रकार वाणीकी शुद्धता करनेका यत्न करनेसे वाणीका तेज अर्थात् प्रभाव बहुत बढ़ जाता है और हरएक मनुष्य उसके वश्य होनेके लिए उत्सुक हो जाता है। (सू १९)

२ प्राणका तप—प्राणायामसे प्राणका तप होता है जिस प्रकार श्वांसोंसे वायु देनेसे अग्नि दीप्त होता है उसी प्रकार प्राणायामसे शरीरके सब अवयवोंकी शुद्धता होकर तेज बढ़ जाता है शरीरके दोष दूर हो जाते हैं प्रकाश बढ़ता है शोभन होता है और तेजस्विता भी बढ़जाती है। इस अनुष्ठानसे मनुष्य निर्दोष होता है। (सू २)

३ चाक्षुक तप—आंख द्वारा शुद्ध मनसे किसी ओर न देखना और मेषोन्मेषणमात्र ही अपनी दृष्टिका उपयोग करना नेत्रका तप है। पाठक यहां विचार करें कि आंखसे किस प्रकार पाप होते रहते हैं और किस प्रकार पतन होता है। इससे बचनेका यत्न हरएक को करना चाहिए। इसी तरह अन्यान्य इंद्रियोंका संयम करना भी तप है जो मनुष्यकी शुद्धता कर सकता है। अपने इंद्रियोंको कुपथसे हटाना और अच्छे पथ पर चलाना बड़ा भारी पूर्ण तप है। इससे दोष हटते हैं शोभन होता है और तेज भी बढ़ता है। (सू २१)

४ मनका तप—उसे पावन करना मनका तप है। बुरे विचारोंको मनसे हटाना भी तप है। इस प्रकारके मनके तप कर लेने मनके दोष दूर हो जाते हैं मन पवित्र होता है और शुद्ध होकर तेजस्वी होता है। (सू २२)

५ वीर्यका तप—(ब्रह्मचर्य) जिस इंद्रियका वीर्यका अथवा कामका तप ब्रह्मचर्य नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्मचर्यसे तप अपार पुष्ट होता है और अनन्त प्रकारके लाभ होते हैं रोगादि सब दूर होते हैं और निरोगता का प्रकाश होता है। ब्रह्मचर्यके विषयमें बहुतेक लोगोंसे हो है इस लिए इसके संबंधमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मचर्य तप प्रकारका मनुष्यमात्र के उद्धार का हेतु है। (सू २३)

अग्नि (वाणी) वायु (प्राण) सूर्य (नेत्र आदि इंद्रिय), चन्द्रमा (मन) आपः (वीर्य) इन देवोंके बलसे मनुष्य की वृद्धि होती है यह मंत्रका भावार्थ है। प्रत्येक देवता की पांच शक्तियोंसे मनुष्यके दोष हटजाते और उसमें गुण बढते जाते हैं। इस प्रकार क्रमशः मनुष्य शुद्ध होता हुआ उन्नत होता जाता है।

द्वेष करना।

इस सूक्तोंके प्रत्येक मंत्रमें कहा है कि जो (द्वेष्टि) द्वेष करता है उसकी बुद्धता तप आदि द्वारा करना चाहिए। इन दोनों द्वेष करना इतना बुरा है ? इससे अधिक बुरा और कोई कर्म नहीं है। यह सबसे बडा भारी पाप का कारण है।

आज कल अखबारों और मासिकोंमें देखिए दूसरों का द्वेष अधिक लिखा जाता है और उन्नतिका उपाय कम लिखा जाता है। या चार मित्र इकट्ठे बैठें या मिलें तो उनकी जो बातचीत चलती है वह भी किसी अच्छी बातोंके विषयपर नहीं होती परंतु किसी न किसीकी निन्दा ही होती है। पाठक अपने अनुभव कर भी विचार करें तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्य जितना फुजूल बोलता है उनमेंसे बहुतसा भाग दूसरेकी निन्दा या दूसरका द्वेष होता है। मनुष्यके अवनतिका यह प्रधान कारण है। यदि मनुष्य यह द्वेष करना छोड दे तो उसका कितना कल्याण हो सकता है। परंतु दूसरेका द्वेष करना बडा प्रिय और रोचक लगता है इसलिए मनुष्य द्वेषही करता जाता है और गिरता जाता है।

इसलिये इस पांच सूक्तों के प्रत्येक मंत्र द्वारा उपदेश दिया है कि जो (द्वेष्टि) द्वेष करता है उसकी बुद्धि तप आदिसे होनी चाहिये। क्योंकि उससे अशुद्ध यदि कोई मनुष्य होगा तो दूसरोंका द्वेष करनेवाला ही है। वह स्वयंभी गिरता है और दूसरोंको भी गिराता है।

मन जिसका चिंतन करता है वैसा बनता है। यह मनका धर्म है। पाठक इसका स्मरण करें। जो लोग दूसरोंका द्वेष करते हैं व दूसरोंके दुर्गुणोंका निरंतर मनन करते हैं इस कारण अतिशिघ्र उनके अपने दुर्गुणों की संख्या बढती रहती है किसी कारण भी यह कम नहीं होती। पाठक विचार करें कि मनकी मनुष्यकी अवस्था निश्चित करता है। जैसा मन वैसा मनुष्य यह नियम अटल है। अब देखिए, जो मनुष्य दूसरेके दुर्गुणोंका निरंतर मनन करता है उसका मन दुर्गुणमय बनता जाता है। अतः निन्दक मनुष्य दिन व दिन गिरता जाता है।

इसी लिए द्वेष करनेवालेको पश्चात्ताप आदि तप अवश्य करना चाहिए। और अपनी बुद्धि करना चाहिए। तथा उसके लिए विन्मुखभी होना चाहिए। अन्यथा होने हुए कपडोंको फिर कीचडमें फेंकनेके समान दुरवस्थाका प्रसार हो तो नहीं सकता।

पाठक इन सब बातोंका विचार करके अपनी परीक्षा करें और अपनी पवित्रता करने द्वारा अपने सुखरूप मार्ग आक्रमण करें। जो धर्ममें मन प्रविष्ट न हुए मनुष्य होंगे उनको उपयुक्त सूचि करनेका अनुभव भी इन सूक्तोंके मननसे प्राप्त हो सकता है। मन प्रवेशोंकी इस प्रकार अनुभूति द्वारा उनकी सूचि करनेका मार्ग उनके लिए सुलभ होनेसेही उनकी उन्नति हो सकती है और वैदिक धर्मकी विशेषता भी उनके मनमें स्थिर हो सकती है। पाठक इन सब बातोंका विशेष विचार करें और इस पवित्र आदेशोंके अभ्यास करें।

डाकुओंकी असफलता।

(२४)

(ऋषिः ब्रह्मा। देवता आयुष्यम्)

क्षेरंभक क्षेरय पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ १ ॥
क्षेवृधक क्षेवृध पुनर्वो यन्तु ०।० ॥ २ ॥
ओकात्तुओक पुनर्वो यन्तु ०।० ॥ ३ ॥
सर्पात्तुसर्प पुनर्वो यन्तु ०।० ॥ ४ ॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।० ॥ ५ ॥
उपब्दे पुनर्वो यन्तु ०।० ॥ ६ ॥
अर्हणि पुनर्वो यन्तु०।० ॥ ७ ॥
मक्षजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ ८ ॥

अर्थ-हे (क्षरभक क्षेरय) नष्ट करनेवाले! हे (किमीदिनः) क्षुद्रोंके क्षोभो! (वः यातवः) तुम्हारे अनुचारी और तुम्हारे (हेतिः) शस्त्र (पुनः पुनः यन्तु) बारम्बार वापस जांय। (यस्य स्थ) जिसके साथी तुम हो (तं अत्त) उसको खाओ। (यः वः प्राहैत् तं अत्त) जो तुम्हें छोड़के किसी भेजता है उसीको खाओ अथवा (स्वा मांसानि अत्त) अपनाही मांस खाओ ॥ १ ॥

हे (क्षेवृधक क्षेवृध) घातपात करनेवाले। ॥ २ ॥

(हे ओक अनुओक) हे चोर और चोरोंके साथी! ।० ॥ ३ ॥

हे (सर्प अनुसर्प) हे सांपके समान छिपके हमला करनेवाले! । ॥ ४ ॥

हे (जूर्णि) विनाशक! । ॥ ५ ॥

हे (उपब्दे) चिल्लानेवाले! । ॥ ६ ॥

हे (अर्हणि) दुष्ट मनवाले! । ॥ ७ ॥

हे (मक्षजि) शीघ्र दौड़नेवाले! तुम सबके (यातवः अनुचारी और (हेतिः) शस्त्र तथा (किमीदिनीः) क्षुद्र करनेवाले जो हों सब तुम्हारे पास ही (पुनः यन्तु) वापस चले जांय। जिसके अनुचारी तुम हो (तं अत्त) उसीको खाओ जो तुम्हें भेजता है उसीको खाओ अथवा अपना ही मांस खाओ ॥ ८ ॥ (परंतु किसी दूसरेको कष्ट न दो।)

भावार्थ-जो दुष्ट मनुष्य अथवा घातपात करनेवाले मनुष्य होते हैं वे साधारणोंसे पराभव होकर अपने अनुचारियोंके साथ दूसरोंपर हमला करके लूटमार करते हैं और उपद्रवोंको उठाते हैं। राजाको चाहिये कि ऐसा प्रबंध किया जाये कि इन

दुर्भिक्षसे दोनों भी किसी दूसरे सज्जनोंके सहायक न बनें । इनके अनुयायी इतवारी न होते हुए आपस और बाहर इनके शत्रु हों ये डाकूलोग भूखे मरने लगें । ये लोग कहीं भी सफलता को प्राप्त न कर सकें । विपक्ष अभीरव होते हुए ये सब आपसमें मार पीट करके एक दूसरेको खाकर स्वयं ही नष्ट हो जांय ॥ १-८ ॥

दुष्ट लोग ।

जगलमें सशस्त्र नागरिक रहते हैं और उनमेंसे डाकू चोर लुटेरे रहते हैं । ये डाकू रात्रीके या दिन के समय नगरों पर हमला करते हैं और लूटमार करके भाग जाते हैं । इस प्रकार लूट मार पर ये अपना निर्वाह करते हैं ।

राजाका सुराज्यका प्रबन्ध ऐसा हो कि ये किसी भी समय सफल मनोरथ न हो सकें । सर्वत्र इनका हमला निष्फल होने। प्रतिक्षण इनका हमला निष्फल होनेसे ये लोग भूखे मरने लगेंगे । पश्चात् आपसमें लड़ेंगे और आपसमें लड़ कर मर जांयगे। इनके सम्बन्ध जो दूसरोंके लिये ये वेही इन पर गिरेंगे ये जो दूसरोंके मांस खाते थे वेही अपने मांस खायेंगे क्योंकि दूसरोंके मांस इनको मिलेंगे नहीं और दूसरोंकी सम्पत्तियां इनको लूटमारके लिये प्राप्त नहीं होगी ।

राज प्रबन्ध द्वारा ऐसी व्यवस्था होना और चोर लुटेरे भूखसे मरने लगना ही उन दुष्टोंके सुधारका मार्ग है । ऐसा सुप्रबन्ध होनेसे डाकू लोग नागरिक बनने लगते हैं और उनके डाकूके व्यवहार से होने वाले उत्तम नागरिक बननेसे स्वयं प्रसन्न होता है । पाठक विचार करें और देखें कि यह भी एक दुष्टोंके सुधारनेका मार्ग है और यो विचार पूर्वक अवश्यमें अपना काम सो निःसन्देह असफल होगा ।

पृश्निपर्णी ।

[२५]

(ऋषिः चातन । देवता—वनस्पतिः)

इमं नो देवी पृश्निपर्ण्यूर्जं विश्वत्या अकः । उग्रा हि कण्वजम्भनी तामग्ने सहस्वतीम् ॥ १ ॥
सहमानेव प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत । तयाह दुर्णाम्नो शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ २ ॥

अर्थ-[इमं पृश्निपर्णी नः देवी] इस पृश्निपर्णी औषधी हमारे लिये [विश्वस्मै अन्नाय] सम्पत्तियोंके लिये पुष्ट [अकः] करती है । [हि उग्रा कण्वजम्भनी] क्योंकि यह प्रबल रोग बीज-नाशक है । [अग्ने सहस्वतीं तां बभर्ति] बलवती उस औषधिको मैं धारण करता हूं ॥ १ ॥

[इयं प्रथमा सहमानेव पृश्निपर्णी अजायत] यह पहली विजयी पृश्निपर्णी प्रकट हुई है । [तया दुर्णाम्नो शिरो वृश्चामि] उस बलशालिनी दुष्ट नामवाले रोगोंके सिर मैं कुचलता हूं [शकुनेः इव] जिस प्रकार श्येन पक्षीका सिर तोड़ता है ॥ २ ॥

भावार्थ-यह अच्छी औषधी मनुष्योंको पुष्ट करती है और रोगोंको ही नष्ट करती है। यह ऐश्वर्योंको दूर करती है रोगोंको भगाती है इसलिये इसका उत्तम प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

इस प्रयोग लिये यही सुबल औषधी है इससे सारा दुष्ट रोगोंका सिरही टूट जाता है ॥ २ ॥

अरायमसृक्पावान् यर्भं स्फातिं निहीर्यति । गर्भाद् कर्भं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥
गिरिमेनौ आ वेशय कर्भाञ्जीवितयोपनान् । तांस्त्व देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥
परांच एनान्प्र णुद कर्भाञ्जीवितयोपनान् । तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्कर्भादो अजीगमम् ॥५॥

अर्थ- हे पृश्निपर्णि ! [अ-राव] खोटा दान देनेवाले, [असृक्-पावान्] रक्त पीनेवाले [यः च स्फातिं निहीर्यति] जो वृद्धि को रोकता है उसको तथा [यर्भं गर्भे] गर्भ खानेवाले [कर्भं नाशय] रोगबीजका नाश कर और [सहस्व] उसको जीत ले ॥३॥

हे [देवि पृश्निपर्णि] देवी पृश्निपर्णी ओषधी ! तू [एनान् जीवित-योपनात्] इन जीवित का नाश करनेवाले [कर्भात्] रोगबीजोंको [गिरिं आवेशय] पहाड़पर ले जाओ और [तान् त्वा अग्निः इव अनुदहेत्] तू उनको अग्नि के समान जलाती हुई [हि] प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[एनान् जीवित-योपनात्] इन जीवितका नाश करने वाले [कर्भात् पराचः प्रणुद] रोगबीजोंको अधोमुखसे प्रेरित कर दे। [यत्र तमांसि गच्छन्ति] जहां अन्धकार होता है [तत्] वहां [कर्भादः अजीगमं] मांस भक्षक रोगोंको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जो दान खोटेको देता है, रक्त क्षय करते हैं पुरुषका नाश करते हैं, गर्भको गुलाते हैं उन रोगोंका नाश पृश्निपर्णी करती है ॥ ३ ॥

जिनको ये रोगबीज खाते हैं उनको पहाड़पर भगाओ और पृश्निपर्णी का लेपन उनसे कराओ जिससे यह पृश्निपर्णी उनके रोग बीजोंको जला देती ॥ ४ ॥

प्राण नाश करनेवाले इन रोग बीजोंको बीचक मार्गसे दूर करो। जहां अन्धेरा रहता है वहां ही रक्त और मांसका नाश करनेवाले ये रोगबीज रहते हैं ॥ ५ ॥

पृश्निपर्णी।

इस पृश्निपर्णी को चित्रपर्णी कहते हैं। भाषामें इसको 'पीठवन पीलवन, पत्रीवन' कहते हैं। इसके गुण ये हैं-

विदोषघ्नी वृष्योष्ण मधुरा सरा।
हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तविसारतृड्वमी ॥ भाव प्र, १ भाग गुडू वर्ग

यह पीठवन नामकी विदोषनाशक बलकारक उष्ण मधुर और सारक है इससे दाह, ज्वर श्वास रक्तविकार तृष्णा और वमन दूर होता है। इस वनस्पतिका वर्णन इस सूक्तमें किया है। इस सूक्तमें जिन रोगोंके नाश करने के लिये इस ओषधी का उपदेश किया है उनका वर्णन अब देखिये-

रक्त क्षय

इस सूक्तमें यद्यपि अनेक रोगमूलोंका वर्णन किया है तथापि प्रायः सभी रोगोंका मूल कारण रक्त क्षय प्रतीत होता है। इस विषयमें देखिए—

१ असृक्-पावानं—(असृक्) रक्तका (पावानं) जो पीते हैं। अर्थात् जो रक्तको चूसते हैं। जो रोग रक्त चूसने का काम करते हैं रक्तको दूषित करते हैं और रक्तका प्रमाण कम करते हैं (Anaemia) पांडुरोग जैसे रोग जिनसे रक्तकी मात्रा कम होती है। (मं १)

२ अ-राव—(दाण दाने) का अर्थ भी, खोटा दान देना होता है। शरीरकी धातु शरीरका पोषण करने वाले रस रक्तके अभाव है। यह इस रोगका कारण होता है। शरीरका गुण कम और अशुद्ध होनेसे, रस रक्तमें खराबी आना होजाता है और शरीर अशक्त होजाता है। (मं १)

दुष्टोंमेंसे कोई भी किसी दूसरे सज्जनको कष्ट न दे सके । इसके अनुशासनको कुशलपूर्वक न होते हुए शासक और आप, इनके शत्रु भी हो वे आपसमें मूर्खे मरने लगें । वे लोग कहीं भी सफलता को प्राप्त न कर सकें । विपक्ष अशोरव होते हुए वे सब आपसमें मार पीट करके एक दूसरेको खाकर स्वयं ही नष्ट हो जांय ॥ १–८ ॥

दुष्ट लोग ।

अपनेमें सज्जन नागरिक रहते हैं और बहुतोंमें कुछ चोर लुटेरे रहते हैं । वे कुछ रात्रीके या दिन के समय मकानों पर हमला करते हैं और लूटमार करके भाग जाते हैं । इस प्रकार लूट मार पर वे अपना निर्वाह करते हैं ।

राजाका सुराज्यका प्रबन्ध ऐसा हो कि वे किसी भी समय सफल मनोरथ न हो सकें । सर्वत्र इनका हमला निष्फल हो। प्रतिसमय इनका हमला निष्फल होनेसे वे लोग भूखे मरने लगेंगे । पश्चात् आपसमें लड़ेंगे और आपसमें कट कर मर जांयगे। इनके उद्धारके लिये वे वेही इस पर गिरेंगे वे जो दूसरोंके मांस खाते थे वेही अपने मांस खायेंगे क्योंकि दूसरोंके यांस इनको मिलेंगे नहीं और दूसरोंकी संपत्तियां इनको लूटमारके लिये प्राप्त नहीं होगी ।

राज प्रबन्ध द्वारा ऐसी व्यवस्था होना और चोर लुटेरे भूखसे मरने लगना ही सब दुष्टोंके सुधारका मार्ग है । ऐसा प्रबन्ध होनेसे कुछ लोग नागरिक बनने लगते हैं और उनको उनके व्यवहार से हानि और सतत नागरिक बनेनेसे लाभ प्रतीत होता है । पाठक विचार करें और देखें कि यह भी एक दुष्टोंके सुधारनेका मार्ग है और जो विचार पूर्वक अमलमें लाया जाय तो निःसंदेह लाभकारी होगा ।

पृश्निपर्णी ।

[२५]

(ऋषिः चातनः। देवता—वनस्पतिः)

इयं नो देवी पृश्निपर्ण्युत्तमे शक्वरीष्वा । उग्रा हि कण्वजमनी सासमस्यृषिषाहणी ॥ १ ॥
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत । तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृहामि शकुनेरिव ॥ २ ॥

अर्थ–[इयं पृश्निपर्णी नः उत्तमे] देवी पृश्निपर्णी औषधी हमारे लिये सुख और [निर्ऋत्यै अन्तमे] व्याधियोंके लिये दुःख [अकः] करती है । [हि उग्रा कण्व-जमनी] क्योंकि वह प्रबल रोग बीज-नाशक है । [ऋषिषाहणी सा सासमि] बलवती उस ओषधिका मैं सेवन करता हूं ॥ १ ॥

[इयं प्रथमा सहमाना पृश्निपर्णी अजायत] यह पहली विजयी पृश्निपर्णी प्रकट हुई है । [तया दुर्णाम्नां शिरः वृहामि] इस वनस्पतिसे मुझे नामवाले रोगोंका सिर मैं कुचलता हूं [शकुनेः इव] जिस प्रकार छोटे पक्षीका सिर तोड़ते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ पृश्निपर्णी औषधी मनुष्योंके सुख करती है और रोगोंको ही नष्ट करती है, यह रोगबीजोंको दूर करती है रोगोंका भयानक रूप इसके सेवन करना योग्य है ॥ १ ॥

इस कार्यके लिये यही मुख्य औषधी है इससे मानो दुष्ट रोगोंका सिरही टूट जाता है ॥ २ ॥

' औषितक्ष याग करनेवाले के रोगबीज जिनके अवर प्रविष्ट हुए हों अर्थात् जिन को ये रोग हो गये हैं उनको पहाड़ पर भेजाओ । पहिली बात यह है कि ऐसे रोगियों को उत्तम वायु के पर्वतक उत्तम स्थानपर ले जाओ । यह सबसे उत्तम उपाय है । इन रोगियोंको नगरमें मत रखो अन्य समूहोंमें मत रखो परंतु पहाड़पर ले जाओ । क्योंकि रोगबीज अंधेरे दुर्गन्धयुक्त और सूर्य प्रकाशरहित स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं इसलिए इन रोगबीजोंका नाश भी ऐसे स्थानोंमें होना संभव है कि जहां विपुल प्रकाश शुद्धवायु और अंधेरा न हो । नगरोंमें मकान पास पास होनेके कारण वहांका वायु खेलता नहीं होता अतः रोगियों को पहाड़पर ले जानाही योग्य है । इस मंत्र में प्राणनाशक रोगबीज (औषितक्षोपन कृमि) को पहाड़ पर भेजाने को कहा है उसका अर्थ उक्त रीत्यनुसार रोगियोंको पहाड़पर ले जाना है । क्योंकि आगे इसी मंत्रमें रोगोंके लिए औषधि प्रयोग भी लिखा है, देखिए—

एषि पृश्निपर्णि । त्वं वातः इव
सनुवत्सरः इति ॥ (म ७)

यह दिव्य औषधि पिठरक कृमि रोगबीजोंको अधिक उपाय करती हुई प्राप्त होती । ' अर्थात् पहाड़पर गये उक्त रोगियोंको इस औषधिका सेवन करानेसे उनके अवर प्रविष्ट हुए सब रोगबीज नष्ट जायंगे और रोगबीज दूर होनेसे रोगी आरोग्य पूर्ण होगा । क्योंकि—

इयं प्रथमा पृश्निपर्णी सहमाना सनावह । (मं २)

" यह पहली पिठरक विजयी होती है । जिस रोगपर विजय प्राप्त करनेके लिए यह सबसे (प्रथमा) मुख्य औषधि है । इसके सेवनसे निःसंदेह विजय प्राप्त होगा और रोगबीज दूर होंगे ।

कण्वजम्भनी उभा हि
ता सहस्वती अनपहि ॥ (मं १)

यह रक्त मुखानेवाले रोगका नाश करनेवाली अत्यंत प्रभावशाली औषधि है । इसका उपयोग (सहस्वती) सामर्थवती या बलवती होनेकी अवस्थामें ही कराना चाहिए । ' इस कारण भी रोगीका पर्वत पर होना आवश्यक है क्योंकि वैद्यको उपयोगी औषधि पर्वत परसे ही निश्चयकर ताजा उपयोग कराया जा सकता है । यहांसे वनस्पति उखाड़कर नगरमें लानेपर वह हीन होना संभव है ।

इयं पृश्निपर्णी वा उ
सिंहीका व—सं अक्त ॥ (मं १)

यह दिव्य औषधी पिठरक मनुष्यको सुख देती है और रोगोंको भी सुख देती है । अर्थात् रोगोंका नाश करती है तथा—

तया अहं दुर्णाम्नां शिरः शृणामि । (मं)

" इस औषधिसे मैं इस दुष्ट रोगोंका नाश करता हूं । मैं इनका सिर [illegible] नाश करता हूं, जिससे ये रोग अपना सिर फिर कभी न उठा सकें ।

औषितक्ष—रोपणात् कण्वात्
कृमात् पराचः अजुष्ट ॥ (मं ५)

" औषितक्ष का नाश करनेवाले इस रोग उत्पन्न करनेवाले कृमिसे हमारा रक्षण हो । " नीम सुख जाने पर उसमें एक प्रकार की कृमि उत्पन्न होती है । पिठरकमें भी कृमि उत्पन्न होते हैं । उक्त रोग बीज यह कृमि उनसे मनुष्यके पास नहीं आने देती है । यह एक वनस्पतिका गुण है ।

पृश्निपर्णीके सेवनसे रक्त दूषित होना शरीरमें रक्त बढ़ना अथवा शरीर पुष्ट होना अथवा शरीर पर व्रण न होना अथवा हुआ हो तो शीघ्र भर जाना और अस्वास्थ्य आदि भी बहुगुण होते । इसके उपयोग संबंधि इतनी सूचना ध्यान में रखना चाहिए ।

३ स्फातिं जिह्मीर्वेत्ति—वृद्धि हटाता है । शरीरका मांस कम करता है, शरीरको सुखाता है । शरीर कृश होता जाता है। शरीर का सुडौलपन कम होता है। अर्थात् शरीर क्षीण होता है। (म ३)

४ गर्भाद (गर्भ—गर्भ) = गर्भका स्रावनाश रोग । माताके गर्भमें ही गर्भका बढने व पनेवाला सुखानेवाला अथवा गर्भको मृत करनेवाला रोग । (मं ३)

५ कम्प —जिस रोगमें रोगी अशक्तताका (कमजोरी) अनुभव करते हैं आहें भरते हैं हाथ हाथ करते हैं अथवा जिसे प्रकार अपनी अशक्तता व्यक्त करनेवाला शब्द करते हैं । यह नाम रोग वाचक है जिससे पूर्वोक्त रोग होते हैं । (म १३—५)

६ निर्ऋति:— (ऋति) दरिद्र व्यवहार, दोष उस रहनेका मार्ग । (निः—ऋतिः) ऐसा मार्ग पकड़ना अथवा अशुभ मार्ग । इस प्रकारके व्यवहारसे उक्त रोग होते हैं । (मं १)

७ दुर्नामा—(दुः—नामा) दुष्ट नामका रोग । अर्थात् जो रोग दुष्ट व्यवहार से उत्पन्न होते हैं । (म २)

ये सात शब्द रोगोंके अशुभ पता दे रहे हैं अर्थात (६ निर्ऋतेः ७ दुर्नामा) ये दो शब्द रोगोत्पत्तिका कारण बता रहे हैं । अर्थात् ब्रह्मचर्यादि सुविधर्मोंका पालन न करने आदि तथा दुष्ट दुराचारके व्यवहार करनेसे उक्त रोग हुआ करते हैं और पापयुक्त रोग अशुभ रोग आदि होते हैं । ये दो कारण बता कर इस सूक्तसे पाठकोंको ज्ञापन किया है कि वे इन पापयुक्त रोगोंसे अपना बचाव करें । अर्थात् जो लोग ब्रह्मचर्यादि सुविधर्म पालन करेंगे और धर्माचार से रहेंगे वे इन रोगोंसे बच सकते हैं ।

रोगका परिणाम ।

इन रोगोंका परिणाम कितना भयानक होता है यह बात यहां बतायी है देखिए—

जीवितं-जोषः ॥ (मं ४—५)

जिससे जीवन नाश करनेवाला यह रोग है । " खूब बिखरकर पांडुरोग क्षयरोग रक्तपित्त आदि रोग हुए तो उनसे जीवित नष्ट होने की ही संभावना रहती है । ये रोग बड़े कष्ट साध्य होते हैं । इसलिए अपने आरोग्य बचाना ही श्रेयस्कर है ।

उत्पत्तिस्थान ।

इन रोग कीटोंका उत्पत्तिस्थान भी इस सूक्तने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया है देखिए—

उलपेषि वत्र मक्षणि
उत्क्रव्यादो अशीशमम् ॥ (मं ५)

जहां अंधकार रहता है ऐसे स्थानोंमें रक्त मांस खाने वाले ये रोग कीट नष्ट होते हैं । " जहां सदा अंधेरा रहता है । जहां वायु नहीं पहुंचता जहां सूर्य प्रकाश नहीं आ सकता, ऐसे अंधेरे स्थानोंमें इन रोग कीटोंकी उत्पत्ति होती है अथवा ऐसे स्थानोंमें ये रोग कीट होते हैं । अर्थात् जो लोग सदा अंधेरे कमरोंमें निवास करते हैं स्वच्छ वायु खेले कमरोंमें नहीं रहते सूर्य प्रकाश न पहुंचनेवाले कमरोंमें रहते हैं । अथवा जिनके निवास गृह ऐसे हैं उनको ये रोग होते हैं । परंतु जो लोग स्वच्छ वायुवाले स्थानोंमें तथा सूर्य प्रकाश प्रतिदिन आनेवाले स्थानोंमें निवास करते हैं उनको ये रोग कष्ट नहीं पहुंचा सकते । इसलिए पांडुरोग क्षय आदि सूक्ष्म तथा मांस कम करनेवाले रोगोंसे बचाव करनेके लिए सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु जहां मिलती हो ऐसे परिशुद्ध स्थानोंमें निवास करना चाहिए ।

बचावका उपाय ?

रोग होने के पश्चात् बचावका उपाय इस सूक्तने कहा है वह अब देखिए—

ओषिकोपधात् पवात् कण्वात् ।
निर्ऋतिं वारयत ॥ (मं ४)

स सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
ससिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥ ४ ॥
आ इरामि गवां क्षीरमाशापिं धान्य १ रसम्।
आहता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥
(इति चतुर्थोऽनुवाकः।)

अर्थ- [गवां क्षीर से सिञ्चामि] गौओंका दूध सींचता हूं। [बलं रसं आज्येन सं] बलवर्धक रसको घीके साथ मिलाता हूं। [अस्माकं वीराः ससिक्ताः] हमारे वीर सींचे गये हैं। [मयि गोपतौ गावः ध्रुवाः] इस गोपतिमें गौयें स्थिर हों॥४॥

[गवां क्षीरं आ इरामि] गौओंका दूध मैं लाता हूं। [धान्य रस आशापिं] धान्य और रस मैं लाता हूं। [अस्माकं वीराः आहताः] हमारे वीर आये गये हैं। और [पत्नीः इदं अस्तकं आ] पत्नियां भी इस घरमें लायी गई हैं॥५॥

भावार्थ— मैं गौओंसे दूध लेता हूं तथा बलवर्धक रसके साथ घी को मिलाकर सेवन करता हूं। हमारे वीरों और बालकोंको यही सेवन किया जाता है। इस कार्यके लिये हमारे घरमें गौयें स्थिर रहें॥४॥

मैं गौओंसे दूध लेता हूं, और वनस्पतियोंसे रस तथा धान्य लेता हूं। हमारे वीरों और बालकोंको इकट्ठा करता हूं घरमें पत्नियां भी लाई जाती हैं और सब मिलकर उत्तम पौष्टिक रसका सेवन करते हैं॥५॥

पशुपालना।

घरमें बहुत पशु अर्थात् गौयें आदे, बैल आदि बहुत पाले जांय। यह एक प्रकारका धन ही है। आज कल इनको ही धन समझा जाता है, परंतु वस्तुतः देखा जाय तो गाय आदि पशु ही धन्य धन है। इनकी पालना योग्य रीतिसे करने के विषय में बहुतसे आदेश इस सूक्तके पहले दो मंत्रोंमें दिये हैं। आजकल प्रायः घरमें गौ आदि पशुओंकी पालना नहीं होती है क्वचित् किसीके घरमें एक दो गौएं होती तो बहुत हुआ नहीं तो प्रायः कोई व्यक्तिगत लोग पशु पालते ही नहीं। नगरके लोग प्रायः दूध आदि मोल ही लेते हैं। इतना विवेचन करने के अनन्तर इस सूक्तके आदेश स्पष्ट से प्रतीत होंगे। परंतु पाठक वर्ग अपने दैनिक कार्यमें ले आंय और यह देखें कि ऋषिकालमें ऋषियोंके पास हजारहा गौयें होती थीं और उसी प्रमाणसे अन्यान्य पशुभी बहुतसे होते थे। ऐसे घरोंके लिये ये आदेश कैसेमृत हो सकते हैं।

भ्रमण और वापस आना।

गाय आदि पशुओंको पुष्ट बनानेके लिये जैसा आवश्यक है उसका सार शुद्ध वायुमें होनेके सिवा तथा इस प्रकारसे उसका भ्रमण होनेके सिवा न तो उसका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। और न उसका दूध गुणकारी हो सकता है। इसलिये—

वयो सहचार पशुः कृणोषि। (मं १)

" क्योंकि आहचर्य पशु करता है " यह प्रथममंत्रका वाक्य गौओंके आरोग्यके लिए उनका दूध पशुमें भ्रमण अर्थात आवश्यक है यह बात है। कहा है तथा—

ये पशवः परा इयुः ते इह आयन्तु (मं १)

" जो पशु अपनेके लिए बाहर गये हैं वे मिलकर वापस आजायें " इस मंत्रभागमें भी यही बात स्पष्टतासे है। पशु अपने स्थानसे निकलकर बाहर जांय और मिलकर वापस आजाय। आगे पीछे रहनेसे उनको पुष्ट होना होय। इस कहने का-हेके लिए सब पशु क्रमपूर्वक जांय और सब इकट्ठे वापस आजांय ऐसा जो इस मंत्रमें कहा है वह बहुत उपयोगी आदेश है।

जहां हजारों पशु होंगे वहां एक चरवाहेसे काम नहीं चल सकता। इस कार्य के लिए अपने अपने कार्यमें प्रवीण बहुतसे नौकर होने चाहिये। उनका वर्णन संहिता आदि ग्रंथोंसे इस सूक्तमें किया है—

यहमें यहांतक हमने देखा है एक औषधि प्रयोग (singledrug system) ही लिखा है। अर्थात् एकही औषधिका सेवन करना। साथ साथ अनेक औषधियां मिलाकर सेवन करनेका उल्लेख कम है। सेवन के लिए पानीमें घोलना या अन्नादिक साथ मिलाकर खाना यह बात और है परंतु एक समय रोगीको एकही औषधि सेवनके लिए देना तथा इस जड वस्तु, इस स्थान, सूर्य प्रकाश आदि निसर्ग देवताओंसे ही सहायता प्राप्त करना यह वैदिक चिकित्साकी पद्धति प्रतीत होती है। इसलिए जो पाठक उक्त रोगोंमें इस पैठकवाला उपयोग करके लाभ उठाना चाहते हैं वे इसी पैघके निरीक्षणमें इसका प्रयोग करें और लाभ उठावें।

गो—रस ।

(८६)

[ऋषिः-सविता । देवता पशवः ।]

इह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेद्वास्मिन् तान्गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥ १ ॥
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरानयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषीं अनुमते नि यच्छ ॥ २ ॥
सं सं स्रवन्तु पशवः समक्षाः समु पूरुषाः।
सं धान्यस्य या स्फातिः सं गवाश्वेन हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

अर्थ– [पशवः इह यन्तु] पशु यहां आवोत । [ये परा-ईयुः] जो परे गये हैं । [येषां सहचारं वायुः जुजोष] जिनका साहचर्य वायु करता है । [येषां रूपधेयानि त्वष्टा वेद] जिनके रूप त्वष्टा जानता है । [अस्मिन् गोष्ठे तान् सविता नि यच्छतु] इस गोठाकामें उनको सविता बांधकर रखे ॥ १ ॥

[पशवः इमं गोष्ठं संस्रवन्तु] पशु इस गोठाकामें मिलकर आ जांव । [बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु] बृहस्पति जानता हुआ उनको ले आवे । [सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु] सिनीवाली इनके अग्रभागको ले आवे । हे [अनुमते] अनुमते ! [आ जग्मुषः नियच्छ] आनेवालोंको नियममें रख ॥ २ ॥

[पशवः समक्षाः च पूरुषाः सं सं स्रवन्तु] पशु घोडे और मनुष्यभी मिल जुलकर चलें । [या धान्यस्य स्फातिः सा] तो धान्य को बढती है वह भी मिलकर बढे । मैं [सं धान्येन हविषा जुहोमि] मिलानेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ– जो पशु इस जलवायुमें भ्रमण करके गिरे गये हैं वे मिलकर पुनः गोठाकामें आवोत । इनके चिन्होंको त्वष्टा जानता है । अतएव इनको गोठाकामें बांधकर रखे ॥ १ ॥

वह पशु मिलकर गोठाकामें आवोत उनको बृहस्पति जानकर ले आवे । सिनीवाली अग्रभागको ले चले अतः अनुमति यह आज्ञाको वा नियमोंमें रखें ॥ २ ॥

घोडे आदि वह पशु तथा मनुष्यभी मिल जुलकर चलें और रहें । धान्यभी मिलकर बढे । उसको मिलानेवाले हवनसे मैं पुष्ट करता हूं ॥ ३ ॥

स सिञ्चामि गवां क्षीर समाज्येन बलं रसम् ।
ससिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥ ४ ॥
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ।
आहता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥
(इति चतुर्थोऽनुवाकः ।)

अर्थ- [गवां क्षीरं सं सिञ्चामि] गौओंका दूध सींचता हूं । [बलं रसं आज्येन सं] बलवर्धक रसको घीके साथ मिलाता हूं। [अस्माकं वीराः ससिक्ताः] हमारे वीर सींच गये हैं। [मयि गोपतौ गावः ध्रुवाः] मुझ गोपतिमें गौयें स्थिर होंवें ॥ ४ ॥
[गवां क्षीरं आ हरामि] गौओंका दूध मैं लाता हूं। [धान्यं रस आहार्षं] धान्य और रस मैं लाता हूं। [अस्माकं वीराः आहताः] हमारे वीर जमा गये हैं। और [पत्नीः इदं अस्तकं आ] पत्नियां भी इस घरमें आगई हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं गौओंसे दूध लेता हूं तथा बलवर्धक रसके साथ घी को मिलाकर सेवन करता हूं। हमारे वीरों और बालकोंको यही पेय दिया जाता है। इस अर्थके लिये हमारे घरमें गौयें स्थिर रहें ॥ ४ ॥
मैं गौओंसे दूध लेता हूं, और वनस्पतियोंसे रस तथा धान्य लेता हूं। हमारे वीरों और बालकोंको इकट्ठा करता हूं घरमें पत्नियां भी आई जाती हैं और सब मिलकर उत्तम पौष्टिक रसका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

पशुपालना ।

घरमें बहुत पशु अर्थात् गौयें आवे, तब अधिक बहुत पाले जांय । यह एक प्रकारका धन ही है । आज कल रुपयोंको ही धन माना जाता है, परंतु उपयोगकी दृष्टिसे देखा जाय तो पशु आदि पशु ही धन है । इनकी पालना वैदिक रीतिसे करने के विषय में बहुतसे आदेश इस सूक्तके पहले दो मंत्रोंमें दिये हैं । आवश्यक प्रायः घरमें गौ आदि पशुओंकी पालना नहीं होती है क्वचित् किसीके घरमें एक दो गौए होंगी तो बहुत हुआ नहीं तो प्रायः लोग व्यापारिक लोग पशु पालते ही नहीं । अधिक लोग प्रायः दूध आदि लोभ ही लेते हैं । इतना विषय बढ़ जानेके कारण इस सूक्तके आदेश स्वर्ग से प्रतीत होंवे । परंतु पाठक वर्ग अपनी दृष्टि वैदिक कालमें ले जांय और वह देखें कि ऋषिकालमें ऋषियोंके पास हजारहां गौयें होती थीं और उसी प्रमाणसे अन्यान्य पशुभी बहुतसे होते थे । ऐसे घरोंके लिये ये आदेश उचितमूल हो सकते हैं ।

भ्रमण और वापस आना ।

गाय आदि पशुओंको शुद्ध वायुमें भ्रमण के लिये भेजना आवश्यक है उनका स्वास्थ्य शुद्ध वायुमें होनेके लिना तथा शुद्ध प्रकाशमें उनका भ्रमण होनेके लिना न तो उनका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। और न उनका दूध गुणकारी हो सकता है। इसलिये-

यदा प्रहार वायुः जुहोप । (म १)

" जिस समय वायुदेवता पशु करता है " यह प्रथममंत्रका वाक्य गौओंके आरोग्यके लिए उनका शुद्ध वायुमें भ्रमण अत्यंत आवश्यक है यह बात व । रहा है तथा-

ये पशवः परा इयुः ये इह आयन्तु ते (म १)

" जो पशु भ्रमणके लिए बाहर गये हैं वे मिलकर वापस आवें " इस मंत्रभागमें भी यही बात स्पष्टताये है । पशु अपने स्थानसे मिलकर बाहर जांय और मिलकर वापस आवांय । आगे पीछे रहनेसे उनको पुनः मुलना होगा । इस कहने बचानेके लिए सब पशु क्रमपूर्वक जांय और सब इकट्ठे वापस आवांय ऐसा जो इस मंत्रमें कहा है यह बहुत उपयोगी आदेश है ।

जहां हजारों पशु होंवे वहां एक गोपालके काम नहीं चल सकता । इस अर्थ के लिए अपने अपने घरमें प्रवीण बहुतसे गोपाल होने चाहिये । उनका वर्णन संहिता आदि ग्रंथोंसे इस सूक्तमें किया है—

१ त्वष्टा वपां रूपाणि वेद। (मं १)
२ सावता अग्निर्मोष्टे ताद् विपच्छतु। (म १)
३ बृहस्पतिः प्रजावत् आवयतु ॥ (मं २)
४ मित्रीवाकी पूषा अग्र आवयतु। (म २]
५ अनुमते ! आवयुपः सिषक्षः। (मं २)

इन मन्त्रोंमें देवताओंके नाम अनेक कार्योंके लिए आये हैं। इन सबोंके देवता वाचक अर्थ अवश्य ही हैं, परन्तु इनका कुछ पारिभाषिक भी यहां रखिए-

१ त्वष्टा- सूक्ष्म कारीगरीवाला कुशल कारीगर। (त्वक्ष-तनूकरणे)
२ सविता—प्रेरक। (षु-प्रेरणे)। यज्ञप्रेरक।
३ बृहस्पतिः ब्रह्मणाम् (बृहत्) वेदानां (पति) स्वामी। पुरोहित विशेषज्ञ।
४ मित्रीवाकी-(मित्री) यज्ञक (वाकी) बकरे पुरुष। यज्ञवाली स्त्री।
५ अनु-मतिः-अनुकूल मति रखनेवाली स्त्री।

इन पांच देवता वाचक शब्दोंके ये मूल पारिभाषिक अर्थ हैं और इन अर्थोंके साथ ही ये मन्त्र यहां प्रयुक्त हुए हैं। ये मूल अर्थ लेकर इन मंत्र भागोंका अर्थ देखिए

कुशल कारीगर यज्ञ आदि पशुओंके नाकाणोंको जानता है। २ प्रेरक उनको गोशाला में क्रमपूर्वक विभक्त रखे। ३ उनको ज्ञानवाला पशुओंके आगे। ४ यज्ञवाली स्त्री पशुओंके आगे चले। और ५ अनुकूल मति रखनेवाली आनेवाले पशुओंके साथ चले।

यहां पशु पालनके आदेश मिलते हैं। इसका विचार यह है " (१) पशुओंके पालक कर्मचारी एक ऐसा अधिकारी होना कि जो पशुओंके सब लक्षण जानता हो (२) दूसरा कर्मचारी ऐसा हो कि जो निरीक्षण करके देखे कि सब पशु ठीक रक्षण पर आये हैं या नहीं, तथा उनकी अन्य आवश्यकता प्रबन्ध ठीक हुआ है या नहीं (३) तीसरा निरीक्षक ऐसा होवे कि जो पशुसम्बन्ध विषयों अच्छी प्रकार जानकारवाला हो यही पशुओंको आगे लेजानेका अर्थात् नेता (४) अब पशु चरने आनेपर तो उनको पालन करनेवाली स्त्री हो जो उनके आगे आगे उनके लक्षण पहचानती हुई गोचर भूमि हो (५) तथा उनके पीछे चलने वाली पशुओंके अनुकूल आवश्यकताओं पीछे पीछे चले।" इस प्रकारसे सब पशुओंका योग्य प्रबन्ध किया जावे। इसकेलिए अपेक्षा थिर्यो क्रम पूर्वक उत्तम प्रबन्ध करने हैं इस लिए अधिक से अधिकोंमें स्त्रियों को नियुक्त करनेकी सूचना मिलती है यह उचित ही है।

यहां मिलते और इस ही के पहले आती हो ऐसे स्थानमें ऐसा सुलभ्य प्रबन्ध अपेक्षित आवश्यक ही है। आजकल जहां अधिक अभाव सा हो गया है वहां एक बड़े प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं है यह स्पष्ट ही है। यह आवश्यकता प्रकृति है जो हमें उपदेश कर रही है इसका पालन अवश्य विचार करें। जिस घरमें दस पांच गौवें कम हों उस घरके मनुष्य घरका पोषण ठीक नहीं कर सकते हैं और जिस घरमें गौवें नहीं होती उस घरके मनुष्य रुग्ण स्वास्थ्यके होते हैं इसका विचार करनेसे गौओंके साथ मनुष्यकी जो घनिष्ठता है इसका पता लग सकता है। यहां तक परिचय तो मन्त्रोंका विचार हुआ। तृतीय मंत्रमें मिलजुलकर रहनेके साथ ही यह बात कही है। पशु कहां और मनुष्य कहां उन मिलजुलकर परस्पर उपयोगी हो अपनी वृद्धि करें उन मिलकर परस्पर प्राप्त करें अर्थात् कोई किसके धन्य को अशांति करें। इस प्रकार परस्पर व्यवस्थापित और परस्पर विपुल प्रबन्ध में आप करके उन के द्वारा अपनी पुष्टता बढ़ाते हुए अपनी उन्नति करें। (मं ३)

दूध और पावक रस।

दूध दही मक्खन घी छाछ आदि पदार्थ खाने योग्य ये अत्यन्त पावक रस विपुल परिमाणमें प्राप्त करने चाहिये और उनको भोजन आवश्यक आहारमें रखना चाहिये इन मन्त्रोंमें मंत्र ४ और ५ स्पष्ट उपदेश द्वारा आदेश दे रहे हैं। इन मन्त्रों

'वीरा' शब्द है इस शब्दका प्रसिद्ध अर्थ शूरवीर है, परंतु वेदमें इसका अर्थ 'पुत्र, बालकसे संतान भी है। यहां इन मंत्रोंमें 'पत्नी' के साहचर्यसे अत्र यही अर्थ विशेषतः अभिप्रेत है।

'मैं गौओंसे घृत खाता हूं, वनस्पतियोंका बलवर्धक रस और धान्य खाता हूं' ऐसी भी आशा है। घरमें धर्मपत्नियां हैं और आसपासमें भी इकट्ठे हुए हैं अथवा इष्ट मित्र वीर पुरुष भी जमा हुए हैं इन सबकी इच्छाके अनुसार यह सब खाद्यपेय दिया जाता है। (मं २—५)

इन दो मंत्रोंका यह आशय है। अधिकसे अधिक वीरता हमारे और हमारे बालबच्चोंके अंदर यह रस डाला गया, जिस प्रकार वृक्षोंमें आमोंसे रस भीज जाता है उस प्रकार बालबच्चोंपर घृत भी आदि सब रसोंकी वृष्टि की गई है। 'सिच्' धातुका अर्थ उत्तम प्रकारसे सिंचन करना मिलाना है। बालबच्चे घृत दही मक्खन भी रस आदिसे पूरे पूरे भीज जांय इतना पोरस घरमें चाहिये। इष्टपुष्ट तो तब आ सकती है। वैदिक धर्म वैदिक वर्णाश्रमोंको यह उपदेश दे रहा है कि अपनी गृह व्यवस्था ऐसी करो कि जिससे घरमें इतना विपुल पोरस प्राप्त हो और उसका सेवन करके सब बालक इष्टपुष्ट हों। आजकल नाना प्रकारकी बीमारियां यहांका कारण ही यह है कि पोरस न्यून होनेके कारण मनुष्यमें जीवन शक्ति ही कम होगई है। पाठक इसका विचार करें और इस विषयमें जो हो सकता है करके अपनी जीवन शक्ति बढ़ावें। उस अन्न आरोग्य जीवन शक्तिकी वृद्धि होनेसे ही प्राप्त होंगे। पोरुष, गोधन तथा गोरसोंका कितनी आवश्यकता है और राष्ट्रीय किंवा जातीय जीवन की दृष्टिसे भी इस विषयकी कितनी आवश्यकता है इसका पाठक विचार करें।

वैदिक आदेश व्यवहारमें लानेका विचार जो लोग कर रहे हैं उनसे इस सूक्तका बहुत मनन करना योग्य है क्योंकि यह आदेश ऐसा है कि इसके व्यवहारमें आते ही आप होने का प्रकाश अनुभव आवेगा।

विजय-प्राप्ति।

(२७)

(ऋषिः-कपिञ्जलः । देवता १ ५ वनस्पतिः, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः ।)

नेच्छत्रुः प्राङ्ग एयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राञ्चः प्रतिप्राञ्चो जयतस्तान्कृण्वोपवे ॥ १ ॥
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनसा । प्राञ्चः० ॥ २ ॥

अर्थ-[शत्रुः प्राङ्ग न इत् एयाति] प्रतिपक्षी मेरे प्रयत्नपर कहीं विजयसे विजय प्राप्त कर सकता। क्योंकि तू [सहमाना अभिभूः असि] अत्यधीक और प्रभावशाली है। [प्राञ्चः प्रतिप्राञ्चः जयतः] प्रत्येक प्रयत्नपर प्रतिवादीको जीत लो। [कपिञ्जले ! तान् कृण्वु] हे कपिञ्जले ! तू प्रतिपक्षियोंको पीसकर ॥ १ ॥

[सुपर्णः त्वा अनु अविन्दत] गरुडने तुझे प्राप्त किया है और [सूकरः त्वा खनसा अखनत्] सूकरने तुझे खोदकर खोदा है ॥ २ ॥

भावार्थ—मेरे प्रयत्नमें प्रतिपक्षी का पराजय होवा। क्योंकि मेरी यह शक्ति अति शालिनी और प्रभावयुक्त है। इसलिये प्रत्येक प्रयत्नमें प्रतिपक्षीका पराभव होवा। कपिञ्जलि भी प्रतिपक्षियोंको चूर्ण करती ॥ १ ॥

इस वनस्पतिसे गरुडभी प्राप्त करता है और सूकर खोदता है ॥ २ ॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे । प्राञ्च० ॥ ३ ॥
पाटामिन्द्रो व्यभाददसुरभ्य स्तरीतवे । प्राञ्चं ॥ ४ ॥
तयाहं शत्रून्त्साञ्च इन्द्रः सालावृकाँ इव । प्राञ्च० ॥ ५ ॥
रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।
प्राञ्च प्रतिप्राशो जयरसान्कृण्वोपवे ॥ ६ ॥
तस्य प्राञ्च त्व वधि यो नं इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राञ्चि मामुत्तरं कृधि ॥ ७ ॥

अर्थ— [इन्द्रः असुरेभ्यः स्तरीतवे त्वा बाहौ ह चक्रे] इन्द्रने असुरोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये तुझे बाहुमें धारण किया था ॥ ३ ॥

[असुरेभ्यः स्तरीतवे] असुरों से बचाव करनेके लिये [इन्द्रः पाटां व्यभात्] इन्द्रने इस पाट वनस्पतिको धारण किया था । ॥ ४ ॥

[अहं तया शत्रून् साधे] मैं उस वनस्पतिसे शत्रुओंको परास्त करता हूं [इन्द्रः सालावृकान् इव] जैसे इन्द्र भेड़ियोंको दूर करता है ॥ ५ ॥

हे [जलाष-भेषज] जलसे चिकित्सा करनेवाले [नील शिखण्ड] नील शिखावाले [कर्मकृत् रुद्र] पुरुषार्थी रुद्र ! [प्राञ्चं प्रतिप्राशः] प्रत्येक प्रश्नके प्रति प्रतिवादीको [जयः] जीत दो । [उपवे अरसान् कृणु] हे औषधे ! तू प्रतिपक्षीको शुष्क कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! [यः नः अभिदासति] जो हमें दास बनाना चाहता है [तस्य प्राञ्चं त्वं वधि] उसके प्रश्नके तू नीचे हो [शक्तिभिः नः अधिब्रूहि] शक्तियों के साथ हमें कह और [प्राञ्चि मां उत्तरं कृधि] प्रश्नप्रतियोगमें मुझे अधिक उत्तम कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्रने वज्र औषधि असुरोंके पराभव करनेके लिये अपने शरीरपर धारण की थी ॥ ३ ॥
उसीसे इसका प्रेरण भी किया था ॥ ४ ॥
उसीसे शत्रुओंको मारा होता है ॥ ५ ॥
हे जल चिकित्सक नील शिखाधारी उत्तम पुरुषार्थी वनस्पति ! प्रति प्रश्नके प्रतिपक्षीको परास्त कर और हे औषधे ! तू प्रतिपक्षीको शुष्क बना दे ॥ ६ ॥
हे इन्द्र ! जो हमें दास बनानेकी चेष्टा करता है उसको प्रतियोगमें नीच कर प्रतियोगमें मेरा विजय कर और शक्तियोंके साथ हमें उत्तम कर ॥ ७ ॥

विजय के क्षेत्र ।

एक विजय वाद विवादमें होता है दूसरा युद्धमें होता है । इन दोनों विजयोंकी प्राप्ति करनेके लिये विभिन्न शक्तियों की आवश्यकता रहती है ।

वादी और प्रतिवादी ।

प्रश्न करनेवाला 'प्राश' अर्थात् वादी होता है और उसके प्रतिपक्षीको 'प्रतिप्राशू' कहते हैं । वादी और प्रतिवादी इन दो शब्दोंके समानही ये प्राश और प्रतिप्राश' शब्द हैं । पाठक इसमें समानता देखें । पहिले मंत्र तथा आगेभी कई मंत्रोंमें कहा है कि प्रश्नकर्ता भी समर्थ हो कि उत्तर दाता भी अपने पक्षका ज्ञान इतना रखे और इस प्रकार कुशलतासे प्रश्न करे कि एक तो व

थोड़ेसे प्रश्नोंसे ही प्रतिपक्षीका मुख बंद पड़जाय । कई चतुर लोग ऐसे होते हैं कि वे थोड़ेसे एक दो प्रश्न ऐसे ढंगसे पूछते हैं कि उन प्रश्नोंके उत्तर देते देते प्रतिपक्षी स्वयं परास्त हो जाते हैं । अपने विषयका ज्ञान इतना प्राप्त करना और प्रश्न पूछनेका अभ्यास अपनेमें ऐसा बढ़ाना कि जिससे सहज ही में वाद विवादमें विजय प्राप्त हो सके । इस सूक्तके मंत्र भागोंमें ऐसी तैयारी करनेकी सूचना की गई है । वाद विवादमें विजय प्राप्त करनेका आत्म विश्वास अपने अंदर हो और किसी प्रकारका संदेह न हो । यह वाद विवादके विजय के विषयमें हुआ ।

युद्धमें विजय ।

अब दूसरा विजय युद्धमें शत्रुओंपर प्राप्त करनेका है इसमें भी अपनी आवश्यक पूर्व तैयारी करना योग्य ही है । जिस तैयारी से अपने विजय का विश्वास हो सके और कदापि संदेह न रहे ।

रोगमें युद्धोंमें पूर्व तैयारी अत्यंत आवश्यक है और जितनी पूर्व तैयारी अधिक हुई उतनी ही विजयकी संभावना अधिक होती ।

पाठा औषधी ।

इस सूक्तमें उक्त विजयके लिये एक औषधि प्रयोग लिखा है । इस औषधिका नाम 'पाठा या पाठा (म ४) है इस औषधिके गुण ये हैं–

विश्वा गुदस्या दुरितानि जंघनती ।
अग्नेवयानकरी विश्वदाहातीसारसूदनी च । राज नि व ६
मेधसी मुखवाधिका । कफपित्तहरा । भावप्र ।

यह पाठा या पाठा वनस्पति विष, गुद रोग व बात पित्त ज्वर नाशक दुष्टेदुरुका जीर्णकारी पित्त दाह अतिसार का नाश करनेवाली है । यह मेधाकारिणी, मुखमें लारीके रोग दूर करनेवाली तथा कण्ठकी पीड़ाको दूरकरनेवाली है । भावमें इस पाठा वनस्पतिको वक्तव्य आकाशी विमुखा' कहते हैं ।

वादविवाद के समय यह भी मुखमें धारनेसे या कण्ठपर बांधनेसे बोलनेके समय कण्ठ बराबर रहता है और कण्ठसूखके होने वाले कष्ट नहीं होते । यह बात भावप्रकाशादि ग्रंथोंमें भी कही है । कण्ठमें कफ दोष या अन्य प्रकार खराब स्फुट न होने आदिके जो कष्ट होते हैं वे इससे प्रयोगसे नहीं होते । इसलिये इस औषधिका वादविवादमें विजय प्राप्त होनेका वर्णन इस सूक्तमें किया है । इसके अतिरिक्त यह और उत्तेजक होनेसे कफकारकभी नहीं होती । इससे भी विजय होनेमें सहायता होती है ।

युद्धमें भी यह वनस्पति इसलिए उपयोगी है कि इससे टूटे हुए अवयव जोड़े जाते हैं, घाव शीघ्र भर जाते हैं । महाभारत में भी देखते हैं कि महाभारत वीर युद्धप्रसंगोंके अंतर कुछ वनस्पति लेकर करते थे तथा शरीरपर लेपन भी करते थे । जिससे रात्री व्यतीत होते ही और पुनः युद्ध करनेके लिए सिद्ध हो जाते थे । यहां तो पहिले लिखे युद्धमें घायल हुए वीर दूसरे दिन फिर किस प्रकार युद्ध कर सकते थे इस बातका उत्तर इस वेद मंत्रसे मिलता है । महाभारतमें कहीं औषधिका नाम नहीं लिखा, केवल औषधि वही बूटी केवल की जाती की इतनाही लिखा है । इस सूक्तने पाठा " नाम दिया है । इतनी वेद इससे अवश्य सिद्ध करें कि यह वनस्पति कौनसी है और इसका उपयोग कैसा किया जाता था ।

यह औषधि अपने बाहु स्कंध या मस्तकमें बांधना मुखमें धारण करना अथवा पेटमें उदर करना इन तीनोंसे आवश्यकी है, देखिये—

१ इन्द्रः बाहो धत्ते । (म २)
२ इन्द्रः पार्श्वे व्याधात् । (म ८)

इस मंत्र भागोंमें शरीरपर धारण करने और पेटमें उदर करनेकी बात लिखी है । यदि इसी तरह इस वनस्पतिका सेवन आप करेंगे, और वैसा वैद्यकीय विजय करेंगे तो वह उपकार हो सकते हैं । भारतीय युद्धके समय वीर लोग इसका उपयोग

करते थे और काम सठाते थे। वाक्योंसे रक्त पूरित हुए वीर तथा वाले सावधान इसके सेवन करनेसे पुनः दूसरे दिन युद्ध क्षेत्रमें समर्थ हो जाते थे। यदि यह केवल कल्पितकथा न होगी और यदि इस मंत्रमें भी यही बात हम देखते हैं तो इसका अनादर होना कठिन है।

शक्तिके साथ वक्तृत्व।

सप्तम मंत्रमें एक बात विशेष महत्वकी कही है देखिए—

शक्तियिः अभिवूहि। (मं ७)

अनेक शक्तियोंको अपने साथ रखकर ही जो बोलना हो सो बोल दो। अपने पास शक्तियां न रहते हुए बोलना और क्या वक्तृत्व करना कुछ प्रयोजन नहीं रखता उस शक्तिहीन वक्तृत्वसे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता इस लिए अपने पास और अपने पक्षके कर्मचारियों शक्ति कितनी है इसका विचार करके ही जो कुछ वक्तृत्व करना हो तो वह उस शक्तिके प्रमाणसे ही करना योग्य है। अपनी शक्तिसे अत्यधिक किया हुआ वक्तृत्व व वक्तृत्व प्रवाह अवश्य कष्ट सकता है और नाही अपना बल बढ़ा सकता है। इसलिए वेदकी यह महत्व पूर्ण सूचना पाठक अवश्य स्मरण रखें। तथा—

या नः अभिदासति सं ताहि। (मं ७)

जो हमें दास बनाना चाहता है उसे जीत लो। " यह उपदेश भी पूर्वोक्त आदेशके अनुसारसे अर्थात् बल से क्या कामकारी हो सकता है। अपना बल बढ़ाना करना ही बोलना कि जितना करके दिखाया जा सकता है, इसका इसके पश्चात् अपने को दास बनानेवालेका पराभव करना। यह अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने कर्मक्षेत्रका विस्तार करनेका वेदका मार्ग है।

अभिदासन का निषेध।

वेद में हम देखते हैं कि अभिदासन का पूर्ण और तीव्र विरोध स्थान स्थानपर किया है। यहां तक यह निषेध है कि " अभिदास " का अर्थ " विनाश " ही माना है। पूर्ण नाश होना और दास बनाना यह वेदकी दृष्टिसे एकही बात है। किसी भी अवस्थामें वेद दास पुकारना पसंद नहीं करता। पाठक इस बातका यहां मनन करें और धर्मसंस्था कैसे उसके अंदर घटनेका यत्न करें।

सर्वचिकित्सक।

यह मंत्रमें सर्वचिकित्सक औषधिवाले पुरुषार्थी करका वर्णन है। " सर्वाय भेषज " शब्द सर्वचिकित्सक भाव बता रहा है। भेषज का अर्थ औषधी है। सीव चिकित्सीय अर्थ सीव चिकित्सासे है यह उसका अर्थ आरोग्य पूर्ण मनुष्य का वेष करता है। इसकी शिक्षा वेद होती है उसकी ही औषधी का काम होती है। कर्म—कृत् ' शब्द पुरुषार्थका वाचक है। अपने चिकित्सा कर्म में कुशल। यह शब्द का अर्थही (कर्मकृत) कर्मवाले रोगोंको हटानेवाला है। ये सब शब्द सर्व चिकित्सकका भाव बताते हैं। यह चिकित्सक का काम यहां इसलिये कहा है कि यहां पुरुषार्थ अनिवार्य वीरोंको आरोग्य रखना वेदका उद्देश है। तथा साथ औषधिका प्रयोग भी करना है। इसलिए सुनिष्ठ वैद्यकी आवश्यकता है।

यह सूक्त जिस विषयका प्रतिपादन कर रहा है वह प्रसंग अनुसरका विषय है इसलिए अगली वेदोंको ही इसकी प्रसन्नता करनेका यत्न करना चाहिये अन्यथा यह विषय केवल कल्पी में ही रहेंगी।

———o———

दीर्घायुष्य प्राप्ति ।

(२८)

[ऋषिः शम्भुः । देवता-अरिमा, आयुः]

तुभ्यमेव अरिमन्वयतामुप मेममुन्ये मुह्यवो हिंसिषुः शुत ये ।
मातेव पुत्र प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात्पात्वंहसः ॥ १ ॥
मित्र एनं वरुणो वा विशादो जरामृत्युं कृणुतां सविदानौ ।
तद्ग्निर्होता वसुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥ २ ॥
स्वमीड्ये पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हांसीन्मो अपानो मेम मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥ ३ ॥

अर्थ-हे (अरिमन्) वृद्धावस्था ! (तुभ्यं एव अयं वयतात्) तेरे लिये ही यह मनुष्य बढ़े । (इमं ये अन्ये उत ये मुह्यवः) इसको जो ये दो अल्पायु हैं (मा हिंसिषुः) मत हिंसित करें । (प्र-मनाः माता पुत्रं उपस्थे इव) प्रसन्नमन वाली माता पुत्रको जैसे गोदमें लेती है उसी प्रकार (मित्रः मित्रियात् एनसः एनं पातु) मित्र मित्रसम्बन्धी पापसे इसको बचाये ॥ १ ॥

(मित्रः विशादः वरुणः वा) मित्र और वसुवासक वरुण (सविदानौ एनं जरामृत्युं कृणुतां) दोनों मिलकर इसको वृद्धावस्थाके बजाय मरणेवाला करें । (होता वसुनानि विद्वान् अग्निः) दाता और सब कर्मोंको यथावत् जाननेवाला अग्नि (तत् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति) उसको सब देवोंके जन्मों को कहता है ॥ २ ॥

(ये जाता उत वा ये जनित्राः) जो जन्मे हैं और जो जन्मनेवाले हैं उन (पार्थिवानां पशूनां त्वं इड्ये) पृथ्वी के ऊपर के प्राणियोंका तू स्वामी है । (इमं प्राणः मा अपानः च मा हासीत्) इसको प्राण और अपान न छोड़ें । तथा (मित्राः इमं मा वधिषुः) मित्र इसे न मारें और (मा अमित्राः) शत्रु भी न मारें ॥ ३ ॥

भावार्थ- मनुष्य पूर्ण वृद्धावस्थावाला दीर्घायुषी होवे । बीचमें कोई अल्पायु प्रयत्न करके भी इसे न मार सकें । जिस प्रकार अपने शिशुपुत्र को माता गोदमें लेकर प्रेमके साथ पालती है उसी प्रकार सबका मित्र यह इस पुरुषको मित्र सम्बन्धी पापसे बचाये ॥ १ ॥

वसुवासक मित्र और वरुण दोनों मिलकर इसको अतिदीर्घ आयुवाला करें । सब कर्मोंका जाननेवाला तेजस्वी यह इसके सब देवताओंके जीवन चरित्र कहे ॥ २ ॥

हे ईश्वर ! तू इस पृथ्वीपर के संपूर्ण जन्मे हुए और जन्मनेवाले सब प्राणियोंका स्वामी है तेरी कृपासे प्राण और अपान इसे बीचमें ही न छोड़ें तथा मित्रादि वा शत्रुओंसे इसका वध न होवे ॥ ३ ॥

करते थे और काम उठाते थे। वाणोंसे रक्त पूरित हुए वीर तथा घोड़े सायकाल इसके सेवन करनेसे पुनः दूसरे दिन युद्ध करने में समर्थ हो जाते थे। यदि यह केवल कविकल्पना न होती और यदि इस मंत्रमें भी वही बात हम देखते हैं तो इसका अनुभव होना सम्भव है।

शक्तिके साथ वक्तृत्व।

प्रथम मंत्रमें एक बात विशेष महत्त्वकी कही है देखिए—

अभियमः अभिभूहि। (म० ७)

अनेक अभिलाषोंको अपने साथ रखकर ही जो बोलता हो सो बोल हो। अपने पास अभिलाषा न रखते हुए बोलना और सदा वक्तृत्व करना कुछ प्रयोजन नहीं रखता इस अभिलाषीन वक्तृत्वसे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता तब सिद्ध अपने पास और अपने पक्षमें कार्यकारिणी शक्ति कितनी है, इसका विचार करके ही जो कुछ वक्तृत्व करना हो तो वह उस शक्तिके प्रभावसे ही करना योग्य है। अपनी शक्तिसे अत्यधिक किया हुआ वक्तृत्व व अनुपर प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और वाही अपना बल बता सकता है। इसलिए वेदकी यह महत्त्व पूर्ण सूचना पाठक अवश्य स्मरण रखें। तथा—

वा० मा० अभिदासति स वाहि। (म० ७)

जो हमें दास बनाना चाहता है उसे जीत ले। यह उपदेश भी पूर्वोक्त आदेशके अनुसंधानसे अर्थात् अपना बल ऐसा अनुकारी हो सकता है। अपना बल बढ़ाना उतना ही योग्य कि जितना करके दिखाया जा सकता है, इससे अधिक पश्चात् अपने को दास बनानेवालेका पराभव करना। यह अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने कार्यक्षेत्रका विस्तार करनेका योग्य मार्ग है।

अभिदासन का निषेध।

वेद में हम देखते हैं कि अभिदासन का पूर्ण और तीव्र निषेध स्थान स्थानपर किया है। यहां तक यह निषेध है कि "अभिदास" का अर्थ "निन्दा" ही माना है। पूर्ण दास होना और दास बनाना यह वेदकी दृष्टिसे एकसी बात है। किसी भी अवस्थामें वेद दास-दासत्व बनना पसंद नहीं करता। पाठक इस बातको यहां ध्यान करें और अथर्ववेदी वीरवृत्ति अपने अंदर उत्पन्न करें।

अलक्षचिकित्सक।

यह मंत्रमें अलक्षचिकित्सक औषधिवाले पुरुषार्थी वैद्यका वर्णन है। "अलक्ष-केवल" शब्द अलक्षचिकित्सक अर्थ बता रहा है। अलक्ष का अर्थ अलक्ष्य है। और चिकित्सीय अर्थ औषधिवाले हैं यह वैद्य अलक्ष्य आरोग्य पूर्ण मनुष्य का क्षेम करता है। इसकी क्रिया क्षेम होती है अलक्ष्यकी ही नीति का आश्रय होती है। कर्म—कृत् " शब्द पुरुषार्थीका वाचक है। अपने चिकित्सा कर्म में कुशल। अ शब्द का अर्थ (इदमर्थ) रखनेवाले रोगोंके इदमेतदका है। ये दोनों शब्द वैद्य चिकित्सकका भाव बताते हैं। यह चिकित्सक का काम यहां इसलिये कहा है कि यहां पुरुषार्थ अभिदास वीरोंको आरोग्य प्राप्त करा देना इतना है। तथा पक्ष औषधिका प्रयोग भी करना है। इसलिए युक्ति वैद्यकी आवश्यकता है।

यह सूक्त किस विषयका प्रतिपादन कर रहा है यह प्रसंग अनुसंधान विषय है इसलिए आगे मंत्रोंमें ही इसकी प्रसन्नता करनेका यत्न करना चाहिये अन्यथा यह विषय केवल शब्दों में ही रहेंगी।

———o———

इनका कार्य क्षेत्र।

प्राण और अपान इस प्राणका काम हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। प्राणायामसे इस प्राणका बल बढ़ता है और इनका सब क्रियाएं भी ठीक प्रकार चल सकती हैं। साधारण मध्यम और उत्तमो प्राणायाम इस अनुष्ठानके अन्दर पड़ते हैं। मध्यम प्राणायाम चौंसठकी संख्याके प्रमाण बनसे प्राण उच्छ्वास करनेसे होता है। यह थोड़े समय तक ही होता है। अधिक होनेवाला मुख्यम प्राणायाम उत्तमोत्तमी है। जो स्वस्थ और शांत चित्तसे दोनोच्छ्वास बाहर करनेसे होता है। बाहरका भी अल्प हो और उच्छ्वास का भी हो। इच्छानुसार कुंभक किया जाये या न किया जाये। यह अतिसुगम और सुलाभ प्राणायाम है और बिना आयास किसी समय चाहे हो सकता है। यह सौम्य होता हुआ भी इस कार्यके लिए बड़े उपयोगी है।

इस प्रकार प्राणका बल बढ़ानेका अनुष्ठान होनेसे इसी का परिणाम अपान क्षेत्र पर भी होता है। और अपानके कर्म भी उत्तम रीतिसे होने लग जाते हैं। अपानके कर्म मलमूत्रोत्सर्ग और शोषण वायुका बाहर मलसे पचन आदि हैं, वे सहज होते हैं। अन्यान्य दोषशोषण भी सुविधा सहजसे आने जा सकते हैं।

इस योजनासे प्राण और अपानका बल बढ़ानेसे दीर्घजीवन प्राप्त करनेका हेतु सिद्ध हो सकता है। हित मित पथ्य भोजन संयमशील ब्रह्मचर्य आदि जो धर्ममार्गके साधन हैं, वे हरएक अवस्थामें आवश्यक हैं वे सर्व साधारण होनेसे इनका विचार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्राण अपानके बलसे अपने आपको सुरक्षित करना यह एक मात्र अनुष्ठान यहां इस लेखके लिए इस सूत्रने बताया है और वह सौम्य ही है।

ये दोनों कार्य ठीक प्रकार होने लगे तो दोषदुष्टिके संबंधमें कोई क्लेश नहीं होंगे मूत्र उत्तम होगा, उसीमें भी कुछ कष्टदिखी जाना नहीं होगी। इस प्रकार शरीरके सब व्यवहार नियम बद्ध होने लगेंगे तो समझना कि दीर्घायुकी प्राप्ति के मार्ग पर अपना पग है। परंतु यदि इसके बद्ध होने लगे तो समझना चाहिए कि अपना पग दूसरे मार्गपर पड़ा है। यही तृतीय मन्त्रमें कहा है।

दूर्मं प्राणा मा हासीत्, मा अपानाः [म ३]

प्राण अपान अपना इसे कामसे ही न छोड़ दें। अर्थात् यह मनुष्य सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक उत्तम प्रकार जीवित रहे और इसके शरीरमें अन्ततक प्राण और अपान अपना अपना कार्य ठीक रीतिसे करते रहें। जो पाठक अपने स्वास्थ्यके सब प्रश्नों विचार करते हैं उनको अपने अंदरके प्राण और अपानके कार्यका विचार करना चाहिए, क्योंकि ये सब ठीक चलते रहें तो ही शरीरका स्वास्थ्य ठीक रहता।

स्वास्थ्य की तथा दीर्घ आयु प्राप्त होने की यह कुंजी है। (प्राण पाणाभ्यां गुप्तः) प्राण और अपान द्वारा जो सुरक्षित होता है वह चिरकाल तक जीवित रहेगा। इसलिए दीर्घायुष्य के इच्छुक सब अपने शरीरके अंदर इन दोनों कार्योंका बढ़ावें।

पद्य।

प्राण अपान भी बलवान् हुए और शरीर स्वास्थ्य भी उत्तम रहा तो भी बस, उत्तम अवस्था अवश्य मनुष्यको प्राप्त हो सकती है, मनुष्यके प्रयत्न आवश्यक हैं क्योंकि वहां आलस्य आया तो पतन ही होता है अवनति होती है। परंतु इतना प्रयत्न मनुष्य के स्वाधीन नहीं होता है। यह प्रयत्नमें अवश्य अधिक भाग बढ़ाने और संयमित प्रवृत्तियों द्वारा करनेसे बहुत लोगों के जीवन का भी सुधार होता है परंतु यह विशेष कर मनुष्यके और संघ आधीन होता है। इसलिए इसका यह पक्ष होना कठिन है। अतः उत्तम प्राणके आधारसे इसकी रक्षा ही एक मुख्य उपाय है इस मंत्र में ऐसे कहा है कि—

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्यु कृणुतां सविदाने ।
यथा जीव अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शत हिमाः ॥ ४ ॥
इमममेव आयुषे वर्चसे नय प्रिय रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥ ५ ॥

अर्थ- (द्यौः पिता पृथिवी माता सविदाने) द्यौपिता और पृथ्वी माता मिलकर (त्वा जरामृत्युं कृणुताम्) तुझको वृद्धावस्थाके अनन्तर मरणेवाला करें । (यथा अदितेः उपस्थे) जिससे मातृभूमिकी गोदमें (प्राणापानाभ्यां गुपितः) प्राण और अपानसे सुरक्षित होकर (शतं हिमाः जीवाः) सौ वर्षतक जीवित रह ॥ ४ ॥

हे (अग्ने मित्र वरुण राजन्) अग्ने और मित्र तथा वरुण राजा ! (प्रिय रेतः) प्रिय भोग और वीर्य का एक होकर (इमं आयुषे वर्चसे नय) इसको दीर्घ आयुष्य और तेज प्राप्तिके लिये ले जा । हे (अदिते) अदितिदेवि ! तू (माता इव अस्मै शर्म यच्छ) माता के समान इसे सुख दे । हे विश्वे देवो! (यथा जरदष्टिः असत्) यह मनुष्य जिससे वृद्धावस्था तक जीवित रहे वैसी सहायता करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— पृथिवी सूर्य और मातृभूमि ये दोनों मिलकर इसको अति दीर्घ आयुष्यतक जीवित रखें और यह मनुष्य अपनी मातृभूमिकी गोदमें प्राण और अपानोंसे सुरक्षित होता हुआ सौ वर्षकी दीर्घ आयुतक जीवित रहे ॥ ४ ॥

हे अग्ने वरुण मित्र राजन् ! इसको प्रिय भोग और वीर्यका एक होकर दीर्घायुष्य पुष्ट तेजस्वी जीवन प्राप्त कराओ । अदितिदेवि माता के समान इसे सुख देवे । और अन्यान्य सब देव इसको ऐसी सहायता करें कि यह सुख से अतिदीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सके ॥ ५ ॥

दीर्घ आयुष्यकी मर्यादा ।

प्रस्तुत सूक्त दीर्घ आयुष्यकी मर्यादा बता रहा है । इस सूक्तके (मं ४) में भी (शतं हिमाः जीवाः) सौ वर्षतक जीवो ऐसा कहा है इससे सौ वर्षका दीर्घायु प्राप्त करना इस सूक्तका उद्देश है । कोई आयुके वर्धनके लिये यह आशीर्वाद दिया जाता है और सब चिन्तते हैं कि यह सौ वर्षतक जीवित रहे । तथा—

मे अग्ने अर्धं मुखव। त इमं सा विशिषुः । (अ १)

जो देवोंमें अमर्त्यु हैं न इसका बीचमें ही न अवर करें । " अर्थात् सौ वर्षके पूर्व कोई अमर्त्यु इसका नाश न कर सके । बीचमें किसी किसी समय कोई अमर्त्यु इसके पास आ भी गया, तो वह इसके पास अधिक समयतक न हो सके यह यहां कहना है । लोग अपनी दीर्घ आयु करनेके लिए ऐसे दक्षतायें हों और खान पान भोग व्यवहारादिक नियम ऐसे रक्खनेका प्रयत्न करें कि वे दीर्घ दीर्घ मृत्युके वशमें कभी न चले जांय ।

साधन ।

दीर्घजीवन प्राप्त करनेका साधन चतुर्थ मंत्रमें संक्षेप से कहा है देखिए—

प्राणापानाभ्यां गुपितः शत हिमा जीवाः । (म ४)

प्राण और अपानसे रक्षित होता हुआ सौ वर्ष जीओ । " इस मंत्र भागमें दीर्घ जीवन का साधन कहा है । यदि इसका विचार मनुष्य करेगा तो प्रायः वह दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा । प्राण और अपानसे अपनी सुरक्षितता प्राप्त करना चाहिए । अर्थात् प्राणका और अपान का एक अपनेमें बनाना चाहिए । नाभिके ऊपर प्राणका राज्य है और नीचे अपानका राज्य है । ये ? शरीरमें मित्र और वरुण हैं । इनका उल्लेख इसी सूक्तमें अन्यत्र (मं २ ५ में) आदरके साथ किया है । इसी एक साधनसे मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है ।

इनका कार्य क्षेत्र।

प्राण और वध्यूषाव इन प्राणका काम हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। प्राणायामसे इस प्राणका बल बढ़ता है और इनकी सब क्रियाएं भी ठीक प्रकार चल सकती हैं। साधारण मध्यम और उत्तमी प्राणायाम इस अनुष्ठानके अन्दर पड़ते हैं। मध्यम प्राणायाम दौड़नेकी गतिके समान चलसे प्राण वध्यूषाव करनेसे होता है। यह आधे समय तक ही होता है। अधिक होनेवाला सुषम प्राणायाम कहलाता है। जो खासपुत्र और शांत चेतसे पाशोष्मूषाव साधन करनेसे होता है। श्वासका भी बन्द हो और वध्यूषाव का भी हो। इच्छानुसार कुंभक किया जावे या न किया जावे। यह अतिसुषम और सुखाप्य प्राणायाम है और बिना बाधाके जिस समय चाहे हो सकता है। यह सौम्य होता हुआ भी इस कार्यके लिए बड़े उपयोगी है।

इस प्रकार प्राणका बल बढ़नेसे अनुष्ठान इसीका परिणाम अपान क्षेत्र पर भी होता है। और अपानके कर्म भी उत्तम रीतिसे होने लग जाते हैं। अपानके कार्य वस्तिमूत्रोत्सर्ग और शोधन शुक्र और आपान गमन आदि हैं, वे सुचारु होते हैं। अन्तान्त बाधकसाधन भी सुविधा साधनसे आने लग सकते हैं।

इस पौंचनासे प्राण और अपानका बल बढ़नेसे दीर्घजीवन प्राप्त करनेका हेतु सिद्ध हो सकता है। हित मित पथ्य भोजन ब्रह्मचर्य आदि जो धर्मशास्त्रके साधन हैं वे इसके अतिरिक्त आवश्यक हैं वे तो साधारण होनेसे उनका विचार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्राण अपानके बलसे अपने आपको सुरक्षित करना यह एक मात्र अनुष्ठान यहां इस प्रकरण के लिए इस सूक्तने बताया है और वह योग्य ही है।

ये सभी कर्म ठीक प्रकार होने लग तो दीर्घजीवनके विषयमें कोई शंका नहीं होवे भूख उत्तम लगे, छातीमें भी कुछ कफादिसे बाधा नहीं होवी। इस प्रकार शरीरके सब व्यवहार बिना कष्ट होने लगेंगे तो समझना कि दीर्घायुकी प्राप्ति के मार्ग पर अपना पग है। परंतु यदि इसके कष्ट होने लगे तो समझना योग्य है कि अपना पग दूसरे मार्गपर पड़ा है। यही तृतीय मन्त्रमें कहा है।

इमं प्राण्य मा हासीत्, मा अपानः [मं १]

" प्राण अपना अपना इस जीवनमें हास न करें। अर्थात् वह मनुष्य जो दीर्घ पूर्ण आयुष्यके उत्तम कर्म करते रहे और इसके शरीरमें अन्तरंग प्राण और अपान अपना अपना कर्म ठीक लिखेके करते रहें। जो पाठक अपने इस शरीरके प्राण और अपानके कर्मोंका विचार करना चाहें, क्योंकि ये प्राण ठीक चलते रहें। ही शरीरका स्वास्थ्य ठीक रहता।

इस प्राण की तथा शीघ्र प्राप्त होने की यह कुंजी है। (प्राण प्राणाय गृह्णतः) प्राण और अपान द्वारा जो मनुष्य होता है वह निश्चय ही दीर्घ जीवन रहेगा। इसलिए दीर्घायुष्य के इच्छुक जन अपने शरीरके भीतर इन दोनों को प्रेम करें।

पद्य।

प्राण अपान की बलवृद्धि हुए और शरीर स्वास्थ्य भी उत्तम रहा तो भी मनुष्य कदाचित अपघात आदि से मृत्यु को प्राप्त होता है जिससे मनुष्यकी मृत्यु हो सकती है, परन्तु ये प्राण और अपान कर्मके यहां जाकर आत्मा तो अमर ही होता है आत्मा का नाश नहीं है। परन्तु इससे इतना मनुष्य के स्वार्थ का नहीं होता है। यह मनुष्यने अपना अधिक से अधिक समय परोपकार में व्यतीत करके अपने को अमर तो भी सुधार होता है परन्तु वह निज के स्वार्थ के लिए नहीं अपितु परोपकार के है। इसलिए उसका यह प्रयत्न होता है। अतः उसके आत्मके कल्याणार्थ इस प्रकार की ही एक प्रार्थना परमेश्वर से करता है कि—

ईशप्रार्थना।

इम मित्रा मा वधिषुः मा अमित्रा (मं ३)

" हे ईश्वर ! तेरी कृपासे मित्र इसका वध न करें और अमित्र भी न करें।" तृतीयमंत्र परमेश्वर प्रार्थना विषयकी है भूत भविष्य वर्त्तमान सब प्राणियों का एक ईश्वर है, सबका पालन वही करता है उसी की कृपासे इस मनुष्यका वध न होवे और इसका स्वास्थ्य भी उत्तम रहे। यह तृतीय मंत्रका भाव ईश प्रार्थनाका बल प्राप्त करनेकी सूचना देता है। जो चराचर जगत् का पालनहार परमात्मा है उसकी भक्ति करनेसे जो अद्भुत बल बढ़ता है वह अपूर्व है। महात्मागण लोग ही उस बलका अनुभव करते हैं। और प्रायः वह अनुभव है कि श्रद्धा भक्तिसे परमात्म भक्ति करनेवाले उपासक उत्तम स्वास्थ्यसे संपन्न होते हैं। इस लिये इस दीर्घायुष्य प्राप्तिके सूक्तमें (सर्व देहिने) इस तृतीय मंत्रद्वारा जो ईश भक्तिका पाठ दिया है वह दीर्घआयु प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पाठक इस बलसे वंचित न रहें। इस बलके प्राप्त होने पर अन्य साधन आवश्यकी हो सकते हैं परन्तु इस बलके न होने की अवस्थामें अन्य साधन कितने भी पास हुए तो भी वे इतना काम नहीं पहुंच सकते। पाठक इसका विचार करके ईशभक्तिका बल अपने अंदर बढ़ावें जिससे सब विघ्न दूर हो सकते हैं।

देवचरित्र श्रवण।

दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिए श्रवण अथवा पठन देवताओंके चरित्रोंका ही करना चाहिए। देवों अर्थात् इस संसारके उत्तम उपदेशकोंके जीवन चरित्र श्रवण करने चाहिए उन्हीं ग्रंथोंका पठन करना चाहिए और उनके चरित्रोंका ही मनन करना चाहिए।

आज कल उपन्यास आदि पुस्तकें ऐसी पुलिस कथा कथाओंसे युक्त प्रकाशित हो रही हैं कि जिन के पठन पाठनसे अच्छे बालकोंमें दुष्टत्व बढ़ते हैं, दीर्घ आयु होना है ब्रह्मचर्य टूट जाता है, और नाना प्रकारकी आपत्तियां बढ़ जाती हैं। परंतु ये पुस्तक आज कल बढ़ रहे हैं अपने देशमें क्या और इतर देशोंमें क्या हीन दर्जे के लोग लेखन व्यवसाय में आनेसे आज हीन चारित्रवत प्रचलित हुआ है, इससे उक्त प्रकारकी हानि ही हानि हो रही है इस से बचने के वास्तेसे इस सूक्तमें आवश्यकी सूचना तृतीय मंत्रमें दी है देखिए—

बहुभ्यानि विद्वान् होता अमिः
यद् विभा देवानां अभिमा विवक्ति ॥ (मं ३)

" यज्ञ कर्मोंको यथावत् जाननेवाला होता अग्निके समान तेजस्वी उपदेशक यज्ञ देवोंके जीवन चरित्र अच्छे सुनावे।" यह मंत्र कई दृष्टियोंसे मनन करने योग्य है। इस में उपदेशक के गुण कहे हैं उपदेशक होता अर्थात् यज्ञ करनेवाला हो अपने व स्वकीय (होता) हवन करनेवाला हो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी हो और (बहुभ्यानि विद्वान्) बहुभ्यः कर्तव्य यज्ञ कर्मोंको यथावत् जाननेवाला हो। इसी प्रकारका बहुज्ञ उपदेशक लोगोंका मार्गदर्शक बने लोगोंको धर्म मार्गका उपदेश करें और लोगोंका (देवा ना अभिमाणि देवतानां जीवनचरित्र सुनावे। देवोंने अपने जीवन में दैव शुभ कर्म किये हैं जिनसे परोपकार किया जगतका उपकार देखा किया इत्यादि सभी बातें लोगोंको बतावे देवे। राजाओं और विद्वानोंके जीवन चरित्र कहने यही चाहिए अपितु इनके दिव्य चरित्र ही अपने सामने रखने चाहिए। आदर्श जीवन यज्ञोंका हुआ करता है। राक्षस और पिशाचों भूतों और डाकुओंका जीवन तो न सुनने योग्य होता है। यही उच्च जीवन मनुष्य अपने सामने आदर्शके लिए रखने तो उसके उच्च कर्मोंका भी प्रचार होगा और उसकी आयु भी बढ़ेगी। आयु बढ़ानेके लिए भी यह एक उत्तम साधन है कि लोग अपना महामहत्ता जीवन अपने आवश्यक लिए न और परोपकार जीवन व जें। आजकल की उपन्यासादि पुस्तकें जो आयुकी अल्पताका ही विस्तार कर रही हैं उनके पठन की सूचना नहीं करने की है। इनका श्रवण जितना हो सके उतना लाभकारी होगा।

आज कल जो चरित्र मिलते हैं वे प्रायः विकार बढ़ानेवाले मिलते हैं। केवल सीताका महामंगल चरित्र कुछ है। इस लिए श्रवण पठन यह एक आवश्यक दुष्प्राप्य वस्तु हो रही है। यद्यपि आजकलकी कृपासे रामायण महाभारत ग्रंथ तथा

अन्यान्य अधिकांशतः पवित्र है, उनका मनन करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। जो लोग इस बातको आवश्यक समझते हैं उन को उचित है कि वे ऐसे सच्चरित्र लेखक अथवा वेद मंत्र निर्माण कर और कराएँ कि जिनके पठन पाठन से आपसी व्यवहार सुधारके पथपर सुगमतासे चल सकें। अस्तु। इस मंत्र भागमें हिंस्रचरित्रोंका भक्षण और वमन " यह एक लाक्षणिक दीर्घायुष्य प्राप्तिके लिए कहा है यह अत्यंत आवश्यक है इसलिए जो दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं वे ऐसे चरित्रोंका ही मनन करें।

पापसे बचाव। दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेके लिए पापसे अपना बचाव करनेकी आवश्यकता है। पापसे पतन होता है। और रोगादि वह पतनके कारण आयुष्य क्षीण ही होती है इसलिए इस सूक्तके पहिले ही मंत्रमें पापसे बचनेकी सूचना दी है देखिए—

मित्र एनं मित्रियात् पातु पत्यतः पातु। (म १)

' मित्र इस मनुष्यको मित्रसंबंधी पापसे बचावे। शत्रु संबंधसे होनेवाले पापसे तो बचना ही चाहिए। कई लोग मानते हैं कि मित्र के लिए मित्रके हित साधनके लिए, कुछ भी दुरात्मता किया जाय तो वह हानिकारक नहीं है। परंतु पाप तो है वह हमेशाही पाप होता है वह किसीके लिए किया जावे अंत पापाचरण होना तब उसका भिन्नभिन्न परिणाम अवश्य ही भोगना होगा। इसलिए जो मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेके इच्छुक हैं उनको अपने आपको पापसे बचाना चाहिए। मित्र अपने मित्रको पापकर्म करनेसे रोके और उसको सीधे धर्म मार्गपर चलने की सलाह देवें। मनुष्य स्वयं भी विचार करके चले कि पाप कर्मसे पतन अवश्य होगा इसलिए हरएक मनुष्य अपना मित्र बने और अपने आपको बुरे मार्गसे बचावे। मनुष्य स्वयंही अपना मित्र और अपना शत्रु होता है इस लिए कभी ऐसा कार्य न करे कि जिससे स्वयं अपना शत्रु समान बन जाय तात्पर्य यह है कि दीर्घ आयुष्य प्राप्त करना हो तो अपने आपको पापसे बचाना चाहिए। पाप कर्म करते हुए दीर्घ आयुष्य प्राप्त करना असंभव है।

भोग और पराक्रम।

मनुष्यको भोग भी चाहिए और पराक्रम भी करना चाहिए। परंतु भोग बहुत भोगनेसे रोग घेरते हैं और दीर्घ श्वास करनेसे ही आरोग्य पूर्ण दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है। मनुष्यके भोग भिन्न भिन्न होते हैं। और भोगोंमें अपने दीर्घत्व बाध करना साधारण मनुष्यके लिए एक अशक्य ही सी बात है इसलिए इसका क्रमिक प्रमाण होना चाहिए यह बात पंचम मंत्रमें स्पष्ट की गई है देखिए

इमं दीर्घं रेतो मनुष्ये वर्चसे धत्। (मं ५)

' इस मनुष्यके लिए भोग देकर तथा दीर्घ पराक्रम भी देकर दीर्घ आयुष्यके साथ प्राप्त होनेवाले तेजके लिए वे पाले।" अर्थात् वह मनुष्य अपने लिए भिन्न भोग भी योग्य प्रमाणमें भोगे और दीर्घ स्वरूप द्वारा पराक्रम भी करे, परंतु वह उन ऐसे सुयोग्य प्रमाणमें हो कि जिससे उसका आयुष्य और तेज बढ़ता जाय। परंतु भोग भोगने और दीर्घके कार्यमें प्रमाणका अतिरेक कभी न हो जिससे कीट दीर्घ अकाल मृत्यु इसके प्राणोंको ले चले। अपना समय भोग और पराक्रमके कार्योंके लिए ऐसा बांटना चाहिए कि भोग भी प्राप्त हों और दीर्घके सब कार्य भी बन जांय और वह सब दीर्घायु और तेजकी प्राप्तिमें बाधा न उत्पन्न करें। अपने कार्य इस सूचनाके अनुसार करने चाहिए। रेतके भोग उपयोगसे संततोत्पत्ति भी होती है यह भी बात है परंतु उसके अतिरेक से अकालमें नाश द्वारा व अन्य प्रकारसे कष्ट उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य भोग की कार्योंके विषयमें समझना योग्य है। इस लक्षण को ध्यान में धारण करके यदि मनुष्य अपना व्यवहार करेंगे तो उनको भोगभी प्राप्त होंगे और दीर्घ आयु भी मिलेगा।

देवोंकी सहायता।

१ मित्रः पितृभ्यो देवेभ्यो अन्तरिक्षेभ्यो जरायुषुं कृणोतु। (म ६)
२ द्यौश्चिता पृथिवी माता देवीभ्यो नः जरायुषुं कृणोतु ॥ (मं ७)
३ अदितेः ! माता इदं वर्चः धत्त। (म ८)

व विश्वे देवाः। अरक्षहिः वधा अवत्। [मं ५]

मित्र और वरुणसहित वसु रुद्रों सहित आदित्य और मरुद्गणसहित विश्वेदेव इसको दीर्घ आयु करें ॥ पूर्वोक्त और मरुद्भूमि सहित इसको देखें ॥ हे अग्निवायो आदि अग्नि ! तू माता के समान सुख दे ॥ हे सब देवो ! इसके पूर्व आयुवाल अतिक्रम करो ॥"

यहां मित्र वरुण सूर्य, पृथिवी अग्नि और सब अन्य देव इसको दीर्घ आयु करने में सहायक हों, यह वर्णन है। इस से स्पष्ट होता है कि दीर्घ आयु चाहने वाले मनुष्य को इन देवोंके साथ अविरोधी वर्त्ताव करना चाहिए। यदि इसको बहुतसा आयुष्यकी वृद्धि होती है तो उसके साथ विरोध करना योग्य नहीं यह स्पष्ट ही हुआ। सूर्य देव सबसे प्रथमसे ओज बढ़ता करता है और इसे दीर्घ आयु देता है परंतु सूर्य प्रकाशसे वञ्चित नहीं रहना चाहिए, अन्यथा यह इसे अवश्य देखे पहुंचलेगा। परमेश्वर समुदाय देव है समुद्रवत्, पृथिवीवत्, आकाशवत् सब उसीके आश्रय स्थान हैं। यदि मनुष्य इन सबोंसे अपनी मित्रता करे अथवा अन्य रीतिसे सब ही देवोंसे आयु प्राप्त हो सकता है। मनुष्यों को योग्य उपासना करनेसे जो राष्ट्रीय स्वातंत्र्य प्राप्त होता है, उससे मनुष्य आनंदमय और दीर्घजीवी हो सकता है इसे सब अन्यान्य देवोंका संबंध है विशेष विचार पाठक करें और उससे आयु प्राप्त करके दीर्घजीवी बनें।

दीर्घायु, पुष्टि और सुप्रजा।

(२९)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-नाना देवताः।)

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्चो आ धाद्बृहस्पतिः ॥ १ ॥
आपूरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै दीर्घं आयुः प्रतिमाति सूर्यः ॥ २ ॥

अन्वय—हे (देवाः) देवो ! अग्नि सूर्य और बृहस्पति (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (पार्थिवस्य रसात् भगस्य) पार्थिव शरीरके ऐश्वर्य संबंधी (रसे बले) रस और बलके अवरोध प्राप्त होनेवाला (आयुष्य वर्चः) दीर्घ आयुष्य और तेज (आ धात्) देवे ॥ १ ॥

हे (जातवेदः) ज्ञान देनेवाले देव ! (अस्मै आयुः धेहि) इसके लिये दीर्घ आयु दे। हे (त्वष्टः) रूपको बनाने वाले देव ! (अस्मै प्रजां अधि निधेहि) इसके लिये प्रजा दे। हे (सवितः) प्रेरक देव ! (अस्मै रायः पोषं आ सुव) इसके लिये धन और पुष्टि दे। (अयं अस्मै दीर्घः आयुः प्रतिमाति सूर्यः) जैसा यह सूर्य बहुत वर्ष जीवित रहे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवो ! इस मनुष्यको अग्नि सूर्य बृहस्पति आदि देवताओंकी कृपासे ऐसा दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो कि जिस आयुमें पार्थिव ऐश्वर्य युक्त अन्न रस बल तेज और वीरोंसे जीवन होते हैं ॥ १ ॥

हे देवो ! इसको उत्तम संतान ऐश्वर्य युक्त उत्तम पुष्टि और दीर्घ आयुष्य दो ॥ २ ॥

आशीर्ष ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दधं धत्तं द्रविण सचेतसौ ।
अय क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण युजो परुषेण दिष्टा मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥ ४ ॥
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्त पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥ ५ ॥
शिवाभिष्टे हृदय तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चीः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूप परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥
इन्द्र एतां संसृजे विद्धो अग्र ऊर्जा स्वधामक्षरां सा व एषा ।
तया त्व जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद्भिषजस्ते अक्रन् ॥ ७ ॥

अर्थ—(यः आसीत्) हमारे लिये आशीर्वाद सिद्ध तथा हो (सचेतसौ) उत्तम मनवालो! (ऊर्जं उत सौप्रजास्त्व) बल तथा उत्तम सन्तान (दधं द्रविण) धारणा और धन हमें (धत्त) दो । हे इन्द्र ! (अयं सहसा) यह अपने बलसे (अन्यानि सर्वं) निखिल क्षेत्रों और निवासके स्थान (कृण्वानः) करता हुआ (अन्यात् अधरात् अपरान्) अन्य शत्रुओंको नीचे दबाता है ॥ ३ ॥

यह (इन्द्रेण युजः) प्रभुने दिया है (परुषेण दिष्टः) वासकके द्वारा प्रेरित हुआ है (मरुद्भिः प्रहितः) उत्साही वीरों द्वारा प्रेरित हुआ है और इस कारण (उग्रः नः आगन्) उग्र बनकर हमारे पास आया है । हे (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी ! (वां उपस्थे) आपके पास रहने वाला (एषः) यह (मा क्षुधत्, मा तृषत्) क्षुधा और तृषासे पीड़ित न हो ॥ ४ ॥

हे (ऊर्जस्वती) हे अन्नवाली ! (अस्मै ऊर्जं धत्त) इसके लिये बल दो (पयस्वती अस्मै पयः धत्तं) हे दूध वाली ! इसके लिये दूध दो द्युलोक और पृथ्वीलोक (अस्मै ऊर्जं अधत्तां) इसके लिये बल देते हैं । तथा (विश्वे देवाः मरुतः आपः) सब देव, मरुत् आप ये सब इसके लिये (ऊर्जं) शक्ति प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

(शिवाभिः ते हृदय उपधामि) कल्याणकारी क्रियाओंद्वारा तेरे हृदयको मैं तृप्त करता हूं । तू (अनमीवः) नीरोग और (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी होकर (मोदिषीष्ठाः) आनन्दित हो । (सवासिनौ) मिलकर निवास करनेवाले तुम दोनों (अश्विनोः रूपं) अश्विनेवोंके रूपको और (मायां परिधाय) बुद्धि तथा कर्म शक्तिसे युक्त होकर (एतं मन्थं पिबतं) इस रसका पान करो ॥ ६ ॥

(विद्धः इन्द्रः) मन्थि किया हुआ सोम (एतां ऊर्जां ऊर्जा स्वधां अग्रे ससृजे) इस अन्नोंमें अन्नपुष्ट सुधा को उत्पन्न करता है, ऐसा है । (सा एषा ते) वह यह सब तेरे लिये ही है। (तया त्व सुवर्चाः शरदः जीव) उसके द्वारा तू उत्तम तेजस्वी बनकर बहुत वर्ष जीवित रह। (ते मा आसुस्रोत्) तेरे लिये ऐश्वर्य न घट (ते भिषजः अक्रन्) तेरे लिये वैद्योंने उत्तम रसायन बनाये हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ– हे देव ! हमें आशीर्वाद दो हमें बल सुप्रजा देना और धन प्राप्त हो। मनुष्य अपने निवासस्थान विविध कर्म-क्षेत्रोंमें विजय प्राप्त करें और शत्रुओंको नीचे मुख किए हुए भाग खड़े हों ॥ ३ ॥

यह मनुष्य परमात्मा द्वारा बनाया गुरुके द्वारा शिक्षित बना वीरों द्वारा उत्साहित हुआ है इसलिए यह पराक्रम करके हमारे अन्दर आया है और कार्य करता है। मातृभूमि की उपासना करनेवाला यह वीर भूख और प्यास कभी कष्ट का अनुभव न हो ॥ ४ ॥

॥ मित्रे देवाः । अदितिः कण्वा ऋषयः । [मं ५]

' मित्र और अनुमाता वरुण ये दोनों मिलकर इसकी दीर्घ आयु करें ॥ पुत्रोंके ॥ करें ॥ हे अदितिदेवी आदि शक्ति ! तू माता के समान सुख दे ॥ हे सब देवों ! इसको पू ।

यहां मित्र वरुण सूर्य पृथिवी अदिति और सब अन्य देव इसको दीर्घ आयु देने के लिये कहे हैं कि दीर्घ आयु चाहने वाला मनुष्य को इन देवोंके साथ अविरोध सुखसाधक आयुष्यकी वृद्धि होती है तो उसके साथ विरोध करना योग्य नहीं यह सुखदाता बनता है और इसे दीर्घ आयु देता है परंतु सूर्य प्रकाशके चन्द्रि पहुंचानेवा । वरुणदेव व्यवहार देव है अनुकूलक, पृथिवीवत् क्षमा करनेवे अपनी विनम्रता करे अथवा अन्य रीतिसे काम उठाने तब ही व योग्य उपासना करनेवे को राष्ट्रीय स्वातंत्र्य प्राप्त होता है, उसके अन्यान्य देवोंका वर्णन है जिसका विचार पाठक करें और उससे

दीर्घायु,

(

पार्थिवस्य रसे
आयुष्मन्मस्मा
आयुरस्मै धेहि
रायस्पोषे सवि

अर्थ—हे (देवाः) देवो ! आ
पार्थिव शरीरके ऐश्वर्य संबंधी (रसे
देव (आ वाद) देवे ॥ १ ॥
हे (जातवेदः) ज्ञान इत्यादि
वाले देव ! (अस्मै इमां अदिति दि
इसके लिये बल और पुष्टि दे । (सद

भाषार्थ— हे देवो ! इस मनु
आयुर्वे पार्थिव ऐश्वर्य युक्त अन्न रस
हे देवो ! इसको उत्तम आयु

१ सहा—धारण करना धारिताशक्ति कर्म करना कुशलता से कर्म करना कारीगरीका कर्म करना इत्यादि अर्थ अथवा वैसा सहा धन है। परमेश्वर सब जगत् का बड़ा भारी कारीगर है इसलिए उसको त्वष्टा कहते हैं। अन्य कारीगर भी छोटे सहा हैं। "सहा इस मनुष्यके लिए प्रजा देवे" यह इस मन्त्रभागका कथन है। यानि उत्तम संतति बलवान् इत्यादि परमात्माकी कृपासे इसको यानि और उत्तम उन्नति प्राप्त हो। जो मनुष्य कारीगरीके कार्योंमें कुशल होता है उसमें सुन्दरताका ज्ञान अन्योंसे अधिक होता है, इसलिए ऐसे मनुष्यको अन्योंकी अपेक्षा अधिक सुडौल सन्तान होना सम्भव है। माता-पिताके अन्दर सुन्दरताकी कल्पना जितनी अधिक होगी उतनी सुन्दरता अथवा सुडौलपन सन्ततिमें आना सम्भव है। इससे प्रजा का सम्बन्ध यह है।

२ अग्निना—ऐश्वर्य उत्पन्न करनेवाला और सबका प्रकाश करनेवाला। सूर्य सबका प्रकाश करता है और वनस्पतियोंमें रसका संचार करता है इसलिए उसका नाम पशुपति होता है। यह भूमिके ऊपर वनस्पति आदिकोंमें रस उत्पन्न करके प्राणियोंकी (पोष पुष्टि करता है और उनको (रायः) दीप्ति या ऐश्वर्य भी बढ़ाता है।

इस रीतिसे ये दोनों मनुष्यकी महायता करते हैं और इनका कार्यजीवन देते हैं। मनुष्योंको चाहिए कि वह इनसे यह काम लिया करें।

अन्न, बल, धन, सुसन्तान और जय।

आगे तृतीय मन्त्रमें मनुष्यकी सम्पूर्ण आवश्यकताओंका वर्णन संक्षेपसे किया है। इसमें अन्न बल धन सुसन्तान और जय प्राप्त हो और शत्रु दीर्घ दूर रहें। यही सब मनुष्योंकी मनोकामना होना स्वाभाविक है। मनुष्य शरीर की मूल आवश्यकता होती है उसके बाद बल है; धन हर एक व्यवहार का साधक इसलिए सब चाहते ही हैं, इसके पश्चात् वंशविस्तार के लिए सुसन्तानकी अभिलाषा मनुष्य करता है। इसके अनन्तर अपने विजयका इच्छुक होता है। यह प्रायः हरएक मनुष्यकी इच्छा है परन्तु यह सिद्ध कैसे हो इसका उपाय पूर्व के मन्त्रोंमें कहा है। उससे यह सब प्राप्त हो सकता है। इसके साथ सब भाव रखके योग्य विशेष महत्त्वकी बात इस मन्त्रमें कही है; उसको मनोयोगपूर्वक मन्त्रभाग यह है—

अन्नं सहसा बल कृण्वाना जैत्राणि। (मं ३)

यह अपने बलसे विजय करता हुआ क्षेत्रोंको प्राप्त करे। इस मंत्र भागमें (सहः) अपने अंदर से बलका सम्बन्ध है। सहः अन्न है विजयक का। जिस बलसे शत्रु का हमला बहादुरी से किया जाता है जिस बलसे शत्रु का हमला करने पर भी अपने मुल्कमें कुछ भी नहीं होता है उसका नाम यह है। मनुष्यको यह बल संग्रह सब अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। यह बल जितना बढ़ेगा उतना ही विजय प्राप्त होगा और विविध कर्म क्षेत्रोंमें उन्नति हो सकेगी। और इसीके प्रभावसे शत्रु पराजित होंगे। इसके न होनेसे अवस्थामें अन्य साधनोंसहित कितने भी पक्ष हुए तो उनका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए इस मंत्र भागसे जो "सह ओजः बल अपने अंदर बढ़नेकी सूचना दी है उसको ध्यानमें धारण करके यह बल अपने अंदर बढ़ावें और उसके आधारसे अन्न बल, बल पुत्र-प्राप्त आदिके साथ विजय प्राप्त करें।

मनुष्य बलमें कहा है कि यह मनुष्य शरीरादिकी रक्षा के लिए जो आत्मा है वह इन्द्रिय आदि सप्त ऋषि द्वारा आवेष्टित किया हुआ और मनरूपी द्वारा चलाया हुआ आया है इसलिए वह यहां आकर भूख और प्यासके दुःखी न बने। (मं० ४) प्रत्येक मनुष्य अपने आपको इन सबों द्वारा प्रेरित हुआ समझे। अपने पीछे इतने देव प्रेरणा करने और रक्षा करनेवाले हैं यह बात मनमें आनेसे मनको कितनी बड़ी प्रसन्नताकी बल आती है। मेरे सहायकारी इतने देव हैं यह ख्याल कितना बल बढ़ाने वाला है। जिस मनुष्य की उन्नति करने के लिए इतने देव कार्य करते हैं भूमि आप अन्न सूर्य आदि देव इसके लिए अन्न तैयार करते हैं इन्द्रादि देव बल दे उत्तरोत्तर इसको विजय देता है सूर्य तेज देता है अग्नि आदि देव इसकी अन्नादिकी सहायता करते हैं और रक्षा भी करते हैं ऐसा देवा मनुष्य अपनी उन्नति और विजय प्राप्त न करे ऐसा आप मनुष्योंमें कोई नहीं कह सकता है, परंतु इसके कटिबद्ध होकर अपने पीछे लगा होना चाहिए।

मूल पिता और भूमि माता इनसे अन्न रस, बल और ओज देवें । अन्न आदि सब देव इसकी सहायता करें ॥ ५ ॥

मुझ विद्वानों द्वारा तेरे इसका मैं पान करता हूं । तू वीरता और तेजस्वी बनकर सदा आनन्दित हो जाओ । विघ्न रहो और अपना यौवन अपनी बुद्धि और आंखों की शक्ति बढ़ाकर इस रसको पीओ ॥ ६ ॥

प्रभुने ही यह मन्त्रपूर्वक अमृतरस प्रारंभमें उत्पन्न किया है इसका सेवन करके तेजस्वी और बलिष्ठ बनकर तू सौ आयु की समाप्तिपर्यन्त जीवित रह । तेरी आयु में ऐश्वर्य की न्यूनता कभी न हो । और तेरे लिए पैर आदि अवयव बलवान् बने तेरा शरीर वीरोंसे और स्वस्थ रहकर उत्तमस्थिति प्राप्त हो ॥ ७ ॥

रस और बल ।

हमारा स्थूल शरीर पार्थिव शरीर कहलाता है क्योंकि यह पार्थिव परमाणुओंका बना है । पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले विविध रसोंके सेवनसे इसकी पुष्टि होती है और उक्त रस न मिलनेसे इसकी क्षीणता होती है । अर्थात् शरीर को बलवान् हो तो पार्थिव रसोंका सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है । शरीरका ऐश्वर्य बल, आयुष्य और तेज इन रसोंपर निर्भर है ।

पार्थिव रसका पार्थिव शरीरके संवर्धनमें यह संबंध है इतना जाननेसे अग्नि सूर्य आदि देवताओंका संबंध इससे बिलकुल नहीं है ऐसा नहीं सिद्ध हो सकता; क्योंकि अग्निकी उष्णता, सूर्य किरणोंका स्वास्थ्यगुण और वरुणका रस इन सबका सम्मिश्रण होने ही पृथ्वीसे रस उत्पन्न होता है । इन सम्पूर्ण देवताओंके अंश इस रसमें होनेसे ही यह रस मानो देवताओंका ही रस है । इसका उसके अवयव देवताओंके उपांश का ही संबंध होता है । जिस प्रकार गौ घास खाकर दूध रूपी अमृत रस देती है, इसी प्रकार यह भूमि अपने अन्नमय पदार्थ सेवन करके मानव जाति के लिए मूल आदि कन्दसे रस देती है । पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यद्यपि यह रस भूमिसे उत्पन्न होता है तथापि उसके साथ आप अग्नि वायु सूर्य आदि सब देवोंका घनिष्ठ संबंध है । यदि कोई वनस्पति सूर्य प्रकाशसे वंचित रखी जाय अर्थात् ऐसे स्थानपर रखी जाय कि वहां सूर्य प्रकाश नहीं है तो वह पुष्पित हो जाती है । यह बात देखनेसे पाठक स्वयं जान सकते हैं कि पृथ्वीसे रस उत्पन्न होनेमें सूर्यादि देवोंका भी भारी संबंध है । पाठक यहां अनुभव करें कि ये सब देव मनुष्य मात्रके लिए अन्नादि संग्रह करनेमें कैसे व्यस्त होकर कार्य कर रहे हैं !! यही इन देवोंकी पालक शक्ति है जो प्राणीमात्रका पालन कर रही है ।

अग्नि सूर्य बृहस्पति आदि सब देव पार्थिव ऐश्वर्यके रसोंसे और शारीरिक बलसे उत्तम आयुष्य और तेज देते हैं । यह प्रथम मन्त्रका कथन इस तरह बताया है । इसीलिए दीर्घायु आरोग्य और बलयुक्त तेज चाहनेवाले लोग पार्थिव रसोंके मिश्रणसे अन्न प्राप्त करें और उसके गुणोंसे युक्त अन्नादि रस लेकर अपना बल बढ़ावें । यह प्रथम बोध है । (मं १)

शतायु बनो ।

द्वितीय मन्त्र कहता है कि " आजरदेव आयु स्वास्थ्य सुरक्षा बलिष्ठता पुष्टि और बल प्राप्त करके यह मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहता है । " (मं २) इस मन्त्रमें दीर्घायु प्राप्त करनेकी युक्ति बताई है । आजरदेव, त्वष्टा और अश्विन ये तीन देव हैं कि जिनकी कृपासे दीर्घायु प्राप्त होती है । इसलिए इनका विशेष विचार करना आवश्यक है-

१ आजरदेवः- (आङ्-ऋच्) जिसका वेग अर्थात् ज्ञान बना है, जिससे ज्ञान का प्रवाह चलता है । जिसके बल द्वारा और जिससे यह ज्ञान चारों ओर फैलता है । (आर्तं येनेति) जो बने हुए पदार्थ मात्रको जानता है अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर मुक्तजीवोंका आत्मस्वरूप ज्ञानी । (आतरत देवः) उत्पन्न हुए वस्तु मात्र का ज्ञान । इस अर्थमें यह शब्द सर्वविषयक ज्ञानका है । विज्ञानी प्रकार विचार किया जाय तो यह शब्द ज्ञानवाचक सिद्ध है यास्कने कहा है कि यह आयु देता है इससे ऐसा सिद्ध होता है कि " ज्ञानी अथवा ज्ञानकी सहायतासे आयु बढ़ाई जा सकती है ।" यदि आयु बढ़ाना अर्थात् हो तो वस्तुमात्रका ज्ञान अर्थात् पदार्थ विद्या प्राप्त करना चाहिए और इस विषयमें अथर्ववेदादिकोंका बोध कराने की बड़ी आवश्यकता है ।

१ त्वष्टा—कारीगर करना, बढ़िहाईसे कार्य करना कुशलता से कार्य करना, कारीगरीका कार्य करना, इत्यादि कार्य अर्थमें त्वष्टा नाम है। परमेश्वर सब जगत् का बड़ा भारी कारीगर है इसलिए उसको त्वष्टा कहते हैं। अन्य कारीगर भी छोटे त्वष्टा हैं। "त्वष्टा इह मनुष्येभ्यो प्रजां दधे" यह इस मन्त्रभागका कथन है। योग्य सन्तति बनाना इनके आधीन है परमात्माकी कृपासे इनको दीर्घ और उत्तम सन्तति प्राप्त हो। जो मनुष्य कारीगरीके कार्योंमें कुशल होता है उसमें सुन्दरताका ज्ञान अन्योंसे अधिक होता है, इसलिए ऐसे मनुष्यको अन्योंकी अपेक्षा अधिक सुयोग्य सन्तान होना सम्भव है। मातापिताके अन्दर सुन्दरताकी कल्पना जितनी अधिक होगी उतनी सुन्दरता अथवा सुडौलपन सन्ततिमें आना सम्भव है। त्वष्टासे प्रजा का सम्बन्ध यह है।

२ सविता—प्रेरणा करनेवाला और रसका प्रसव करनेवाला। सूर्य सबको जन्माता है और वनस्पतियोंमें रसका संचार करता है इसलिए उसका नाम सविता होता है। वह भूमिके ऊपर वनस्पति आदिकोंमें रस उत्पन्न करके प्राणियोंकी (पोष पुष्टि करता है और उनकी (रायः) शोभा का ऐश्वर्य भी बढ़ाता है।

३ ये तीनों देव मनुष्यकी सहायता करते हैं और इनको कार्यशील रखते हैं। मनुष्योंको चाहिए कि वह इनसे यह काम प्राप्त करें।

अन्न, बल, धन, सुसन्तान और जय।

आगे तृतीय मन्त्रमें मनुष्यकी सम्पूर्ण आवश्यकताओंका वर्णन संक्षेपसे किया है। इसमें अन्न बल धन सुसन्तान और जय प्राप्त हो और शत्रु नीचे दब जांय। यही सब मनुष्योंकी मनोकामना होना स्वाभाविक है। अच्छे शरीर की भूख लगती है उसके बल बढ़ता है, धन हर एक व्यवहार का साधक इनेसे सब चाहते ही हैं, इसके पश्चात् वंशविस्तार के लिए सुसन्तानकी अभिलाषा मनुष्य करता है। इसके अनन्तर अपने विरुद्धका दबाना होता है। यह प्रायः हरएक मनुष्यकी इच्छा है, परन्तु यह सिद्ध कैसे हो इसका उपाय पूर्व दो मन्त्रोंमें कहा है। उनसे यह सब प्राप्त हो सकता है। इसके साथ जय प्राप्त करने योग्य विशेष महत्त्वकी बात इस मन्त्रमें कही है; उसको बतलानेवाला मन्त्रभाग यह है—

अर्वं क्षेहसा अर्वं कृण्वानाः क्षेत्राणि। (मं १)

यह अपने घरमें विजय करता हुआ क्षेत्रोंको प्राप्त करे। इस मंत्र भागमें (इहा) अपने अन्दर के बलका वाचक है। इहा नाम है विजयका। जिस बलसे शत्रु का हमला घबड़ाता है जिस बलसे शत्रु का हमला आने पर भी अपना सुरक्षित कुछ भी नहीं होता है उसका नाम इहा है। मनुष्यको यह इहा बल अपने अन्दर बढ़ाना चाहिए। यह बल जितना बढ़ेगा उतना ही विजय प्राप्त होगा और विविध कर्म अनेकों सन्ततियां हो सकेंगी। और इसीके प्रभावसे शत्रु परास्त होंगे। इनके न होनेसे अवस्थायें अन्य साधनोंसहित कितने भी पास हुए हों उनका कोई प्रभाव नहीं होता। इसलिए इस मंत्र भागमें जो "इह" बलके अपने अन्दर बढ़ानेकी सूचना दी है उसको ध्यानमें धारण करके यह बल अपने अन्दर बढ़ावें और उसके आधारसे अन्न बल धन सुसन्तान आदिके साथ विजय प्राप्त करें।

चतुर्थ मन्त्रमें कहा है कि यह मनुष्य द्यावापृथिवी के अन्दर आ जाता है यह इन्द्रसे आज्ञा दिया हुआ वरुण द्वारा रक्षित बना हुआ और मरुतों द्वारा चलाया हुआ जाता है इसलिए यह वहां जाकर भूख और प्याससे दुखी न बने। (मं० ४) प्रत्येक मनुष्य अपने आपको इन देवों द्वारा प्रेरित हुआ समझे। अपने पीछे इतने देव प्रेरणा करने और रक्षा करनेवाले हैं, यह बात मनमें आनेसे मनकी शक्ति बड़ी प्रबल बलवती बन जाती है। मरे सहायकारी इतने देव हैं यह विश्वास बड़ा बल बढ़ाने वाला है। जिस मनुष्य की उन्नति करने के लिए इतने देव कार्य करते हैं मुझे आप अपने सब आदि देव इसके लिए अब तैयार करते हैं बृहस्पति इसे ज्ञान देता है जातवेदा इसको विद्या देता है सूर्य तेज देता है अन्तरिक्षस्थ इसके अन्तरिक्ष की सहायता करते हैं और रक्षा भी करते हैं कब ऐसा मनुष्य अपनी शक्तियां बढ़ावें और विजय प्राप्त न कर आवे शत्रुओंको दूर नहीं कर सकता है कर सकता है, परंतु इसके कटिबद्ध होकर अपने पौरुषसे खड़ा होना चाहिए।

अक्षर की भूमि इसे अन्न अर्पण करती है पृथ्वीकी गौवें इसके लिए दूध देती हैं आप पृथिवी इसके लिए अन्न पाती हैं और आप देवता इसे दीर्घ आयु प्रदान करती है। (म ५)

पाठक इसका अनुभव करें। इतनी देवताएं मनुष्यकी सहायता कर रही हैं कुछ न मांगती हुई सहायता देती हैं। इतनी सहायता परमात्माकी मंगलमयी योजनासे हो रही है। इसके बाद भी यदि मनुष्य अपना बल न बढ़ावे और विजय न प्राप्त करे तो फिर दोष किसका हो सकता है ? कृपया अब पाठक इसका उत्तर दें और अपना उत्तरदायित्व समझ अपना पुरुषार्थ करनेके लिए प्रतिबद्ध हों। मनुष्य अपनी उन्नतिके लिए प्रतिबद्ध हुआ तो ये सब देव इसके सहायक होते हैं और इसकी अक्षय उन्नति हो सकती है।

हृदयकी तृप्ति ।

अब प्राप्त हुआ, शरीरका बल भी बढ़ा, संपत्ति भी बहुत हुई तथा अन्नान्न भोग और ऐश्वर्य भी मिल गये तो हृदयकी तृप्ति नहीं हो सकती। जबतक हृदयकी तृप्ति नहीं होती तबतक शान्ति भी नहीं मिल सकती। इसलिए मन्त्रों द्वारा अन्नसूक्तका मार्ग बताकर यह मंत्रमें विशेषरूपसे मार्ग बताया जाता है। हृदयकी तृप्तिका मार्ग यह है—

तेन हृदय क्रिमीणां तर्पयामसि । (मं ६)

" तेरा हृदय मंत्रके कृमियोंसे तृप्त करता हूं। " क्रिमि शब्द सूक्ष्मता का वाचक है। जो मंत्रमय है वह क्रिमि है, फिर यह मानना हो सकती है अथवा हो सकती है और क्रिमि भी हो सकती है। सूक्ष्मसे हो जो क्रिमि है उसीसे हृदयकी तृप्ति होती है, किसी अन्य वस्तुसे नहीं। पाठक यहां अनुभव करके कि जब कभी बुरा विचार उसके मनमें आता है तब उस समय अशांत होता है और जब कभी शुभ भावना आती है तब मन कैसा प्रसन्न हो जाता है। शुभ विचार, शुभ उच्चार और शुभ आचार ही मनुष्यके हृदयका संतोष कर सकता है। इसके मनमें स्थिर होनेसे मनुष्यका हृदय तृप्त शांत और समाधान हो जाता है। इस हृदयकी तोषण अवस्थामें मनुष्य दीर्घायु, वीर्यवान तेजस्वी वर्चस्वी तथा यशस्वी होता है और ऐसे शक्तिपूर्ण मनुष्यको ही सुसंतान होती है। पाठक यहां देखें कि हृदयकी शांतिका महत्त्व कितना है और हृदयकी अशांतिसे हानि कितनी है। यही बात अगलेके मंत्र भागमें कही है—

अक्षमीवा सुकर्माः मोदिषीय । (मं ६)

वीर्यवान और उत्तम तेजस्वी होकर आनन्दित हो " अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे हृदयकी शान्ति स्थिर होनेसे मनुष्य वीर्यवान और उत्तम तेजस्वी होकर आनन्दित हो सकता है, इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह अपने अन्तःकरणको शान्त और समाधान रखनेमें और अशान्तिसे दूर रहे। इतनाही नहीं परन्तु अशान्त अवस्था आने और जाने होने पर भी अपना अंतःकरण शान्त और सुख समाधानसे परिपूर्ण रखे। यह तो अंतःकरण के विषयमें उपदेश हुआ। बाहरका व्यवहार कैसा करना चाहिए इस विषयमें इसी मन्त्रका उत्तरार्ध देखिए—

सखायिनो मात्वं परिषाद मन्थं पिबतम् । (म ६)

सब मिलकर एक स्थानपर रहते हुए औषधरसको धारण करके रस का पान करो " इसमें निम्नलिखित उपदेशपर शब्द महत्त्व पूर्ण हैं—

१ स—सायिनो—एकत्र निवास करनेवाले समान अधिकारसे एक स्थानपर रहनेवाले। उच्चनीच भेदको न बढ़ाते हुए समान विचारसे इकट्ठे रहने वाले। एक प्रकारके आचार व्यवहारसे रहनेवाले।

यह शब्द एकताका सब लोगोंके समान में बर्तनेका उपदेश दे रहा है। परस्पर विद्वेष न करें परन्तु एकताका सब लोग यहां स्मरण रखने योग्य है।

२ मात्वं परिषाद—मादा का अर्थ कुशलता पूर्वक कर्म करनेकी प्रतिज्ञा औरत आदि प्रकार का है। यह शब्द बुद्धि और कर्मशक्तिसे समानतया प्रयुक्त होता है। कुशलतासे कर्म करनेकी बुद्धि और शक्ति धारण करने की सूचना इस

धन्यवाद मिलती है। वस्तु का व्यवहार करनेके लिए यह कुशलता अत्यन्त आवश्यक है। कुशलताके बिना कार्य करनेवाला सफल भागी नहीं हो सकता।

एकान्त के पास समताभावके साथ रहनेवाले और कुशलतासे कार्य व्यवहार करनेवाले लोग ही मानवकी इस प्राप्त करने योग्य वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। पाठक इस आशय को मनमें रखकर इस मंत्रका विचार करें और बोध प्राप्त करें।

स्वधा।

मंत्र ७ में 'स्वधा अजर और बलवती है' यह इसकी बड़ाई है, इसका सेवन करके तेजस्वी बनकर जो कर्म जीवी वह उपदेश है। यह स्वधा क्या चीज है इसका विचार करना चाहिए—

स्व+धा अपनी धारण शक्तिका नाम स्वधा है। जिस शक्तिसे अपने शरीरके विविध अंगों को टिकाये रखते हैं उसको स्वधा शक्ति कहते हैं। यह स्वधा शक्ति जितनी मनुष्यमें होती है उतनी ही उसकी आयु होती है। शरीरकी स्वधाशक्ति कम होनेपर कोई औषधि सहायक नहीं होती। जबतक यह स्वधाशक्ति शरीरमें कार्य करती है तबतक ही मनुष्य जीवित रह सकता है बढ़ सकता और विजय पासकता है। यह स्वधा शक्तिका वैभव है। इसके बिना मृत्यु निश्चित है। इसीलिए मंत्रमें कहा है कि यह स्वधाशक्ति अजर है अर्थात् यह जरा वाली नहीं है, इसके (जरा) बुढ़ापा आजाने पर भी मनुष्यमें यह बलवती रहती है। यह स्वधा (ऊर्जा) बल बढ़ानेवाली है, इसीकी सहायतासे मनुष्य (सुधर्मा) उत्तम कान्तिवाला तेजस्वी और श्रम करनेवाली होता है और (अत्र वीर) जो वीर्यकी पूर्ण निरोग आयु प्राप्त कर सकता है।

इसलिए ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंका पालन करके तथा आयुष्यबलके सूत्रोंमें कहे उपदेशोंके अनुकूल आचरण करके मनुष्य अपनी स्वधाशक्तिको बढ़ाये और मनुष्यको प्राप्त होनेवाले अनेक कर्मक्षेत्रोंमें विजय कमावे तथा इस सूक्तके यह मन्त्रमें के उपदेशानुसार अपने अन्तःकरणको शुभ भावोंसे शान्त और गंभीर बनावे और इह पर लोकमें कृतकृत्य बने। यही—

आशीः"

हमारे लिए आशीर्वाद मिले और सर्वत्र निर्भयता और शान्तिका बड़ा साम्राज्य हो।

पति और पत्नीका मेल ।

(३०)

(ऋषिः प्रजापतिः । देवता-अश्विनौ)

यथेदं भूम्या अधि तृण वातो मथायति ।
एवा मन्थ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥
स वेनमवो अश्विना कामेना सं च वक्षथः ।
स वा भगासो अग्मत स चित्तानि समु व्रता ॥ २ ॥
यत्सुपर्णा विवक्षवो मनसीवा विवक्षवः ।
उत्र मे गच्छतादुव सुस्य इव कुरमंडं यथा ॥ ३ ॥
यदन्तरं तद्बाह्य बद्बाह्य तदन्तरम् । कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ ४ ॥

अर्थ—(यथा वातः) जैसा वायु (भूम्याः अधि । भूमिपर (इदं तृण मथायति) यह घास हिलाता है (एव ते मनः मथ्नामि) वैसा ही तेरा मन मैं हिलाता हूं जिससे तू (मां कामिनी असः) मेरी इच्छा करनेवाली होवे और (यथा मत् अप-गा न असः) मुझसे दूर जानेवाली न होवे ॥ १ ॥

(हे कामिनौ अश्विनौ) परस्पर कामना करनेवाले दो बकवालो! (स इत् सं वनथः) मिलकर चलो (स सं वक्षथः) और मिलकर आगे बढ़ो । (वा भगासः मे अग्मत) तुम दोनों को ऐश्वर्य (वसु धन) हो (चित्तानि सं) तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिलें और (व्रतानि सं) तुम्हारे कर्म भी परस्पर मिल जुल कर हों ॥ २ ॥

(यत्) जहां (विवक्षवः सुपर्णाः) बोलनेवाले सुंदर पक्षवाले पक्षी आते हैं और (विवक्षवः मनसीवाः) बोलनेवाले वीरोंका मनुष्य आते हैं, (उत्र) वहां (मे इव गच्छतात्) मेरी प्रेरणानुसार आओ (यथा सुस्याः कुरमंडं इव) जैसा घास की बोझ बिछानेपर आती है ॥ ३ ॥

(यत् अन्तरं तत् बाह्य) जो अंदर है वही बाहर है और (यत् बाह्यं तत् अन्तरं) जो बाहर है वही अंदर है। हे औषध ! (विश्वरूपाणां कन्यानां) विविध रूपवाली कन्याओंका (मनः गृभाय) मन ग्रहण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस रीतिसे वायु घास हिलाता है उस रीतिसे मैं तेरा मन हिलाता हूं, जिससे तू मेरे ऊपर प्रीति करनेवाली होकर सदा मेरे पास रहनेवाली तथा मेरेसे दूर न होनेवाली हो ॥ १ ॥

हे परस्पर प्रेम कर चलने की पुरुषो ! तुम दोनों मिलकर चलो मिलकर आगे बढ़ो तथा मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करो, तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिले हुए और तुम्हारे कर्म भी मिल जुल कर होते रहें ॥ २ ॥

जहां सुन्दर पक्षवाले पक्षी शब्द करते हैं और जहां वीरोंका मनुष्य प्रयत्न करने जाते हैं ऐसे सुंदर स्थानपर तू मेरी प्रेरणासे चल ॥ ३ ॥

जो हमारे अंदर है वही बाहर है। और जो बाहर है वही अंदर है। मैं विश्वरूप भावसे वर्ताव करता हूं और इस विश्वरूप आचरणसे मैं विविध रूपवाली कन्याओंका मन आकर्षित करता हूं ॥ ४ ॥

एयमगन्पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा गर्दभेनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

अर्थ-(इयं पति-कामा आ अगन्) यह कन्या पतिकी इच्छा करती हुई आयी है और (अहं जनि-कामः आ अगम) स्त्री की इच्छा करनेवाला मैं आया हूं। (अहं गर्दभेन सह आ अगम) मैं घरके साथ आया हूं, (यथा कनिक्रदत् अश्वः) जैसा हिनहिनाता हुआ घोड़ा आता है ॥ ५ ॥

भावार्थ- पतिकी इच्छा करनेवाली यह स्त्री प्राप्त हुई है और स्त्री की इच्छा करनेवाला घोड़ेके समान हिनहिनाता हुआ मैं घरके साथ आया हूं। इस दोनोंका इस रीतिसे मेल अर्थात् विवाह हुआ है ॥ ५ ॥

अश्विनी देव।

यह सूक्त विवाह के विषयमें बड़े महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है। इस सूक्त की देवता अश्विनौ' है। ये देव सदा युगलमें रहते हैं, कभी एक दूसरेसे पृथक् नहीं होते। विवाहमें भी अ[पुरुष एकबार विवाह हो जानेपर कभी पृथक् न हों आमरण विवाह बन्धन से बंधे रहें इस दृष्टिसे इस सूक्तकी यह देवता रखी है। जिस प्रकार अश्विनौ देव सदा इकट्ठे रहते हैं कभी वियुक्त नहीं होते उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरुष गृहस्थाश्रम में इकट्ठे रहें और परस्परसे वियुक्त न हों अर्थात् विवाह बन्धन तोड़कर स्वैर वर्तन कभी करनेवाले कभी न बनें।

द्वितीय मंत्रमें "अश्विनौ अश्विनौ" कहा है अर्थात् परस्पर की कामना करनेवाले अश्विनौ देव जिस प्रकार एक अर्थमें इकट्ठे रहते हैं; उसी प्रकार विवाहित स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रममें मिल जुलकर रहें और एक दूसरे से विभक्त न हों। यहां 'अश्विनौ' शब्द 'अश्वशक्तिक पुरुष' होनेका भाव बता रहा है। पुरुष गर्भाधान करनेमें समर्थ होनेके लिये देव शब्दमें "वृषाकपि" के प्रयोग किये हैं। वाजीकरण अर्थात् वीर्य वर्धक औषधार्थक ही हैं। स्त्रीपुरुष अश्विनौ हों इसका अर्थ वृषाकपित्व प्राप्त होनेवाली शक्ति के पुरुष हों अर्थात् गर्भधान करनेकी शक्तिवाले पुरुष पुरुष हो और गर्भधारण करनेकी शक्तिवाले पुरुष स्त्री हो। "जाये" शब्दका यह अर्थ यहां पाठक अवश्य देखें। स्त्री पुरुष परस्पर "अश्विना" अर्थात् परस्परकी इच्छा करनेवाले हों स्त्री पुरुष की प्राप्तिकी इच्छा करे और पुरुष स्त्रीकी प्राप्तिकी इच्छा करे। इस शब्दसे विवाहका समय भी निश्चित हो सकता है। देखिए—

विवाह का समय।

मंत्र पदमें निम्नलिखित अर्थ भाव आता है उससे विवाहका समय निश्चित हो सकता है—

इयं पतिकामा आ अगन्॥
अहं जनिकामः आ अगमम् (मं ५)

यह स्त्री पतिकी इच्छा करती हुई आयी है और मैं स्त्रीकी इच्छा करता हुआ आया हूं। यह समय है जो विवाहके लिए योग्य है। स्त्रीके अंदर पतिकी प्राप्तिकी इच्छा और पतिके अंदर स्त्री की प्राप्तिकी इच्छा प्रबल होनी चाहिए। इस समय विवाह करना चाहिए। परन्तु यहां यह भी समझ लेना चाहिए कि यह गर्भाधानका समय नहीं। फिर अलगाव करनेके पूर्व विवाह करनेकी बात प्रथम मन्त्र सूक्त १७ में लिखी है। यदि विवाह पहिले हुआ तो यह समय गर्भाधान का समझना चाहिए। उपरि निर्देश यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मचर्य समाप्तिके पश्चात् और गृहस्थाश्रम शुरू होनेके पश्चात् ही विवाह करना चाहिये। इस विषयमें इसी मंत्रमें आगे देखिए—

यथा कनिक्रदत् अश्वः।
अहं तमभि हह्वमम्॥ (मं ५)

जैसा हिनहिनाता हुआ घोड़ा आता है वैसा मैं उसके साथ आया हूं। यहां उत्तम शक्ति और गर्भाधान की आतुरता साथ लिये पतिके विषयमें है ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये। यही विवाह के लिए योग्य है। विवाह के लिए न अधिक छोटा न और

वीर्य की आवश्यकता है प्रस्तुत (मन) धनकी भी आवश्यकता है। कुटुंब का पालन पोषण करनेके लिए आवश्यक धन कमा सकेगी योग्यता पुरुष प्राप्त करे धन कमाने लगे और तत्पश्चात् विवाह करे; यह बोध यहां मिलता है। पहले ब्रह्मचर्य पालन करे तरुण बने, वीर्यवान् और बलवान् हो धन कमाने लगे और पश्चात् सुयोग्य स्त्री से विवाह करे। यह पंचम मंत्रका आशय संक्षेप में धारण करने योग्य है।

द्वितीय मंत्रमें " अग्निदो अग्निदौ " शब्द हैं इनका आशय इससे पूर्व बतलाया है। अग्निदो शब्दका विशेष स्त्रीकरण पंचम मंत्रके पूर्वार्धमें किया है और अग्निदौ ' का स्पष्टीकरण पंचम मंत्रके तृतीय चरण द्वारा हुआ है। यह बात पाठक मनन पूर्वक देखेंगे तो अग्निदो शब्द यहां उत्तम ब्रह्मचर्य से युक्त पतिपत्नीका वाचक है और अग्न शब्द सामीप्यसे स्त्री वीर्यवान् पुरुष का विशेषतया वाचक है यह बात स्वयं स्पष्ट हो जायगी।

पंचम मंत्रमें धन कमानेके पश्चात् विवाह करनेका उपदेश तो विशेष ही मनन करने योग्य है। ' श्रीः, भीः, ह्रीः ' ये वैदिक शब्द प्रसिद्ध है।

निष्कपट वर्ताव।

स्त्री पुरुषोंका परस्पर वर्ताव पतिपत्नीका परस्पर व्यवहार निष्कपट भावसे और हृदय की एकता से ही होना चाहिए। तभी गृहस्थाश्रमी पुरुषों को सुख प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें चतुर्थ मंत्रका उपदेश विशेष महत्वपूर्ण है—

बहस्पर इहाहं परहाहं बहस्परः। (मं ४)

जो अंदर है वही बाहर जो बाहर है वही अंदर है। यह निष्कपट व्यवहारका परम उत्तम आदर्श है। पति अपने विषयमें तथा पत्नी पतिके विषयमें अंतर्गत एक जैसा व्यवहार करें अंदर एक भाव रखते हुए बाहर दूसरा भाव न रखें। गृहस्थियोंके लिए व्यवहारका आदर्श यहां वेदने सुबोध शब्दोंद्वारा बताया है। वैदिक धर्मका पालन करनेवाले गृहस्थी इसका अवश्य आचरण करें और अपना गृहस्थजीवन सुखी बनावें।

विश्वकर्माणं कन्यानां मनः मृणामि (मं ४)

विविध कलाओंकी कन्याओंका मन इसी प्रकार आकर्षित किया जावे। कोई तरुण किसी कन्याके साथ व्यवहार करनेके समय अपना अंदर बाहरका वर्ताव सीधा और कपट रहित रखे। कपट भावसे कन्याको धोखा देकर उसको फसानेका यत्न कोई न करे। उत्तम निष्कपट भावसे ही अपनी धर्मपत्नी बनानेके लिए किसी कन्याका मन आकर्षित किया जाय। कभी कोई छल या कपट न किया जाय। जो पुरुष व्यवहारके विषयमें इस मंत्रका यह उपदेश अवश्य स्मरणमें रखते हैं गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाले और प्रविष्ट हुए पाठक इस मंत्रका धारणा मनन करें।

आदर्श पतिपत्नी।

चतुर्थ मंत्रमें परस्पर निष्कपट व्यवहार करनेका उपदेश किया है उस उपदेशके पालन करनेसे आदर्श दंपती बन सकता है इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है इसका अनुभव द्वितीय मंत्रमें बताया है इसमें पांच उपदेश हैं देखिए—

१ संजानथाः—उत्साहसे चलो और चलाओ। एक मतसे चलो। एक मतसे संसार चलाओ। स्त्री और पुरुष एक दिलसे चलें और परिवारको चलावें।

२ संप्रजनना——मिलकर आगे बढ़ो। स्त्री और पुरुष एक विचारसे आगे बढ़ने तथा उत्तम संप्रजनन करनेका प्रयत्न करें।

३ भगासः सं कृतम—सब मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करें। मिलकर ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे विपुल धन प्राप्त हो जावे।

४ चित्तानि वः—आपके चित्त मिले हुए हों।

५ व्रतानि वः—आपके कर्म भी मिलजुल कर किए जांय।

अर्थात् पतिपत्नीमें वैर भाव द्वेष भाव या कठोर भाव न हो। यहांतक एकता का भाव हो कि वे दोनों मिलकर एकही शरीरके अवयव हैं एक भाषा बोले। यद्यपि ये शब्द यद्यपि सामान्यतः पतिपत्नीके कर्तव्य बतानेके लिए प्रयुक्त हुए हैं तथापि सामान्यतः ऐक्य प्रतिपादक परक भी इस मंत्रका भाव लिया जा सकता है और इस दृष्टिसे यह मंत्र सामाजिक ऐक्य भावका उत्तम उपदेश दे रहा है। पाठक इस दृष्टिसे भी इस मंत्रका विचार करें और आदर्श पतिपत्नीके विषयमें इसका उत्तम उपदेश स्मरण रखें।

भ्रमण का स्थान।

पतिपत्नीको मिलकर भ्रमण के लिए जाना हो, तो किस प्रकारके स्थानमें जांय, इस बातका उपदेश तृतीय मंत्रमें किया गया है उसको भी यहां देखिये—

यत्र सुपर्णा विवदथः ॥
अवसोका विवक्षथः ॥
तत्र मे इषे गच्छताम् ॥ (म १)

"जहां सुंदर पंखवाले पक्षी शब्द करते हैं और जहां मैत्रीयुक्त पुरुष वार्तालाप करते हुए जाते हैं वहां प्रेरणानुसार जांय।" ऐसे स्थानमें पतिपत्नी परस्परकी इच्छानुसार अथवा प्रेरणानुसार परस्परकी रुचिके अनुकूल भ्रमण के लिये जांय। जहां सुंदर सुंदर पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं और जहां मैत्रीयुक्त मनुष्य आनेके इच्छुक होते हैं वहां जांय। यह स्थानका वर्णन कितना मनोरम है! पाठक ही इसका अनुभव अपने मनमें कर लें। उत्तम भावसे युक्त ऐसे वन अथवा स्थान ही पुरुषोंके भ्रमण के लिए प्राप्त हो सकते हैं। यहां वेदने आदर्श स्थानही भ्रमण के लिए बताया है यदि ऐसा स्थान हर एक परिवारके लिए न मिला तो इसी प्रकारका कोई अन्य स्थान भ्रमण के लिए पसंद करें और निष्कपट मनसे उत्तम वार्तालाप करते हुए भ्रमण करें।

स्त्रीके साथ वर्ताव।

पुरुष स्त्रीके साथ कैसा वर्ताव करे और स्त्री भी पुरुषके साथ कैसा वर्ताव करे इस विषयमें एक उत्तम उपमा प्रथम मंत्रमें दी है और इस विषयका उपदेश किया है। जिस प्रकार वायुके साथ दिखाया जाता है उस प्रकार स्त्रीका मन दिखाया है। (म १) यह उत्तम उपमा बोधप्रद है। वायुके अंदर प्रचण्ड शक्ति है वायु चलने लगा तो बड़े बड़े वृक्ष भी टूट जाते हैं। परंतु वही वायु धीमा चलने लगा तो छोड़ा। परंतु कैसा हिलता है। इसी प्रकार वीर पुरुषका क्रोध प्रबल वायुके जैसा हो सकता है परंतु वही वीर पुरुष स्त्रियोंके साथ कैसा क्रूरताका वर्ताव न करे। जिस प्रकार वृक्षोंको तोड़नेवाला वायु धीमा कैसा हिलता है उसी प्रकार वायुके समान प्रचण्ड चलनेवाला पुरुष भी स्त्रियोंके साथ धीमा जैसे ही वर्ताव करे। कठोर व्यवहार कभी न करे।

स्त्रियां भी अपने अंदर धीमेका समान धीमापना धारण करें और प्रचण्ड वायु चलने पर भी बड़ा वृक्ष टूटता नहीं उसी प्रकार अपने कुटुंबके स्थानमें कभी विचलित न हों।

यहां इस उपमासे दोनोंके उत्तम कर्तव्य बताये हैं। इस उपमाका विचार जितना अधिक किया जाय उतना अधिक बोध मिल सकता है। यह पूर्ण उपमा है इतनी बोध उपमा अन्यत्र नहीं मिल सकती। पाठक इसका विचार करें और बोध लें और यह बोध अपने परिवारमें लावें।

यह सूक्त पतिपत्नीके गृहस्थधर्मका आरंभ बता रहा है, यदि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे तो इसका बहुत उत्तम उपदेश मिल सकता है। विवाह विषयक अन्यान्य सूक्तोंके साथ पाठक इस सूक्तका विचार करें।

रोगोत्पादक क्रिमि।

(२१)

(ऋषिः-काण्वः। देवता-मही)

इन्द्रस्य या मही दुपत्क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन्दृषदा खल्वाँ इव ॥ १ ॥
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्।
अस्राम्भून्नसर्षीञ्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥ २ ॥
अस्राम्भून्हन्मि महता वधेन दूना अदृना अरसा अभूवन्।
क्षिप्तानक्षिप्ताञ्जि रिरामि वाचा यक्षु क्रिमीणां नकिरुच्छिषत्ते ॥ ३ ॥
अन्वान्त्र्य क्षीपर्ण्यमथो पार्ष्ण्य क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ—[इन्द्रस्य या मही दृषत्] इन्द्रकी जो बड़ी शिला है जो [विश्वस्य क्रिमेः तर्हणी] सब क्रिमिरोगोंका नाश करनेवाली है [तया क्रिमीन् सं पिनष्मि] उससे मैं क्रिमिरोगोंको पीस डालूं [दृषदा खल्वान् इव] जैसे पत्थरसे चनोंको पीसते हैं ॥ १ ॥

[दृष्टं अदृष्टं अतृहम्] दीखने वाले और न दिखाई देनेवाले इन दोनों प्रकारके क्रिमिरोगोंका मैं नाश करता हूं। [अथो कुरुरुं अतृहम्] और भूमिपर रेंगनेवाले क्रिमिरोगोंको भी मैं नाश करता हूं। [सर्वान् अस्राम्भून्] सब मिलते जुलते रहनेवाले तथा [नसतः] देखते इधर उधर चलनेवाले सब [क्रिमीन्] क्रिमिरोगोंको [वचसा जम्भयामसि] वचसे द्वारा हटाता हूं ॥ २ ॥

[अस्राम्भून् महता वधेन हन्मि] मिलेजुले स्थानोंमें रहनेवाले क्रिमिरोगोंको बड़े आघातसे मैं मारता हूं। [दूना अदृना अरसा अभूवन्] चलनेवाले और न चलनेवाले सब किसी रसहीन होजावें। [क्षिप्तान् अक्षिप्तान् वाचा जि रिरामि] फेंके हुए और न फेंके हुए भी सब क्रिमिरोगोंको वचासे मैं नाश करता हूं। [तथा क्रिमीणां नकिः उच्छिषत्ते] जिससे क्रिमिरोगोंमेंसे कोई भी न बचे ॥ ३ ॥

[अन्वान्त्र्यं] आंतोंमें होनेवाले [क्षीपर्ण्यं] शिरमें होनेवाले [अथो पार्ष्ण्यं क्रिमीन्] और एड़ियोंमें होनेवाले क्रिमिरोगोंको तथा [अवस्कवं] रेंगनेवाले और [व्यध्वरं] दुरे मार्गपर होनेवाले सब क्रिमिरोगोंको मैं [वचसा जम्भयामसि] वचा औषधिसे हटाता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस प्रकारके क्रिमिरोगोंका नाश करनेमें उपर्युक्त इन्द्र अर्थात् आत्माकी एक शक्ति है उससे मैं रोगोत्पादक क्रिमिरोगोंका नाश करता हूं ॥ १ ॥

आंखसे दिखाई देनेवाले और न दिखाई देनेवाले तथा भूमिपर रेंगनेवाले अनेक प्रकारके क्रिमिरोगोंको वचा औषधिसे हटाता हूं ॥ २ ॥

वचा औषधिसे मैं सब क्रिमिरोगोंको हटाता हूं जिससे एक भी न बच सके ॥ ३ ॥

आंतोंमें शिरमें पादमूलमें जो कृमि कुमार्ग से आचरणसे होते हैं उन सबको मैं वचा से हटाता हूं ॥ ४ ॥

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वे तदग्निना जम्भयामि क्रिमीणाम् ॥ ५ ॥
(इति पञ्चमोऽनुवाकः ।)

अर्थ-[ये पर्वतेषु क्रिमयः] जो पहाड़ियोंपर क्रिमि होते हैं, (वनेषु ओषधीषु पशुषु, अप्सु अन्तः) वन औषधि पशु जल आदियें होते हैं और (ये अस्माकं तन्वं आविविशुः) जो हमारे शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं [तद् क्रिमीणां सर्वं अग्निना] वह क्रिमियोंका सम्पूर्ण वंश मैं यह करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ-जो पर्वतोंमें पर्वतीय औषधियोंमें पशुओंमें तथा जलोंमें क्रिमि होते हैं तथा जो हमारे शरीरोंमें घुसते हैं उन सब क्रिमिवंशका मैं नाश करता हूं ॥ ५ ॥

क्रिमियोंकी उत्पत्ति ।

रोगोत्पादक क्रिमियोंकी उत्पत्ति पर्वत, वन औषधि पशु और जल इनके बीच में होती है (मं ५) तथा वे क्रिमि-

अस्माकं तन्वं आविविशुः । (मं ५)

हमारे शरीरमें घुसते हैं और पीड़ा करते हैं इसलिये इन क्रिमियोंसे हमेशा सावध रहना चाहिये। यह पंचम मंत्रका कथन विशेष विचार करने योग्य है। जलमें खारापन होनेसे विविध प्रकारके क्रिमि होते हैं पशुके शरीर में अनेक जंतु होते हैं हरी वनस्पतियोंपर अनेक क्रिमि होते हैं, वनों में जहां एकसाथ स्थान रहते हैं वहां भी विविध जाति के क्रिमि होते हैं और इनका संबंध मनुष्य शरीरके साथ होनेसे विशेष रोग उत्पन्न होते हैं। शरीरमें वे कहां जाते हैं इसका वर्णन मंत्र ४ कर रहा है

अन्तान्त्वं हीरंन्य अधो पार्ष्ण्यै क्रिमीन् । (म ४)

आंतोंमें हिरमें पसलियोंमें वे क्रिमि जाते हैं और वहां बढ़ते हैं।" इस कारण यहां बताये प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये आरोग्य चाहनेवालों को इनको दूर करना चाहिये। इनकी उत्पत्ति के विषयमें मंत्र ४ में दो शब्द बड़े महत्त्व के हैं।-

अवस्कव्यं व्यध्वरं (मं ४)

१ अवस्कव्य-(अव+स्कव) नीचे गमन। पीछे स्थानमें गमन करनेसे इनकी उत्पत्ति होती है। यहां आचरणकी नीचता अस्वच्छता बोधक है।

२ व्यध्वर—(वि-अध्व-र) विरुद्ध मार्ग पर रमना। वर्ज विरुद्ध व्यवहारके जो जो मार्ग हैं उनपर रमनेसे उनके बीज संचय होते हैं। अस्वच्छतादि नियमोंका न पालन करना आदि मनुष्यके वर्ज विरुद्ध व्यवहार हैं जो रोगोत्पत्ति करनेमें हेतु होते हैं। इन दोनों शब्द बड़े महत्त्वके हैं।

दूर करनेका उपाय ।

इन क्रिमियोंको दूर करनेका उपाय दो प्रकारका इस सूक्तमें कहा है—

१ कच्चा-कच्चा आमक वनस्पतियोंका उपयोग करना। आजमें इसको कच्चा कहते हैं। क्रिमि नाशक औषधियोंमें इसका महत्त्व सबसे अधिक है। इसका चूर्ण शरीरपर लगानेसे क्रिमि बाधा नहीं होती पक्वान्न यानि पकेमें या शरीरपर लगाने करनेसे भी क्रिमियोंका दूर होती है और जलमें घोलकर भी इसका उपयोग करनेसे पेटके अंदरके क्रिमिगण दूर हो जाते हैं। औषधि उपचार में यह सुलभ और निश्चित उपाय है।

२ इन्द्रस्य महो इन्द्र-इन्द्रका बड़ा पत्थर। इस नामका कोई पर्वत है या यह आध्यात्मिक सांकेतिक नाम है इस विषय में अभीतक कोई निश्चय नहीं हो सका। इन्द्र शब्दका अर्थ सूर्य है इसका बड़ा पत्थर अर्थात् जिसपर सूर्य-प्रकाश पड़ता है उस जन्तु मर जाते हैं यह उसकी प्रबल नाशक शक्ति है। आजम शक्तिके सुधारकमें इस रोग क्रिमियोंकी शुद्धता सच्ची ठहर नहीं सकती। यह सब ठीक है परंतु इस विषयमें अधिक खोज इसकी आवश्यकता है। ये क्रिमि इतने सूक्ष्म होते हैं कि आंखसे दिखाई नहीं देते।

(अनुवाद) दूसरे ऐसे कीड़े हैं कि जो आंखसे दिखाई देते हैं। कई शरीर पर होते हैं कपड़ोंपर चिपकते हैं बिछौनेमें होते हैं इस प्रकार नानाविध स्थानोंमें इनकी उत्पत्ति होती है। इनका नाश सब प्रकार करनेसे इनकी पीड़ा दूर होती है और आरोग्य मिलता है।

क्रिमि-नाशन।

[३२]

(ऋषिः काण्वः। देवता—आदित्यः)

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥
विश्वरूप चतुरक्ष क्रिमे सारङ्गमर्जुनम्। घृताम्पस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२॥
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा स पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३॥
हतो राजा क्रिमीणामथैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४॥

अर्थ-[उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु] उदय होता हुआ सूर्य क्रिमिरोग नाश करे। [निम्रोचन् रश्मिभिः हन्तु] अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने किरणोंसे क्रिमिरोग नाश करे। [ये क्रिमयः गवि अन्तः] जो क्रिमि भूमीपर हैं ॥१॥

[विश्वरूप] अनेक रूपवाले [चतुरक्ष] चार आंखवाले [सारङ्ग अर्जुनं क्रिमे] रोगनेवाले भेदवाले क्रिमि होते हैं। [अस्य पृष्टीः अपि वृश्चामि] इनकी हड्डियोंको मैं तोड़ता हूं। [अपि यत् शिरः वृश्चामि] इनका जो सिर है वह भी तोड़ता हूं ॥ २ ॥

हे [क्रिमयः] क्रिमियो! [अत्रिवत्, कण्ववत् जमदग्निवत्] अत्रि कण्व और जमदग्नि के समान [वः हन्मि] तुमको मार डालता हूं। [अहं अगस्तस्य ब्रह्मणा] मैं अगस्तिकी विद्यासे [क्रिमीन् स पिनष्मि क्रिमीनोंको पीस डालता हूं ॥ ३ ॥

[क्रिमीणां राजा हतः] क्रिमियोंका राजा मारा गया। [अथ एषां स्थपतिः हतः] और इनका सेनापति भी मारा गया। [हत-माता हतभ्राता हत स्वसा क्रिमिः हतः] क्रिमीकी माता भाई बहीन सब मारे गये और यह क्रिमि भी मारा गया ॥४॥

भावार्थ—सूर्य उदय होनेके पश्चात् अस्त होने तक अपने किरणोंसे रोगोत्पादक क्रिमिरोग नाश करता है। वे क्रिमि भूमिपर रहते हैं ॥ १ ॥

ये क्रिमि बहुत प्रकारके विविध रूपवाले होते हैं कई श्वेत होते हैं और कई अन्य रंगोंके होते हैं। इनमेंसे कईयोंके चार अथवा अनेक नेत्र होते हैं ॥ २ ॥

अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य इन नामों द्वारा सूचित होनेवाले उपाय हैं। जिनसे इन रोग बीजोंका नाश हो जाता है ॥ ३ ॥

इन उपायोंसे इन क्रिमियोंके मूल बीज ही नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥ ५ ॥
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदासि । भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ ६ ॥

अन्वय- [अस्य वेशसः हतासः] इसके परिचारक मारे गये । [परिवेशसः हतासः] इसके सेवक पीसे गये । [अथो ये क्षुल्लकाः इव] अब जो क्षुद्रक क्रिमी हैं [ते सर्वे क्रिमयः हताः] वे सब क्रिमी मारे गये ॥ ५ ॥

[ते शृंगे प्र शृणामि] तेरे दोनों सींग तोड़ डालता हूं [याभ्यां वितुदासि] जिनसे तू कष्ट देता है । [ते कुषुम्भं भिनद्मि] तेरे विषके आश्रयको मैं तोड़ता हूं [यः ते विषधानः] जो तेरा विषका स्थान है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इनके सब परिवार पूर्वसूक्तसे दूर हो जाते हैं ॥ ५ ॥

इनमें जो विषका स्थान होता है उसका भी पूर्वोक्त उपायोंसे ही नाश हो जाता है ॥ ६ ॥

सूर्यकिरण का प्रभाव ।

सूर्य किरणोंमें ऐसी जीवन शक्ति है कि जिससे संपूर्ण प्रकारके रोगबीज दूर होते हैं । इसलिए जिस स्थानपर रोग जन्तु ओंके कारणसे रोग उत्पन्न हुए हों उस स्थानमें सूर्य किरण पहुचानेसे वे सब रोग दूर हो जाते हैं । जिस घरमें रोग उत्पन्न हुए हों, उस घरके ऊपरमें से सूर्य किरण बिलकुल प्रमाणमें उस घरमें प्रविष्ट करानेसे वहांके रोग दूर हो जाते हैं । क्योंकि रोगजंतुओं को हटानेवाला सूर्यके समान प्रभावशाली दूसरा कोई भी नहीं है ।

क्रिमियोंके लक्षण ।

इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें इन क्रिमियोंके कुछ लक्षण कहे हैं देखिए (मं २)—

१ अर्जुनः—श्वेत रंगका,
२ सारंगः—विविध रंगोंका चित्रविचित्र वर्ण वाला कल्मष जिसके शरीरपर है ।
३ चतुरक्षः—चार नेत्र वाला चारों तर्फ जिसके शरीरमें नेत्र हैं ।
४ विचक्रमः—विविध रंगका कृष्ण वर्ण ।

इन लक्षणोंसे ये क्रिमि पहचाने जा सकते हैं ।

रोग बीजोंके नाशकी क्रिया ।

इन रोग बीजोंका नाश करनेकी क्रिया तृतीय मंत्रमें कही है । इस मंत्रमें ३ क्रियाके चार साधन आये हैं देखिए-

(१) अग्नि (२) सूर्य (३) जलवृष्टि और (४) अवस्रुत के (अवस्रुत) जलके अर्थात् इन्हीं क्रियाओं में रोग बीजभूत क्रिमियोंका नाश करता हूं । रोगबीजों का नाश करनेकी क्रियाके ये चार साधन हैं । आरोग्य क्रियाकी खोज करनेवालोंको उचित है कि वे इन क्रियाओंकी खोज करें । इस समय तक इनमें जो खोज की उसका कुछभी परिचय यहां किया है ।

विषस्थान ।

इन क्रिमियोंके शरीरमें एक स्थान ऐसा होता है कि जहां विष रहता है (मं ६) वह विष ही मनुष्य के शरीरमें पहुंचता है और वहां विविध रोग उत्पन्न करता है । इसलिए इससे बचने के उपाय भी जानने चाहिए कि जिससे वह विष दूर हो जाय और मनुष्य के शरीर पर वह विष अनिष्ट परिणाम न कर सके ।

यक्ष्म नाशन ।

(३३)

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-यक्ष्मविबर्हण, चन्द्रमाः, आयुष्यम् ।)

अक्षीभ्यां॑ ते नासिकाभ्यां॑ कर्णाभ्यां॑ छुबुकादधि ।
यक्ष्मं॑ शीर्ष॒ण्यं॑ मस्तिष्काज्जि॒ह्वाया॒ वि वृ॑हामि ते ॥ १ ॥
ग्रीवाभ्य॑स्त उष्णिहाभ्यः॑ कीकसाभ्यो अनू॒क्यात्॑ ।
यक्ष्मं॑ दो॒ष्ण्यं॑ बाहुभ्यां॑ हस्ता॒भ्यां॑ वि वृ॑हामि ते ॥ २ ॥
हृद॑यात्ते॒ परि॑ क्लो॒म्नो हली॑क्ष्णात्पा॒र्श्वाभ्या॑म् ।
यक्ष्म॒ मत॑स्नाभ्यां॑ प्ली॒हो यकृ॑स्ते॒ वि वृ॑हामसि ॥ ३ ॥
आन्त्रेभ्य॑स्ते॒ गुदा॑भ्यो व॒निष्ठो॑रु॒दरा॑दधि ।
यक्ष्मं॑ कु॒क्षिभ्यां॑ प्ला॒शेर्नाभ्या॒ वि वृ॑हामि ते ॥ ४ ॥
ऊरुभ्यां॑ ते अष्ठी॒वद्भ्यां॑ पा॒र्ष्णिभ्यां॑ प्रप॒दाभ्या॑म् ।
यक्ष्मं॑ भसद॑ं॒ श्रोणि॑भ्यां॑ भासदं॒ भस॑सो॒ वि वृ॑हामि ते ॥ ५ ॥
अ॒स्थिभ्य॑स्ते म॒ज्ञभ्यः॑ स्नाव॑भ्यो॒ धम॑नीभ्यः ।
यक्ष्मं॑ पा॒णिभ्यां॑मङ्गु॒लिभ्यो॒ नखे॑भ्यो॒ वि वृ॑हामि ते ॥ ६ ॥

अर्थ (ते अक्षीभ्यां नासिकाभ्यां) तेरी आंखोंसे और दोनों नथुनोंसे (कर्णाभ्यां छुबुकात् अधि) कानोंसे, और ठोडीमेंसे (ते मस्तिष्कात् जिह्वया) तेरे मस्तकसे तथा जिह्वासे (शीर्ष्ण्यं यक्ष्मं वि बृहामि) सिर संबंधी रोग को हटाता हूं ॥ १ ॥

(ते ग्रीवाभ्यः उष्णिहाभ्यः) तेरे गले से और गुही की नाडीसे (कीकसाभ्यः अनूक्यात्) हंसली की हड्डीसे और पीठसे और (ते बाहुभ्यां ते हस्ताभ्यां) तेरे बाहुओंसे और हाथोंसे (दोष्ण्यं यक्ष्मं वि बृहामि) भुजासंबंधी रोगको हटाता हूं ॥ २ ॥

(ते हृदयात्, क्लोम्नः हलीक्ष्णात्) तेरे हृदयसे फेफडेसे और पित्ताशयसे (पार्श्वाभ्यां परि) दोनों कोखोंसे (ते मतस्नाभ्यां) तेरे गुर्दोंसे (प्लीहः यकृतः) तिल्ली और जिगरसे (यक्ष्मं वि बृहामि) रोग को हटाता हूं ॥ ३ ॥

(ते आन्त्रेभ्य गुदाभ्यः) तेरी आंतोंसे और गुदासे (वनिष्ठोः उदरात् अधि) मलद्वारसे और उदरसे (ते कुक्षिभ्यां प्लाशेः नाभ्याः) तेरी कोखोंसे बडी की नलीसे और नाभिसे (यक्ष्मं वि बृहामि) रोग हटाता हूं ॥ ४ ॥

(ते ऊरुभ्यां अष्ठीवद्भ्यां) तेरी जंघाओंसे और घुटनोंसे (पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्यां) एडियोंसे और पैरोंसे (ते श्रोणिभ्यां) तेरे कूल्होंसे (भंसतः भसदं भासदं) गुप्तस्थानसे कटिके संबन्धसे गुप्त (यक्ष्मं विबृहामि) रोगको मैं हटाता हूं ॥ ५ ॥

(ते अस्थिभ्यः मज्ञभ्यः) तेरी हड्डियोंसे और मज्जासे (स्नावभ्यः धमनीभ्यः) पट्ठोंसे और नाडियोंसे (ते पाणिभ्यां अङ्गुलिभ्यः नखेभ्य) तेरे हाथ अंगुलि और नाखूनोंसे (यक्ष्मं विबृहामि) रोग को हटाता हूं ॥ ६ ॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वय कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ ७ ॥

अर्थ- (यः ते) जो तेरे (अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि पर्वणि पर्वणि) प्रत्येक अंग प्रत्यंग रोम और प्रत्येक गांठमें (ते त्वचस्यं यक्ष्मं) तेरी त्वचा सम्बन्धी फैलनेवाले रोगको (कश्यपस्य विवर्हेण) कश्यपके उपायसे (वय विवृहामसि) हम दूर देते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ-आंख नाक कान बाहु आदि स्थूल शरीरके सांधे अवयवोंमें, हृदय प्लीहा यकृत आदि आंतरीक अवयवोंमें अस्थि मज्जा आदि धातुओंमें अथवा जहां कहीं रोग हो वहांसे कश्यप की विद्यासे हम रोगको दूर देते हैं १-७ ॥

कश्यप-विवर्हण ।

पूर्व सूक्तमें अति कष्ट, असाध्य और अवस्था सम्बन्धी रोगनिवारण की विद्या आयी है । उसी प्रकारकी कश्यप विवर्हण नामक विद्या यहांपर इस सूक्तमें आयी है। आज करनेवालोंको उन विद्याओंके साथ इस विद्याको भी आज करनी चाहिये। इस समय तो यह विद्या अज्ञात ही है ।

[यह सूक्त कुछ पाठ भेदसे ऋ १ ।१६३ म आया है]

मुक्ति का सीधा मार्ग ।

(३४)

(ऋषिः-अथर्वा । देवता पशुपतिः ।)

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतुः स यद्विधं मागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥ १ ॥
प्रमुञ्चन्तो मरुतस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात्प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥ २ ॥

अर्थ-[यः पशुपतिः] जो पशुपति [यः द्विपदां उत चतुष्पदां ईशे] द्विपद और चतुष्पादोंका स्वामी है [सः निष्क्रीतुः] वह मूल रीतिसे प्राप्त हुआ हुआ [यदिदं मार्गं एतु] यज्ञनीय विभागको प्राप्त होवे । [रायः पोषाः यजमानं सचन्ताम्] धन और पुष्टियां यज्ञ करनेवालेको प्राप्त हों ॥ १ ॥

हे [देवाः] देवो ! [मरुतस्य रेतः प्र मुञ्चन्तः] मुख के वीर्यका दान करते हुए [यजमानाय गातुं धत्त] यज्ञ करनेवाले के लिए सन्मार्ग प्रदान करो । [यत् शशमानं उपाकृतं देवानां प्रियं पाथः अस्थात्] जो सोमरूप सुसंस्कृत देवोंका प्रिय अन्न है वह हमें [एतु] प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो द्विपाद और चतुष्पाद आदि सब प्राणियोंका स्वामी एक ईश्वर है वह निरालस रीतिसे प्राप्त होनेके पश्चात् पुत्र के स्वरूपमें पुष्टित होता है और उसकी कृपासे सब प्रकारके धन और पुष्टियां उपासक को प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥

यह देख इस उपासक को देवोंका वीर्य प्रदान करते हुए सन्मार्ग बताते हैं और वनस्पति सम्बन्धी सुसंस्कृत देवोंके लिए प्रिय ऐसा जो अन्न होता है वह इसको देते हैं ॥ २ ॥

य ईध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अधिष्टानग्रे प्र सुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ ३ ॥
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
धातुष्टानग्रे प्रसुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥ ४ ॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे ब्राह्मणेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं यन्तु पथिभिर्देवयानैः ॥ ५ ॥

अर्थ–[ये दीध्यानम्] जो प्रकाशमान [ईध्यमानम् अनु] जलते हुए को अनुकूलता के साथ [मनसा च चक्षुषा अन्वैक्षन्त] मनसे और आंखसे देखते हैं, [विश्वकर्मा प्रजया संरराणः देवः अग्निः] विश्वकर्ता प्रजासे रमनेवाला प्रकाशमान देव [तान् अग्रे प्रसुमोक्तु] उनको सबसे पहले सुफल करे ।

[ये ग्राम्याः विश्वरूपाः पशवः] जो ग्रामीण विविधांग रूपवाले पशु [बहुधा विरूपाः सन्तः एकरूपाः] बहुत प्रकारके अनेक रूपवाले होनेपर भी एक रूप होनेके समान ही हैं (प्रजया संरराणः प्रजापतिः धातुः देवः) प्रजाके साथ रमने वाला प्रजापालक धाता देव [तान् अग्रे प्रसुमोक्तु] उनको पहले सुफल करे ॥ ४ ॥

[पूर्वे प्रजानन्तः] पहले विवेक जाननेवाले ज्ञानी [परिचारन्तं ब्राह्मं] चारों स्थानोंमें भ्रमण करनेवाले ब्राह्मको [ब्राह्मणेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु] सब अंगोंसे ग्रहण करें । [शरीरैः दिवं गच्छ] सब शरीरांगोंसे प्रतिष्ठित रह, पश्चात् [देवयानैः पथिभिः स्वर्गं यान्तु दिवं गच्छ] देवोंके जाने योग्य मार्गोंसे स्वर्गलोक का प्रकाशमय स्थानको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ– जो तेजस्वी ज्ञानी पुरुष अपने मनसे और आंखसे बड़ी स्थितियें रहे हुए प्राणीको अनुकम्पा की दृष्टिसे देखते हैं उनको– ही विश्वका निर्माण करनेवाला और प्रजाओं में रमनेवाला प्रकाशमय देव सबसे पहले सुफल करता है ॥ ३ ॥

ग्राम्य पशु जो वास्तवमें विविध रूपवाले होते हुए भी एक रूपवाले जैसे होते हैं उनको भी सब प्रजाओंके साथ रहनेवाला प्राणोंका प्रजापति पहिले सुफल करता है ॥ ४ ॥

जो ज्ञानी लोग सब प्रकारसे विचार करनेवाले ब्राह्मकी सब अंगों और अवयवोंसे इच्छा करके अपने अधिकारमें लाते हैं वे शरीरसे सुदृढ होते हुए दिव्य मार्गोंसे होके स्वर्गको जाते हैं और प्रकाश का स्थान प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

प्राणका आयाम ।

शरीरमें प्राण एक अद्भुत शक्ति है । वास्तवमें वह एकही प्राण शरीरके विशेष अवयवों और अंगोंमें कार्य करनेके कारण अनेक प्रकारका माना जाता है और इसी एकका अनेक नाम भी दिए जाते हैं । ईश्वरी नियमसे एक प्राण अनेक अवयवोंमें व्याप्त है और वहांसे स्वेच्छासे निकल होता है । यदि इस प्राणपर मनुष्यकी इच्छाका आधिपत्य होगा अर्थात् मनुष्यकी इच्छाके अनुसार प्राणका अंगों और अवयवोंमें भ्रमण होगा और इच्छानुसार इसकी शरीरमें स्थिति हो सकेगी तो शरीरका कोई भी अवयव कभी रोगी न होगा और इच्छा मरण की सिद्धि भी प्राप्त होगी । यह सब बात प्राणपर प्रभुत्व प्राप्त होने पर ही निर्भर है । इसी लिए प्रथम मन्त्रमें कहा है––

प्रजानन्तः पूर्वे परिचरन्तं ब्राह्मं ब्राह्मणेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु । (मं ५)

" जाननेवाले बड़े लोग सब प्रकार करनेवाले प्राणको सब अंगोंसे इच्छा करके अपने आधीन कर लेवें ।' इस मंत्रमें इस कर्मके अधिकारी कौन हैं यह भी कहा है प्राणका अर्थ बताया है और प्राणको स्वाधीन करनेका भी उपदेश किया है इसका अनुसंधान करिए—

१ प्र—आगन्तः पूर्वे = (प्र—आगन्तः) विशेष जाननेवाले अर्थात् शरीर जाव और योगाभ्यासके विशेष ज्ञाता। प्राणायामके सम्बन्ध उत्तम प्रकारसे जाननेवाले योगी (पूर्वे) पहले अर्थात् प्राचीन योगाचार्य जो यहाँ जो पुराने अनुभवी हैं। वे लोग अपने अंगों और अवयवोंसे प्राणको इकट्ठा करके अपने आधीन करें।

२ पर्याचरन्तं प्रार्णे—(परि+आचरन्) चारों ओर संचार करनेवाले प्राणको आधीन करें। प्राण सम्पूर्ण शरीरमें संचार कर रहा है स्वेच्छासे संचार कर रहा है उसका अपनी इच्छासे कार्य करनेमें लगावें। प्राणका संचार जहाँ मार्ग रीतिसे नहीं होता है वहाँ रोग होते हैं। इसलिए प्राणको अपनी इच्छासे प्रेरित करनेकी शक्ति प्राप्त होगई तो सब शरीर नीरोगी रखना और दीर्घ आयु प्राप्त करना भी सम्भवनीय है।

३ अङ्गेअङ्गे प्रार्णं प्रतिपृङ्क्तम्—शरीरके अंगों और अवयवोंसे प्राणको इकट्ठा करना और अपनी इच्छानुसार सब शरीरमें प्रेरित करना यहाँ सूचित किया है।

योग शास्त्रमें प्राणायाम सिद्धि कही है। इसके अनुष्ठान से यह सिद्धि प्राप्त हो सकती है। जो पाठक इस विषयमें अधिक परिश्रम करना चाहते हैं वे अच्छे योगीके पास रहकर ब्रह्मचर्य आदि सुविधयोंका अनुष्ठान करके अपनी इस सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। अपने शरीरके सब अंगों और अवयवोंके प्राणको इकट्ठा करना और पुनः प्रत्येक अवयवमें उसको भेजना यह सब किया अपने आधीन होनी चाहिए, इससे कैसी सिद्धि हो सकती है इसका वर्णन इसी मंत्रमें देखिए—

शरीरे। प्रतिसिद्ध। (म ५)

अपने शरीरोंके साथ स्थिर हो यह परिभी सिद्धि है। स्थूल सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर हैं इसी प्रकार जाव शरीर भी किये जा सकते हैं अंगों और अवयवोंको सिकुड़ी करनेसे बहुत सूक्ष्म विचारमें आना पड़ेगा इसलिये यह विचार हम छोड़ देते हैं। इन शरीरोंके साथ मनुष्य सुखद और सुप्रतिष्ठित हो सकता है। जो पूर्वोक्त साधन करेगा और प्राणको अपने आधीन बनावेगा, वह शरीरसे नीरोग सुखद तथा दीर्घायु हो सकता है। यह तो साधक आम हुआ परन्तु प्राणायाम साधन करनेसे अप्रत्यक्ष भी बहुत से लाभ होते हैं। इस अप्रत्यक्ष लाभ के विषयमें यही मंत्र इस प्रकार कहता है—

दिवं मरुद्भ। देवयानैः पथिभिः स्वर्गं यहि। (मं ५)

ब्रह्मसदन स्थान प्राप्त कर। देवोंके मार्गसे स्वर्गमें जा यह है अन्तिम सिद्धि जो इस प्रकाशके सार्वत्र और प्राणके वशीकरणसे प्राप्त हो सकती है। योग साधनके द्वारा प्राप्त होनेवाली यह अन्तिम सिद्धि है, जो प्रायः सब धर्म ग्रंथोंमें वर्णित हो चुकी है।

पशुपति रुद्र।

पूर्वोक्त पंचम मंत्रमें प्राण का वर्णन किया है उसके वशीकरणसे लाभ बताया और उसकी सिद्धि भी कही है। इसी प्राणके भेदमें यह पशुपति आदि नाम आये हैं। प्राण शब्द परमात्माका वाचक हो, वा शरीरस्थ प्राणका वाचक हो दोनों अवस्थामें ये शब्द उसके वाचक होते हैं। यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें ये इसके वाचक कहे हैं और प्राण यह है यह बात शतपथादि ब्राह्मणोंमें अनेक बार कही जा चुकी है। इसलिये पशुपति शब्द यह और प्राण एकही अर्थमें प्रयुक्त होनेमें किसीको संदेह नहीं हो सकता।

शरीरमें 'पशुभाव' है स्थूलशरीरमें पाशवी बल रहता है इंद्रियोंमें भोगेच्छा क्रोध आदि पशुभाव हैं मनमें कुवासना आदि पशुभाव हैं इस प्रकार स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके क्षेत्रोंमें बहुतसे पशु विद्यमान हैं उनको वशमें रखनेवाला उनका स्वामी यह आत्मा है। आत्माके वशमें होनेसे ये सब पशु वशमें हो जाते हैं और कोई कष्ट नहीं देते। पशुपति होना यह भी एक बड़ी भारी सिद्धि है जो प्राणको वश करनेसे प्राप्त हो सकती है। प्रकृत वर्णन अथर्व इसी प्रकार हुआ है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्। अथर्व ११। (४)।४।१

"प्राणके लिये प्रणाम है जिसके वशमें यह सब है जो सबका स्वामी है और जिसमें सब ठहरा है। यह प्राणका वर्णन देखिए और इस सूक्तका प्रथम मंत्र देखिये— विद्वान और चतुष्पाद पशुओंका जो पशुपति स्वामी है वह अपना वर्णनेके पश्चात् यह पूरुष स्वामीमें आता है और सब तथा पुरुषों उपासकको मिलता है॥ (म १)

द्विपाद और चतुष्पादोंके शरीरोंका चलानेवाला प्राणही है, इसके होनेसे सब इंद्रिय कर्म करते हैं और इसके चले जानेसे यह शरीर मुर्दा हो जाता है, इसलिए द्विपाद चतुष्पादोंका स्वामी प्राण है। यह प्राण(नि –क्रीतः)पूर्व रीतिसे खरीदा जाकर तथा यह आधीन हो जाता है । कोई पदार्थ खरीदा जाने परही अपने स्वामीत्व में आ जाता है । यह प्राण किस रीतिसे खरीदा जा सकता है इसका विचार करना चाहिए ।

द्रव्य देकर अन्य पदार्थ खरीदे जाते हैं वैसा यह प्राण धनसे खरीदा नहीं जा सकता । इसको योगसाधनकी तपसे द्वारा खरीदनेकी आवश्यकता है । वैराग्य और अभ्यास द्वारा यह खरीदा जाता है अर्थात् यह पूर्ण स्वाधीन हो जाता है। स्वाधीन होनेके पश्चात् यह (दक्षिणं भागं) पूर्वके स्थानमें प्राप्त होता है = यह स्थानमें यह प्राप्त होता है योगी जन इसकी अन्य साधन द्वारा उपासना करते हैं, जिसके—

रायस्पोषाः यजमानाय सन्वन्ताम् । (मं १)

धान्य और पुष्टिका यजमानको मिलता है । मंत्रमें एव ' शब्द है जो यज्ञ योगा आदिका वाचक है । योग-मार्गसे प्राणकी उपासना करनेसे यह प्रकाश रूप प्राप्त होता है । इसके साथ शरीर—प्रतिष्ठा अर्थात् शरीर स्वास्थ्य का फल जो कि मंत्र ५ में कहा है वह भी यहां देखने योग्य है क्योंकि ' शरीरकी प्रतिष्ठा भी शरीरकी योगा और पुष्टि इसी से ही हो सकती है ।

वीर्यशक्ति ।

इस प्राणके अनुग्रहसे और एक महत्व पूर्ण शक्ति प्राप्त होती है उसका वर्णन द्वितीय मंत्र द्वारा हुआ है—

सुवसस्य देवाः अनुमन्यन्तां देवाः गातु वसु । (मं २)

त्रिभुवनका बीज फैलानेवाले देव इसके योग्य मार्ग देते हैं । त्रिभुवनके अंदर अनंत पदार्थ हैं और सब पदार्थोंके अणु सूक्ष्म बीज हैं यही त्रिभुवनका रेत अथवा वीर्य है । यह वीर्य सूर्यादि देवोंसे प्राप्त है । यह वीर्य शक्ति इन देवोंसे इस पुरुषको प्राप्त होती है उस प्राणको पूर्वोक्त प्रकार वश करता है । ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठासे जो वीर्य लाभ होनेका वर्णन योगशास्त्रमें है वह वीर्य यही है । पाठक विचार करके देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि योगमें केन्द्रीभूत शक्ति इतनी है और वह इतनी भारी शक्ति है उसका विस्तार अपरिमित हो सकता है । यह बीजशक्ति यदि अपने अंदर आधी बची या दूसरेसे छीन ली या अपनी शक्ति बहुत ही बढ़ सकती है । योगीके अंदर जो विलक्षण शक्ति आती है उसका कारण यही है कि, वह दूसरोंसे बीजशक्ति प्राप्त करता है और उसका उपयोग करता है ।

योगीका अन्न ।

द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें योगीके सेवन करने योग्य सात्विक अन्नका वर्णन हुआ है—

यत् वाजपाय उपाकुर्वन्ति देवाभ्यः शिवं पाय्यः अस्मभ्यम्
तत् अपि वातु ॥ (मं २)

जो अन्नरसादि सेवनसे उत्तम संस्कार किया हुआ देवोंके लिए अन्न होता है वह अन्न हमें प्राप्त हो । " इसमें शिव अन्नका योगान्न वर्णन है । अन्न अरम अर्थात् सुलभ हो हानिमय विषाक्तसेवन न हो । वाजपाय' शब्द अन्न या वीर्य औषधि का वाचक है । यह देवोंका अन्न है। सोम वनस्पतिका रस ही है । इस रसमें योगी जाता रूप मिलना चाहता है और वह भी मिला होता है । यह रस पुष्टि कान्ति और बल बढ़ानेवाला है । अन्न (देवानां शिवं) देवताओंके लिए शिव हो देव शब्दका अर्थ इन्द्रिय भी है । यह अर्थ लेनेसे अन्न ऐसा हो कि जो इंद्रियोंका हित करनेवाला अर्थात् इन्द्रियोंके लिए हितकारी हो यह अर्थ इसी कारणसे मिलता है । कोई पदार्थ ऐसा नहीं लेना चाहिए कि जो शरीरकी हानि करनेवाला हो और इन्द्रियोंको निर्बल करने-वाला हो । इस मंत्रका = पाय " शब्द भी पीने योग्य अन्नका बोध करता है। यह अन्न वनस्पतिजन्य रसरूप अन्नवर्ग और पुष्टिकारक अन्नका बोध करनेवाला वचन है । दूध के साथ सोमरस या अन्न, अथवा औषधिरस आदि सेवन करना चाहिये। सोमरस बनानेकी विधि यज्ञप्रकरणमें प्रसिद्ध है ।

मुक्तिका मार्ग ।

तृतीय मंत्रमें मुक्तिका अथवा मार्ग बताया है जो हरएक को प्रथमें धारण करना चाहिए—

ये दीध्यानाः मनसा चक्षुषा च वध्यमाय अभु सञ्चरन्ति । (म ३)

जो तेजस्वी अब बद्ध हुए थे मनसे और आंखसे अनुकम्पाकी दृष्टिसे देखते हैं वे मुक्तिके अधिकारी हैं। वेही बंधनसे छूट सकते हैं और केवल्य धाम में पहुंच कर विराजमान हो सकते हैं।

स्वयं (दीध्यानाः) तेजस्वी होते हुए पूर्वोक्त तपानुष्ठानसे अपना तेज जिन महात्माओंने बढ़ाया है उनको चाहिए, कि वे अपने (मनसा) मनसे अपने अन्तःकरण के गहरे भावसे तथा अपने (चक्षुषा) आंखसे बंधनमें पड़े हुए मुमुक्षुओंपर दयाकी दृष्टिसे देखें अर्थात् वहां केवल आंखसेही देखना नहीं है किन्तु अन्तःकरणसे उनकी दीन अवस्थाका शोचन है उस अवस्थाका विचार करना है और उनकी सहायताके लिए अपनी ओरसे जहां तक हो सकता है वहां तक यत्न भी करना है। उनकी सहायताके लिए आत्मसमर्पण करना है। जो महात्मा दीनोंके उद्धारके लिए आत्म समर्पण करते हैं वेही मुक्तिके अधिकारी हैं। परमात्माको दीनोंके अंतःकरणमें अनुभव करके उनकी सेवा करना अथवा दीनोंके उद्धारके प्रयत्नसे परमात्माकी आराधना करना आदि कार्य जो करते हैं वे मुक्तिके अधिकारी हैं। इसकी सत्यता कैसे होती है यह भी देखिये

प्रजया सरराणः विश्वकर्मा अत्रिः रेवत्
अमे ताय प्रभुतोक्तु । [मं ३]

"प्रजाके साथ रहनेवाला विश्वका कर्ता तेजस्वी पुरुष पहले उनको मुक्त करे।" इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दों द्वारा कहा है कि ईश्वर प्रजाके साथ रहता है अर्थात् प्रजाजनोंके अन्तःकरण में रहता है। दीन प्रजाओंमें उसके जो गुण होते हैं वे गुण दीन प्रजाकी सेवा करनेसे ही दूर होनेके कारण दीन प्रजाका उद्धार करना ही परमात्माकी भक्ति करना है। इसीलिये इस मंत्रके पूर्वार्धमें कहा है कि वह विद्वानों द्वारा और दुःखी बने हुए जनोंको अनुकंपा की दृष्टिसे मनसे और आंखसे देखनेवाले उनसे पहले मुक्त होते हैं। पाठक यहां परम सौभाग्यका क्या मार्ग देखें और उस मार्गसे चलकर मुक्तिके अधिकारी बनें।

विश्वरूपम एकरूपता ।

विश्वका रूप अनेक प्रकारका है विविधता इस विश्वमें स्थान स्थानपर दिखाई देती है एकसे दूसरा भिन्न और दूसरे से तीसरा भिन्न यह भेदकी प्रतीति इस जगत्में सर्वत्र है। विचार होता है कि क्या यह भेद सदा रहता है अथवा इसका अभेद होनेकी कोई युक्ति है। मंत्रकार कहता है कि भेदमें अभेद देखनेका अभ्यास करो, जैसा—

विश्वकर्मा विश्वधाः सन्दृक् बहुधा एकरूपाः । (म ४)

विश्वमें दिखाई देनेवाले इस विविध प्रकारके रूप दृश्यमें भी ये बहुत प्रकारसे एकरूप ही है। उदाहरण प्रत्यक्ष पशुओंके- पौधों इस रूप और आकार भिन्न हैं, यह भेदभाव है। इन दृश्यसे देखनेसे भिन्नता अनुभवमें आती है। अब यह दृष्टि छोड़ दें और पशुत्व (गोत्व) की सामान्य दृष्टिसे इन गौओंको देखिये इस दृष्टिसे सब विविध गौमें एक गोजातिमें मिल जाती हैं। जाति दृष्टिसे अभिन्नता और व्यक्ति दृष्टिसे भिन्नता का इस प्रकार अनुभव आता है। अब घोड़ा, पशु ये सभी, ऊंट, घोड़ी, बकरा बकरी भेड़ी बंदर, मनुष्य आदि अनेक पशु आते हैं ये परस्पर भिन्न हैं इसमें किसी को भी संदेह नहीं हो सकता। परंतु यह इन जाति भेदको भिन्नता पशुत्व सामान्य में अर्थात् ये सब पशु हैं इस दृष्टिसे देखनेसे लुप्त हो जाती है और पशुमात्र में सब एक दिखाई देते हैं। पशु और मनुष्य बिलकुल भिन्न हैं परंतु प्राण धारण करने दोनोंको एकता प्राप्त भावमें होती है। इसी प्रकार भिन्नता और अभिन्नता का विचार करना उचित है और जिस दृष्टिसे भिन्नता अनुभवमें आती है और जिस दृष्टिसे अभिन्नता दिखाई देती है इसका विचार करना चाहिए। मंत्रकार कहता है कि जिस रूप देखकर भी बहुत प्रकार से एक रूपता है और इस एकरूपताका ही विचार करना चाहिए। अपने अवयवोंमें हो दृश्यमान रूप स्थानोंमें विभक्त होनेके कारण सबका रूप भिन्न भिन्न होते हैं परंतु वह रूप प्रकारका नहीं है विविध रूप होने पर भी वह सब मिलकर एकता है।

विभिन्न प्राणोंमें अभिन्न प्राणके कार्यको देखना ही एकता है। इसी प्रकार विभिन्न इन्द्रियोंमें अभिन्न इन्द्री (आत्मा) अभिन्न कार्य कर रही है यह अनुभव करना आत्मैक्य दृष्टिसे देखना होता है। इंद्रियोंकी भिन्नता तथा भी अन्य अवस्था है, एवं उनमें एक अभिन्नकी शक्ति समान विषयसे कार्य कर रही है यह देखना विज्ञान या ज्ञान से ही साध्य हो सकता है। इसी प्रकार अग्नि वायु, सूर्य आदि विभिन्न भौतीक पदार्थोंमें एक अभिन्न आत्माकी परम शक्ति कार्य कर रही है, विविध प्रकारके विभिन्न पदार्थमें अभिन्न रीतिसे वह आतप्त हुई है इस दृष्टिसे जगत् की ओर देखना यह एक उच्च दृष्टिकी अवस्था है, एवं उच्च दृष्टिसे जगत्की ओर देखना यह एक उच्च दृष्टिकी अवस्था है इस उच्च दृष्टिसे देखनेवाले महात्मा सृष्टिके अधिकारी हैं। इस विषयमें चतुर्थ मंत्रका उत्तरार्ध देखिये-

प्रजया सरराणः प्रजापतिः वायुः दधत्
दात् अग्ने मनुमोक्तु ॥ (म ४)

"प्रजाके साथ रहनेवाला प्रजाका पालक प्राण देव उन महात्माओंको पहले मुक्त करे आ विविध प्रकारके विविध पदार्थ में अभिन्न एक शक्तिके कार्यका अनुभव करते हैं। पूर्वोक्त सृष्टिके अधिकारीका यह भी एक लक्षण है। इस दृष्टिसे इस सूक्तमें मनुष्यकी आत्मिक उन्नतिका मार्ग क्रमशः बताया है। यदि पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको बडा लाभ हो सकता है। सुबोधकार अब यहां संक्षेपसे फिर सारांश कह रहे हैं-

१ ज्ञानी मनुष्य अपने उस शरीरमें संचार करनेवाले प्राणको अपने उस अवयवों और इंद्रियोंसे इकट्ठा करके अपने आधीन करे। इससे शरीरकी दृढता होगी और प्रकाशके दिव्य मार्गसे स्वर्गकी प्राप्ति भी होगी। (मं ५)

२ प्राण सब द्विपाद चतुष्पादोंका संचालक है वह स्वाधीन होनेपर पुष्टी और शोभा बढाता है। (म १)

३ प्राणका वशमें करनेसे विघ्नबाधाके दूर कि देवोंसे बडी शक्तिकी प्राप्ति होती है, इसके लिये दिव्य मुखरूपी अन्न भोजन करना योग्य है। (मं २)

[illegible]

पशु।

[illegible]

यज्ञमें आत्मसमर्पण।

(२५)

(ऋषि अत्रिसाः। देवता विश्वकर्मा)

ये युध्यन्ते प्र धृषु पराक्रुशानुवर्तो अद्भुत ऊतिभिः।
या नवाभरणा दुर्गहेषु विभृष्टि सुम्ना कृणवद्विषेधना ॥ १ ॥
यद्वर्तिभिर्वृषभ पत्नसाहुतोऽयोहता अनुदत्स्वर्मिन्।
सुप्रपाणं शुभ्रयाजमर्व पाहि न स्तर्यं गृणते विश्वधा वसो ॥ २ ॥

[illegible]

अदान्यान्त्सोमपान्मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः
यदेनमकृषान्पृद्व एष त विश्वकर्मन्ग्र मुञ्चा स्वस्तये ॥ ३ ॥
घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष त्रुमद्वयो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रमुतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं वितत विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

अर्थ (सोमपान् अदक्षिणान् मन्यमानः) सोमपान यज्ञ करनेवालों को दान देने अयोग्य समझनेवाला (न यज्ञस्य विद्वान्) न तो यज्ञ का जाननेवाला होता है और (न समये धीरः) न समयपर धैर्य धरनेवाला होता है । (एनं यदा यदा एवः अकृषान्) यह यह हुआ मनुष्य जो पाप करता है हे (विश्वकर्मन्) विश्वके रचयिता ! (तं स्वस्तय मुञ्च) उसके कल्याणके लिये छुटा कर दो ॥ ३ ॥

(ऋषय घोराः) ऋषि लोग बड़े तेजस्वी होते हैं (एषां यत् सत्यं चक्षुः) इनके लिये नमस्कार होवे । (यत् एषां चक्षुः मनसः च सत्यं) क्योंकि इनका नेत्र और मन सत्यभावसे पूर्ण होता है । हे (महिष विश्वकर्मन्) विश्वके महान् रचयिता ! (बृहस्पतये त्रुमत् नमः) ज्ञान पतिके लिये स्तुत्य नमस्कार हो (अस्मान् पाहि) हमारी रक्षा कर (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार हो ॥ ४ ॥

(यज्ञस्य चक्षुः प्रमुतिः मुखं च) जो यज्ञका नेत्र मस्तकवर्ती और मुखके समान है उसको-(वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि) वाणी कान और मनसे मैं अर्पण करता हूं । (सुमनस्यमानाः देवाः) उत्तम मनवाले देव (विश्वकर्मणा विततं इमं यज्ञं यन्तु) विश्वके कर्त्ताद्वारा फैलाये हुए इस यज्ञके प्रति आवेंगे ॥ ५ ॥

भावार्थ– दुष्ट प्रकृतिवालों के विषय में इनसे तपनेवाले परमेश्वर पुरुषको निष्पाप बनाते हैं जो सोम का सम्पादन करके याग करता है उसके याग विश्वकर्माजी हमारे समान सुख पावें ॥ २ ॥

जो यज्ञ परमेश्वर के अनुष्ठानों को अपने लिए अनिवार्य समझता है न उसका यज्ञका तत्त्व समझा होता है और न वह समयपर धैर्य धरनेमें समर्थ होता है । यह अज्ञानी मनुष्य इस यज्ञ अवस्थामें जो पाप करता है उससे विश्वकर्मा ही उसे छुड़ावे और उसका कल्याण करे ॥ ३ ॥

ऋषि बड़े तेजस्वी और प्रभावशाली होते हैं क्योंकि उनके मनमें और आंखमें अच्छा भाव भरा रहता है । इस लिये इस प्रकार करते हैं हे उत्तम कर्म न करनेवाले विश्वके कर्त्ता ! हमारी सब प्रकारसे रक्षा कर, तेरे लिए हम नमन करते हैं ॥ ४ ॥

मैं अपनी वाणी कान और मनसे यज्ञ के चक्षु नेत्र और मुखमें आत्मार्पण करता हूं क्योंकि विश्वकर्त्ता यह यज्ञ फैलाया है जिसमें सब देव आकर कार्य करते हैं ॥ ५ ॥

अयाजकोंकी निन्दा ।

प्रथम और तृतीय मन्त्रमें अयाजकोंकी निंदा की है । कहा है कि— जो अन्न खाते हुए भी यज्ञ जैसे उत्तम कर्मोंको करनेमें दक्षी नहीं रखते अन्य उत्तम कर्म भी नहीं करते उपासना भी नहीं करते (मं १) उनकी सद्गति कैसा होगी ? मनुष्यकी बुद्धिमें कई प्रकारके मलिन हैं वे सत्कर्म उपासना और ज्ञानियोंके सहवास के कारण दूसरी शुद्धियें बढ़नेके कारण पवित्र करते हैं । परंतु जब तक यह मनुष्य उक्त दोनोंके कारण उस बुद्धि शोधनीय विषय नहीं होता । विषय इस बुद्धिका वाचक है उसमें रहनेवाला विषयः आशयः " है । हरएक मनुष्यकी बुद्धिमें यह रहता ही है । ऐसा मनुष्य जो दुष्कर्म करता है उससे उसको परमात्मा ही बचावे और वह सुधरकर प्रशस्ततम यज्ञकर्ममें रत हो जावे (मं १) । यह अयाजकोंकी

प्रकाश भेद होता है इस विषयमें किसीका भी संदेह नहीं हो सकता। परंतु ' जो मनुष्य ऐसे भेद ज्ञानियोंको भी यानके लिए पात्र नहीं समझता न तो उसको यज्ञका तत्त्व और न उसमें समर्पण का महत्त्व समझा होता है। यह उसकी बड़ी स्थिति है इस स्थितिमें जो वह कुछ कर्म करता है वह तो पापमय होनेमें संदेह ही नहीं है परमात्माही उसे इस पापसे बचावे और सन्मार्गपर चलावे। (मंत्र ३) "

इस रीतिसे इन दो मंत्रोंमें अयाजकोंकी निन्दा की है।

याजकोंकी प्रशंसा।

द्वितीय मंत्रमें याजकोंकी प्रशंसा की है। ' जो दीन और दुखी प्रजाकी ओर अनुग्रहपूर्वक मातासे देखता है और उनके कल्याणका चिंतन करता है वह याजक विद्वान है ऐसे याजकोंके साथ परमात्माकी कृपासे हमारा स्थिर संबंध होवे।' (मं २) यज्ञसे ही पाप दूर होता है और दूसरोंको सुखदेके लिए आत्मसमर्पण करना यज्ञ है जो पाप दूर करनेमें समर्थ है।

ऋषियोंकी प्रशंसा।

चतुर्थ मंत्रमें ऋषियोंकी प्रशंसा इस प्रकार की है— ऋषि वही तेजस्वी है और उसके मनमें तथा आत्मामें सत्य रहता है इस ऋषियोंके लिए नमस्कार है। (मं ४)

इस वचनमें (जैसा ऋषयः) ऋषियोंके लिए और " यह विशेषण आता है। इसका अर्थ उस भेद उचित ऐसा होता है। ऋषि उचित होनेका हेतु इस मंत्रमें यह दिया है कि उसके मनमें और आत्मामें सदा सत्य रहता है।" वे असत्य विचार कभी मनमें नहीं लाते और उनकी वृत्ति उससे सदाचरण हुए होती है। यह बात तो ऋषियोंके विषयमें हुई। परंतु यहां हमें बोध मिलता है कि जिसके मनमें और आत्मामें ओतप्रोत सत्य बसता वह पुरुष भी ऋषियोंके समान उच्च बनेगा उच्च होनेका यह उपाय है। इसकी पालना करनेसे मनुष्य उच्च होता है।

विश्वकर्त्ता की पूजा।

इस सूक्तकी देवता विश्वकर्मा है। विश्वका कर्ता एक प्रभु है उसकी उपासना करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। इसी प्रभुने यज्ञरूपी प्रशस्ततम सत्कर्मका प्रारंभ किया है। (मं ५) इस प्रभुने आत्मसमर्पण करके सृष्टि जीवोंकी भलाईके लिए विश्वरूपी महान् यज्ञकी रचना सबसे प्रथम की है इसको देखकर अन्यान्य महात्माओंने भी विविध यज्ञ करना प्रारंभ किया। इस लिए ऐसे विश्वकर्त्ताकी हम मनन करते हैं वह हम सबकी रक्षा करे। (मं ४) इस रीतिसे उस प्रभुकी उपासना और पूजा करना मनुष्य मात्रके लिए श्रेयस्कर है।

इस प्रकार यह सूक्त यज्ञमें आत्मसमर्पण करनेका उपदेश दे रहा है। यह सूक्त प्रत्यक मनुष्यसे कहता है कि—

वाचा श्रोत्रेण मनसा च जुहोमि। (मं ५)

वाणी कान और मनसे अर्पण करता हूं। " यज्ञमें आत्मसमर्पण करनेकी तैयारी हरएक मनुष्य करे समर्पण करनेके समय पीछे न हटे। क्योंकि इस प्रकारके समर्पणसे ही उच्च अवस्था प्राप्त होती है।

विवाहका मंगल कार्य ।

(३६)

(ऋषिः पतिवेदनः । देवता-अग्नीषोमौ)

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेद्विभां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोष पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥१॥
सोमंजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् । धातुर्देवस्य सवितुः सख्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२॥
इयमग्ने नारी पतिं विदेष्टु सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान्महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३॥
यथाखरो मघवन्भारुरेष स्त्रियो मृगाणां सुपदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया परयाधिराधयन्ती ॥४॥

अर्थ— हे अग्ने ! (भगेन सह) भगके साथ (नः-भक्तः) उत्तम वधू पति (इमां वा वः सुमतिं कुमारीं) इस हमारी उत्तम बुद्धिवाली कुमारी कन्याको (आ गमत्) प्राप्त होवे । (अस्यै पत्या सौभगं अस्तु) इसके पतिके साथ सौभाग्य प्राप्त होवे । क्योंकि यह कन्या (वरेषु जुष्टा समनेषु वल्गु) श्रेष्ठोंमें प्रिय और उत्तम सभाओंमें मनोहर है ॥ १ ॥

(सोमजुष्टं) सोम द्वारा सेवित (ब्रह्मजुष्टं) ब्राह्मणों द्वारा सेवित (अर्यम्णा संभृतं भगं) अर्यमा देवताओंसे इकट्ठा किया हुआ धन (धातुः देवस्य सवितुः) धारक देवके सख्य मित्रतामें (पति वेदनं कृणोमि) पतिकी प्राप्ति के लिये योग्य करता हूं ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (इयं नारी पतिं विदेष्टु) यह स्त्री पतिको प्राप्त करे । (हि सोमः राजा सुभगां कृणोति) क्योंकि सोम राजा इसको सौभाग्यवती करता है । यह (पुत्रान् सुवाना महिषी भवाति) पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई पटरानी होवे । यह (सुभगा पतिं गत्वा विराजतु) सौभाग्यवती पतिको प्राप्त करके शोभित हो ॥ ३ ॥

हे (अघवन्) हे इन्द्र ! (यथा एष भारुः) जैसा यह पुराना स्थाण (मृगाणां स्त्रियः सुपदाः बभूव) मृगोंके लिये प्रिय और बहुत योग्य स्थान होता है (एवा) ऐसे ही (परया अधिराधयन्ती) पतिके विरोध न करती हुई और (भगस्य जुष्टा इयं नारी) ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिके लिये (सं प्रिया) उत्तम प्रिय (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिसने धन प्राप्त किया है ऐसा उत्तम विद्वान् वरता पति इस हमारी बुद्धिमती कुमारीको प्राप्त होवे । यह हमारी कन्या मनोंको प्रिय और उत्तम सभाओंमें श्रेष्ठ है इस लिए इस कन्याके इस पतिके साथ उत्तम सुख प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान और बड़े मन द्वारा संपादित और सत्यभावसे प्राप्त किया हुआ यह धन उत्तम पतिके लिये है ॥२॥

यह स्त्री पतिको प्राप्त करे परमेश्वर इसे सुखी बनावे; यह स्त्री घरमें रानीके समान बनकर पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई उच्च ऐश्वर्यसे शोभित होवे ॥ ३ ॥

मर्मस्त्वं नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम्। तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः॥५॥
आ क्रन्दय बलपते वरमामनस कृणु। सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः॥६॥
इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमोक्षो अयो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥ ७ ॥
आ त्वा नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः। त्वमस्यै वेद ओषधे ॥ ८ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः।

(इति द्वितीय काण्डम्।)

अर्थ– हे स्त्री! (पूर्णां अनुपदस्वतीं) पूर्ण और अटूट (मयस्त्वं नाव आरोह) तू सुख की इस नौकापर चढ़ और (तया उपप्रतारय) उससे उसके पास तैरकर आ कि (यः वरः प्रतिकाम्यः) जो वर तेरी कामना के योग्य है ॥५॥

हे बलपते! (वरं आक्रन्दय) अपने वर को बुला और (आ मनसं कृणु) अपने मनके अनुकूल वार्तालाप कर। (सर्वं प्रदक्षिणं कृणु) सब उसके दक्षिणी ओर कर कि (यः वरः प्रतिकाम्यः) जो वर तेरी कामना के योग्य है ॥६॥

(इदं गुल्गुलु हिरण्यं) यह उत्तम सुवर्ण है (अयं ओषः) यह अन्न है और (अयो भगः) यह धन है। (एते त्वां पतिकामाय वेत्तवे) ये तुझे पतिकी कामना के लिये और तेरे काम के लिये (पतिभ्यः अदुः) पतिको देते हैं ॥ ७ ॥

(सविता त्वा आ नयतु) सविता तुझे पहुंचावे। (यः प्रतिकाम्यः पतिः) जो कामना करने योग्य पति है वह (नयतु) तुझे ले जावे। हे ओषधे! (त्वं अस्यै वेत्थ) तू इसके लिये धारण कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—वह स्त्री पतिके कभी वियोग न करे और सुवर्णसे सेवित होती हुई सबकी प्रिय होवे ॥ ४ ॥

स्त्री इस गृहस्थाश्रम रूपी पूर्ण और अटूट नौका पर चढ़ कर अपने प्रिय पतिके साथ संसार रूप समुद्र पार करे ॥ ५ ॥

जो वर अपने मनके अनुकूल हो उसे घरके बुलाकर उसके साथ अपने मनके अनुकूल वार्तालाप करके उसके साथ सम्मान पूर्वक व्यवहार करे ॥ ६ ॥

यह उत्तम सुवर्ण है यह अन्न और धन है और यह धन है। यह सब पतिको देते हैं इसलिये कि तुझे पति प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

सविता तुझे मार्ग बताने तथा पति तेरी कामनाके अनुकूल चलता हुआ तुझे उत्तम मार्गसे ले चले। ओषधियोंसे तुझको तुष्टि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

वरकी योग्यता।

विवाहका कार्य अत्यंत महत्त्वका है इसलिये इसके संबंधके जो जो कर्तव्य हैं वे भी संयम आदरसे करना उचित है। विवाहके समय कन्यामें वर और वधू का सबसे प्रधान स्थान होता है। इसलिये इसके विषयमें इस सूक्तके आरंभ प्रथम देखेंगे। वरके विषय में इस सूक्तमें निम्नलिखित बातें कही हैं–

१ वेत्तवः ८ (वेत्+भवः) उत्तम प्रकार व्यवहार करनेवाला। (मं १) जो किसी विषयका उत्तम प्रतिपादन करता है। विशेष विद्वान्।

यह शब्द वरकी विद्वत्ता बता रहा है। वर विद्वान् हो व्यावहारिक ज्ञाता हो चतुर और कर्मण्य विद्वान् हो केवल विद्वत्ता वैसेसे पर्याप्त नहीं है कुटुंब पोषणके लिये आवश्यक धन कमानेवाला भी चाहिये इस विषयमें कहा है–

२ भगवान् वह कुमारी आयुष्मत्–धनके साथ आकर कन्याको प्राप्त करे (मं० १)। अर्थात् पहले धन कमावे और पश्चात्

कन्याको प्राप्त करे,विवाह करे। धन प्राप्त न होने की अवस्था में विवाह न करे क्योंकि विवाह होनेके पश्चात् कुटुंबका भरण पोषण उसके पोषण करनेकी योग्यता इसमें अवश्य होनी चाहिये।

३ पतिः वधूम्— पति अपनी धर्मपत्नीको धर्ममार्ग चलावे। धर्ममार्गसे चलाव परंतु साथ साथ स्व (पति कामना) पत्नीको मन कामनाके अनुकूल भी चल। इसका तात्पर्य यह है कि पति अपनी धर्मपत्नीके साथ अन्य अत्यन्त कभी व्यवहार न करे धर्मपत्नीपर प्रेम करे परंतु उसको सदैव धर्म मार्गपर चलानेका यत्न करे। (मं ८)

इस सूक्तमें इतना आदेश पतिके लिये दिये हैं। इससे पूर्व विवाह विषयक कई सूक्त आचुके हैं उनमें पतिके गुण कर्म बताये हैं, उनके साथ इस सूक्तके आदेशोंका विचार करना चाहिये।

वधूकी योग्यता।

वधूके विषयमें वधूके उपरांत इस सूक्तमें कहे हैं जो पारिवारिक जीवनमें रहनेवालोंको अवश्य मनन करना योग्य है। देखिये—

१ कुमारी— कुमार और कुमारी ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। पूर्ण ब्रह्मचर्य स्थिर होनेका भाव सूचित करनेवाले ये शब्द हैं। तरुण जी पुरुषोंमें जो विकारी भाव मनके अंदर उत्पन्न होता है वह विवाहके समयें उत्पन्न नहीं हुआ, उसको कुमार कहते हैं। यह शब्द अखंड स्थिर ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले का द्योतक है। जब तक मनमें कुमार भाव रहता है, तबतक वीर्यपात उत्पन्न होता ही नहीं। इस प्रथम मंत्रमें "कुमारी" शब्द आया है, जो कन्याका बोध कराता है। कन्या [illegible] हो कि जो कुमारी हो अर्थात् पुरुष विषयक काम विकार संबंधी चंचलभाव जिसके मनमें किंचित् भी उत्पन्न न हुए हों। यहां विवाह के लिये योग्य कुमारी का वर्णन किया है। जिसके शरीरके अंदर उत्पन्न होनेवाले दोष जिस कन्यामें उत्पन्न न हुए हों उसका बोध होता है। इससे कोई आचार्य विवाह करने की पद्धति बताई जाती है ऐसा न मानना चाहिये क्योंकि इससे पूर्व बताया ही है कि पतिकी इच्छा करनेवाली कन्या विधवा है। [देखो मं २ सू ३] इसलिये इस सूक्तसे कोई आचार्य विवाह करने की संभावना नहीं है। इस कारण यहांपर "कुमारी" शब्द देकर कन्याका बोध कराया है कि वर को ही पतिकी इच्छा तो करती हो परंतु मनके चंचल विकारोंसे पूर्णतया अलिप्त हो। पाठक इससे समझेंगे कि वरमें स्वयंवर कन्यामाताकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये और विवाहके पूर्व उसके मन कैसे पवित्र रहने चाहिये। (मं १)

२ सुमतिः— कन्या उत्तम मतिवाली हो उत्तम बुद्धिवाली हो। जिसके विचार सुविचार हुए हैं ऐसी पवित्र मति धारण करनेवाली कन्या हो। (मं १)

३ सुमनस्तु पेशु सुदृशा वसुः—उत्तम मनवाली और पुरुषमें उत्पन्न करने योग्य और सुंदर कन्या हो। मनको विकार मनन रखनेवाले विषय भावना मनमें न रखनेवाले जो भिन्न लक्षण होते हैं उनसे आकर विवाहका मनन करनेवाली और अपने स्वरूपके द्वारा मनोहर ऐसी परिशुद्ध विचारवाली कन्या हो। भेदोंमें आये हुए "(पेशु सुदृशा) इतना कहने आशय कन्याका धार्मिक दृष्टिसे परिशुद्ध धारित होता है। कन्या ऐसी हो कि जिसका आचरण उत्तम वाणी मनसे कभी दूषित नहीं हुआ है। शुद्ध आचारवान् हो और साथ साथ मनोरम तथा दर्शनीय भी हो। कन्याएं ऐसी बनें इस प्रकारकी शिक्षा उनमें मिलनी चाहिये। (मं १)

[illegible] विवाह कन्याके पुत्राचारके विषयमें बहुत आदेश है। यह हरएक गृहिक धर्मोंको उत्तम मनमें धारण करने चाहिये है। कुमार और कुमारिकाओंको पवित्रता रखकर उनको विवाह संबंधसे जोड़ना बहुत अनिष्ट है। इसलिये विवाह के पूर्व कुमार और कुमारिकाओंका [illegible] प्रकारका मेल करना अर्थात् नहीं है कि जो अनादिके मार्गमें उनको ले जानेको कल्पना तक उत्पन्न हो। पाठक इसपर कुछ समझ लें।

विवाहके पश्चात्।

विवाह होनेके पश्चात् दंपतीका परस्पर व्यवहार कैसा हो इस विषयमें [illegible] सूक्तमें आदेश उत्तम उपदेश दिये हैं—

अमनस्या सुदृशा देवी पत्या अविद्वेषकृण्वती
सस्त्रिया वसुः ॥ (मं ७)

" ऐश्वर्य को प्राप्त हुई वह श्री पतिसे विरोध न करती हुई, पतिको अत्यंत प्रिय हो " विवाह होनेके पश्चात् श्री अधिक ऐश्वर्य में आती है, इसलिए यह मंत्र सूचित करता है, कि विशेष मान्य और ऐश्वर्य में पहुंचने के कारण वह स्त्री उन्मत्त न हो परंतु पतिके साथ प्रेमसे रहे और पतिसे कभी विरोध न करे। घमंडमें आकर पतिका अपमान कभी न करे, परंतु ऐसा आचरण करे कि जिससे दोनोंका प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता जाय। तथा—

सम प्रदक्षिणं क्रमतु यो वरः पतिकामस्ते। (म ६)

' जो वरना है वह पतिको प्रदक्षिणा करके कर जो वर तेरी कामना करता है। ' प्रदक्षिण करनेका आशय है सम्मान करना आदर प्रदर्शित करना सत्कार करना। पतिका सत्कार करते हुए ही करना चाहिये। पत्नी का ' प्रति काम " पति ही होता है। अपने मनके अंदर जो (काम) इच्छा होती है उसका जो बाह्य स्वरूप होता है उसको " प्रति काम करते हैं। अन्य रूप होता है और लोकमें जो दिखाई पड़ता है उसको प्रतिकृति कहते हैं उसकी दूसरी प्रति करण का नाम प्रति लिंग है। इसी प्रकार अंक मनके अंदर के कामका प्रति काम पति है। पत्नी अपने पतिको अपना ' प्रतिकाम " समझ और उसका सत्कार करके हरएक कर्तव्य कर। तथा—

पत्या जायेव शोभायमानः। (म ३)

" पतिसे इसको शोभा प्राप्त हो। स्त्री को शोभा पति से ही है। पतिविरहित स्त्री शोभा रहित होती है। यह भाव मनमें रखकर धर्मपत्नी बनने उससे कि अपनी संपूर्ण शोभा पतिके आश्रय ही है और उस आश्रय मनसे पतिका सदा सत्कार करे। तथा—

पतिं गत्वा सुमना विराजतु॥
पुत्रान् सुवाना मेहिही भगायति। (मं ३)

वह स्त्री पतिसे प्राप्त करके ऐश्वर्यसे विराजती रहे और उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई घरमें रानी बने। ' यहां पतिसे प्राप्त करके पतिके साथ रहना पतिके ऐश्वर्यमें अपने आपको ऐश्वर्यवती समझना, पुत्रोंको उत्पन्न करना और घरमें स्वामिनी बनना स्त्रीका कर्तव्य बताया है। कई भिक्षित स्त्रियां संतान उत्पन्न करनेके अपने कर्तव्यसे पराङ्मुख होती हैं। यह योग्य नहीं है। स्त्रीकी शरीर रचना ही इस कर्तव्यकी सूचना देती है और यही बात इस मंत्र द्वारा बताई है। सुसंस्कृत उत्तम संतान उत्पन्न करना विवाहित स्त्रीका कर्तव्य ही है। यह बात ध्यानमें रखकर उत्तम संतति निर्माण करने योग्य अपना कौटुम्बिक्य रखनेमें स्त्रियां प्रथमसे ही दक्षचित्त हो। जो स्त्रियां पहलेसे अपने स्वास्थ्यका विचार नहीं करती वे आगे संतानोत्पत्ति करनेमें असमर्थ हो जाती हैं। इसलिये स्त्रियोंके स्वास्थ्यका विचार प्रारंभसे ही करना योग्य है।

ऐश्वर्य की नौका।

प्रथम मन्त्रमें गृहस्थाश्रमका ऐश्वर्यकी नौका की उपमा दी है। यह उपमा बड़ी योग्यतर है। देखिये

पूषा अनुपं दृशतां भगस्य वासं आरोह।
यः पतिकाम्यः पत्या तनूं वासं उपोदतम॥(मं ५)

" इस प्रकारसे परिपूर्ण और कभी न डूबनेवाली ऐश्वर्यकी नौका यह है, उसपर चढ़ और जो तेरा पति है उसको इस नौका के आश्रयसे परतीर पर ले जा।" यह गृहस्थाश्रम रूपी नौका है जिसपर पति पत्नी वस्तुतः इकट्ठी ही सवार होती हैं; परंतु स्त्री चरमी जवाबदारी होनेके कारण इस स्त्री को ही नौका चलानेवाली इस मंत्रमें कहा है। यह नौका बड़ा भारी सम्मान देनेके लिये है और साथ साथ कीमत हाथमें बड़ा भारी अधिकार भी दिया है। वास्तविक पर पतिपत्नी दो हैं इसलिये पर पर नहीं है। इसी प्रकार जोड़े हमेशा ही गृहस्थाश्रम होता है और आगे न होनेसे गृहस्थाश्रम नहीं रहता। इसलिए गृहस्थाश्रममें जोड़ा महत्त्व विशेष ही है। इस हेतुसे इस मंत्रमें जोड़े जोड़नेको कहा है कि इस गृहस्थाश्रम रूपी नौकापर जो पति और इस नौका को ऐसे ढंगसे चलावे कि वह अपने गंतव्यके स्थानपर ठीकसे पहुंचे और मार्गमें कहीं भङ्ग न हो। इसी प्रकार जोड़े अधिकार के विषयमें निम्न लिखित मंत्र भाग देखने योग्य है—

भवपत्ये । वर आकन्दय । आमनस कृणु । (मं ६)

हे गृहस्थाश्रमके संपूर्ण सुखके स्वामिनि ! अपने पतिको बुलाकर उसको अपने मनके अनुकूल कर । वह अधिकार है गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना । यह स्त्री गृहस्थाश्रम के संपूर्ण ऐश्वर्य की स्वामिनी है और यदि पति हीन मार्गपर चलने लगे तो उसको सन्मार्गपर लानेका उसको अधिकार ही है। स्त्रियोंको यह अपना अधिकार जानना चाहिए और इस अधिकारके चलानेकी व्यवस्था अपने अंदर लानेका प्रयत्न भी उनको करना चाहिए ।

पुरुषका स्थान ।

जब स्त्रीको गृहस्थाश्रम में इतना अधिकार प्राप्त हुआ है तब पुरुषका स्थान गृहस्थाश्रममें कहां है इसका भी विचार करना यहां प्राप्त है देखकर यह स्थान—

यः प्रतिकाम्यः पतिः भवतु । (मं ८)

कामनाके अनुकूल पति है वह चलावे अर्थात् गृहस्थाश्रम का रथ चलावे । स्त्रीको सन्मार्गपर चलावे, गृहस्थाश्रममें यदि कुछ त्रुटियां रहीं तो उनको ठीक करे गृहव्यवस्थामें दोषयुक्त रहने न दे । वह पुरुष गृहस्थाश्रममें रहता हुआ—

इषिता ते मा चरतु (मं ८)

यह पति तुझसे इच्छित होकर आवे ।' यह पति घर में सूर्य के समान है। जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रभा से प्रकाशक है उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रमका सूर्यवत् संपूर्ण गृहस्थाश्रमका चालक है । यह पत्नीको साथ लेकर संपूर्ण गृहस्थाश्रम को चलावे । यहां पाठक स्मरण रखें कि गृहस्थाश्रम का चलाना तो केवल पतिसे नहीं हो सकता और ना ही केवल स्त्रीसे हो सकता है; दोनोंके द्वारा वस्तुतः यह गृहस्थाश्रम चलाया जाता है । इसीलिए इस सूक्तमें स्त्रीको भी कहा है कि वह गृहस्थाश्रम चलावे और पुरुषको भी वैसाही कहा है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि दोनों मिलकर परस्परों के विचार से गृहस्थाश्रम चलावे । दोनोंको समान अधिकार होनेसे दोनोंको समान आज्ञा द्वारा कहा है । यह देखकर गृहस्थाश्रममें जो पुरुष अपने इन अधिकारों को जानकर विचारपूर्वक समानतया अपना अपनेका योग्य बनावें और आनंदसे इस संसार यात्रा को पूर्ण करें । यथा—

सोमो हि राजा सुषवां कृणोति । (मं ३)

सोम राजा इस स्त्री को पूर्ण पुष्ट करता है । यह पति घरमें राजाके समान है । पत्नीका महारानी इससे पूर्ण बनता है । जब पत्नी रानी है तब पति राजा होनेमें कोई संशय नहीं है । यह राजा रानी एक मतसे इस गृहस्थाश्रमका राज्य चलावें । परस्पर में विरोध न होने दें। एक दूसरेके सहायक बनकर प्रगति करते जावें ।

इस मंत्रमें पतिका स्थान गृहस्थाश्रममें निश्चित किया है। दोनोंको समान स्थान दिया गया है। इसका विचार करके दोनों अपने स्थानके योग्य व्यवहार करके आदर्श गृहस्थी बनें ।

पतिके लिए धन ।

स्त्रीको ओरस अथवा दत्तक पुत्र पतिका धन प्राप्त किया जाता है। इसके संबंधमें यह मंत्र बहुत स्पष्ट है

इह पुष्यतु हिरण्यं अयं भागः अयो अयः
पुत्र स्वा पतिभ्यः अधु ॥ (मं ७)

यह सुवर्ण सुपुष्ट हो । गौएं और धेनु हैं यह धन है यह धन पतिको दिया है। यहां धनके लिए पति शब्द प्रयुक्त हुआ है। जिसके संबंध से जैसे पतिका ही विशेष संबंध होना उचित है। यहां स्मरण रहे कि यद्यपि यह धन के बारे में कहा है तथापि यह धन पुरुषार्थसे कमाया नहीं होना चाहिए । इस विषयमें विशेष यह है—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अथर्ववेद द्वितीय काण्ड का।

थोडासा मनन।

गणविभाग।

अथर्ववेदके इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त ६ अनुवाक और २ ० मंत्र हैं। प्रथम काण्डमें ३५ सूक्त, ६ अनुवाक और १५३ मंत्र थे। अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इस द्वितीय काण्डमें ५४ मंत्र अधिक हैं। इसमें गणोंके विचारसे सूक्तोंके ऐसे विभाग होते हैं—

१ शांतिपक्ष— इस द्वितीय काण्डमें शान्तिपक्षके निम्न लिखित सूक्त हैं – १ ५–७, ११ १३, ये छः सूक्त शांति पक्षके हैं। इसमें ७ वाँ सूक्त मार्जनी शांति ११ वाँ सूक्त गार्हस्पत्य महाशांति और १४ वाँ सूक्त ब्रह्मसंशिति के प्रकरण बद्ध रहे हैं। अन्य सूक्त सामान्यतया ' महाशान्ति का विषय बताते हैं।

२ ब्रह्मसंवाद गण— सूक्त ८—१ ये तीन सूक्त इस पक्षके हैं।

३ आयुष्यपक्ष— सूक्त १५ १७ २८ ३३ ये सूक्त आयुष्य पक्षके हैं। इसमें ३३ वाँ सूक्त आयुष्यपक्षका होते हुए भी " पुरुषमेध प्रकरणमें समाविष्ट है। पाठक यहां इस सूक्तका विवरण देखकर पुरुषमेधके वास्तविक स्वरूपका भी विचार कर सकते हैं। ३३ वाँ सूक्त ' यक्ष्म नाशन अर्थात् रोगको दूर करनेका विषय बताता है। मनुष्यके संपूर्ण शरीरके अवयवों से सब प्रकारके रोग दूर करनेका विषय इस सूक्तमें है और इस कारण यह सूक्त पुरुषमेध ' प्रकरण के अन्दर आजाता है। जो लोग समझते हैं कि पुरुषमेध नरमेध आदि यज्ञोंमें मनुष्यादि प्राणियोंका वध होता है वे इस सूक्तके विचारसे जान सकते हैं कि मेधमें मनुष्यादि प्राणियोंके वधकी आवश्यकता नहीं है प्रत्युत पुरुषमेध प्रकरणमें मनुष्य के संपूर्ण रोग दूर करके उसके उत्तम आरोग्य वैभवका विचार प्रमुख स्थान रखता है। यदि पाठक यह बात इस सूक्तके विचार से जानेंगे तो उनको न केवल पुरुषमेध प्रकरण प्रत्युत पशुमेध आदि प्रकरण भी इसी प्रकार की आधिदैविक स्वास्थ्य रक्षाके प्रकरण होनेके विषयमें सन्देह नहीं रहेगा। पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका विचार करें।

३ अपराजित गण— २७ वाँ सूक्त अपराजित पक्षका है।

पाठक इन गणोंके इन सूक्तोंका विचार प्रथम काण्डके इन गणोंके सूक्तोंके साथ करें और एक विषयके सूक्तोंका साथ साथ विचार करके अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त करें।

विषय—विभाग।

द्वितीय काण्डमें प्रथम काण्डके समान ही बड़े महत्वपूर्ण विषय हैं। इसके विभाग निम्न लिखित प्रकार हैं–

१ अध्यात्मविद्या— इस द्वितीय काण्डमें अध्यात्मविद्याके साथ सम्बन्ध रखनेवाले आठ सूक्त हैं। प्रथम सूक्त में ' गुप्त अध्यात्मविद्या का अत्यंत उत्तम वर्णन है। द्वितीय काण्डके प्रारंभमें ही यह अत्यंत महत्वपूर्ण सूक्त आया है। पहले पहले जब अध्यात्मरूपमें मनन होता है और इसके मननसे जो आनन्द होता है, उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। यदि पाठक इसको कंठ करके प्रतिदिन ईश्वर उपासनाके समय इस का मननपूर्वक पाठ करेंगे तो पाठक भी इसके वैसाही आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। द्वितीय सूक्तमें एक पुरुषीय ईश्वर का पुरुषमान है। यह विषय भी आत्मज्ञानके साथ ही सम्बन्ध रखनेवाला है। १६ वें सूक्तमें विद्वान्सरकी माँगे " करनेकी सूचना है। इस अपेक्षसे ही आध्यात्मिक उन्नति होती है। इसके अतिरिक्त क्रमशः निम्नलिखित सूक्त इस अध्यात्मप्रकरण के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

सूक्त	विषय
११ वाँ सूक्त	आत्माके गुण
१२ ,	मन का बल बढ़ाना
१३ १४ ,	आत्मसंरक्षण का बल
१४	मुक्तिका सीधा मार्ग
१५	निर्भय जीवन
१६ ,	मद्यमें आत्मसमर्पण।

ये सात सूक्त और पूर्वोक्त तीन सूक्त मिलकर दस सूक्त अध्यात्म विषयक इस द्वितीय काण्ड में आये हैं। अन्य काण्डकी अपेक्षा यह विषय इस काण्डमें सुव्यवस्था विशेष प्रतिपादन किया है। पाठक इसलिये इन दस सूक्तोंका अच्छा मनन करें और उचित बोध प्राप्त करें। अथर्ववेदका यही मुख्य विषय है इसलिये पाठक इस विषयकी ओर उदासीनतासे न देखें।

सू १२ 'मानसिक बल बढ़ाना" और सू १५ "निर्भय जीवन" ये दो सूक्त अध्यात्म विषयके अतिरिक्त स्वतंत्र महत्त्व रखते हैं और आरोग्य विषयके साथ भी सबन्ध रखते हैं तथापि इनका विशेष सबन्ध अध्यात्मविषयके साथ होनेसे ये यहां दिये हैं।

२ आरोग्य और स्वास्थ्य— द्वितीय काण्डका तीसरा सूक्त आरोग्य विषय का प्रतिपादन करता है। इसके साथ—

सूक्त ४	अग्निद मणि से आरोग्य,
, ८	क्षेत्रियरोग दूर करना,
, ९	वनस्पतियाँ ,
, २५	पृश्निपर्णीसे आरोग्य
३२	वरुण नाशन
३१ ३२	रोगोत्पादक किल्बिषोंका दूर करना।

आरोग्य और स्वास्थ्य से संबन्ध रखनेवाले इतने सूक्त इस द्वितीय काण्डमें हैं। पाठक इन सूक्तोंका इकट्ठा विचार करेंगे तो इनसे आरोग्य और स्वास्थ्यके साथ साथ वेदकी भेषजविद्या का भी पता अच्छा लग सकता है। चतुर्थ सूक्तमें अग्निद मणि धारणसे आरोग्य आदि होनेका अनुभव बताया कहा है। यह अथर्ववेदकी विशेष विद्या है। जो वैद्य इस विषयकी खोज करना चाहें वे अथर्ववेदमें इसी प्रकारके कई विषय देखेंगे। कई लोग मणि वनस्पति आदि इन सूक्तोंके अन्य अर्थ करना चाहते हैं! यह प्रयत्न उनका अज्ञानका प्रकाशक है। वेदके विषयका ऐसा विपर्यास करना किसीको भी उचित नहीं है। "मणि धारण विधि" यह प्राचीन परंपरा है इसलिये पाठक इसकी खोज प्रेमके साथ करें। विशेष कर अग्निद मणि यदि इसकी खोज करेंगे तो चिकित्साका एक नया मार्ग निकाल सकते हैं।

३ दीर्घायुष्य प्राप्ति— पूर्वोक्त विषयके साथ ही यह विषय संबंधित है। चिकित्साका अथवा वैद्यशास्त्रका नाम "आयुर्वेद" है। इसमें भी वैद्य शास्त्र का सर्वस्व दीर्घ आयुष्य के साथ जितना है यह बात पाठक जान सकते हैं। इस विषयके सूक्त इस काण्डमें निम्न लिखित हैं—

सूक्त २८	दीर्घायुष्य
२९	दीर्घायु, पुष्टि और सुप्रजा।

ये दो सूक्त इस विषयमें इकट्ठे पढ़ने योग्य हैं।

७ पुष्टि— पूर्वोक्त १९ वें सूक्तमें पुष्टिका वर्णन है। इस पुष्टिके साथ २६ वाँ 'गोरक्ष' का वर्णन करनेवाला सूक्त बडा संबंध रखता है। गोरक्षसे ही मनुष्योंकी पुष्टि होती है।

८ विवाह— पूर्वोक्त २९ वें सूक्तमें सुप्रजाका वर्णन है विवाहसे ही सुप्रजा निर्माण होना संभव है। इस विवाह विषयका उपदेश करनेवाले तीन सूक्त इस काण्डमें हैं—

सूक्त	३	पति और पत्नीका मेल
,	१६	विवाहका मंगल कार्य,
,	१३	प्रथम वस्त्र परिधान।

इनमें सू. १३ 'प्रथम वस्त्र परिधान' का वर्णन करनेवाला सूक्त विवाहित स्त्री पुरुषोंका कर्तव्य बताता है। इसलिये इस तीन सूक्तोंका विचार इकट्ठा करना योग्य है।

९ वर्मवर्म— वर्मवर्म का वर्णन करनेवाले तीन सूक्त इस काण्डमें है

सूक्त	१	ब्राह्मण वर्मका वर्णन
,	५	क्षत्रिय वर्मका वर्णन

इनके साथ संबंध रखनेवाले निम्नलिखित चार सूक्त हैं इस कारण इनका विचार इकट्ठा ही होना योग्य है—

सूक्त	२०	विजय की प्राप्ति
,	२१	शत्रुओंकी अवज्ञना,
,	१४	विपत्तियोंसे हटाना
	१	दुर्गतिसे बचना।

ये चार सूक्त क्षत्रिय वर्मके साथ संबंध रखनेवाले हैं और ब्राह्मण वर्मसे संबंध रखनेवाले सूक्त निम्नलिखित छः हैं

सूक्त	७ शापको ओज देना
	१९-२३ छुरिकाकी स्तुति

इस प्रकार इन सूक्तोंका विषयानुसार विभाग है। जो पाठक वेदका अभ्यास मननपूर्वक करनेके इच्छुक हैं वे इस प्रकार सूक्तोंका विषयानुरूप विभाग देखकर एक एक विषयके सूक्त साथ साथ मनन करते जावेंगे तो वेदके मर्मको अधिक शीघ्र जाननेमें समर्थ होवे।

विशेष द्रष्टव्य।

निर्भय जीवन।

विषयके महत्त्व को देखते इस द्वितीय काण्डमें कई ऐसे विषय हैं कि जिनकी ओर पाठकोंका ध्यान विशेष रीतिसे खींचना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकारका विषय सूक्त १२ में 'निर्भय जीवन' वर्णन किया है वह पाठकोंको अवश्य बारबार मनन पूर्वक पढें।

मनुष्य मृत्यु से जितना भय खाता है उतना और किसीसे भय खाता हुआ नहीं दीखता। अर्थात् भय और आनंद कदापि इकट्ठे नहीं रह सकते। मनुष्य तो आनंद प्राप्तिके लिए अथक परिश्रम करनेवाला प्राणी है इसलिए उसके अपने अंतरकी भयकी भावना दूर करना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा वह आनंद का मार्ग कदापि नहीं ढूंढ सकता। इस मंत्रमें सूक्तमें कहा है कि 'निर्भय होनेके कारण सूर्य क्षीण नहीं होता' इसका अर्थ यह है कि जो कोई निर्भय होकर अपना कर्तव्य पालन करेगा वह भी कदापि क्षीण अशक्त अथवा दुर्बल नहीं होगा इतना ही नहीं परंतु चढता जावेगा। परंतु यह पुष्टि मन की शांतिरूप आत्मिक सुख प्रकारके निर्भयतापर अवलंबित है। निर्भयता के बिना मनुष्यकी उन्नति किसी रीतिसे भी नहीं हो सकती। चार वर्णोंके कर्तव्य चार आश्रमोंके अथवा अन्य जो भी कर्तव्य मनुष्यको करने होते हैं वे ठीक प्रकार करनेके लिए अवश्य प्रथम निर्भयता की आवश्यकता है। पाठक इस गुणका इतना महत्त्व जानकर इस गुणको अपने अंदर बढावें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

जो पाठक निर्भयता का संचय मानसी उन्नतिके साथ देखते अथवा अनुभव कर सकते हैं वही इस सूक्त का गंभीर अर्थ जान सकते हैं।

शुन्धि करण ।

इसी प्रकार शुद्धिकरण विधि का अर्थात महत्व है। सूक्त १९ से २१ तक के पांच सूक्त इस एकही विषयका प्रतिपादन कर रहे हैं। इनमें उपदेश देनेका ढंगही और है अन्योक्ति अलंकार से अपूर्व शब्द कहां पाठक देख सकते हैं। यदि उनमें से अग्नि वायु सूर्य चन्द्र और आप ' ये पांच देवताएं कितना महत्व रखती हैं इसका साक्षी इन सूक्तोंके मननसे मिल सकती है। वेदका उपदेश जिस समय होता है उस समय सूर्य चन्द्र आदि इन सब वहीं रहते थे कीलित और आमंत्रण करके उपदेशका अमृत देते हैं।

साक्षात देवताओंके अवतार अपने शरीरमें कहां और कैसे हैं और इनका साक्षात्कार तथा अपनी उन्नतिसे इनका संबंध है इस बातका ज्ञान जिसका हुआ है, वही इन पांच सूक्तोंका ठीक प्रकार उपयोग कर सकते हैं। अन्य लोग उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि वेदका ज्ञानामृत पान करनेके पूर्व उक्त बात ठीक प्रकार उपयोगमें आना अत्यंत आवश्यक है। इन सूक्तोंके स्पष्टीकरणमें हम अपूर्व परिक पद्धतिको योजना आविष्कार किया है। जो पाठक मननपूर्वक इन सूक्तोंका अध्ययन करेंगे वे इस पद्धतिसे समझ सकते हैं।

मुक्तिका सीधा मार्ग ।

द्वितीय कांडके ३४ वें सूक्तमें इस मुक्तिके सीधे और सरल मार्गका उपदेश हुआ है। मुक्तिका मार्ग बतानेवाले अन्य ग्रंथों में अनेक हैं परंतु जो बात अन्य ग्रंथों में कहीं भी नहीं कही है वह अपूर्व बात इस सूक्तमें कही है और इसी लिये इस सूक्त का महत्व अनंत है।

दीन और दुःखी मनुष्योंकी सेवा करके उनके कष्टोंको दूर करना यह एक मात्र उत्तम मार्ग है जो सेवा मनुष्य को मुक्ति धाम तक ले जाता है। परमेश्वर जैसा सभी जड़ और सभी मनुष्यों के अंतःकरणों में रहता है उसी प्रकार दीन दुःखी और अनाथ मनुष्योंके हृदयों में भी रहता है। परंतु पूर्वोक्त तीनों लोग समर्थ होनेके कारण वे दूसरोंसे सेवा अपने अधिकारसे ही ले सकते हैं। परंतु जो दीन और अनाथ रहते हैं उनको कुछ दीन दान कर सकता है। वे तो दुःखमय जीवन ही रहते हैं। दीन मनुष्यों को अपने परिवारमें देखता है वहीं वहीं जो दीन मनुष्योंको अपना ही समझता है और अपना सुख देखनेके समान जाने जो दीनोंको सुखी करनेका विचार करता है और तदनुकूल आचरण करता है वही मुक्तिके सीधे मार्ग पर है। जो दीन और दुःखी मनुष्योंको अपना समझता है वही महात्मा है और परमात्मा वहीं रहता है। किसी दीन मनुष्यको दुःखी देखकर जो हृदय अनुभव कर नहीं सकता परंतु जिसका आत्मा तड़फड़ाता रहता है वही मुक्तिका अधिकारी है। विशेषतः, दीन और दुःखी मनुष्योंकी रक्षा करनेके लिए ही श्रेष्ठ पुरुषोंने आत्मार्पण किया और उसी कारण वे पूज्य बने हैं।

इस प्रकार स्वयं ब्रम्होद्वारा मुक्तिका सीधा मार्ग बतानेका वेद का ही अधिकार है। पाठक यहां वेदके अपूर्वत्व देखें और इस सीधे मार्ग पर चलते हुए मुक्तिका परम आनंद प्राप्त करें।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अथर्ववेद का सुबोध भाष्य।

द्वितीय काण्ड की विषय सूची।

सबका पिता	१
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य	
द्वितीय काण्ड	३
ऋषि-देवता-छन्द सूची	
ऋषिक्रमसे सूक्त	६
देवताक्रमसे सूक्त	
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य	
द्वितीय काण्ड	
१ गुह्य-अध्यात्म-विद्या	७
गूढविद्या	८
गूढविद्याका अधिकारी	९
पूर्व दशा (प्रथम अवस्था)	
द्वितीय अवस्था	१
तृतीय अवस्था	,,
पूर्णावस्था	११
सूक्तका	१२
अमृतका धाम	
गुहा	
चारभाग	१३
एकरूप	
अनुभवका सूक्त	१४
अमृतका दाता और दाता	१५
एकके अनेक नाम	
वह एकही है	,,
इसीका अमृतधाम	१६
१ एक पूजनीय ईश्वर	१७
गर्भ और अण्डा	१८
महान् गन्धर्व	१९
उसकी साक्षात उपासना	२
कामरूपत्व	२१
	१९
ब्राह्म उपासना का फल	२१
अपने अन्दरकी जीवनशक्ति	
प्राण का प्राण	२२
ऐसा क्यों कहा है ?	
विरोधाभास	२३
व्यवहारकी बात	
अन्तरिक्ष का सूक्ष्म-प्राण	
स्थूलसे सूक्ष्मका ज्ञान	२४
प्रकाशसे अप्रकाश	,,
प्राणों का आना और जाना	२५
प्राणों का पति	,,
ब्रह्माण्ड देह	२६
सारांश—	,,
२ भारोग्यसूक्त	२७
औषधि	२८
शब्दों का प्रयोग	
४ अक्षित मणि	२९
क्षत और अक्षित	३
अक्षित मणि के काम	३१
मणिधारण	३२
मणिका संस्कार	३३
खोजकी दिशा—	३४
अक्षित मणिके दीर्घायुत्व	,,
बड़ा रत्न	,,
बलवर्धक	३५
बल और विजय	
दृषद	,,
अग्नि	३६
५ क्षत्रिय का धर्म	३७
क्षत्रिय के गुण	३८

क्षत्रिय के कर्तव्य– १९
शस्त्रवासन ४
प्रजासे सन्मान भोग
क्षोभ और मद
जीवन संग्राम ४१
९ ब्राह्मणधर्म का आदेश ४२
क्षत्रिका स्वरूप ४३
दीर्घायुष्य ज्ञान यज्ञ ४४
यज्ञका वर्णन
वेदका प्रकाश ऐश्वर्य
स्वपत्नियों की उन्नति ,
अपने घरमें जागना उत्साह पुरुषार्थ ४५
मित्रभाव चित्तवृत्तियोंका सुधार »
ब्रह्मोदिनकर्तव्य
घरवियोंसे अग्नि ४६
७ शापको छोटा देना ४७
शापका स्वरूप ४८
वृत्तोंका उपयोग
मनोविकारोंसे हानि
शापको वापस करना ४९
योग्य मित्र ५
दुष्ट हरण
८ क्षेत्रिय रोग दूर करना ५१
क्षेत्रिय रोग हो औषधियां ५२
९ सन्धिघातको दूर करना ५३
संधिघात ५४
दृढवृक्ष »
उत्तम वैद्य ५५
प्रवीणताकी प्राप्ति »
१० युगतिस पापमोचका उपाय ५६
दुर्घनिका स्वरूप ५७
एक मात्र उपाय ज्ञानका यज्ञ
उद्धतिका मार्ग ६
अहंकारकी मात्रा– »
स्वकोष प्रबल
मार्गदर्शक यज्ञ ६१
मनको धीरज देना ६१
११ आत्माके गुण ६२
शरीरमें आत्माका कार्य ६३
मेधः प्राप्ति उन्नतिका मार्ग ६४
१२ मनका बल बढाना ६५
मानस शक्तिका विकास ६६
त्यागभाव दुःखक्षय ज्ञान ६
औषधियां, वनस्पतिभेद
वनस्पति और महादेव ६८
सद्भाव
वाद प्रथी संवनका मार्ग ६९
मनोवृत्ति दिशा »
निर्भयत्वापेक्षाकुमार
आत्मबलसे एकके दुःखसे दूसरा दुःखी
ज्ञानके विरोधी »
वायुमंडलिक संस्कार ७
ईशप्रार्थना ७
१३ प्रथम वस्त्र परिधान ७
पुत्रके लिये वस्त्र ७४
घरमें वस्त्र पुत्रनेका प्रयोजन ७
स्वस्ति निवासके प्रकार
अन्न पुष्टि दीर्घायु
सुदृढ शरीर ८
१४ विपत्तियोंको हटानेका उपाय
विपत्तियोंका स्वरूप ७८
दीनभेद अल्पबुद्धि और दुष्टबुद्धि ९
जीवनमें विपत्तिका उदय ८
राजा का कर्तव्य जीवनयुद्ध »
१५ निर्भय जीवन ८१
निर्भयताके असाधन
अन्न यज्ञ »
सत्य और अनृत भूत-और भविष्य ८२
१६ विश्वमरुतकी भक्ति ८३
वैश्वानर »
एक उपास्य देवों द्वारा रक्षा ८४
१७, १८ आत्मसंरक्षण का यत्न ८५ ५

बकरी पालना ८५
स्नान विधि ८६
१९-२३ शुद्धिकी विधि ८७
पांच देव पंचायतन ८९
पांच देवोंकी पांच शक्तियां ,
मनुष्यकी शुद्धि पंचायतन ९
शुद्धिकी रीति ९१
होम करना ९२
२४ ऋत्विजोंकी सफलता ९३
गृह होम ९४
२५ पूर्णिमासी
रुद्र होम ९५
रोगका परिणाम,उत्पत्तिस्थान बचावका उपाय ९६
२६ गोरस ९८
पशुपालना
भ्रमण और वापस आना ९९
दूध और पोषक रस १ ४
२७ विजय—प्राप्ति १ १
विजय के होम वाली चार प्रतिज्ञायें १ २
पुरुष विजय १ ३
राजा चोरकी
शक्ति के साथ एकमत्व
धर्मिष्ठोंका निषेध १ ४
अधिकारिक ,
२८ दीर्घायुष्य प्राप्ति १ ५
दीर्घ आयुष्य की मर्यादा सौवर्ष १ ६
कायकल्प रस १ ७
इन्द्रियशक्ति १ ८
रोगचिकित्सारस
पारसे रसायन भोग और पराक्रम ,
इन्द्रोंकी महायज्ञता १ ९
२९ दीर्घायु, पुष्टि और सुप्रजा ११
रस और बल ११२
शतायु ,
अन्न बल धन सुसन्तान और यश ११३
इन्द्रपदकी तृप्ति ११४
स्तवन ११५
३ पति और पत्नीका मेल ११६
अधिनी देव ११७
विवाहका समय
निष्फल सगाई ११८
आदर्श पतिपत्नी,
प्रेमपूर्वक स्नान ११९
मीठे वाक्य वर्ताव
३१ रोगोत्पादक क्रिमि १२
क्रिमियोंकी उत्पत्ति १२१
क्रिमियोंको दूर करनेका उपाय
३२ क्रिमिनाशन १२२
सूर्य किरणका प्रभाव १२३
क्रिमियों के लक्षण
रोगचिकित्सारस की विद्या विस्तरसार
३३ यक्ष्मनाशन १२४
उपसंहार—विवरण १२५
३४ मुक्तिका सीधा मार्ग
ग्रामका आवास ,
पशुपति रुद्र १२६
जीवशक्ति १२७
योगीका मरण १२८
मुक्तिका मार्ग
विकल्पसे एकरूपता १२९
पशु
१३१

अग्निके कर्तव्य–	१९	मनको वीरत्व देना
६ मन्यवस्थान	४	११ आत्माके गुण
प्रजासे सम्मान भोग		शरीरमें आत्माका कार्य
सोम और मद्य		अपः प्राप्ति उत्तमिका मार्ग
जीवन उपाय	४१	१२ मनका बल बढाना
६ ब्राह्मणधर्म का आदेश	४२	मानस शक्तिका विकास
अग्निका स्वरूप	४३	स्वाभाविक सुखमय ज्ञान
दीर्घायुष्य ज्ञान उपाय	४४	जीवितदाता, ज्ञानदेव
तपका कर्तव्य		अमृतलोक और महालोक
तपका प्रकार देवकर्म		उपसद्याग
स्वपक्षियों की उन्नति	,,	बाह्य शत्रु संहारका मार्ग
अपने घरमें आगका उत्साह पुरुषार्थ	४५	मरनेकी विद्या
निजभाव विपक्षियोंका सुधार		विर्मन्यवादिकुमार
अग्नेयोतिरवकार		आत्मबलसे पुत्रसे दूसरा ५ वी
अरातियोंसे अग्नि	४६	ज्ञानके विरोधी
७ शापको छोड देना	४७	आयुर्वेदिक संस्कार
शापका स्वरूप	४८	ईशआराधना
दूतोंका उपयोग		१३ प्रथम वस्त्र परिधान
अग्नेयिकारोंसे हानि		पुत्रके लिये वस्त्र
शापको वापस करना	४९	वस्त्रों वस्त्र बुननेका प्रयोजन
सोम मित्र	५	स्वस्ति विवाहसे वस्त्र
दूर हटना		बल पुष्टि दीर्घायु
८ शरीरिय रोग दूर करना	५१	सुदृढ शरीर
शैलिक रोग दो औषधियां	५२	१४ विपत्तियोंको हटानेका उपाय
९ सन्निपातको दूर करना	५३	विपत्तियोंका स्वरूप
सन्निपात	५४	जीवभेद आत्मबुद्धि और परबुद्धि
हृदयशूल	,,	बीचमें विपत्तिका उपाय
उत्तम वैद्य	५५	राजा का कर्तव्य जीवनपुर
प्रतीकवाही आप्ति		१५ निर्भय जीवन
१० दुर्गतिसे पचनेका उपाय	५६	निर्मन्यवादि अमरपुत्र
दुर्गतिका स्वरूप	५७	मद्य मांस
एक मात्र उपाय ज्ञानका चक्र	५८	उक्त और अनुक्त भूत-और भविष्य
उत्तमिका मार्ग	६	१६ विश्वभरकी भक्ति
बकडाकी भाषा–	,,	देवावार
स्वकीय प्रयास		एक उपास्य देवों द्वारा रक्षा
प्रार्थनाका चक्र	६१	१७, १८ आत्मसंरक्षण का फल

वलकी उत्पत्ति ८५
रक्षाका विधि ८६
१९-२३ मुक्तिकी विधि ८७
पांच देव पंचायतन ८९
पांच देवोंकी पांच मूर्तियां
मनुष्यकी मुक्ति पंचायतन ९
मुक्तिकी रीति ९१
हवन करना ९२
२४ डाकुओंकी भस्मकरता ९३
तुह लोग ९४
२५ पृश्निपर्णी
रक्त दोष ९५
रोगका कारण उत्पत्तिस्थान बचावका उपाय ९६
२६ गोरस ९८
पशुपालना ९९
अमल और वायस जाया
दूध और पोषक रस १ ०
२७ विजय—प्राप्ति १ १
विजय के मूल बाधी और प्रतिबाधी १ २
युद्धमें विजय १ ३
पाप बोधनी
शक्ति के साथ वक्तृत्व १ ४
अभिदासन का निषेध
अक्षौहिणीरक्षक
२८ दीर्घायुष्य प्राप्ति १ ५
दीर्घ आयुष्य की मर्यादा साधन १ ६
कायक्षय वध १
इसकार्षणा १ ८
दैवपरिक्षयवध
पापसे बचाव क्षोभ और पराजय १ ९
देवोंकी महायता
२९ दीर्घायु, पुष्टि और सुप्रजा ११
रस और बल ११२
सवायु
अन्न बल धन सुसन्तान और यश ११३
हृदयकी तृप्ति ११४
स्वधा ११५
३ पति और पत्नीका मन्त्र ११६
अग्निकी स्तुति ११७
विवाहका समय
विष्कपट बताव ११८
आदर्श पतिपत्नी
अन्नका स्थान ११९
चीक्ष्य नाम बताव
३१ रोगोत्पादक क्रिमि १२
क्रिमियोंकी उत्पत्ति १२१
क्रिमियोंको दूर करनेका उपाय
३२ क्रिमिनाशन १२२
मूर्ख किसका प्रभाव १२३
क्रिमियों के लक्षण
रोगबीजनाश की विधा विषन्यास
३३ यक्ष्मनाशन १२४
वशवय—विवशय १२५
३४ मुक्तिका सीधा मार्ग ,
प्राणका आयाम १२६
पशुपति कल्प १४०
बीजशक्ति १२८
योगीका मन्त्र
मुक्तिका मार्ग १२९
विश्वरूपमें एकरूपता
वसु १३१

१५ यज्ञमें आत्मसमर्पण	१११	पेन्शनकी मौका	११७
अपात्रकोंकी निन्दा	११२	पुण्यका लाभ	११८
पात्रकोंकी प्रशंसा	११३	पतिके लिये धन	
अतिथियोंकी अवज्ञा		अथर्ववेद द्वितीय काण्डका थोडासा मनन	१४१
विश्वकर्त्ता की पूजा	,,	पञ्चविभाग	,,
१६ विवाह का संगठनाय	११४	विषयविभाग	,,
घरकी योग्यता	११५	विशेष द्रष्टव्य	१४३
वधूकी योग्यता	११६	विशेष जीवन	
विवाहके पश्चात्	,,	पुस्तिकरण	१४४
		मुक्तिका साधा मार्ग	

अथर्ववेदका
द्वितीय काण्ड समाप्त

ओ३म्

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य

तृतीयं काण्डम्

लेखक

प श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल साहित्य-वाचस्पति भीतालङ्कार

तृतीय वार

स्वा ध्या य म ण्ड ल, पा र डी

*

सवत २ १६ शक १८८१ सन १९५९

अपने राष्ट्रका विजय !

*

* *

सप्तहमृषां राष्ट्र स्यामि सभोजो वीर्येण बलेन् ।
वृषामि षण्ढ्यां षाहुननं हविषाहम् ॥ २ ॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मोषामिन्द्रानुन्मंषामि स्वान्हम् ॥ ३ ॥
एषामहमायुधा स स्यान्येषां राष्ट्र सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां क्षिप्त विषेऽवन्तु देवाः ॥ ५ ॥

अथर्व० का० ३।१९

" मैं इन अपने लोगोंके राष्ट्रका बल वीर्य और प्रभावसे युक्त करता हूं, तथा मैं शत्रुओंके बाहुओंका इस आह्वानके साथ काटता हूं ॥ २ ॥

हमारे शत्रु नीचे गिर जांय जो हमारे ज्ञानियों और धनिकोंपर सताप हमेशा चढाते हैं वे नीचे गिर जांय ॥ ३ ॥

मैं इनके आयुधोंको तीक्ष्ण बनाता हूं, मैं इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे युक्त करके बढाता हूं इनका क्षात्रतेज अजर और विजयी हो इनके विपक्ष सब दल उखड जावें ॥ ५ ॥ "

प्रकाशक और मुद्रक वसंत श्रीपाद सातवलेकर बी ए.
स्वाध्याय मण्डल आयर मुद्रणालय पारडी- स्वाध्याय मण्डल (पारडी), धरमी [जि सूरत]

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

तृतीय काण्ड।

इस तृतीय काण्डका प्रारंभ अग्नि शब्दसे हुआ है। यह अग्नि ऐसा प्रकाशकी देवता है। अंधेरेका नाश करना और प्रकाशके फैलाना इस देवताका अर्थ है। प्रकाश मनुष्यका सहायक और मित्र है और अंधेरा मनुष्यका घातक और शत्रु है। प्रकाशमें मनुष्य बलवान है और अंधेरेमें कमजोर है। इस लिये प्रकाशके देवताका महत्व अधिक है और इसलिये इसका नाम मनुष्यकारक समझा जाता है। ऐसे संयुक्त कारक अग्नि शब्दसे इस काण्डका प्रारंभ हुआ है।

जिस प्रकार प्रथम काण्डमें चार मंत्रवाले सूक्त और द्वितीय काण्डमें पांच मंत्रवाले सूक्त अधिक थे इसी प्रकार इस तृतीय काण्डमें छः मंत्रवाले सूक्त विशेष हैं देखिये—

१	मंत्रवाले	११	सूक्त हैं इनकी मंत्रसंख्या ७८ है
७	मंत्रवाले	६	सूक्त हैं इनकी मंत्रसंख्या ४२ है
८	मंत्रवाले	६	सूक्त हैं इनकी मंत्रसंख्या ४८ है
९	मंत्रवाले	२	सूक्त हैं इनकी मंत्रसंख्या १८ है
१	मंत्रवाले	१	सूक्त है इनकी मंत्रसंख्या १ है
११	मंत्रवाला	१	सूक्त है, इसकी मंत्रसंख्या ११ है
११	मंत्रवाला	१	सूक्त है इसकी मंत्रसंख्या ११ है।

कुल सूक्तसंख्या ३१ कुल मंत्रसंख्या ११०

प्रथम द्वितीय और तृतीय इन तीन काण्डोंकी तुलना मंत्रसंख्याकी दृष्टिसे अब देखिये—

काण्ड	प्रपाठक	अनुवाक	सूक्त	काण्डप्रकृति	मंत्रसंख्या
१	२	६	३५	सूक्तमें ४ मंत्र	१५१
२	२	६	३६	सूक्तमें ५ मंत्र	२ ७
३	२	६	३१	सूक्तमें ६ मंत्र	२१

पूर्वोमें मंत्रोंकी जो संख्या होती है वह उसकी प्रकृति होती है जैसा प्रथम काण्डके सूक्तोंकी प्रकृति मंत्र चार है अर्थात् इस काण्डके सूक्तोंमें चार मंत्रवाले सूक्त अधिक हैं और जो अधिक मंत्रवाले सूक्त हैं वे भी कई सूक्तोंमें चार मंत्रवाले बनाये जा सकते हैं, इसी प्रकार द्वितीय काण्डकी प्रकृति पांच मंत्रकी है और तृतीय काण्डकी छः मंत्रकी है, इस विषयमें अथर्व वर्षानुक्रमणीका कथन यह है—

येनस्यादिति प्रसूतिरष्टकाण्डपरिसमाप्तेः
पूर्वेषाण्डस्य चतुर्ऋचप्रकृतिरित्येवमुत्तरोत्तर
काण्डेषु पङ्क्तं यावदेकैक तावत्सूक्तेष्वृगिति
विज्ञानीयात्। (अथर्व वृ वर्षानु. १।१३।१)
अग्निर्नः इति — षडृचं प्रकृतिरन्या विकृति
रिति विज्ञानीयात्। (अथर्व वृ वर्षानु २।१।१)

पहिले काण्डकी चार ऋचाओंकी प्रकृति द्वितीय काण्डकी पांच ऋचाओंकी प्रकृति इस प्रकार छठे काण्डतक एक एक ऋचा सूक्तमें बढती है। तृतीय काण्डकी छः ऋचाओंकी प्रकृति है अन्य विकृति है।

यद्यपि प्रथम द्वितीय और तृतीय काण्डकी प्रकृति क्रमशः चार पांच और छः ऋचाओंकी है तथापि इन काण्डोंमें कई सूक्त ऐसे हैं कि जो इस प्रकृतिसे अधिक मंत्रसंख्यावाले हैं इसको अथर्व बृहत्सर्वानुक्रमणिकारने विकृति नाम दिया है। विकृतिका अर्थ प्रकृतिमें कुछ विशेषता (विशेष कृति) है। यह विशेषता कई प्रकारकी होती है और विशेष रीतिसे मंत्रोंका निरीक्षण करनेसे इसका पता भी अब लगता है जैसा द्वितीय काण्डके प्रथम सूक्तको देखिये। द्वितीय काण्डकी प्रकृति पांच मंत्रोंके सूक्तोंकी है परंतु इस प्रथम सूक्तमें आठ मंत्र हैं

अर्थात् यह विकृति है। यह विकृति इस कारण हुई है कि 'पयाहं त्वा ०-० स्ताम्।' यह मंत्रभाग इस सूक्तमें बारबार आया है। यदि यह बारबार आता हुआ मंत्रभाग अलग किया जाय और एक मंत्रके साथ ही रखा जाय और शेष मंत्रभागोंके दो दो अक्षरोंके मंत्र माने जांय तो केवल पांच मंत्रोंका ही यह सूक्त हो सकता है। इसी प्रकार कई अन्य रीतियों से किया अन्य सूक्तोंके अंग समझी हैं और विकृतियें प्रकृति बनाई जा सकती है। इससे पाठक जान सकते हैं कि यह विकृति भी बुद्धिपूर्वक ही हुई है और इसके होनेसे सूक्तकी प्रकृतिमें कोई दोष नहीं आता है। इस प्रकार इस अनुक्रमी प्रकृतिका विचार करनेके पश्चात् अब हम तृतीय काण्डके सूक्तोंके क्रमशः ऋषि देवता और छन्द देखते हैं—

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छंद
प्रथमोऽनुवाकः। प्रथमः प्रपाठकः।				
१	६	अथर्वा	ऐन्द्राग्नोऽग्नं बृहस्पत्यं	त्रिष्टुप्; २ विराट्गर्भा भुरिक्; ३ ६ अनुष्टुभ् ५ विराट्पुरस्ताज्ज्योतिष्।
२	६	अथर्वा	बृहस्पतिः	त्रिष्टुप्; २-४ अनुष्टुभ्।
३	६	अथर्वा	अग्निः वास्तोष्पतिः	त्रिष्टुप्; ३ च भुरिक् पंक्तिः, ५,६ अनुष्टुभ्।
४	७	अथर्वा	इन्द्रः	त्रिष्टुप्; १ अथर्वी; ४ ५ भुरिक्
५	८	अथर्वा	सोमः	अनुष्टुप्; १ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ८ विराड्रोभुरवी।
द्वितीयोऽनुवाकः।				
१	८	अथर्वा ब्रह्मा वा ऋषभः	वास्तोष्पत्यग्नीन्द्रसोमदेवत्यं	अनुष्टुभ्।
७	७	ऋषभः-अंगिराः	अध्यात्मं बृहस्पतिर्देवता	अनुष्टुभ्; ६ भुरिक्।
८	६	अथर्वा	पितरः पितृदेवताः	त्रिष्टुप्; १ ६ अथर्वी; ४ च विराड्बृहतीगर्भा ५ अनुष्टुप्।
९	६	ब्रह्मदेव	ब्रह्मगवी पितृदेवताः	अनुष्टुप्। ४ च त्रिष्टुप् बृहती। ६ भुरिक्।
१०	१२	अथर्वा	अध्यात्म	अनुष्टुप्; ४ ६ १२ त्रिष्टुप्; ७ च ८ विराड्गर्भातिजगती।
तृतीयोऽनुवाकः।				
११	८	ब्रह्मा ऋषभ-अंगिराः	इन्द्रः अग्निः आयुर्धं अध्यात्मं	त्रिष्टुप्; ४ अथर्वीगर्भा अथर्वी। ८ च ५ बृहतीगर्भा अथर्वी। ५,६ अनुष्टुप्; ७ त्रिष्टुप्गर्भा पथ्यापंक्तिः।
१२	९	ब्रह्मा	वास्तोष्पतिः ब्रह्मा	त्रिष्टुप्; १ बृहती; ६ अथर्वी गर्भा अथर्वी; ७ आर्षीअनुष्टुप्; ८ भुरिक्; ९ अनुष्टुप्

सूक्त	मन्त्रसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
११	७	भृगुः	वरुणः सिन्धुः	अनुष्टुप्; १ निचृत्। ५ विराड् जगती ६ निचृदनुष्टुप्
१४	६	ब्रह्मा	यानादेवता गोऽश्वदेवता	अनुष्टुप ॥ ६ आर्षीत्रिष्टुप्
१५	८	अथर्वा (पथ्याऽऽत्मा)	विश्वेदेवाः इन्द्राग्नी	त्रिष्टुप्; १ भुरिक्। ४ स्व ष बृहतीगर्भा विराडक्षरपंक्तिः। ५ विराड्जगती; ७ अनुष्टुप। ८ निचृत्।

चतुर्थोऽनुवाकः। द्वितीयः प्रपाठकः।

१६	७	अथर्वा	बृहस्पतिः बृहदेवार्वा	त्रिष्टुप्; १ आर्षी जगती; ४ भुरिक्पंक्तिः।
१७	९	विश्वामित्रः	सीता	अनुष्टुप; १ आर्षी पंक्ती; २ ५ ९ त्रिष्टुभः; ३ पथ्यापंक्तिः; ७ विराट्पुरउष्णिक् ८ निचृत्।
१८	६	अथर्वा	वनस्पतिः	अनुष्टुप्; ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदोष्णिक्; ६ उष्णिग्गर्भा पथ्या पंक्तिः।
१९	८	वसिष्ठः	विश्वेदेवाः अग्निः, इन्द्रः	अनुष्टुप् १ पथ्यावृहती। २ भुरिग्बृहती; ६ स्व ष त्रि क्रमेणत्रिजगती; ७ विराडुष्णिक् पंक्तिः; ८ पथ्यापंक्तिः।
२	१	वसिष्ठः	अग्निः मन्त्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्। ६ पथ्यापंक्तिः। ८ विराड्जगती।

पञ्चमोऽनुवाकः।

२१	१	वसिष्ठः	अग्निः	त्रिष्टुप्। १ पुरोबृहती; २ ३ ८ भुरिक्। ५ जगती; ६ उपरिष्टाद्विराड्बृहती। ७ विराट्पथ्या; ९ निचृदनुष्टुप्। १ अनुष्टुप्।
२२	६	वसिष्ठः	बृहस्पतिः विश्वेदेवा	अनुष्टुप्। १ विराट्त्रिष्टुप्। ३ पंक्त्या परानुष्टुविराडतिजगती; ४ स्वराडार्षीपरोष्णिक्जगती
२३	६	ब्रह्मा	चन्द्रमाः सोमः	अनुष्टुप्। ५ उपरिष्टाद्भुरिग्बृहती; ६ स्वराट्सोमीबृहती।
२४	७	भृगुः	वनस्पतिः मन्त्रोक्तः	अनुष्टुप्; २ निचृत्पथ्यापंक्तिः।
२५	६	भृगुः (आत्मात्मा)	मित्रावरुणौ अग्नेपुरस्तात्	अनुष्टुप्

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छंद
षष्ठोऽनुवाकः ।				
२६	६	अथर्वा	रुद्रः अग्न्यादिबहुदेवत्यम्	त्रिष्टुप् ; २ त्रिष्टुप् ; १ ५ । अष्टी ; ३ ४ भुरिक् ।
२७	६	अथर्वा	रुद्रः	अष्टिः ; २ अष्टाष्टिः ५ भुरिक् ।
२८	६	ब्रह्मा	यामिनी	अनुष्टुप् । ३ अतिशक्वरीगर्भा ४ अष्टी ; ४ जगत्यनिचृद्गर्भा ; ५ त्रिष्टुप् ६ विराड् गर्भा प्रस्तारपंक्तिः ।
२९	८	ब्रह्मा	क्षितिपालनिः ७ द्यावा ; ८ भूमिः	अनुष्टुप् । ३ २ पथ्यापंक्तिः ७ ४ ५ उपरिष्टाद्बृहती ६ विराडष्टी ; ८ अष्टिरनुष्टुप् ।
१	७	अथर्वा	चन्द्रमाः सांमनस्यं	अनुष्टुप् । ५ विराडष्टी ; ६ प्रस्तारपंक्तिः ७ त्रिष्टुप् ।
११	११	ब्रह्मा	पाप्म-हा	अनुष्टुप् ; ४ भुरिक् ; ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

तृतीय काण्डके सूक्तोंके ये ऋषि देवता और छन्द हैं । अब इनका विभाग ऋषिक्रमानुसार देखिये—

१ अथर्वा- १-५, ८ १ १५ १६ १८ २६ २७ १ ये तेरह सूक्त ।
२ ब्रह्मा- ११ १२ १४ २१ २८ ११ ये छः सूक्त ।
३ वसिष्ठः- १९ २ २१ २२ ये चार सूक्त ।
४ भृगुः- १३ २४ २५ ये तीन सूक्त ।
भृगु-अंगिराः- ७ ११ ये दो सूक्त ।
५ अगस्त्यो जुरुषः- ६ वाँ एक सूक्त ।
६ वामदेवः- ९ वाँ एक सूक्त ।
७ विश्वामित्रः- १७ वाँ एक सूक्त ।
८ उद्दालकः १९ वाँ एक सूक्त ।

ये ऋषिक्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवताक्रमानुसार सूक्त देखिये—

१ बहुदेवत्यम् नानादेवताः । १ ३ ७ १४ १६ २६ २७ ये आठ सूक्त ।
२ विश्वेदेवाः- ९ १५, १९ २२ ये पांच सूक्त ।
३ अग्निः- ३ ११ २ २१ ये चार सूक्त ।
४ इन्द्रः- ४ ११ १९ ये तीन सूक्त ।
५ चन्द्रमाः- १९ २३ ३ ये तीन सूक्त ।
६ बृहस्पतिः- १६ २३ ये दो सूक्त ।
७ रुद्रः- २६ २७ ये दो सूक्त ।
८ वनस्पतिः- १८ २४ ये दो सूक्त ।
९ पञ्चम आदित्यः- ७ ११ ये दो सूक्त ।
१० सोमो मोहनी- १ २ ये दो सूक्त ।
११ इन्द्राग्नी- १५ यह एक सूक्त ।
१२ सोमः- ५ यह एक सूक्त ।
१३ वनस्पत्यप्सरसः- ६ यह एक सूक्त ।
१४ मित्रः- ८ यह एक सूक्त ।
१५ द्यावापृथिवी- ९ यह एक सूक्त ।
१६ वरुणः- ११ यह एक सूक्त ।
१७ प्रजापतिः- २४ यह एक सूक्त ।
१८ मिथोदम्पती- २५ यह एक सूक्त ।
१९ भूमिः- २९ यह एक सूक्त ।

१० अथर्वा- १ यह एक सूक्त ।
११ सिंधुः- ११ यह एक सूक्त ।
१२ आपुप्यः- ११ यह एक सूक्त ।
१३ वास्तोष्पतिः- १२ यह एक सूक्त ।
१४ शाला- १२ यह एक सूक्त ।
१५ गोष्ठः- १४ यह एक सूक्त ।
१६ सीता- १७ यह एक सूक्त ।
१७ योनिः- २१ यह एक सूक्त ।
१८ कामेषुः- २५ यह एक सूक्त ।
१९ यामिनी- १८ यह एक सूक्त ।
२० कामः- २९ यह एक सूक्त ।
२१ सांमनस्यं- १ यह एक सूक्त ।
२२ पाप्म हा- ११ यह एक सूक्त ।
२३ क्षितिपावनिः- २९ यह एक सूक्त ।
२४ मन्योकाः- २ यह एक सूक्त ।

इस प्रकार इन सूक्तोंके मंत्रोंकी देवताएं हैं। इनके और भी देवताएं हैं जिनका संबंध पाठक विवरणके समय जान सकेंगे। अब इन सूक्तोंके गणोंका विचार देखिये—

सूक्तोंके गण ।

इस तृतीय काण्डके सूक्तोंके गण इस प्रकार किये हैं—

१ अपराजितगण- १९ वाँ सूक्त ।
२ वक्ष्मनाशनगण- ७ ११ ये दो सूक्त ।
३ वचस्यगण- १६ २२ ये दो सूक्त ।
४ आपुप्यगण- ८ ११ ये दो सूक्त ।
५ रौद्रगण- २६ २७ ये दो सूक्त ।
६ अंहोमुचिगण- ११ वाँ एक सूक्त ।
७ पाप्म-हा-गण- २१ वाँ एक सूक्त ।
८ बृहच्छान्तिगण- २१ वाँ एक सूक्त ।

इस प्रकार ये सूक्त इन गणोंके साथ संबंध रखते हैं। इस काण्डके अन्य सूक्तोंके गणोंका पता नहीं चलता। इस काण्डके सूक्तों द्वारा कुछ शान्तियां सूचित होती हैं उनके नाम ये हैं—

१ आंगिरसी महाशान्ति- ५ ६ ये दो सूक्त ।
१ कौमारी महाशान्ति- ७ वाँ एक सूक्त ।
१ ब्राह्मी महाशान्ति- २२ वाँ एक सूक्त ।

इन सूक्तोंका संबंध इन शान्तियोंके साथ है। इस लिये अध्ययन करनेके समय पाठक इस बातका विचार करें। कौन सूक्तियोंसे उचित है कि ये इस शांति प्रकरणमें काम करें अर्थात् इन शांतियोंका तात्पर्य क्या है और इनकी विधि भी कैसी होती है इत्यादि ज्ञातव्य विषय है। संभव है कि इस काण्डसे अपूर्व ज्ञान प्राप्त होगा। इस काण्डमें अनुकूलताके संमोहनरूप विषय पहले दो सूक्तोंमें आया है और सामनस्य अर्थात् एकताका विषय सौवें सूक्तमें आया है—

शत्रुसंवासमोहनं- १ २ ये दो सूक्त ।
सांमनस्यं- १ वाँ एक सूक्त ।

ये सूक्त विशेष विचारपूर्वक इस दृष्टिसे पढ़ने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त इस तृतीय काण्डका १५ वा इन्द्र महोत्सव के विषयका सूक्त है, ऐसा कौशिकसूत्रमें कहा है। इसलिये इस इन्द्र महोत्सवके विषयमें भी विचार होना चाहिये।

ये सब विषय बड़े गंभीर हैं इसलिये आशा है कि पाठक भी इसका विचार गंभीरताके साथ करेंगे। इतनी भूमिकाके साथ अब तृतीय काण्ड हाथ लिया जाता है।

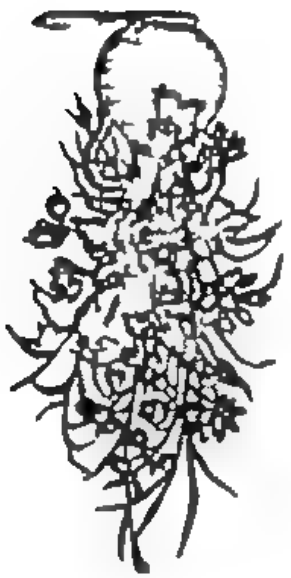

अथर्ववेद का सुबोध भाष्य ।

तृतीय काण्ड ।

शत्रुसेना का संमोहन ।

(१)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता — संग्रामोहनं बहुरूपात्मम् ।)

अग्निर्नः शत्रून्प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥ १ ॥
यूयमुग्रा मरुत ऊर्ध्वसे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन्वसवो नाधिता इमे अग्निर्नुदात्प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥

अर्थ— (विद्वान् अग्निः) विद्वान् अग्निसमान तेजस्वी वीर (अभिशस्तिं अरातिं) घातघात करनेवाले शत्रुको (प्रति दहन्) जलाता हुआ (नः शत्रून् प्रत्येतु) हमारे शत्रुओंपर चढाई करे । (सः जातवेदाः) वह ज्ञानी (परेषां सेनां) शत्रुओंकी सेनाको (मोहयतु) मोहित करे (च निर्हस्तान् कृणवत्) और उनको हस्तरहित करे ॥ १ ॥

हे (मरुतः) मरनेके लिये तैयार वीरो ! (यूयं उग्राः स्थ) ऐसे समयमें तुम बडे वीर हो इस लिये (अभि-प्र-इत सहध्वम्) आगे बढो क्षमा और जीतलो । (इमे नाधिताः वसवः) ये बलवान् बसनेवाले वीर (अमीमृणन्) मरते रहे हैं । (अग्निः नुदात् विद्वान्) इनका बदलेवाला ज्ञानी अग्नि समान तेजस्वी वीर (प्रत्येतु) शत्रुपर चढाई करे ॥ २ ॥

भावार्थ— राजनीतिको जाननेवाला विद्वान् और तेजस्वी पुरुष घातघात करनेवाले शत्रुओंको जलाते हुए शत्रुओंपर चढाई करे । सेनासंमोहनकी विद्याको जाननेवाले ज्ञानी शत्रुसेनाको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे बना दें ॥ १ ॥

हे मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरो ! ऐसे युद्ध समयमें तुम बडे वीर हो इस लिये आगे बढो शत्रुको क्षमो और उनको जीत आ । वे बलवान् मरण देनेवाले वीर शत्रुके काटने हैं इनका बदला ज्ञानी तेजस्वी वीर भी शत्रुको जलाता हुआ शत्रु पर चढाई करे ॥ २ ॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
युव तानिन्द्र वृत्रहन्नस्मिभ्यं दह्रत प्रति ॥ ३ ॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणत्वेतु शत्रून् ।
अहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्य छृणुहि चित्तमेषाम् ॥ ४ ॥
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय ॥ ५ ॥
इन्द्रः सेनां मोहयतु परुत्वो मरुत्वतो वृषभो वावृधानः ।
चक्षुष्यग्निरा दंशां पुनरेतु पराजिता ॥ ६ ॥

अर्थ— हे (मघवन् वृत्रहन् इन्द्र) धनवान् शत्रुनाशक तथा (वज्र अग्निः) हे ज्ञानी ! (युवं) तुम दोनों मिलकर (अस्मान् शत्रूयतीं अमित्र-सेनां) हमारी शत्रुता करनेवाली शत्रुसेनाको (अभि) पराभूत करके (तान् प्रति दह्रत) उनको नष्ट करो ॥ ३ ॥

हे (इन्द्र) वीरेन्द्र ! (प्रवता ते हरिभ्यां) वेगसे जाते हुए हरणशील घोड़ों द्वारा (प्रसूतः वज्रः) भेजा हुआ वज्र (शत्रून् प्रमृणन् प्र+एतु) शत्रुओंको मारता हुआ आगे बढ़े । (प्रतीचः अनूचः पराचः) सम्मुख पीछे और दूर भागनेवाले शत्रुओंको (अहि) हनन कर दे और (एषां चित्तं) इन शत्रुओंके चित्तको (सत्य विष्वक् कृणुहि) ठीक प्रकार चारों ओर भ्रमित कर दे ॥ ४ ॥

हे (इन्द्र) वीरेन्द्र ! (अमित्राणां सेनां मोहय) शत्रुओंकी सेनाको घबराओ । (अग्नेः वातस्य ध्राज्या) अग्निके और वायुके प्रचंड वेगसे (तान्) उन शत्रुसैनिकोंको (विषूचः विनाशय) चारों ओर भगदड़ मचा कर नष्ट करो ॥ ५ ॥

(इन्द्रः सेनां मोहयतु) वीरेन्द्र शत्रुसेनाको मोहित करे (मरुत्+वतः) मरुतोंके लिये सिद्ध हुए और (वृषभः वावृधानः) वेगसे बढ़ता हुआ (अग्निः चक्षुषि आदत्तां) अग्नि अर्थात् प्रखर तेज उनके आंखोंको कैसे । [illegible] प्रकार शत्रुकी (पराजिता) पराभूत हुई सेना (पुनः एतु) फिर भी पीछे हटे ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे धनवान् शत्रुनाशक वीरेन्द्र ! तथा हे तेजस्वी ज्ञानी वीर ! तुम दोनों मिलकर हमारी शत्रुता करनेवाली शत्रुसेनाको पराभूत करो और उसको नष्ट कर दो ॥ ३ ॥

हे वीरेन्द्र ! वेगसे चलाया हुआ तुम्हारा प्रखर तेजपुंज शत्रुओंको भगाता हुआ आगे बढ़े । सम्मुखसे पीछेसे और चारों ओरसे भागनेवाली शत्रुसेनाका हनन करके उनके चित्तमें ऐसी घबराहट उत्पन्न करो कि जिससे वे चारों दिशाओंमें भाग जांय ॥ ४ ॥

हे वीरेन्द्र ! अग्न्यस्त्रके दाहसे और वायव्यास्त्रके वेगसे शत्रुसेनाको ऐसा घबराओ कि वे चारों दिशाओंमें भाग जांय और इस रीतिसे उनका नाश कर दो ॥ ५ ॥

वीरेन्द्र शत्रुके सैन्यको घबराये तथा वीर वेगसे शत्रुसेनाका हनन करे और शत्रुसेनाको ऐसी घबराहट करे कि जिससे उनसे कुछ भी न होकर पस्त होकर इस प्रकार शत्रुका पूर्ण पराजय होकर उनका पूर्ण नाश हो जावे ॥ ६ ॥

इसी सिन्धुक्षित ऋषिके दूसरे सूक्तका भी अर्थ हम यहां पहले देखते हैं, और पश्चात् दोनों सूक्तोंका मिलकर विचार करेंगे । द्वितीय सूक्त यह है—

(१)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता — सेनामोहनम्, बहुदेवत्यम् ।)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥ १ ॥

अयमग्निरमूमुहदानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो भनत्वोकसः प्र वो भनतु सर्वतः ॥ २ ॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नुताकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य भ्राज्या तानिषूचो वि नाशय ॥ ३ ॥

व्याकृतम वयामितावो चित्तानि सुव्रत ।
अथो यदुवैषा हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

अर्थ— (नः दूत विद्वान् अग्निः) हमारा दूत ज्ञानी तेजस्वी वीर (अभिशस्तिं अरातिं प्रतिदहन्) अस्त्र-पात करनेवाले शत्रुको जलाता हुआ (प्रत्येतु) चढाई करे। (सः जातवेदाः परेषां चित्तानि मोहयतु) वह ज्ञानी शत्रुओंके चित्तोंको मोहित करे और उनका (निर्हस्तान् च कृणवत्) हस्तहीन जैसे करे ॥ १ ॥

(यानि वः हृदि) जो तुम्हारे हृदयमें उपस्थित हैं वे (चित्तानि) चित्त (अयं अग्निः अमूमुहत्) यह तेजस्वी वीर परास्तहृदयमें जाकता है। वह (वः ओकसः विधमतु) तुमको-शत्रुको घरसे निकाल देवे और (वः सर्वतः प्रधमतु) तुमको-शत्रुओं-सर्व प्रकारसे हटा देवे ॥ २ ॥

हे (इन्द्र) नेतः ! शत्रुके (चित्तानि मोहयन्) चित्तोंको मोहयुक्त करता हुआ तू (आकूत्या सर्वान् चर) हृदयसंकल्पसे हमारे पास आ। (अग्नेः वातस्य भ्राज्या) अग्नि और वायुके वेगसे (तान् इषूचः विनाशय) उनके चारों ओरसे वह भाग कर दे ॥ ३ ॥

हे (पर्वा) इन शत्रुओंके (आकूतयः) संकल्पो ! (वि) तुम परस्पर विरुद्ध हो जाओ पश्चात् तुम (इत) इन जाओ (मया चित्तानि) और इनके चित्तो ! (सुव्रत) मोहित होओ। (अथो यत्) और जाओ (यत् पर्वा हृदि) जो इनके हृदयमें संकल्प है (पर्वा तत् परि निर्जहि) इनका वह संकल्प पूर्णतासे नाश कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हमारे ज्ञानी स्वयंसेवक वीर आक्रमण करनेवाले शत्रुसेना पर चढाई कर, शत्रुओंके चित्तोंमें घबराहट डालें और उनको हस्तहीन जैसे बना देवें ॥ १ ॥

शत्रुके चित्तोंको मोहित करे उनको घरोंसे निष्कासित देवे और उन देशसे उनको हटा देवे ॥ २ ॥

हे राजन् ! तू शत्रुसेनाके चित्तोंको मोहित कर, अग्नियुक्त और वायुवाहक वेगसे उनको चारों दिशाओंमें भगा दे और पश्चात् विजयपूर्वक तुम संकल्पसे हमारे पास आ ॥ ३ ॥

शत्रुओंके संकल्प आपसमें एक दूसरेके विरोधी हों उनके दिलोंमें घबराहट पैदा हो और उनके दिलोंमें जो संकल्प आज हों वे संकल्प कल तक भी स्थिर न रहें ॥ ४ ॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरांधेनामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥ ५ ॥
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे (अप्वे) व्याधि ! (अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती) इनके चित्तको मोहमें डालती हुई तू इनके (अंगानि गृहाण) अवयवोंको पकड़ रखो और (परा हि इहि) परे तक चली जा । (अभि प्र इहि) सब प्रकारसे आगे बढ़ । (हृत्सु शोकैः निर्दह) हृदयके शोकोंके साथ इनको जला दे । तथा (आधया तमसा) अन्धकारके रोगसे और मूर्च्छा रोगसे (अमित्रान् शत्रून् विध्य) तू शत्रुओंको ग्रस्त कर दे ॥ ५ ॥

हे (मरुतः) मरनेके लिये सिद्ध वीरो ! (परेषां असौ या सेना) शत्रुओंकी वह जो सेना (स्पर्धमाना अस्मान् ओजसा अभि-आ-एति) स्पर्धा करती हुई हमपर बलाई करके आती है, (तां अपव्रतेन तमसा विध्यत) उसको कर्महीन करनेवाले अंधकारसे मोहित कर डालो (यथा) जिससे (एषां अन्यो अन्यं न जानात्) इनमेंसे एक दूसरेको भी न जान सके ॥ ६ ॥

भाषार्थ— व्याधियां तथा अन्य भय भी शत्रुके विरुद्धमें भयभीत कर दे शत्रुसैनिकोंके अंगप्रत्यंग व्याधियोंसे अकड़ जांय, शत्रुसैन्य रोगोंसे और नाना प्रकारके भयोंसे ग्रस्त हो जाय । अधिकतर और मूर्च्छा रोग शत्रुके द्वारा ऐसे ऐसे कठिन समयमें उनपर हमला कर और शत्रुके हृदयोंको शोकसे जला दे ॥ ५ ॥

हे वीर पुरुषो ! जो सेना हमारे साथ स्पर्धा करती हुई हमपर चढ़ाई करके आरही है उसको ऐसा मोहित करो कि वे पुरुषार्थहीन होकर मूर्च्छितसे हो जांय और उनमेंसे एक मनुष्य दूसरेको जान भी न सके ॥ ६ ॥

सेनाका संमोहन ।

ये दो सूक्त शत्रुसेनाके *संमोहनका* विषय बता रहे हैं । जो शत्रुकी सेना भारती और चढ़ती हुई अपने राष्ट्रपर अथवा अपने सैनिकोंपर चढ़ाई करके आ रही है वह मोहित करके परास्त करनी चाहिये और उसको मया सेना चाहिये । इसका नाम है सेना-संमोहन ।

कई लोग कल्पना करते हैं कि यह शत्रुकी सेनाका संमोहन मंत्रशक्तिसे होता है परंतु वास्तविक बात वैसी नहीं है । यह संमोहन केवल अलंकार ही है अर्थात् शत्रुसेना पर ऐसे हमले करने कि शत्रुसैनिकोंको कर्तव्यमूढ़ बन कर भाग जाना ही एक मार्ग जीव बचानेके लिये अवशिष्ट रहे ।

ये दोनों सूक्त स्पष्ट हैं और इतने ही विवरण यहां अधिक विवरण करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है । तथापि इन सूक्तोंमें कई शब्दप्रयोग ऐसे किये गये हैं कि जिनका विशेष स्पष्टीकरण करना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा संदेह उत्पन्न होना संभव है । इन सूक्तोंमें अग्नि इन्द्र, मरुत् आदि शब्द हैं जिनके अर्थ देवता प्रकरणमें अग्नि विद्युत् वायु आदि लिये जाते हैं तथा अध्यात्म प्रकरणमें आत्मा मन और प्राण लिये जाते हैं, इस विषयका स्पष्टीकरण पूर्व काण्डोंमें आ चुका है । ये दोनों प्रकरण इन दोनों सूक्तोंमें नहीं हैं । इन सूक्तोंका प्रकरण युद्ध है, शत्रुसेना मोहनका संबंध है अपनी सेना और शत्रु सेनाका अवश्य होनेका अवसर है, इस लिये यह न अध्यात्म विषय है और न ही व्याधिदेवतका विषय है । प्रायिकतः शस्त्रोंके वर्णनका वर्णन आधिभौतिक प्रकरणमें हुआ करता है । इस कारण आधिभौतिक प्रकरणके प्रायिक विषयका प्रकरण कहा जाता है और इस प्रकरणमें उक्त शब्दोंके अर्थ प्रायिक विषयके होते हैं अर्थात् यहां मनुष्यप्राणि विषयक भाव उपयुक्त उचित है । अब उक्त शब्दोंके अर्थ देखिये—

१ इन्द्र ।

(इन्+द्र) शत्रुसेनाका भेदन करनेवाला यह इसका धात्वर्थ है परंतु मुख्यता इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग होता है, जैसे गोमन्द = गौओंका मुखिया बैल, अश्वेन्द्र = घोड़ोंका मुखिया घोड़ा; नरेन्द्र = मनुष्योंमें मुख्य राजा अथवा समर्थ । इस शब्दके ये अर्थ प्रसिद्ध हैं परंतु प्रायः जीव केवल इन

शब्दका अर्थ राजा करनेके समान करते हैं। उनको इन दो सूक्तोंका अच्छा मनन करना उचित है। इस मनसे उनको पता लग जायगा कि ऐसे प्रसंगोंमें मनुष्य विग्रहके ही इत्यादि सम्बोधन अर्थ लेना योग्य है। इस विषयको अच्छी प्रकार समझनेके लिये इन दो सूक्तोंके कई वाक्य उदाहरणके लिये देते हैं—

१ इन्द्र ! ते प्रसुतः वज्रः शत्रून् प्रसुषन् पतु ।
प्रतीचः अनूचः अहि ।
एषां चित्ते विष्वक् कृणुहि ॥ (सू १ म ४)

२ इन्द्र ! अमित्राणां सेनां मोहय ।
अग्नेः वातस्य ज्रान्त्या विषूचः तान् विनाशय ॥
(सू १ मं ५)

३ इन्द्रः सेनां मोहयतु ॥ (सू १ मं ६)

४ इन्द्र ! चित्तानि मोहयन् आकृत्या मनांसि कर ॥
(सू २ मं ३)

(१) हे राजन् ! तेरे द्वारा चलाया हुआ वज्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे चले । इस ओरके शत्रुओंका हनन कर । इन शत्रुओंके चित्तको चारों ओर भ्रमानेवाला कर ॥ (२) हे राजन् ! शत्रुकी सेनाको मोहित कर । अग्नि और वायुके प्रवाहसे शत्रुसेनाको चारों ओर भग्न दे ॥ (३) राजा शत्रुसेनाको चकरा देवे ॥ (४) हे राजन् ! शत्रुसेनाको मोहित करके अपने वश संकल्पसे हमारे पास भक्त कर ॥

इस प्रकारके ये मन्त्र इस शब्द द्वारा राजाका कर्तव्य बता रहे हैं । यहां राजा नरेन्द्र, सम्राट् आदि प्रकारका ही इस शब्दका अर्थ है । यहां इन्द्र शब्द क्षात्रविद्योमणी वीर राजाका वर्णन कर रहा है, जो स्वयं युद्ध भूमिमें उपस्थित रहकर अपनी सेनाको चलाता है और केवल सेनापति पर ही निर्भर नहीं रहता है । इसी इन्द्रके अन्य पर्याय भी इन सूक्तोंमें आ गये हैं वे अब देखेंगे—

२ मघवन् ।

(मघ) धन (वत्) वाला । जिसके पास धन है । जो राजा अपने पास बहुत धनसंग्रह रखता है वही युद्धमें विजय पा सकता है । युद्धमें विजय प्राप्त करनेका यह एक बड़ा भारी साधन है धनहीन राजा यदि युद्धका प्रारंभ करेगा तो उसके पराभूत होनेमें कोई संदेह ही नहीं है । इस शब्दसे बोध होने योग्य यह अर्थ पाठक देखें और राजाका बल धनकोषमें होता है यह बात जान लें ।

३ वृत्रहन् ।

(वृत्र) घेरनेवाले शत्रुको (हन्) हनन करनेवाला । अर्थात् जो शत्रु घेरकर हमला करता है अथवा मार्ग रोकता है उसको अपने बलोंके प्रभावसे मारता है उसका यह नाम है ।

इस प्रकार इन्द्रवाचक शब्द और उसके वर्णनपरक मंत्र वीर राजाके कर्तव्य बता रहे हैं । पाठक यह अधिक देखी जानेंगे तो उनको बहुत मंत्रोंका संभीर आशय इस रीतिसे स्पष्टतया ध्यानमें आ सकता है । इन्द्रके साथ मरुत् रहते ही हैं इनके विषयमें अब देखिये—

४ मरुत् ।

(मर्+उत्) मरनेके लिये जो उठकर खड़े हुए हैं मरनेके लिये जो तैयार हुए हैं शत्रुका पराभव करनेके लिये अपने प्राणोंकी आहुती देनेके लिये जो कटिबद्ध हुए हैं उन वीरोंका यह नाम है । इनकी सेनाके मरुत् नामक जो वीर हैं उनका अर्थ वर्णन भी इस अर्थकी सार्थकता बता रहा है । यह शब्द सैनिकोंका अस्त्राह बता रहा है । [illegible] प्रकारके उत्साही वीर जिस सेनामें होंगे उनका विजय निःसंदेह हो सकता है । इस शब्दका प्रयोग जिन मंत्रोंमें है उनके उदाहरण यहां देखिये—

१ हे मरुतः ! ईदृशे यूयं उग्राः स्थ । अभिप्रेत मृणत सहध्वम् । (सू १ म)

२ मरुतः ओजसा प्रसन्तु । (सू १ मं ६)

३ हे मरुतः ! या असौ परेषां सेना स्वधमाना अस्माभ् अभ्येति तां अपप्रोथेम तमसा विध्यत यथा एषां अन्यः अन्यं न जानात् ॥
(सू २ मं १)

(१) हे मरनेके लिये तैयार वीरो ! ऐसे प्रसंगमें तुम उग्र बने रहो । इस लिये आगे बढ़ो आगे बढ़ो और वैरीको पराभूत करो ॥ (२) वीर लोग हमारे साथ वैरीको मारें ॥ (३) हे वीरो ! यह जो वैरीकी सेना हमारे साथ स्पर्धा करती हुई हमपर धावा कर रही है उसको अंधेरीमें मोहमय तमसे विद्ध करो जिससे उनका एक मनुष्य दूसरेको पहचान न सके ॥

ये मरुतोंके मंत्र स्पष्टतया सैनिक मंत्रोंके कर्तव्य बता रहे हैं । युद्धमें सेनाके वीर कैसा शब्द करें, उसका उच्चारण कहां इस प्रकार किया जाय आदि बातोंका मनन करके आजतेजसे युक्त वीर पुरुषोंको बड़ा उत्साह आ सकता है । इसके अनंतर वसवः शब्द देखिये—

६ वसवः ।

बसनेवालोंका नाम वसु है। जो अपने राष्ट्रमें अपने अधिकारसे बसना चाहते हैं अतुल हमले होनेपर भी अपने स्थानसे हिलना नहीं चाहते वे वसु होते हैं। इन वसुओंके विषयमें अथर्ववेदमें ही अन्य स्थानमें कहा है—

वसवस्त्व इति यो नामधेयं ऊर्ध्वयज्वया राष्ट्रभृतो ह्यन्ताः ॥ (अथर्व ७।१ ९।६)

आपका नाम वसु (वसवः) है आप देवजनोंके लिये अति उग्र हैं और राष्ट्रका भरण पोषण करनेवाले हैं और आप राष्ट्रके (अन्ताः) आश्रय ही हैं। इस मंत्रमें वसु उग्र राष्ट्रभृत हैं ऐसा कहा है। इसलिये हम यहां इस सूक्तके प्रसंगमें वसु पदका अर्थ उग्र राष्ट्रभृत अर्थात् क्षत्रवीर राष्ट्रीय अर्थ-सेवक करते हैं। यह अर्थ वेदसे प्रचलित सूक्तके मंत्रभागका अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है देखिये—

इमे साधिष्ठा वसवः सधस्थ आ ।
एषां वृतः अग्निः विद्वान् अधायि ॥ (ऋ. १ सं १)

ये प्रमाणवाली राष्ट्रभृत वैरी सेनाको जीतते हैं। इनका विद्वान् शुद्ध अग्नि वैरीपर चढाई करे। इस मंत्रमें हमें पता लगता है कि यहांका अग्नि शब्द वसुओंमेंसे एक वसुका वाचक है अर्थात् यदि उक्त प्रकार वसु राष्ट्रभृत हैं तो अग्नि भी वसुओंमेंसे एक राष्ट्रभृत अथवा राष्ट्रका शुद्ध है जो सधस्थ है और बडा चतुर भी है। इस और अग्निमें क्या भेद है पाठक इसका मनन करें। इस सूक्तमें सम्राट् अथवा राजा है वह सर्वसेवक या राष्ट्रभृत नहीं है, और अग्नि राजा नहीं है परंतु राष्ट्रभृत है। अग्नि विद्वान् है और इन्द्र सम्राट् है। ये विशेषणों द्वारा बताये भेद पाठक मननपूर्वक देख और सोचें। ये भेद ही वैदिक राज्यपद्धतिका लक्षण स्पष्ट कर देते हैं। इस प्रकार वसु शब्दका अर्थ देखनेके पश्चात् और अग्निका उनमेंसे एक जाननेके पश्चात् अब अग्निका अर्थ देखते हैं—

७ अग्निः ।

वसु शब्दके जो लक्षण पूर्व शब्दके वर्णनके प्रसंगमें बताये हैं वे इसके साथ भी संगत होते हैं। यह प्रकाशक देव है, शत्रुको जलाता है और अपनेको तेजस्वान् करता है। यह (विद्वान्) ज्ञानी है, समस्त है कर्तव्य अकर्तव्यको ठीक प्रकार समझता है। यह (भरत-वेदाः = अर्त वेत्ति) बने हुए वस्तु स्थितिको यथावत् जाननेवाला है। पाठक देखें कि ऐसा गोल राष्ट्रभृत (वसु) राष्ट्रका शुद्ध, कितना उपयोगी होगा और ऐसे गुणके प्रसंगमें इस प्रकारके राष्ट्रभृतको ऐसा कितना अच्छा राष्ट्रभृत हो सकता है।

अग्नि शब्द तेज और इन्द्र क्षात्रतेज स्पष्ट करता है, जिस समय राष्ट्रपर आपत्ति आती है उस समय ये दोनों मिलकर राष्ट्ररक्षण करें, इस विषयकी सूचना इस सूक्तमें मिलती है। इस विषयका मंत्र देखिये—

हे वृत्रहन् इन्द्र ! अग्निः च पूषन् त्वम् प्रतिदहतम् ।
(ऋ. १ सं १)

हे वीर राजन् ! तू और ज्ञानी राष्ट्रभृत दोनों मिलकर शत्रुको जला दो। यहां मिलकर कार्य करनेका उपदेश है। ज्ञानतेज और क्षात्रतेज इकट्ठा होकर वैरीका नाश करे। ऐसा कभी न हो कि वैरी राष्ट्रके द्वारमें उपस्थित होने और राष्ट्रके दोनों मुख आपसमें झगडते रहें। यह तो राष्ट्रघातकी अवस्था होगी इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंको अपना अनेक्य देख्य रखना चाहिये और अपने राष्ट्रकी रक्षामें ही अपनी शक्ति देखनी चाहिये।

शत्रुको घबरानेकी रीति ।

वैरीको घबराना उसको मोहित करना उसको भ्रमित करना और उससे पराजय करना इत्यादिके उपाय इन दो सूक्तोंमें कहे हैं। जिनसे हमको अनेकों कई विधियां इससे पूर्व स्पष्टीकरणमें आचुकी हैं। अब इस विशेष शब्दोंका उल्लेख करना है जो यहां करेंगे—

१ अस्मद्वाक और वायव्याक्ष ये प्रयोगसे वैरीका नाश करनेकी पहिली रीति इस सूक्तमें कही है—

अग्नेः वातस्य आक्ष्या त्वम् विनाशय ॥
(ऋ. १ सं ५। ऋ. २, सं. १)

अग्निके वेगसे और वायुके वेगसे उन शत्रुओंका नाश कर। यहां आक्षी शब्द है, अग्निका (आक्षी) महावेग और वायुका महावेग इनके संयोगसे शत्रुका नाश करना सिद्ध है। आक्षी शब्दका अर्थ केवल वेग, अति उग्र ही नहीं है, जिस वेगके संयोगसे मनुष्य नष्टभ्रष्ट होते हैं, मनुष्य अपने स्थानपर ठहर नहीं सकते उस महावेगके प्रबल संयोगका आशय इस आक्षी शब्दमें है। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि यहांके अग्नेः आक्षी वातस्य आक्षी ये दो शब्द क्रमशः अस्मद्वाक और वायव्याक्ष अथवा इसी प्रकारके उत्पात विशेषके वाचक होंगे। इसी स्पष्टीकरणमें इससे पूर्व अग्नि शब्दका अर्थ मनुष्य वाचक बताया है, परंतु यह अर्थ यहां नहीं है। एक ही सूक्तमें एक ही अग्नि शब्दके दो परस्पर भिन्न अर्थ हैं यह बात यहां उचित

रहना चाहिये अन्यथा अर्थका विपर्यास होनेमें देरी नहीं लगेगी।

१ तमसाऽस्त्र— तमसास्त्रका प्रयोग भी इसमें है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है—

तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात्। (सू. २ मं ६)

इस शत्रुसेनाको पुरुषार्थहीन करनेवाले तमसास्त्रके प्रयोगसे सिद्ध करो जिससे उनका एक सैनिक दूसरे सैनिकको न पहचान सके। इस मंत्रमें अपव्रत शब्द प्रयोग है। तप शब्दका अर्थ अन्धकार है। अपव्रतका अर्थ अन्धेरा है। दोनोंका तात्पर्य अन्धेरा करनेवाला अंधेरा है। इससे शत्रुसेनाको भेद करना है। भेद करनेके लिये अन्धकार ही चाहिये अन्यथा भेद नहीं हो सकता। इसलिये इस मंत्रमें तमसास्त्रका प्रयोग है ऐसा स्पष्ट दीख रहा है। अन्धकारसे प्रयोगसे ही सैनिक एक दूसरेको पहचाननेमें असमर्थ होंगे। इसी अर्थका एक मंत्रभाग प्रथम सूक्तमें है—

अक्षिभ्यां शत्रूणां मादस्ताम्। (सू १ मं ६)

आप शत्रुकी आंखें के लिये इस वाक्यका भी आशय तमसास्त्र प्रयोगका ही है क्योंकि यहां हरएककी आंखें निकाल देनेका आशय नहीं है परंतु उनको कुछ भी न दीख पडे यही आशय है। तथा और देखिये—

अमित्रान् शत्रून् तमसा विध्य। (सू २ म ५)

शत्रुओंको अन्धकारसे सिद्ध कर। यहांका विध्य शब्द भी अस्त्रका तमको सूचित करता है। यह मंत्र अन्यत्र अन्यथा है वह भी यहां देखिये—

अन्धेन तमसा अमित्रान् सचन्ताम्।
(ऋ १।१७ ३।१९१; यजु १७।४४
साम ७ ९।३।५; निरु ९।१३१)

तां गृहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यं न जानात्। (यजु १७।४७)

शत्रुओंको अन्धतमसे ढाप दो इत्यादि मंत्रभागोंमें भी किसी प्रकारके अस्त्रका ही उल्लेख है अन्यथा भेद करना असंभव है।

१ अपवा ग्राही— सूक्त २, मं ५ में अपवा और ग्राही इन दो शब्दोंके द्वारा शत्रुके चित्तोंको मोहित करने अथवा उनको त्रस्त करनेका उल्लेख है। ग्राही शब्दका अर्थ संविभाग इसी अथर्ववेदमें इससे पूर्व अनेक बार आया है। यह अर्थ यदि यहां लिया तो संविभाग जैसे अक्षरोंवाले शब्दद्वारा शत्रुको त्रस्त करनेकी बात व्यक्त हो सकती है। अथवा शब्दका अर्थ रोग व्याधि अथवा मल है। परंतु यह कुछ प्रयोग है इस लिये इन शब्दोंके कोई दूसरे अर्थ भी होना संभव है। यद्यपि ठीक पता नहीं है तथापि ग्राही शब्दका अर्थ पाश होना संभव है जिससे शत्रुको पकडा जाय और बन्धनमें डाला जाय। अप-द धातुसे यदि अपवा शब्द बनाया जाय तो वे धातुका अर्थ तन्तु-संतान होनेके कारण अपवा शब्दका अर्थ जाल अथवा पाश ऐसा संभव है। मंत्रमें—

अप्ये! परेहि अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती अङ्गानि गृहाण॥ (सू २ म ५)

हे अप्ये! आये यह इनके चित्तोंको मोहित करके इनके अंगोंको पकड रख।' यह अपवा अस्त्रका वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि इस नामका किसी प्रकारका जाल शत्रुपर फेंका जाता है, जिसमें पकडे जानेके कारण शत्रु मोहित हो जाते हैं और पश्चात् उनके शरीर पकड कर बांधे जाते हैं। इस मंत्रमें परेहि, अंगानि गृहाण आदि वर्णन यह अपवा कोई शत्रुपर फेंकने योग्य वस्तु है ऐसा निश्चय करता है। अर्थात् ग्राही और अपवा ये दोनों जालोंके समान शत्रुको पकडनेके कुछ साधन विशेष होंगे ऐसा हमारा तर्क है इस विषयके अर्थके लिये इस समयतक कोई प्रमाण हमें मिला नहीं है। शोध करनेवाले पाठक इस विषयमें विशेष शोध करके अर्थनिश्चय करनेमें सहायता दें।

मंत्रोंकी समानता।

इन दोनों सूक्तोंमें मंत्रोंकी समानता है। दोनों सूक्तोंका पहला मंत्र कुछ थोडे पाठभेदसे करीब एक जैसा ही है। प्रथम सूक्तका ५ वां मंत्र और द्वितीय सूक्तका ३ रा मंत्र करीब एक जैसा ही है। प्रथमार्धमें थोडा पाठभेद है। यह समानता पाठक अवश्य देखें।

इन दोनों सूक्तोंके मननसे कुछ विषयका बहुत कुछ बोध प्राप्त हो सकता है। आशा है कि इस दृष्टिसे पाठक इन सूक्तोंका अध्ययन करके लाभ उठायेंगे।

राजाकी स्वराज्यपर पुनः स्थापना।

(१)

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- अग्निः, नानादेवताः)

अग्निरुदस्त्वया मुहद् ध्रुवमध्ये व्यचिस्व रोदसी उरूची ।
पुत्रन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आघुं नय नमसा गृणद्भ्यम् ॥ १ ॥
दूरे चित्सन्तमरुषास इन्द्रमा व्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
बृहद्वयन्ती बहुतीमुर्कमस्मै सोत्रामण्या दधूषन्त देवाः ॥ २ ॥
अमूरुपस्त्वा राजा वरुणो हवतु सोमस्त्वा हवतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा हवतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥
श्येनो हव्य वंसुत्वा परावादन्यक्षेत्रे अपरूढं परन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुम ते इम संवाता अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (इह स्व-पाः भुवत्) यहां अपना रक्षण करनेवाला मनुष्य होवे ऐसा (अग्निरुदस्त्वया) पुकारकर कहा गया है। हे (अग्ने) अग्ने! (उरूची रोदसी व्यचस्व) विस्तृत द्यावापृथिवीमें अपना तेज फैलाओ। (विश्ववेदसः मरुतः त्वा पुत्रन्तु) सब धनवैभवके मरुत् तुझे श्रेष्ठ बनावें। (गृणद्-हव्याय अस्तु) इसलिए पदार्थोंको देनेवाले इस पुरुषके (नमसा आघव) नमस्कारपूर्वक यहां आ ॥ १ ॥

(दूरे चित् सन्तं इन्द्रं) दूर रहनेवाले राजा इसके भी (सख्याय विप्रं आव्यावयन्तु) तेजस्वी मित्रताके लिये यहां ले आवें। (यतु देवाः) क्योंकि सब देव (सो-त्रामण्या) सोमसंधोंके द्वारा (गायत्रीं बृहतीं अर्कं अस्मै दधूषत) गायत्री बृहती इस अर्चन इसके लिये धारण करते हैं ॥ २ ॥

(वरुणः राजा) राजा वरुण (अमूरुपः त्वा हवतु) उसके लिये तुझे पुकारे (सोमः त्वा पर्वतेभ्यः हवतु) सोम तुझे पर्वतोंके लिए पुकारे (इन्द्रः त्वा आभ्यः विड्भ्यः हवतु) इन्द्र तुझे इन प्रजाओंके लिये पुकारे। (श्येनः भूत्वा इमाः विशः आपत) तू श्येन पक्षीके समान तेज धारण करके इन प्रजाओंमें आ जा ॥ ३ ॥

(अन्यक्षेत्रे अपरूढं परावतं परन्तं) अन्य देशमें छिपकर भूमिवाले हुआये शत्रुके राजाको (श्येनः परावात् आवयतु) श्येनवत् वीरताकी दूरसे देशसे ले आवे। (अश्विनौ सुम ते पन्थां कृणुतां) दोनों अश्विनी तुझको अच्छे मार्ग तैरा मार्ग बनावें। (संवाताः इम अभि सं विशध्वं) एकमतीय लोग इसको मिलकर आवें ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस जगत्में मनुष्यको अपना संरक्षण स्वयं करना चाहिये यह बात पुकार पुकारकर वेद आज्ञापित करता है। मनुष्य अग्निवत् तेजस्वी बने और अपना प्रभाव सब जगत्में फैलावे। ऐसे अपने राजाको इस आज्ञानेवाले वीर अधिकारी और प्रजाजन नमस्कारपूर्वक अपने राज्यपदपर स्थापित करें ॥ १ ॥

राजा दूर भी क्यों न गया हो उसको अपने राज्यके हितके लिये तेजस्वी वीर पुरुष ले आवें उत्तम रक्षण करनेके लोभ प्रबंधसे प्रजाजन उत्तम सत्कार करें ॥ २ ॥

सब प्रजाकी रक्षाके लिये सब प्रदेशोंकी रक्षाके लिये पर्वतीय अधिकारी जनोंको रक्षाके लिये मनुष्योंका अग्निरूप तिन्हा मुखिया सम्राट्ने बुलावें तब सम्राट् अपने प्रजाजनोंमें वीरताके भाव विराज ॥ ३ ॥

हर्यन्तु त्वा प्रतिज्ञनाः प्रति मित्रा अधृषत ।
इन्द्राणी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥ ५ ॥
यस्ते हन्तं विवदत्सजातो यश्च निष्टयः ।
अपाञ्चमिन्द्र स कृत्वाथेममिहार्यं गमय ॥ ६ ॥

अर्थ— (प्रतिज्ञनाः त्वा हर्यन्तु) प्रत्येक प्रकारके लोग तुझे चाहें। (मित्राः प्रति अधृषत) मित्र तेरा अब्द करें। (इन्द्राणी विश्वेदेवाः) इन्द्राणी और सब देव (विशि ते क्षेम अदीधरन्) प्रजाजनोंमें तेरे लिये क्षेम धारण करें ॥ ५ ॥

हे (इन्द्र) नरेन्द्र ! (यः सजातः) जो स्वजातीय है (यश्च निष्टयः) और जो विजातीय है (ते हृदय विवदत्) तेरे अन्तःकरणविषयके विषयमें विवाद करे, (तं अपाञ्चं कृत्वा) उसको पराङ्मुख करके (अथ इमं इह आर्यं गमय) पश्चात् इसको यहां आर्यके ॥ ६ ॥

भावार्थ— राजा शत्रुके समक्षमें अन्य देशमें फिर फिरकर भी कभी न रहता हो उसको पुनः अपनी राजधानीपर आकर विराजना उचित है इसी उद्देश्य मानों सूक्त करें और स्वजातीय लोग उसको अपने राज्यमें प्रतिष्ठा करावें ॥ ४ ॥

विजातीय शत्रु राजाका बल बढ़ावें और उसकी सहायता करें सब देश प्रजाके समेत उस राजाका अपमान करें ॥ ५ ॥

यदि स्वजातीय अथवा विजातीय कोई मनुष्य इस नवीन राज्यका विरोध करनेवाला हो तो उसको राज्यसे बाहर करके वह आदर सत्कारसे राजाका प्रवेश अपने राज्यमें कराना चाहिये ॥ ६ ॥

यहां तृतीय सूक्तका अर्थ और भावार्थ हुआ। इसके साथ चतुर्थ सूक्तका अत्यंत घनिष्ठ संबंध है इसलिये उसका अर्थ और भावार्थ पहले देखकर पश्चात् दोनों सूक्तोंका मिलकर विचार करेंगे—

राजा का चुनाव ।

(४)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— इन्द्रः, नानादेवताः)

आ त्वा गन्नाधृङ् सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराड् त्व वि राज ।
सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो हृयन्तूपसदो नमस्यो भवेह ॥ १ ॥

अर्थ— हे राजन् ! (राधृङ् त्वा आगन्) यह राष्ट्र तुझको प्राप्त हुआ है, अब (वचसा सह उद्यहि) उसके साथ अपनेको प्राप्त हो । (विशांपतिः प्राङ् एकराड् त्व विराज) प्रजाओंका स्वामी प्रमुख एक सम्राट् राजा तू विराजमान हो । (सर्वाः प्रदिशः हृयन्तु) सब दिशा और उपदिशाएं तुझे पुकारें और (इह उपसदः नमस्यः भव) यहां पास पहुंचने योग्य और नमस्कारके लिये योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे राजन् ! यह राष्ट्र अब तुझको प्राप्त हुआ है अब अपने तेजसे प्रकाशित कर सब प्रजाओंका एक सम्राट् होकर विराजमान हो । सब दिशा और उपदिशाओंमें रहनेवाले सब लोग तुझ को चाहें और तू उनके लिये प्राप्त होनेयोग्य बनकर उनसे पूजित हो ॥ १ ॥

कर कहा गया है। इस जगत्में यदि मनुष्यको संसारसे जीवित रहना है तो (खपाः) आत्मरक्षा करना उसके लिये अत्यावश्यक है। यह बात जैसी एक मनुष्यके लिये सत्य है वैसी ही एक समाज और एक राष्ट्रके लिये भी सत्य है। जिस समय एक समाज आत्मरक्षा करनेमें सक्षम नहीं रहता उस समय दूसरा समाज उसपर हमला चढानेमें प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार जिस समय एक राष्ट्र आत्मरक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है उसी समय दूसरा राष्ट्र उसपर आक्रमण करता है और उसको परतंत्र बनाकर उसपर अधिकार चलाने लगता है। आत्मरक्षा करनेकी असमर्थता बडा भारी अपराध है जो राष्ट्र परतंत्र हुए हैं वे मानुषसे इस वैदिक उपदेशका महत्त्व भाव सकते हैं। आत्मरक्षाका अत्यंत महत्त्व है इसीलिये इस मंत्रमें कहा है कि यह बात बारंबार पुकार पुकार कर कही है। जो बात अत्यंत महत्त्वकी होती है वही बारंबार पुकार पुकार कर कही जाती है। इस प्रकार जो बात वेदने अनेक बार पुकार पुकार कर कही है वह मनुष्यमात्रकी दृष्टिसे दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है इसमें कोई संदेह ही नहीं है। पाठक इस दृष्टिसे इस आत्मरक्षाके वैदिक उपदेशका स्मरण रखें।

आत्मरक्षाका सामर्थ्य न रखनेवाला राष्ट्र और उसका राजा ही पराभूत होता है और आपत्तिमें गिरता है। आत्मरक्षा करनेवालेकी वैशिष्ट्यादि होती है इस विषयमें इसी मंत्रका अवतरण भाग देखिये—

अग्ने ! तनूस्त्वी रोदसी अन्वाजसा ॥ (सू. १ मं. १)

अग्निके समान तेजस्वी ! तू इस विशाल द्यावापृथिवीके अंदर फैल जाओ। आत्मरक्षा करनेवालेका आदर्श अग्नि है वह अग्नि सदा ऊर्ध्व गतिसे चलता और प्रकाशता है। अतः ऊर्ध्वगामक अग्निकी उपासनाकी यही उपपत्ति है। उपासकोंके सदा उन्नत ही होते रहेंगे और अपना तेज फैलानेमें और संपूर्ण जगत्को प्रकाशमान करेंगे। आत्मरक्षा करनेवालोंका यश जगत्में चारों दिशाओंमें फैलता ही है। आत्मरक्षा करनेवालेकी प्रगति तो अग्निके प्रचंड प्रकाशसे बताई है। जिसका जिस देखकर वैदिकधर्मी आत्मरक्षा करनेके अपने कर्तव्यको कभी न भूलें। अब देखिये कि आत्मरक्षा न करनेवालेकी अवस्था क्या होती है—

अग्नेर्वयमवयक्षं चरन्तं ॥ (सू. १ मं ४)

दूसरेके देशमें प्रतिबंधमें भटकता है। जो आत्मरक्षा नहीं करता वह दूसरेके अधिकारमें प्रतिबंधमें पडता है दूसरे देशमें छिपछिपकर रहता है किसी न किसी प्रकार परिधानमें रहता रहता है। यह आत्मरक्षा न करनेका परिणाम है। यह अवस्थाका भयानक परिणाम आत्मरक्षा न करनेसे प्राप्त होता है यह जानकर मनुष्य समाज राष्ट्र तथा राजा आत्मरक्षाका अपना परमश्रेष्ठ कर्तव्य कभी न भूले। यह आदेश वेद इस सूक्तद्वारा देता है और बारंबार उद्घोषित करता है कि मनुष्य इस आत्मरक्षाकी बातको कभी न भूले।

सौत्रामणी याग ।

सौत्रामणी नामक एक बडा भारी यज्ञ है। इसमें इस श्येन अवतरण भाग कहा है वह तैत्तिरीय संहिताके वचनसे स्पष्ट होता है—

इन्द्रस्य वीर्यं दधत्येन्द्रियं वीर्यं परापतत्। तदेवाः सौत्रामण्या समभरन् ॥

(तै. सं. ५।६।१।४)

इन्द्रका वीर्य इस विधानोंमें विविध मार्गोंसे विखर हो गया था, वह देवोंने सौत्रामणी यागसे एकत्रित किया। अर्थात् इस सौत्रामणी यागका साध्य बिखरी हुई शक्तिको इकट्ठा करना है। सुब्रह्मण्य शब्दका अर्थ है (सु) उत्तम (ब्रह्मन्) रक्षा करनेकी बुद्धिपूर्वक शक्ति। यह जिससे प्राप्त होती है उसको सौ-त्रा-मणी याग कहते हैं। पूर्वोक्त तैत्तिरीय संहिताके वचनमें भी बिखरी हुई इन्द्रकी शक्ति इकट्ठी करनेके लिये ही सौत्रामणी याग बनाया गया और उस अनेक यह शक्ति केन्द्रीभूत होनेसे इत्यादि भाग स्पष्ट है। अर्थात् सौत्रामणी यागसे संगठन होता है और राष्ट्रीय शक्ति बढती है। इसीलिये इस तृतीय सूक्तके द्वितीय मंत्रमें सौत्रामणी यागके द्वारा राज्यभ्रष्ट राजाको फिर राज्यपर लाते हैं, देखिये क्या है—

पूषे सप्तं क्षिप इन्द्रं सख्याय जिन्वसि। आध्यावयन्तु ॥ (सू. १ मं २)

राज्यसे दूर हुए हमारे राजाके सख्यके लिये तेजस्वी सोम उस पुत्र स्वामीसे यहां आवें। राज्यभ्रष्ट राजा अंगीकार या (अन्य-सोमे जगत्सं चरन्तं । मं ४) दूसरे देशमें छिपकर रहता है उसको पुनः राज्यपर स्थापित करनेके लिये हमारे सोम अपने राज्यमें से आवें; उसका सख्य पुनः उसके साथ पूर्ववत् हो; और हमारे इन्द्र ही राज्यासन बैठ जावें; इसलिये यह सब प्रयत्न है। यह सब प्रयत्न करनेके लिये सौत्रामणी याग किया जाता है ऐसा इसी द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है—

देवाः अस्मै गातवो वृद्धतो अर्कै सौत्रामण्या वधूयन्त ।

(सू. १ मं २)

देव इस राजाके लिये पत्नी पृथ्वी आदि रूप अर्थन सत्कार सौत्रामणी यागके द्वारा करते हैं। राजपदपर राजाको बिठलानेका प्रबंध करनेके लिये सौत्रामणी याग करते हैं; इस यागसे अपनी बिखरी हुई शक्तिको इकट्ठी करते हैं और उस शक्ति द्वारा उस राजाके अपने राज्यमें जाकर उसका बड़ा सत्कार करते हैं। इस सत्कारका स्वरूप देखिये—

बृहस्पतो राजा त्वा अमृणः ह्वयतु।
सोमः त्वा पर्वतेभ्यः ह्वयतु।
इन्द्रः त्वा आभ्यः विड्भ्यः ह्वयतु॥
(सू १ मं १)

अश्विना ते सुगं पन्थां कृणुताम्॥
(सू १ म १)

प्रतिजनाः त्वा ह्वयन्तु, मित्राः प्रति अभुवत॥
(सू. १ मं ५)

प्रथम राजा जनस्थानोंके संरक्षणके लिये तुझे बुलावे सोम राजा पर्वतोंकी रक्षाके लिये तुझे बुलावे इन्द्र तुझे इन प्रजाजनोंकी सुव्यवस्थाके लिये बुलावे। अश्विदेव यहां आनेका तेरा मार्ग सुगम करें। प्रत्येक प्रजाजन आदरसे तुझे बुलावे और मित्र बड़ा तेरा बड़ा बढ़ावे।

राज्य प्रबंधमें समुद्र किनारेका प्रबंध पर्वत स्थानोंका प्रबंध ये दो प्रबंध अन्तर्राष्ट्रीय महत्वके हैं और प्रजाजनोंके सुप्रबंधका कार्य राष्ट्रके अंतर्गत व्यवहारका है। समुद्रमें नौका बेड़ा आदिकी रक्षाका प्रबंध करना होता है और पर्वतोंपर भी ऐसे आदिका प्रबंध आवश्यक होता है। प्रजाकी सुव्यवस्थाका प्रबंध तो राज्यव्यवस्थाका मुख्य भाग है ही इसमें कोई संदेह नहीं है। इन प्रबंधोंके करनेके लिये राजाको पुनः राजपदपर स्थापित किया जाय यह तात्पर्य नहीं है। राजाके कर्तव्योंकी भी सूचना यहां मिलती है। सब देवताओंकी सहायता भी इस राजाको प्राप्त हो और इस प्रकार देवताओंकी सहायतासे सम्पन्न बना हुआ अपने देशका राजा बननेके लिये समर्थ हो यह इच्छा प्रजाजनोंके नेताओंके अन्तःकरणमें रहना चाहिये। देखिये इस विषयमें अथर्व मंत्र ही कहता है—

इन्द्राग्नी विश्वे देवाः विड्भि ते क्षेमे अधीवरम्।
(सू १ म ५)

इन्द्र अग्नि और संपूर्ण अन्य देव प्रजामें तेरा सम्मान वर्धित करें। अर्थात् इन देवोंकी कृपासे तेरी प्रजामें भी सम्मान होवे और प्रजाके आनंदके साथ तेरा भी सम्मान होवे। यहां—

ते क्षेमे विशि। (सू १ मं ५)

तेरा (राजाका) सम्मान प्रजामें बसता है। अर्थात् प्रजाजनोंके सम्मान होनेसे ही राजाका सम्मान होना संभव है अन्यथा नहीं। जो राजा प्रजाके सम्मानके साथ अपने सम्मानका संबंध नहीं जानता वह सच्चा राजा ही नहीं है। यजुर्वेदमें भी कहा है कि—

विशि राजा प्रतिष्ठितः। (यजु. २ ।९)

प्रजाके आश्रयसे राजा सुप्रतिष्ठित होता है। प्रजा न हो तो राजा कहां रहेगा? परन्तु राजा न होनेकी अवस्थामें प्रजा रह सकती है, इस कारण कहते हैं कि राजा प्रजाके आश्रयसे रहता है परन्तु प्रजा राजाके आश्रयके बिना भी रह सकती है। अतएव राजाका सम्मान प्रजाके सम्मानमें है। ते क्षेमे विशि इस अथर्व मंत्रका इस दृष्टिसे पठन मनन करें। ऐसे राजाको उचितीय जीवन अपने राज्यमें पुनः स्थापन करें इस विषयमें इस सूक्तका चतुर्थ मंत्र देखिये—

सजातानां इमं (राजानं) अभि-सं-विशाम्यम्॥
(सू १ मं. ४)

सजातीय लोग इस राजाके (अभि) चारों ओरसे (सं) मिल प्रकार (विशन्तं) प्रवेश करनें। राजा अपने राष्ट्रमें आवे तो सजातीयोंके साथ ही आवे। वे उसकी सुरक्षितताका प्रबंध करें और चारों ओर उत्तम प्रबंध रखें राजाकी सुरक्षितताके लिये उत्तम यत्न किया जाय और स्वराष्ट्रमें ऐसे सुप्रबंधके साथ उसका प्रवेश कराया जाय। सजातीय (सजाताः) लोग ही राजाके रक्षक हो सकते हैं परजातीय लोग किस समय धोखा देंगे इसका कोई नियम नहीं है इसलिये राजा भी स्वजातीय लोगोंके ऊपर अधिक विश्वास रखे और उनका योग्य सम्मान करता रहे। यही तो कारण है राजा ऐसे होते हैं कि जो विदेशियों और परकीयोंपर तो अधिक विश्वास रखते हैं और स्वदेशीयों तथा स्वजातीयोंपर अविश्वास करते हैं। इस आत्म घातके वर्तनिका परिणाम उसके अंतमें बुरी तरह भोगना पड़ता है। इसलिये इस मंत्रभागमें स्वजातीय लोगोंके विश्वासमें लेनेकी सूचना की है जो राजनीतिमें विशेष महत्वकी है। जहां स्वजातीय लोग सहायताके लिये तैयार हैं वहां राजा विश्वासपूर्वक जावे और अपना कार्य प्रारंभ करे। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

इमे भूत्वा इमाः विशः आपत॥ (सू १ मं. १)

इसके पहिलेके प्रमाण देखसे इस प्रजामें यह पद अर्थात् यहां प्रजाजनोंके भद्र पुरुष सहायता करनेको तैयार हैं यहां राजाको स्वराके साथ पहुंचकर अपना प्रजापालनका व्रत करना चाहिये।

स्वां विशो वृणतां राज्याय स्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ २ ॥

अच्छा त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्देवो अंहिरः स चरात्यै ।
आयाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहु बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥ ३ ॥

अग्निना त्वाग्ने मित्रावरुणाभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा हुवन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ ४ ॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदुप राजा वरुणस्त्वाह स त्वागमद्वृत्स उपेदमेहि ॥ ५ ॥

अर्थ— (विशः त्वां राज्याय वृणतां) प्रजायें तुझको राज्यके लिये स्वीकार करें (इमाः पञ्च देवीः प्रदिशः) ये दिव्य पांच दिशायें (त्वां वृणतां) तुझको राज्यके लिये स्वीकार करें । तू (राष्ट्रस्य वर्ष्मन् ककुदि श्रयस्व) राष्ट्रके ऐश्वर्यमय उच्च स्थानपर आरूढ कर (ततः उग्रः) पश्चात् उग्र वीर बनकर (नः वसूनि वि भजा) हम सबके लिये धनोंका विभाग कर ॥ २ ॥

(हविनः सजाताः त्वा अच्छा यन्तु) बुलानेवाले सजातीय लोग तुझको सम्मानपूर्वक मिलें (अग्निः अंहिरः देवः सचरात्यै) अग्नि देवताके तुल्य संचार करो । (आयाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु) स्त्रियां और पुत्र उत्तम मनवाले हों । (उग्रः बहु बलिं प्रति पश्यासः) उग्र होकर तू बहुत भेंटको देख ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे (अग्निना मित्रावरुणौ विश्वेदेवाः मरुतः) अग्निदेव मित्रावरुण सब देव और मरुद् (त्वा त्वा हुवन्तु) तुझको बुलावें । (अधा वसु-देयाय मनः कृणुष्व) पश्चात् तू धनका दान करनेके लिये अपना मन कर (ततः उग्रः नः वसूनि वि भज) पश्चात् उग्र होकर हम सबके धनका भाग दे ॥ ४ ॥

(परमस्याः परावतः आ प्रद्रव) अति दूर देशसे यहां आ । (उभे द्यावापृथिवी ते शिवे स्ताम्) द्यौ पृथिवी तेरे लिये कल्याणकारी होवें । (तदु राजा वरुणः) वेद ही यह बात कहता (तत् आह) यह कहता है (सः अर्यः त्वा मरुत्) यह कि तुझको बुलावें (सः इदं उप आ इहि) यह तू इस राष्ट्रका प्राप्त कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— सब प्रजाएं राज्य चलानेके लिये तेरा ही स्वीकार करें । सब दिशा और प्रतिदिशाओंमें रहनेवाले प्रजाजन तुझे ही पसंद करें । तू राष्ट्रके परम उच्च ऐश्वर्यमय राजपदपर आरूढ होकर वीर बनकर हम सबके लिये धनोंका योग्य विभाग कर ॥ २ ॥

तेरी इच्छा करनेवाले सजातीय लोग सन्मानपूर्वक तेरे पासमें रहें अग्निके समान तेज तेजस्वी पुत्र स्त्रियें देखनेमें सुंदर करें । तेरे राष्ट्रमें वर्षपत्निका और बालबच्चे उत्तम मनवाले हों । तू शूरवीर होकर बहुत भेंट प्राप्त कर ॥ ३ ॥

सब देवताएं तेरी सहायता करें । तू धनका दान करनेमें अपना मन स्थिर कर और शूरवीर होकर हम सबमें योग्य विभागसे धन बांट दे ॥ ४ ॥

अरे तू दूर देशमें भी क्यों तो भी अपने राष्ट्रमें कीर्ति ही वापस आ । सब देव तेरी सहायता करें । तू सदा अपने राष्ट्रमें ही रह ॥ ५ ॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्यान्ः परेहि स ब्रह्मास्त्या वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत्स्वे सधस्थे स देवान्यक्षत्स उ कल्पयाद्विशः ॥ ६ ॥
पथ्याः रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अकन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (इन्द्र-इन्द्र) राजाओंके महाराजा ! (मनुष्याः परेहि) मनुष्योंके समान परे जा और (हि वरुणैः संविदानः) वरिष्ठोंसे मिलकर तू (स ब्रह्मास्त्याः) ठीक प्रकार जान सकता है। (सः मयं ते सधस्थे त्वा अह्वत्) वह यह अपने घर तुझे बुलावे (सः देवान् यक्षत्) वह देवोंका यज्ञ करे और (स उ विशः कल्पयतात्) वह सिवासे प्रजाओंको समर्थ करे ॥ ६ ॥

(पथ्याः रेवतीः) सन्मार्गपर चलनेवाली धनवाली (बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य) बहुत प्रकारसे विविध समाजी सब प्रजाएं मिलकर (ते वरीयः अकन्) तेरे लिये श्रेष्ठ स्थान बनाती हैं। (ताः सर्वाः संविदानाः त्वा ह्वयन्तु) वे सब एकमत होकर तुझे बुलावें पश्चात् तू (इह उग्रः सुमनाः दशमीं वश) यहां उग्र और उत्तम मनवाला होकर दसवीं एकछत्र राज्यको वशवर्ती कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— तू साधारण मनुष्योंके समान (मैं अपने आपको मानकर देशमें सर्वत्र भ्रमण कर और राष्ट्रके वरिष्ठ मनुष्योंमें मिलकर सब बातें ठीक प्रकार समझ जा। ऐसा करनेसे लोग अपने परमें तुझे आदरसे बुलावेंगे और वे सहयोग भी करेंगे। इस प्रकार प्रजाओंके साथ मिलजुलकर सब प्रजाके सब प्रकारसे समर्थ कर ॥ ६ ॥

प्रजा सन्मार्गसे चलनेवाली हो और धनवान् हो। बहुत प्रकारके देशभेदोंसे विभिन्न रहनेपर भी सब प्रजा मिलकर एक मनसे तुझे श्रेष्ठ माने और सब एकमतसे तेरी प्रशंसा करे। इस प्रकार वीरतासे और शुभ मनोभावसे युक्त करता हुआ तू दसों दिशाओंके राज्य अपने वशमें रख ॥ ७ ॥

पूर्व सम्बन्ध।

इस तृतीय काण्डके प्रारम्भके दो सूक्तोंमें युद्ध विषय है। शत्रुसेनाके साथ युद्ध करके उसका पूर्ण पराभव करनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश इन दो सूक्तोंमें है। इस प्रकार विजय प्राप्त होनेके पश्चात् अपने राजाका राजधानीमें प्रवेश होता है उस समयके कर्तव्यके ये मंत्र हैं अथवा इस विजयको प्राप्त करके राजा यदि आलसी हो उस समय उसे करने योग्य उपदेश इन दो सूक्तोंमें है। तृतीय और चतुर्थ सूक्त विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर और एक बात प्रतीत होती है वह यह है कि— किसी समय शत्रुसैन्य द्वारा पराजित हुआ राजा किसी दूसरे देशमें या जंगलमें छिपकर रहता है और उसके राज्यपर दूसरे विदेशी राजाका अधिकार होता है। ऐसे समयमें राज्यमें रहनेवाले लोग उस पुराने समयके अधिकारसंपन्न वीर राजाकी स्मृति करते हैं अन्य कोई पुरुषार्थ प्रयत्नसे शत्रुका पराभव करें और अपने पुराने राजाको आदर और सन्मानके साथ पुनः राजगद्दी पर स्थापित करें। यह भी उदाहरण यहां दिखाई देता है। पुराणोंमें इन्द्रकी एक कथा भी इस प्रकारकी कही हुई है कि असुरोंके द्वारा इन्द्रका पराभव हुआ वह भाग गया और छिपकर किसी प्रदेशमें रहा, देवोंने अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे असुरोंका पराभव करके इन्द्रको ढूंढा और पुनः इन्द्रपदपर स्थापित किया। यह कथा महाभारत उद्योगपर्व अ १ से १५ तक पाठक देख सकते हैं। पाठक इन सब राजकीय घटनाओंको मनमें रखते हुए इन दो सूक्तोंका अभ्यास करें और मनन करें। ऐसा करनेसे ही इन सूक्तों द्वारा राजनीतिका बहुमूल्य उपदेश मिल सकता है।

आत्मरक्षा।

शत्रुका पराजय करनेके पश्चात् आत्मरक्षाका बड़ा महत्त्वपूर्ण उपदेश प्रारम्भमें ही किया है। यह उपदेश हरएक देशिकपर्योंको ध्यानमें धारण करना चाहिये—

इह त्व पा मुपसृ (इति) मन्थिकरत् ॥
(सू १ मं १)

यहां आत्मरक्षा करनेवाला मनुष्य मुझे ऐसा पुकार पुकार

कर कहा गया है। इस जगत्में यदि मनुष्यकी सीमासे परिमित रहना है तो (अपाः) आत्मरक्षा करना उसके लिये अत्यावश्यक है। यह बात जैसी एक मनुष्यके लिये सत्य है वैसी ही एक समाज और एक राष्ट्रके लिये भी सत्य है। जिस समय एक समाज आत्मरक्षा करनेमें सक्षम नहीं रहता उस समय दूसरा समाज उसपर हमला चढानेमें प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार जिस समय एक राष्ट्र आत्मरक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है उसी समय दूसरा राष्ट्र उसपर आक्रमण करता है और उसको परतंत्र बनाकर उसपर अधिकार चलाने लगता है। आत्मरक्षा करनेकी असमर्थता बडा भारी अपराध है जो राष्ट्र परतंत्र हुए हैं वे अनुभवसे इस वैदिक उपदेशका महत्त्व जान सकते हैं। आत्मरक्षाका असंदिग्ध महत्त्व है इसीलिये इस मंत्रमें कहा है कि यह बात बारंबार पुकार पुकार कर कही है। जो बात अत्यंत महत्त्वकी होती है वही बारंबार पुकार पुकार कर कही जाती है। इस कारण यह बात वेदने अनेक बार पुकार पुकार कर कही है यह मनुष्यमात्रकी दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है इसमें कोई संदेह ही नहीं है। पाठक इस दृष्टिसे इस आत्मरक्षाके वैदिक उपदेशका आदर करें।

आत्मरक्षाका सामर्थ्य न रखनेवाला राष्ट्र और उसका राजा ही परतंत्र होता है और आपत्तिमें गिरता है। आत्मरक्षा करने जानेकी तेजोवृद्धि होती है इस विषयमें इसी मंत्रका अगला भाग देखिये—

अग्ने ! जरूथी रोदसी व्यचस्व ॥ (सू. १ मं. १)

अग्निके समान तेजस्वी ! तू इस विशाल द्यावापृथिवीके अंदर फैल जाओ। आत्मरक्षा करनेवालेका आदर्श अग्नि है वह अग्नि सदा ऊर्ध्व गतिसे जलता और प्रकाशता है। अग्नेः ऊर्ध्वज्वलनं अग्निकी ऊर्ध्वज्वलनकी वृत्ति धारणकरे। राष्ट्रपतिवीरोंने सदा उन्नत ही होते रहेंगे और अपना तेज फैलानेमें और संपूर्ण जगत्को प्रकाशमान करेंगे। आत्मरक्षा करनेवालोंका यश जगत्में चारों दिशाओंमें फैलता ही है। आत्मरक्षा करनेवालेकी कृति तो अग्निके प्रचंड प्रकाशसे बताई है। जिसको जिसने देखकर वरिष्ठवर्गों आत्मरक्षा करनेके अपने कर्तव्यको कभी न भूलें। अब देखिये कि आत्मरक्षा न करनेवालेकी अवस्था क्या होती है—

अग्नयक्षसे अपरुद्धं चरन्तं ॥ (सू. १ मं ४)

इसीके विपरीत प्रतिपक्षमें भटकता है। जो आत्मरक्षा नहीं करता वह दूसरेके आधारमें प्रतिपक्षमें चलता है, दूसरे देशमें जाकर रहता है किसी न किसी प्रकार बंदिवानेमें सडता रहता है। यह आत्मरक्षा न करनेका परिणाम है। यह परवशताका भयानक परिणाम आत्मरक्षा न करनेसे प्राप्त होता है यह जानकर मनुष्य समाज राष्ट्र तथा राजा आत्मरक्षाका अपना परमसिद्ध कर्तव्य कभी न भूले, यह आदेश वेद इस सूक्तद्वारा देता है और बारंबार ध्वनित करता है कि मनुष्य इस आत्मरक्षाकी बातको कभी न भूले।

सौत्रामणी याग।

सौत्रामणी यागका एक बडा भारी यज्ञ है। इसमें इस यज्ञका साध्य क्या है यह तैत्तिरीय संहिताके वचनसे स्पष्ट होता है—

इन्द्रस्य सुषुवाणस्य इन्द्रियेन्द्रियं वीर्यं परापतत्।
तदेवाः सौत्रामण्या समभरत् ॥
(तै. सं. ५।१।१।४)

इन्द्रका वीर्य यज्ञ विधानोंमें विभिन्न मार्गोंसे विकल हो गया था वह देवोंने सौत्रामणी यागसे एकत्रित किया। अर्थात् इस सौत्रामणी यागका साध्य बिखरी हुई शक्तिको एकत्र करना है। सुषुवाणस्य शब्दका अर्थ है (इ) रक्षण (त्रायस्व) रक्षा करनेकी बुद्धिपूर्वक शक्ति। यह जिससे प्राप्त होती है उसको सौ-त्रा-मणी याग कहते हैं। इसीका तैत्तिरीय संहिताके वचनमें भी बिखरी हुई इन्द्रकी शक्ति एकत्र करनेके लिये ही सौत्रामणी याग बनाया गया और उस यज्ञसे वह शक्ति केन्द्रीभूत होकर इत्यादि बात स्पष्ट है। अर्थात् सौत्रामणी यागसे संरक्षण होता है और राष्ट्रीय शक्ति बढती है। इसीलिये इस तृतीय सूक्तके द्वितीय मंत्रमें सौत्रामणी यज्ञके द्वारा राज्यभ्रष्ट राजाको फिर राज्य प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा है—

दूरे सन्तं पित्रं इन्द्रं स्वर्वाय अरुहास।
आरुक्षायन्तु ।
(सू. १ मं. १)

राज्यसे दूर हुए हमारे पिता-इन्द्रके स्वर्गके लिये तेजस्वी लोग इस यज्ञ स्थानसे यहां चढें। राज्यभ्रष्ट राजा अंतर्यामी रूप (अन्य लोग अपरुद्धं चरन्तं । मं ४) दूसरे देशमें जाकर रहता है उसको पुनः राज्यपर स्थापित करनेके लिये हमारे लोग अपने राज्यमें न आवें, उसका यश पुनः बढानेके साथ पूर्ववत् हो, और हमारे इन्द्र ही राजगद्दीपर बैठ जावें, इसलिये यह यज्ञ प्रयत्न है। यह यज्ञ प्रयत्न करनेके लिये सौत्रामणी याग किया जाता है ऐसा इसी द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है—

इमाः अस्मे गायत्रीं पृहतीं अर्कं सौत्रामण्या
उपयन्त ।
(सू. १ मं. १)

देव इस राजाके लिये मन्त्री पुरोहित आदि रूप अर्चन करकर सोत्रामणी यागके द्वारा करते हैं। राजगद्दीपर राजाको बिठलानेका प्रबंध करनेके लिये सोत्रामणी याग करते हैं; इस यागसे अपनी बिखरी हुई शक्तिका इकट्ठी करते हैं और उस शक्ति द्वारा उस राजाको अपने राज्यमें लाकर उसका यथा सत्कार करते हैं। इस सत्कारका क्रम देखिये—

वरुणो राजा त्वा अनुमद्यः क्रियतु।
सोमः त्वा पर्वतेभ्यः क्रियतु।
इन्द्रः त्वा आभ्यः विड्भ्यः क्रियतु॥
(सू १ मं. ३)

अभिवा ते सुमं पन्थां कृणुताम्॥
(सू १ मं १)

प्रतिजनाः त्वा क्रियन्तु, मित्राः प्रति मनुषत॥
(सू. १ मं ५)

वरुण राजा जलस्थानोंके संरक्षणके लिये तुझे चुनावे सोम राजा पर्वतोंकी रक्षाके लिये तुझे चुनावे इन्द्र तुझे इन प्रजाजनोंकी सुव्यवस्थाके लिये चुनावे। अग्निदेव यहां आदेश तेरा मार्ग सुगम करें। प्रत्येक प्रजाजन आदरसे तुझे चुनावे और मित्र यथा तेरा यश बढावें।

राज्य प्रबंधमें जलपुर किनारेका प्रबंध पर्वत स्थानोंका प्रबंध ये दो प्रबंध अन्तर्राष्ट्रीय महत्वके हैं और प्रजाजनोंके सुव्यवस्था कार्य राष्ट्रके अंतर्गत व्यवहारका है। जलपुरमें नौका जलदुर्ग आदिकी रक्षाका प्रबंध करना होता है और पर्वतोंपर भी सैन्य आदिका प्रबंध आवश्यक होता है। प्रजाकी सुव्यवस्था प्रबंध तो राज्यव्यवहारका मुख्य भाग है। इसमें कोई संदेह नहीं है। इन प्रबंधोंको करनेके लिये राजाको पुनः राजगद्दीपर स्थापित किया जाय यह तात्पर्य यहां है। राजाके कर्तव्योंकी भी सूचना यहां मिलती है। उस देवताओंकी यहां यश भी इस राजाको प्राप्त हो और इस प्रकार देवताओंकी सहायतासे बलवान बना हुआ अपने देशका राजा बननेके लिये अग्नि है यह इच्छा प्रजाजनोंके नेताओंके अन्तःकरणमें रहना चाहिये। देखिये इस विषयमें अगला मंत्र क्या कहता है—

इन्द्राग्नी विश्वे देवा विशि ते इमं अधीधरन्।
(सू १ म ५)

इन्द्र अग्नि और संपूर्ण अन्य देव प्रजामें तेरा सम्मान स्थापित करें। अर्थात् इन देवोंकी कृपासे तेरी प्रजाका भी सम्मान होने और प्रजाके आदरके साथ तेरा भी सम्मान होने। यहां—

ते इमं विशि। (सू १ मं ५)

तेरा (राजाका) सम्मान प्रजामें बसता है। अर्थात् प्रजाजनोंके सम्मान द्वारासे ही राजाका सम्मान होना संभव है अन्यथा नहीं। जो राजा प्रजाके सम्मानके साथ अपने सम्मानका संबंध नहीं जानता वह सच्चा राजा ही नहीं है। मनुस्मृतिमें भी कहा है कि—

विशि राजा प्रतिष्ठितः। (मनु. २ ।९)

प्रजाके आश्रयसे राजा सुप्रतिष्ठित होता है। प्रजा न हो तो राजा कहां रहेगा? परन्तु राजा न होनेकी अवस्थामें प्रजा रह सकती है इस कारण कहते हैं कि राजा प्रजाके आश्रयसे रहता है परन्तु प्रजा राजाके आश्रयके बिना भी रह सकती है। अतएव राजाका सम्मान प्रजाके सम्मानमें है। ते इमं विशि इस अर्थपूर्ण मंत्रका इस दृष्टिसे पाठक मनन करें। ऐसे राजाके सजातीय लोग अपने राज्यमें पुनः स्थापन करें इस विषयमें यह सूक्तका चतुर्थ मंत्र देखिये—

सजाताः इमं (राजानं) अभि-सं-विशध्वम्॥
(सू १ मं. ४)

सजातीय लोग इस राजाके (अभि) चारों ओरसे (सं) ठीक प्रकार (विशध्वं) प्रवेश करें। राजा अपने राष्ट्रमें आवे तो सजातीयोंके साथ ही आवे। वे उसकी सुरक्षितताका प्रबंध करें और चारों ओर उत्तम प्रबंध रखें, राजाकी सुप्रतिष्ठताके लिये उत्तम बल किया जाय और स्वराष्ट्रमें ऐसे सुप्रबंधके साथ उसका प्रवेश कराया जाय। सजातीय (सजाताः) लोग ही राजाके रक्षक हो सकते हैं, परजातीय लोग किस समय धोखा देंगे इसका कुछ निश्चय नहीं है इसलिये राजा भी स्वजातीय लोगोंके ऊपर अधिक विश्वास रखे और उनका योग्य सम्मान करता रहे। यही तो कई राजा ऐसे होते हैं कि जो विदेशियों और परजातीयोंपर तो अधिक विश्वास रखते हैं और स्वदेशीयों तथा स्वजातीयोंपर अविश्वास करते हैं। इस अविश्वासके बुरे परिणाम उसको अंतमें बुरी तरह भोगना पड़ता है। इसलिये इस मंत्रभागने स्वजातीय लोगोंके विश्वासकी जैसेकी सूचना की है जो राजनीतिमें विशेष महत्त्वकी है। जहां स्वजातीय लोग सहायताके लिये तैयार हैं वहां राजा विश्वासपूर्वक जावे और अपना कार्य प्रारंभ करे। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

इयेनः भूत्वा इमाः विशः आपत॥ (सू १ मं १)

जैसे पक्षीके समान वेगसे इस प्रजामें आ यह अर्थात् यहां प्रजाजनोंके अति पुरुष सहायता करनेको तैयार हैं वहां राजाको उत्साहके साथ पहुंचकर अपना प्रजासम्बन्ध जोड़ना चाहिये।

शुभसंकल्प ।

प्रजाजनोंके शुभसंकल्पवाले बनाना भी राजाका एक मुख्य कर्तव्य है इसका प्रारंभ राष्ट्रकी माताओं और राष्ट्रके सुपुत्रोंसे होना योग्य है इस विषयमें कहिये—

आयाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु । (सू ४ म १)

हे राजन् ! तू अपने राज्यमें विद्वानोंका प्रबंध ऐसा कर कि जिससे स्त्रियां और बालकवर्ग उत्तम विचारवाले बनें। जिस राष्ट्रकी माताएं और बालकवर्ग सब उत्तम विचारवाले बने हों उस राष्ट्रकी उन्नति अवश्यमेव हो सकती है। सुविचारवाली कन्याएं और शुभसंकल्पवाले कुमार राष्ट्रमें सहजमेव ही ब्रह्मचर्यका वातावरण बन सकता है, अन्यथा जो होना संभव है वह अवश्यमेव प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है। राष्ट्रमें शिक्षाके अधिकारी शिक्षक तथा अन्य प्रबंधके शासनाधिकारी जिस समय उत्तम ब्रह्मचारी हो सकते हैं उस समय ही राष्ट्रकी सब कन्याएं और सब कुमार उत्तम संस्कारवाले हो सकते हैं। पाठक इस वाक्यका खूब विचार करें। यह एक अपूर्व उपदेश वेदने यहां बताया है जो प्राचीन समय व्यवहारमें आया था परन्तु अब वह फिर कौन व्यवहारमें आवेगा ऐसा दिखाई नहीं देता। क्योंकि अविद्याका वातावरण बन रहा है। इसलिये वैदिकधर्मी आर्योंको उचित है कि वे कुमारी और कुमारोंके अन्दर पवित्र विचारका वातावरण उत्पन्न करनेका प्रबंध करें और यह आदर्श अपने मनमें सदा जागृत रखें।

राजाका रहना सहना ।

राजाका व्यवहार सौधासादा हो राजा साधारण मनुष्य जैसा बनकर किसी किसी समय राष्ट्रमें भ्रमण भी करे और प्रजाके वास्तविक सुख-दुःखका अवलोकन करे। इस विषयमें आदेश देखिये—

इन्द्रेष्ट ! मनुष्याः (चर) परेहि,
बरुणेः संविदानः सं अहाद्याः ॥
स अर्य त्या स्वे सधस्थे महत्
स उ दयान् यसत्, विशः कल्पयात् ॥
(सू ४ मं ६)

हे राजन् ! साधारण लोगोंके समान बनकर तू घूमते बनजानेमें भ्रमण कर, वहांके भद्र मनुष्योंके साथ मिलजुलकर उनकी अच्छी अवस्थाको जान। वे तुझे अपने घर बुलावें और यज्ञ करें; इस प्रकार प्रजाओंकी उन्नति कर।

यह मंत्र बहुत दृष्टियोंसे मननपूर्वक देखने योग्य है। सबसे प्रथम इसमें यह कहा है कि राजा किसी किसी समय अपने दरबारी वातावरणको अलग करके स्वयं साधारण मनुष्योंके वेषमें होकर साधारण मनुष्योंके समान बनकर नगरोंमें भ्रमण करे और अपने आंखोंसे देखे कि अपने प्रजाकी अवस्था कैसी है, क्या प्रजा किसी प्रकार कष्टमें है या सुखमें है। अपने कर्मचारी प्रजाके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। कहांके जो (वरेण्य = वरेण्य) प्रमुख लोग हों जो विशेष समझदार हों उनसे मिलकर सब अवस्थाको जान ले कि किस बातमें सुधार करने प्रजाका सुख बढाना चाहिये। ऐसा सब देखनेसे तुझे पता लग जायगा कि राज्यप्रबंधमें दोष कहां है और गुण कहां है। दूसरी बात इसी मंत्रमें जो कही है वह यह है कि प्रजाके लोग राजाके विशेष समय अपने घर बुलावें राजा वहां जाय उनके साथ मिलजुलकर बातचीत करे सब मिलकर खा, पिया आदि करें, इस रीतिसे राजा प्रजाको समर्थ बनावे और प्रजाकी उन्नति करे।

ये सभी उपदेश उत्तम हैं और जैसे राजाके वैसे ही राजपुरुषोंके भी सदा मनन करने योग्य हैं।

दूतका संचार ।

राजा स्वयं अपने राज्यमें भ्रमण करे और सब व्यवस्था सब अपने आंखसे देखे इस विषयमें ऊपर कहा ही है; परन्तु अनेक राजा कहांतक भ्रमण कर सकता है और कहांतक देख सकता है राजा कोई दूतोंके आंखोंसे ही देख सकते हैं, इसलिये दूतोंका संचार करानेके विषयमें तृतीय मंत्रमें कहा है—

अहिरः दूतः संचरतौ । (सू ४ मं १)

तुम दूत संचार करो। राष्ट्रमें दूतोंका संचार करके राजा सब जानने योग्य बातें जान लेवे। और इस प्रकार अपने शासन प्रबंधमें जो कुछ न्यूनाधिक करना हो वह करता रहे। अर्थात् दूत संचार यह शासनका एक आवश्यक अंग है क्योंकि इससे राज्यके शासन विषयक प्रजाके सुख-दुःखोंका पता लगता है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करके अपना शासन चलानेवाला राजा प्रजाको अधिक प्रिय होता है इसलिये प्रभु भी अब राजाको अनेक विविध प्रकारकी भेंट देकर करते हैं। इस विषयमें देखिये—

(१) हविषः सजाताः त्वा अच्छ यन्तु ॥
(सू ४ मं १)
(२) उग्रः बाहुः वर्धिं प्रति पक्ष्यासे ॥ (सू ४ मं १)

(१) हवि लेकर सजातीय लोग तेरे सम्मुख उपस्थित हों। (२) उग्र बनकर बहुत भेंट तू देखेगा। इसी प्रकार प्रजासे बडा सत्कार राजा प्राप्त कर सकता है। तब—

(१) ते द्यावापृथिवी शिवे स्ताम् । (सू ४ मं ५)
(२) उग्रः सुमनाः इह वध्रमी वधा ।
(सू ४, मं ७)

(१) हे राजन् ! तेरे लिये द्यावापृथिवी क्षेमयोगपूर्ण हों और (२) तू उग्र तथा उत्तम मनवाला बनकर यहां की वर्ष तक राज्यको अपने वशमें कर । इसी प्रकार सब देवोंकी सहायता इस राजाके लिये (मं ४) इत्यादि प्रकारकी इच्छा वेद उसी समय करते कि जिस समय राजा भी प्रजाका सुख बढ़ानेमें दत्तचित्त होता हो । जो राजा प्रजाके सुखकी पर्वाह न करता हो उसके हितादिकी फिक्र प्रजा भी नहीं करती । इसलिये हरएक राजाके सदा ध्यानमें यह बात रखना चाहिये कि मेरे पास जो राजपद आया है वह प्रजापालन करनेके लिये आया है न कि अपने सुखभोग भोगनेके लिये । यह भाव मनमें रखता हुआ राजा अपना कर्तव्य वेदोक्त रीतिसे पालन करे ।

वरुण ।

यहां एक वैदिक वर्णन शैलीकी विशेषता आ पड़ी है वह अवश्य देखने योग्य है । इन्द्र, वरुण आदि शब्द देवताओंके वाचक ही होते हैं अन्य किसीके वाचक नहीं हो सकते । एवं सामान्य तथा साधारण लोग समझते हैं । परंतु ये शब्द कभी कभी विशेषण रूप होकर किसी अन्यके गुणबोधक होते हैं और कभी वही किसी अन्य पदार्थके वाचक भी होते हैं । यहां वरुण शब्द बहुवचनमें आया है इसलिये वह वरुण देवता वाचक निःसंदेह नहीं है क्योंकि जिस समय वरुण देवताका वाचक यह शब्द होता है उस समय वह सदा एकवचनमें ही होता है । यह बहुवचनमें होनेके कारण यह यहां प्रजाजनोंका वाचक है । वरुण वरण धर्म इस प्रकार यह 'वर्णोंके लोगों' का वाचक हो सकता है किंवा वर अर्थात् श्रेष्ठांश भी वाचक हो सकता है । यहां इसारे मतसे वर्ण अर्थ लेना अधिक योग्य है तथापि इसका आपके विचार पाठक करें ।

राजा और राजाके बनानेवाले ।

(५)

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — सोमः)

आयमगन्पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥ १ ॥
मयि क्षत्र पर्णमणे मयि धारयतादुविम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

अर्थ— (अयं पर्णो पणमणिः) यह वनस्थान् पणमणि (बलेन सपत्नान् प्रमृणन्) बलसे शत्रुओंका नाश करता हुआ (आ अगन्) आया है । यह (देवानां ओजः) देवोंका बल और (ओषधीनां पयः) औषधियोंका रस है । यह (अप्रयावन् वचसा मा जिन्वतु) विरोध न करता हुआ तेजसे मुझे संयुक्त करे ॥ १ ॥

हे पर्णमणे ! (मयि क्षत्र) मुझमें क्षात्रबल और (मयि रयिं धारयतात्) मुझमें धन धारण कर । (अहं राष्ट्रस्य अभीवर्गे) मैं राज्यके आप्तपुरुषोंमें (उत्तमः निजः भूयासं) उत्तम निज बनकर रहूं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह पर्णमणि बल बढ़ानेवाला अपने बलसे शत्रुओंका नाश करनेवाला देवोंका सर्वस्व और ओषधियोंके रससे बननेवाला है यह मुझे अपने तेजसे युक्त करे ॥ १ ॥

इससे मुझमें क्षात्रतेज और ऐश्वर्य बढ़े आर मैं राष्ट्रका हितसाधन करनेवालोंमें अर्थात् राज्यका निजवर्गी बनकर रहूंगा ॥ २ ॥

विरोधी मनुष्य ।

स्वजातीय लोग प्रायः सदा राजाकी सहायताके लिये तैयार ही रहेंगे क्योंकि राजाका गौरव बढनेसे उनका भी यश बढता ही है तथापि कई लोग शत्रुपक्षसे मिलकर उत्तम राजाको राष्ट्रमें पुनः स्थापित करनेके विरोधी भी होना संभव है उनका क्या किया जाय यह शंका यहां हो सकती है इस शंकाका उत्तर इस सूक्तके पद मन्त्रमें दिया है देखिये—

यः स्वजातः यः च विशत्यः ते हेडं निवपन्तु
तं अपार्चं कृत्वा अथ इमं इह अवगमय ॥
(सू १ मं १)

कोई स्वजातीय अथवा कोई विजातीय या विरोधीय मनुष्य तेरे राज्यारोहणके शुभ प्रसंगके विरुद्ध विचार खडा करनेवाला हो तो उसको धिक्कृत करके पश्चात् इस राजाके यहां ले आओ ।

सर्व संमतिसे जिस राजाको राज्यकी गद्दी दी जाती है, उसके विरुद्ध कार्यवाही करनेवाला यदि कोई मनुष्य हो तो (अपार्चं तं कृत्वा) उसको अलग करके ही अन्य सब लोगोंको अपना प्रकृत कर्तव्य करना चाहिये। राज्यकी अंतर्गत व्यवस्था करनेके प्रसंगमें इस प्रकारके कई झगडे होते ही रहते हैं, इस लिये उसको दूर करनेका एक उपाय यहां बताया है इसके अनुसंधानसे पाठक अन्य उपाय भी ढूंढ सकते हैं ।

चतुर्थ सूक्त ।

यहां तृतीय सूक्तका विचार समाप्त हुआ और अब इसी विषयसे संबंध रखनेवाले चतुर्थ सूक्तका विचार करते हैं । तृतीय सूक्तका संबंध बाहर रहनेवाले राजाको पुनः स्वराज्यमें आकर राज्यपर स्थापित करनेके महत्त्वपूर्ण कार्यके साथ है और इस चतुर्थ सूक्तका संबंध सर्वसाधारण प्रजाको और विशेषतः प्रजाके चुने हुए राजाको राजगद्दीपर बिठलानेके कार्यके साथ है, इसलिये इस चतुर्थ सूक्तका संबंध एक रीतिसे तृतीय सूक्तके साथ है और दूसरे विचारसे देखा जाय तो यह चतुर्थ सूक्त स्वतंत्र भी है । राजाका राज्याभिषेक इस चतुर्थ सूक्तका मुख्य विषय है। इस सूक्तमें प्रजाद्वारा राजाका चुनाव होनेका वर्णन मुख्य स्थान रखता है यही पहले देखिये—

राजाका चुनाव ।

राजाका पुत्र हो अथवा पक्का ही योग्य वीर हो उसको प्रजाकी संमतिसे ही राज्य प्राप्त होता था । श्रीरामचंद्र जैसे सर्वगुण पुरुषोंको भी राज्य प्राप्त होनेके लिये प्रजाकी अनुमति अनिवार्य थी इस बातको देखनेसे प्रजाकी संमति प्रथम प्रकृति रखती थी ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है इस सूक्तमें इस विषय पर बहुत ही उत्तम प्रकाश डाला है देखिये—

प्रदिशः देवीः इमाः पञ्च विशः त्वा राज्याय वृणताम् । (सू. ४ मं. १)

दिशा उपदिशाओंमें रहनेवाली यह दिव्य पांच प्रकारकी प्रजा तुझको राज्यके अभिषेकके लिये चुनें । प्रजा राज्यासन चलानेके लिये तेरा स्वीकार करे ऐसा कहने मात्रसे राजपदपर राजाको रखने या न रखनेका अधिकार प्रजाके आधीन है यह बात सर्व सिद्ध होती है । अथर्ववेदमें इस बातको बतानेवाले कई सूक्त हैं उनका विचार उनके स्थानपर यथावसर होगा, पाठक भी ऐसे स्थान स्थानपर आनेवाले लेखोंका इकट्ठा करके सबका मिलकर इकट्ठा विचार करेंगे तो उनको वैदिक राजनीति शास्त्रका ज्ञान होगा । असतु । इस प्रकार राजाका चुनाव करके उसको राज्यपदके लिये स्वीकार करनेका अधिकार प्रजाका है यह बात इस मन्त्रभाग द्वारा सिद्ध होनेके बाद इस सूक्तके इसी भागके पोषक मंत्रभाग यहां देखिये—

हे राजन् ! सर्वाः प्रदिशः (प्रजाः) त्वा वृणन्तु । (सू. ४ मं. १)
इयं विशः स्वजाताः त्वा अयक्ष्मा वनन्तु । (सू. ४ मं. १)
बहुधा विरूपाः सर्वाः (प्रजाः) संमत्यै ते वशीयः अस्तम् । (सू. ४ मं. ७)
ताः संविदानाः सर्वाः (प्रजाः) त्वा वृणन्तु । (सू. ४ मं. ७)

हे राजन् ! सब दिशाओंमें रहनेवाली सब प्रजा तुझे चुनें । मेल करनेवाले स्वजातीय लोग तेरे समुख आ जावें । बहुत करके विभिन्न आकृतिकी सब प्रजा एकत्र जमा करके तुझे ले आवें । यह जाननेवाली सब प्रजा तुझे ही चुनें । इत्यादि अनेक प्रजाकी अनुमति राजाके लिये अत्यंत आवश्यक है यही बात बता रहे हैं । इसलिये इस सूक्तका स्पष्ट आशय यही है कि प्रजाद्वारा स्वीकृत होकर ही राजा राजगद्दीपर आ जावे । किसी पुरुषको अन्यायतः राजपदका अधिकार नहीं हो सकता परंतु जिसको प्रजा स्वीकृत करे वही राजपदके लिये योग्य हो सकता है । इस सूक्तके उत्तरार्धमें यह महत्त्वपूर्ण बात पाठक अवश्य देखें और वैदिक धर्मके अनुकूल प्रजानिमुख तथा प्रजासंमत ही राजा है यह स्मरण रखें ।

प्रजाका पालन ।

राज्याभिषेकके समय ही प्रजाके चुने और पसंद किये राजाको राजगद्दीपर अभिषिक्त होनेके समय बताया जाता है कि अब तक प्रजापालनका कर्तव्य है । देखिये—

१ राष्ट्रं त्वा आगन्
२ धर्षसा सह उदिहि
३ विशां पति प्राङ् एकराड् स्यं विराज
४ उपसदः नमस्याः त्व इह भव ॥ (सू. ४ मं १)

हे राजन्! (१) अब तेरे पास यह राष्ट्र आगया है, (२) अपने प्रभावके साथ उदयको प्राप्त हो (३) प्रजाका पालक मुख्य एक राजा होकर तू विशेष प्रकाशमान हो (४) तथा सब प्रजाओंके पास जाने योग्य और नमस्कार करने योग्य बन। इस प्रथम मन्त्रमें प्रजा-पति बन यह आदेश है। पति शब्दका यद्यपि प्रसिद्ध अर्थ स्वामी वा मालिक है तथापि यह शब्द पा धातुसे बननेके कारण (पाति रक्षति) पालन करनेवालेका वाचक ही मुख्यतया यह शब्द है। जो पालन करता है वही पति कहलाने योग्य है, इसलिये प्रजापति (विशां पतिः) से सब प्रजापालन रूप राजाका कर्तव्य बताते हैं। राजा शब्द भी वस्तुतः अनियंत्रित राजाका वाचक नहीं है, अपितु (रंजयति) प्रजाका रंजन करनेवाले उत्तम राजाका वाचक है। इस प्रकार यहां प्रजापालन रूप राजाका मुख्य कर्तव्य बताया है। ऐसे राजाको ही प्रजा प्रसन्न (नमस्या) नमन करती है अर्थात् उसीका सत्कार करती है। राजा ऐसा हो कि जो आवश्यकता पड़नेपर प्रजाको (उपसदः) मिल सके। विलास दर्शन प्रजा कर सके ऐसा राजा हो। जो राजा सदा मंत्रियोंसे घिरा रहता है और अपने प्रजाका दर्शन भी नहीं कर सकता वह प्रजासे नमस्कार कैसा प्राप्त कर सकता है। इससे स्पष्ट हो सकता है कि प्रजाका नमस्कार प्राप्त करनेके लिये प्रजाके मिलना आवश्यक ही है।

इस मंत्रके (राष्ट्रं त्वा आगन्) राष्ट्र तेरे पास आगया है इस वाक्यसे स्पष्ट हो रहा है कि राष्ट्र अपनी सम्मतिसे तेरे समीप आता है अर्थात् राष्ट्रके पास अनेकोंके प्रजाजनोंसे राजपदके लिये तुझे चुना है इसलिये उनकी निज सम्मतिसे ही यह राष्ट्र तुझे प्राप्त हुआ है, इस कारण तुझे उचित है कि तू राष्ट्रका पालन ऐसा कर कि सदा सर्वदा भविष्य कालमें राष्ट्रकी सम्मति तेरे अनुकूल ही रहे और कभी प्रतिकूल न बने। इस मंत्रका विचार करके पाठक जानें कि राजाको प्रजाकी अनुकूल सम्मतिकी कितनी आवश्यकता है। प्रजाकी अनुमतिके बिना राजा राजपदपर रह ही नहीं सकता यह स्पष्ट लक्षण यहां प्रतीत होता है।

धनोंका विभाग।

प्रजाओंमें धनका विषम विभाग हुआ तो अति धनी बने हुए लोग निर्धनोंपर क्या क्या अत्याचार करते हैं और उस कारण निर्धन लोग पीसे जाते हैं। इसलिये राजाके आवश्यक कर्तव्योंमेंसे एक यह कर्तव्य वेदने बताया है कि वह प्रजाओंमें योग्य प्रमाणसे धनविभाग करे। धनकी विषमता प्रजामें न हो इस विषयमें वेदमें स्थान स्थानपर आदेश है—

१ राष्ट्रस्य वध्मम् अनु वि भजस्व
ततः उग्रः (भूत्वा) नः वसूनि वि भज ॥
(सू. ४ मं. २)

२ अथ मनः वसुदेयाय कृणुष्व
ततः उग्रः (भूत्वा) नः वसूनि वि भज ॥
(सू. ४ म ४)

(१) राष्ट्रके ऐश्वर्यमय रथ स्थानपर बढ़कर, उग्र बनकर हमारे लिये धनको विभक्त कर। (२) पश्चात् अपना मन धनके दानके लिये अनुकूल कर, उग्र बनकर हमारे लिये धनका विभाग करके बांट दे। इन दो मंत्रभागोंमें पहले कहा है कि हे राजन्! तू सबसे पहले राष्ट्रके अर्थात् उस स्थानपर अर्थात् राजपदपर आरूढ हो पश्चात् उग्र बन अर्थात् तरम दिखानेवाला बन और प्रजामें धनका विभाग कर।

यद्यपि राजा प्रजाकी अनुमतिसे ही राजपदपर बैठता है तथापि उसके पदपर बैठनेके पश्चात् उग्र बनना चाहिये। यदि वह उग्र दिखानेवाला बनेगा तो उससे राजाके कर्तव्य ठीक प्रकार निभाने जाना असम्भव है। धर्माधर्मका निर्णय करके अधर्माचरण करनेवालोंको योग्य शासन करनेका धर्म उग्र बननेके बिना नहीं हो सकता। इसलिये राजाको उग्र बनना अर्थात् आवश्यक है। उग्र बनकर और पक्षपात छोड़कर अपना कर्तव्य राजाको करना चाहिये।

धनविभाग ठीक प्रकार करनेके लिये राजाको न तो धनि लोगोंका पक्षपात करना योग्य है और न ही निर्धनोंका पक्ष लेना चाहिये। राष्ट्रमें धन विषम प्रमाणमें न बंट जाय यह देखते हुए अपना धनविभागरूप कर्तव्य पूर्ण करना चाहिये। यह बड़ा कठिन है, परंतु राष्ट्रकी सुस्थितिके लिये अत्यंत आवश्यक है। धनकी विषमता अधिकारकी विषमता अवस्थाकी विषमता और जातीकी उन्नतीकी विषमता आदि अनेक विषमताएं होती हैं, उनमें धन और अधिकारकी विषमता बड़ी घातक होती है, इस विषमताके कारण बने हुए मनुष्य छूटना कठिन हो जाता है और जो बड़ी जातीकी भयावह स्थिति होती है वह सब जानते ही हैं। इसलिये धनविभाग नामक राजाके कर्तव्यमें धनविषयक विषमता दूर करनेका उपदेश किया है। इसका महत्व पाठक समझें।

शुभसंकल्प ।

प्रजाजनोंको शुभसंकल्पवाले बनाना भी राजाका एक मुख्य कर्तव्य है, इसका प्रारंभ राष्ट्रकी माताओं और राष्ट्रके सुपुत्रोंसे होना चाहिये इस विषयमें देखिये—

आयाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु । (का. ४ सू. १)

हे राजन् ! तू अपने राज्यमें शिक्षाका प्रबंध ऐसा कर कि जिससे स्त्रियां और बालकभी उत्तम विचारवाले बनें। जब राष्ट्रकी माताएं और बालकभी उत्तम विचारवाले बनें तो उस राष्ट्रकी उन्नति अवश्यमें हो सकती है। सुविचारवाली कन्याएं और सुसंस्कारवाले कुमार राष्ट्रमें बहुसंख्य हों तभी सर्वत्र वातावरण बन सकता है, अन्यथा जो होना संभव है वह आजकल प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है। राष्ट्रमें विद्याके अधिकारी शिक्षक तथा अन्य प्रबंधक शासनाधिकारी जिस समय उत्तम सदाचारी हो सकते हैं उस समय ही राष्ट्रकी सब कन्याएं और सब कुमार उत्तम संस्कारवाले हो सकते हैं। पाठक इस बातका खूब विचार करें। यह एक अपूर्व उपदेश वेदने यहां बताया है जो प्राचीन समय व्यवहारमें आता था परन्तु अब वह फिर लोक व्यवहारमें आनेका ऐसा दिखाई नहीं देता। क्योंकि अनैतिक वातावरण बन रहा है। इसलिये वैदिकधर्मी बन्धुओंको उचित है कि वे कुमारी और कुमारोंके अन्दर पवित्र विचारका वातावरण उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें और यह आदर्श अपने मनमें सदा जागृत रखें।

राजाका रहना सहना ।

राजाका व्यवहार जीवनमात्रा हो राज्य साधारण मनुष्य जैसा बनकर किसी किसी समय राष्ट्रमें भ्रमण भी करे और प्रजाके वास्तविक सुख-दुःख अवलोकन करे। इस विषयमें आदेश देखिये—

इन्द्रेषित ! मनुष्याः (वद्) परेहि,
बहवेः संविदानः सं भवास्यै ॥
स त्वा स्वे सधस्थे भवत्
स च देवान् यक्षद्, विशः कल्पयात् ॥
(का. ४ सं. ६)

हे राजन् ! साधारण लोगोंके समान बनकर तू बहुत बातोंमें प्रवेश कर, वहांके भिन्न मनुष्योंके साथ मिलजुलकर उनकी उन्नति अवस्थाको जान। वे तुझे अपने घर बुलावें और यज्ञ करें; इस प्रकार प्रजाओंकी उन्नति कर।

यह मंत्र बहुत दृष्टिसेसे मननपूर्वक देखने योग्य है। सबसे पहिले इसमें यह कहा है कि राजा किसी किसी समय अपने दरबारी वातावरणको अलग करके सर्व साधारण मनुष्योंके वेषमें होकर साधारण मनुष्योंके समान बनकर नगरोंमें भ्रमण करे और अपने आंखोंसे देख कि अपने प्रजाकी अवस्था कैसी है क्या प्रजा किसी प्रकार दुःखमें है या सुखमें है। अपने कर्मचारी प्रजाके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। वहांके जो (दक्षेषु = चतुरः) प्रमुख लोग हों जो विशेष समझदार हों उनसे मिलकर सब अवस्थाको जान ले कि किस बातमें सुधार करके प्रजाका सुख बढाना चाहिये। ऐसा सारे देशमेंसे तुमने पता लगाना कि राज्यव्यवस्थामें दोष कहां है और गुण कहां है। दूसरी बात इसी मंत्रमें जो कही है वह यह है कि प्रजाके लोग राजासे विशेष समय अपने घर बुलावें राजा वहां जावे उनके साथ मिलजुलकर बातचीत करे, सब मिलकर यज्ञ, दान आदि करें। इस रीतीसे राजा प्रजाको उन्नत बनावे और प्रजाकी उन्नति करे।

ये सभी उपदेश उत्तम हैं और जैसे राजाका वैसे ही एक-दूसरोंके भी यहां मनन करने योग्य हैं।

[८] धूतका संचार ।

राजा सर्व अपने राज्यका भ्रमण करे और सब अवस्था सर्व अपने आंखसे देखे इस विषयमें ऊपर कहा ही है; परंतु अनेक राजा व्यापक भ्रमण कर सकता है और व्यापक देख सकता है राजा लोग दूतोंके आंखोंसे ही देख सकते हैं, इस लिये दूतोंका संचार करानेके विषयमें तृतीय मंत्रमें कहा है—

अजिरः दूतः संचरतै । (का. ४ सं. ३)

तुम दूत संचार करे। राष्ट्रमें दूतोंका संचार करके राजा सब जानने योग्य बातें जान लेवे। और इस प्रकारे अपने राज्य प्रबंधमें जो कुछ न्यूनाधिक करना हो वह करता रहे। अर्थात् दूत संचार यह शासनका एक आवश्यक अंग है क्योंकि इससे राजाको शासन विषयक प्रजाके सुख-दुःखोंका पता लगता है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करके अपना शासन चलानेवाला राजा प्रजाको अधिक प्रिय होता है इसलिये मंत्र भी इस राज्यका संस्कार विविध प्रकारकी भेद देकर करती है। इस विषयमें देखिये—

(१) इषिमः राजानाः तथा अस्तु एतु ॥
(का. ४ सू. १)
(२) सभाः वाहुं वाजिनं प्रति पश्याते ॥ (का. ४ सू. १)

(१) इषि जैसा राजाओंके लोग तेरे अनुकूल व्यवहार हों। (२) सभा बनाकर बहुत वेग तू देखेगा। इसीप्रकार प्रजासे बना संस्कार राज्य प्राप्त कर सकता है। तथा—

(१) ते द्यावापृथिवी शिवे स्ताम्। (सू. ४ मं. ५)
(२) उग्रा सुमनाः इह वसामी वश।
(सू. ४ मं. ७)

(१) हे राजन्! तेरे लिये द्यावापृथिवी कल्याणपूर्ण हों और (२) तू उग्र तथा उत्तम मनवाला बनकर यहां पर वर्ष तक राज्यको अपने वशमें कर। इसी प्रकार सब देवोंकी सहायता इस राजाके लिये (मं. ४) इत्यादि प्रकारकी इच्छा क्यों उसी समय करते कि जिस समय राजा भी प्रजाके सुख बढ़ानेमें दत्तचित्त होता हो। जो राजा प्रजाके सुखकी पर्वाह न करता हो उसके हितार्थ किस प्रजा भी नहीं करती। इसलिये हरएक राजाको सदा यादमें यह बात रखना चाहिये कि मेरे पास जो राजपद आया है वह प्रजापालन करनेके लिये आया है न कि अपने सुखभोग भोगनेके लिये। यह भाव मनमें रखता हुआ राजा अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे पालन करे।

वरुण।

यहां एक वैदिक वर्णन शैलीकी विशेषता ध्यानमें देखने योग्य है। इन्द्र वरुण आदि शब्द देवतोंके वाचक ही होते हैं अन्य किसीके वाचक नहीं हो सकते। ऐसा सामान्य तथा साधारण बोध हमको होता है। परंतु ये शब्द कभी कभी विशेषण रूप होकर किसी अन्यके गुणबोधक होते हैं और कभी स्वयं किसी अन्य पदार्थके वाचक भी होते हैं। यहां वरुण शब्द बहुवचनमें आया है इसलिये यह वरुण देवता वाचक निःसंदेह नहीं है क्योंकि जिस समय वरुण देवताका वाचक यह शब्द होता है उस समय वह सदा एकवचनमें ही होता है। यह बहुवचनमें होनेके अवश्य यह यहां प्रजाजनोंका वाचक है। वरुण वरण धर्म इस प्रकार यह चार वर्णोंके 'श्रेष्ठों' का वाचक हो सकता है किंवा वर अर्थात् श्रेष्ठोंका भी वाचक हो सकता है। यहां हमारे मतसे वर्ण अर्थ लेना अधिक योग्य है तथापि इसका अधिक विचार पाठक करें।

राजा और राजाके बनानेवाले।

(५)

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — सोमः)

आयमगन्पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा विन्वत्वप्रयावन् ॥ १ ॥
मयि क्षत्र पर्णमणे मयि धारयताद्रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

अर्थ— (अयं बली पर्णमणिः) यह बलवान् पर्णमणि (बलेन सपत्नान् प्रमृणन्) बलसे शत्रुओंका नाश करता हुआ (आ अगमत्) आया है। यह (देवानां ओजः) देवोंका बल और (ओषधीनां पयः) ओषधियोंका रस है। यह (अप्रयावन् वर्चसा मा विन्वतु) विरोध न करता हुआ तेजसे मुझे संयुक्त करे ॥ १ ॥
हे पर्णमणे! (मयि क्षत्र) मुझमें क्षात्रबल और (मयि रयिं धारयतात्) मुझमें धन धारण कर। (अहं राष्ट्रस्य अभीवर्गे) मैं राष्ट्रके शत्रुवर्गोंमें (उत्तमः निजः भूयासं) उत्तम निज बनकर रहूं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह पर्णमणि बल बढ़ानेवाला अपने बलसे शत्रुओंका नाश करनेवाला देवोंका सामर्थ्य और ओषधियोंके रसके बनानेवाला है, यह मुझे अपने तेजसे युक्त करे ॥ १ ॥
इससे मुझमें क्षात्रतेज और ऐश्वर्य बढ़े और मैं राष्ट्रका हितसाधन करनेवाला अर्थात् राष्ट्रका निजसेवकी बनकर रहूंगा ॥ २ ॥

यं निंबभ्रुर्वनस्पतौ गुहे देवाः प्रिय मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा दत्तु मतैवे ॥ ३ ॥
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण वृत्तो वरुणेन शिष्टः ।
त प्रियास मधु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ४ ॥
मा मांऽभस्पर्षमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्य उत्त संविदः ॥ ५ ॥
ये धीवानो रथकारा कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीर्पे मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वमितो जनान् ॥ ६ ॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीर्पे मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वमितो जनान् ॥ ७ ॥

अर्थ— (ये गुहे प्रिये मणि देवाः वनस्पतौ निबभ्रुः) जिस गुप्त और प्रिय मणिको देवोंने वनस्पतिमें धारण किया था (त देवाः अस्मभ्य आयुषा सह मतैवे दत्तु) उस मणिको देव हमें आयुके साथ पोषणके लिये देवें ॥ ३ ॥

(इन्द्रेण वृत्तः) इनने दिया हुआ (वरुणेन शिष्टः) वरुण द्वारा संस्कृत किया (सोमस्य पर्णः) सोम देवताका यह पर्णमणि (उग्रं सहः आ अगात्) उग्र बलसे युक्त होकर प्राप्त हुआ है । (तं) उस मणिको लिये (बहु रोचमानः) बहुत तेजस्वी मैं (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) दीर्घ आयुके लिये और सौ वर्षके जीवनके लिये (प्रियासं) प्रिय बनूं ॥ ४ ॥

(पर्णमणिः मह्यं अरिष्टतातये) यह पर्णमणि मेरे कल्याणके विस्तारके लिये (मा आ अभस्पर्षत्) मुझपर आरूढ हुआ है । (यथा अहं अर्यम्यः) जिससे मैं [illegible] मनवाले (उत संविदः) और ज्ञानीसे भी (उत्तरः असानि) अधिक श्रेष्ठ हो जाऊं ॥ ५ ॥

(ये धीवानः रथकाराः) जो बुद्धिमान् और जो रथ करनेवाले हैं तथा (ये मनीषिणः कर्मारः) जो बुद्धिमान् लुहार हैं हे (पर्ण) पर्णमणे ! (त्वं सर्वान् जनान् इतः मह्यं उपस्तीन् कृणु) तू सब जनोंको मेरे चारों ओर उपस्थित कर ॥ ६ ॥

(ये राजानः राजकृतः) जो राजा और जो राजाओंके बनानेवाले हैं (ये सूताः ग्रामण्यः च) और जो सूत और ग्रामके नेता हैं, हे पर्णमणे ! तू सब जनोंको मेरे चारों ओर उपस्थित कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— जिस मणिको देवोंने वनस्पतिसे बनाकर धारण किया था वह मणि हमें आयु और बुद्धिको स्थिर किये रहें ॥ ३ ॥

यह वनस्पतिसे बना हुआ पर्णमणि बुद्धिमत्तायुक्त किया हुआ और इन्द्रने हमें पहले दिया हुआ दीर्घ और बलको स्थिर करनेवाला मणि है । उस मणिको मैं सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये प्रेमपूर्वक धारण करता हूं ॥ ४ ॥

यह मणि मेरे शरीरपर धारण करनेसे मेरा मुख बढ़ावे और इससे मैं श्रेष्ठ बनजाऊं और अपनी पुत्रसे भी अधिक श्रेष्ठ होजाऊं ॥ ५ ॥

जो बुद्धिमान् रथकार और लुहार हैं वे सब मेरे पास उपस्थित हों ॥ ६ ॥

जो सरदार और राजाको चुनाव करके राजाको बनानेवाले हैं और जो सूत और ग्रामके नेता हैं वे सब मेरे चारों ओर उपस्थित हों ॥ ७ ॥

पर्णो॑ऽसि तनू॒पानः॑ स॒योनि॑र्वी॒रो वी॒रेण॒ मया॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॑ पश्यामि त्वा मणे ॥ ८ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अर्थ— हे (मणे) पर्णमणे ! तू (पर्णः तनूपानः असि) पर्णरूप और शरीररक्षक है (मया वीरेण सयोनिः वीरः असि) मुझ वीरके साथ समान उत्पत्तिस्थानका वीर है इसलिये मैं (त्वा संवत्सरस्य तेन तेजसा पश्यामि) तुझको संवत्सरके उस तेजके साथ धारण हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह मणी उत्तम शरीररक्षक है और वीरताका उत्साह बढानेवाला है इसको मैं एक वर्षपर्यंत सिर पर रहनेवाले तेजके साथ धारण करता हूं ॥ ८ ॥

पर्ण मणि ।

इस सूक्तमें पर्णमणिके धारणका उपदेश है । अथर्ववेद काण्ड १ सू ४ में अग्निरूप मणिका वर्णन है, उस प्रसंगमें मणिधारणके विषयमें जो लेख लिखा है वह पाठक यहां भी देखें । यह पर्ण मणि इसलिये कहा जाता है कि यह औषधियोंके आश्रयसे बनाया जाता है, देखिये—

१ पर्णमणिः सोमधीनो पर्णः । (सू. ५, मं १)
२ पर्णः (पर्णमणिः) सोमस्य उग्रं सहः ।
(सू. ५, मं. ४)
३ देवाः (पर्ण-) मणिं वनस्पतौ निदधुः ।
(सू. ५ मं १)

(१) पर्णमणि औ षधियोंका पुत्र ही है । (२) यह पर्णमणि सोमवल्लीका उग्र रूप है । (३) देवोंने पर्णमणिको वनस्पतिमें रखा है । ये इसके वचन स्पष्टतासे बता रहे हैं कि यह मणि वनस्पतियोंके दूधसे बनाया जाता है । पर्ण-मणि यह शब्द भी स्वयं अपना अर्थ व्यक्त कर रहा है कि यह (पर्ण) पत्तोंका माल है अर्थात् वनस्पतिके पत्तोंके रस बना है । इसके भक्षणसे वनस्पति रसके बीजके धारण शरीरपर बडा प्रभाव होता है इस विषयमें देखिये—

१ अयं पर्णमणिः बली । (सू. ५, म १)
२ पर्णः तनूपानः । (सू ५ मं ८)
३ वनस्पतिः सपत्नान् प्रमृणन् । (सू. ५, मं १)
४ इयानो मोजः ... मा यक्ष्मा अभिनत् । (सू ५, मं १)
५ मयि सर्वं मयि रयिं धारयताम् । (सू ५, मं. २)
६ आयुषे मर्तवे च तं अस्मभ्यं दत्तु ।
(सू ५ मं ३)
७ पर्णः उग्रं सहः ... दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
(सू ५ मं ४)
८ पर्णमणिं अरिष्टतातये मा आबध्नत् ।
(सू ५, मं. ५)

(१) यह पर्णमणि बल बढानेवाला है (२) यह (तनू-पानः) शरीरका रक्षक है (३) यह अपने बलसे रोगरूपी शत्रुओंको नाश करता है, (४) यह (देवानां) इंद्रियोंका बल बढानेवाला है यह मेरा तेज बढावे (५) यह मुझमें धारतेज और शरीरकी कान्ति बढावे (६) दीर्घ आयुष्य और शरीरकी पुष्टि इससे हो (७) यह मणि बडा बल बढानेवाला है इससे सौ वर्षोंकी दीर्घायु मुझे प्राप्त हो (८) यह मणि शरीरपर धारण करनेसे मेरी क्षति बढावे ।

इस प्रकारके वर्णन बता रहे हैं कि इस पर्णमणि के अंदर बडा प्रभाव है और इसके शरीरपर धारण करनेसे शरीरमें नित्य उत्साह होता है बलके साथ करनेके लायक शरीरकी शक्ति होती है, शत्रुका तेज घटता है और मनुष्य बडा तेजस्वी होनेके लायक प्रभावशाली दिखाई देता है । यह वनस्पतिके रसोंका प्रकार है । वैद्य लोग इस मणिको खास करें ।

राष्ट्रका निज बनना ।

राष्ट्रका निज बनकर रहनेका उपदेश इस सूक्तमें विशेष वर्णन करने योग्य है । जो लोग राष्ट्रमें रहते हैं वे निज बनकर

रहेंगे तो ही राष्ट्रका भला हो सकता है, इस विषयमें द्वितीय मंत्र मनन करने योग्य है—

महे राष्ट्रस्य अमीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।
(सू ५, मं १)

मैं इस राष्ट्रके हितपोषक वर्गमें उत्तम निज बनकर रहूंगा। यहां राज्य राजपुरुष अधिकारी वर्ग आदि सब राष्ट्रके निज बनकर रहें यह उपदेश स्पष्ट है। राष्ट्रमें रहता हुआ कोई मनुष्य राष्ट्रके लिये पराया बनकर न रहे। यहां निज बनकर रहनेका भाव क्या है और पराया बनकर रहनेका भाव क्या है यह अवश्य देखना चाहिये। अपने यहांका ही उदाहरण लीजिये। इस भारतवर्षमें जापानी चीनी अमरिकन और योरोपीयन आते हैं और रहते भी हैं परंतु इनमेंसे कोई भी भारतवर्षका निज बनकर नहीं रहता। जो ये आते हैं वे उपरी बनकर आते हैं उपरी बनकर यहां रहते हैं उपरी बनकर यहांका कारोबार करते हैं और पश्चात् चले जाते हैं। इस कारण इनके उपरी भावसे भारतवर्षका अहित ही होता है। इसलिये उपरी भावसे रहना राष्ट्रके लिये घातक है। जो निजभाव से रहेंगे राष्ट्रका जो हित और अहित है वह अपना हित और अहित है इस दृष्टिसे व्यवहार करेंगे उनसे राष्ट्रका अहित नहीं होगा। यह तो साधारण मनुष्योंकी बात होगई है परन्तु जो राष्ट्रके कर्मचारी हैं यदि वे उपरी या पराये भावसे राष्ट्रमें रहने लगे तो राष्ट्रका सत्यानाश कितना होगा इसका हिसाब लगाना कठीन है। इस दृष्टिसे पाठक देखें कि राष्ट्रका निज बनकर रहनेका भाव कितना उच्च है और राष्ट्रहितकी दृष्टिसे कितना आवश्यक है। निजभाव से रहनेके कारण विदेशी लोग भी स्वदेशीके समान राष्ट्रहित करने वाले बनेंगे और निज भाव न रखनेवाले स्वदेशी लोग भी परदेशी लोगोंके समान राष्ट्रहितका घात करनेवाले बनेंगे। यहां पाठक राष्ट्रका निज बनकर रहनेका कितना महत्व है यह देखें और अपने राष्ट्रके निज बनकर रहें।

राजाका निर्माण करनेवाले।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें राज-कृतः शब्द है इसका अर्थ राजाको निर्माण करनेवाले (King makers) है। राजाको किस रीतिसे निर्माण करते हैं यह प्रश्न यहां उत्पन्न हो सकता है। इसका उत्तर इससे पूर्वके चतुर्थ सूक्तने ही दिया है राजाका चुनाव प्रजा द्वारा होता है और राजगद्दीपर आता है इसीको प्रजा द्वारा राजाका निर्वाचन राजाका चयन, राजाका नियोजन अथवा राजाका चुनाव कहते हैं। जिसका चुनाव प्रजा करती है, उसका मानो निर्माण ही प्रजा करती है। इस प्रकार राजाके विषयमें प्रजा होती है इसीलिये राजसभाके सदस्य राजाके पितर हैं ऐसा वेदमें ही वर्णन किया है (देखो अथर्व का ७ सू. १२ मं. १-२)। प्रजाके जो महाजन नेता अथवा विद्वान लोग होते हैं वे राजाका चुनाव करते हैं और उसको निर्माण करते हैं, इसलिये प्रजाकी रक्षा करना राजाका परम श्रेष्ठ कर्तव्य है। मातृरक्षाके समान ही प्रजारक्षाका यह राजधर्म है।

मंत्र ६ और ७ में कहा है कि रथकार, सुतार, लुहार, खानी पुरुष मंत्री सूत सभानेता सरदार तथा राजाका चुनाव करनेवाले ये सब लोग राजाके पास रहें, राजाके अनुगामी बनें राजाके साथ रहकर राजाके सहाय करें। इस प्रकार राज्यका शासन प्रजाके द्वारा विचारपूर्वक किये राजपुरुषों द्वारा प्रजाके हितके लिये प्रजाकी अनुमतिसे चलाया जावे। इसीसे राष्ट्रका सच्चा हित हो सकता है।

यद्यपि यह सूक्त वस्तुतः धर्ममन्त्रिका वर्णन करता है तथापि प्रसंगसे राष्ट्रका निज बनकर रहना राजाका चुनाव प्रजाद्वारा करना इत्यादि महत्वपूर्ण बातोंका उपदेश होनेके लिये वैदिक राजनीति शास्त्रकी दृष्टिसे यह सूक्त बड़े महत्वपूर्ण आदेश दे रहा है। इसलिये पाठक भी इसी दृष्टिसे इस सूक्तका मनन करें।

यह संपूर्ण अनुवाक राजप्रकरणका ही उपदेश देता है।

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

वीर पुरुष।

(१)

(ऋषिः - जगद्वीर्य पुरुषः। देवता - वानस्पतिः, अश्वत्थः)

पुमान्पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स ह॑न्तु शत्रून्मामकान्यान॒हं द्वेष्मि॒ ये च॒ माम्॥ १॥
तानश्वत्थ नि॑ शृणीहि॒ शत्रून्वैषाषदोषतः।
इन्द्रे॑ण वृत्रघ्ना म॒रुद्भि॒र्मित्रे॒णा॒ वरु॑णेन च॥ २॥
यथाश्वत्थ निरभ॑नोऽवं॒हरन्त्यर्णवे।
एवा तान्त्सर्वा॑न्निर्भ॑ङ्ग्धि॒ यान॒हं द्वेष्मि॒ ये च॒ माम्॥ ३॥
यः सह॑मान॒श्चर॑सि सासह॒ान इ॑व ऋष॒भः।
तेनाश्वत्थ॒ त्वया॑ व॒यं स॒पत्नान्त्सहिषीमहि॥ ४॥

अन्वय— जैसे (खदिरात् अधि अश्वत्थः) खैरके ऊपर अश्वत्थ वृक्ष होता है इसी प्रकार (पुमान् पुंसः परिजातः) वीर पुरुषसे वीर पुरुष उत्पन्न होता है। (सः मामकान् शत्रून् हन्तु) वह मेरे शत्रुओंका वध करे (यान् अहं द्वेष्मि ये च माम्) जिनसे मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं॥ १॥

हे (अश्व-त्थ) अश्वके समान बलिष्ठ वीर! (तान् वैषाषदोषतः शत्रून्) उन विविध बाधा करनेवाले दोषी शत्रुओंको (निः शृणीहि) मार डाल और (वृत्रघ्ना इन्द्रेण मित्रेण मरुद्भिः वरुणेन च मदी) वृत्रका नाश करनेवाले इन्द्र, मित्र और वरुणसे मित्रता कर॥ २॥

हे अश्वत्थ! (यथा महति अर्णवे निरभनः) जैसे बड़े समुद्रमें तू भरण करता है (एव) उसी प्रकार (तान् सर्वान् निर्भङ्ग्धि) उन सबको छिन्न भिन्न कर (यान् अहं द्वेष्मि ये च मां) जिनसे मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं॥ ३॥

हे अश्वत्थ! (यः सहमानः सासहानः) जो तू शत्रुओं दबानेवाला बलवान् (ऋषभः इव) बैलके समान होकर (चरसि) विचरता है (तेन त्वया वयं सपत्नान् सहिषीमहि) उस तेरे साथ हम शत्रुओंको पराजित करें॥ ४॥

भावार्थ— खैरके ऊपर अश्वत्थ वृक्ष उगता है और उसीपर बढ़ता है इसी प्रकार वीर पुरुषसे वीर बलवान पुरुष होते हैं और वीरोंके साथ ही बढ़ते हैं। ऐसे वीर हमारे वैरियोंको दूर करें॥ १॥

हे वीर! तू सज्जनोंको सतानेवाले वीरोंके साथ मिलकर विघ्न बाधा करनेवाले शत्रुओंको मार डाल॥ २॥

हे वृक्ष! जिस प्रकार नौकाको बड़े समुद्र पार होते हैं उसी प्रकार तू हम सब शत्रुओंका भरण करके पार हो॥ ३॥

हे बलवान्! जो तू बलिष्ठ होकर शत्रुओंको दबाते हुए वृषभ समान विचरता है उस तेरी सहायतासे हम अपने सब शत्रुओंको पराजित कर सकते हैं॥ ४॥

सिनात्वेनान्निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ५ ॥
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन्कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वगिन्द्रि सहस्व च ॥ ६ ॥
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैषामद्य प्रसुप्तानां पुनरस्ति नियर्तनम् ॥ ७ ॥
प्रैषामनुदे मनसा प्र चित्तेन प्र धीनया ।
प्रैषान्वृक्षस्य शाखया प्रस्पर्शं नुदामहे ॥ ८ ॥

अर्थ— हे अश्वत्थ ! (निर्ऋतिः मृत्योः अमोक्यैः पाशैः एतान् मामकान् शत्रून् सिनातु) आपत्ति मृत्युके न छूटनेवाले पाशोंसे इन मेरे शत्रुओंको बाध देवे जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

हे अश्वत्थ ! (यथा आरोहन् वानस्पत्यान् अधरान् कृणुषे) जैसा तू ऊपर रहता हुआ अन्य वृक्षोंको नीचे करता है (एवा) इसी प्रकार (मे शत्रोः मूर्धानं विष्वङ् सिन्द्धि) मेरे शत्रुओंके सिरको सब ओरसे तोड़ दे और (सहस्व च) उसका जीत लो ॥ ६ ॥

(बन्धनात् छिन्ना नौः इव) बन्धनसे छूटी हुई नौकाके समान (ते अधराञ्चः प्र प्लवन्तां) वे अधोगतिके मार्गमें बहते चले जावें (वैषाम् अद्य प्रसुप्तानां पुनः नियर्तनं न अस्ति) विशेष बाधा करनेवालोंका पुनः लौटना नहीं होता है ॥ ७ ॥

(एतान् मनसा प्र नुदे) इन शत्रुओंको मनसे मैं हटाता हूं । (चित्तेन उत धीनया प्र) मैं चित्तसे और ज्ञानसे (अश्वत्थस्य वृक्षस्य शाखया) अश्वत्थ वृक्षकी शाखासे (एतान् प्र नुदामहे) इनको हम हटा देते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ— हे अश्वित्थ ! मेरे इन आपत्तिनाशके पाशोंसे बांधे जावें अर्थात् वे आपत्तियोंमें पड़ें ॥ ५ ॥

जिस प्रकार पीपलका वृक्ष अन्य वृक्षोंपर उगता है और उनको नीचे दबाता है उसी प्रकार और मेरे शत्रुओंको नीचे दबा देवे और उनके सिर तोड़ देवे ॥ ६ ॥

विशेष बाधा करनेवाले शत्रु अधोगतिके नीचेकी ओर गिरते जावेंगे । ऐसे एक बार गिरे हुए फिर कभी उठते नहीं ॥ ७ ॥

मनसे चित्तसे और अपने ज्ञानसे मैं शत्रुओंको दूर करता हूं ॥ ८ ॥

अश्वत्थकी अन्योक्ति ।

यह सूक्त अश्वत्थकी अन्योक्ति है । अन्योक्ति अर्थालंकार पाठक जानते ही हैं । एकका प्रकृत उल्लेख करके दूसरेके ही विषयमें कहनेका नाम अन्योक्ति है । इसी प्रकार यहां अश्वत्थ वृक्षका वर्णन करते हुए वीर पुरुषका वर्णन किया है । इसलिये यह अप्रकृतान्योक्ति है ।

अश्वत्थ शब्दके बहुत अर्थ हैं—(१) पीपल वृक्ष; (२) [अश्व-स्थ] अश्वके समान बलवान् बनकर रहनेवाला वीर; (३) [अ श्व-स्थ] जो कल रहेगा ऐसा विचार नहीं करता वह वीर; (४) सूर्य; (५) अश्विनी नक्षत्र; इत्यादि अनेक अर्थ इस शब्दके हैं । यहां पहले दो अर्थ लिये हैं ।

अश्वत्थ अर्थात् पीपल वृक्ष दूसरे वृक्षोंपर क्या उपाय करता है—

यथा अश्वत्थ वानस्पत्यान् आरोहन् अधरान् कृणुषे । (सू. १ मं १)

इस दृष्टिसे काव्य दृष्टिसे यह अलंकार हो सकता है कि यह अश्वत्थ वृक्ष बड़ा भारी वीर है जो अन्य वृक्षोंको अपने नीचे दबाता है और अन्य वृक्षोंके सिरपर अपना पांव रखकर

करता हुआ जाता है। जिस प्रकार वीर पुरुष शत्रुको सिरको अपने पांवके नीचे दबाता है उसी प्रकार माता पीयूषका यह कथन है। इसलिये अथर्वन ऋषिने अन्योक्तिसे इस सूक्तमें वीर पुरुषका वर्णन किया है। पाठक गण इसिसे यह सूक्त पढ़ें।

आनुषङ्गिक संस्कार।

इस सूक्तके प्रथम ही मंत्रमें कहा है कि पुत्राः पुमान् परिजातः वीरसे वीर संतान उत्पन्न होती है, वीरके कुलमें वीर उत्पन्न होते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य कुलमें वीर उत्पन्न नहीं हो सकते। परंतु यहां वीर संतान उत्पन्न होनेके लिये वातावरण कहा रहता है यही दिखाया है। बच्चेमें वीरताकी बातें उत्पन्न करनेके कारण वीरके संतान वीरताके गुण होना अत्यंत स्वाभाविक है यही यहां कहनेका तात्पर्य है।

यह वीर उस प्रकारके शत्रुओंको हटा देवे यही उस मंत्रोंमें कहा है और मंत्रोंका यह भावार्थ सरल होनेसे इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

शत्रुका लक्षण।

इस सूक्तमें वे-बाध (विरोध बाधा करना) यही एक वैरी होनेका लक्षण कहा है (म १)। केवलिक स्वाभाविक धार्मिक राजकीय आदि अनेक प्रकारके शत्रु हो सकते हैं और इन सबोंमें ये शत्रु विरोध प्रकारकी बाधा भी करते हैं। यह अनुभव पाठकोंको है ही। ये सब शत्रु दूर करने चाहिये और उनका मुख दबाना चाहिये। यह इस सूक्तके उपदेशका सार है। शत्रुको दूर करनेका उपाय इस प्रकार करना चाहिये—

मनसा चित्तेन वच ब्रह्मणा यजान् प्र नुदे।
(सू १ मं ४)

मन चित्त और ज्ञानसे शत्रुओंको दूर करनेके उपाय खोजने चाहिये और उन उपायोंका मनन करना चाहिये। मनसे अनुभव करनेका मनन करना चाहिये जिससे इसी बातका चिंतन करना चाहिये और अपना ज्ञान बढ़ाकर उस ज्ञानसे ऐसी योजनाएं करना चाहिये कि जिससे शत्रु शीघ्र ही नष्ट हो जावे। तात्पर्य हरएक प्रकारकी युक्ति करके शत्रुको हटाना चाहिये।

गिराबटका मार्ग।

जो विरोध बाधा करते हैं जो जनताके उत्पात जो लोगोंको उपद्रव देते हैं वे स्वकर्मसे ही गिरते हैं। उनके बुरे कर्मोंके कारण वे स्वयं अधोगतिके मार्गसे गिरते रहते हैं, इस विषयका उत्तम मंत्रका कथन हरएक मनुष्यके लिये मनन करने योग्य है—

वन्धनात् छिन्ना मोः इव ते अधराञ्चः प्र प्लवताम्। येषामभ्यसुतानां पुनः निवर्तन नास्ति॥
(सू १ मं ७)

बंधनसे मौंज जैसी छूटती है और जलप्रवाहसे बहती जाती है उस प्रकार से जनताके विरोध बाधा देनेवाले दुष्ट लोग अधोगतिसे नीचेकी ओर गिरते जाते हैं। उनके उठनेकी कोई आशा नहीं है। जो दुष्ट जनताके विरोध बाधा करते हैं और उस कारण पतित होते जाते हैं उनके फिर उठनेकी कोई आशा नहीं है।

इस मंत्रने पाठकोंको सावधान किया है कि वे अपने चरित्रका अवलोकन करें और सोचें कि अपनी ओरसे तो किसीको कष्ट नहीं होते हैं? क्योंकि जो दूसरोंको कष्ट देते हैं उनकी उन्नतिकी कोई आशा नहीं है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको कष्ट देना एक जाती दूसरी जातीको कष्ट देनी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको सतावेना तो वह सतानेवाले अन्य रीतिसे गिरते जाते हैं और उनके उठनेकी कोई आशा नहीं होती है। जो राष्ट्र दूसर देशोंको परतंत्रतामें रखते हैं वे इसी प्रकार गिरते जाते हैं। साम्राज्यपदके कारण भी इस प्रकार गिरावट होती जाती है। यदि किसीको दबाकर एक स्थानपर रखना हो तो जैसा दबे हुएको वहां दबकर रहना पड़ता है, उसी प्रकार दबाने वालेको भी वहां ही रहना पड़ता है। इसी प्रकार अन्य बातें पाठक जान सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कोई भी जाती जो दूसरेपर अत्याचार करती है, स्वयं अधोगतिके मार्गसे गिरती जाती है और जबतक वह अपना अत्याचार बंद नहीं करती तबतक उसके उठनेका कोई मार्ग नहीं होता है। यह अवश्य कोई किसी दूसरेपर कभी अत्याचार न करे। दूसरेपर अत्याचार न करनेसे ही उन्नतिका मार्ग खुला रह सकता है।

विजयकी तैयारी।

इस सूक्तमें सहमान सासहान (म ४) ये दो शब्द हैं अन्य स्थानोंमें सहमान असह्य ये शब्द हैं जो विजयकी तैयारीके सूचक हैं—

१ सहमान— शत्रुके हमले दूसरेपर जो अपना स्थान नहीं छोड़ता।

२ असह्य सासहान— इसके हमले शत्रुपर होनेपर शत्रु इसके सामुख ठहर नहीं सकता।

विजय प्राप्त करना हो तो अपनी तैयारी ऐसी करनी चाहिये। तभी विजय होगा।

पाठक इस सूक्तका इस दृष्टिसे विचार करें। और शत्रुको दूर भगानेके विषयमें ज्ञान बोध प्राप्त करें।

आनुवंशिक रोगोंका दूर करना।

(७)

(ऋषिः — सूर्यचक्षाः । देवता — हरिणः तारक आपः, यक्ष्मनाशनम्)

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि क्षीर्पर्णि भेषजम् ।
स क्षेत्रिय विपाणया विपूचीर्नमनीनशत् ॥ १ ॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पित यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥ २ ॥
अदो यदवराचंते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ ॥
आप इदा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥ ५ ॥

अर्थ— (रघुष्यदः हरिणस्य क्षीर्पर्णि अधि) वेगवान् हरिणके सिरके ऊपर (भेषजम्) औषध है। (सः विषाणया) वह सींगसे (क्षेत्रियं विचूचीनं अनीनशत्) क्षत्रिय रोगको सब प्रकारसे नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

(वृषा हरिणः चतुर्भिः पद्भिः) बलवान् हरिण चारों पावोंसे (त्वा अनु अक्रमीत्) तेरे अनुकूल आक्रमण करता है। हे (विषाणे) सींग! तू (यत् अस्य हृदे गुष्पितं क्षेत्रियं) जो इसके हृदयमें पुराना क्षेत्रिय रोग है उसको (वि ष्य) नाश कर दे ॥ २ ॥

(अदः यत्) वह जो (चतुष्पक्षं छदिः इव) चार पक्षोंका छप्पर समान (अवरोचत) चमकता है (तेन ते अङ्गेभ्यः) उससे तेरे अंगोंसे (सर्वं क्षेत्रियं नाशयामसि) सब क्षेत्रिय रोगको हम नाश करते हैं ॥ ३ ॥

(अमू ये दिवि) वे जो आकाशमें (सुभगे विचृती नाम तारके) उत्तम प्रकाशमान् दो उत्तारे हैं- नक्षत्रियें हैं। (क्षेत्रियस्य अधमं उत्तमं पाशं वि मुञ्चतां) क्षेत्रिय रोगके नीच और ऊंचे पाशको छुडा देवें ॥ ४ ॥

(आपः इत् वै उ भेषजीः) जल ही सम्यक् औषध है (आपः अमीवचातनीः) जल रोगनाशक है (आपः विश्वस्य भेषजीः) जल सब रोगोंकी दवा है। (ताः त्वा क्षेत्रियात् मुञ्चन्तु) वह जल तुझे क्षत्रिय रोगसे छुडा देवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ— वेगवान् हरिणके सींगमें उत्तम औषध है उस सींगसे क्षेत्रिय रोग दूर होते हैं ॥ १ ॥

बलवान् हरिणके सींगसे हृदयमें गुप्त अवस्थामें रहा हुआ क्षेत्रिय रोग दूर हो जाता है ॥ २ ॥

यह चार पक्षरूप छतके समान हरिणका सींग चमकता है उससे सब अंगोंमें रहनेवाला क्षेत्रिय रोगका नाश होता है ॥ ३ ॥

वे जो आकाशमें उत्तरोत्तर समान तारका नामक दो नक्षत्रियां हैं उनसे बंधक रोग दूर होते हैं ॥ ४ ॥

जल उत्तम औषध है उससे सब रोग दूर होते हैं, सब दृष्टियोंसे यह एक ही औषध है उससे क्षेत्रिय रोग दूर होता है ॥ ५ ॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षैत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपामस्त्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

अर्थ— (यत् क्रियमाणायाः आसुतेः) यदि विवक्षेवाले रससे (क्षेत्रियं त्वा व्यानशे) क्षेत्रिय रोग तेरे अन्दर व्याप्त है। तो (तस्य भेषजं अहं वेद) उसका औषध मैं जानता हूं और उससे मैं (त्वत् क्षेत्रियं नाशयामि) तुझसे क्षेत्रिय रोगको नाश करता हूं ॥ ६ ॥

(नक्षत्राणां अपवासे) नक्षत्रोंके छिपनेपर (उत उषसां अपवासे) उषाके चले जानेपर (सर्वं दुर्भूतं अपक्षत् अप) उस अनिष्ट दुःख उससे दूर होवे तथा (क्षेत्रियं अप उच्छतु) क्षेत्रिय रोग भी दूर जाय ॥ ७ ॥

भावार्थ— यदि विवाहके अनन्तर मिथितासे तेरे अन्दर क्षेत्रिय रोग प्रविष्ट हुआ है तो उसके लिये औषध मैं जानता हूं और उससे रोग भी दूर करता हूं ॥ ६ ॥

नक्षत्र छिपनेपर और उषा चली जाने ही उस दौर्भाग्य दुःख उससे दूर होवे और हमारा क्षेत्रिय रोग भी दूर होवे ॥ ७ ॥

मातापितासे संतानमें आये क्षेत्रिय रोग।

जो रोग मातापितासे संतानमें आते हैं उनको क्षेत्रिय रोग कहते हैं। ये क्षेत्रिय रोग दूर होना कठिन होता है। इनकी चिकित्सा इस सूक्तमें कही है।

हरिणके सींगसे चिकित्सा।

जो कृष्ण मृग होता है, जिसके सींग बडे भारी होते हैं उन सींगोंमें क्षेत्रियरोग दूर करनेका गुण होता है। हरिणके सिरमें औषध है जो सींगमें आता है जिससे क्षेत्रिय रोग दूर होते हैं। (मं १) हरिणके सींगके विषयमें वैद्यकग्रन्थमें—

मृगशृङ्ग भस्मदोषे त्रिकशूलादौ शस्यते ।
—वैद्यक शब्द सिंधु।

मृगका सींग भस्मदोष इसरोग और त्रिक शूलादि रोगोंके लिये प्रशस्त है। यह कथन इस सूक्तके कथनके साथ संगत होता है।

हृदय रोग।

इस सूक्तके द्वितीय मन्त्रमें हृदि गुप्तिम क्षेत्रियं (मं २) हृदयमें छिपाया गुप्त क्षेत्रिय रोग यह प्रायः हृदयरोग ही होगा। तृतीय मन्त्रमें अंगभेद्यं क्षेत्रियं (मं. ३) इस अर्थसे क्षेत्रिय रोग दूर करनेकी बात कही है। प्रथम मंत्रमें सामान्य क्षेत्रिय रोगका वर्णन है। ये सब रोग हरिणके सींगसे दूर होते हैं। हरिणका सींग चंदनके समान पत्थरपर घिसकर सिरपर लगाया जाता है अथवा थोडा थोडा अन्न-प्रमाणमें पेटमें भी लेते हैं। इस प्रकारसे छोटे बालकोंके उक्त प्रकार विविध व्याधियोंमें घोलकर पिलाते भी हैं और माताएं कहती हैं कि इससे बालकोंके आरोग्य होता है। सिरमें लगी चढनेपर सिरपर लगानेसे लगी दूर होती है। मस्तिष्क पोषक इनसे अवस्थामें यह उत्तम औषध है।

औषधि चिकित्सा।

चतुर्थ मंत्रमें सुभग और तारका ये दो शब्द हैं। इसी प्रकारका मंत्र काण्ड २ सू. ८ में आता है, देखिये—

भगवती और तारका।

भग-वती विभूतो नाम तारके ।
(का २ सू. ८ मं १)

इसके साथ इस सूक्तका मंत्र भी देखिये—

सु-भगे विभूती नाम तारके ।
(का. १ सू. ७ मं ४)

इसमें विशेषकी समता है। इसीसे द्वितीय कांडके अष्टम सूक्तके प्रथममें भगवती और तारका वनस्पतियोंके विषयमें जो लिखा है, वही यहां पाठक समझें। सुभग और भगवती ये दो शब्द एक ही वनस्पतिके वाचक होंगे। और तारका शब्द दूसरी वनस्पतिका वाचक होगा। ये दो वनस्पतियां

क्षेत्रियरोगको दूर करती हैं। इनसे चिकित्सा कैसे होती है इस विषयमें सू २, सू ८ मं १ का विषय देखिये।

द्युलोक और भूलोकमें समान औषधियां।

वनस्पतियोंके साथ द्युलोकका संबंध बताया है। सोम द्युलोकमें है और पृथ्वीपर भी वनस्पतिरूप है। इसी प्रकार सुषवा (मधुपर्णी) और तारुष्य ये दो ओषधियां भी वनस्पतिरूपसे पृथ्वीपर हैं और तेजरूपसे द्युलोकमें हैं। यह वर्णन वनस्पतिका प्रशंसात्मक प्रतीत होता है।

जलचिकित्सा।

क्षेत्रिय रोग दूर करनेके लिये जलचिकित्सा करनेका उपदेश इस सूक्तके पंचम मंत्रमें है। इस मंत्रमें कहा है कि जल इन रोगोंकी एक दवा है इसलिये क्षेत्रिय रोग भी इससे दूर हो सकते हैं। तथा आरोग्यवर्धक गुणक विषयमें सू. १, सू ४-६ ये तीन सूक्त देखिये।

इस मंत्रका भावार्थ यह है कि यदि रोग अथवा क्षेत्रिय रोग विषैले जल या पानसे हुए हों तो पूर्वोक्त प्रकार दूर हो सकते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त पांच मंत्रोंमें कहे उपाय ही इन रोग दूर करनेके लिये पर्याप्त हैं।

इन उपायोंसे अति थोडे समयमें रोग दूर हो सकते हैं। यदि रोगका प्रारंभ आज हुआ है तो रात्रीके व्यतीत होने समय तथा उषःकाल दूर होकर दिवस प्रकाश होत ही ये सब रोग दूर होते हैं। यदि यह वर्णन आलंकारिक माना जाय तो उसका अर्थ इतना ही होगा कि अतिशीघ्र रोग दूर होंगे।

राष्ट्रीय एकता।

(८)

(ऋषिः— अथर्वा। देवता— मित्रः विश्वेदेवाः मात्रादेवता)

आ धातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन्पृथिवीमुस्रियाभिः।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद्राष्ट्रं संविदं दधातु ॥ १ ॥
धाता रातिः सविता त्वष्टा पुषन्त्सामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः।
द्विपे देवीमदितिं सूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥ २ ॥

अर्थ— (उस्रियाभिः पृथिवीं संवेशयन्) किरणोंसे पृथ्वीको संयुक्त करता हुआ (ऋतुभिः कल्पमानः मित्रः) ऋतुओंके साथ समर्थ होता हुआ (मित्रः) मित्र (आयातु) आवे (अथ) और (वरुणः वायुः अग्निः) वरुण वायु और अग्नि (अस्मभ्यं संवेशं बृहत् राष्ट्रं) हम सबके लिये उत्तम प्रकार रहने योग्य बडे राष्ट्रको (दधातु) धारण करें ॥ १ ॥

(धाता रातिः सविता) धारण करनेवाला दाता सविता (मे इदं वचः) मेरा यह वचन (जुषन्तां) प्रीतिसे ग्रहण करें और (इन्द्रः त्वष्टा) इन्द्र और त्वष्टा आदित्य (मे इदं वचः प्रति हर्यन्तु) मेरा यह वचन स्वीकार करें। (सूरपुत्रां देवीं अदितिं द्विपे) सूर्यपुत्रोंकी जननी देवी मातासे मैं कहता हूं (यथा सजातानां मध्यमेष्ठाः असानि) जिससे मैं सजातियोंमें मध्य-प्रमुख स्थानपर रहनेवाला होऊं ॥ २ ॥

भावार्थ— अपने किरणोंसे पृथ्वीको प्रकाशित करनेवाला और ऋतुओंके साथ सामर्थ्य बतानेवाला सूर्य वरुण वायु और अग्नि ये सब देव हमें ऐसा बडा विशाल राष्ट्र देवें कि जो हमारे रहने योग्य हो ॥ १ ॥

सबका धारणकर्ता दाता सविता और इन्द्र तथा त्वष्टा मेरा वचन सुनें और मानें तथा मैं सूर्य पुत्रोंकी माता देवी अदितिसे भी कहता हूं कि इस वचनका ऐसा महत्त्व मुझे प्राप्त हो कि जिससे मैं सजातियोंमें विशेष प्रमुख स्थानपर विराजमान होनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूं ॥ २ ॥

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्यॉं अदितिं मरुत्वते ।
अयमग्निर्दीदायद्दीर्घमेव संजातैरिद्धोऽप्रतिष्कुतक्षिः ॥ ३ ॥
इहेदसाथ न परो गमाथेमॉं गोपाः पुष्टपतिर्वः आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विशे वो देवा उपसर्पन्तु ॥ ४ ॥
स वो मनांसि स व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥ ५ ॥
अह गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ ६ ॥

अर्थ— (अहं सोम सवितारं विश्वान् आदित्यान्) मैं सोम सविता और सब आदित्योंको (उत्तरत्वे) अधिक ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये (मनोभिः हुवे) अनेक उत्साहोंके साथ बुलाता हूं । (अ-प्रति-ष्कुतक्षिः संजातैः इद्धः) किसी प्रकार न करनेवाले सजातीयोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ (अयं अग्निः) यह अग्नि (दीर्घं एव दीदयत्) बहुत समयतक प्रकाशित रहे ॥ ३ ॥

(इह इत् असाथ) यहां ही रहो (परः न गमाथ) दूर मत जाओ । (इमॉं गोपाः) बहुतसे गोओं पालन करनेवाला (पुष्टपतिः वः आजत्) पोषण करता हुआ तुमको यहां लावे । (विश्वे देवाः) सब देव (अस्मै कामाय) इस अभिलाषकी पूर्तिको (कामिनीः वः) इच्छा करनेवाले तुम प्रजाओंको (उप उप सर्पन्तु) एकताके विचारसे संयुक्त करें ॥ ४ ॥

(वः मनांसि स) तुम्हारे मनोंको एक मतसे युक्त करो (व्रता स) तुम्हारे कर्मोंको एक मतसे युक्त करो (आकूतिः स नमामसि) संकल्पोंको एक मतसे झुकाते हैं । (अमी ये विव्रताः स्थन) यह जो तुम परस्पर विरुद्ध कर्म करनेवाले हो (तान् वः सं नमयामसि) उन सब तुमको एक विचारमें हम झुकाते हैं ॥ ५ ॥

(अहं मनसा मनांसि गृभ्णामि) मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको लेता हूं । (मम चित्तं चित्तेभिः अनु आ-इत) मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोंको बनाकर आओ । (मम वशेषु वः हृदयानि कृणोमि) मेरे वशमें तुम्हारे हृदयोंको मैं करता हूं । (मम यातं अनुवर्त्मानः आ-इत) मेरे मार्गपर चलनेवाले होकर यहां आओ ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैं नमन पूर्वक सोम सविता तथा सब आदित्योंको बुलाता हूं कि वे मुझे ऐसी सहायता दें कि मैं अधिक श्रेष्ठता पाने योग्य होऊं । परस्पर विरोध न करनेवाले सजातीय लोगोंके द्वारा जो यह एक राष्ट्रीयताका अग्नि प्रदीप्त किया गया है वह बहुत समयतक हमारी आंखोंमें चमकता रहे ॥ ३ ॥

तुम सब यहां एक विचारसे रहो परस्पर विरोध करके एक दूसरेसे दूर न हो जाओ । अन्न अपने पास रखनेवाला कृषक और पोषणका पालन करनेवाला तुम्हारी पुष्टि करनेवाला गोप तुमको इकट्ठा करके यहां लावे । एक इच्छाकी पूर्तिके लिये प्रयत्न करनेवाली सब प्रजाओंको सब देव एकताके विचारसे संयुक्त करें ॥ ४ ॥

तुम्हारे मन एक करो तुम्हारे कर्म एकताके लिये हों तुम्हारे संकल्प एक हों जिससे तुम सहचित्तसे युक्त हो जाओगे । जो ये आपसमें विरोध करनेवाले हैं सब सबको हम एक विचारसे एकत्र मुख देते हैं ॥ ५ ॥

सबसे प्रथम मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको आकर्षित करता हूं । मेरे चित्तके अनुकूल तुम अपने चित्तोंको बनाकर यहां आओ । मैं अपने वशमें तुम्हारे हृदयोंको करता हूं । मैं जिस मार्गपर चलता हूं उस मार्गपर चलते हुए तुम मेरे पीछे पीछे चले आओ ॥ ६ ॥

अधिक उन्नता।

मनुष्यके अंदर अधिक उन्नतिकी प्राप्ति करनेकी इच्छा स्वभावतः रहती है। कोई भी मनुष्य ऐसे यह नहीं चाहता कि अपनी उन्नति न हो। हरएक मनुष्य अन्ततः उन्नति ही चाहता है। इस विषयमें तृतीय मंत्रका कथन विचारणीय है—

इमे सोमं सवितारं नमोभिः
विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे॥ (सू ८ मं ३)

सोम सविता और उस आदिकोंके उच्च होनेकी स्पर्धामें सहायताके लिये बुलाता हूं।' अर्थात् मैं देवताओंसे ऐसी सहायता चाहता हूं कि जिससे मैं दिव्य मार्गसे उन्नतिको प्राप्त कर सकूं।

उत्, उत्तर, ये शब्द एकसे एक बढ़कर अवस्थाके द्योतक हैं। साधारण अवस्थासे उत् अवस्था बढ़कर और उससे उत्तर अवस्था अधिक श्रेष्ठ होती है। मनुष्य सदा उत्तरोत्तर की प्राप्तिका प्रयत्न करे यह तृतीय मंत्रकी सूचना है। अर्थात् मनुष्य अपनेसे उच्च अवस्थामें पहुंचेका जब तो अवश्य ही करे परन्तु उससे भी एक सीढ़ी ऊपर होनेका ध्येय अपने सम्मुख रखे। उत्-तर-त्व शब्दमें यह सब अर्थ है जो पाठकोंको अवश्य देखना चाहिये।

यह अधिक उच्च अवस्था देवमार्गसे ही प्राप्त करना चाहिये। श्रेय और प्रेय अथवा देव और असुर ऐसे मार्ग मनुष्यके सम्मुख आते हैं उनमेंसे श्रेय अर्थात् दैव मार्गका अवलंबन करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है और दूसरे मार्गपरसे चलनेसे मनुष्यकी हानि हो जाती है। आसुर मार्गको दूर करनेके लिये और श्रेय मार्गपर आनेकी प्रेरणा करनेके लिये ही इस मंत्रमें देवताओंकी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेकी सूचना की है। देवताओंकी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेवाला मनुष्य कदापि निंद्य मार्गपर अपना पांव नहीं रख सकता। देवताओंकी सहायताकी प्रार्थना इस प्रकार मनुष्यके विकासका हेतु है। एक बार इस दैवी मार्गपर अपना पांव रखनेके बाद भी कई मनुष्य आसुरी अवस्थाओंमें फंस जाते हैं। इस प्रकारकी विपत्तिसे बचानेके हेतु चतुर्थ मंत्र कहता है कि—

इह इत् असाथ न परो गमाथ। (सू ८ मं ४)

इसी दैवी मार्गपर रहो इसको छोड़कर अन्य मार्गसे न जाओ। यह सावधानीकी सूचना विशेष ध्यान देने योग्य है। कई बार ऐसा देखा गया है कि मनुष्य आत्मोन्नतिके पथसे उन्नत होता चला जाता है और फिर एकदम गिरता है। ऐसा न होने इस लिये इस चतुर्थ मंत्रने यह सूचना की है। यदि पाठक इस सूचनाको ध्यानमें धारण करेंगे तो निःसंदेह इससे उनका कल्याण हो सकता है।

उन्नतिका मार्ग।

मनुष्यकी उन्नतिके लिये मनुष्य सामाजिक प्राणी होनेके कारण उसको सामाजिक जीवनमें रहना आवश्यक है। वह कदापि असंग रहकर उन्नत हो नहीं सकता। देवत्वके लिये इतने आत्मसंयमकी आवश्यकता नहीं है जितनी कि सामुदायिक जीवनके लिये आवश्यकता है। इस कारण सामुदायिक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्योंके लिये उचित है कि वे अपना व्यवहार ऐसा करें कि जिससे समाजमें परस्पर विरोध पैदा न हो इस विषयमें पंचम मंत्रका उपदेश देखिये—

वः मनांसि सह वः व्रतानि सह, वः आकूतीः समु।
(सू ८ मं ५)

तुम्हारे मन तुम्हारे कर्म और तुम्हारे संकल्प समान रीतिसे एकताको बढ़ानेवाले हों। इस मंत्रमें जो सं उपसर्ग है वह समता और एकता का द्योतक है। मनुष्योंके संकल्प उनके मानसिक विचार और सब प्रकारके कर्म ऐसे हों कि वे एकताकी तथा समताकी वृद्धि करनेवाले हों। कई लोग बाहरसे कोई बुरा कार्य करेंगे नहीं परन्तु मनसे ऐसे बुरे विचार और बुरे संकल्प करेंगे कि जिनका परिणाम आगेसे किसी मनुष्यका हेतु बने। ऐसा नहीं होना चाहिये। संकल्प विचार और कर्म सभी सदा शुभ होने चाहिये और कभी किसी प्राणी मात्रके नहीं आना चाहिये। यदि अपने समाजमें कोई इसके विरुद्ध वर्ताव करनेवाला हो तो उसको भी समझाकर सन्मार्गपर लाना चाहिये इस विषयमें पंचम मंत्रका उत्तरार्ध देखने योग्य है—

अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि॥
(सू ८ मं ५)

वे जो विरुद्ध आचरण करनेवाले हैं उनको भी एकताके मार्गपर हम झुका देते हैं। इस प्रकार विरोधी लोगोंको भी समझाकर एकताके मार्गपर लाना चाहिये। समाजके सभासद ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि जिससे रहनेवाले कोई विरुद्ध मार्गपर चल ही न सकें। सज्जन तो सदा शुभ मार्गपरसे चलेंगे ही परन्तु दुर्जन भी विरोधके मार्गपर आना छोड़ दें और शुभ मार्गपर चलनेमें ही अपना लाभ है इस बातको अच्छी प्रकार समझ जावें। इस प्रकार सब जनताको एकताके मार्गपर आनेसे और समाजके दुर्जनतम करनेवाले मनुष्योंको दूर कर देनेसे अथवा उनको सुधारनेसे अवश्यको उन्नतिका मार्ग खोला हो सकता है।

सुधारका प्रारंभ।

इसका यह बात ध्यानमें धारण करना चाहिये कि सुधारका प्रारंभ अपने अन्तःकरणके सुधारसे होता है। जो लोग अपने अन्तःकरणके सुधार करनेके विना ही दूसरोंके सुधार करनेके कार्यमें लगते हैं, वे न तो उस कार्यको सिद्ध सकते हैं और न स्वयं उन्नत हो सकते हैं। इसलिये वेदने इस सूक्तके छठे मंत्रमें अपने सुधारसे जगत्का सुधार करनेका उपदेश किया है यह मन्त्र देखिये—

अहं मनसा मनांसि सुध्यामि।
मम वशेषु वो हृदयानि कृणोमि॥
(सू. ८ म. ६)

मैं अपने मनसे अन्य सबोंके मन आकर्षित करता हूं। इस प्रकार मैं अपने वशमें अन्योंके हृदयोंको करता हूं।

इस मंत्रमें अपने हृदयकमलसे अन्योंके दिलोंको आकर्षित करनेका उपदेश हरएकको ध्यानमें रखने योग्य है। पाठक ही विचार करें और अपने चारों ओर देखें कि कौन दूसरोंके मनोंको आकर्षित कर सकता है! क्या कभी कोई दुराचारी अशुद्ध संकल्पवाला मनुष्य जनताके मनोंको आकर्षित कर सकता है! ऐसी बात कभी नहीं होती। सत्पुरुष और शुभ संकल्पवाले पुण्यात्मा ही जनताके मनोंको आकर्षित कर सकते हैं। जीवित अवस्थामें ही नहीं प्रत्युत मरनेके पश्चात् भी उनके सद्गुणप्रेरित सत्य जनताके मनोंको आकर्षण करते रहते हैं। यह उनमें सामर्थ्य उनके शुभ और शुद्ध संकल्पोंके कारण ही उत्पन्न होता है। ऐसे पुरुष जो चाहते हैं वैसा जनता करती है यह उनकी तपस्याका फल है। हरएक मनुष्यको यह सामर्थ्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। अपने संकल्पोंकी पवित्रता करनेसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है। जो अपनी पवित्रता जितनी करेगा उतनी सिद्धि उसको प्राप्त होगी। इसके पश्चात् यह पुण्यात्मा कहे संकेत कि—

मम चित्तं चित्तेभिः अनु एत।
मम यातं अनु वर्त्मान एत॥ (सू. ८ मं. ६)

मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोंको बनाओ मेरे अनुकूल चलते हुए मेरे मार्गसे चलो।

वस्तुतः जो पुण्यात्मा सत्य मार्गपर चलके अपने शुभ अशुभ संकल्पोंसे जनताके मनोंको आकर्षित करते हैं उनके लिये यह सिद्धि अनायास ही प्राप्त होती है। अर्थात् उनके कहनेके विना ही अन्य लोग उनके अनुकूल अपने चित्तोंको करते हैं और उनके मार्गसे ही चलनेका यत्न करते हैं। यह सदा होता रहता है। परन्तु जनताको अपने मार्गसे चलो ऐसा कहनेका यदि किसीको अधिकार होता तो ऐसे पुण्यात्माओंको ही होता है यह बात नहीं कही है। इस प्रकार अपना सुधार करनेवाले पुण्यात्मा जनताके मार्गदर्शक होते हैं। जगत्का सुधार करनेका सच्चा मार्ग इस प्रकार आत्मसुधारमें है। इसलिये जो प्रयत्न अयोग्य पुरुष जनताके सुधारके लिये करते हैं उतना प्रयत्न यदि वे आत्मसुधारके लिये करेंगे तो अधिक लाभ हो सकता है। जो शक्ति आती है वह आत्मसुधार करनेके कारण ही आती है। आत्मसुधार करनेके मार्गके सिवा अन्य सुधारका कोई मार्ग नहीं है। जब इस मार्गसे शक्तिकी वृद्धि होती है और जब वह अपने मनसे दूसरोंके मनोंको आकर्षित कर सकता है तभी उसको जनताको अपने पीछे चलो ऐसा कहनेका अधिकार आता है। वह कहता है कि—

मेरे मार्गसे मेरे साथ साथ चलो। मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोंको बनाकर चलो (मं. ६)। अर्थात् जिस मार्गसे मैं जाता हूं उसी मार्गसे तुम आओ। इसी मार्गसे चलनेपर तुम्हारा भला होगा। इस प्रकार इस अवस्थामें यह मनुष्य जनताका मार्गदर्शक होता है। उसका आचरण और उसका जीवन अन्य सबोंके लिये मार्गदर्शक अर्थात् आदर्श होता है।

सदेश्य राष्ट्र।

उक्त प्रकारके मार्गदर्शक आदर्श जीवनवाले धर्मात्मा और पुण्यात्मा जिस राष्ट्रमें अधिक होते हैं और जहांके लोग उनके अनुकूल अपने आचरण बनाकर चलते हैं, उस राष्ट्रको सदेश्य राष्ट्र कहते हैं, क्योंकि उसमें (संचरन) प्रवेश करके वहां रहने योग्य वह राष्ट्र होता है। मनुष्य वहां जावे और रहें और आनंद प्राप्त करें। इस प्रकारका राष्ट्र हमें देवताओंकी कृपासे प्राप्त हो यह प्रथम मन्त्रमें प्रार्थना है देखिये—

अस्मभ्यं० पृथुद्राष्ट्र सदेश्य बधातु।
(सू. ८ म. १)

हम सबके लिये देव प्रवेश करने योग्य बड़ा राष्ट्र दें। अर्थात् देवोंकी कृपासे हमें ऐसा उत्तम आदर्श राष्ट्र प्राप्त होवे अथवा हमारा राष्ट्र वैसा ही बने। इस प्रकारके राष्ट्रमें मैं प्रसन्न बनूंगा यह महत्त्वाकांक्षा जनताके अन्तःकरणमें रहेगी क्योंकि इसमें किसी कारण भी किसीके साथ पक्षपात नहीं होगा इसका सूचक शब्द वि पद मन्त्रमें है—

यथा सजातानां मध्येमेधा असानि।
(सू. ८ मं. २)

सजातियोंकी सभामें मुख्य स्थानमें बैठनेके कारण मैं होऊंगा। यह इच्छा ऐसे राष्ट्रके लोगोंके अन्तःकरणमें रहेगी

इस विषयमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वा पूर्वोक्त आत्मसुधारके मार्गसे अपनी प्रतिभा विकास करेंगे वे उक्त स्थानमें जाकर विराजेंगे अन्य लोग अपनी अपनी योग्यताके अनुसार अपने योग्य स्थानमें अपना कर्तव्य करेंगे। परन्तु किसीको भी उन्नतिके मार्गमें प्रतिबंध नहीं होगा। सब लोग अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नतिका साधन करेंगे और सब मिलकर अपने राष्ट्रको उन्नतिके शिखरपर ले जायेंगे। इस विषयमें एक प्रकारकी वास्तविक स्पर्धा ही होती है जिसको तृतीय मन्त्रने उदात्तकी स्पर्धा कहा है। इस स्पर्धामें परस्परका अहित नहीं होता प्रत्युत परस्परकी उन्नति होती है। इस जानकारी मनुष्य एक मानसे इस राष्ट्रोन्नतिका अग्नि प्रदीप्त करते हैं और उसमें अपने अपने कर्मोंकी आहुतियां डालते हैं इस विषयमें तृतीय मंत्रका उदाहरण देखिये—

राष्ट्रीय अग्नि।

अप्रयमग्निर्दीदायहीर्धयेव सजातेरिडोऽप्रतिमुष्कभिः।
(ऋ ८ सं १)

(अ-प्रति-मुष्कभिः) आपसमें विरोधका आचरण न करनेवाले (स-जातैः) स्वजातियोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ यह एक राष्ट्रीयताका अग्नि बहुत दीर्घ कालतक प्रदीप्त स्थितिमें रहे। अर्थात् यह कीर्तिमें अथवा आयुष्यमें ही न कुछ जावे। क्योंकि इसी अग्निकी अग्नि इस राष्ट्रीय मनोरथ उत्पन्न और पुष्ट होते रहते हैं। इसलिये यह राष्ट्रीय अग्नि सदा प्रदीप्त रहना चाहिये। यह अग्नि वे ही मनुष्य प्रज्वलित रख सकते हैं कि जो (अ-प्रति-मुष्कभिः) आपसमें विरोधके कारण नहीं कीर्तिसे आपसमें ईर्षा नहीं करते आपसमें द्वेष नहीं बढ़ाते; प्रत्युत आपसमें मेल मिलाप करनेकी ही आशा रखते हैं। ऐसे सज्जन ही राष्ट्रोन्नतिके महान् अग्निका पवन करते हैं।

इस सूक्तमें सजात शब्द आया है और यह शब्द वेदमंत्रोंमें अनेक बार आया है। सजातीय समान जातीय स्वजातीय इत्यादि अर्थमें यह शब्द प्रयुक्त होता है। जिसमें जातिभेदकी भिन्नता नहीं है ऐसे एक जातिवाले एक राष्ट्रीयताके लोग यह अर्थ इस शब्दका है। जातिभेदके कारण एक दूसरेसे व्यवहार करनेवाले लोग सजात नहीं कहलायेंगे। एक राष्ट्रके लोग परस्पर सजात ही होते हैं परन्तु उनमें राष्ट्रीयताकी भावना अवश्य रहनी चाहिये और छोटी बातोंकी स्पर्धा बंद होनी चाहिये। ऐसे लोग जब आपसमें एकताके प्रेमसे कोई कर्म करते हैं तब उसमें एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है यही अग्नि शब्द द्वारा तृतीय मंत्रमें कही है। यही राष्ट्रस्थितिका अग्नि है जो कि संपूर्ण राष्ट्रकी उन्नतिमें सहायक होता है।

राष्ट्रका पोषक।

इस प्रकारके राष्ट्रके सब पोषक दोहो लोग होते हैं, उनका वर्णन चतुर्थ मंत्र द्वारा हुआ है—

इर्यो गोपा पुरुष्पतिव भाजत्। (ऋ ८ म ४)

(इर्यः) अन्नका उत्पन्न करनेवाला और (गो-पा) गौओंकी रक्षा करनेवाला ये दो वर्ग लोगोंकी पुष्टि करनेवाले हैं। यह मंत्रभाग बहुत मनन करने योग्य है। अन्नकी उत्पत्ति करनेवाला किसान और गौओंकी रक्षा करनेवाला अहीरिणी ये दो वर्ग राष्ट्रकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं। राष्ट्रकी पुलिसवाले ठीक करनेका कार्य ये लोग करते हैं इसलिये राज्यव्यवस्थामें इनकी स्थिति अच्छी करनेका विशेष प्रबंध होना अत्यंत आवश्यक है। यदि अन्न उत्पन्न करनेवाले किसान और पोषक ये दो वर्ग राष्ट्रमें अवनत हुए तो राष्ट्रकी कदापि पुष्टि नहीं हो सकती। पाठक इस दृष्टिसे इसका महत्व जानें और यह उपदेश इस प्रबंधमें देनेमें देखने कितनी महत्वपूर्ण बात कही है यह भी ध्यान रखें।

शूरपुत्रोंवाली माता।

राष्ट्रकी पुलिसवाले संतान है। पुत्र और पुत्रियां ही राष्ट्रका भावी उत्कर्ष या अपकर्ष करनेवाली होती हैं। इनकी योग्य शिक्षा मातासे द्वारा होती है। माता अपने अपत्योंको किस प्रकार शिक्षा देवे इसकी सूचना द्वितीय मंत्रमें दी है। इस विषयके सूचक शब्द ये हैं—

शूरपुत्रा अदितिर्देवयं दुवे। (ऋ ८ सं १)

यह पुत्रोंकी अदीना देवी माताकी मैं सुश्रूषा हूं। अर्थात् उसकी मैं प्रार्थना करता हूं। यहांका अ-दिति शब्द अदीन प्रतिबंधमें न रहनेवाली राष्ट्रके स्वातंत्र्यको सिद्धार रखनेवाली इत्यादि भाव रखता है। शूरपुत्रा शब्दका भाव स्पष्ट है। राष्ट्रमें देवियां देवी हों जिनके अदीन और शूरपुत्रा कहा जावे। शूरसूनवे अर्थात् शूर पुत्र उत्पन्न कर यह वैदिक वाङ्मयमें सुप्रसिद्ध है। यही भाव अन्य रीतिसे यहां बताई है।

राष्ट्रीय शिक्षा।

इस प्रकारकी वीरमातायें जहां होंगी वहां ही राष्ट्रीयताके भाव परम उत्कर्षतक पहुंच सकते हैं। देवियोंको अदीनोंको और पुत्रियोंको किस ढंगसे शिक्षा देना चाहिये इसका विचार भी यहां निर्दिष्ट हो जाता है। जिस शिक्षासे मातायें शूरपुत्र उत्पन्न करनेवाली हों ऐसी शिक्षा उनको देनी चाहिये।

दैवी सहायता।

उक्त राष्ट्रीसत्ताके विचारोंकी पूर्णता होकर संपूर्ण जनता इस रीतिसे समर्थ राष्ट्रसत्तिसे युक्त होवे इस विषयमें चतुर्थ मंत्र देखिये—

अक्षे कामापोप कामिनीर्विजेषे यो देवा उप सयमन्तु ॥ (सू. ८ म. ४)

सब देव इस कामनाके पूर्तिकी इच्छा करनेवाली तुम सब प्रजाओंको एकत्रके विचारसे युक्त करें। अर्थात् तुम सब लोगोंमें एकत्रका विचार बढ़ जावे। यह एक प्रकारसे पूर्व और उक्त आशीर्वाद है। जो पाठक परमेश्वर भक्तिपूर्वक राष्ट्रोन्नतिके लिये प्रयत्नशील होंगे वे इस आशीर्वादको प्राप्त करनेके अधिकारी हो सकते हैं।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

इस सूक्तके अन्य मंत्रभागमें मित्र बलवान् देवोंकी सहायता हमें राष्ट्रशक्ति बढ़ानेके कार्यमें प्राप्त हो यह आशय है। यह आशय आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक कार्यक्षेत्रमें दर्शाकर अर्थबोध लेनेकी रीति इससे पूर्व कई सूक्तोंमें वर्णन की है। (विशेषकर काण्ड १ सू. १ ११ के विवरण देखिये) इसलिये उसका यहां पुनः विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। उक्त रीतिसे पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करें और बोध प्राप्त करें।

क्लेश-प्रतिबन्धक उपाय।

(१)

(ऋषिः - वामदेवः। देवता - द्यावापृथिवी देवाः)

कर्षफस्य विदथस्य धोः पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवास्तथापं कृणुता पुनः ॥ १ ॥
मयोभूष्माणो अघारयन्तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि वधि विष्कन्ध मुष्काबर्हो गवामिव ॥ २ ॥

अर्थ— (कर्ष+फस्य=कृशस्य) कृश अथवा निर्बलको अथवा उसी प्रकार (विद्य+फस्य) मवलको भी (माता पृथिवी) माता पृथ्वी है और उसका (पिता द्यौः) पिता द्युलोक है। हे (देवाः) देवो! (यथा अभिचक्र) जैसा पराक्रम किया था (तथा पुनः अपकृणुत) उसी प्रकार फिर शत्रुओंका प्रतिकार करो ॥ १ ॥

जैसे (अ-क्षेष्माणः अघारयन्) न थकनेवाले ही विशेष धारण करते रहते हैं (तथा तत् मनुना कृतम्) उसी प्रकार यह कार्य मनुष्योंने भी किया होता है। (मुष्काबर्हः गवां इव) जैसा अण्डकोष तोड़नेवाला मनुष्य बैलोंका निर्बल कर देता है उसी प्रकार मैं (वि-स्कन्ध वधि कृणोमि) शत्रुओंका विशेष निर्बल करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— बलवान् और निर्बल इन दोनोंके माता-पिता भूमि और द्युलोक हैं। अर्थात् ये दोनों प्रकारके लोग आपसमें भाई हैं। दबल लोग पराक्रम करके शत्रुका पराभव करते हैं, मनुष्य इस रीतिसे हैं और निर्बलोंका रक्षण करते हैं ॥ १ ॥

न थकते हुए परिश्रम करनेवाले ही विशेष कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। मनस्वीजन मनुष्य भी वैसा ही पुरुषार्थ करते हैं। मैं भी उसी प्रकार शत्रुका तथा शत्रुओंका निर्बल करता हूं जिस प्रकार अण्डकोष तोड़नेवाले बैलका अण्डकोष तोड़कर उसको निर्बल कर देते हैं ॥ २ ॥

इस विषयमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जो पूर्वोक्त आरम्भानुसारके मार्गसे अपनी शक्तिका विकास करेंगे वे उक्त स्थानमें जाकर विराजेंगे अन्य लोग अपनी अपनी योग्यताके अनुसार अपने योग्य स्थानमें अपना कर्तव्य करेंगे। परन्तु किसीको भी उन्नतिके मार्गमें प्रतिबंध नहीं होगा। सब लोग अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नतिका साधन करेंगे और उस मिलकर अपने राष्ट्रको उन्नतिके शिखरपर ले जावेंगे। इस विषयमें एक प्रकारकी सात्विक स्पर्धा ही होती है जिसको तृतीय मन्त्रने उत्तरस्पर्धा कहा है। इस स्पर्धामें परस्परका घात नहीं होता प्रत्युत परस्परकी उन्नति होती है। सब जनताके मनुष्य एक भावसे इस राष्ट्रोन्नतिरूप अग्नि प्रदीप्त करते हैं और उसमें अपने अपने कर्मोंकी आहुतियां डालते हैं, इस विषयमें तृतीय मन्त्रका उत्तरार्ध देखिये—

राष्ट्रीय अग्नि।

अयमग्निर्दीदायद्दीर्घमेव सजातेरिष्टोऽप्रतिष्ठुवद्भिः।
(सू ८ मं १)

(अ-प्रति-ष्ठुवद्भिः) आपसमें विरोधका भाषण न करनेवाले (स-जातैः) सजातियोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ यह एक राष्ट्रोन्नतिरूप अग्नि बहुत दीर्घ कालतक प्रदीप्त स्थितिमें रहे। अर्थात् यह बीचमें अथवा अल्पकालमें ही न बुझ जावे। क्योंकि इसी अग्निकी वर्षासे सब राष्ट्रीय मनोरथ सफल और सुफल होते रहते हैं। इसलिये यह राष्ट्रीय अग्नि सदा प्रदीप्त रहना चाहिये। यह अग्नि वे ही मनुष्य प्रज्वलित रख सकते हैं कि जो (अ-प्रति-ष्ठुवत्) आपसमें विरोधके शब्द नहीं बोलते आपसमें कलह नहीं करते आपसमें द्वेष नहीं बढ़ाते, प्रत्युत आपसमें मेल मिलाप करनेकी ही वाणी बोलते हैं। ऐसे सज्जन ही राष्ट्रोन्नतिके महान् अग्निका चयन करते हैं।

इस सूक्तमें सजात शब्द आया है और यह शब्द वेद मंत्रोंमें अनेक बार आया है। सजातीय समान जातीय स्वजातीय इत्यादि अर्थमें यह शब्द प्रयुक्त होता है। जिसमें जातिभेदकी भिन्नता नहीं है ऐसे एक जातिवाले एक राष्ट्री मनुष्योंके लिये यह अर्थ इस शब्दका है। जातिभिन्नके कारण एक दूसरेसे जलनेवाले लोग सजात नहीं कहलावेंगे। एक राष्ट्रके लोग परस्पर सजात ही होते हैं परन्तु उनमें राष्ट्रीयताकी भावना सदा रहनी चाहिये और छोटी बातोंकी मत्सरता दीन होनी चाहिये। ऐसे लोग जब आपसमें एकताके प्रेमसे कोई कर्म करते हैं तब उनमें एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है यही अग्नि शब्द द्वारा तृतीय मंत्रमें कही है। यही राष्ट्राभिवृद्धिका अग्नि है जो कि संपूर्ण राष्ट्रकी उन्नतिमें सहायक होता है।

राष्ट्रका पोषक।

इस प्रकारके राष्ट्रके सब पोषक दोही लोग होते हैं, अथर्व वर्णन चतुर्थ मंत्र द्वारा हुआ है—

इयँ गोपा पुरएतेव भाजत्। (सू ८ मं ४)

(इयं) यह उत्पन्न करनेवाला और (गो-पा) गौओंकी रक्षा करनेवाला ये दो आप लोगोंकी पुष्टि करनेवाले हैं। यह मंत्रभाग बहुत मनन करने योग्य है। अच्छी उत्पत्ति करनेवाला किसान और गौओंकी रक्षा करनेवाला क्षत्रिय ये दो वर्ग राष्ट्रकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं। राष्ट्रकी दुनियादार ठीक करनेका कार्य ये लोग करते हैं इसलिये राज्यव्यवस्थामें इनकी स्थिति अच्छी करनेका विशेष प्रबंध होना अत्यंत आवश्यक है। यदि अन्न उत्पन्न करनेवाले किसान और गोरक्षक ये दो वर्ग दुर्बल हुए तो राष्ट्रकी कदापि पुष्टि नहीं हो सकती। पाठक इस दृष्टिसे इनका महत्त्व जानें और यह उपदेश इस प्रसंगमें देखनेमें देखने कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही है यह भी अवश्य देखें।

शूरपुत्रोंवाली माता।

राष्ट्रकी पुत्रियां धन्य हैं। पुत्र और पुत्रियां ही राष्ट्रका सच्ची उन्नति या अवनति करनेवाली होती हैं। इनकी सच्ची शिक्षा मातांके द्वारा होती है। माता अपने बालबच्चोंको किस प्रकार शिक्षा देवे इसकी सूचना द्वितीय मंत्रमें दी है। इस विषयके दर्शक शब्द ये हैं—

शूरपुत्रा अदितिर्देवी जुषे। (सू ८ मं २)

शूर पुत्रोंकी जननी देवी माताओंमें मैं पूजता हूं। अच्छा उनकी मैं प्रशंसा करता हूं। यहांका अ-दिति शब्द अखंड प्रतिबंधमें न रहनेवाली राष्ट्रके स्वाधीनताके विचार रखनेवाली इत्यादि भाव रखता है। शूरपुत्रा शब्दका भाव स्पष्ट है। राष्ट्रमें देवियां ऐसी हों जिनके वीर और वीरपुत्र कहा जावे। वीरप्रसव अर्थात् वीर पुत्र उत्पन्न कर यह वैदिक भाषामें सुप्रसिद्ध है। यही बात शब्द रीतिसे यहां बतायी है।

राष्ट्रीय शिक्षा।

इस प्रकारकी वीरमातायें यहां होंगी तभी ही राष्ट्रोन्नतिके मार्ग परम उत्कर्षतक पहुंच सकते हैं। देवियोंको बहिनोंको और पुत्रियोंको किस ढंगसे शिक्षा देना चाहिये इसका विचार भी यहां निर्णित हो जाता है। किस शिक्षासे माताएं वीरपुत्र उत्पन्न करनेवाली हों ऐसी शिक्षा उनको देनी चाहिये।

जगत्में दो प्रकारके मनुष्य हैं एक (बल+च=बलच) बलच बलहीन अथवा बलच्युत स्वभावसे (बल्+अच) बुरे तरहसे अर्थात् जो अपना बचाव कर नहीं सकते और दूसरे (विष+च) अपने आपका प्रबल पूर वुरतक कर सकते हैं और दूसरोंका पराभव करके अपना अधिकार दूसरोंपर जमा बठ हैं। इसी शब्दका दूसरा अर्थ यह है कि (वि+बच) विशेष बुरवाले अर्थात् जो पशु दूसरोंको डाँवें मारनेमें समर्थ होत हैं।

विबध के दोनों अर्थोंमें समान भाव यह है कि पाखी बछिसे युक्त।

विश्वबन्धुत्व।

मनुष्यों के दो प्रकारके स्वभाव हैं एक (वि+बच) पाखी बछिसे युक्त और दूसरे (बलच) पाखी बछिसे हीन। सदा ही ऐसा देखा जाता है कि पाखी बछिसे बली बने हुए मनुष्य निर्बल लोगोंको दबाते रहते हैं। इस कारण सामाजिक राजकीय और धार्मिक विषमता बढ़ जाती है और इसी प्रमाणसे जगत्के क्लेश बढ़ते जाते हैं। इन क्लेशोंके निवारणका एक मात्र उपाय यह है कि सब लोग परस्पर भाई हैं और एक परम पिता और एक परम माताकी संतानें हैं, इस उच्च भावको प्राप्त करना। यदि निर्बल और सबल दोनों मानेंगे कि हम सबका परम पिता और परम माता एक ही है इसलिये हम सब मनुष्य आपसमें भाई भाई हैं तो पश्चात् एक दूसरेसे झगड़ा करनेका कारण ही नहीं रहेगा। क्योंकि जो झगड़ा होता है वह परकी बलाके मालिक होता है, वह परकीय भाव इस प्रकार दूर होने पर झगड़ा ही नहीं रहेगा। सामाजिक, राजकीय और धार्मिक झगड़े हटानेका यही उपाय वेदने यह बताया है।

मातृभूमिको अपनी माता मानना और पूर्व पुरुषोंका प्रपितामह देवोंको अपना पिता समझना यह झगड़ा मिटानेके लिये उत्तम उपाय है। मातृभूमिकी भक्ति यदि जनताके मनमें व्याप्त हो गई तो सब प्रकारकी एकता होनेमें विलम्ब नहीं लगेगा। मातृभूमिकी भक्ति ही ऐसी एक वस्तु है कि जो राष्ट्रीय एकताको निश्चित कर देती है और सबमें अद्भुत सामर्थ्य उत्पन्न कर देती है। मातृभूमिकी भावनामें विशेषतः बलोंके प्रेम ही भाता है परन्तु भूमिमात्रका विस्तृत अर्थ लेनेपर विश्वबंधुत्वकी कल्पना भी आती है।

पराक्रम।

मातृभूमिका हित करनेका कर्तव्य अपने सम्मुख रखकर, उस कर्तव्यमें उत्पन्न होनेवाले अपने कर्तव्य करनेके लिये और उस उस कर्तव्य करनेके लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मनुष्योंको स्थिर रहना चाहिये। जिस प्रकार देवासुर युद्धमें देव असुरोंका हटानेके कार्यमें बड़ा पराक्रम करते हैं, असुरोंपर आक्रमण करते हुए उनको हय करते हैं उसी प्रकार शत्रुओंका हटानेके कार्यमें बड़ा पुरुषार्थ करना चाहिये। शत्रुका पराभव करना और उनको दूर करना ये दो बातें इस पुरुषार्थमें मुख्य हैं—

यथाऽभिचक्र देवास्तथाऽप जुणुता पुनः॥
(सू. ९ म १)

जैसा (अभिचक्र) शत्रुपर हमला करना चाहिये वैसा ही (अपजुणुत) उनको दूर करना चाहिये। हमला करके शत्रुका पराभव करना चाहिये और उनको अपने स्थानसे पर भी हटाना चाहिये। इतना सब करके असहायोंका रक्षण करना चाहिये।

यह सब होनेके लिये सब लोगोंका संघटित व परमात्माको सबका माता पिता मानना इन दो बातोंकी आवश्यकता है। पाठक इस अतिभिन्न उपदेशका अच्छी प्रकार मनन कर।

परिश्रमसे सिद्धि।

परिश्रम करनेके बिना कुछ भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो सिद्धि होती है वह श्रमसे साध्य होती है। जो भी विजयी लोग हुए हैं वे पराश्रयसे प्राप्त नहीं होते थे। वे परिश्रम करनेके लिये उतरे वहीं वे इसीलिये उनमें धारक शक्ति उत्पन्न हुई और वे अखिल समाजों और राष्ट्रोंका धारण कर सके। इसी लिये मंत्रमें कहा है—

अश्रेष्माणो अधारयन्
तदा रुद्रासो अधारयन्॥ (सू. ९ मं २)

जो परिश्रम करनेसे नहीं थकते वही धारण करते हैं। मनमचीलने भी वैसा ही कर दिखाया था। परिश्रम करनेके बिना धारक शक्ति नहीं आ सकती। और जो मनमचीलके लोग हैं वे भी अपनी मनन शक्तिसे इसी परिणामतक पहुंचे हैं। प्रबल जीवता ही मनुष्य मात्रका उद्धार करनेवाली है। इस लिये हरएक मनुष्यको प्रबल जीवताका महत्त्व जानकर पुरुषार्थ प्रयत्नसे अपना उद्धार करना चाहिये और अपने राष्ट्रका भी अभ्युदय साधन करना चाहिये।

परिश्रमी पुरुष अपने प्रयत्नसे सब विघ्न दूर कर सकता है उसके लिये सब ही अवस्थाएं प्रयत्न साध्य होती हैं उसके लिये असह्य और अप्राप्य ऐसा कोई स्थान नहीं होता है, यह निश्चयपूर्वक कहता है कि—

क्षणोमि सर्वा विष्कन्ध मुष्काबर्हो गवामिव।
(सू. ९ मं २)

पिशङ्गे सूत्रे सृगलं वदा बध्नन्ति वेधसः ।
भवस्युं शुष्मं काशव वधिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥ ३ ॥
येना भवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काशवस्य च ॥ ४ ॥
दुष्टयै हि त्वा भरस्यामि दूषयिष्यामि काशवम् ।
उद्राशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यव ॥ ५ ॥
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (वेधसः) ज्ञानी लोग (पिशङ्गे सूत्रे) भूरे रंगके सूत्रमें (सृगलं वदा बध्नन्ति) जब मणिको बांधते हैं। (बन्धुरः) बंधन करनेवाले (भवस्युं शुष्मं काशव वधिं कृण्वन्तु) प्रसिद्ध प्रबल लोहेके रोगको निर्बल करें ॥ ३ ॥

हे (भवस्यवः) बलवती पुरुषो ! (येन) जिससे (असुरमायया देवाः इव चरथ) लोहेकी छातीके दुष्टोंके समान आचरण करते हो तथा (कपिः शुनां दूषणः इव) बंदर जैसा कुत्तोंको दुष्ट मानता है वैसे (बन्धुरा काशवस्य च) बंधन करनेवाले रोगका अथवा दुःखका प्रतिषेध करते हैं ॥ ४ ॥

(दुष्टयै हि त्वा भरस्यामि) दुष्टताके हटानेके लिये मैं तुझे बांधूंगा। और (काशवं दूषयिष्यामि) जिससे निर्बल बना देता हूं। (आशवः रथाः इव) शीघ्र चलनेवाले रथोंके समान तुम (शपथेभिः उत् सरिष्यव) बाणोंके बधनसे मुक्त हो जाओगे ॥ ५ ॥

(एकशतं विष्कन्धानि) एक सौ एक विघ्न (पृथिवीं अनु विष्ठिता) पृथ्वीपर रहे हैं। (तेषां अग्रे) उनके सामने (विष्कन्धदूषणं त्वां मणिं) विघ्नोंको दूर करनेवाले तुझ मणिको (उत् अहरः) ऊंचा उठाया है। सबसे श्रेष्ठ माना है ॥ ६ ॥

भावार्थ— भूरे रंगके सूत्रसे ज्ञानी लोग मणिको बांधते हैं जिससे प्रसिद्ध लोहेके रोगको निर्बल बना देते हैं ॥ ३ ॥

बलवती पुरुष लोहेके बनी मानुषोंसे जाते हैं और शत्रुओंको दूर करते हैं, बंदर जैसा हटता हुआ कुत्तोंको दुष्ट मानता है इसी प्रकार रोग प्रतिबंधकी विद्या जाननेवाले रोगोंको दूर करते हैं ॥ ४ ॥

दुष्ट स्वभावको दूर करनेके लिये योग्य प्रतिबंध करना चाहिये उसी प्रकार रोगादि शत्रुओंको निर्बल करना चाहिये। जैसे वेगवाले रथसे मनुष्य पहुंचनेके स्थानपर शीघ्र पहुंच जाता है उसी प्रकार उक्त मार्गसे मनुष्य दुष्ट अवस्थासे मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

पृथ्वीपर सैकड़ों विघ्न और दुःख हैं। उनके प्रतिबंधक उपायोंमें दुःखप्रतिबंधक मणि विशेष प्रमाणस्वरूप है जिसको धारण किया जाता है ॥ ६ ॥

यह सूक्त समझनेके लिये बड़ा कठिन और अत्यंत दुर्बोध है। इस सूक्तके कर्ता जिसके कृष्ण आदि ये शब्द अत्यंत दुर्बोध हैं और बहुत प्रयत्न करनेपर भी इन शब्दोंका समाधानकारक अर्थ इस क्षणतक पता नहीं लगा। जो पाठक वेदके अर्थकी खोज कर रहे हैं वे इस विषयकी खोज अवश्य करें।

सबके माता पिता।

प्रथम मंत्रके प्रथमार्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह सबके ध्यानमानकी बात है।

द्यौष्पिता पृथिवि मातः पिता पृथिवी माता।
(सू ५, मं १)

पिशंगे सूत्रे खृगल तदा बध्नन्ति वेधसः ।
(पृ ९ मं १)
दुष्वप्न्यं हित्वा मत्स्यामि । (पृ ९ म ५)
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥
(पृ ९ मं ६)

भूरे रंगवाले सूत्रमें डाली जाय इस मणिको बांधते हैं। दुरवस्था हटानेके लिये तुझे बांधूंगा। मणिको विघ्नोंका निर्मूल करनेवाला उत्तम मुख्य उपाय मानकर ऊपर उठाते और धारण करते हैं।

इन मंत्र भागोंसे स्पष्ट होजाता है कि व्यक्तिके शारीरिक रोगरूपी आधिव्याधियोंको हटानेके लिये यह मणिधारण एक उत्तम उपाय है। सामाजिक और राष्ट्रीय विघ्नोंको दूर करनेके लिये विश्वपुरुषकी कल्पनाका केवल करनेका उपाय प्रमुख स्थान रखता है। तथा अन्यान्य संपूर्ण विघ्नोंको हटानेके लिये परिश्रम करने अर्थात् पुरुषार्थ करनेकी शक्ति मनुष्यमें पर्याप्त है। इस सूक्तका अच्छा मनन पाठक करेंगे तो उनको अपनी उन्नतिका मार्ग विघ्नरहित करनेका उपाय निःसंदेह प्राप्त हो सकता है।

कालका यज्ञ।

(१०)

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — एकाष्टका, मातरिश्वा)

प्रथमा ह व्यु॑वास सा धेनुर॑भवद्यमे ।
सा नः॑ पयस्वती दुहा॒मुत्तरा॒मुत्तरां॑ समा॑म् ॥ १ ॥
यां दे॒वाः प्रति॑नन्दन्ति॒ रात्रिं॑ धे॒नुमु॑पाय॒तीम् ।
सव॒त्सर॑स्य॒ या पत्नी॒ सा नो॑ अस्तु सुमङ्ग॒ली ॥ २ ॥
सव॒त्सर॑स्य॒ प्रति॑मां॒ यां त्वा॒ रात्र्युपा॑सते ।
सा नु॑ आयु॒ष्मतीं॑ प्र॒जां रा॒यस्पोषे॑ण॒ सं सृ॑ज ॥ ३ ॥

अर्थ—(प्रथमा ह वि+उवास) पहली उषाकी तरह उदयको प्राप्त हुई। (सा यमे धेनुः अभवत्) वह नियममें धेनु जैसी हुई। (सा पयस्वती) वह दूध देनेवाली धेनु (नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां) हमारे लिये उत्तरो उत्तर अर्थात् आनेवाले वर्षोंमें दूध देती रहे ॥ १ ॥

(देवाः) देव (यां उपायतीं रात्रिं धेनुं) जिस आनेवाली रात्री रूपी धेनुके देखकर (प्रतिनन्दन्ति) आनन्दित होते हैं। (या संवत्सरस्य पत्नी) जो संवत्सरकी पत्नीरूप है (सा नः सुमङ्गली अस्तु) वह हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली होवे ॥ २ ॥

हे (रात्रि) रात्री ! (यां त्वा) जिस तुझको (संवत्सरस्य प्रतिमां) संवत्सरकी प्रतिमा मानकर (उपासते) हम सब भजते हैं (सा नः आयुष्मतीं प्रजां) वह हमारी दीर्घ आयुवाली प्रजाको (रायः पोषेण संसृज) धनकी पुष्टिसे संयुक्त कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— पहली उषा उदयको प्राप्त हुई है। जो पुनियमोंका पालन करती है उसके लिये यह धेनु समान वा अमृत रस देनेवाली बनती है। इसलिये यह धेनु हमारी भविष्यमें आयुमें हमें भी अमृत रस देनेवाली बने ॥ १ ॥

प्राप्त होनेवाली इस रात्री रूपी कामधेनुको देखकर सब आनन्दित होते हैं। यह संवत्सरकी पत्नी रूपी हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली बने ॥ २ ॥

संवत्सरकी प्रतिमा रूप यह रात्री है इसकी उपासना हम करते हैं इसलिये यह हमारे संतानोंको दीर्घ आयु धन और पुष्टि देवे ॥ ३ ॥

मैं विघ्नसे विघ्नको निर्बल करता हूं जिस प्रकार अन्य लोगोंके रोकनेवाले लोग मेरेलोगोंके निमित्त विघ्न उपस्थित करते हैं। पुरुषार्थ प्रयत्नसे एक विघ्न सब प्रतिबंध सब आधिव्याधियोंके नष्ट हो सकते हैं। पुरुषार्थ प्रयत्नके सन्मुख ये विघ्न ठहर ही नहीं सकते।

यहां देवोंके सम्बन्धको छोडकर उनको प्रयत्नके करनेके लिये अत्यन्त बलवान बनानेकी शिक्षाकी सूचना है। खेतीके लिये इसी प्रकारके मेघोंका उपयोग होता है।

असुर-माया।

असुरमाया का विषय चतुर्थ मंत्रमें आया है। माया शब्दका अर्थ चैतन्य हुनर, कला प्रज्ञा इत्यादि अर्थ है। असुर शब्दका अर्थ (अ-सुर) देव अथवा (असु-र) जीवनकी क्रिया चालनेवाले और उस क्रियाका प्रकाश करनेवाले है। इसलिये असुर-माया का अर्थ असुरोंके पास कला-कौशल हुनर अथवा जीवनके साधन प्राप्त करनेकी विद्या है। यह असुर माया अपनी अपनी ढंगकी देवोंके पास भी रहती है और दैत्योंके पास भी होती है। देव सम्पूर्ण प्रकारकी यह विद्या प्राप्त करते हैं और अपनी उन्नति सिद्ध करते हैं और भोगप्रद प्राप्त करते हैं इस विषयमें कहा है—

असुरमायया देवा इव अवस्वतः चरत।
(सू १ म ४)

इस जीवनकी क्रियासे जैसे देव चलते हैं वैसे तुम भी चलकी और प्रवर्तित होकर चलो। देव जैसे इस जीवन क्रियासे चलती होते हैं वैसे ही तुम भी होओ। यह चतुर्थ मंत्रका कथन मनुष्योंको पुरुषार्थके मार्गपर चलानेके लिये ही है। जो मनुष्य इस मार्गसे चलते वे देवोंके समान पूजनीय होंगे और चलते भी भावी करेंगे।

सैंकडों विघ्न।

इस पृथ्वीपर विघ्न तो सैंकडों हैं, व्यक्ति समाज जाती और एकूभी उन्नतिमें सैंकडों किस्मके विघ्न होते हैं। जो भी पुरुषार्थ करनेका कार्य चला हो उसमें विघ्न तो अवश्य ही होंगे परंतु उनसे डरना नहीं चाहिये। इन विघ्नोंके विषयमें कहा है—

एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु।
(सू १ मं १)

सैंकडों विघ्न पृथ्वीपर हैं। सब ये विघ्न हैं और हरएक कार्यमें ये रहेंगे ही उन उनसे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी प्रतिबंध करते हुए आगे बढना चाहिये। आगे बढनेके लिये अपना वेग बढाना चाहिये—

आशवो रथा इव वाजयोधिः उत् सरिष्यथ।
(सू १ मं ५)

वीरपुरुषों एक वेगे शीघ्र आगे बढते हैं उसी प्रकार पुरुषार्थ प्रयत्न करनेसे तुम भी विघ्नोंको पीछे डालकर आगे बढ जाओगे। अपना वेग बढानेसे विघ्न पीछे हटते हैं, परंतु जो अपना वेग कम करते हैं वे विघ्नोंसे ग्रस्त होते हैं। इसलिये अपनी पुरुषार्थ शक्ति बढानेसे मनुष्य विघ्नोंको पराभव करके निरबाध मार्ग पुरुषार्थ सकते हैं। इस विषयके उदाहरण देखिये—

सुवां सूचकः कपिः इव। (सू १ मं ४)

कुत्तोंका तिरस्कार करनेवाला बंदर जैसा होता है। बंदर वृक्षपर रहते हैं इसलिये वे कुत्तोंकी पर्वाह नहीं करते। वे कुत्तोंको तुच्छ समझते हैं क्योंकि वे कुत्तोंकी अपेक्षा बहुत ऊंचे स्थानपर रहते हैं अतः कुत्ते उन बंदरोंको कोई विघ्न कर नहीं सकते। इसी प्रकार जिन स्थानोंमें विघ्न होते हैं उन स्थानोंको छोडकर ऊंचे ऊंचे स्थानोंमें रहनेसे कोई विघ्न कर नहीं दे सकते। जैसे बंदर वृक्षपर रहनेके कारण कुत्तोंकी पर्वाह नहीं रहते हैं इसी प्रकार हरएक विघ्नसे मनुष्य अपने आपको बचावे। विघ्नका जो स्थान होगा उससे अपना स्थान ऊंचा करनेसे मनुष्य उनसे सदा दूर रह सकता है। इसी विषयके सूचक निम्न लिखित मंत्र हैं—

अवस्युं कुप्य कारवः वधिं कृण्वन्तु वन्धुरः॥
(सू १ म. १)
कारवस्त्वा वृणते वन्धुरः॥ (सू १ म ४)
कारवः सूचयिष्यामि॥ (सू १ मं ५)

विघ्नोंका प्रतिबंध करनेवाले लोग प्रसिद्ध होकर विघ्नोंके निर्बल करें। विघ्नका प्रतिबन्ध [illegible]। मैं विघ्नको पराभव करूंगा।

ये सब विधान विघ्नोंका प्रतिबंध करनेके सूचक हैं। विघ्नोंको पराभव करना अथवा विघ्नोंको दूर करना यह मनुष्यका ध्येय है और इसके उपाय इससे पूर्व दिये ही हैं। शारीरिक व्याधियोंसे अपने आपका बचाव करनेके लिये मणि धारणका उपाय इससे पूर्व कई सूक्तोंमें कहा गया है। (देखो काण्ड २ सूक्त ४) इस प्रकारके मणि धारणसे रोगोंका प्रतिबंध हो जाता है इसलिये मणि धारणकी सूचना देनेके लिये इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्र आया है—

आपमंगन्त्सवत्सुरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा नु आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ८ ॥
ऋतून्यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः सवत्सरान्मासां भूतस्य पतये यजे ॥ ९ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मात्रः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ १० ॥
हव्या घृतवता जुहतो वय देवान्घृतवता यजे ।
गृहानलुम्पतो वय सं विशेमोप गोमतः ॥ ११ ॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥ १२ ॥

अर्थ— हे (एकाष्टके) एकाष्टके (अयं संवत्सरः) यह संवत्सर (ते पतिः) तेरा पति होकर (आ अगन्) आया है। (सा) वह तू (नः आयुष्मतीं प्रजां) हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको (रायः पोषेण सं सृज) धनकी पुष्टिसे युक्त कर ॥ ८ ॥

(मासान् ऋतून् आर्तवान् ऋतुपतीन्) मास ऋतु ऋतुसंबंधी ऋतुपतियोंको तथा (उत हायनान् समाः संवत्सरान् यजे) अयनसहित वर्ष और संवत्सरको अर्पण करता हूं और (भूतस्य पतये यजे) भूतके स्वामीके लिये यज्ञ करता हूं ॥ ९ ॥

(मात्रुभ्यः ऋतुभ्यः आर्तवेभ्यः संवत्सरेभ्यः) महिने ऋतु, ऋतुसे संबंध रखनेवाले तथा वर्ष इन सबके लिये और (धात्रे विधात्रे समृधे) धाता विधाता तथा समृद्धिके लिये (भूतस्य पतये यजे) भूतोंके पतिके लिये मैं अर्पण करता हूं ॥ १० ॥

(हव्या घृतवता जुहतः) घी द्वारा प्राप्त घीसे युक्त अर्पण द्वारा हवन करनेवाले (वयं देवान् यजे) हम सब देवोंका यजन करते हैं। (अलुम्पतः गोमतः गृहान्) जिसमें न्यूनता नहीं है जो गौओंसे युक्त हैं, ऐसे घरोंमें (वय उप सं विशेम) हम प्रवेश करेंगे ॥ ११ ॥

(एकाष्टका तपसा तप्यमाना) यह एक अष्टका तपसे तपती हुई (महिमानं इन्द्रं गर्भं जजान) बड़े महिमा वाले इन्द्र को गर्भमें प्रकट करती रही। (तेन देवाः शत्रून् वि-असहन्त) उससे देवोंने शत्रुओंको जीत लिया। (दस्यूनां हन्ता शचीपतिः अभवत्) क्योंकि शत्रुओंका नाश करनेवाला शचिपति प्रकट हुआ है ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे एकाष्टके ! यह संवत्सर तेरा पतिरूप है उसकी पत्नीरूप तू हमारे यज्ञकर्मोंके लिये दीर्घ आयुष्य धन और पुष्टि दे ॥ ८ ॥

मैं अपने दिन पक्ष मास ऋतु काल अयन और संवत्सर आदि कालविभागोंके भूतपति परमेश्वरके यजनके लिये समर्पित करता हूं अर्थात् अपनी आयुके बढ़ने लिये अर्पण करता हूं ॥ ९ ॥

मास ऋतु, [शीत उष्ण वर्षासंबंधी तीन] काल अयन संवत्सर आदि मेरी आयुके कालविभागोंको धाता विधाता समृद्धकर्ता भूतपति परमात्माके लिये अर्थात् यज्ञके लिये समर्पित करता हूं ॥ १० ॥

और घीसे मैं देवोंका यजन करता हूं और ऐसे यज्ञ करता हुआ मैं अपने घरोंमें प्रवेश करता हूं। हमारे घरोंमें बहुतसी दूध दहीकी गौएं सदा रहें और हमारे घरोंमें कभी किसी पदार्थकी न्यूनता न हो ॥ ११ ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्तिरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तौ अस्यां महिमानौ अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ४ ॥
वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५ ॥
इडायास्पदं घृतवत् सरीसृप जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥ ६ ॥
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूषा द्यवे परा पत सुपर्णा पुनरा पत ।
सर्वान्यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं नु आ भर ॥ ७ ॥

अर्थ-(इयं एव सा) यही यह है कि (या प्रथमा व्यौच्छत्) जो पहली प्रकट हुई और जो (आसु इतरासु प्रविष्टा चरति) इन इतरोंमें प्रविष्ट होकर चलती है। (अस्यां अन्तः महान्तः महिमानः) इसके अन्दर बड़ी महिमाएं हैं। (नव-मत् वधूः जनित्री जिगाय) वह ज्ञान कुमारी बनती होती हुई विजय करती है ॥ ४ ॥

(परिवत्सरीणम् हविः कृण्वन्तः) संवत्सरोंके हवनका अन्न बनानेवाले (वानस्पत्याः ग्रावाणः घोषम् अक्रत) वनस्पतिके साथ स्वयं रहनेवाले पत्थर शब्द कर रहे हैं। हे (एकाष्टके) एक अष्टका ! (वयं सुप्रजसः सुवीराः) हम सब उत्तम सन्तानवाले और उत्तम वीरोंवाले तथा (रयीणां पतयः स्याम) धनके स्वामी होवें ॥ ५ ॥

हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (इडायाः घृतवत् सरीसृपं पदं प्रति) घीके घीसे युक्त रेंगनेवाले स्थानके प्रति (हव्या गृभाय) हव्यको ग्रहण कर। (ये ग्राम्याः विश्वरूपाः पशवः) जो ग्रामोंके अनेक रूपवाले पशु हैं (तेषां सप्तानां रन्तिः मयि अस्तु) उन सातोंकी प्रीति मुझमें होवे ॥ ६ ॥

हे (रात्रि) रात्री ! (पुष्टे च पोषे च मा आ भर) पुष्टि और पोषणके कर्तव्यमें मुझको धर दे। हम (देवानां सुमतौ स्याम) देवोंकी सुमतिमें रहें। हे (द्यवे) चमक ! तू (पूर्णा परा पत) पूर्ण भरी हुई दूर जा और (सुपूर्णा पुनः आपत) उत्तम पूर्ण होकर पुनः पास आ। (सर्वान् संभुञ्जती) सब पदार्थ उत्तम प्रकार सेवन करती हुई (नः इषम् ऊर्जं आ भर) हमारे लिये अन्न और बल लाकर धर दे ॥ ७ ॥

भावार्थ— यही बात यह है कि जो पहले प्रकट हुई थी और जो अन्य वेलाओंके साथ वेगयुक्त होकर चलती है। इस वेलामें अनेक महत्त्वपूर्ण घटिकाएं हैं। यह वेला विजय करती है जिस प्रकार नवीन कुमारी उत्तम उत्तम वस्त्र धारण करती हुई कुलमें बड़ी बनती है ॥ ४ ॥

जब संवत्सरके हवनकी सामग्री बनानेवाले वीरुध विभक्तकरनेवाले- पत्थर और काष्ठपात्र आवाज कर रहे हैं। हे एकाष्टके ! हम सब उत्तम सन्तान युक्त और उत्तम वीरोंसे युक्त होकर बहुत धनके स्वामी बनें ॥ ५ ॥

हे जातवेदः ! तू घीके चीन युक्त तथा विश्वरूपोंसे भोगने योग्य जो पशु हैं ऐसा घीसे पूर्ण किया हुआ हव्य ग्रहण कर। जो अनेक रूपवाला प्रसिद्ध पशु है वे मेरे ऊपर प्रेम करते हुए मेरे साथ रहें ॥ ६ ॥

हे रात्री ! हमें पुष्टि और शक्ति दे। देवोंकी मैत्रीमयी मति हमें सहायक होती रहे। हे द्यवे ! तू पूर्ण होकर आहुति द्रव्यके लिये आप कर और यहांकी कर्तव्यशक्तिसे पूर्ण होकर हमारे पास फिर जीव आ और हमारे लिये अन्न और बल विपुल प्रमाणमें दे ॥ ७ ॥

आपमंगन्त्सवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ८ ॥
ऋतून्यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान्मासान्भूतस्य पतये यजे ॥ ९ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मासेभ्यः सांवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ १० ॥
इडया घृतवता जुहुतः वयं देवान्यजामहे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥ ११ ॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनाममवच्छचीपतिः ॥ १२ ॥

अर्थ— हे (एकाष्टके) एकाष्टके ! (अयं संवत्सरः) यह संवत्सर (ते पतिः) तेरा पति होकर (मा अभवत्) आता है । (सा) वह तू (नः आयुष्मतीं प्रजां) हमारी दीर्घायुवाली प्रजाके (रायः पोषेण सं सृज) धनकी पुष्टिसे युक्त कर ॥ ८ ॥

(मासान् ऋतून् आर्तवान् ऋतुपतीन्) मास ऋतु ऋतुसंबंधी ऋतुपतियोंको तथा (उत हायनान् समाः संवत्सरान् यजे) अयनवर्ष समवर्ष और संवत्सरको अर्पण करता हूं और (भूतस्य पतये यजे) भूतके स्वामीके लिये यज्ञ करता हूं ॥ ९ ॥

(मासेभ्यः ऋतुभ्यः आर्तवेभ्यः संवत्सरेभ्यः) महिने ऋतु, ऋतुके संबंध रखनेवाले तथा वर्ष इन सबके लिये और (धात्रे, विधात्रे समृधे) धाता विधाता तथा समृद्धिके लिये (भूतस्य पतये यजे) भूतोंके पतिके लिये मैं अर्पण करता हूं ॥ १० ॥

(इडया घृतवता जुहुतः) जो द्वारा प्राप्त घीसे युक्त अर्पण द्वारा हवन करनेवाले (वयं देवान् यजे) हम सब देवोंका यजन करते हैं । (अलुभ्यतः गोमतः गृहान्) जिसमें न्यूनता नहीं है जो गौओंसे युक्त है, ऐसे घरोंमें (वयं उप स विशेम) हम प्रवेश करेंगे ॥ ११ ॥

(एकाष्टका तपसा तप्यमाना) यह एक अष्टका तपसे तपती हुई (महिमानं इन्द्रं गर्भं जजान) बडे महिमा वाले इन्द्र को गर्भमें प्रकट करती रही । (तेन देवाः शत्रून् वि-असहन्त) उससे देवोंने शत्रुओंको जीत लिया । (दस्यूनां हन्ता शचीपतिः अभवत्) क्योंकि शत्रुओंका नाश करनेवाला शक्तिशाली प्रकट हुआ है ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे एकाष्टके ! यह संवत्सर तेरा पतिरूप है उसकी पत्नीरूप तू हमारे बालबच्चोंके लिये दीर्घ आयुष्य धन और पुष्टि दे ॥ ८ ॥

मैं अपने दिन पक्ष मास ऋतु, अयन अयन और संवत्सर आदि कालावयवोंको भूतपति परमेश्वरके यजनके लिये समर्पित करता हूं अर्थात् अपनी आयुको उसके लिये अर्पण करता हूं ॥ ९ ॥

मास ऋतु, [शीत उष्ण वृष्टिसंबंधी तीन] अयन अयन संवत्सर आदि मेरी आयुके कालविभागोंको धाता विधाता समर्थ भूतपति परमात्माके लिये अर्थात् यज्ञके लिये समर्पित करता हूं ॥ १० ॥

मोक्ष चाहे मैं देवोंका यजन करता हूं और ऐसे यज्ञ करता हुआ मैं अपने घरोंमें प्रवेश करता हूं । हमारे घरोंमें बहुतसी दूध देनेवाली गौयें सदा रहें और हमारे घरोंमें कभी किसी पदार्थकी न्यूनता न हो ॥ ११ ॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥ १२ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

अर्थ— हे (इन्द्रपुत्रे) इन्द्र जैसे पुत्रवाली ! हे (सोमपुत्रे) चन्द्रमा जैसे पुत्रवाली ! तू (प्रजापतेः दुहिता असि) तू प्रजापतिकी दुहिता है (नः हविः प्रति गृह्णीष्व) हमारा हवि तू स्वीकार कर (अस्माकं कामान् पूरय) और हमारी कामनाओंको पूर्ण कर ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह एकवचन उस करती हुई उस प्रभावशाली इन्द्र नामक धर्मको धारण करती है और पश्चात् प्रकट करती है। इस इन्द्रके प्रभावसे बहुत घर नाश जाते हैं अथवा पूर्ण पराक्रम होते हैं। यह सर्वशक्तिमती इन्द्र चतुर्थीका वाचक है ॥ १२ ॥

हे इन्द्रके जन्म देनेवाली ! और हे सोमको जन्म देनेवाली अदिते ! तू प्रजापतिकी दुहिता है। इस यज्ञमें जो हवि इस अर्पण कर रहे हैं उसका स्वीकार कर और हमारी अपूर्ण इच्छाएं पूर्ण कर ॥ १२ ॥

कामधेनु ।

काल अर्थात् समय अथवा वेला यह एक बड़ी शक्तिशाली कामधेनु है। यह जिस मनुष्यके लिये कामधेनु होती है और जिसके लिये नहीं होती इस विषयमें प्रथम मन्त्रका कथन मनन करने योग्य है—

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे ॥
(यजु. १ मं १)

पहली उषा प्रकाशित हुई है वही नियमोंका पालन करनेवालेके लिये दूध देनेवाली गौ जैसी होती है। उषा ही वेलाकी सबसे प्रथम अवस्था है इस उषासे कालके मापनका प्रारंभ होता है। यह वेला यम के लिये ही दूध देनेवाली गौसमान बनती है। यह यम कौन है ? यम यह है—

यम ।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।
(योगदर्शन)

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं। ये मनुष्यके चारित्र्यके नियम हैं इनीके साथ शौच संतोष तप स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति ये पांच नियम कहे हैं। इनका पालन करनेवाला अर्थात् इन नियमोपनियमोंके अनुसार अपना आचरण करनेवाला मनुष्य महात्मा होता है, ऐसे मनुष्यके लिये यह समय कामधेनु बनता है। परन्तु अनियमसे व्यवहार करनेवालेके लिये यह काल भयानक राक्षसरूप बनता है। इसलिये उषासे चाहनेवाला मनुष्य उत्तम नियमोंके अनुकूल अपने समयका उपयोग उत्तम रीतिसे करे और अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्त करके सफल बनी बने। हरएक मनुष्य चाहता है कि—

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥
(यजु. १ मं १)

'यह उषा हमारे लिये उत्तरोत्तरकी आनेवाली अच्छा दूध देनेवाली होवे। यह हरएककी इच्छा रहना स्वाभाविक है क्योंकि दूध तो हरएकको चाहिये। परंतु बहुत थोड़े लोग अपना उपयोग उत्तम रीतिसे करना जानते हैं और अनियमोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले तो उनमें भी थोड़े होते हैं। इसलिये हरएककी इच्छा होते हुए भी बहुतसे मनुष्योंके लिये काल प्रतिकूल होता है और जो पूर्वोक्त प्रकार यमनियमोंसे अपने आचरण सुयोग्य बनाते हैं, उनके लिये तो यह अनुकूल होता है। पाठक यह नियम पहले प्रथम ध्यानमें धारण करें, क्योंकि उषादेवीके लिये यह पहले प्रथम आवश्यक है।

उषासे यह काल प्रारंभ होता है, कालका प्रारंभ उषासे है। सब यह जानते हैं कि उषासे दिनका प्रारंभ होता है, इसलिये कई स्थानोंमें उषाको दिवसकी माता कहा है। रात्री शयन निद्रामें जाती है इसलिये नियमोंके आचरणमें जागना अत्यन्त योग्य उपयोग करना इत्यादि कर्तव्य प्रायः दिनके साथ संबंध रखती है। रात्रीका चार आठ घण्टोंका समय निद्रामें जाता है, इसको छोड़कर जो कर्तव्य समय अवशिष्ट रहता है, उसीमें

उपयोग अथवा दुरुपयोग मनुष्य करता है और उसका वा अवगत होता है ।

एक पूर्ण दिनमें दिन और रात्री ये दो विभाग हैं। इतने समयके आठ प्रहर होते हैं । आठ प्रहरोंका नाम अष्टक अथवा अष्टका है एक पूरे दिनकी यह एकाइका है अर्थात् प्रहरोंका समय है । दिनमें चार प्रहर और रात्रीमें चार प्रहर होते हैं इस सबका मिलकर नाम एकाष्टका है यही इस सूक्तकी रचना है । दिवस आठ प्रहरोंका उत्तम उपयोग कैसा करना यह बताना इस सूक्तका उद्देश स्पष्ट है । प्रत्येक दिनका योग्य उपयोग होता रहा तो सब आयुष्य उत्तम उपयोग होगा । सब आयुष्य यज्ञ करनेका यही तात्पर्य है ।

अंधकारमयी रात्री ।

दिनमें प्रकाश रहता है इसलिये मनुष्य प्रायः निर्भय रहते हैं । रात्रीमें अन्धकार होनेके कारण मनुष्य भयभीत होते हैं इसलिये प्रकाशमय दिनके संबंधमें कुछ कथन करनेकी अपेक्षा अन्धकार पूर्ण रात्रीके विषयमें ही कुछ कहना आवश्यक होता है यह अर्थ ध्यानमें रखकर चतुर्थतक तीन मंत्रोंका हम विचार करते हैं इन मंत्रोंका अन्वय यह है—

देव सवताकिनी अन्धकारमयी रात्रीका आनन्दसे स्वागत करते हैं क्योंकि यह रात्री संवत्सरकी पत्नी है यह हम सबके लिये उत्तम संपत्ति करनेवाली बने (मं २)। इस रात्रीका संवत्सरकी छोटी प्रतिमा मानकर उसका स्वागत करना चाहिये यह हमें दीर्घायु प्रजा धन और पुष्टि देवे (मं ३)। यही यह है कि जिसके पहली कला उदित हो गई थी यही इस देवी दिवसमें प्रवेश होकर चमकती है । इस रात्रीमें बड़ी महिमाएं हैं, यह वीर पुत्रोंसे कन्या देनेवाली कुलपुत्रोंके कल्याण करनेवाली रात्री है (मं. ४) ।

यह भावार्थ इन तीन मंत्रोंका है । इन मंत्रोंमें रात्रीका अन्धकार दूर करके उसकी सौम्यमयता बताई है । जिस रात्रीको भयानक मान करनेकी मानते हैं, उसीको यह ऐसी सौम्यमयी अनंत महिमाओंसे पुष्ट और कुलपुत्रोंसे समान मान यज्ञसे सूचक बताता है । सृष्टिकी रचनाओंकी ओर देखनेसे यह बराबर प्रतीत होता है । पाठक इसी दृष्टि अपने अन्तर्मुख और देखें और उसमें परमात्माकी महिमा अनुभव करें । जैसा दिनमें प्रकाशमय सकल परमात्माका विस्तार देख है उसी प्रकार रात्रीमें उसीका शांत सकल प्रकट होता है दिनमें विविधताका अनुभव होता है और रात्रीमें वह विविधता मिट जाती है । इस प्रकार दिनमें और रात्रीमें परमात्माका मंगल स्वरूप देखना चाहिये यही वेदको अभीष्ट है ।

संवत्सरकी प्रतिमा ।

तृतीय मंत्रमें रात्रीको संवत्सरकी प्रतिमा कहा है । संवत्सर वर्षका नाम है । वर्ष बड़े आश्चर्यजनक है उसकी प्रतिमा यह रात्री है । प्रतिमाका अर्थ प्रति+मान है अर्थात् मापनेका साधन । दिन रात्री या दोनों मिलकर अहोरात्र संवत्सरका माप करनेका साधन है दिनसे ही वर्ष मापा जाता है । यही रात्री संवत्सरकी पत्नी है । संवत्सर पति है और रात्री उसकी पत्नी है । वार्षिक कालका विशाल रूप संवत्सर है और उसका लघु रूप दिन या रात्री है । यह रात्री—

सा नो अस्तु सुमंगली । (सू. १ मं. २)
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषं सं सृज ।
(सू १ मं. ३)
महाम्नो अस्यां महिमानो अन्ताः ।
(सू. १ म ४)

यह रात्री हमें संमंगलमयी होवे । यह रात्री हमें धन और पुष्टिके साथ दीर्घायु प्रजा देवे । इस रात्रीमें बड़ी महिमा हैं । यह रात्रीका वर्णन नि सीम उच्च है । रात्री सर्वसुख सुखेच्छुकी है । इसी रात्रीमें निद्रावश विवश बने हुए मनुष्य इतना आराम प्राप्त करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता और जिसका अनुभव हरएकको है । जो रात्रीमें प्रतिक्रिया करते हैं व ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं । (प्रश्न उप १।१३) ' यह उपनिषद्वचन कहता है कि एकसौ अब एकसठके नियम पालनपूर्वक रात्रीसमयमें रति करते हुए और उस आनन्दके योग आचरण करते हुए भी ब्रह्मचर्य ही पालन करते हैं । इससे उत्तम सुखसंपन्न दशा दीर्घायु और दक्षतासी भी होता है । इस प्रकार इस रात्रीमें अनेक महिमाएं हैं और इस कारण रात्री बड़ी उपकारक है । पाठक इस दृष्टिसे रात्रीका उपकार देखें और इस रात्रीका स्वागत करें । यह कहने कि रात्रीमें चोरादिकोंका तथा हिंसक प्राणियोंका उपद्रव होता है इसलिये रात्री अपकारक है तो यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि उसी कारण आत्मरक्षाकी शक्ति मनुष्य में उत्पन्न होती है और उससे चोर चोर वगैरह आदि दुष्ट दूर करते हैं । इस दृष्टिसे भी रात्रीका यह उपकार ही है ।

हवन ।

अब मैं पंचम मंत्रसे चार मंत्रोंके द्वारा यज्ञ अग्निमें हवन किया जाता और यज्ञमें हवन करनेके लिये इन तीनका उपयोग वर्णन

है । यह मंत्रमें हरएक प्रकारका हवि धीसे पूर्णतया मिलेा कर, घी चूता है ऐसी अवस्थामें हवन सामग्रीकी आहुतियां डालनी चाहिये इत्यादि वचन है । यह सब मालूमके लिये अत्यपूर्वक हमने लेाग है । चौदे अक्षर इसका बोध हुए अनेक सामर्थ्य है इस कारण इसा छंदके लिये इतना इह ही है । मनुष्य अपने व्यवहारसे अनेक प्रकारके विष इसमें फकता है इसलिये उन दोषोत्पादक क्रियोंका उपशम करनेके लिये इस प्रकारका हवन करना अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार हवनादि द्वारा वायुकी शुद्धता करनेसे पहली लेाग छुटी बलवान् नीरोग और हृष्टपुष्ट होंगे यह सूचना पंचम मंत्रके उत्तरार्धमें मिलती है यह सूचना हरएक पहलीको ध्यानमें धारण करना चाहिये । यह मंत्रके उत्तरार्धमें प्रार्थना इस पशु मनुष्योंपर प्रेम करते हुए करें रह ऐसा कहा है । यह पहलाअक्षका स्वरूप है । पहलेके घरमें सब कैस घेाडे घेाडीयां भेड बकरा आदि पशु और उनके बछड रहें यह बडी क्षेमका है इसका उपदेश भी है ।

उपरम मंत्रके द्वितीय भागसे आहुति डालनेवाले यजमानका वर्णन करते हुए इस का महत्त्वपूर्ण आवश्यक उपदेश किया है ।

आहुति देनेवाला यजमान पूर्ण भरकर अग्निके पास पहुंचा जावे और वहांसे अग्निकी तेजस्विता लेकर वापस आवे और वह हवन करनेवालेकी तेजस्विता बढावे ।

पूर्णा दर्वे परापत सुपूर्णा पुनरा पत ।

(६, १ मं ७)

यजमान पूर्ण भरकर दान देनेके लिये जावे बडे और वापस आनेके समय भी वहांसे तेज भरकर वापस आवे । इसमें यजमानका भरकर जाना और भरकर आना लिखा है । दान देनेके समय यजमान भरकर बहुतके पास जावे और अपनी आहुती दे दूसरे दान देनेके समय कंजूसी न की जावे यह बोध यहां मिलता है । जिस देवताके दान दिया है उस देवताके प्रसादित पुण्य उस यजमानमें आते हैं, यजमान खाली होते ही मानो वह देव अपने पुण्य उस यजमानमें भर देता है । उन पुण्योंको ग्रहण करके वह यजमान वापस आवे और दानदाताकी पुष्टी बढावे । यह आशय यहां है । इस मंत्रके मननसे पाठक बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं । यज्ञ का दान और आदान इस मंत्रके मननसे अच्छी प्रकार ज्ञात हो सकता है । जो अपने पास है वह दूसरोंके हितार्थ दान देना और दूसरोंमें जो अच्छे गुण हों उनको अपनाना यह महत्त्व तत्त्व इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है । पाठक इसका मनन करें ।

आगे अष्टम मंत्रका आठवां द्वितीय और तृतीय मंत्रोंके आठवां समान ही है इसलिये इस मंत्रपर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ।

कालका यज्ञ ।

नवम और दशम मंत्रोंमें आजके अवयवोंका नामनिर्देश करके उन अवयवोंका यज्ञ करनेके उपयमें बडा महत्त्वपूर्ण उपदेश है—

(१) मास= महिना । (२) ऋतु= दो मासका समय । (३) आर्तव काल= दो ऋतुमिलके बननेवाला छह मास छह ऋतु छह वर्षा छह । (४) अयन= तीन ऋतुका समय वर्षके दो अयन होते हैं, दो अयनोंके मानस लिये हुए वर्षका नाम हायन होता है । (५) संवत्सर= तीन दिनोंका एक मास ऐसे बारह मासोंका अर्थात् ३६ दिनोंका एक वर्ष संवत्सर नामसे प्रसिद्ध है क्योंकि इस प्रकारके वर्षमें महिनेके दिन संवत्सरवाचक होते हैं । (६) संवत्सर= सौर वर्ष इस वर्षके १९५ दिन होते हैं और मासोंके दिनोंमें न्यूनाधिकता होती है । [इसके अतिरिक्त चांद्रवर्ष होता है इसका उल्लेख यहां नहीं किया है उसके दिन ३५४ होते हैं, इसके महिनोंके दिनोंकी संख्या भी न्यूनाधिक होती है ।]

इस प्रकारका जो मेरी आयुका यज्ञ है वह यज्ञ मैं [illegible] भूतोंका पालन करनेवाला जो परमात्मा है उसके लिये समर्पित करता हूं, अर्थात् मेरी आयुका यज्ञ मैं करता हूं । अपनी आयुका विशिष्ट उपयोग सफाई करनेके उपयमें करनेका यज्ञ ही आयुष्यका यज्ञ है । परमात्माका कार्य सज्जनोंका पालन और दुर्जनोंका दमन करना है । यही जनताके हितका कार्य है इस कार्यके लिये अपना उपयोग तन मन धन अर्पण करना आयु यज्ञ करना ही है । इस प्रकारका अपनी आयुका यज्ञ करनेका उपदेश नवम और दशम मंत्रोंमें है इसलिये ये मंत्र अवश्य मनन करने योग्य हैं ।

यज्ञका कार्य ।

इन मंत्रोंमें जो यज्ञ करना है वह (यत्रे विश्वे उपपूर्व भूतासः पदये । मं १०-१) धारक निर्माण संहारकर्ता और भूतोंके पालनकर्ताके लिये करना है, अपनी आयु इस कार्यके कार्यके लिये समर्पित करना है । (१) जो प्रजाका धारण करता है, (२) जो जनताके लिये सुखसाधन निर्माण करता है (३) जो जनताकी समृद्धिकी वृद्धि करता है और (४) जो उन सबका पालन करता है उसके कार्यके लिये अपनी आयुका समर्पण करना आवश्यक तात्पर्य है । अर्थात् प्रजाहितके इतने कार्योंके लिये अपनी आयुका विनियोग करनेका

नाम यज्ञ है। इस प्रकारका आत्मयज्ञ जो करते हैं वे लोकोत्तर दिव्य पुरुष सर्वत्र पूजनीय होते हैं।

ग्यारहवें मंत्रमें यज्ञका ही वर्णन करते हुए कहा है, कि—

असुम्यतः वय पृहाम् वय संविदाम।

(सू. १ मं. ११)

श्रम न करते हुए अपने घरमें हम प्रवेश करें।' अर्थात् इस प्रेम न करते हुए परमें व्यवहार करेंगे अथवा हमारे घरोंका वातावरण ही ऐसा होगा कि वहां किसीका आना या स्वागत करनेकी आवश्यकता नहीं होगा। जो लोग अपनी आयुष्य पूर्वोक्त प्रकार यज्ञ करते हैं उनके घरोंका वातावरण ऐसा ही होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शत्रुनाशक इन्द्र।

बारहवें और तेरहवें मंत्रमें एकादशके गमनागमन करनेका और इन्द्र नाम पुत्रको जन्म देनेका वर्णन है। एकादश अहोरात्री है और इसीके गर्भमें सूर्य रहता है और रात्रीरूप प्रसूत होकर सूर्य बाहर आता है जो प्रकाशके वातावरणका पूर्ण नाश करता है। जो लोग आत्मयज्ञ यह पूर्वोक्त प्रकार करते हैं उनके अन्तरमें भी इन्द्र संज्ञक ऐसा विशाल तेज जागृत होता है कि उससे सबके सब शत्रु पराजित होते हैं। यह देखा यही महिमाएं अपने अन्दर रखती है इसीका पुत्र (इन्द्र) प्रकाशका उग्र देव है और इसीका पुत्र (सोम) शांतिका देव भी है। (मं १२)

रात्रीका अथवा उषाका पुत्र सूर्य है इसीसे दिवसपुत्र भी वहने कहा है। रात्रीका दूसरा पुत्र चन्द्र है इसीसे याम भी कहते हैं। ये दोनों प्रकाशका फैलाव और अन्धकारका नाश करते हैं और जनताको प्रकाश देते हुए मार्ग दर्शक होते हैं। इनका विविध प्रकारसे वर्णन हुआ है और यह बड़ा महत्वपूर्ण है।

इससे यह बोध लेना होता है कि मनुष्य स्वयं ज्ञान प्राप्त करे और दूसरोंको अपने ज्ञानका प्रकाश देवे। ज्ञानाग्निसे चन्द्रमाके समान मनुष्य भी सर्व विविध कलाओंसे पूर्ण प्रकाशित होकर सूर्य ज्ञानाग्निसे स्वयं दूसरोंका अर्थात् दूसरोंका ज्ञान देकर जनताकी उन्नति करे। माताएं अपने सन्तानोंको इस प्रकारकी शिक्षा देकर बालकोंकी पूर्ण उन्नति करे।

यह अपनी महिमा जानकर प्रत्येक मनुष्य स्व सुखके लिए देवोंके अनुसार अपनी आयुष्य उत्तम यज्ञ कर और दीर्घायु भागी बने।

॥ यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

हवन से दीर्घ आयुष्य !

(११)

(ऋषिः — ब्रह्मा भृग्वङ्गिराः । देवता — इन्द्राग्नी आयुष्यं पवमानाशनम्)

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कर्मज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदेतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (अहं जीवनाय) उत्कृष्ट दीर्घ जीवनके लिये मैं (त्वा) तुझको (कर्मज्ञात-यक्ष्मात् उत राज यक्ष्मात्) कर्मज रोगसे और राजकृपा नामक कफरोगसे (हविषा मुञ्चामि) हवनसे छुडाता हूं । (यदि ग्राहिः पग्रह एनं जग्राह) यदि जकडनेवाले रोगने इसको इस प्रकार पकड रखा हो तो (तस्याः इन्द्राग्नी एनं प्रमुमुक्तं) उस पीडासे इन्द्र और अग्नि इसको छुडावें ॥ १ ॥

(यदि क्षितायुः) यदि समाप्त आयुष्यका अथवा (यदि वा परेतः) यदि मरनेके करीब पहुंचा हो किंवा (यदि मृत्योः अन्तिकं नीतः एव) यदि मृत्युके समीप भी पहुंचा हुआ क्यों न हो (तं निर्ऋतेः उपस्थात् आहरामि) उसको मैं विनाशके पाससे वापस लाता हूं और (एनं शतशारदाय अरपार्षम्) इसको सौ वर्षके दीर्घायुष्यके लिये उद्यत करता हूं ॥ २ ॥

(सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा एनम् आहार्षं) सौ अक्षिवाले पुरुष, सौ वीर्यसे युक्त अन्नादि देनेवाले हवनसे इसको मैंने लाया है । (यथा विश्वस्य दुरितस्य पारं) जिससे संपूर्ण दुःखोंके पार होके (एनं इन्द्रः शरदः अति नयति) इसको इन्द्र सौ वर्षोंके पूर्णायुके भी परे पहुंचावे ॥ ३ ॥

(वर्धमानः शतं शरदः जीव) बढता हुआ सौ शरद् ऋतुओं तक जीता रह (शतं हेमन्तान्, शतं उ वसन्तान्) सौ हेमन्त ऋतुओं तक तथा सौ वसन्त ऋतुओं तक जीवित रह । (इन्द्राग्निः सविता बृहस्पतिः ते शतं) इन्द्र, अग्नि बृहस्पति और सविता तेरे लिये सौ वर्षकी आयु देवें । (एनं शतायुषा हविषा आहार्षं) मैंने इसको सौ वर्षकी आयु देनेवाले हविसे यहां लाया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— तुझे उत्तमसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो इसलिये तुझे ज्ञात और अज्ञात रोगोंसे हवनके द्वारा छुडाता हूं । जकडने वाले रोगोंने भयंकर तुझे पकड रखा हो तथापि इन्द्र और अग्निकी सहायतासे तू इन सबोंसे मुक्त हो सकता है ॥ १ ॥

आयु समाप्त हुई हो करीब मरनेकी अवस्था प्राप्त हुई हो करीब करीब मृत्युके समीप भी पहुंचा हुआ हो तो भी उसको उस विनाशकी अवस्थासे मैं वापस लाता हूं और सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करता हूं ॥ २ ॥

हवनमें हजारों अक्षिवाले और सैकडों वीर्य हैं, ऐसे हवनसे इसको मैंने वापस लाया है । यह मनुष्य अब संपूर्ण दुःखोंके पार हुआ है, अब इसको इन्द्र सौ वर्षके भी परे ले जावेगा ॥ ३ ॥

प्र विशत प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्येन यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५ ॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥ ६ ॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्येन यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ७ ॥
अमि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
त ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुद्वृहस्पतिरमुञ्चदुरस्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ— हे (प्राणापानौ) प्राण और अपान ! (प्र विशत) प्रवेश करो (अनड्वाहौ व्रजं इव) जैसे बैल गोशालामें प्रवेश करते हैं । (अन्य मृत्यवः पि यन्तु) इसे अनेक अन्यत्र दूर हो जावें (यान् इतरान् शत आहुः) जिनको इससे सौ प्रकारके कहा जाता है ॥ ५ ॥

हे (प्राणापानौ !) प्राण और अपान ! (युवं इह एव स्तं) तुम दोनों यहां ही रहो, (इतः मा अप गातं) यहांसे मत दूर जाओ । (अस्य शरीरं) इसका शरीर और (अंगानि) सब अवयव (जरसे पुनः वहतं) इसे वृद्धावस्थाके लिये फिर से प्राप्त ॥ ६ ॥

(त्वा जरायै परि ददामि) तुझे इसलिये दिये अर्पण करता हूं । (त्वा जरायै निधुवामि) तुझको इस वृद्धावस्थाके लिये पहुंचाता हूं । (त्वा जरा भद्रा नेष्ट) तुझे इसलिये कुछ दूर (अन्य मृत्यवः पि यन्तु) अन्य अनेकानेक दूर हो जावें (यान् इतरान् शत आहुः) जिनको इससे सौ प्रकारके कहा जाता है ॥ ७ ॥

(उक्षणं गां इव रज्ज्वा) जैसे बैलको अथवा बछडे रस्सीसे बांध देते हैं उस प्रकार (जरिमा त्वा अभि आहित) वृद्धावस्थाने तुझको बांधा है । (यः मृत्युः जायमानं त्वा सुपाशया अभ्यधत्त) जिस यमदूत आते हुए ही तुझको उत्तम पाशसे बांध रखा है (ते तं) उसे उस यमदूतको (सत्यस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुञ्चत्) बलवान् हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जैसे तुझे सौ वर्षकी आयु प्राप्त करनेवाला इसलिये पालन किया है । इस अग्नि सविता और बृहस्पति तुझे भी वैसी आयु देवें । अब तू सब प्रकारसे बहुत सुख सौ वर्षतक भोगता रह ॥ ५ ॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों इस मनुष्यमें एक प्रबल घोडा और बैल चालाक जैसे प्रवेश करते हैं । अन्य सैकडों अकालमृत्यु इससे दूर भाग जावें ॥ ६ ॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों इसके शरीरमें निवास करो यहांसे दूर मत जाओ । इसके शरीरको और संपूर्ण अवयव सौम्य पूर्ण सामर्थ्यसहित अच्छी प्रकार चलाओ ॥ ६ ॥

हे मनुष्य ! मैं अब तुझको इसलिये जैसे बनाती हूं । इसलिये मैं तुझको आयु देती हूं । तुझ आलेमन्मृत्यु दूसरा मार्ग हो और सब अन्य अकालमृत्यु तुझसे अब दूर हो ॥ ७ ॥

जैसे मार्ग या बैलको एक स्थानपर रस्सीसे बांध देते हैं वैसे अब मैंने तुझे इसलिये पूर्ण आयु बांधा गया है । जो अकालमृत्यु जन्मते ही तेरे साथ लगा हुआ था उस अकालमृत्युसे तुझको दृढ हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है ॥ ८ ॥

हवनसे दीर्घायुष्यकी प्राप्ति।

हवनमें बड़ी भारी शक्ति है, इससे आरोग्य एवं दीर्घ आयुष्य आदि प्राप्त हो सकता है। यज्ञयागोंमें हवन होता है, ये यज्ञयाग ऋतुओंकी संधियोंमें किये जाते हैं और इनसे ऋतु परिवर्तनके कारण होनेवाले रोगादि दूर हो जाते हैं इस विषयमें कहा है—

औषधियोंके यज्ञ।

भेषज्ययज्ञा वा एते। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।
ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते॥
(गो ब्रा उ प्र ५।११)

ये औषधियोंके महायज्ञ हैं इसलिये ऋतुसंधियोंमें ये यज्ञ किये जाते हैं इसका कारण यह है कि ऋतुसंधियोंमें व्याधियां होती हैं।

ऋतुपरिवर्तनके समय हवा विषमयी है, इससे रोग होते हैं। इन रोगोंका प्रतिबंध करनेके लिये ये औषधियज्ञ किये जाते हैं। रोगनाशक आरोग्यवर्धक और पुष्टिप्रद तथा बलवर्धक औषधियोंका इसमें हवन किया जाता है। जो यज्ञ रोगनाशक, आरोग्यवर्धक पुष्टिप्रद और बलवर्धक होंगे वे दीर्घ आयु देनेवाले कि संदेह होंगे इसमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। इसलिये इस सूक्तमें जो हवनसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेका संदेश दिया है वह अवश्य विचार करने योग्य है।

हवनसे रोग दूर करना।

हवनसे रोग दूर करनेके विषयमें इस सूक्तका प्रथम मंत्र कहता है—

अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात् त्वा मुञ्चामि।
(ष. ११ मं १)
तस्याः (प्राज्ञाः) इन्द्राग्नी एव प्रमुमुक्तम्।
(ष. ११ मं. १)

अज्ञात रोग और ज्ञात रोग या राजकीय रोग इन रोगोंसे रक्षामुक्त कर देते हैं। पकड़नेवाले रोगसे इन्द्र और अग्नि इस रोगीको मुक्त कर देते हैं।

इस मंत्रमें हवनसे ज्ञात और अज्ञात रोगोंकी दूर होनेकी संभावना बतायी है। ज्ञात रोग वे होते हैं कि जिनकी पहचान वैद्य लक्षणोंसे आसानीसे होती है। तथा अज्ञात रोग उसको कहते हैं कि जो ठीक प्रकार पहचाने नहीं जाते अथवा जिनके विषयमें वैद्यकी परीक्षामें गलतियां हुआ करती हैं। कई वैद्य एक रोग बताता है तो दूसरा वैद्य दूसरा ही रोग बताता है। इस प्रकार रोग ज्ञात हो अथवा अज्ञात हो उसको हवन द्वारा दूर किया जा सकता है अर्थात् अग्निमें रोग्य औषधियोंका हवन करनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है। विविध रोगोंकी निवृत्तिके लिये अन्यान्य औषधियोंका हवन करनेकी आवश्यकता है और कुछ पदार्थ ऐसे भी हवनमें होते होंगे कि जिनसे सामान्यतया आरोग्य प्राप्त होता हो। ऐसे रोग्य औषधियोंके संमिश्रित हवनसे मनुष्य पूर्ण नीरोग और दीर्घायुसे युक्त हो जाता है।

हवनका परिणाम।

हवनका परिणाम यहांतक होता है कि आसन्न मरण रोगी भी रोगमुक्त होकर आरोग्य प्राप्त करता है। इस विषयमें तृतीय मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा कहता है कि यदि यह रोगी मरणेच्छी अवस्थातक पहुंच चुका हो मृत्युके पास भी गया हो इसकी आयु भी समाप्त हो चुकी हो तो भी हवनसे इसकी सब आपत्ति दूर हो सकती है और इसको सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो सकती है। (मं २)

शतायु करनेवाला हवन।

इस वर्णनसे हवनका अपूर्व आरोग्यवर्धक परिणाम ज्ञात हो सकता है। तृतीय मंत्रमें हवनका नाम हो शतायु इति 'आहा है अर्थात् इस हवनसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त हो सकती है। इस शतायु इति के अंदर अतयोर्ये अर्थात् सौ प्रकारके रोग होते हैं और (सहस्र-अयुत) हजार प्रकारकी संधियां होती हैं। इसके-

नयास्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्।
(ष. ११ मं. १)

सब दुरितको दूर किया जाता है। दुरित नाम पापका है। यह दुरित (दुः-इत) यह है कि जो दुःख उत्पन्न करनेवाला शरीरमें घुसा होता है, यह शरीरमें घुसकर नाना प्रकारकी पीड़ाएं उत्पन्न करता है। हवनसे यह दुरित अर्थात् रोगोत्पादके हेतु शरीरसे दूर किया जाता है।

चतुर्थ मंत्रमें विश्वासपूर्वक कहा है कि अब तो हवन किया गया है इन्द्र अग्नि, सविता बृहस्पति आदि देवताओंके संधियां प्राप्त की गई हैं अब तू विश्वासपूर्वक अपनी इन संधियां बढ़ाता हुआ सौ वर्षपर्यंत जीता रह। अब तुझे मृत्युका भय नहीं है। (मं ४) हवनका ऐसा सुपरिणाम होता है और इतना विश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह हवनका परिणाम मननपूर्वक देखने योग्य है।

पंचम और षष्ठ मंत्रोंमें प्राण और अपानको आदेशपूर्वक कहा है कि— हे प्राण और अपान! तुम अब इसी पुरुषके देहमें पुनः यहां ही अपने कार्य करो और इसके शरीरको तथा संपूर्ण इन्द्रियोंको पूर्ण आयुकी समाप्तितक अपने अपने कार्य करनेके योग्य रखो। तथा इसके शरीरसे पृथक् न होओ। तुम्हारे प्रयत्न इसके संपूर्ण अपमृत्यु दूर हो जावें (मं ५-६)। अब पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है और हवनसे शरीरमें बलवीर्य संचारित होता है। तब शरीरमें स्थिर रूपसे प्राणापान रहेंगे ही। यह हवनका परिणाम है।

सप्तम मंत्रमें कहा है कि— हे मनुष्य! अब मैं तुझको इस अवस्थाके लिये समर्पण करता हूं, तुझे सुखमयी इस अवस्था प्राप्त होवे और सब अपमृत्यु तुझसे दूर हो जावें (मं ७)। इस अवस्थाको भोगनेमें समर्पण करनेका तात्पर्य यही है कि पूर्ण स्वास्थ्य होनेतक अर्थात् सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक जीवित रहना।

मरणका पाश।

अष्टम मंत्रमें एक बड़ा भारी सिद्धांत कहा है कि हरएक मनुष्य जन्मते ही मृत्युके पाशसे बांधा जाता है—

परत्वा मृत्युरभ्यधत्त आयमागं सुपाशया।
(सू. ११ मं १)

मृत्यु तुझको अर्थात् हरएक प्राणिमात्रको जन्मते ही उत्तम पाशसे बांधकर रखता है। कोई मनुष्य अथवा कोई प्राणी मृत्युके इस पाशसे मुक्त नहीं होता। जो जन्मको प्राप्त हुआ है वह अवश्य किसी न किसी समय मरता ही। सब उत्पन्न हुए प्राणिमात्रोंको मृत्युने अपने पाशोंसे ऐसा जकड़ कर बांधा है कि वे इधर उधर जा नहीं सकते और सब मृत्युके वशमें होते हैं।

सब जन्म लेनेवाले प्राणियोंको एक बार अवश्य मरना है यह इस मंत्रका कथन हरएकको अवश्य विचार करने योग्य है। हरएकको स्मरण रखना चाहिये कि अपने शिरपर मृत्युने पाश रखा हुआ है। इस विचारसे मनुष्यको सत्य धर्मका पालन करना चाहिये। सत्य ही इस मृत्युसे बचानेवाला है।

सत्यसे सुरक्षितता।

मृत्युके पाशसे बचानेवाला एकमात्र उपाय सत्य है यह अष्टम मंत्रमें बताया है—

त ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चन् बृहस्पतिः।
(सू. ११ मं ८)

बृहस्पति तुझे सत्यके संरक्षक हाथोंसे इस मृत्युसे बचाता है। अर्थात् जो मनुष्य सत्यका पालन करता है सत्यका रक्षण परमेश्वर करता है। वस्तुतः सत्यसे ही सत्यका बचाव होता है। सत्यका रक्षण ऐसा है कि जिससे दूसरे किसी रक्षणकी तुलना नहीं हो सकती अर्थात् एक मनुष्य अपना बचाव सत्यके हाथोंसे करता है और दूसरा मनुष्य अपना बचाव अस्त्रशस्त्रोंसे करता है तो सत्यसे अपना बचाव करनेवाला मनुष्य अधिक सुरक्षित है, अपेक्षा उसके कि जो अपने आपको शस्त्रोंसे रक्षित समझता है। सत्याग्रहसे अपनी रक्षा करना आत्मबल है और शस्त्रास्त्रोंसे अपनी रक्षा करना शस्त्रबल है। आत्मबलसे आत्मबल अधिक श्रेष्ठ है इसमें किसीको संदेह ही नहीं है।

सत्यपालनसे दीर्घायुकी प्राप्ति।

यहां हमें सूचना मिलती है कि दीर्घायुकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करनेवालेको सत्यका पालन करना अत्यंत आवश्यक है। सत्यके संरक्षक हाथोंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य ही दीर्घजीवी हो सकता है।

इस मंत्रमें जो हवनका महत्त्व वर्णन किया है वह वैद्यशास्त्रमें प्रसिद्ध है। अग्नि जलानेसे मच्छर आरोग्यप्राप्ति आदि होनेका वर्णन सब वैद्य खोज कर रहे हैं। इस दृष्टिसे यह सूक्त एक आरोग्यप्राप्तिका नवीन साधन बता रहा है।

किस रोगके दूर करनेके लिये किस हवन सामग्रीका हवन होना चाहिये इस विषयमें यहां कुछ भी नहीं कहा है परन्तु हवनका सर्वसामान्य परिणाम ही यहां बताया है। हरएक रोगके दूर करनेके लिये विशेष प्रकारके हवनोंका ज्ञान अन्यान्य सूत्रोंसे प्राप्त करना चाहिये। वैदिक विद्वानोंको खोज करनेवालोंके लिये यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण खोजका विषय है। खोज करनेवाले इसकी खोज अवश्य करें। इससे जैसा व्यक्तिका भला हो सकता है वैसा ही राष्ट्रका भी भला हो सकता है।

गृह निर्माण।

(११)

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — शाला, वास्तोष्पतिः)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥ १ ॥
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥
वरुम्युसि शाले बृहच्छन्दाः पवित्रवान्या।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ३ ॥
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन्।
उक्षन्त्वद्भा मरुतो घृतेन मघो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ ४ ॥

अर्थ— (इह एव ध्रुवां शालां निमिनोमि) इसी स्थानपर ध्रुव शालाको बनाता हूं। यह शाला (घृतं उक्षमाणा क्षेमे तिष्ठाति) घी सींचती हुई हमारे कल्याणके लिये ठहरी रहेगी। हे (शाले) घर! (तां त्वा सर्ववीराः अरिष्टवीराः सुवीराः उप संचरेम) तेरे चारों ओर हम सब वीर विघ्न न होते हुए उत्तम पदार्थको प्राप्त करके स्थित रहेंगे ॥ १ ॥

हे शाले! तू (अश्वावती गोमती सूनृतावती) घोड़ोंवाली गौओंवाली और मधुर भाषणवाली होकर (इह एव ध्रुवा प्रतितिष्ठ) यहां ही स्थिर रह। तथा (ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती) अन्नवाली घीवाली और दूधवाली होकर (महते सौभगाय उच्छ्रयस्व) बड़े सौभाग्यके लिये ऊंची बनकर खड़ी रह ॥ २ ॥

हे शाले! (बृहत्-छन्दाः पवित्रवान्या) बड़े छन्दोंवाली और पवित्र वाग्वाली तथा (वरुमी असि) वाग्वादिका भण्डार धारण करनेवाली तू है। (त्वा वत्सः कुमारः आ गमेत्) तेरे अंदर बछड़ा और बालक आ जावे। (आस्पन्दमाना धेनवः सायं आ) झरती हुई गौएं सायंकालके समय आ जावें ॥ ३ ॥

(इमां शालां) इस शालाको सविता वायु इन्द्र और बृहस्पति (प्रजानन् नि मिनोतु) जानते हुवा निर्माण करे। (मरुतः अद्भा घृतेन उक्षन्तु) मरुत् जल लेकर और घीसे सींचें तथा (मघः राजा नः कृषिं नि तनोतु) भाग्यवान् राजा हमारे लिये कृषिको बढ़ावे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस उत्तम स्थानपर मैं उत्तम और सुदृढ़ घर बनाता हूं, जिसमें घी आदि खाने पीनेके पदार्थ बहुत हों और जो सब प्रकारके वास्तव्य सामग्रीसे परिपूर्ण हो। इस घर प्रकारके छोटे-बड़े पुत्रोंसे युक्त होकर और किसी प्रकार दुःखको प्राप्त न होते हुए इस घरके चारों ओर घूमा करेंगे ॥ १ ॥

इस घरमें घोड़े गौएं, बैल आदि पशु बहुत हों यह घर उत्तम मीठे भाषणसे युक्त हो अन्न भी दूध आदि खाद्य पेय इसमें बहुत हों और इसमें रहनेवालोंको बड़े सौभाग्यकी प्राप्ति हो ॥ २ ॥

इस घरमें वाग्व्यादिका बड़ा भण्डार हो तथा घरमें छत्र और पवित्र वाग्व्य भरा रहे। जिस घरमें बालक और बछड़े घूमते हों और सायंकालमें आनंदसे नाचती हुई गौएं आ जांय ॥ ३ ॥

इस घरके निर्माणमें सविता वायु, इन्द्र और बृहस्पति ये देव सहायता दें। मरुत् जल इस घरमें विपुल जो देवेमें सहायक हों तथा राजा भव वृष्टि करनेमें सहायता देवे ॥ ४ ॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निर्मिता स्पार्हे ।
तृणं बध्नाना सुमना असस्त्वमस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥
क्रुवेन स्रूमामधि रोह वशोग्रो विराजन्पर्षतीर्दुरस्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥
पूर्णा नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संसृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ ९ ॥

अर्थ— हे (मानस्य पत्नि) संमानकी पत्नि, (शरणा स्योना देवी) घर आश्रय करने योग्य सुखदायक दिव्य प्रकृतिमान् देवी (देवेभिः अग्रं निर्मिता असि) देवों द्वारा पहले बनायी हुई है। (तृणं बध्नाना त्वं सुमनाः असः) घासको पहने हुए तू उत्तम मनवाली हो (अथ अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः) और हम सबके लिये वीरोंसे युक्त धन दे ॥ ५ ॥

हे (वशा) गौ ! तू (स्रुवेण स्रूचां अधिरोह) अपने पीनेपनसे अपने आधारपर चढ़ और (उग्रः विराजन् शत्रून् अपबाधस्व) उग्र बनकर प्रकाशता हुआ शत्रुओंको हटा दे। (ते गृहाणां उपसत्तारः मा रिषन्) तेरे घरके आश्रयसे रहनेवाले हिंसित न होवें। हे शाले ! हम (सर्ववीराः शतं शरदः जीवेम) सब वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्ष जीते रहेंगे ॥ ६ ॥

(इमां कुमारः आ) इस घरके पास बालक आवे (तरुणः आ) तरुण पुरुष आवे (जगता सह वत्सः आ) चलनेवालोंके साथ बछड़ा भी आवे। (इमां परिस्रुतः कुम्भः) इसके पास बहुरससे भरा हुआ घड़ा (दध्नः कलशैः आ अगुः) दहीके कलशोंके साथ आ जावे ॥ ७ ॥

हे (नारि) स्त्री ! (एतं पूर्णं कुम्भं) इस पूर्ण भरे घड़ेको तथा (अमृतेन संभृतां घृतस्य धारां) अमृतसे भरी हुई घीकी धाराको (प्र भर) अच्छी प्रकार भरकर ला। (पातॄन् अमृतेन सं अङ्ग्धि) पीनेवालोंको अमृतसे अच्छी प्रकार भर दे। (इष्टापूर्तं पत्नीं अभिरक्षति) यज्ञ और अन्नदान इस घरकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

(इमाः यक्ष्मनाशिनीः अयक्ष्माः आपः) ये रोगनाशक और स्वयं रोगरहित जल (प्र आभरामि) मैं भर लाता हूं। (अमृतेन अग्निना सह) अमृत अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) घरोंमें आकर बैठता हूं ॥ ९ ॥

भाष्यार्थ— घर अंदर निवास करने योग्य सुखदायक है, वह एक संमानका साधन भी है। पहले वह देवों द्वारा बनाया गया था। घासके ऊपरसे भी वह बनता है। ऐसे घरसे हमारा मन सुख संकल्पवाला होवे और हमें वीरोंसे युक्त धन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

घीके स्रुवेसे घीसे धारा रखे जावें और इस रीतिसे विघ्नकारियोंको दूर किया जावे। घरोंके आश्रयसे रहनेवाले दुःखी कष्टी या विनष्ट न हों। इसमें रहनेवाले सब वीर होकर सौ वर्षतक जीवित रहें ॥ ६ ॥

इस घरके पास बालक तरुण आदि सब आ जावें। बछड़े और अन्य घरके पशु पक्षी भी घूमते रहें। इस घरमें अहरह मीठे रससे भरे हुए घड़े तथा दहीसे भरे हुए घड़े बहुत हों ॥ ७ ॥

जिस इस घड़ेको भरकर लावें और घीके घड़े भी बहुत लावें और पीनेवालोंको यह घृत दही घी आदि सब रस परिपूर्ण मिलावें। क्योंकि इसका दान ही घरकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

घरमें पीनेके लिये ऐसा जल लाया जावे कि जो रोगनाशक और आरोग्यवर्धक हो। घरमें अग्नि भी हो जिसके पास आकर शीतका निवारण करके आनंद प्राप्त करें ॥ ९ ॥

घरकी बनावट ।

जो गृहस्थी है उसको घर बनाकर रहना आवश्यक है फिर वह घर फूससे बनी हुई (तृण वसामा । मं ५) झोपडीके समान हो अथवा बडा सौध हो । घर किसी भी प्रकारका हो परंतु गृहस्थीके लिये वह अवश्य चाहिये नहीं तो गृहस्थका घर-संसार-पन ही नहीं सिद्ध होगा ।

घर बनाने योग्य स्थान ।

घरके लिये स्थान भी योग्य होना चाहिये रमणीय होना चाहिये और आरोग्यप्रद होना चाहिये इस विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं—

१ क्षेम (मं. १) = सुरक्षित शांति देनेवाला सुखप्रद, आरोग्यप्रद निर्भय ऐसा स्थान घरके लिये हो ।

१ ध्रुवा (मं १ २) = स्थिर मुदृढ जहां भूमिपाद स्थिर और दृढ हो सकती है ।

इस प्रकारकी भूमिपर घर बनाना चाहिये और वह घर अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुदृढ (पुख्ता) स्थिर और मजबूत बनाना चाहिये ताकि कारीगर उसकी मरम्मत करनेका स्वप्न उठाना न पडे ।

घर कैसा बनाया जावे ?

घरके कमरे यथोचित हों उसके यथोचित विभाग बनाये जावें । पृथक् छदाः (मं १) अर्थात् घरके छप्परके कमरोंसे युक्त घर हो । घरमें संकुचित स्थान न हो क्योंकि छोटे छोटे कमरोंमें रहनेवालोंके विचार भी संकुचित बनते जाते हैं । इस लिये अपनी शक्तिके अनुसार यथोचित विभाग बनाना उत्तम हो यथोचित प्रकाश घर बनाना जावे जहां बहुत हवामिश्रित अतिथि आदि (धारवा । मं ५) का आना और (स्पोवा । मं. ५) विश्राम हो सकें ।

संमानका स्थान ।

घर गृहस्थीके लिये बडा संमानका (धारवा मासस्य पत्नी । मं. ५) स्थान है अपना निवास घर होनेसे यह एक प्रतिष्ठाका स्थान हो जाता है । इसमेंसीधे सुख पहुंचानेका यह एक बडा स्थान होता है । इसलिये पूर्वोक्त प्रकार घर बनाना चाहिये । घर बनते ही घरमें अन्नाद्य आदि इकट्ठे करने चाहिये इस विषयमें निम्न लिखित संकेत विचार करने योग्य हैं—

१ सम्बाधवती (मं १) = घरमें कोने हों अर्थात् गृहस्थीके पास कोने कोनेकी हों । यह कोनेका आवश्यक है ।

१ गोमती (मं १) = घरमें गौएँ हों । यह पुष्टिप्रद आवश्यक है पासे दूध मिलता है जिसको पीकर मनुष्य पुष्ट होते हैं । नेत्रोंसे तेजी होती है ।

घसतः आस्पन्दमानाः सोप वा (मं १) = सायं आनेके समय गौवें आनंदसे नाचती हुई आ जावें ।

१ पयस्वती (मं १) = घरमें बहुत दूध हो ।

४ घृतवती (मं १) = घरमें विपुल घी हो ।

५ पूर्व उक्षमाणा (मं १) = घी देनेवाला अर्थात् भविष्यके लिये विपुल घी देनेवाला घर हो । घरके कोने अवश्यमें [illegible] हों ।

६ ऊर्जस्वती (मं. १) = घरमें बहुत अन्न हो बलवर्धक पदार्थ विपुल हों ।

७ पयसी (मं १) = जिसमें धान्यादिका बडा संभार हो, जिसमें संग्रहस्थान हो और वहां सब प्रकारके पदार्थ उत्तम अवस्थामें मिलें ।

८ पूतिधान्या (मं ६) = घरमें पवित्र धान्य हो जो रोगादि उत्पन्न करनेवाला न हो उत्तम अवस्थामें हरएक प्रकारके पदार्थ हों जो खानेसे शरीरको पुष्टि और बलका प्रदाता हो । घरमें धान्य खानेके समय यह केवल सस्ता मिलता है इसलिये संग्रह न करो, परंतु खानेके समय देखा जाय, कि यह पवित्र शुद्ध, नीरोग और पोषक है या नहीं ।

९ परिप्लुतः कुम्भाः (मं ७) = मधुर खारसे भरा हुआ बडा घडा अनेक घरमें सदा रहें ।

१० दधः कलशाः (मं. ७) = दहीसे परिपूर्ण भरे हुए कलश घरमें हों ।

११ घृतस्य कुम्भम् (मं ८) = उत्तम घीसे भरे हुए घट घरमें हों ।

१२ अयक्ष्मा यक्ष्मघातिन्यः आपः (मं. ९) = नीरोग और रोग दूर करनेवाले शुद्ध जल घरोंमें भर कर घरमें रखा जावे ।

इत्यादि शब्दों द्वारा इस सूक्तमें घरका वर्णन किया है । इन शब्दोंके मननसे पाठक स्वयं जान सकते हैं कि घरमें कैसी व्यवस्था रखना चाहिये और घर कैसा बनवानेयोग्य बनाना चाहिये । तथा—

१ वास्तः आसयेत् (मं १ ७) = घरमें पलंग बिछाये रहें, घरके पास पलंग बिछाये रहें ।

१ कुमारा मा गमेत् (मं १७) = घरमें और बाहर बालकरूप कुमार और कुमारिकाएं आनंदसे खेलकूद करते रहें।

१ तरुण्यः मा गमेत् (मं. ७) = युवा तरुण पुरुष और तरुणियां घरमें और बाहर भ्रमण करें।

प्रसन्नताका स्थान।

अर्थात् घर ऐसा हो कि जिसमें बालकरूप खेलते रहें और तरुण तथा अन्यान्य आयुवाले स्त्री-पुरुष अपने अपने कार्यमें आनंदसे हर्षचित्त हों। घरके मुखपर आनंद दीख और घरका प्रत्येक मनुष्य प्रसन्नताकी मूर्ति दिखाई देवे। हरएक मनुष्य ऐसा कहे कि—

गृहान् उप प्र सीदामि। (सू. १२ मं ९)

मैं अपनी पराकाष्ठा करके अपने घरका प्रसन्नताका रमणीय स्थान बनाऊंगा। यदि घरका प्रत्येक मनुष्य अपने घरका प्रसन्नताका स्थान बनानेका प्रयत्न करेगा तो सचमुच वह घर प्रसन्नताका केन्द्र अवश्यमेव बन जायगा।

पाठक इस उपदेशका अधिक मनन करें क्योंकि इससे हरएक पाठकपर एक विशेष उत्तरदायित्व आता है। अपने प्रयत्नसे अपना घरका प्रसन्नताका स्थान बनाना है, यह काम दूसरेपर सौंपा नहीं जा सकता यह तो हरएकको ही करना चाहिये। यह उपदेश देनेके पश्चात् हरएक पाठकसे यह पूछना कि क्या इस उपदेशानुसार अपना कर्तव्य तुमने किया? पाठक इसका यथा उत्तर देनेकी तैयारी करें। घरका प्रसन्नताका स्थान बनानेके लिये ऊपर लिखे हुए साधन इकट्ठे तो करने ही चाहिये परंतु केवल इतनेसे ही यह प्रसन्नता नहीं आजायगी कि जो घरमें अभीष्ट है इसलिये घरके और भी निर्देश दिये हैं देखिये—

१ सूनृतावतः (मं. २)— घरमें सभ्यताका सत्य भाषण हो प्रेमपूरक वार्तालाप होता हो सभ्यतारहित कटु भाषण हो ऐसा कठोर, भाषा आदिके भाषण न हों।

१ सुमनाः (मं. ५)— उत्तम मनसे उत्तम व्यवहार करनेवाले मनुष्य घरमें आते रहें।

घरमें यथायोग्य रखनेके लिये उत्तम आभूषणोंके अलंकार घरमें बहुत चाहिये तथा प्रकार घरके खोलपेंडि अलंकारभी भव्य सिंहासन पुरुष चाहिये। तथा तो घर प्रसन्नता का स्थान बन सकता है। घरमें धनधान्य तो बहुत रहो और परस्परोंके मन खट्टे और कपटी हुए तो उस घरमें घर कोई नहीं कहेगा वह तो एक दुःखका स्थान होगा। इसलिये पाठक— जो अपने घरको प्रसन्नताका स्थान बनाना चाहते हैं वे- इन सब्दोंसे उचित बोध प्राप्त करें। शीत ऋतुमें तथा वर्षाके दिनोंमें सर्दी बहुत होती है, इसलिये शीतके निवारणके लिये घरमें अग्नी रखना चाहिये जिससे शीतसे त्रस्त मनुष्य सेक लेकर आनंद प्राप्त कर सकता है। दूसरी बात यह है कि 'अमृत अग्नि (मं ९) जो परमेश्वर है उसकी उपासनाका एक स्थान घरमें बनना चाहिये जहां अग्निहोत्र द्वारा अन्नसुगंधनासे करके ब्रह्मचारण द्वारा परमात्मोपासनात्मक सब प्रकारकी उपासना करके मनुष्य परम आनंदको प्राप्त कर। जिस घरमें ऐसी उपासना होती है वहीं घर सचमुच प्रसन्नताका केन्द्र हो सकता है। इसी प्रकारका घर—

महते सौभगाय उच्छ्रयस्व। (सू. १२ मं २)

बड़े सुसंस्कारकी प्राप्तिके लिये यह घर उठकर खड़ा हो। अर्थात् यह घर इस प्रकारसे बड़ा सौभाग्य प्राप्त कर। जिस घरमें पूर्वोक्त प्रकार अन्तर्बाह्य व्यवस्था रहेगी वहां बड़ा सुसंस्कार निवास करेगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

वीरतासे युक्त धन।

सौभाग्य प्राप्तिके अनंतर धन अर्थात् धन कमाना भी संक्षिप्तिसे है। परंतु धन कमानेके पश्चात् उसकी रक्षा करनेकी शक्ति चाहिये और उसके संबंधोंसे दूर करनेके लिये शौर्य धैर्य वीर्य आदि गुण भी चाहिये। अन्यथा कमाया हुआ धन दूसरे लोग लूट लेवे। इसलिये इस सूक्तमें योग्यताकी सूचना दी है—

अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः। (सू. १२ मं. ५)

हमारे लिये वीरतासे युक्त धन दे। धन प्राप्त हो और साथ साथ उसके संभालनेके लिये आवश्यक वीरता भी प्राप्त हो। इसपर वीरताके वाचक शब्द हैं—

१ सवयीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप स घरम्।
(सू. १२ मं. १)

१ दात्र ओषेम शरदः सवयीराः।
(सू. १२ मं ६)

इस घरमें प्रसन्नता वीर उत्तम वीर नागरिक न प्राप्त हों वीर वीर, जो घरमें आश्रित रहकर घरकी रक्षा करनेके लिये तयार रहनेवाले और होकर अपने अन्न धनमें संभार लेवें।

ये मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा कह रहे हैं कि घरोंका वास्तुमंडल वीरताका वास्तुमंडल चाहिये। भीरुताका विचारतंत्र वहां आना नहीं चाहिये। क्योंकि पुरुष धर्मवीर हों और स्त्रियां वीरांगनाएं हों ऐसे स्त्री-पुरुषोंसे जो संतान होंगे वे कुमार वीर ही होंगे इसमें क्या संदेह है। इसीलिये वेदमें पुत्रका नाम वीर आता है। पाठक इसका विचार करें और अपने घरका वास्तुमंडल ऐसा बनावें।

अतिथि सत्कार।

ऐसे संयमशील वीरतासे पुष्ट घरोंमें रहनेवाले धर्मवीर पुरुष अतिथि सत्कार करेंगे ही। इस विषयमें कहा है—

पूर्णे नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारया मधुनश्च संसृजाम्। इमां पात्रमसृतेना समक्ष्वी स्वापूर्तमभि रक्षात्येनाम्॥ (सू १२ म. ८)

पहचानी अतिथियोंके परोसनेके लिये पात्रका घडा जलसे मधुरतासे भरा घडा लावे और पतिव्रताओंको जितना चाहिये उतना पिलानेमें कंजूसी न करे। इस प्रकारका आतिथ्य करना ही घरमें रक्षा करना है।

अतिथि सत्कारमें अन्नपान अथवा अन्य पदार्थोंका दान खुले हाथसे देना चाहिये उसमें कंजूसी करना योग्य नहीं है। क्योंकि दान ही घरका संरक्षण करता है। जिस घरमें अतिथियोंका सत्कार होता है उस घरका यश बढता जाता है।

यहां अतिथियोंके लिये अन्न परोसनेका कार्य करना स्त्रियोंका कार्य लिखा है। यहां पर्दा नहीं है। पहिलेके कालमें अतिथियोंको भोजन देनेका कार्य या तो भोजन करता है अथवा घरका मालिक करता है। यह अतिथि सत्कारकी अवैदिक प्रथा है। अतिथिके लिये भोजन वस्त्रदान आदि पृथक्पात्रोंसे देना चाहिये यह वेदका आदेश यहां है जिसकी ओर हमने पहिलेही अन्य रक्षणमाले पाठकोंका मन आकर्षित होना आवश्यक है।

देवों द्वारा निर्मित घर।

घर देवोंने प्रारंभमें बनाया इस विषयमें यह मंत्र लिखित मत्र देखना चाहिये—

अरक्षा स्योना देवी (शाला) देवेभिर्निर्मितास्यग्रे। तृण वसाना सुमना॥ ॥ (सू १२, म. ५)

अन्दर आश्रय करने योग्य सुखदायक, घरके ऊपरका परंतु उत्तम विचारोंसे पुष्ट दिव्य घर प्रारंभमें देवोंने बनाया। दिव्य वीर पुरुषोंके द्वारा जो पहला घर निर्माण हुआ वह ऐसा था। यद्यपि इसपर घांसका छप्पर था तथापि उसके अन्दर उत्तम विचार होते थे अन्दर आनेसे आराम मिलता था और सुख भी होता था। इसका तात्पर्य यही है कि घर छप्परका ही क्यों न हो परंतु वह दिव्य विचारोंका दिव्य घर होना चाहिये, वह क्रूर विचारोंका राक्षसमवन नहीं होना चाहिये। देवोंका घर वनसे नहीं होता है प्रभुका आश्रयकी शांति और प्रसन्नतासे होता है। पाठक अपने घरके अथवा घर देख देख ही बनावें और वैदिक धर्मके अपने कर्म प्रकाशित करमें प्रकट करें।

देवोंकी सहायता।

घर ऐसे स्थानमें बनाया जावे कि जहां सूर्य चंद्र वायु, इन्द्र, आदि देवोंसे सहायक शक्ति विपुल प्रमाणमें प्राप्त होती रहे—

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्मि मिनोतु प्रजाभ्यः। उक्थेन्द्रा मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु॥ (सू १२, मं ४)

सूर्य वायु, इन्द्र बृहस्पति आदेश हुए इस घरकी व्यवस्था करें। मरुत् नामक क्षत्रिय वायु सदृश सहायता करें और सब राज्य कृषि विभागमें सहायक हो।

घरके लिये सूर्यप्रकाश विपुल मिले इन्द्र वायु मिले, इन्द्र वृष्टि द्वारा सहायता करे, वृष्टि करनेवाले वायु योग्य दिशासे सहायता करें और कृषिका देव भूमिसे कृषिकी योग्य उत्पत्ति करने द्वारा सहायक हो। घर ऐसे स्थानमें अथवा देवमें बनाना चाहिये कि जहां सूर्यादि देवताओं द्वारा योग्य शक्तियोंकी सहायता अच्छी प्रकार मिल सके भूमि उपजाऊ हो वायु निर्दोष हो सब आरोग्यदायक और पोषक हो इस प्रकारके उत्तम देशमें गृहका निर्माण करना चाहिये।

जल।

(११)

(ऋषिः — भृगुः। देवता — वरुणः, सिन्धुः, आपः इन्द्रः)

यदुदः सैंप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥ १ ॥
यस्येषितो वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥ २ ॥
अपक्रमं स्यन्दमाना अर्वाचीरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वानाम वो हितम् ॥ ३ ॥
एका वो देवाऽप्येतिषुत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ— हे (सिन्धवः) नदियो ! (स-प्र-यतीः) उच्च प्रकारसे गता चलनशील तुम (अहो हते) मेघके हननके पश्चात् (अहः यत् अनदत) यह जो गर्जना कर रही हो (तस्मात् आ नद्यः नाम स्थ) उस कारण तुम्हारा नाम नदी हुआ है (ताः वः नामानि) यह तुम्हारे ही योग्य नाम है ॥ १ ॥

(यत् आत् वरुणेन प्रेषिताः) जब इसके बाद वरुण द्वारा प्रेरित हुए तुम (शीभं समवल्गत) शीघ्र से मिलकर चलने लगी (तत् इन्द्रः यतीः वः आप्नोत्) तब इन्द्रने गमनशील इन तुमको प्राप्त किया (तस्मात् अनु आपः स्थन) उसके पश्चात् तुम्हारा नाम आपः हुआ ॥ २ ॥

(स्यन्दमानाः वः) बहनेवाले तुम्हारी गतिको (इन्द्रः हि अप क्रमं के अर्वाचीरत) इन्द्रने निश्चय अर्वाचीन मुखपूर्वक नि कारण किया (तस्मात् देवीः वः वाद् नाम हितं) उससे देवी अर्थात् तुम्हारा नाम वारि रखा है ॥ ३ ॥

(एकाः देवाः यथावशम् स्यन्दमानाः वः) अकेले एक देवने जैसे चाहे वैसे बहनेवाले तुमको (अपि अतिषुत) अधिकारसे रखा और कहा कि (महीः उदानिषुः) बड़ी आकांक्षा करके तुम बढ़ी हो (तस्मात् उदकम् उच्यते) उससे तुमको उदक [उत्-अक] नामसे कहा जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— मेघकी हननके अनन्तर जब जलरूप आनन्द से बहनेवाले आप आते हैं तब अनन्त बड़ा नाद होता है इसीलिये अनन्त होता नदी (नाद अर्थवाली) कहा जाता है ॥ १ ॥

जब वरुणादिसे प्रेरित हुआ जल शीघ्र वेगसे चलने लगता है तब इन्द्र उस प्राप्त होता है आप्त होनेसे ही अनन्तर नाम आपः (आप्त होने योग्य) होता है ॥ २ ॥

जब देवता बहनेवाले अनन्तगतिके न रुकने इसके लिये आकांक्षा लिये तुमको बहनेके लिये निश्चित किया तब उस कारण उनका नाम वारि (वार न रोकनेवाला) हुआ ॥ ३ ॥

मेघ जब बहने आदेशसे जब मेघ होता जब एक देवता आकर ले जाता और अनन्त ऊपर चलते ऊपरसे और अनन्त तब इस अनन्त नाम उदक (उत् अर्थात् ऊपरसे और अक गति वाला) हो जाता ॥ ४ ॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥ ५ ॥
आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अदृप यदा वः ॥ ६ ॥
इद वं आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेद वेशयामि वः ॥ ७ ॥

अर्थ—(आपः भद्राः) जल कल्याण करनेवाला और (आपः इत् घृतं आसन्) जल निःसंदेह तेज बढानेवाला है । (ताः इत् आपः अग्नीषोमौ बिभ्रतः) यह जल अग्नि और सोम धारण करते हैं । (मधुपृचां अरंगमः तीव्रः रसः) मधुरतासे परिपूर्ण तृप्ति करनेवाला तीव्र रस (प्राणेन वर्चसा सह) जीवन और तेजके साथ (मा आगमेत) मुझे प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

(आत् इत् पश्यामि) निश्चयसे मैं देखता हूं (उत वा शृणोमि) और सुनता हूं (आसां घोषः वाङ् मा आगच्छति) इनका घोष और शब्द मेरे पास आता है । हे (हिरण्यवर्णाः) चमकनेवाले वर्णवाले ! (यदा वः अदृप) जब मैंने तुम्हारे सेवनसे तृप्ति प्राप्त की (तर्हि अमृतस्य भेजानः मन्ये) तब अमृतके भोगन करनेके समान मुझे प्रतीत हुआ ॥ ६ ॥

हे (आपः) जलो ! (इद वः हृदयं) यह तुम्हारा हृदय है । हे (ऋतावरीः) जलधारको ! (अयं वत्सः) यह मैं तुम्हारा बच्चा हूं । हे (शक्वरीः) शक्ति देनेवालो ! (इत्थं इह आ इत) इस प्रकार यहां आओ । (यत्र वः इद वेशयामि) जहां तुम्हारे अन्दर यह मैं प्रवेश करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह जल निःसंदेह कल्याणकारक है, यह निश्चयपूर्वक तेज और पुष्टिको बढानेवाला है । अग्नि और सोम इसका धारण करते हैं । यह जल नामक रस ऐसा मधुर रस है कि यह पान करनेसे तृप्ति करता है और जीवनके तेजसे युक्त करता है ॥ ५ ॥

मनुष्य जलसे आंखसे देखता है और जलका शब्द सुनसे सुन भी सकता है । इस निर्मल जल स्वादिकके समान चमकता है । जब मनुष्य इसका पीता है तब उसमें अमृतपान करनेके समान आनन्द होता है ॥ ६ ॥

जलका यह आन्तरिक तत्त्व है मनुष्य जलका ही पुत्र है जब मनुष्यपर आता है और मनुष्य भी उसमें बोया जाता है ॥ ७ ॥

जलके प्रवाह ।

इस सूक्तमें जलके प्रवाहोंका वर्णन है । जलके अनेक नाम हैं उनमेंसे आपः नाम इस प्रकारके जलका होता है यह बात इस सूक्तके मंत्रों द्वारा बतायी गई है ।

मेघसे वृष्टि होती है और नदियोंसे महापूर आता है । नदियां भरनेका यह एक कारण है । नदियोंके महापूरका दूसरा भी एक कारण है वह है बर्फका पिघलना । परंतु बादल पानी आदि जो शब्द मंत्रोंमें प्रयुक्त करके आये जाते हैं वे वस्तुतः मेघ बादल नहीं हैं, परन्तु पहाडोंपर या भूमिपर पिरनेवाले बर्फके तथा बर्फोंके बादल होते हैं । ऐसी प्रकारका अभिप्राय है । अतः इसका अर्थ पहाडी बर्फ जानना योग्य है और इसके पिघलनेसे नदियोंका भर जाना भी संभव है । इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों कारणोंसे महापूर आनेसे जलप्रवाहोंका बडा जोर होता है इसलिये जोर करनेके हेतु जलप्रवाहका नाम वही होता है अर्थात् जिस जलप्रवाहका बडा शब्द न होता हो उसको नदी नहीं कहना चाहिये ।

यदीसा प्रवाह जलसे वेगसे चलता हो और उस वेगमेंसे जल किसी खाडेके ऊपर या अन्य स्थानमें डोंगकर प्राप्त किया हो तो उस जलको आप् कह सकते हैं ।

गोशाला ।

(४)

स वः सृजत्वर्यमा स पूषा स बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद्वसु ॥ २ ॥
सञ्जग्मानाः अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठ करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि सञ्जानमस्तु वः ॥ ४ ॥
त्रिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः स सृजामसि ॥ ५ ॥
मया गावो गोपतिना सचध्वमय वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥ ६ ॥

अर्थ— (अर्यमा वः स सृजतु) अर्यमा तुमको मिलावे (पूषा सं बृहस्पतिः स) पूषा और बृहस्पति भी तुम्हें मिलावे । (यः धनंजया इन्द्रः स सृजतु) जो धन जीत लानेवाला इन्द्र है वह तुमको धनसे संयुक्त करे । (यत् वसु) जो धन आदि पास है वह (मयि पुष्यत) मुझमें तुम पुष्ट करो ॥ २ ॥

(अस्मिन् गोष्ठ संजग्मानाः अ-बिभ्युषीः) इस गोशालामें मिलकर रहती हुई और निर्भय होकर (करीषिणीः) गोबरसे खाद आदि उत्पन्न करनेवाली तथा (सोम्यं मधु बिभ्रतीः) सौम्य मधुरादि रस-दूध धारण करती हुई (अनमीवा उपेतन) नीरोग अवस्थामें हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

हे (गावः) गौओ ! (इह एव एतन) यहां ही आओ । और (इहो शाका इव पुष्यत) यहां शाकके समान पुष्ट होओ । (उत इह एव प्र जायध्वं) और यहां ही बच्चे उत्पन्न करके बढ़ो । (वः सहान मयि अस्तु) आपस में प्रेम मुझमें हो ॥ ४ ॥

(वः गोष्ठः शिव भवतु) तुम्हारे रहनेका गोष्ठ तुम्हारे लिये हितकारी होवे । (शारि शाका इव पुष्यत) शाखसे शाकके समान पुष्ट होओ । (इह एव प्र जायध्वं) यहां ही बच्चे उत्पन्न करो और बढ़ो । (मया वः सं सृजामसि) मेरे साथ तुमको मैंने मिलाये हैं अलग नहीं किये ॥ ५ ॥

हे (गावः) गौओ ! (मया गोपतिना सचध्वं) मुझ गोपालके साथ मिली रहो । (वः पोषयिष्णुः अय गोष्ठः इह) तुमको पुष्ट करनेवाला यह गोशाला यहां है । (रायः पोषेण बहुलाः भवन्तीः) गौओंकी वृद्धिके साथ बहुत बढ़ती हुई और (जीवन्तीः वः जीवा उप सदेम) जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— अर्यमा पूषा बृहस्पति तथा धन जीतनेवाला इन्द्र आदि सब देवताओंसे गौओंके पुष्ट करो । तब पुष्ट गौओंसे आ पदार्थ प्राप्त होते हैं वह दूध घी पुष्टिदायक होनेसे सुख मिलता है ॥ १ ॥

अनेक गौओंको एक स्थान पर इकट्ठा करनेवाली दूध देती हुई बच्चा उत्पन्न करनेवाली नीरोग और निर्भय स्वभावकी बनावे और इस प्रकार बढ़ानेसे आनंद मिलता है ॥ २ ॥

गौओंके रहनेके स्थान गोशालामें बहुत घास हो, और वहां बहुत शुद्ध जल प्राप्त होवे और गौओंके शरीरसे मल दूर करती हुई अनेक गौएं वहां रहती हों ॥ ३ ॥

गौओंका स्थान स्वच्छ होना चाहिये । वहां गौएं पुष्ट हों और बछड़े उत्पन्न करते रहें । गोबरसे खाद बनाकर खेतीकी उन्नति करनी चाहिये ॥ ४ ॥

गौओंका स्थान इस प्रकार होना चाहिये कि वह गौओंका प्रेम उत्पन्न करनेवाला हो । वहां गौएं प्रसन्न होकर पुष्ट होती हुई बच्चे देती हुई बढ़ती रहें । इस प्रकार गौओंका पालन करनेसे आनंद प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

गो संवर्धन।

यह सूक्त अत्यंत सुगम है इसलिये इसके अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसमें जो बातें कही हैं उनका तात्पर्य यह है कि गौओंके लिये उत्तम गोशाला बनाई जावे और वहां उनके रहने सहने पास दानापानी आदिका सब उत्तम प्रबंध किया जावे। स्वामी गौओंसे प्रेम करे और गौवें स्वामीसे प्रेम करें। गौवें निर्भयतासे रहें उनको अधिक भयभीत न किया जावे क्योंकि भयभीत गौवोंके दूधपर बुरा परिणाम होता है। संतान उत्पन्न करानेके समय अधिक दूध वाली और अधिक वीर्यवान संतान उत्पन्न करानेके विषयमें पसंदगी रखी जाय। गौवोंकी पुष्टि और वीर्यवत्ताके विषयमें विशेष पसंदगी रखी जाय अर्थात् गौओंको पुष्ट किया जाय और उनसे वीर्यवान संतान उत्पन्न हो ऐसा प्रबन्ध किया जाय। गोपालनका सबसे उत्तम प्रबंध हो किसी प्रकारकी उनमें बीमारी उत्पन्न न हो। उनके गोबर आदिसे उत्तम खाद करके खेत वगैरह उपयोग लाना अर्थात् खेत आदि धान्यके लिये किया जावे।

इत्यादि प्रकारका बोध इस सूक्तके पढ़नेसे मिल सकता है। यह सूक्त अति सुगम है इसलिये पाठक इसका मनन करें और उचित लाभ प्राप्त करें।

वाणिज्य से धनकी प्राप्ति।

(१५)

(ऋषिः — अथर्वा (पथ्यास्वस्तिः)। देवता — विश्वेदेवाः इन्द्राग्नी)

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न एतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥ १ ॥
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहरानि ॥ २ ॥

अर्थ— (अहं वणिजं इन्द्रं चोदयामि) मैं वणिज इन्द्रको प्रेरित करता हूं (सः नः एतु) वह हमारे प्रति आवे और (नः पुर-एता अस्तु) हमारा अगुवा होवे। (परिपन्थिनं मृगं अरातिं नुदन्) मार्गपर खड़े हुवे लूटनेवाले पशुकी नाईं शत्रु हमको दुःख देता हुवा (सः ईशानः मह्यं धनदाः अस्तु) वह समर्थ मुझे धन देनेवाला होवे ॥ १ ॥

(ये देवयानाः बहवः पन्थानः) जो देवोंके जाने योग्य बहुतसे मार्ग (द्यावापृथिवी अन्तरा संचरन्ति) द्यावापृथिवीके बीचमें चलते रहते हैं (ते पयसा घृतेन मा जुषन्तां) वे दूध और घीसे मुझे तृप्त करें (यथा क्रीत्वा धनं आहरानि) जिससे क्रयविक्रय करके मैं धन प्राप्त कर सकूं ॥ २ ॥

भावार्थ— मैं वाणिज्य करनेवाले इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं कि वह हमारे अन्दर आवे और हमारा अग्रगामी बने। वह प्रभु हमें धन देनेवाला होवे और वह हमारे शत्रुओंका अर्थात् बलवान् लुटेरे और पापरूपी शत्रुओंसे हमें सदाबचानेवाला होवे ॥ १ ॥

पृथिवी और द्युलोकके मध्यमें जान-आनेके जो दिव्य मार्ग हैं वे हमारे लिये दूध और घीसे भरपूर हों जिस मार्गोंसे जाकर और व्यापार करके हम बहुत धन प्राप्त कर सकें ॥ २ ॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्य तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥
इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुन नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इद हव्य संविदानो जुषेथां शुन नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥ ४ ॥
येन धनेन प्रपण चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयाऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा नि षेध ॥ ५ ॥
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! (इच्छमानः इध्मेन घृतेन तरसे बलाय हव्यं जुहोमि) मैं अपनी इच्छा करनेवाला इन्धन और घीसे युक्तहो बलवान् बनने और बल प्राप्तिके लिये हवन करता हूं । (यावत् इमां देवीं धियं ब्रह्मणा वन्दमानः शतसेयाय ईशे) जिससे इस बुद्धिका ज्ञान द्वारा वन्दन करता हुआ मैं सैकडों सिद्धियोंको प्राप्त करनेके योग्य होऊं ॥ ३ ॥

हे (अग्ने) अग्ने ! (नः इमां शरणिं मीमृषः) इस हमारी गृहस्थिकी रक्षा कर । (यं दूरं अध्वानं अगाम) जिस दूरके मार्गतक हम आ गये हैं । (नः प्रपणः विक्रयः च शुन अस्तु) हमारा क्रय और विक्रय लाभकारक हो । (प्रतिपणः फलिनं नः कृणोतु) प्रत्येक व्यवहार सुखको लानेवाला होवे । (इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां) इस हविको जानकर सेवन करो । (नः चरितं उत्थितं च शुन अस्तु) हमारा व्यवहार और हमारा उत्थान लाभदायक होवे ॥ ४ ॥

हे देवो ! (धनेन धनं इच्छमानः) मुझे धनसे धनकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मैं (येन धनेन प्रपणं चरामि) जिस धनसे व्यापार करता हूं (तत् मे भूयः भवतु) वह मेरे लिये अधिक होवे और (मा कनीयः) कम न होवे । हे अग्ने ! (हविषा सातघ्नान् देवान् निषेध) हवनसे युक्त होकर धनका नाश करनेवाले विघ्नकारियोंका तू निषेध कर ॥ ५ ॥

हे देवो ! (धनेन धनं इच्छमानः) धनसे धन कमानेकी इच्छा करनेवाला मैं (येन धनेन प्रपणं चरामि) जिस धनसे व्यापार करता हूं (तस्मिन् मे रुचिं) उसमें मेरी रुचि (इन्द्रः प्रजापतिः सविता सोमः अग्निः) इन्द्र प्रजापति सविता सोम अग्नि देव (आ दधातु) स्थिर करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मैं लाभ तथा बल प्राप्त करना और दुष्टतासे दूर करना चाहता हूं इसलिये मैं यज्ञ और हविपूर्वक हवन करता हूं । इससे मैं ज्ञान अग्निपूर्वक उत्तम बुद्धिसे प्रयत्न करनेका करता हुआ अनेक व्यापारमें सिद्धियां प्राप्त करके लाभ प्राप्त करूंगा ॥ ३ ॥

हम अनेक स्थल बहुत दूर विदेशमें आगये हैं । हे अग्ने ! यहां कोई त्रुटि हमसे हो गई हो तो क्षमा कर । यहां जो व्यापार हम कर रहे हैं उसमें हमें बहुत लाभ प्राप्त हो हमें कभी भी हानि हो और विक्रयसे भी हमें धन बहुत मिले प्रत्येक व्यवहारसे हमें लाभ होता जाय । हमारा आना जाना और हमारा बन्दोबस्त अर्थात् दुकानोंसे चढाई करना भी हमें लाभकारी होवे । इसके लिये हम यह हवन करते हैं उसको स्वीकार कर ॥ ४ ॥

मैं मूल धनसे व्यापार करके बहुत लाभ प्राप्त करना चाहता हूं इसलिये जितने धनसे मैं यह व्यवहार कर रहा हूं वह धन मेरे पासके लिये पर्याप्त होवे और कम न होवे । मैं जो यह हवन कर रहा हूं इससे संतुष्ट होकर हे अग्नी ! तू मेरे व्यवहारमें अवश्य लाभ करनेमें जो कोई होन उनको दूर कर ॥ ५ ॥

उपं त्वा नमसा वयं होर्तर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥ ७ ॥
विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ८ ॥

इति तृतीयाऽनुवाकः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (होतः वैश्वानर) यज्ञके वैश्वानर ! (वयं नमसा त्वा उप स्तुमः) हम नमस्कारसे तेरा स्तवन करते हैं । (सा नः आत्मसु प्राणेषु प्रजासु गोषु जागृहि) वह तू हमारे आत्मा प्राण प्रजा और गौओंमें रक्षणके लिये जाग्रत रह ॥ ७ ॥

हे (जातवेदः) सर्वज्ञ ! (विश्वाहा ते इत् सदं भरेम) प्रतिदिन तेरे ही स्वागतमें हम भेंटें (तिष्ठते अश्वाय इव) जैसा स्वागतार्थ खड़े हुए घोड़ेमें अन्न रखते हैं । (रायः पोषेण इषा सं मदन्तः) धन पुष्टि और अन्नसे आनंदित होते हुए (ते प्रतिवेशाः मा रिषाम) तेरे उपासक हम कभी नष्ट न होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ— अपने मूल धन्धे व्यापार करनेमें बहुत धन कमाना चाहता हूं, इसके लिये धन अच्छा उत्तम जो व्यवहार मैं करना चाहता हूं, उसमें प्रभुकी कृपासे मेरी अधिक लाभ होनेतक स्थिर हाव ॥ १ ॥

हे प्रभो ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं और तेरी स्तुति करता हूं, तू संतुष्ट होकर हमारे आत्मा प्राण प्रजा और गौ आदि पशुओंकी रक्षा कर ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! जिस प्रकार अश्वशालामें एक स्थानपर रखे हुए घोड़ेके खिलानेका प्रबंध प्रतिदिन किया करते हैं उसी प्रकार हम तेरे उपासक प्रतिदिन हवन करते हैं । तेरी कृपासे हम बहुत धन पुष्टि और अन्न प्राप्त करेंगे बहुत आनंदित होवें और कभी तुझसे अलग न होवें ॥ ८ ॥

वाणिज्य व्यवहार ।

धनेश या अन्य विक्रयका व्यवहार करता है उसका नाम वाणिज्य व्यवहार है । व्यापारके परदेश किसी स्थानसे खरीदना और किसी स्थानपर उसका बेचना और इस क्रयविक्रयमें योग्य लाभ प्राप्त करना इस व्यापार व्यवहारसे होता है । कुशल वणिक इसमें अच्छा लाभ प्राप्त करते हैं ।

पुराना वणिया !

इस सूक्तके पहले मंत्रमें सब जगत्के प्रभु (इन्द्र भगवान्) का पवित्र इन्द्र (वाणिज इन्द्र) कहा है यह बहुत ही वाक्यमय वचन है और इसमें अद्भुत उपदेश भरा है। परमेश्वर सबका स्वामी है और प्रजापालनेका भी विचार नहीं करता इसलिये उसके एक मंत्रमें (तायुं । ऋ. १।२५।१) चोर भी कहा है । जिस प्रकार यह अद्भुत अलंकार है उसी प्रकार प्रभुका वणिया कहना भी अलंकार है ।

जिस प्रकार वणिया एक दूसरे अच्छे उत्तमसे भी अच्छा आदि करता है न अधिक और न कम इसी प्रकार यह पुराना पक्का बड़ा वणिया मनुष्योंके पुरुषार्थ उसी प्रमाणसे देता है कि जितना मनुष्य पुरा पूर्ण पुरुषार्थ करते हैं अथवा जितना अपना व परोपकारार्थ करते हैं उतना ही धनका पुष्ट मिलता है । इस प्रकार इस इन्द्र वाणियाका अपरूप आश्चर्य यह अपना व्यापार चलाता है न यह कभी पक्षपात करता है और न कभी अन्यायका व्यवहार करता है । इस प्रकार यह सच्चा पुराना पुरुष वाणियाका व्यवहार करता है उसका जितना दिया आप हमारा ही उसका वापस मिलता । इसलिये मनुष्यका यह आदि कर्म करने चाहिये जिनका इस उसके पुष्ट कहाता अब यह उपदेश यहां मिलता है ।

व्यापारका व्यवहार बताते हुए भी वेदने उसमें परोपकारके मूल व्यवहारका उपदेश देकर बताया है कि व्यापार भी सब

स्वरूप परमेश्वरकी निष्ठासे ही होना चाहिये और उस ऊपर तथा भाषा इसमें कभी अश्रद्धा नहीं चाहिये।

इसका विरोध मं. २ और ५ इन दो मन्त्रोंमें है। इसका अर्थ है अपना सर्वस्व। अपने पासके पदार्थ परमार्थके लिये अर्पण करना और स्वार्थका भाव कम करना यही यज्ञ है। ऐसे यज्ञसे ही जगदीश्वर प्रसन्न होता है इसलिये ऐसे कर्मसे परमात्माके पास पहुंचते हैं और उनका यश चारोंओर फैलता है। इसलिये व्यापार-व्यवहारसे धन प्राप्त करनेपर उसका योग्य भाग परोपकारके लिये खर्च करना चाहिये अर्थात् उसको यज्ञमें लगाना चाहिये। धन कमानेवाला इस आरोग्य योग्य विचार करे। जो कमाया हुआ धन स्वयं उपभोग करता है वह पापी होता है। इसलिये कमाये धनमेंसे योग्य भाग परोपकारमें लगाना चाहिये।

व्यापारका स्वरूप।

इस सूक्तमें व्यापार विषयक जो शब्द आये हैं वे अब देखिये—

१ धन = मूल धन खरीदना जिस मूल धनसे व्यापार किया जाता है। (मं. ५ ६)

२ धन = लाभ लाभरूप प्राप्त होनेवाली रकम। (मं ५,६)

३ धनिक् = व्यापारी धनिकपन करनेवाला। (मं १)

४ धनदा = व्यापारके लिये धन देनेवाला धनवान, जिससे धन लेकर अन्य छोटे व्यापारी अपना काम चला करते हैं। साहुकार। (मं १)

५ प्रपणा = दौड़ा घरोंद घोड़ा। (मं ५)

६ विक्रया = खरीदा हुआ माल बेचना। (मं. ६)

७ प्रतिपणा = अच्छे दौड़ा। (मं. ६)

८ फल्गी (फल्गिन्) = नाम कुछ होना। (म ६)

९ गुल = व्यापारकी नामकी हिस्सा। (मं ४)

१० चरित्रे = व्यवहार अच्छे लिये इसका करना। (मं ६)

११ क्रयित = खरीद करना। क्रयविक्रयके साथ स्वपरिचित्र बढ़ाई करना। (मं. ६)

१२ भूषा (धने) = व्यवहारके लिये धनकी बढ़ाया होना। (म ५)

इस प्रकार यहां व्यापार विषयक कीमती सूचना दी है। इसके अलावा पढ़नेसे पता लग सकता है कि व्यवहारके साथ कौनसे विषय हैं और उन विषयोंमें क्या क्या करने का है। ५ ६।

धर्म मूल धन व्यापार व्यवहारमें लगाना चाहिये। यदि अपने पास न हो तो किसी साहुकार (धन-दा) के पाससे लेकर उस धनपरसे अपना व्यवहार चलाना चाहिये। जिस पदार्थका व्यापार करना हो उस पदार्थका ज्ञान' यहां करना योग्य है और उसका विचार यहां करनेसे अधिकसे अधिक लाभ हो सकता है इसका विचार करना चाहिये। किस दिशामें, किस देशमें खरीदी और किस स्थानपर बिक्री (प्रतिपण) करने अधिक लाभ होना संभव है इसका ज्ञान अनुसन्धान करनेसे निःसन्देह लाभ हो सकता है। इसीका भाव ऊपर लिये शब्दोंमें व्यक्त किया है।

इस सब सूक्तोंमें 'क्रयित' शब्द क्या महत्व रखता है। उठाव लेना बढ़ाई करना इत्यादि अर्थ इसके प्रसिद्ध हैं। व्यवसाय व्यवहार करनेका तात्पर्य सब जानते ही हैं। इस व्यवहारके दो भेद होते हैं एक वैयक्तिक व्यवहार और दूसरा सामुदायिक संभूय समुत्थान है। एक व्यक्ति बढ़ाईकी मर्यादित व्यापार करती है उसको वैयक्तिक व्यवहार कहते हैं और बड़े अनेक व्यापारी अपना संघ बनाकर उठाई करते हैं उसको समूह समुत्थान कहते हैं। व्यापारमें देशकाल जाने बिना व्यापार ही अर्थ नहीं करता परंतु यह दोनों प्रकारका ज्ञान भी बड़ा आवश्यकीय होता है। पाठक स्वयं उसका विचार करें।

व्यापारके विरोधी।

१ सातघ्नी = (सात) आनन्द (घ्नी) नाश करनेवाले। जिनके साथ व्यवहारमें हानि होती है। (मं. ५)

२ सातघ्नी देवी = आनन्द नाश करनेवाला स्त्रीलिंग, क्षिप्रकी (दिव्- तुच्छ करना) इस धातुसे यह शब्द बना है। व्यवहारमें हानि होनेवाली आदतें नाश करनेवाला मनुष्य। (मं. ५)

३ परिरंगिणम् = बकवाद, चार मुखर आदमी अथवा अनावश्यक बोलनेवालोंसे जो घृणा है। (मं. १)

४ मुषा = चोर, चोरीका मनुष्य। (मं १)

५ अ रति = कंजूस दान न करनेवाला। (म १)

६ कुसीदा (धने) = व्यापारके लिये जिसका धन न देकर बदला न लेना पड़ता है ऐसी धनकी थैली। (मं ५)

इनके साथ व्यापार-व्यवहार हानि होती है इसलिये इन दोषोंसे बचकर व्यवहार करना चाहिये।

व्यापार-व्यवहार करने की विधि इस सूक्तमें दिखाई है। इस विषयकी कुछ

हैं। पाठक देवोंको वहां विलक्षणरी देखकर आश्चर्यचकित हो जायंगे। परंतु वैसा भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। देव शब्दके अर्थ जुआरी आदिमें समय बितानेवाला ऐसा भी होता है। यह अर्थ दिव् धातुका जूआ खेलना अर्थ है उस धातुसे सिद्ध होता है। जो व्यापारी अपना समय ऐसे कुकर्मोंमें खर्च करेंगे वे अपना नुकसान करेंगे और अपने ग्राहकोंको भी दुखी देंगे। यह उपरोक्त मानकर जो जो व्यवहार व्यापारमें हानि करनेवाले होंगे उन व्यवहारोंको करनेवाले लोगोंको देव समझना यहां उचित है। (सत) असत्य (प्र) नाश करनेवाले (देव) व्यवहार करनेवाले लोग यह इसका तात्पर्य है। देव शब्द व्यवहार करनेवाले इस अर्थमें प्रचलित है।

परिपंथि शब्दका प्रसिद्ध अर्थ कर दिया ही है। इसका दूसरा अर्थ यह होता है कि जो लोग कुमार्गसे आनेवाले हैं। सीधे राजमार्गसे न आते हुए अन्य कुमार्गसे आना बहुत समय हानिकारक होता है। विशेष कर यह अर्थ यहां अभिप्रेत है ऐसा हमारा विचार है।

व्यापारका मूल धन अथवा उसमाल भी कम नहीं रहना चाहिये अन्यथा अन्य सब बातें ठीक होते हुए भी व्यापारमें क्षेम नहीं हो सकता। इसलिये पंचम मंत्रकी सूचना कि (मा कुसीदायः। मं ५) अत्यंत ध्यान देने योग्य है। बहुत व्यवहार असफारी होते हुए भी आवश्यक धनकी कमी होनेके कारण से नुकसान करनेवाले होते हैं। जो नुकसान इस प्रकार होता वह किसी अन्य बुद्धिसे या बुद्धिकी कुशलतासे पूर्ण नहीं होता। क्योंकि वह कमी हरएक प्रसंगमें स्वतंत्र उपद्रव करनेवाली होती है। व्यापार करनेवाले पाठक इससे योग्य बोध ग्रहण करें।

दो मार्ग।

व्यापार करनेके लिये देशदेशांतरमें जाना आवश्यक होता है। अन्यथा बड़ा व्यापार होना अशक्य है। देशदेशांतर और द्वीपद्वीपान्तरमें जानेके लिये उत्तम और सुरक्षित मार्ग चाहिये। देशान्तरमें जानेके कई मार्ग सुरक्षित होते हैं और कई अरक्षित होते हैं। जो सुरक्षित मार्ग होते हैं उनको सुपथागाः पन्थानः (मं. २) कहा है। देवमान मार्ग वे होते हैं कि जिनपर देवता सरक्षक होकर जाते आते हैं इस कारण वे मार्ग रक्षित भी होते हैं ऐसे मार्गपर लुटमार नहीं होती व्यापारी लोग अपना माल सुरक्षित पहुंचा के जाते हैं और ले आते हैं। अतः जानेआनेके ऐसे सुरक्षित मार्ग हों वहां ही व्यापार करना असहायक होता है।

दूसरे मार्ग राक्षसी असुरों और पिशाचोंके होते हैं जिनपर इन निशाचरोंका आना जाना होता है। ये ही परिपन्थी अर्थात् लुटमार चोर लुटेरे बनकर सार्थवाहोंको लूट लेते हैं। इन मार्गोपरसे आनेवाले व्यापार व्यवहार अच्छा लाभदायक नहीं हो सकता। इसलिये अहाके मार्ग सुरक्षित न हो वहांके मार्ग सुरक्षित करनेके लिये प्रयत्न होना आवश्यक है। वणिज्यकी वृद्धि करनेके लिये यह अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है।

व्यापार अच्छी प्रकार होनेके लिये दूसरी आवश्यकता इस बातकी है कि मार्गमें जहां जहां मुक्काम करना आवश्यक हो वहां खानपानके पदार्थ मनके अनुकूल सुलभतासे मिलने चाहिये। रहने सहने और खानेके लिये सब प्रबंध बनाकर रखा चाहिये। उचित दाम देकर सहजमें प्रबंध बिना आयास होना चाहिये इस विषयमें द्वितीय मंत्र देखिये—

ते (पन्थानः) मा जुषन्तां पयसा घृतेन।
तया क्रीत्वा धनमाहरामि॥ (सू. १५, मं. २)

ये देशदेशान्तरमें जाने आनेके मार्ग मुझे सुखपूर्वक दूध घी आदि उपभोगके पदार्थ देनेवाले हों जिससे मैं क्रय आदि करके धन कमानेका व्यवहार कर सकूं। बात तो सच है कि यदि देशदेशांतरमें प्रवास करनेवालेको भोजनादिका सब प्रबंध अपना खर्च ही करना पड़े तो उसका समय उसीमें बहुत जाना संभव है होने विदेशमें स्वानका परिचय न होनेके कारण सब आवश्यक सामान इकट्ठे करनेमें ही स्वल्प समय चला जाना। इसलिये मनके कथनानुसार मार्ग ही उपभोगके पदार्थोंसे तैयार रहेंगे तो अच्छा है। यह उपदेश बड़ा महत्व पूर्ण है और व्यापार वृद्धिके लिये सर्वत्र व प्रबन्धके होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

ज्ञानयुक्त कर्म।

हरएक कार्य ज्ञानपूर्वक करना चाहिये। इस विषयमें तृतीय मंत्रका कथन अत्यंत विचारणीय है—

देवी धिय प्रयजा यन्तमच्छ शतसेयाय दधे।
(सू. १५, मं. ३)

दिव्य बुद्धि और कर्मकौशल्य ज्ञानसे अलंकार करता हुआ मैं देवोंको विद्वानोंको प्राप्त करनेका अधिकारी बनता हूं।

यहांपर भी शब्द प्रज्ञा, बुद्धि और कर्मशक्ति का वाचक है। ज्ञानपूर्वक हरएक कर्म करना चाहिये। जो काम करना हो उस विषयमें जितना ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है उतना पहले करना और पश्चात् उस कार्यका आरंभ करना चाहिये। तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह सिद्धिका सरल मार्ग है। दूसरी बात जो सिद्धिके लिये आवश्यक है वह यह है कि आरंभ किये कार्यमें सदा स्थिर होना चाहिये—

तस्मिन् सधिं मा दधातु। (ऋ. १५, मं. ९)

उस कार्यमें सदा स्थिर होवे यह बात अत्यंत आवश्यक है। नहीं तो कई लोगोंकी ऐसी चंचल वृत्ति होती है कि वे आज एक कार्य करते हैं कल तीसरा हाथमें लेते हैं और परसों पांचवेंका विचार करते हैं। ऐसे चंचल लोग कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं कर सकते।

परमेश्वर भक्ति।

एक कार्योंकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। इस विषयमें उत्तम और अधम मंत्रोंका कथन करना आवश्यक है।

ईश्वरकी नम्रतापूर्वक स्तुति प्रार्थना उपासना करना चाहिये। क्योंकि वही सरल अपने योग्य है और उसीकी अधिष्ठाता सदैव रक्षा होती है। प्रतिदिन नियत समयपर उसकी उपासना करनी चाहिये। जिससे वह उस आवश्यकतामें मदद देवे और बल पुष्टि तुष्ट आदि प्राप्त होवे और कभी निराश्रय नहीं होवो। ईश्वर उपासना तो उन्नतिके लिये अत्यंत आवश्यक है। संपूर्ण सिद्धियोंके लिये इसकी बहुत आवश्यकता है।

॥ यहां तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

प्रातःकालमें भगवान्‌की प्रार्थना ।

(१६)

(ऋषिः — मधुष्ठा । देवता — बृहस्पतिः बहुदेवत्यम्)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

अर्थ— (प्रातः अग्निं) प्रातःकाल अग्निकी (प्रातः इन्द्रं) प्रातःकालमें इन्द्रकी (प्रातः मित्रावरुणौ) प्रातःकालके समय मित्र और वरुणकी तथा (प्रातः अश्विनौ) प्रातःकाल अश्विनी देवोंकी (हवामहे) हम स्तुति करते हैं । (प्रातः पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं) प्रातःकाल पूषा और ब्रह्मणस्पति नामक भगवान्‌की (प्रातः सोमं उत रुद्रं हवामहे) प्रातःकाल सोम और रुद्रकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

(वयं प्रातर्जितं अदितेः वरं पुत्रं भगं हवामहे) हम प्रातःकालके समय अदितिके विजयी वर पुत्र भगकी प्रार्थना करते हैं (यः विधर्ता) जो विशेष प्रकार धारण करनेवाला है । (आध्रः चित्) अशक्त भी और (तुरः चित् च) बलवान् भी जिसको तथा (राजा चित्) राजा भी (यं मन्यमानः) जिसका सम्मान करता हुआ (' भगं भक्षि ' इति आह) अच्छा भाग मुझे दे ऐसा कहता है ॥ २ ॥

हे (भग) भगवन् ! हे (प्र-नेतः) बड़े नेता ! हे (सत्यराधः भग) सच्ची सिद्धि देनेवाले प्रभो ! (इमां धियं ददत् नः उत् भव) इस बुद्धिको देता हुआ तू हमारी रक्षा कर । हे (भग) भगवन् ! (गोभिः अश्वैः नः प्रजनय) गौओं और घोड़ोंके साथ उत्तमवृद्धि कर । हे (भग) भगवन् ! हम (नृभिः नृवन्तः स्याम) अच्छे मनुष्योंके साथ रहकर मनुष्योंसे युक्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रातःकालमें हम अग्नि इन्द्र मित्रावरुणौ अश्विनौ पूषा ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्र नामक भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

हम इस प्रातःकालके समय अदितिके वीर भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं जो भगवान् सबका विशेष प्रकारसे धारण करनेवाला है और जिसको अशक्त और सशक्त, रंक और राजा सभी एक प्रकारसे परम पूज्य मानते हुए, अपनेको सम्मानपूर्वक करनेकी इच्छासे प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

हे हम सबके बड़े नेता ! हे सच्ची सिद्धि देनेवाले प्रभो ! हे भगवन् ! हमारी इस तुच्छ बुद्धिको वृद्धि करता हुआ तू हमारी रक्षा कर । गौओं और घोड़ोंकी वृद्धिके साथ साथ हमारी उन्नति बढ़ती होती रहे । तथा हमारे साथ सदा श्रेष्ठ मनुष्य रहें, ऐसा कर ॥ ३ ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्थ— (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम इस समय भाग्यवान होवें (उत प्रपित्वे उत मध्ये अह्नाम्) और सायंकालमें भी और दोपहरमें भी । हे (मघवन्) भगवन् ! (उत सूर्यस्य उदितौ) और सूर्यके उदयके समय (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम देवोंकी सुमतिमें रहें ॥ ४ ॥

(भगवान् भगः देवः अस्तु) भगवान् भगदेव मेरे साथ होवे (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उसकी कृपासे हम भाग्यवान् होवें । (हे भग) भगवन् ! (त त्वा सर्वः इत् जोहवीमि) इस तुझको मैं सब रीतिसे भजता हूं (भग) भगवन् ! (सः नः पुरएता इह भव) वह तू हमारा अगुआ यहां हो ॥ ५ ॥

(उषसः अध्वराय ते नमन्त) उषायें बड़े किये उत्तम प्रकार झुकती रहें । (शुचये पदाय दधिक्रावा इव) जिस प्रकार शुद्ध स्थानपर पद रखनेके लिये घोड़ा चाहता है । (वाजिनः अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथं इव आ वहन्तु) घोड़े जिस प्रकार मनुष्यको मेरे पास ले आवें (अश्वा रथं इव) जैसे घोड़े रथको लाते हैं ॥ ६ ॥

(अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः उषासः) घोड़े गौएं और वीरोंवाले पुत्र कल्याणमयी उषायें (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करें । (घृतं दुहानाः) घीको प्राप्त करते हुए (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार हृष्टपुष्ट होकर (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम सब अनेक कल्याणोंके साथ सदा हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हम प्रातःकाल दोपहरके समय और सायंकालके समय ऐसे पुरुषार्थ करें कि जिससे हम भाग्यवानी बनते जावें । हम सूर्यके उदयके समय देवोंकी उत्तम मतिके साथ युक्त हों ॥ ४ ॥

भगवान् परमेश्वर हमें भाग्य प्रदानसे होवे उसकी कृपासे हम भाग्यवानी बनें । हे भगवन् ! हम सब तेरा भजन करते हैं इससे तू प्रसन्न हो और हम सबको मोक्ष मार्गपर चलानेवाला हमारा सुहृदय बन ॥ ५ ॥

इस प्रकार समय अहिंसामय अनुद्विग्न सत्कर्मोंकी रीतिसे हम जाव और उन कर्मोंसे भगवान् भगवान् हमारे अधिक समीप होते जावें ॥ ६ ॥

जिन उषाओंके समय घोड़े गौएं और वीरपुरुष कल्याणसे कार्योंमें लगे होते हैं ऐसी उषाएं हमारे घरोंको प्रकाशित करें । और ऐसी ही उषायें घृतको प्राप्त करती हुई और उत्तम दुग्धपान कराती हुई अनेक कल्याणोंके साथ हम सबकी रक्षा करें ॥ ७ ॥

प्रात कालमें भगवान्‌की प्रार्थना।

प्रातःकाल उठकर प्रभुकी प्रार्थना करना चाहिये। अपना मन शुद्ध और पवित्र बनाकर एकाग्रताके साथ यह प्रार्थना होनी चाहिये। इस समय मनमें कोई विरोधक विचार न उठे और परमेश्वरकी मङ्गलिक विचार ही मनमें आपता रहे। ऐसे शुद्ध भावसे उसके पवित्र समक्षमें की हुई प्रार्थना परमेश्वर देव सुनते हैं। इसीलिये—

सबका उपास्य देव।

आध्वरियं मन्यमावस्तुरण्यन्राजा चिदर्यं मर्यं मंहीत्याह॥ (सू. १६ मं २)

इस समय विवेक और बलवान् प्रजाजन और राजा प्रमाण भावसे प्रभुका स्मरण करते हुए उसकी प्रार्थना करते हैं और उसके पास अपने भाग्यका माग मांगते हैं। क्योंकि निर्बल और बलवान् शासित और शासक ये उसके सन्मुख समान भावसे ही रहते हैं। इस मंत्रके शब्द अधिक विचारकी दृष्टिसे देखने योग्य हैं इसलिये उन शब्दोंके अर्थ अब देखिये—

१ आध्वः = आधार देने योग्य जिसको दूसरेके सहारेकी आवश्यकता होती है निर्बल अशक्त निर्धन।

२ तुरः = त्वराशुक्त शीघ्रतासे कार्य करनेवाला, बेगवान् आगे बढनेवाला बलवान् सामर्थ्यवान् धनवान् अपनी शक्तिसे आगे बढनेवाला।

३ राजा = शासन करनेवाला हुकूमत करनेवाला दूसरोंपर अधिकार करनेवाला।

इस राजा शब्दके अनुसंधानसे यहां शासित होनेवाली प्रजाका भी बोध होता है। निर्बल अशक्त निर्धन शासित आदि अर्थ तथा बलवान् समर्थ धनी और शासन करनेवाले ऐसे ये सब यद्यपि अर्थतः साधारण दृष्टिसे भीन्न और अन्य समझे जाते हैं, तथापि सर्वनियन्ता प्रभुके सन्मुख ये समान भावसे ही रहते हैं उसके सामने न कोई बड़ा है और न कोई नीच है, इसलिये उस प्रभुकी प्रार्थना जैसा दीन मनुष्य करता है वैसे प्रकार राजा भी करता है और दोनों उसकी कृपासे अपने भाग्यकी वृद्धि होगी ऐसा ही समझते हैं। इस प्रकार यह मन्त्र परमपिता सबका एक जैसा पालक है। यह—

यः विषर्ता। (सू. १६ मं २)

सबका विशेष रीतिसे धारण करनेवाला है अन्य साधारण धारणकर्ता बहुत हैं परन्तु यह प्रभु तो धारकोंका भी आधार है, इसीलिये इसको विशेष धारक कहते हैं। यह—

प्रातर्जित भगिते पुत्र अग्ने। (सू. १६ मं २)

(प्रातः जित) प्रात कालमें ही विजयी है, अर्थात् अन्य वीर तो युद्ध करेंगे और पश्चात् विजयी होंगे इस कार्यके लिये उनको विजय प्राप्तीके लिये कुछ समय अवश्य लगेगा वैसा इसके लिये नहीं है। यह तो सदा विजयी ही है अब युद्ध होनेका प्रारंभ उषःकालसे होता है, उस उषःकालके प्रारम्भमें ही यह विजयी होता है अर्थात् पश्चात् तो इसका विजय होना ही परंतु इसका प्रारंभसे ही विजय हुआ है, यह सब यहां बताया है।

अदीनताका रक्षक।

दिति नाम पराधीनता या दीनताका है और अ दिति का अर्थ है स्वतंत्रता स्वाधीनता या अदीनता। इस स्वाधीन शब्द यह (पु-त्र = पुनाति च त्रायते च इति पुत्रः) पवित्रता युक्त स्मरण करनेवाला है। इसीलिये यह भाग्यवान् होनेसे सब कल्याण है। जो कोई इस पवित्रताके साथ स्वाधीनताको रहा करेगा वह भी भाग्यवान् होगा और ऐश्वर्यवान् भी होगा। अ-दितिका पुत्र होना यह पुरुषार्थका कार्य है, यह साधारण बात नहीं है। परमात्मा तो सर्वसिद्ध स्वाधीन शब्द रक्षक है इसलिये उसको यह दिति स्वभावसे ही सिद्ध है अर्थात् बिना प्रयत्न प्राप्त है। पुरुषार्थी मनुष्य अपने पुरुषार्थसे स्वाधीनताका रक्षक होता है इससे यह दिति परमात्मोपासनासे ही प्राप्त हो सकती है। इसकी उपासना कौन किस रूपमें करते हैं इसका वर्णन प्रथम मंत्रमें किया है—

उपासनाकी रीति।

अग्नि इन्द्र मित्र वरुण अश्विनौ पूषा बृहस्पति सोम सबके सब अपनी इस उपासना करते हैं। (मं १) यह इस मंत्रका तात्पर्य है। एक ही परमात्म देवके ये गुणबोधक विशेषण हैं। इस सूक्तमें सब अर्थात् ऐश्वर्यकी प्रधानता होनेसे इस सूक्तमें सब शब्द मुख्य और अन्य शब्द उसके विशेषण हैं। परंतु यदि किसीको अन्य गुणोंकी उपासना करनी हो तो उस गुणका वाचक शब्द मुख्य मानकर अन्य शब्दोंका उसके विशेषण माना जा सकता है। जैसा—

(१) भाग्यप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला सब नामोंमें मुख्य मानकर उपासना करे। (२) ज्ञानप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला बृहस्पति नामको मुख्य मानकर उपासना करे। (३) प्रभुत्वका सामर्थ्य चाहनेवाला इन्द्र नामको मुख्य मानकर उसीकी उपासना करे। (४) पुष्टि चाहनेवाला पूषा नामको मुख्य मानकर उसकी उपासना करे। (५) शांति चाहनेवाला सोम नामको मुख्य मानकर अन्य नामोंको उसके

विशेषरूप माने और उपासना करे । (६) समताकी इच्छा करने वाला सब मानवोंको मुख्य मानकर उपासना करे इसी प्रकार अन्यान्य मानवोंको मुख्य या गौण अपनी कामनाके अनुसार मान और उसी प्रमुखकी उपासना कर अपनेमें उस गुणकी वृद्धि करे । उसी एक प्रभुके ये नाम हैं क्योंकि एक ही प्रभुके अग्नि आदि अनेक नाम होते हैं, एक ही सद्वस्तुका ऋषि लोग भिन्न भिन्न नामोंसे वर्णन करते हैं इस वैदिक शैलीके अनुसार इस प्रथम मंत्रमें आये सब शब्द एक ही परमात्माके वाचक हैं । इस प्रकार किसी गुणको प्रधान मानकर प्रभुकी उपासना की जाय तो उसीकी उपासना होती है और जिस गुणका चिन्तन किया जाय उसीकी वृद्धि होती जाती है । मन जिसका ध्यान करता है वह गुण मनमें बढ़ता है इस नियमके अनुसार यह उपासना होती है । इस गुणैक्य चिन्तन करनेकी सुविधा होनेके लिये यहां इन शब्दोंके विशेष अर्थ देते हैं—

१ अग्निः = तेज प्रकाश उत्पन्न करने और गति करनेवाला ।
२ इन्द्रः = शत्रुओंको दूर करनेवाला ऐश्वर्यवान्, नियामक, शासन करनेवाला राजा ।
३ मित्रः = मित्र दृष्टिसे सबोंपर प्रेम करनेवाला सबका हित करनेवाला ।
४ वरुणः = निष्पक्षपातताके सद्असद्का निरीक्षण करनेवाला वरिष्ठ ।
५ अश्विनौ = बल और ज्ञान दृष्टिसे सुख देनेवाले । सर्व व्यापक सर्वत्र उपस्थित ।
६ भगः = भाग्यवान् ऐश्वर्य सुख युक्त ।
७ पूषा = पोषक पुष्टि करनेवाला ।
८ बृहस्पतिः = ज्ञानका स्वामी ज्ञानी ।
९ सोमः = शान्त आह्लादरूपक ब्रह्मानन्दि ब्रह्मवान् सहज, प्रसन्नता करनेवाला ।
१० रुद्रः = दुष्ट प्रबन्ध भयानक वर्जना करनेवाला वीर, शूर, पौरुषवान् दुष्टनिर्मूलक और दुष्टको रुलानेवाला ।

प्रथम मन्त्रोक्त इस शब्दोंके ये अर्थ हैं । पाठक इन अर्थोंके मननसे प्रभुकी उपासना कर सकते हैं । जिस गुणका अपनेमें बढ़ानेकी इच्छा हो उस गुणवाचक शब्दसे प्रभुका ध्यान करना और अन्य सब शब्द उसीके गुणबोधक विशेषण समझना यह उपासनाकी रीति है । इस प्रकार मनन और निदिध्यासन करनेसे मनका बाधुर्यभाव ही उस प्रकारका बनता है और आवश्यक गुण मनमें विकसित होने लगता है । यहां पाठक स्मरण रखें कि, अपनी उन्नतिके लिये अपने मनको अंदरका बाधु बनाने की आवश्यकता है इसीलिये तृतीय मन्त्रमें कहा है—

धारणा ।

इमां धियं वृषभः नः जुषध्वं । (ऋ. १६ मं. १)

इस बुद्धिको बढ़ाते हुए हमारी उचित व्यवस्था करके हमारी रक्षा कर यहां प्रार्थनामें धन नहीं मांगा है परन्तु बुद्धि मांगी है, यह धारणावती बुद्धि जो कर्म शक्ति युक्त होती है वह है, यह बात विशेष रीतिसे ध्यानमें धरना आवश्यक है । भाग्य प्राप्त करना हो धन ऐश्वर्य बढ़ाना हो अथवा प्रभुका संधारण करना हो तो इस सबके लिये पुरुषार्थ करनेमें समर्थ धारणावती बुद्धिकी आवश्यकता है, इसके बिना उन्नति असंभव है । जो शब्दमें कैसा बुद्धिमत्ताका भाव है उसी प्रकार पुरुषार्थ-मयी कर्मकुशिलका भी भाव है यह भूलना नहीं चाहिये । यह भी जितनी होनी उतनी मनुष्यकी योग्यता बढ़ जाती है । जिस बुद्धिमें ज्ञानशक्ति पुरुषार्थ शक्तिके साथ संमिलित रहती है वह बुद्धि हमें चाहिये यह इच्छा इमां धियं शब्दोंमें है । प्रथम और द्वितीय मन्त्रोंमें जो बुद्धि और कर्मशक्ति विकसित करनेका उपदेश किया गया है वह बुद्धि यहां तृतीय मंत्रमें (इमां धियं वृषभः) इस बुद्धिमें दो इन शब्दोंमें मांगी है । यहां प्रश्न होता है कि कौनसी बुद्धि प्रथम द्वितीय मंत्रोंमें कही है ? इसका उत्तर उक्त मन्त्रोंके मननसे मिल सकता है । मनन करनेके लिये इससे पूर्व शब्दार्थ दिये ही हैं, परन्तु विशेष स्पष्टताके लिये यहां थोड़ासा स्पष्टीकरण करते हैं—

उपासना –(और उससे सिद्ध होनेवाली)– धारणा ।

मन्त्रका शब्दार्थ –(और उससे उद्दीपित होनेवाला)– बुद्धिका भाव ।

प्रथम मन्त्र ।

(अग्निं) तेजस्वी परन्तु (सोमं) शान्त मीठे स्वभाववाले (मित्रा-वरुणौ) मित्र दृष्टिसे सबको देखनेवाले और निष्पक्षपाती होकर सद्असद् देखनेवाले (पूषणं) पोषकवृत्ती (बृहस्पतिं) ज्ञानवानी देखने प्रार्थना मैं प्रातःकालमें करता हूं ।

(१)

(१) मैं तेजस्वी बनूंगा परन्तु (२) शांत और मीठा स्वभाव धारण करके (३) मित्रदृष्टिसे सब भूतमात्रको देखूंगा (४) निष्पक्षतासे सद्असद्की परीक्षा करूंगा (५) अन्योंको सहायक उदारता देकर उनका पोषण करूंगा और (६) अपने अन्दर ज्ञान बढ़ाऊंगा ।

(अश्विना) वेगवान् पनडुब्बे वाहिनीके और (हवं) शत्रुको रुलानेवाले (भगं) भाग्य पुत्र (इन्द्रं) शत्रुओंके दूर करनेवाले सामर्थ्यवान् प्रभुकी मैं प्रातःकालके समय प्रार्थना करता हूं।

द्वितीय मन्त्र।

(प्रातर्जितं) जिस विजयी (भगं) उस सुखदाता प्रभुकी मैं प्रातःकाल प्रार्थना करता हूं। इसी प्रभुकी भक्ति असुर और राक्षस, रंक और राजा सभी करते हैं और अपने भाग्यका भाग उसमें मांगते हैं क्योंकि वह (विभक्तां) सबका धारक और (अदितेः) बंधन रहित अवस्थाका (पु-त्रः) पालन-कर्ता और तारनकर्ता है।

(१) मैं अपना बल बढ़ाकर (२) शत्रुमें खूबने योग्य पराक्रम मुद्दतमुमेंपर करूंगा और (३) भाग्यवान् बनकर अपने सब शत्रुओंका दूर करके उत्तम ऐश्वर्यवान् बनूंगा।

(२)

मैं प्रातःकालमें अपने विजय सामर्थ्यका विचार करता हूं, उसके लिये आवश्यक उद्यत धारण करूंगा और परमेश्वर भक्ति-पूर्वक अपनी अधीनता और आधीनताकी रक्षाके लिये अहर्निश यत्न करूंगा तथा अपने अन्दर सब प्रकारसे पवित्रता बढ़ाता हुआ अपने अन्दर एकाग्रशक्ति भी बढ़ाऊंगा।

उपासनाके मन्त्रोंमें धारणा किस प्रकार होती है यह रीति बता दी है। पुत्र पिताके समान बनता है पिता करता है यह पुत्र करने अपना है यही बात परम पिताके पुत्रवात्सल्य संबंधसे होती है। क्योंकि इस जीवात्मरूप अमृत पुत्र ने परमात्माके समान सच्चिदानन्द स्वरूपको प्राप्त करना ही है उसी भावपर यह चल रहा है और इसीलिये यह उपासना करता है।

(१) परमेश्वर ज्ञानी है इतना वाक्य कहते ही मनमें भावना उठती है कि मैं भी ज्ञानी मनुष्य और अधिक ज्ञान प्राप्त करूंगा। (२) परमेश्वर बलशालक है इतना कहते ही मनमें भावना उठती है कि मैं भी शत्रुओंका निवारण करके शत्रुरहित हो जाऊं। (३) इसी प्रकार परमेश्वर ऐश्वर्यमय है इतना कहते ही मनमें भावना उठती है कि मैं भी ऐश्वर्य कमानेका पुरुषार्थ करूं। (४) इसी रीतिसे परमेश्वर इस सब विश्वका कर्ता है इतना कहते ही मनमें यह भावना उठती होती है कि मैं भी कुछ हुनर बनाऊं। इसी प्रकार सम्पूर्ण उपासनाका धारणासे संबंध है। यह तो बुद्धिमें स्थिर रूपसे विशिष्ट विचारकी भावना कम आती है उसका भाव भी है। पाठक अब समझ गये होंगे कि प्रथम और द्वितीय मंत्रकी उपासनासे जो धारणावती बुद्धि बनती है वह कर्ममयी ज्ञानपति कैसी है और वह मनुष्य मात्रका उद्धार करनेके लिये किस प्रकार उपयोगी हो सकती है।

इमां धियं शतसेनामजर्यं स्वर्षाम्। (सू. १६ मं १)

इस धारणावती बुद्धिको लेकर हमारी रक्षाके लिये इसको रक्षा कर।

इस तृतीय मंत्रके उपदेशमें कितना महत्वपूर्ण भाव है इसका विचार पाठक करें और इस संबंध मंत्रोंकी उपासनामय वाणीसे अपने उद्धारका मार्ग जानकर पाठक अपने अभ्युदय और निःश्रेयसका साधन करें।

सत्यका मार्ग।

तृतीय मन्त्रमें प्रनेतः और सुनयतः ये दो शब्द विशेष महत्वके हैं। प्र-नेता का अर्थ सत्यकी ओर ले जानेवाला नेता तथा सु-नयतः का अर्थ उसके मार्गसे सिद्धि प्राप्त करनेवाला है। ये दोनों शब्द परमात्माके गुण बता रहे हैं। परमात्मा सबका सच्चे सुखकी मार्गकी ओर ले जा रहा है और सत्यमार्गसे ही सबको सिद्धि देता है इसलिये ये दो शब्द परमात्मामें सार्थ होते हैं। ये दो शब्द मनुष्योंके वाचक भी होते हैं उस समय इनका अर्थ बड़ा उपयुक्त है। मनुष्य तथा मनुष्यके नेता इन शब्दोंको अपने आचरणसे अपनेमें चरितार्थ करें। मनुष्योंके नेता अपने अनुयायियोंको सत्यके मार्गसे ले जावें और सिद्धि लिये उसके योग मार्गसे ही अपना काम करें और यश प्राप्त करें। ऐसे सच्चे मार्गसे सिद्धि प्राप्त करनेवाले मनुष्योंसे ही नृ अथवा नर कहते हैं और ऐसे श्रेष्ठ सच्चे नेताओंके साथ रहनेसे ही मनुष्यको मनुष्योंके साथ रहनेका सुख प्राप्त हो सकता है इसलिये कहा है-

सुमितिः नृपतेः स्याम। (सू. १६ मं १)

अच्छे मनुष्योंके साथ होनेसे हम मनुष्य बनेंगे। यहांपर नृपतेः शब्द मनुष्यार्थ पितृमान् शब्दके समान अर्थवाला है जैसा - (मनुमान्) प्रशंसनीय गुणवाली माताका पुत्र (पितृमान्) प्रशंसनीय गुणवाले पिताका पुत्र इसी प्रकार (नृमान् नृपान्) प्रशंसनीय श्रेष्ठ मनुष्योंका पुत्र। नहीं तो हरएक मनुष्यके साथ कुछ भी मनुष्य रहते ही हैं। चोरोंके साथ भी उनके साथी रहते ही हैं तथापि उसे चोरका नृमान् नहीं कहा जा सकता। अच्छे मनुष्योंके साथ रहनेसे ही मनुष्यका अभ्युदय होना संभव है इसलिये 'अपने साथ अच्छे मनुष्य रहें' ऐसी इच्छा यहां प्रकट की गई है। इस प्रकार

अन्य मनुष्योंकी साथ मिलनेसे निःसंदेह मनुष्योंका कल्याण ही सकता है।

देवोंकी सुमति।

हम प्रातःकाल दोपहरके समय और सायंकाल ऐसे कर्म करें, कि जिससे हम (मघवद्भ्यः) भाग्यवान बनते जांय। तथा हम देवोंकी उत्तम मतिमें रहें। (मे ४) यह चतुर्थ मंत्रका कथन है। यहां दिन भर पुरुषार्थ प्रबल करनेकी सूचना है। प्रातःकाल क्या दोपहरके समय क्या और सायंकालके समय क्या अपना ऐश्वर्य बढानेका पुरुषार्थ करना चाहिये। सत्यमार्गसे चलते हुए ऐसे कर्म करना चाहिये कि जिससे भाग्य प्राप्त हो।

जहां भाग्य प्राप्त होता है वहां मनुष्यमें कार्य करनेका उत्साह भी रहता है और उस तथा अन्यान्य मार्गोंका विचार भाग्यकी पुंजीसे रह नहीं सकता इसलिये भाग्यप्राप्तिका उपाय करनेका उपदेश करनेवाला इस मंत्रमें कहा है कि—

यथा दधाता सुमतौ स्याम। (सू. १६ मं ४)

हम देवोंकी सुमतिमें रहें। अर्थात् भाग्य प्राप्त करनेके समय हमसे ऐसा आचरण हो कि जिससे देव असंतुष्ट न हों हमारे ऊपर अप्रसन्न न हों प्रत्युत हमारे विषयमें उत्तम भाव ही उनके मनमें बना रहे। हमसे ऐसे कर्म हों कि जिनसे वे सदा संतुष्ट रहें। इस मंत्रमें यह सावधानीकी सूचना अत्यंत महत्त्व रखती है, क्योंकि भाग्य और ऐश्वर्य ऐसे पदार्थ हैं कि जो प्राप्त होनेसे अथवा जिनकी प्राप्तिकी इच्छासे मनुष्य उन्मादपर रहना कठिन है। परन्तु परंतु उन्मादपर मनुष्योंको चलते हुए ही उनको भाग्य देना अभीष्ट है इसलिये जहां जिनकी संभावना होती है वहां ही इस प्रकारकी सावधानीकी सूचना दी होती है। ताकि मनुष्य न गिरें और भाग्य भी प्राप्त करें। पंचम मंत्रमें—

स नो भगः पुरएता भवेह। (सू १६ मं ५)

वह भगवान ही हमारा अगुवा बने यह उपदेश करता है यह भी इसी तात्पर्य है कि मनुष्य परमात्माको ही अपना अन्तर्यामी समझ और अपने आपको उसके अनुयायी समझे और उसीके भरोसेमें कर्म करते हुए अपनी उन्नतिके कार्य करते हुए अपनी उन्नति साध करें। निष्कर्ष यथानंद इतना यह उपदेश है कर्तव्य परमेश्वर अपना अन्तर्यामी है यह विश्वास मनुष्योंको निरालस बहुत प्रकारसे बना सकता है।

अहिंसाका मार्ग।

यह मंत्रमें अपने भाग्य बनाने उपदेश है यह अपने मार्ग देखनेके लिये अपर शब्दका अर्थ ही देखना चाहिये—

अपेहि— (अप-आहि) दुष्टता, यहां देखने नहीं है, जहां पीडा भाव है जहां हिंसा नहीं है, जहां दूसरोंका घातपात करनेका भाव नहीं है, जहां दूसरोंसे अन्याय अपना स्वार्थ साधन करनेका विचार नहीं है।

ये अप-आहि शब्दके अर्थ इस मार्गका लक्षण बता रहे हैं। इस अहिंसाके मार्गसे आना और पंचम मंत्रका परमेश्वरको अपना अगुवा बनाना, चतुर्थ मंत्रोक्त देवोंकी सुमतिमें रहना, और तृतीय मंत्रोक्त उक्त मार्गसे सिद्धि प्राप्त करना' एक ही बात है। इस दृष्टिसे ये चारों मंत्र भिन्न भिन्न उपदेशसे एक ही आशय बता रहे हैं। पाठक यहां देखें कि इस सूक्तमें यह एक ही बात कितने विविध प्रकारोंसे कही है, इससे स्पष्ट हो सकता है कि वेदका कथन अहिंसामय सत्कर्मसे लोगोंको चलानेके विषयमें कितना अधिक है।

गौवें और घोडे।

इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें गौओं और घोडोंके लाभ हमें पुनः पुनः ऐसा कहा है। चतुर्थ मंत्रमें भी यही बात फिर दुहराई है। इससे हमें गौवें और घोडे रखना बहुत ही अधिक मूल्यवान है यह बात सिद्ध होती है।

उक्त मंत्रमें (पूषे दुहानाः) पौष्टिक दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीता) सब प्रकार दुग्धपान करानेवाली यह गायका वर्णन हमारेके समय दूधका दोहन करना दोहन होते ही ताजा दूध पीना, मक्खनसे घी तैयार करना इत्यादि बातोंका सूचक है। हमें गौओंको इसीलिये रखना होता है कि उनका ताजा दूध पीनेके लिये मिले और उनके दूधके दहीसे ताजा निकाला हुआ मक्खन कढकर उसका ताजा ही घी बनाकर खाने मिला जाय। ऐसे घीको वैद्यकीय भाषामें पूत कहते हैं। यह पूत खाने या पीनेसे बुद्धिकी पुष्टि होती है और इसके हमेशा सेवन करनेसे बुद्धिका विनाश भी होती है।

भ्रमण।

इस प्रकार दुग्धपान करनेके पश्चात् घोडोंपर सवार होकर भ्रमणके लिये बाहर जाना चाहिये और घण्टा दो घण्टे घोडेकी सवारी करके पश्चात् घर आकर अन्य कार्योंमें लगना चाहिये। बहुत लोग पाठक इस होंगे जिनका घरमें पर्याप्त गौका ताजा दूध पीनेके लिये मिलता हो और अपने उत्तम आहार विहार होकर सवारके लायक बलवान घोडे भ्रमण करनेके लिये तैयार हो। आजका समय विपरीत है। ऐसे समयमें ऐसी बेहद्द रीतिसे देवन करनेमें हो सकता नहीं है।

अन्य मनुष्योंकी साथ मिलनेसे कि जिससे मनुष्योंका कल्याण हो सकता है।

देवोंकी सुमति।

हम प्रातःकाल दोपहरके समय और सायंकाल ऐसे कर्म करें, कि जिससे हम (मघवन्तः) भाग्यवान बनते जांय। तथा हम देवोंकी उत्तम मतिमें रहें। (म ४) यह चतुर्थ मंत्रका कथन है। यहां दिन भर पुरुषार्थ प्रयत्न करनेकी सूचना है। प्रातःकाल क्या दोपहरके समय क्या और सायंकालके समय क्या अपना ऐश्वर्य बढानेका पुरुषार्थ करना चाहिये। सन्मार्गसे चलते हुए ऐसे कर्म करना चाहिये कि जिससे भाग्य प्राप्त हो।

यहां भाग्य प्राप्त होना है वहां मनुष्यमें कार्य उत्पन्न हो सकता है और सत् तथा असत् मार्गका विचार भाग्यकी ऐसे रह नहीं सकता इसलिये भाग्यप्राप्तिका उत्तम करनेका उपदेश करनेवाले इस मंत्रमें कहा है कि—

यद देवानां सुमतौ स्याम। (ऋ, १६ मं ४)

हम देवोंकी सुमतिमें रहें। अर्थात् भाग्य प्राप्त करनेके समय इससे ऐसा आचरण हो कि जिससे देव असंतुष्ट न हों, हमारे उपर अप्रसन्न न हों प्रत्युत हमारे विषयमें उत्तम भाव ही उनके मनमें सदा रहे। हमसे ऐसे कर्म हों कि जिससे वे सदा संतुष्ट रहें। इस मंत्रमें यह सावधानीकी सूचना अत्यंत महत्व रखती है, क्योंकि भाग्य और ऐश्वर्य ऐसे पदार्थ हैं कि जो प्राप्त होनेसे अथवा जिनकी प्राप्तिकी इच्छासे मनुष्य सुमार्गपर रहना कठिन है। परन्तु वेदकी सुमार्गपरसे मनुष्योंको चलाते हुए ही उनको भाग्य देना अभीष्ट है इसलिये यहां फिरनेकी संभावना होती है वहां ही इस प्रकारकी सावधानीकी सूचना की होती है। ताकि मनुष्य न फिरें और भाग्य भी प्राप्त करें। पंचम मंत्रमें—

स नो भगाय पुरएता भवेह। (ऋ १६ मं ५)

वह भगवान् ही हमारा अगुवा बने यह उपदेश कहा है वह भी इसी उद्देशसे है कि मनुष्य परमात्माको ही अपना अग्रगामी समझे और अपने आपको उसके अनुयायी समझे और उसीके मार्गपर कर्म करते हुए अपनी उन्नतिके कार्य करते हुए अपनी उन्नतिके कार्य करें। विनाशसे बचानेके हेतुसे यह उपदेश है। तथैव परमेश्वर अपना निरीक्षक है यह विश्वास मनुष्योंको विनाशसे बहुत प्रकारसे बचा सकता है।

अहिंसाका मार्ग।

यह मंत्रमें अभयके मार्गपर चलनेका उपदेश है यह अभयका मार्ग देखनेके लिये अभय शब्दका अर्थ ही देखना चाहिये—

अभयम्— (अ-भया) अकुटिलता जहां छेदापन नहीं है, जहां सीधा भाव है जहां हिंसा नहीं है, जहां दूसरोंका घातपात करनेका भाव नहीं है, जहां दूसरोंके धन लेकर अपना स्वार्थ साधन करनेका विचार नहीं है।

ये अ-भय शब्दके अर्थ इस मार्गका सहज बता रहे हैं। इस अहिंसाके मार्गसे जाना और पंचम मंत्रका परमेश्वरको अपना अगुवा बनाना, चतुर्थ मंत्रोक्त देवोंकी सुमतिमें रहना। और तृतीय मंत्रोक्त सत्य मार्गसे सिद्धि प्राप्त करना' एक ही बात है। इस दृष्टिसे ये चारों मंत्र भिन्न भिन्न उपदेशसे एक ही आशय कह रहे हैं। पाठक यहां देखें कि इस सूक्तमें एक ही बात कितने विविध प्रकारोंसे कही है, इससे स्पष्ट हो सकता है कि वेदका उद्देश अहिंसामय सन्मार्गसे लोगोंको चलानेके विषयमें कितना आग्रह है।

गौवें और घोडे।

इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें गौओं और घोडोंके साथ हमें पुष्ट कर ऐसा कहा है। उत्तम मंत्रमें भी यही बात फिर दुहराई है। इससे हमें गौवें और घोडे रहना वेदकी दृष्टिसे कल्याण मूलक है यह बात सिद्ध होती है।

उत्तम मंत्रमें (घृतं दुहाना:) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीता:) सब प्रकार दुग्धपान करनेवाली यह उषाका वर्णन सवेरेके समय दूधका दोहन करना दोहन होते ही ताजा दूध पीना मक्खनसे घी तैयार करना इत्यादि बातोंका सूचक है। हमें गौओंको इसीलिये रखना होता है कि उनका ताजा दूध पीनेके लिये मिले और उनके दूधके दहीसे ताजा निकाला हुआ मक्खन लेकर उसका ताजा ही घी तैयार लेकर लिया जाय। ऐसे घीको वेदमंत्रोंमें घृत कहते हैं। यह घृत खाने या पीनेसे शरीरकी पुष्टि होती है और इससे इन्द्रियों हवा नीरोग भी होती है।

भ्रमण।

इस प्रकार दुग्धपान करनेके पश्चात् घोडोंपर सवार होकर भ्रमणके लिये बाहर जाना चाहिये और कन्धा दो घण्टे घोडेकी सवारी करके पश्चात् घर आकर अपने कार्यमें लगना चाहिये। बहुत थोडे पाठक ऐसे होंगे जिनको सवेरे बरफी लोहा तथा दूध पीनेके लिये मिलता हो और अपने उत्तम घोडेपर सवार होकर सवेरेके शान्तिप्रद वायुमें भ्रमण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता हो। आजका समय विपरीत है। ऐसे समयमें ऐसी वैदिक रीतिका देखना आश्चर्यमें डाल रखना चाहिये।

कृषिसे सुख-प्राप्ति ।

(१७)

(ऋषिः — विश्वामित्रः । देवता — सीता)

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १ ॥
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन् ॥ २ ॥
लाङ्गल पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ ३ ॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ४ ॥

अन्वय— (देवेषु धीराः कवयः) देवोंमें बुद्धि रखनेवाले कवि लोग (सुम्नयौ सीरा युञ्जन्ति) सुख प्राप्त करनेके लिये हलोंको जोतते हैं और (युगा पृथक् वितन्वते) जुओंको अलग अलग करते हैं ॥ १ ॥

(सीराः युनक्त) हलोंको जोतो (युगा वितनोत) जुओंको फैलाओ (कृते योनौ इह बीजं वपत) बने हुए खेतमें यहांपर बीज बोओ । (विराजः श्नुष्टिः नः सभराः असत्) अन्नकी उपज हमारे लिये भरपूर होवे । (सृण्यः इत् पक्वं नेदीयः आ ययन्) हंसुवे भी परिपक्व धान्यको हमारे निकट लावें ॥ २ ॥

(पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु लाङ्गलं) पजके समान कठिन चलानेके लिये सुखकारक लकड़ीके मूठवाला हल (गां अविं) गौ और बकरी (प्रस्थावत् रथवाहनं) शीघ्रगामी रथके वाहे या बैल (पीवरीं च प्रफर्व्यम्) पुष्ट जौ (इत् उद्वपतु) निश्चयसे देवे ॥ ३ ॥

(इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु) इन्द्र हलकी रेखाको पकड़े (पूषा तां अभिरक्षतु) पूषा उसकी रक्षा करे । (सा पयस्वती नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां) वह हलकी रेखा दूध पुष्ट होकर हमें आगे आनेवाले वर्षोंमें उत्तरोत्तर प्रधान करे ॥ ४ ॥

भावार्थ— बुद्धिमानी देवताओंकी शक्तियोंपर विश्वास रखनेवाले कवि लोग विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये हलोंको जोतते हैं अर्थात् कृषि करते हैं और जुओंको अच्छा स्थानपर बांध देते हैं ॥ १ ॥

हे मानवो ! तुम हल आनो जुओंका फैलाओ अच्छी प्रकार भूमि तैयार करनेके बाद उसमें बीज बोओ । इससे अन्नकी उत्तम उपज होगी बहुत धान्य उत्पन्न होगा और परिपक्व होनेपर बहुत धान्य प्राप्त होगा ॥ २ ॥

हलको लोहेका कठिन फल लगाया जावे और लकड़ीकी मूठ बनवानेके लिये दी जावे यह हल चलानेके समय सुखकर हो । घर हल ही गौ-बैल भेड़-बकरी घोड़ा चारों ओर पुष्ट आदिसे उत्तम धन और धान्यादि देकर पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

हल अच्छी दृष्टिसे हलकी सुंदर हुई रेखाको पकड़े और धान्य पोषक जल बकरी उत्तम रक्षा करे । वह मुझे हमें अति-शय उत्तम दूध पुष्ट धान्य देती रहे ॥ ४ ॥

सुन सुफाला वि तुदन्तु भूमिं सुन कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥ ५ ॥
सुन वाहाः सुन नरः सुन कृषतु लाङ्गलम् ।
सुनं वरत्रा बध्यन्तां सुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ६ ॥
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यदिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ७ ॥
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥ ८ ॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥ ९ ॥

अर्थ— (सु-फालाः भूमिं सुषं वि तुदन्तु) सुन्दर हलके फल भूमिको सुखपूर्वक खोदें। (कीनाशाः सुषं वाहान् अनु यन्तु) किसान सुखपूर्वक बैलोंके पीछे चलें। (शुनासीरौ) हे वायु और हे सूर्य! तुम दोनों (हविषा तोशमानौ) हमारे हवनसे तृप्त होकर (अस्मै सुपिप्पलाः ओषधीः कर्तम्) इस किसानके लिये उत्तम फल युक्त धान्य उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

(वाहाः शुनं) बैल सुखी हों (नरः शुनं) मनुष्य सुखी हों (लाङ्गलं शुनं कृषतु) हल सुखसे भूमि खोदे। (वरत्रा शुनं बध्यन्तां) रस्सियां सुखसे बांधी जांय (अष्ट्रां शुनं उदिङ्गय) चाबुक सुखसे ऊपर चलाओ ॥ ६ ॥

हे (शुनासीरौ) वायु और सूर्य! (इह स्म मे जुषेथां) यहां मेरे हवनका सत्कार करें। (यत् पयः दिवि चक्रथुः) जो जल आकाशमें तुमने बनाया है (तेन इमां भूमिं उप सिञ्चतं) उससे इस भूमिको सींचते रहो ॥ ७ ॥

हे (सीते) उत्तम हुई भूमि! (त्वा वन्दामहे) तेरा वन्दन करते हैं। हे (सुभगे) ऐश्वर्यवाली भूमि! (अर्वाची भव) हमारे सन्मुख हो। (यथा नः सुमनाः असः) जिससे तू हमारे लिये उत्तम मनवाली हमें और (यथा नः सुफला भुवः) जिससे हमें उत्तम फल देनेवाली हमें ॥ ८ ॥

(घृतेन मधुना समक्ता सीता) घी और मधुरसे उत्तम प्रकार सिंचित की हुई उत्तम भूमि (विश्वैः देवैः मरुद्भिः अनुमता) सब देवों और मरुतों द्वारा अनुमोदित हुई है (सीते) उत्तम भूमि! (सा घृतवत् पिन्वमाना) वह घीसे सिंचित हुई तू (नः पयसा अभ्याववृत्स्व) हमें दूधसे चारों ओरसे पुष्ट कर ॥ ९ ॥

भाषार्थ— हमारे सुन्दर हल भूमिको सुखसे खोदें। किसान बैलोंके पीछे चलें। हमारे हवनसे प्रसन्न हुए वायु और सूर्य इस हविसे उत्तम फलवाली रस युक्त ओषधियां देवें ॥ ५ ॥

बैल सुखी रहें सब मनुष्य आनन्दित हों। उत्तम हल चमकदार आवाजसे भूमि को खोदे। रस्सियां वहां जैसी जोरसे चाहिये वैसी बांधी जांय और आवश्यकता होनेपर चाबुक ऊपर उठाया जाय ॥ ६ ॥

वायु और सूर्य मेरे हवनका स्वीकार करें और जो जल आकाशमण्डलमें है उसकी वृष्टि इस पृथ्वीको सिंचित करें ॥ ७ ॥

भूमि आनन्द देनेवाली है इसलिये हम इसका आदर करते हैं। यह भूमि हमें उत्तम धान्य देती रहे ॥ ८ ॥

जब भूमि घी और मधुरके समान रीतिसे सिंचित होती है और वायु आदि देवोंकी अनुकूलता उसको मिलती है तब वह हम सबको मधुर रस युक्त धान्य और फल देती रहे ॥ ९ ॥

कृषिसे धान्यकी वृद्धि।

कृषिसे धान्यकी वृद्धि होती है। भूमिकी अवस्था वायु और पृथिवी परिस्थिति मनुष्यकी अनुकूलता जो जानते हैं वे कृषि करके अन्न उपजा सकते हैं और सुखी हो सकते हैं।

सबसे पहले किसान इस बातें इसका भूमी अच्छी प्रकार उखाड़ी जाय इसकी लकीरें ठीक की जाय और उन लकीरोंके अंदर बीज बोया जाय ऐसा करनेसे उत्तम धान्य पैदा हो सकता है।

जब इससे उत्तम कृषि की जाती है तब धान्य भी उत्तम उत्पन्न होता है घास भी विपुल मिलता है और सब पशु तथा मनुष्य बहुत पुष्ट हो जाते हैं।

इससे सुधरी हुई भूमिकी (इन्द्रः सीतां निगृह्णातु) वृष्टि करनेवाला इन्द्र देव अपने जलसे पक्के पश्चात् उसका उत्तम रक्षा (पूषा) सूर्य अपनी किरणोंसे करे। इस प्रकार वृष्टि और सूर्यप्रकाश योग्य प्रमाणमें मिलते रहे तो उत्तम कृषि होगी और धान्यादि बहुत प्रमाणमें प्राप्त होगा।

धान्य बोनेके पूर्व हवन।

पञ्चम मंत्रमें उत्तम कृषि होनेके लिये प्रारंभमें जरूर हवन करनेका संकेत है। जो धान्य बोना है उसका हवन करना चाहिये और हवनके लिये घृतादि अन्य पदार्थ भी अवश्य चाहिये ही। इस प्रकारके हवनसे वातावरण शुद्ध होता है और शुद्ध कृषिसे शुद्ध धान्य उत्पन्न होता है। इस हवनसे दूसरी एक बात स्वयं हो जाती है वह यह है कि जिसका हवन करना होता है वही बोना होता है इस नियमसे हवनमें विषैले तमाकू आदि घातक पदार्थ बोनेकी कल्पना ही कम हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि यदि बोनेके पूर्व हवनकी वैदिक प्रथा जारी की जाय तो तमाकू जैसे हानिकारक पदार्थ उत्पन्न करनेकी कल्पना इतना घात करनेके लिये उत्पन्न ही नहीं होवे और उत्तम धान्यादिकी विपुल उत्पत्ति होकर सार्वत्रिक आरोग्य कल्याण होगा।

खादके लिये घी और शहद!!

सप्तम मंत्रमें (घृतेन मधुना पयसा सभरका सीता) घी शहद और दूधका खाद वनस्पतीमोंको डालनेका उपदेश है। वास्तवमें तो ये पदार्थ मनुष्योंको खानेके लिये भी नहीं मिलते तो खादके लिये अल्प प्रमाणमें ही कहीं न कहीं कहां मिलेंगे? परंतु शुद्ध पौष्टिक अन्न उत्पन्न करनेके लिये घृत भी और शहदका खाद अत्यंत लाभदायक है यह बात सत्य है।

ऐतिहासिक उदाहरण।

पूनाके पेशवाओंके समयमें कई साल इस पंचामृतका खाद देकर तैयार किये थे उनमेंसे एक आमका वृक्ष इस समयतक जीवित है और ऐसे मधुर और स्वादु फल दे रहा है कि उसका वर्णन शब्दोंसे हो नहीं सकता!!! पंचामृत (दूध दही घी शहद और मिश्री) के खादसे जो आम पुष्ट होता हो उसके फल भी वैसे ही अद्भुत अमृत रूप मधुरस होंगे इसमें संदेह ही क्या है यह प्रत्यक्ष उदाहरण है तथा वर्तमान एक पण्डितने आम कृषि शास्त्रके अनुसार दूधका खाद देकर एक वर्ष जमीनकी कृषि की थी उससे इतना परिपुष्ट और स्वादु धान्य उत्पन्न हुआ कि उसकी साधारण धान्यसे तुलना ही नहीं हो सकती।

यह वैदिक कृषि शास्त्रका अत्यंत महत्वका विषय है जो सभी पाठक इसके प्रयोग कर सकते हैं अवश्य करके देखें। साधारण अनेक क्रिम ये प्रयोग करना अशक्य ही है क्योंकि क्रिम खोपोंका पीनेके लिये दूध नहीं मिल सकता ये खादके लिये दूध दही घी शहद और मिश्री कहांसे ले आवेंगे।

पाठक ये वचन पढ़ें और वैदिक कालकी कृषिकी वनसे ही कल्पना करें और सब ही वनमें उसका आस्वाद लेनेका यत्न करें!!

गोरक्षाका समय।

वैदिककाल गोरक्षा काल था इसलिये पार्थिव विपुल थी और उस कारण खादके लिये भी दूध मिलता था। परंतु आज अन्नार्थियोंके मतलबके लिये लाखोंकी संख्यामें गौवें कटती हैं इसलिये पीनेके लिये भी दूध नहीं मिलता। यह कालका परिवर्तन है। परंतु अब देखना है कि वैदिक पद्धतीके अन्नसे आरोग्यकाल कैसा आता है।

घृत सुफाला वि तुदन्तु भूमिं घृत कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
घृतासीरा इरिणा वाह्यमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥ ५ ॥
घृत वाहाः घृत नरः घृत पशवु लाङ्गलम् ।
घृत वरत्रा वध्यन्तां घृतमष्ट्रासुदिङ्गय ॥ ६ ॥
घृतासीरिह स्म मे सुवेथाम् ।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ७ ॥
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला सुर्वः ॥ ८ ॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥ ९ ॥

अर्थ— (घृत-फालाः भूमिं घृत वि तुदन्तु) घृतपर हलके फाल भूमिको सुखपूर्वक खोदें। (कीनाशाः घृतं वाहान् अनु यन्तु) किसान सुखपूर्वक बैलोंके पीछे चलें। (घृतासीरौ) हे वायु और हे सूर्य! तुम दोनों (इरिणा वोह्यमानौ) हमारे हलसे युक्त होकर (अस्मै सुपिप्पलाः ओषधीः कर्तम्) हम किसानके लिये उत्तम फल युक्त धान्य उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

(वाहाः घृत) बैल घृतसे (नराः घृतं) मनुष्य घृतसे (लाङ्गलं घृतं पशवः) हल घृतसे पुष्ट करे। (वरत्रा घृत बध्यन्तां) रस्सियां घृतसे बांधी जांय (अष्ट्रां घृतं उदिङ्गय) चाबुक घृतके ऊपर चला ॥ ६ ॥

हे (घृतासीरौ) वायु और सूर्य! (इह स्म मे सुवेथां) यह मेरे हवनको स्वीकार करें। (यत् द्यवः दिवि चक्रथुः) जो यज्ञ आकाशमें तुमने बनाया है (तेन इमां भूमिं उप सिञ्चत) उससे इस भूमिको सींचते रहो ॥ ७ ॥

हे (सीते) खेती हुई भूमि! (त्वा वन्दामहे) तेरा वन्दन करते हैं। हे (सुभगे) ऐश्वर्यवती भूमि! (अर्वाची भव) हमारे सम्मुख हो। (यथा नः सुमनाः असः) जिससे तू हमारे लिये उत्तम मनवाली होवे और (यथा नः सुफला घुवः) जिससे हमें उत्तम फल देनेवाली होवे ॥ ८ ॥

(घृतेन मधुना समक्ता सीता) घी और मधुरसे उत्तम प्रकार सिंचित की हुई खेती भूमि (विश्वैः देवैः मरुद्भिः अनुमता) सब देवों और मरुतों द्वारा अनुमोदित हुई, हे (सीते) खेती भूमि! (सा घृतवत् पिन्वमाना) वह घीसे सिंचित हुई तू (नः पयसा अभ्याववृत्स्व) हमें दूधसे चारों ओरसे युक्त कर ॥ ९ ॥

भाषार्थ— हलके फाल और भूमिको सुखदायी करें किसान बैलोंके पीछे चलें। हमारे हवनसे प्रसन्न हुए वायु और सूर्य इनसे उत्तम फलवाली रस युक्त ओषधियां देवें ॥ ५ ॥

बैल सुखी रहें सब मनुष्य आनन्दित हों उत्तम हल चलाकर आनंदसे खेती की जाय। रस्सियां वहां जैसी बांधना चाहिये वैसी बांधी जांय और आवश्यकता होनेपर चाबुक ऊपर चलाया जाय ॥ ६ ॥

वायु और सूर्य मेरे हवनको स्वीकार करें और जो यज्ञ आकाशमंडलमें है उसको वृष्टिसे इस पृथ्वीमें सिंचित करें ॥ ७ ॥

भूमि माता देनेवाली है इसलिये हम इसका आदर करते हैं। यह भूमि हमें उत्तम धान्य देती रहे ॥ ८ ॥

जब भूमि घी और मधुरसे योग्य रीतिसे सिंचित होती है और अग्नि आदि देवोंकी अनुकूलता इसको मिलती है, तब यह हमें उत्तम मधुर रस युक्त धान्य और फल देती रहे ॥ ९ ॥

कृषिसे मानवकी वृद्धि।

कृषिसे मानवकी वृद्धि होती है। भूमिकी अवस्था वायु और वृष्टिकी परिस्थिति मनुष्यकी अनुकूलता को जानते हैं वे कृषि करके श्रम उठा सकते हैं और सुखी हो सकते हैं।

सबसे पहले किसान इस बातें, इसकी भूमी अच्छी प्रकार तयारी आर इसकी मर्यादें ठीक की जाय और उन मर्यादोंके अंदर बीज बोया जाय ऐसा करनेसे उत्तम धान्य पैदा हो सकता है।

जब इससे उत्तम कृषि की जाती है तब धान्य भी उत्तम उत्पन्न होता है पास भी विपुल मिलता है आर सब पशु तथा मनुष्य बहुत पुष्ट हो जाते हैं।

इससे खुदी हुई भूमिको (इन्द्रः सीताः निगृह्णातु) कृषि करनेवाला इन्द्र देव अपने जलसे पकडे पश्चात् उसको उत्तम रक्षा (पूषा) सूर्य अपनी किरणोंसे करे। इस प्रकार वृष्टि और सूर्यप्रकाश योग्य प्रमाणमें मिलते रहे तो उत्तम कृषि होती और धान्यादि बहुत प्रमाणमें प्राप्त होगा।

धान्य बोनेके पूर्व मंत्रन।

प्रथम मंत्रमें उत्तम कृषि होनेके लिये प्रारंभमें खेतमें हवन करनेका कहा है। जो धान्य बोना है उसका हवन करना चाहिये और हवनके लिये घृतादि अन्य पदार्थ तो अवश्य चाहिये ही। इस प्रकारके हवनसे जलवायु शुद्ध होता है और शुद्ध कृषिसे शुद्ध धान्य उत्पन्न होता है। इस हवनसे दूसरी एक बात स्वयं हो जाती है वह यह है कि जितना हवन करना होता है वही बोना होता है इस नियमसे हवनमें विविध क्रमादु आदि पाठक पदार्थ बोनेकी क्रमशः कम हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि यदि बोनेके पूर्व हवनकी वैदिक प्रथा चालू की जाय तो तमाकू जैसे हानिकारक पदार्थ जलानेमें जलशक्ति हवन करनेके लिये उपयुक्त ही नहीं होंगे और उत्तम धान्यादिकी विपुल उत्पत्ति होकर आर्थिक आपत्ति समाप्त होगा।

खाद्के लिये घी और शहद!!

सप्तम मंत्रमें (घृतेन सीता मधुना पयसा सहसका सीता) घी शहद और दूधका खाद वनस्पतीयोंको डालनेका उपदेश है। आजकल तो ये पदार्थ मनुष्योंको खानेके लिये भी नहीं मिलते तो खादके लिये अल्प प्रमाणमें ही क्यों न सही कहां मिलेंगे? परंतु उत्तम पौष्टिक फल उत्पन्न करनेके लिये दूध घी और शहदका खाद अतीव आवश्यक है, यह बात सत्य है।

ऐतिहासिक उदाहरण।

पूनाके पेशवाओंके समयमें कई ग्राम इस पंचामृतका खाद देकर तैयार किये थे उसमेंसे एक ग्रामका इस इस समयतक नोंदित है और ऐसे मधुर और स्वादु फल दे रहा है कि उसका वर्णन शब्दोंसे हो नहीं सकता!!! पंचामृत (दूध दही घी शहद और मिश्री) के खादसे जो ग्राम पुष्ट होता हो उसके फल भी वैसे ही अद्भुत अपूर्व रस अवश्य होंगे इसमें संदेह ही क्या है यह प्रत्यक्ष उदाहरण है तथा बाईके एक पण्डितने आज कृषि शास्त्रके अनुसार दूधका खाद देकर एक वर्ष तयारीकी कृषि की तो उसने इतना परिपुष्ट और स्वादु धान्य उत्पन्न हुआ कि उसकी साधारण धान्यसे तुलना ही नहीं हो सकती।

यह वैदिक कृषि शास्त्रका अतीव महत्वका विषय है जो सभी पाठक इसके प्रयोग कर सकते हैं अवश्य करके देखें। साधारण जनोंके लिये ये प्रयोग करना असक्य ही है क्योंकि जिन बेचारोंको पीनेके लिये दूध नहीं मिल सकता वे खादके लिये दूध दही घी शहद और मिश्री कहांसे लावेंगे।

पाठक ये वर्णन पढें और वैदिक कालकी कृषिकी मनसे ही कल्पना करें और मन ही मनमें उसका आस्वाद लेनेका कष्ट करें!!

गोरक्षाका समय।

वैदिककालमें गौकी रक्षाका काम था इसलिये गायें विपुल थीं और दूध खाने पीने के लिये भी दूध मिलता था। परंतु आज अन्नादोंके संग्रहके लिये सरकारी योजनायें होती हैं इसलिये पीनेके लिये भी दूध नहीं मिलता। यह कालका परिवर्तन है। यहां अब देखना है कि वैदिक पद्धतीसे भविष्यकाल कैसा आता है।

वनस्पति ।

(१८)

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — वनस्पतिः)

इमां खनाम्योषधिं वीरुधा बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥
उच्छमनपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥ २ ॥
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन्रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ३ ॥
उत्तरादहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ४ ॥
अहमस्मि सहमाना त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५ ॥
अभि त्वौषधे सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्से गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥

अर्थ— (इमां बलवत्तमां वीरुधां ओषधिं खनामि) इस बलवाली ओषधि वनस्पतिको मैं खोदता हूं । (यया सपत्नीं बाधते) जिससे सपत्नीको हटाया जाता है और (यया पतिं विन्दते) जिससे पतिको वश किया जाता है ॥ १ ॥

हे (उच्छमनपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति) विस्तृत पानवाली सौभाग्यवती देवों द्वारा सेवित बलवती ओषधि ! (मे सपत्नीं परा णुद) मेरी सपत्नीको दूर कर आर (मे केवलं पतिं कृधि) मुझे केवल पति कर दे ॥ २ ॥

हे वनस्पते ! (ते नाम नहि जग्राह) तेरा नाम भी मैंने लिया नहीं है अब तू (अस्मिन् पतौ नो रमसे) इस पतिमें रममाण नहीं होगी । अब मैं (परां सपत्नीं परावतं गमयामसि) अन्य सपत्नीको दूर करती हूं ॥ ३ ॥

हे (उत्तरे) मेरी पुत्रवती ओषधि ! (अहं उत्तरा) मैं अधिक मेढ हूं (उत्तराभ्यः इत् उत्तरा) मेढोंसे भी मेढ हूं । (मम या अधरा सपत्नी) मेरी जो नीच सपत्नी है (सा अधराभ्यः अधरा) वह नीचोंसे नीच है ॥ ४ ॥

(अहं सहमाना अस्मि) मैं विजयी हूं और हे ओषधि ! (अयो त्वं सासहिः असि) तू भी विजयी है । (उभे सहस्वती भूत्वा) हम दोनों बलवती बनकर (मे सपत्नीं सहावहै) मेरी सपत्नीको जीत लेवें ॥ ५ ॥

(ते अभि सहमानां अधां) तेरे चारों ओर मैंने इस विजयिनी वनस्पतिको रखा है (ते उप सहीयसीं अधां) तेरे नीचे इस बलवत्तिनी वनस्पतिको रखा है । अब (ते मनः मां अनु प्र धावतु) तेरा मन मेरे पीछे दौडे । (वत्से गौः इव धावतु) बछडेकी ओर दौडती है और (वारि इव पथा) जैसा जल अपने मार्गसे दौडता है ॥ ६ ॥

सापत्नभावका भयंकर परिणाम।

इसका भाष्यमें सुयोग है इसलिये देनेकी आवश्यकता नहीं है।

अनेक स्त्रियां करनेसे घरमें कलह होते हैं सापत्नभाव स्वभाव होनेसे स्त्रियोंमें परस्पर द्वेष बढ़ते हैं संतानोंमें भी वही कलहादि बढ़ता है इसलिये ऐसे परिवारमें सुख नहीं मिलता है। यह बात इस सूक्तमें कही है। इस सूक्तका मुख्य तात्पर्य यही है कि कोई पुरुष एकसे अधिक विवाह करके अपने घरमें सापत्न भावका बीज न बोवे।

जिस घरमें पुरुष एकसे अधिक विवाह करता है वहां ईर्षाग्नि भड़कने लगता है और उसका कोई बुझा नहीं सकता। वहां स्त्रियोंमें कलह, संतानोंमें कलह और अंतमें पुरुषोंमें भी कलह होते हैं और अन्तमें उस कुटुंबका नाश होता है।

सपत्नीका नाश करनेके यत्न स्त्रियां करती हैं और उससे अकीर्ति फैलती है। इस एक आपत्तिका मिटानेके लिये एक पत्नीव्रतका आचरण करना ही एकमात्र उपाय है।

ज्ञान और शौर्यकी तेजस्विता।

(१९)

(ऋषिः — वसिष्ठः। देवता — विश्वेदेवाः चन्द्रमाः इन्द्रः)

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं३ बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥ १ ॥
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं३ बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥ २ ॥

अर्थ— (मे इदं ब्रह्म संशितं) मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हुआ है और मेरा यह (वीर्यं बलं संशितं) वीर्य और बल तेजस्वी बना है। (संशितं क्षत्र अजरं अस्तु) इनका तेजस्वी बना हुआ क्षात्रबल कभी क्षीण न होनेवाला होवे (येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि) जिनका मैं विजयी पुरोहित हूं ॥ १ ॥

(अहं एषां राष्ट्रं संस्यामि) मैं इनका राष्ट्र तेजस्वी करता हूं, इनका (ओजः वीर्यं बलं संस्यामि) ओज वीर्य और बल तेजस्वी बनाता हूं। और (अनेन हविषा) इस हविसे (शत्रूणां बाहून् वृश्चामि) शत्रुओंके बाहुओंका छेदन करता हूं ॥ २ ॥

भाषार्थ— मैं जिस राष्ट्रका पुरोहित हूं उस राष्ट्रका ज्ञान मैंने तेजस्वी किया है और शौर्य वीर्य भी अधिक तीक्ष्ण किया है जिससे इस राष्ट्रका क्षात्रबल कभी क्षीण नहीं होगा ॥ १ ॥

मैं इस राष्ट्रका तेज बढ़ाता हूं और इसका सैनिक ओज पराक्रम और उत्साह भी वृद्धिंगत करता हूं। इससे मैं शत्रुओंके बाहुओंका छेदन करता हूं ॥ २ ॥

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वान्महम् ॥ ३ ॥
तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥ ४ ॥
एषामहमायुधा सं स्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ५ ॥
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६ ॥

अर्थ— वे शत्रु (नीचैः पद्यन्ताम्) नीचे गिरें (अधरे भवन्तु) अवनत हों (ये नः मघवानं सूरिं पृतन्यात्) जो हमारे धनवान् और विद्वान् पर सेनासे चढाई करें । (अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि) मैं ज्ञानसे शत्रुओंका क्षय करता हूं, और (स्वान् उन्नयामि) अपने कार्योंको बढाता हूं ॥ ३ ॥

(परशोः तीक्ष्णीयांसः) परशुसे अधिक तीक्ष्ण (उत अग्नेः तीक्ष्णतराः) और अग्निसे भी अधिक तीक्ष्ण (इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः) इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण इनके अस्त्र हों (येषां पुरोहितः अस्मि) जिनका पुरोहित मैं हूं ॥ ४ ॥

(अहं एषां आयुधा सं स्यामि) मैं इनके आयुधोंको उत्तम तीक्ष्ण बनाता हूं, (एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि) इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे पुष्ट करके बढाता हूं (एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु) इनका क्षात्रतेज अक्षय तथा अवश्यजयी होवे (विश्वेदेवाः एषां चित्तं अवन्तु) सब देव इनके चित्तको उत्साहयुक्त करें ॥ ५ ॥

हे (मघवन्) धनवान् ! इनके (वाजिनानि उद्धर्षन्तां) बल उत्तेजित हों (जयतां वीराणां घोषः उद् एतु) विजय करनेवाले वीरोंका शब्द ऊपर उठे । (केतुमन्तः उलुलयः घोषाः) ध्वजा लेकर हल्ला करनेवाले वीरोंके संघ शब्दका घोष (पृथक् उत् ईरताम्) अलग अलग ऊपर उठे । (इन्द्रज्येष्ठा मरुतः देवाः) इन्द्रकी प्रमुखतामें मरुतोंका देवा (सेनया यन्तु) अपनी सेनाके साथ चढें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो शत्रु हमारे धनिकोंपर तथा हमारे ज्ञानियोंपर सेन्यके साथ हमला करते हैं वे अधोगतिको प्राप्त होंगे । क्योंकि मैं अपने ज्ञानसे शत्रुओंका नाश करता हूं और उसीसे अपने लोगोंको उन्नत करता हूं ॥ ३ ॥

जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रके शस्त्रास्त्र परशुसे अधिक तीक्ष्ण अग्निसे भी अधिक दाहक और इन्द्रके वज्रसे भी अधिक संहारक मैंने किये हैं ॥ ४ ॥

मैं इनके शस्त्रास्त्रोंको अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं, इनके राष्ट्रमें उत्तम वीर उत्पन्न करके बढाता हूं, इनके क्षात्रतेजमें कभी क्षीणता न होनेवाला और सदा विजयी बनाता हूं । सब देवता इनके चित्तोंको उत्साहयुक्त करें ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! इनके बल उत्साहसे पूर्ण हों इनके विजयी वीरोंका जयजयकारका शब्द आकाशमें भर जावे । और ऊपर विजय पानेवाले इनके वीरोंके शब्द अलग अलग सुनाई दें । जिस प्रकार इन्द्रकी प्रमुखतामें मरुतोंकी सेना विजय प्राप्त करती है उसी प्रकार इनकी सेना भी विजय पावे ॥ ६ ॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽवलधन्वनो हतोग्रायुधा अवलानुग्रबाहवः ॥ ७ ॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान्प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥ ८ ॥

अर्थ— हे (नरः) नेतो ! (प्र इत) चलो, (जयत) जीतो (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारे बाहु शौर्यसे युक्त हों । हे (तीक्ष्णेषवः) तीक्ष्ण बाणवाले वीरो ! हे (उग्रायुधाः उग्रबाहवः) उग्र आयुधवाले और बलयुक्त भुजावाले ! (अ-बल-धन्वनः अवलान् हत) निर्बल धनुष्यवाले निर्बल शत्रुओंको मारो ॥ ७ ॥

हे (ब्रह्म-संशिते शरव्ये) ज्ञानद्वारा तेजस्वी बने शस्त्र ! तू (अवसृष्टा परा पत) छोड़ा हुआ दूर जा और (अमित्रान् जय) शत्रुओंको जीत जा (प्र पद्यस्व) आगे बढ़ (एषां वरं वरं जहि) इन शत्रुओंके मुख्य मुख्य वीरोंको मार डाल (अमीषां कश्चन मा मोचि) इनमेंसे कोई भी न बच जाय ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे वीरो ! आप बड़ी विजय प्राप्त करो अपने बाहु प्रतापसे युक्त करो; तीक्ष्ण बाणों प्रतापी धनुषों और समर्थ बाहुओंको धारण करके अपने शत्रुओंको निर्बल बनाकर उनको मार डालो ॥ ७ ॥

ज्ञानसे तेजस्वी बना हुआ शस्त्र जब वीरोंको प्रेरणासे छोड़ा जाता है तब वह दूर जाकर शत्रुपर गिरता है और शत्रुका वध करता है । हे वीरो ! शत्रुपर चढ़ाई करो और शत्रुके मुख्य मुख्य वीरोंको चुन चुनकर मार डालो उनकी ऐसी कत्ल करो कि उनमेंसे कोई न बचे ॥ ८ ॥

राष्ट्रीय उन्नतिमें पुरोहितका कर्तव्य ।

राष्ट्रमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और निषाद ये पांच वर्ण होते हैं । उनमें ब्राह्मणोंका कर्तव्य पुरोहितका काम करना होता है । पूर्णहित करनेका नाम पुरोहितका कार्य करना है । जब मानका पूर्णहित करनेवाला पुरोहित होना चाहिये । तब उपर्युक्त राष्ट्रका विचार करना होता है उस समय उस राष्ट्रका ही ब्राह्मण है और उस ब्राह्मण जाती उस राष्ट्रके पुरोहितके स्थानपर होती है । इससे उपर्युक्त राष्ट्रका पूर्णहित करनेका भार उस पुरोहित वर्गपर आ जाता है । ज्ञानकी ज्योति सब राष्ट्रमें प्रज्वलित करके उस ज्ञानके द्वारा राष्ट्रका अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करना पुरोहितका कर्तव्य है; यह इस सूक्तमें स्पष्ट शब्दोंमें वर्णन किया है । राष्ट्रके ब्राह्मण इस सूक्तका मनन करें और अपना कर्तव्य जानकर उसको निभावें ।

इस सूक्तका ऋषि वसिष्ठ है, और वसिष्ठ नाम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका सुप्रसिद्ध है । इस दृष्टिसे भी इस सूक्तका मनन ब्राह्मणोंको करना चाहिये । अब सूक्तका आशय देखिये—

ब्राह्मतेजकी ज्योति ।

राष्ट्रमें ब्राह्मतेजकी ज्योति बढ़ाना और उस ज्योतिके द्वारा राष्ट्रकी उन्नति करनेका कार्य सबसे महत्त्वका और अत्यंत आवश्यक है । इस विषयमें इस सूक्तमें यह कथन है—

मे इदं ब्रह्म संशितम् । (सू. १९ मं. १)
ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि । (सू १९ मं १)
उदयामि स्वान् अहम् । (सू १९ मं १)
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
(सू १९ मं. ८)
जय अमित्रान्० ॥ (सू १९ मं ८)

मेरे प्रयत्नसे इस राष्ट्रका यह ज्ञानतेज चमकता है । ज्ञानके प्रतापसे शत्रुओंका नाश करता हूं । और उसी ज्ञानसे मैं अपने राष्ट्रके लोगोंकी उन्नति करता हूं । ज्ञानके द्वारा उत्पन्न हुआ बल सुखका परिणाम करता है, उससे शत्रुको जीत लो।

ये मंत्रभाग राष्ट्रमें ब्राह्मतेजके कार्यका स्वरूप बताते हैं । ज्ञान राष्ट्रीय उन्नतिमें बड़ा भारी कार्य करता है । जगत्में अनेक राष्ट्र हैं उनमें से दो राष्ट्र अग्रभागमें हैं कि जो ज्ञानसे विशेष संपन्न हैं । ज्ञान न होते हुए अभ्युदय होना असंभव है। यदि उन्नतिका विरोधक कोई कारण होता तो वह एकमात्र अज्ञान ही है । अज्ञानसे पतन होता है और ज्ञानसे उस पतनका नाश होता है । इसलिये राष्ट्रमें जो ब्राह्मण होते उनका

कर्तव्य है कि वे सर्व ज्ञानी बनें और अपने राष्ट्रके सब लोगोंको ज्ञानसंपन्न करें। क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको भी ज्ञान अवश्य ही है। उनके व्यवसायोंको उत्तमताके लिजानेके लिये ज्ञानकी परम आवश्यकता है।

ज्ञानसे शत्रु क्षीण है और अपना हितकारी मित्र कौन है इसका निश्चय होता है। अपने ज्ञानसे राष्ट्रके शत्रुको जानना और उसको दूर करनेके लिये ज्ञानसे ही उपायकी योजना करना चाहिये। यह उपाय योजनाका कार्य करना ब्राह्मणोंका परम कर्तव्य है। शत्रुपर हमला किस समय करना शत्रुके सैन्यबल कैसे हैं, उनसे अपने सैन्यबल अधिक प्रभावशाली किस रीतिसे करना शत्रुके सैन्यबल कितनी दूरीपर प्रभाव कर सकते हैं उससे अधिक दूरीपर प्रभाव करनेवाले सैन्यबल कैसे निर्माण करना इत्यादि बातें ज्ञानसे ही सिद्ध हो सकती हैं, अपने राष्ट्रमें इनकी सिद्धता करना ब्राह्मणोंका कर्तव्य है। अर्थात् सैन्यबल अपने ज्ञानसे इसका विचार करें और अपने राष्ट्रमें ऐसी प्रेरणा करें कि जिससे राष्ट्रके अन्दर इस परिवर्तन आ जावे। यही भाव निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
(सू १९ मं. ८)

ज्ञानसे तीक्ष्ण बने सैन्यबल शत्रुपर गिरें। इसमें ज्ञानसे उत्तेजित वीरत्व और तीक्ष्ण बने शस्त्र अधिक प्रभावशाली होनेका वर्णन है। अन्य देशोंके सैन्यबल देखकर उनका वेष धारकर, और उनका परिधान अनुभव करके जब उनसे अधिक वीरत्वान् और अधिक प्रभावशाली सैन्यबल अपने देशके वीरोंके पास दिये जावेंगे तब अन्य परिस्थिति समान होनेपर अपना जय निश्चयसे होगा इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

पुरोहितकी प्रतिज्ञा।

जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रका ज्ञान वीर्य बल पराक्रम, वीर्य [illegible] विजयी सामर्थ्य कभी क्षीण न हो। (मं. १)

जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रका पराक्रम सामर्थ्य वीर्य और बल मैं बढ़ाता हूं और शत्रुओंका बल घटाता हूं। (मं २)

जो शत्रु हमारे बनी वैश्यों और ज्ञानी ब्राह्मणोंके ऊपर अर्थात् हमारे बनाये हुए न करनेवाले लोगोंपर, उनके साथ हमारा वैरभाव करेगा उसका नाश मैं अपने ज्ञानसे करता हूं और अपने राष्ट्रके लोगोंको मैं अपने ज्ञानके बलसे सशक्त करता हूं। (मं ३)

जिसका मैं पुरोहित हूं उसके राष्ट्रमें मैं अधिक तेज बनाता हूं। (मं. ४)

इसके राष्ट्रमें मैं अधिक तीक्ष्ण करता हूं। उत्तम वीरोंकी संपत्ति इस राष्ट्रमें बढ़ाकर इस राष्ट्रकी उन्नति करता हूं। और इसका सार्थ बढ़ाता हूं। (मं ५)

ये मंत्रभाग पुरोहितके राष्ट्रीय कर्तव्यका ज्ञान अर्थात्मक शब्दों द्वारा दे रहे हैं। पुरोहितके ये कर्तव्य हैं। पुरोहित क्षत्रियोंको क्षात्रविद्या सिखाने वैश्योंको व्यापार व्यवहार करनेका ज्ञान देने और शूद्रादिकोंको कारीगरीकी शिक्षा देने और ब्राह्मणोंको इस प्रकारके विशेष ज्ञानसे युक्त करे। इस रीतिसे चारों वर्णोंको तेजस्वी बनाकर संपूर्ण राष्ट्रका सदा अपने ज्ञानसे रक्षित करे। जो पुरोहित ये कर्तव्य करेंगे वे ही देवकी दृष्टिसे सच्चे पुरोहित हैं। जो पंडित पुरोहितका कार्य कर रहे हैं वे इस सूक्तका विचार करें और अपने कर्तव्योंका ज्ञान प्राप्त करें।

युद्धकी नीति।

यह सप्तम और अष्टम इन तीन मंत्रोंमें युद्धनीतिका उपदेश इस प्रकार किया है—

वीरोंके पक्ष अपने अपने ढंग बनाकर युद्धनीति बताते हुए और अर्थात्मक शब्दोंका घोष करते हुए शत्रुसेना पर हमला करें और विजय प्राप्त करें। जिस प्रकार इसकी प्रमुखतामें सैन्योंके पक्ष शत्रुपर हमला करते और विजय प्राप्त करते हैं इसी प्रकार अपने राजाके तथा अपने सेनापतिके आधिपत्यमें रहकर हमारे वीर शत्रुपर हमला करें और अपना विजय प्राप्त करें। (मं. ६)

वीरो! आपके बाहु प्रभावशाली हों, तुम्हारे शस्त्र शत्रुकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण हों तुम्हारी गति शत्रुकी गतिसे अधिक पराक्रम प्रभावित करनेवाली हो। इस प्रकार युद्ध करते हुए तुम अपने निर्बल शत्रुको मार डालो। (मं. ७)

ज्ञानसे उत्तेजित हुए तुम्हारे शस्त्र शत्रुका नाश करें, ऐसे तीक्ष्ण शस्त्रोंसे शत्रुका तू पराभव कर। (मं ८)

इन तीन मन्त्रोंमें इसका उपदेश देकर पश्चात् इस अष्टम मंत्रके अन्तमें अर्थात् महत्त्वकी युद्धनीति कही है वे शब्द देखने योग्य हैं—

(१) अहोरात्रं परं परं

(२) माऽमीषां मोचि कश्चन ॥ (सू० १९, मं० ८)

इन शत्रुओंके मुख्य मुख्य प्रमुख वीरोंको मार दो और इनमेंसे कोई भी न बचे। ये दो वाक्य पूरे सूक्तमें अत्यन्त महत्त्वके हैं। शत्रुसेनाके पचड़ेमें न पड़कर अपने प्रमुख वीर ही उनका वध करना चाहिये। प्रमुख सेनानायकोंमेंसे कोई भी न बचे। एसी आज्ञा होनेपर शत्रुकी सेना वहीं आशा छोड़ि पलायन होगी। इस मुद्दतीमें अधिक मनन करने योग्य है।

अपनी सेनामें ऐसे वीर रखने चाहिये कि जो शत्रुके वीरोंको चुन चुनकर मारनेमें तत्पर हों। जब इन वीरोंके देखसे शत्रु सेनाके मुखिया वीरोंका वध हो जावे तब अन्य सेनानायक इसका करनेसे सब शत्रुसैन्यका पराभव होनेमें देरी नहीं लगेगी।

जो पाठक राष्ट्रहितकी दृष्टिसे अपने कर्तव्यका विचार करते हैं वे इस सूक्तका मनन अधिक करें और राष्ट्रहितके अपने कर्तव्य जानें और उनका अनुष्ठान करके अपने राष्ट्रका अभ्युदय करें।

तेजस्विताके साथ अभ्युदय।

(१०)

(ऋषिः— वसिष्ठः। देवता— अग्निः मन्त्रोक्तदेवताः)

अग्ने ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
त जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १ ॥
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ २ ॥
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र पूषा प्र सविता रयिं देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

अर्थ— हे अग्ने (अग्ने ते ऋत्वियः योनिः) यह तेरा ऋतुके अनुसार उत्पत्तिस्थान है (यतः जातः अरोचथाः) कि जहांसे तू प्रकाशित हुआ है। (त जानन् आरोह) उसको जानता हुआ तू (अथ नः रयिं वर्धय) और हमारे लिये धन बढ़ा ॥ १ ॥

हे अग्ने! (इह नः अच्छ वद) यहां हमसे अच्छे प्रकार बोल कर (प्रत्यङ् नः सुमनाः भव) हमारे अनुकूल हो और हमारे लिये अच्छे मनवाला हो। हे (विशांपते) प्रजाओंके स्वामिन् (नः प्रयच्छ) हमें दान दे क्योंकि (त्वं नः धनदाः असि) तू हमारा धनदाता है ॥ २ ॥

(अर्यमा नः प्र यच्छतु) अर्यमा हमें देवे (भगः बृहस्पतिः प्र यच्छतु) भग और बृहस्पति भी हमें देवे। (पूषा प्र) पोषक हमें बल देवे। (सविता रयिं प्र ददातु) और सविता ऐश्वर्य हमें प्रदान करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! तू जिस मेघ नक्षत्रसे उत्पन्न हुआ है जिसके कारण ही तू प्रकाशित हुआ है। अपने उत्पत्तिस्थानको तू जानता है और हमारे धनको बढ़ा ॥ १ ॥

हे अग्ने! तू हमारे साथ अच्छा बर्ताव कर हमारे लिये अनुकूल हो। हे प्रजाके स्वामिन्! हमें धन दे क्योंकि तू हमारे धनका देनेवाला है ॥ २ ॥

अर्यमा भग बृहस्पति पोषक सविता देव हमें बल देवें ॥ ३ ॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥ ५ ॥
इन्द्रवायू उमाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्दानकामश्च नो भुवत् ॥ ६ ॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ७ ॥
वाजस्य नु प्रसवे स विश्वभूमिमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
आदिरसन्त दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ८ ॥

अर्थ— राजा सोम अग्नि आदित्य विष्णु, सूर्य ब्रह्मा और बृहस्पतिको (अवसे गीर्भिः हवामहे) हमारी रक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (त्वं अग्निभिः) तू अग्नियोंके साथ (नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय) हमारा ज्ञान और यज्ञ बढ़ा । हे देव ! (त्वं नः दातवे दानाय रयिं चोदय) तू हमारे दानी पुरुषको धन देनेके लिये धन भेज ॥ ५ ॥

(उमौ इन्द्रवायू) दोनों इन्द्र और वायु (सु-हवौ) उत्तम बुलाने योग्य हैं इसलिये (इह हवामहे) यहां बुलाते हैं । (यथा नः सर्वः इत् जनः) जिससे हमारे संपूर्ण लोग (संगत्यां सुमनाः असत्) सभामें उत्तम मनवाले होवें (च नः) और हमारे लोग (दानकामः भुवत्) दान देनेकी इच्छा करनेवाले होवें ॥ ६ ॥

अर्यमा बृहस्पति इन्द्र वायु विष्णु सरस्वती और (वाजिनं सवितारं) वेगवान् सवितादेव (दानाय चोदय) हमें दान देनेके लिये प्रेरित कर ॥ ७ ॥

(वाजस्य प्रसवे स विश्वभूमिम) यज्ञकी उत्पत्तिमें ही हम उपस्थित हुए हैं । (च इमा विश्वा भुवनानि अन्तः) और ये सब भुवन उसके भीतरमें हैं । (प्रजानन्) जाननेवाला (आदिरसन्त उत दापयतु) दान न देनेवालोंको विचक्षणपूर्वक दान देनेके लिये प्रेरणा करे । (च नः सर्ववीरं रयिं नि यच्छ) और हमें सब प्रकारके वीरत्ववाले पुष्ट धन देवे ॥ ८ ॥

भावार्थ— राजा सोम अग्नि, आदित्य विष्णु, सूर्य ब्रह्मा और बृहस्पतिकी हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी सोम रीतिसे रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तू अनेक अग्नियोंके साथ हमारा ज्ञान बढ़ा और हमारी कार्यसिद्धि बढ़ावे । हे देव ! दान देनेवाले मनुष्यको धन देनेके लिये पर्याप्त धन दे ॥ ५ ॥

हम इन्द्र-वायु इन दोनोंकी प्रार्थना करते हैं जिससे हमारे सब लोग संगठनसे संघटित होते हुए उत्तम मनवाले बनें और दान देनेकी इच्छावाले होवें ॥ ६ ॥

अर्यमा बृहस्पति इन्द्र वायु विष्णु सरस्वती और वेगवान् सविता ये सब हमें दान करनेके लिये ऐश्वर्य देवें ॥ ७ ॥

यज्ञ उत्पन्न करनेके लिये हम सब बनाते हैं जैसे ये सब भुवन अंदरसे संघटित हुए हैं । यह जाननेवाला धनपतिको दान करनेकी प्रेरणा करे और हमें संपूर्ण वीरत्वादिसे पुष्ट धन देवे ॥ ८ ॥

दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यैयावलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥ ९ ॥
गोसनिं वाचमुदेय वर्चसा मा भ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

अर्थ—(उर्वीः पञ्च प्रदिशः) ये बड़ी पांचों दिशाएं (यथाबलं मे दुहां) यथाशक्ति मुझे रस देवें । (मनसा हृदयेन च) मनसे और हृदयसे (सर्वाः आकूतीः प्रापयेयम्) सब संकल्पोंको पूर्ण कर सकूं ॥ ९ ॥

(गोसनिं वाचं उदेय) इन्द्रियोंको प्रसन्नता करनेवाली वाणी मैं बोलूं । (वर्चसा मां अभ्युदिहि) तेजके साथ मुझे प्रकाशित कर । (वायुः सर्वतः मा रुन्धाम्) प्राण मुझे सब ओरसे घेरे रहे । (त्वष्टा मे पोषं दधातु) त्वष्टा मेरी पुष्टिको देख रहे ॥ १ ॥

भावार्थ—वे बड़ी विस्तीर्ण पांच ही दिशाएं हमें यथाशक्ति पोषक रस देवें जिससे हम मनसे और हृदयसे यत्नवान् बनते हुए अपने सपूर्ण संकल्पोंको पूर्ण करेंगे ॥ ९ ॥

प्रसन्नताको बढानेवाली वाणी मैं बोलूंगा । तेजके साथ मुझे अभ्युदयको प्राप्त कर । चारों ओरसे मुझे प्राण उत्साहित करे और अन्नादिकता मुझे सब प्रकार पुष्ट करे ॥ १ ॥

अग्निका आदर्श ।

इस सूक्तमें अग्निके आदर्शसे मनुष्यके अभ्युदय साधन करनेके मार्गका उत्तम उपदेश किया है । इस सूक्तका श्रेष्ठ वाक्य यह है—

वर्चसा मा अभ्युदिहि । (सू. २ मं १)

'तेजके साथ मेरा सब प्रकारसे उदय कर' यह हरएक मनुष्यकी इच्छा होनी चाहिये । यह लाभ सिद्ध होनेके लिये साधनके आवश्यक मार्ग इस सूक्तमें उत्तम प्रकार कहे हैं । उनका विचार करनेके पूर्व इस अग्निके आदर्शसे जो बात बताई है वह देखते हैं—

यज्ञमें जो अग्नि होते हैं वह अरणियोंसे उत्पन्न करते हैं अग्निका वहां प्रकाशित नहीं है परंतु उनसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि (आयः अरोचथाः । म १) उत्पन्न होते ही प्रकाशित होता है । पश्चात् वह हवन कुण्डमें रखते हैं वहां वह (रोहः । मं १) स्वयं बढता है और दूसरोंको भी प्रकाशित करता है । इस समय उसके चारों ओर अग्निचित्र लोग (गीर्भिः इषामहे । मं ४) मंत्रपाठ करते हैं और हवन करते हैं । इस समय इस अग्निके साथ (अग्निः अग्निभिः । मं ५) अनेक हवन कुण्डोंमें अनेक अग्नि प्रज्वलित होते हैं और इससे (अग्ने यज्ञं च वर्धय । मं. ५) ज्ञान और यज्ञकी वृद्धि होती है । यज्ञमें सब लोग (अग्नेः संगत्यां सुमनाः । मं. ६) मिलकर उत्तम विचारसे कार्य करते हैं । तथा (प्रसवे सं वसूविम । मं ८) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये एक होकर कार्य करते हैं और इस प्रकारके यज्ञसे तेजस्वी होकर अपना अपना अभ्युदय सिद्ध करते हैं ।

साराशसे यह यज्ञ प्रक्रिया है इसमें अरणियोंसे उत्पन्न हुई छोटीसी अग्निकी चिनगारीका कितना यज्ञ बढता है और वह अग्नि अनेक मनुष्योंकी उन्नति करनेमें कैसा समर्थ होता है यह बात पाठक देखें । यदि अग्निकी छोटीसी चिनगारीके तेजके साथ यह जानेसे इतना अभ्युदय हो सकता है, तो मनुष्यमें रहनेवाली चैतन्यकी चिनगारी इसी प्रकार प्रकाशके साथसे चलेगी तो कितना अभ्युदय प्राप्त करेगी इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं इसीका उपदेश पूर्वोक्त अग्निके दृष्टान्तसे इस सूक्तमें बताया है ।

उत्पत्तिस्थानका स्मरण ।

उससे प्रथम अपने उत्पत्तिस्थानका स्मरण करनेका उपदेश प्रथम मंत्रमें दिया है । यह तेरा उत्पत्तिस्थान है यहां उत्पन्न

होते ही तू प्रकाशता है यह जानकर स्वयं बढनेका यत्न कर और हमारी भी सीमा बढा। (मं १) यह उपदेश मनन करने योग्य है। उत्पत्तिस्थान कई प्रकारका होता है, अपना कुल, अपनी जाती अपना देश यह तो स्थूल दृष्टिसे उत्पत्ति-स्थान है। इस उत्पत्तिस्थानका स्मरण करके अपनी उन्नति करना चाहिये। दूसरा उत्पत्तिस्थान आध्यात्मिक है जो प्रकृतिमाता और परमपिताके संबंध रखता है यह भी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये मनन करने योग्य है। उत्पत्तिस्थानका विचार करनेसे मैं कहांसे आया हूं और मुझे कहां पहुंचना है इसका विचार करना सुगम होजाता है। जहां जहां भी उत्पत्ति हुई हो वहांसे अपनी शक्तिसे प्रकाशना बढना और दूसरोंको प्रकाशित करना चाहिये।

(इह मघवन् यह) यहां सबके साथ मिलकर मघवन् (प्रत्यङ् सुमनाः भव) प्रत्येकके साथ उत्तम मनोभावनासे वर्तमान कर अपने पास आ हो यह दूसरोंकी भलाईके लिये (मघवद्भ्यः) दान कर यह द्वितीय मंत्रके तीन उपदेश बलवृद्धि, मनःशुद्धि और आत्मशुद्धिके लिये अत्यंत उत्तम हैं। इसी मार्गसे इनकी पवित्रता हो सकती है।

आगेके दो मंत्रोंमें हमें किस किस शक्तियोंसे सहायता मिलती है इसका उल्लेख है।

सबसे प्रथम (देवीः) देवियों अर्थात् मातावोंकी सहायता मिलती है जिनकी कृपाके बिना मनुष्यका उद्धार होना असंभव है उत्तमधात् (सुनृता देवी) उत्तम वाणीसे सहायता प्राप्त होती है। मनुष्यके पास यदि मानसे बोलनेकी शक्ति न हो तो उसकी उन्नति असंभव है। इसके अंतर (अयः+मन् = अर्क+मन्) अन्न मनके मानसे जो सहायता होती है वह अपूर्व ही है। इसके पश्चात् (बृहस्पतिः) ज्ञानी और (ब्रह्मा) ब्रह्मज्ञानी सहायता देते हैं इनमें ब्रह्मा तो अंतिम मंजिलतक पहुंचा देता है। ये सब उन्नतिके उत्तम साधन (राजा सवितेसे) राजाकी छत्रमें ही सहायक हो सकते हैं सुराज्य हो अर्थात् राज्यका सुप्रबंध हो तो ही सब प्रकारकी उन्नति समयानुसार हो सकती है। इसके साथ साथ (सामः आदित्यः रुद्रः) मन रक्षणियां और सबका आदान करनेवाला सूर्यप्रकाश ये बल और ओतप्रोतभाव होनेसे सहायक हैं और अंतमें विशेष सहायकी सहायता (विष्णुः) उद्धारक देवताकी है जो सर्वोपरि होनेसे सबका परिपालक और सबका त्राणक है और इसकी सहायता पानेके लिये अत्यंत आवश्यक है। अन्नसे लेकर सुस्थितक इन प्रकार सहायताएं मिलती हैं और इनकी सहायतासे ही तू हुआ मनुष्य अपने परम उत्पत्तिस्थानसे यहां आकर फिर वहां ही पहुंचता है। इन शब्दोंसे सूचित होनेवाले अन्यान्य अर्थोंका विचार करके पाठक अधिक बोध प्राप्त कर सकते हैं।

सम्मूय समुत्थान ।

इस सूक्तमें एकताका पाठ स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है। (याजस्य नु प्रसवे सं बभूविम । मं. ८) अपनी उत्पत्तिके लिये हम अपनी संकटना करते हैं। संमूय-समुत्थानके बिना शक्ति नहीं होती इसलिये अपनी सहचारिता करके शक्ति बढानेका उपदेश यहां किया है। (सर्वाः अनाः संमनसः सुमनाः अवसत् । मं. ६) सब मनुष्य सहचारिता करने योग्य उस समय परस्पर उत्तम मनके साथ व्यवहार करें। ऐसा न करेंगे तो संघशक्ति बढ नहीं सकती। यह उत्तम सौमनस्यका व्यवहार सिद्ध होनेके लिये (अग्ने यत्ते यविष्ठ्य । मं ५) ज्ञान और आत्मसमर्पणका भाव बढाओ। उन्नतिके लिये इनकी अत्यंत आवश्यकता है। मनुष्यकी उन्नति तो व्यक्तिशः और समष्टिशः होनी है इसलिये पहले वैयक्तिक उन्नतिके उपदेश देकर पश्चात् सामाजिक उन्नतिके निर्देश किये हैं। इस प्रकार दोनों मार्गोंसे उन्नति हुई तो ही पूर्ण उन्नति हो सकती है।

याजस्य प्रसवे सं बभूविम (मं. ८) यह मन्त्र बहुत दृष्टिसे मनन करने योग्य है। यहां याजः शब्दके अर्थ देखिये— युद्धमें बल अन्न अन्न शक्ति धन धन यही वाजीका बल ये अर्थ ध्यानमें धारण करनेसे इस मन्त्रभागका अर्थ इस प्रकार होता है— हम युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये संघशक्ति करते हैं; अन्न बल, धान्य धेनु और धनादि ऐश्वर्योंपभोगके पदार्थ प्राप्त करनेके लिये आपसकी एकता करते हैं, अपनी वाजीका बल बढानेके लिये अर्थात् हमारे मतका प्रभाव बढानेके लिये अपनी संघटना करते हैं इसी एक वाक्यसे जो शब्द हम बोलेंगे वे निस्संदेह अधिक प्रभावशाली बनेंगे, तथा हमारी प्रजाके और उन्नतिके देश बढानेके लिये भी हम अपनी सहचारिता बढाते हैं। पाठक इस मन्त्रका विचार करनेके प्रसङ्गमें इस अवश्य मनन करें।

उन्नतिके लिये केवल्यीका भाव पाठक है इसलिये कहा है कि (अस्मिन्नर्मन् हापयतु । मं ८) केवलको भी दान न देनेवालेको भी दान देनेकी ओर सुझाओ क्योंकि उदारतासे ही संघटना होती है और अनुदारतासे बिखरती है। आपके पास धन तो चाहिये परंतु वह (सपत्नीरं दयिं नि यच्छ।

मं ८) सम्पूर्ण वीरत्वके गुणोंके साथ बन जाइये। अन्यथा कमाया हुआ धन कौड़ी बराबर भी आपका इसलिये वीरताके साथ रहनेवाला यह कल्याणका उपदेश यहां किया है।

इस रीतिसे उद्यत हुआ मनुष्य ही कह सकता है कि मुझे पापी विचारोंको पवित्रतासे नष्ट प्रदान करें और मनसे तथा हृदयसे जो संकल्प मैं करूं वे पूर्ण हो जांय। (मं ९) इसके ये संकल्प निश्चयसे पूर्ण हो जाते हैं।

हरएकके मनमें अनेक संकल्प उठते हैं, परंतु किसके संकल्प सफल होते हैं ? संकल्प तब सफल होंगे जब उन संकल्पोंके पीछे प्रबल शक्ति होगी अन्यथा संकल्पोंकी विफलता होना असंभव है। इस सूक्तमें संकल्पोंके पीछे शक्ति उत्पन्न करनेके विषयका बड़ा आन्दोलन किया है इसका विचार पाठक अवश्य करें। सूक्तके प्रारंभसे यही विषय है—

अपनी उन्नतिस्वरूपका विचार कर अपनी उन्नति करनेके लिये उमर उसके उठना (मं १); सीधा उत्तम मार्गसे करना मनके भाव उत्तम करना (मं २); ज्ञान और आयु बढ़ाना। (मं. ५); प्राप्त धन परोपकारमें लगाना (मं ५); सब मनुष्योंको उत्तम विचार धारण करने एकता बढ़ाने और परोपकार करनेकी ओर प्रवृत्त करना। (मं ६) सामर्थ्य बढ़ानेके लिये अपनी आवश्यकी उन्नति करना (मं. ८); अपने अंदर जो संकुचित विचारके होंगे उनको भी उदार बनाना (मं ८) इस पूर्व तैयारीके पश्चात् सब मानसिक संकल्पोंकी सफलता होनेका संभव है। संकल्पोंके पूर्व इतनी सहायक शक्ति उत्पन्न होनी चाहिये। तब संकल्प सिद्ध होंगे। इसका विचार करके पाठक इस शक्तिको उत्पन्न करनेके कार्यमें लग जांय। इसके अंतर— सब स्थानमें उसको प्राप्तशक्ति साक्षात् होती है सब स्थानसे उसकी पुष्टि होती है यह सदा प्रसन्नता बढ़ानेवाली ही भाषा बोलता है इसलिये वह तेजस्विता के साथ अभ्युदयको प्राप्त होता है। (मं १)

इस सप्तम मंत्रमें गोसनि साथ अदेयं यह वाक्य है। गो का अर्थ है- इंद्रिय गो भूमि प्रकाश स्वर्गसुख वाणी। इस अर्थसे केवल- इंद्रियोंकी प्रसन्नता वाणीकी प्रसन्नता प्रकाशका विस्तार, मातृभूमिका सुख आदिकी विस्तृता होवे योग्य मैं आपसे चाहता हूं यह अर्थ इससे व्यक्त होता है। आगे तेजस्विताके साथ अभ्युदय प्राप्त करनेका विषय कहा है उसके साथ यह प्रसन्नता बढ़ानेवाली वाणीसे बोलना कितना आवश्यक है यह पाठक यहां अवश्य देखें। इस प्रकार इस सूक्तके वाक्योंका पूर्वापर संबंध देखकर यदि पाठक मनन करेंगे तो उनको विशेष बोध प्राप्त हो सकता है।

इस सूक्तका संक्षेपसे यह विवरण है। पाठक जितना अधिक विचार करेंगे उतना अधिक बोध वे प्राप्त कर सकते हैं। अधिक विचार करनेके लिये आवश्यक संकेत इस स्थानपर दिये ही हैं इसलिये यहां अधिक लेख बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। अभीष्ट दर्शन करनेके विषयसे दिये हुए सामान्य निर्देश मनुष्यकी उन्नतिके विरुद्ध कैसे होते हैं इसका अनुभव पाठक यहां करें। वेदकी यह एक अपूर्व शैली है।

॥ यहां चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

कामाग्निका शमन ।

(२१)

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — अग्निः)

ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये पृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य ओषधीषूतपशूंयो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १ ॥
यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविवेश यवमु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २ ॥
य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ३ ॥
यो देवो विश्वाद्रयङ् कामयाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ४ ॥

अर्थ— (ये अग्नयः अप्सु अन्तः) जो अग्नियां जलके अन्दर हैं (ये वृत्रे) जो मेघमें और (ये पुरुषे) जो पुरुषमें हैं तथा (ये अश्मसु) शिलाओंमें हैं (यः ओषधीः यः पशूः वनस्पतीन् आविवेश) जो औषधियोंमें और जो वनस्पतियोंमें प्रविष्ट है (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ १ ॥

(यः सोमे अन्तः यः गोषु अन्तः) जो सोमके अन्दर, जो गौओंके अंदर (यः यवमु, यः मृगेषु आविवेश) जो यवोंमें और जो पशुओंमें प्रविष्ट है (यः द्विपदः यः चतुष्पदः आविवेश) जो द्विपाद और चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुआ है (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ २ ॥

(विश्वदाव्यः उत वैश्वानरः) सबको अलगेवाला परंतु सबका चालक अथवा हितकारी (यः देवः इन्द्रेण सरथं याति) जो देव इन्द्रके साथ एक रथपर बैठकर चलता है (यं पृतनासु सासहिं जोहवीमि) जो युद्धमें विजय देनेवाला है इसलिये जिसकी मैं प्रार्थना करता हूं (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ३ ॥

(यः विश्वाद् देवः) जो विश्वका भक्षक देव है (यं कामं आहुः) जिसको काम नामसे पुकारते हैं (यं दातारं प्रतिगृह्णन्तं आहुः) जिसको देनेवाला और लेनेवाला भी कहा जाता है, (यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः) जो बुद्धिमान्, शक्तिमान्, भ्रमण करनेवाला और न दबनेवाला कहते हैं (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो अग्नि रूप देव प्राणियों अथवा मनुष्यों शिलाओं और ओषधिवनस्पतियोंमें हैं उनकी प्रसन्नताके लिये यह हवन है ॥ १ ॥

जो अग्नि सोम गौओं पक्षियों यवादि पशुओं तथा द्विपाद चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुआ है उसके लिये यह हवन है ॥ २ ॥

उनको अलगेवाला परंतु सबका संचालक जो यह देव इन्द्रके साथ रथपर बैठकर भ्रमण करता है, जो युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला है उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ३ ॥

जो अग्नि विश्वका भक्षक है और जिसको काम कहते हैं जो देनेवाला और स्वीकारनेवाला है और जो बुद्धिमान् सर्वत्र जानेवाला और न दबनेवाला है उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ४ ॥

य स्वा होतार मनसामि संविदुस्त्रयोदश मानुषाः पञ्च मानवाः ।
अर्चोषसे यशसे सूनृतायते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ५ ॥
उक्षाजाय यशाजाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ६ ॥
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसञ्चरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वातं अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ७ ॥
हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान्देवानङ्गिरसो हवामह इमं कव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥ ८ ॥
शान्तो अग्निः कव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यस्तं कव्यादमशीशमम् ॥ ९ ॥

अर्थ— (त्रयोदश मानुषाः पञ्च मानवाः) त्रयोदश मनुष्य और पांच मनुष्यजातियां (य त्वा मनसा होतारं अग्निं संविदुः) जिस तुझको मनसे होता अर्थात् दाता मानते हैं (अर्चोषसे) तेजस्वी (सूनृतायते) सत्य भाषी और (यशसे) यशस्वी तुझे और (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ५ ॥

(उक्षाजाय यशाजाय) जो बैलके लिये और गौके लिये अन्न होता है और (सोमपृष्ठाय) ओषधियोंको पीठपर लेता है वह (वेधसे) ज्ञानीके लिये और (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यः०) सब मनुष्योंके हितकारी श्रेष्ठ उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ६ ॥

(ये दिवं अन्तरिक्षं अनु विद्युतं अनु संचरन्ति) जो द्युलोक और अंतरिक्षके अन्दर और विद्युतके अंदर भी अनुकूलतासे संचार करते हैं, (ये दिक्षु अन्तः ये वाते अन्तः) जो दिशाओंके अंदर और वायुके अंदर है (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ७ ॥

(हिरण्यपाणिं सवितारं) सुवर्ण मुख हाथमें धारण करनेवाले सविता इन्द्र बृहस्पति वरुण मित्र अग्नि विश्वेदेव और आंगिरसोंको (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि वे (इमं कव्यादं अग्निं शमयन्तु) इस मांसभोजी अग्निको शान्त करें ॥ ८ ॥

(कव्याद् अग्निः शान्तः) मांसभक्षक अग्नि शान्त हुआ (पुरुषरेषणः शान्तः) मनुष्य हिंसक अग्नि शान्त हुआ (अथ यः विश्वदाव्यः) और जो सबको जलानेवाला अग्नि है (तं कव्याद् अशीशमम्) उस मांसभक्षक अग्निको मैंने शान्त किया है ॥ ९ ॥

भावार्थ— तेरह मनुष्योंका प्रदेश और मनुष्यकी ब्राह्मण क्षत्रियादि पांच जातियां इसी अग्निको मनसे दाता मानती हैं तेजस्वी यशस्वीके प्रेरक यशस्वी उस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ५ ॥

जो बैलके और गौके अन्न देता है जो पीठपर ओषधियोंको लेता है जो सबका धारक वा उत्पादक है उस सब मानवोंके श्रेष्ठरूप अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ६ ॥

पृथ्वीके अन्तरिक्ष विद्युत, दिशाएँ, वायु आदिमें जो रहता है उस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ७ ॥

सविता इन्द्र बृहस्पति वरुण मित्र अग्नि और आंगिरस आदि सब देवोंकी हम प्रार्थना करते हैं कि वे सब एवं इस मांसभक्षक अग्निको शान्त करें ॥ ८ ॥

यह मांसभोजी पुरुषभक्षक और सब जलानेवाला अग्नि शान्त हुआ है मैंने इसको शान्त किया है ॥ ९ ॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आपं उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥ १० ॥

अर्थ— (ये सोमपृष्ठाः पर्वताः) जो वनस्पतियोंकी पीठपर धारण करनेवाले पर्वत हैं (उत्तानशीवरीः आपः) ऊपरसे आनेवाले जो जल हैं (वातः पर्जन्यः) वायु और पर्जन्य (आत् अग्निः) तथा जो अग्नि है (ते) वे सब (क्रव्यादं अशीशमन्) मांसभक्षी अग्निको शान्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— जहां वनस्पति हैं ऐसे पर्वत ऊपरकी गतिसे आनेवाले जलप्रवाह वायु और पर्जन्य तथा अग्नि ये सब रोग मांसभक्षक अग्निको शांत करनेमें सहायक होते हैं ॥ १ ॥

कामाग्निका स्वरूप ।

इस सूक्तमें कामाग्निके शान्त करनेका विधान है। कामको अग्निकी उपमा देकर अथवा अग्निके वर्णनके मिषसे कामको शान्त करनेका वर्णन इस सूक्तमें बडा ही मनोरंजक है। यह सूक्त बृहच्छान्तिपक्ष में दिया है, क्योंकि कामका शमन करना ही बृहच्छान्ति स्थापित करना है। यह सबसे बडा कठिन और असाध्य कार्य है। इस सूक्तमें जो अग्नि है वह क्रव्याद् अर्थात् कच्चा मांस खानेवाला है साधारण लोग समझते हैं कि इस सूक्तमें मुर्दे जलानेवाले अग्निका वर्णन है परंतु यह मत ठीक नहीं है। कामरूप अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है और वही कामरूप अग्नि बडा मनुष्यभक्षक है। जितना अग्नि जलाता है उससे सहस्र गुना यह काम जलाता है, यह बात पाठक विचारकी दृष्टिसे देखेंगे तो जान सकते हैं। इसलिये इस सूक्तके अग्निका स्वरूप पहले हम निश्चित करते हैं। इसका स्वरूप बतानेवाले जो अनेक शब्द इस सूक्तमें हैं उनका विचार अब करते हैं—

१ यो देवो विश्वाद् यं स क्रामं आहुः ।
(सू. २१ मं ४)

जो अग्निदेव सब जगत्को जलानेवाला है और जिसको काम कहते हैं ।

इस मंत्रभागमें स्पष्ट कहा है कि इस सूक्तमें जो अग्नि है वह काम ही है। नाम निर्देश करनेके कारण इस विषयमें किसीको संका करना भी अब उचित नहीं है। तथापि निश्चय पक्षके लिये इस सूक्तके अन्य मंत्रभाग अब देखिये—

१ क्रव्याद् अग्निः । (सू. २१ मं १)
मांस भक्षक अग्नि ।

१ पुरुषरेषणः अग्निः । (सू २१ मं १)
पुरुषका नाशक (काम) अग्नि ।

कामकी प्रबलतासे मनुष्यका शरीर सूख जाता है और इस कामके प्रकोपसे कितने मनुष्य सहपरिवार नष्टभ्रष्ट हो गये हैं यह पाठक यहां विचारकी दृष्टिसे मनन करें, तो इस मंत्रभागका गंभीर अर्थ ध्यानमें आ सकता है। इस दृष्टिसे—

४ विश्वाद् अग्निः । (सू २१ मं ४)
निश्चय भक्षक (काम) अग्नि ।

यह विशेषण उक्त है। मनुस्मृतिमें कामके—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
(म स्मृ २।३७)

यह काम बडा (महाशनः) खानेवाला है। महाशन (महा–अशनः) और विश्वाद (विश्व–अद्) ये दोनों एक ही भाव बतानेवाले शब्द हैं। सचमुच काम बडा खानेवाला है इसकी कभी तृप्ति होती ही नहीं जितना ही खानेको मिले यह उतना अतृप्त ही रहता है, इसका पेट कब भरता है या खानेसे भी मरता नहीं इसी अर्थको बतानेवाला यह शब्द है—

५ विश्व-दाव्यः । (सू २१ मं १,१)
सबको जलानेवाला (काम अग्नि) ।

यह काम सचमुच सबको जलानेवाला है, जब यह काम मनमें प्रबल होता है तब यह बाहरसे जलाने लगता है। ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला मनुष्य बाहरसे कहने लगता है और कामाग्निको अपने अंदर जलानेवाला मनुष्य अंदरसे जलने लगता है !! जिसका अंतःकरण ही जलता रहता है उसके लिये मानो सब जगत् ही जलने लगता है। जिसके मनमें काम अग्निकी ज्वालाएं भडक उठती हैं, उसको न अन्न शांति दे सकता है न पदार्थोंकी अमृतपूर्ण किरणें शांति दे सकती हैं, वह तो

पदा अधांत और संतप्त होता जाता है ऐसी इस कामाग्निकी दाहकता है।। इसके सामने यह अग्नि क्या चीज है। कामाग्निकी दाहकता इतनी अनेक है, कि उसके सामने यह भौतिक अग्नि मानो शान्त ही है और इसीलिये मंत्र आठमें इस अग्निको कामाग्निकी शान्ति करनेको कहा है। यदि यह अग्नि कामाग्निसे शान्त न हो तो कामाग्निको शान्त कैसे कर सकता है।

इस प्रकार इसका गुणवर्णन करनेवाले जो विशेषण इस सूक्तमें आये हैं, वे इसका स्वरूप निश्चित करनेमें बड़े सहायक हैं। इनके मननसे निश्चय होता है कि इस सूक्तमें वर्णित हुआ अग्नि साधारण भौतिक अग्नि नहीं है प्रत्युत वह कामाग्नि है। भौतिक अग्निका वाचक अग्नि शब्द खतंत्र रीतिसे अथवा मन्त्रमें आता है इसका विचार करनेसे भी इस सूक्तमें वर्णित अग्निका स्वरूप निश्चित हो जाता है।

काम और इच्छा।

काम शब्द जैसा काम निकारक वाचक है वैसी प्रकार इच्छा कामनावाचक भी वाचक है। वस्तुतः देखा जाय तो ये काम कामना और इच्छा मूलतः एक ही शक्तिके वाचक हैं। भिन्न भिन्न इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध हो जानेसे एक ही इच्छा-शक्ति इस जैसा कामशक्तिरूपमें प्रगट होता है और वैसा ही अन्य इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे कामनाके रूपमें भी प्रगट होता है। परन्तु इनके अन्दर घुसकर देखा जाय तो मुख्य चाहिये इस एक इच्छाके सिवाय दूसरा इसमें कुछ भी नहीं है अपने अन्दर कुछ न्यूनता है उसकी पूर्तिके लिये बाहरसे किसी पदार्थकी प्राप्ति करना चाहिये यह भाव पदार्थ प्राप्त होनेसे ये पूर्ण हो जाऊंगा। इत्यादि प्रकारकी इच्छा ही काम अथवा कामना है। यही इच्छा सबको चल रही है, इस लिये इसको विश्वकी चालक शक्ति कहा है। देखिये—

वैश्वानरः (विश्व-नरः)। (सू २१ म. १)

यह (विश्व-नर) विश्वका नेता अर्थात् विश्वका चालक (काम) है। विश्वको चलानेवाली यह इच्छाशक्ति है। यह कामशक्ति न हो तो संसारका चलना असम्भव है। पदार्थ मात्रमें—चाहे वह चेतन और अर्ध चेतन अवस्थामें— यह स्पष्ट दिखाई देती है। इस विषयमें प्रथम और द्वितीय मन्त्रका कथन स्पष्ट है।

इस कामरूप आगके अनेक रूप हैं और वे अन्न मेघ पर्वत, ओषधि वनस्पति सोम भी, पक्षी पशु, द्विपाद चतुष्पाद मनुष्य आदि सबमें हैं। (मं १२) तथा द्युविषी अन्तरिक्ष विद्युत्, द्युलोक, दिशा, वायु आदिमें भी है।

(म. ७)

इस मंत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कामाग्नि पत्थर जल ओषधियोंसे लेकर मनुष्योंतक सब सृष्टिमें विद्यमान है। ओषधियां बढ़नेकी इच्छा करती हैं, वृक्ष बढ़ना चाहते हैं पक्षी उड़ना चाहते हैं मनुष्य जगत्को जीतना चाहता है इस प्रकार हरएक पदार्थ अपनी शक्ति और अपने अधिकार क्षेत्रको बढ़ाना चाहता है। यही इच्छा है और यही काम है। यही जब जननेन्द्रियके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है तब उसको कामशक्ति कहा जाता है परन्तु मूलतः यह शक्ति वही है, जो पहले इच्छाके साथसे प्रकाशित थी। यही सार्वभौमी कामना पाप और नेकीको पालती है और अनको खिलाती पिलाती है ओषधियोंको पालना करती है। (मं ९)

कामकी दाहकता।

वस्तुतः भौतिक अग्नि जलाती है ऐसा अनुभव हरएकको आता है, और काम या इच्छाकी वैसी दाहकता नहीं है ऐसा भी सब मानते हैं परंतु साधारण इच्छा क्या कामना क्या और कामशक्ति क्या इतने अधिक दाहक हैं कि उनकी दाहकताके साथ अग्निकी दाहकता कुछ भी नहीं है।।

राज्य बढ़नेकी इच्छा कई राज्यवालोंमें बढ़ जानेके कारण पृथ्वीके अनेक कई राष्ट्रोंका परस्परकी अग्नि जला रही है, इस सार्वभौमी इच्छाके कारण इतने भयंकर युद्ध हुए हैं और उनमें मनुष्य इतने अधिक मर चुके हैं कि उतने अग्निकी दाहकतासे निःसंदेह मरे नहीं हैं। इसीलिये इसको तृतीय मंत्रमें (पूतनासासु जासहि) अर्थात् युद्धमें विजयी कहा है। किसी भी पक्षकी जीत हुई तो इसीकी यह जीत होती है।।।

एक समाज दूसरी समाजको अपने स्वार्थके कारण दबा रहा है, ऊपर उठने नहीं देता है इसी जातिवाले जितना चाहे साधनसंपन्न किया जा रहा है यह एक ही स्वार्थी कामना का ही प्रताप है। यही लोग निर्धनोंका दबा रहे हैं, अधिकारी वर्ग प्रजाको दबा रहा है एक समर्थ राष्ट्र दूसरे निर्बल राष्ट्रको दबा रहा है इसी प्रकार एक भाई दूसरे भाईकी चीज छीनता है ये सब कामका ही रूप है, जो मनुष्योंके अंदर ही अंदरसे जला रहे हैं।

आंख सुंदर रूपकी कामना करता है कान मधुर स्वरकी अभिलाषा करता है जिह्वा मधुर रसोंकी इच्छुक है इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियां अन्यान्य विषयोंकी चाहती हैं। इनके

काल आती जो निश्चय और नाश हो रहे हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। इतनी विनाशक शक्ति इस भौतिक अग्नि में है।

काम, क्रोध, लोभ मोह मद और मत्सर ये मनुष्यके छः शत्रु हैं इन शत्रुओंमें सबसे तु न शत्रु काम है सबसे बढ़कर इसके भेदर विनाशकारक है। यह जैसे पास आता है तुरन्त देनेका प्रलोभन देता है और मुख मुख पहुंचता भी है। परंतु भीतर अंधेरा इतना रहता है, कि यह आनेवालेको अपने घर आनेका पता तक नहीं लगने देता!!! इस कामविकारकी अत्यन्त विनाशकता बात आगामें प्रतिपादन की है। इसके यमपुरुषके इसी दर्शनेका अनुवाद कर रहा है।

जिस समय कामविकारकी ज्वाला मनमें भड़क उठती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य उदय हो रहा है। मुखपर तेजका गोल रंग होता है शरीर वर्म हो जाता है, मस्तिष्क तना है अवयव शिथिल हो जाते हैं मस्तककी विचारशक्ति हट जाती है और एक ही काम मनमें राज करने लगता है। सूनसे पीछता है साक्षीना नष्ट करता है वीर्यका नाश करता है और आयुका क्षय करता है। ये सब लक्षण इसकी वाट बताते हैं। इसमें यह निर्दयत्व शक्ति देखकर पाठक ही विचार कर सकते हैं कि इसकी विनाशकताकी आगेके साथ तुलना ही सच्ची है। इसलिये मंत्रमें कहा हुआ विशेषण (विश्व-दाव्या) अत्यन्त आनंदेवाला इसके अतिरिक्त शब्द हो जाता है!!

इस प्रकार विचार करके पाठक कामकी दाहकता जाने और इसके दाहकत्वको अपने आपको बचानेका उपाय करें।

न दबनेवाला।

चतुर्थ मंत्रमें इसके विशेषण विश्वाद् दाता, प्रति एसम् वीरा शाका परिभूः, अदाभ्यः आये हैं और इस में इसका नाम (य काये साहुः) आम करके कहा है। अर्थात् इसी के आगेके ये गुणवोधक विशेषण हैं। इसलिये इसके अर्थ देखिये—

यह काम (विश्वाद्) अत्यन्तो खानेवाला (दाता) शत्रु देनेवाला (प्रतिएसम्) अनुपकारे देनेवाला (वीरः) वेरं देनेवाला (शाकः) दुःखदायी (परिभूः) सबसे बढ़कर हानेवाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला है

)

सेवन करनेसे ये विशेषण व इसे विषयमें देख हो सकते हैं। भोग करने करने से

बल समय बुद्धीको मलिन करता है अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अनावश्यक वैर अथवा साहस उत्पन्न करता है, अन्य समय और दिखाई देनेवाला मनुष्य भी कामविकारकी लहरमें बड़े साहसके कर्म करने लगता है और यह नष्ट होता है तब सब अन्य मानसभावोंको दबाकर अपना अधिकार जमा देता है इसलिये बल करनेपर भी यह अन्यका अपना प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार पूर्वोक्त विशेषणोंका आशय यहां विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है। इसके एक और प्रतिग्रहीता (अथर्व ३।२९।७ में भी आया एक काम्य प्रतिग्रहीता कहा है) ये दो विशेषण भी विशेष मनन करने योग्य हैं। यह निश्चित ही कुछ देता है और बहुत का बीर हरण करता है, ये अर्थ पूर्वापर संगतिसे भी अन्वर्थक दिखाई देते हैं। साधारण कामनाके अर्थमें देने और देनेवालेका कामनासे ही सम्बन्ध होता है इसलिये यह काम दो देनेवालोंको दोषमें और देनेवालोंसे लेनेमें प्रवृत्त करता है, यह इस मंत्रका आशय भी स्पष्ट हो है।

पंचम मंत्रमें " प्रशोदरा सुपत्नीमें रहनेवाले मंत्रका सभी मानते हैं, दाता करके पूजते हैं देखा गया है। मनुष्य अवश्य कामकी ही कामना करती है यह बात इस मंत्रमें कही है। कई विरक्त और महान्त इस कामको बलसे अलग करके परमात्मोपासक होते हैं, अन्य संसारी जन तो अपने धर्मसंगत रीतसे मानते हैं। इस प्रकार इस मंत्रमें इस अपवृत्त अपना अधिकार जमाया है। अथवा कामको कि (कस्मै) देव (यजाः) यज और (सुवुवे) उत्पन्न आदि इस कामके प्रभावसे ही सकल यज्ञ कुछ होते हैं। सब लोग जो संसारमें सब हैं इसीसे देखनेसे बने हैं और इसीसे देखने पूज रहे हैं। जो सचराचर इसके देखने पूज रहे इस कामको जीत लेता है वही देव होता हुआ दुर्जेय बनी होता है सभी इसके देखने पूज रहा है परंतु विरले थोड़े लोग इसके देखने अपने आपसे पूज रहे हैं। यही इस सूक्तके अन्तके पद्य में स्पष्ट करते हैं।

इन्द्रका रथ।

यह काम इसके रथका [illegible]
) काम है। (३।१) व
है। इस
करता है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥
(कठ. उ ३।४)

आत्मा रथमें बैठनेवाला है, उसका रथ यह शरीर है और इंद्रियां उस रथके घोडे हैं जो विषयोंमें घूमते हैं। इस वर्णनसे इन्द्रके रथका पता अच्छा लगता है। इस उपनिषद्वचनके 'इन्द्रिय परका अर्थ इन्द्रकी शक्ति' है। हमारे इन्द्रिय इन्द्रकी शक्तियां ही हैं यह देखनेवाला आत्मा ही इन्द्र है इस विषयमें विवाद हो सकता है।

इस इन्द्र अर्थात् आत्माके शरीररूपी रथमें यह काम बैठता है यह विधान तृतीय मंत्रका है—

यः इन्द्रेण सरथं याति। (सू. २१ मं. ३)

जो कामरूप अग्नि इन्द्रके रथपर बैठकर जाता है इस वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हुआ ही होगा। पाठक जान सकते हैं कि इस शरीरमें जैसा जीवात्मा है अथवा इन्द्र है, उसी प्रकार काम भी है दोनों इसके चलानेवाले हैं। स्थूल दृष्टिसे देखा जाय तो काम अर्थात् इच्छा ही इसको चला रही है। इस प्रकार इस शरीरमें कामकी स्थिति है।

कामरूपी यह अग्नि प्राणियोंके शरीरमें जल रही है इसको अधिक प्रज्वलित करना उचित नहीं प्रत्युत इसको अहर्निश प्रयत्न हो सकता है उतना प्रयत्न करके शांत करनेका ही उपाय करना चाहिये। इसको शांत करनेका उपाय अब देखिये—

कामशान्तिका उपाय।

अथर्व मंत्रमें इस कामाग्निके शान्त हो जानेका विधान है। देखिये वह मंत्र—

शान्तो अग्निः कव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः।
अथो यो विश्वदाव्यस्तं कव्यादमशीशमम्॥
(सू. २१ मं. ९)

यह मांसभक्षक कामरूपी आग शान्त हुआ वह मनुष्य भक्षक कामरूपी अग्नि शान्त हुआ जो यह सबको जलानेवाला कामाग्नि है उसको मैंने शान्त किया है। इस मन्त्रमें इस कामाग्निको मैंने शांत किया ऐसा कहा है इस विधानसे शान्त करनेका कुछ उपाय है यह निःसन्देह सिद्ध होता है। यदि एक मनुष्य इसको शान्त कर सकता है तो अन्य मनुष्य भी उसी मार्गसे जाकर अपने शरीरमें जलते रहने वाले इस कामाग्निको शान्त कर सकते हैं। हरएकके शरीरमें यह कामाग्नि जलता है इसलिये हरएकको चाहिये कि वह प्रयत्न करके इसको शान्त करनेका पुरुषार्थ करे और अधिकसे शान्ति प्राप्त करे। इसको शान्त करनेका उपाय वेद के अथर्व मंत्रके भाष्यमें और सायण मन्त्रमें कहा है—

'हिरण्यपाणि सवितः इन्द्र, बृहस्पति, वरुण मित्र अग्नि विश्वेदेव आङ्गिरस इनका हम यजन करते हैं वे इस मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें। (म ८)

सोमवल्ली जिसपर उगती है वे पर्वत ऊपर गमन करने वाले मरुत वायु पर्जन्य और अग्नि ये इस मांसभक्षक कामाग्निको शान्त करें। (मं १)

इन दो मन्त्रोंमें जो मार्ग कहा है वह कामाग्नि शान्त करनेका है। ये मन्त्र उपासकोंने करनेके अत्यन्त महत्त्वके हैं और इनका इसी कारण अधिक मनन करना चाहिये। इन दो मन्त्रोंमें जो उपाय कहे हैं उनका क्रमपूर्वक चिन्तन अब करते हैं—

१ सोमवल्लाः पर्वताः—जिन पर्वतोंपर सोमवल्ली अथवा अन्यान्य औषधियां उगती हैं वे पर्वत कामाग्नि शान्त करनेमें सहायक होते हैं। इसमें पहली बात तो उन पर्वतोंका शान्त मलयवायु कामको भडकने नहीं देता है। शीत प्रदेशकी अपेक्षा उष्ण प्रदेशमें कामाग्निको उत्तेजन शीघ्र और अधिक भडक उठती है। उष्ण देशके लोग भी इसी कारण छोटी आयुमें कामाग्निसे उत्तेजित होते हैं। इस विषयमें दूसरी बात यह है कि सोम आदि शीतवीर्यवाली औषधियां सेवन करनेसे भी कामाग्नि की उष्णता शान्त होती है। सोमवल्ली उगनेवाले पर्वतशिखर हिमाच्छन्न हैं वहां ही दिव्य औषधियां होती हैं। दूसरी बात उनका सेवन करके स्थिरवीर्य और दीर्घजीवी होते हैं। तीसरी बात इसमें यह है कि ऐसी पहाडियोंमें प्रकाशन कम होते हैं वहांकी जैसे अधिक नहीं होत इसलिये भी कामका उत्तेजना वहां जैसी वहां नहीं होती है। इत्यादि अनेक उपाय इन पहाडोंके साथ सम्बन्ध रखते हैं। (मं १)

२ उत्तमशरीरीः आपः—जल भी कामाग्निका शमन करनेवाला है। शीत जलका स्नान अत्यधिकमें तेरनेसे सम शीतोष्णता होती है जिससे कामकी उत्पत्ति कम होती है, शीत जलसे मध्य शरीरका स्नान करना, विशेष कटिस्नान रहने हैं अत्यधिक शमनके लिये बडा उपयोगी है। पुरुष इन्द्रियको अत्यधिक उष्ण प्रदेश रहनेका समय या ऋतु समय कामका वेग हो जाये उस समय जो शीतसे अत्यधिक कामकी बडी उत्तेजना होती है। इस प्रकार विविध रीतिसे जलकी उपयुक्तता कामाग्नि शान्त करनेके काममें होती है। (मं १)

३ पञ्चजनाः—मेघ अर्थात् वृष्टिका जल इस विषयमें उपयोगी है। यह शीत समय उसमें खडा होकर स्नान आदि-

अरब कामसूत्रमें जो विचार और भाव हो रहे हैं
लिये नहीं हैं। इतनी विनाशक शक्ति इस मोमि
क्या है।

काम क्रोध लोभ मोह मद और मत्सर ये स
शत्रु हैं इन शत्रुओंमें सबसे मुख्य शत्रु काम ह
इसके अंदर विनाशकता है। यह मेमसे पास आ
देखेका प्रलोभन देता है और मुख मुख पहुंचता है
अंदर अन्दरसे ऐसा फसता है कि फस जानेवाला
जानेका पता तक नहीं लगता !!! इस कामविकार
विनाशकता सब शास्त्रोंमें प्रतिपादन की है। इसए
इसीसे मन्त्रमेंका उपदेश कर रहा है।

जिस समय कामविकारकी ज्वाला मनमें भड़
उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मुख सूख र
सन्तापेका भाव दूर होता है, शरीर कर्म हो जाता
लगता है अनेक विचित्र ही बात हैं मस्तककी
घूम जाती है और एक ही क्षण मनमें एक करण
मूलको पीसता है, सन्तोषेका नष्ट करता है धीरेका भा
है और आतुरता धारण करता है। ये सब लक्षण इस
फसानेके हैं। इसकी यह विनाशक शक्ति देखकर प
विचार कर सकते हैं कि इसकी विनाशकताकी आगे
क्या तुलना हो सकती है। इसलिये मंत्रमें कहा हुआ है
(विश्व-दाव्यः) अपनेको जलानेवाला इसके अंदर
डाले हो जाता है!!

इस सबका विचार करके पाठक कामकी दाहकता का
और इसकी दाहकतासे अपने आपको बचानेका उपाय करें।

न दुखनेवाला।

चतुर्थ मंत्रमें इसके विशेषण विश्वाद्, दाता, प्रति
गृभ्णन् धीरः शाक्वा परिभूः अदाभ्यः आये हैं
और इसीमें इसका नाम (य कामं आदुः) कहा करके
कहा है। अर्थात् इसी कामाग्निके ये गुणवाचक विशेषण हैं।
इसलिये इनके अर्थ देखिये—

यह काम (विश्वाद्) अपनेको खानेवाला (दाता)
दान देनेवाला (प्रतिगृभ्णन्) आलिंगन देनेवाला (धीरः)
धैर्य देनेवाला (शाक्वः) शक्तिवाली (परिभूः) सबसे
बढ़कर होनेवाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला है। (अ. ४)

विचार करनेपर ये विशेषण कामके विषयमें बड़े सार्थ हैं
ऐसा ही प्रतीत होगा। जिस समय मनमें काम उत्पन्न होता है

अध्यापक वय पूर्ण ब्रह्मचारी हों और राज्यशासनके अन्य अधिकारी भी उत्तम ब्रह्मचारी हों तो उस राज्यका वायुमण्डल ही ब्रह्मचर्यके लिये अनुकूल होगा और ऐसे राज्यमें रहनेवाले बालकोंका ब्रह्मचर्य रहना सुलभ होगा अथवा कामाग्निका शमन होना निःसन्देह सुसाध्य होगा। धन्य है ऐसे वैदिक राज्यको कि जहां सब अधिकारी वर्ग और अध्यापक वर्ग ब्रह्मचारी होते हैं। वैदिकधर्मियोंको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि ऐसे राज्य इस भूमण्डलपर स्थापित हों और सर्वत्र ब्रह्मचर्यका वायुमण्डल बने। इसके अतिरिक्त इस सूक्तका तीसरा अर्थ परमात्मा है। वह परमात्मा ही पूर्ण ब्रह्मचर्यका परम आदर्श है, इसकी भक्ति और उपासनसे कामाग्निका शमन होता ही है। सब ऋषिमुनि आर्य यही इसी परमात्म भक्तिकी साधनासे मन संयम द्वारा कामाग्निका शमन करके अमर हो गये।

इस प्रकार उपासक वर्णन इस सूक्तमें किया है। यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वका है। इसका पाठ बृहच्छान्तिमन्त्र में किया है। सचमुच यह सूक्त बृहती शान्ति करनेवाला ही है। जो पाठक इसके अनुष्ठानसे इस शान्तिकी साधना करेंगे वेही धन्य होंगे।

वर्चःप्राप्ति सूक्त।

(११)

(ऋषिः — वसिष्ठः। देवता — वर्चः बृहस्पतिः, विश्वेदेवाः)

हस्तिवर्चस प्रथतां बृहच्छ्रवो अदितेरिव यत्तन्युः सधस्थ्यं।
तत्सवें समदुर्मघमेवाद्विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ १ ॥
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेतति।
देवासो विश्वआयवस्ते मांजन्तु वर्चसा ॥ २ ॥
येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः।
येन देवा देवतामग्र आयन्तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥ ३ ॥

अर्थ— (यत् अदितेः तन्वः) जो अदितिके शरीरसे (संबभूव) उत्पन्न हुआ है वह (हस्तिवर्चसं बृहत् यशः) हाथीके बलके समान बड़ा यश (प्रथतां) फैले। (तत् एतत्) वह यह यश (सर्वे सजोषाः विश्वे देवाः अदितिः) सब एक मनवाले देव और अदिति (मह्यं सम् अदुः) मुझे देते हैं ॥ १ ॥

(मित्रः च वरुणः च इन्द्रः च रुद्रः च) मित्र वरुण इन्द्र और रुद्र (चेतति) उत्साह देवें। (ते विश्व आयसः देवाः) वे विश्वके धारक देव (वर्चसा मा अञ्जन्तु) तेजस मुझे युक्त करें ॥ २ ॥

(येन वर्चसा हस्ती संबभूव) जिस तेजसे हाथी उत्पन्न हुआ है और (येन मनुष्येषु अप्सु च अन्तः राजा संबभूव) जिस तेजसे मनुष्योंमें और जलोंके अन्दर राजा हुआ है, और (यन देवाः अग्रे देवतां आयन्) जिस तेजसे देवोंने पहले देवत्व प्राप्त किया (तेन वर्चसा) उस तेजसे हे अग्ने! (मां अद्य वर्चस्विनं कृणु) मुझ आज तेजस्वी कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह सूक्त अदितिके अन्दर बल है, जो हाथी आदि पशुओंमें आता है वह बल मुझमें आवे सब देव एक मनसे मुझे बल देवें ॥ १ ॥

मित्र वरुण इन्द्र और रुद्र ये विश्वके धारक देव मुझे उत्साह देवें ज्ञान देवें और मुझे तेजसे युक्त करें ॥ २ ॥

जिस बलसे हाथी सब पशुओंमें बलवान् हुआ है, जिस बलसे मनुष्योंके अन्दर राजा बलवान् होता है और भूमि तथा जलमें भी अपना आधिपत्य करता है जिस बलसे पहले देवोंने देवत्व प्राप्त किया था हे तेजके देव! यह बल आज मुझे प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

यत्ते वर्चो जातवेदो बृहद्भवत्याहुतेः ।
यावत्सूर्यस्य वर्चो आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ४ ॥

यावच्चतस्रः प्रदिशो यावद्द्यावापृथिवी महि ।
तावत्तमैन्द्रिन्द्रिय मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥ ५ ॥

हस्ती मृगाणां सुपदामतिष्ठावान्बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे (जातवेदः) जातवेद ! (ते यत् वर्चः आहुतेः बृहत् भवति) तेरा जो तेज आहुतियोंसे बड़ा होता है (यावत् सूर्यस्य आसुरस्य हस्तिनः च वर्चः) और जितना सूर्यका और आसुरी हाथी [मेघ] का बल और तेज होता है हे (पुष्करस्रजौ अश्विना) पुष्पमाला धारण करनेवाले अश्वि देवो ! (तावत् वर्चः मे आ धत्तां) उतना तेज मेरे लिये धारण कीजिये ॥ ४ ॥

यावत् (चतस्रः प्रदिशः) जितनी दूर चारों दिशायें हैं (यावत् द्यावापृथिवी महि समश्नुते) जितनी दूर तक पृथिवी और द्युलोक फैले हैं, (तावत् मयि तत् हस्तिवर्चसं इन्द्रियं) उतना मुझमें वह हाथीके समान इंद्रियोंका बल (इन्द्र देहि) हे इन्द्र ! होकर मिले ॥ ५ ॥

(हि सुपदां मृगाणां) जैसा अच्छे चलनेवाले पशुओंमें (हस्ती प्रतिष्ठावान् बभूव) हाथी बड़ा प्रतिष्ठावान् हुआ है, (तस्य भगेन वर्चसा) उसके ऐश्वर्य और तेजके साथ (अहं मां अभि षिञ्चामि) मैं अपने आपको अभिषिक्त करता हूं ॥ ६ ॥

भाषार्थ— हे बड़े हुएको जाननेवाले देव ! जो तेज अग्निमें आहुतियां देनेसे बढ़ता है जो तेज सूर्यमें है, जो असुरोंमें तथा हाथीमें वा मेघोंमें है, हे अश्विदेवो ! वह तेज मुझे दीजिये ॥ ४ ॥

चार दिशायें जितनी दूर फैली हैं, जितनी दूर मेरी दृष्टि जाती है उतनी दूरतक मेरे ब्रह्मवर्चका प्रभाव फैले ॥ ५ ॥

जैसा हाथी पशुओंमें बड़ा बलवान् है वैसा बल और ऐश्वर्य मैं प्राप्त करता हूं ॥ ६ ॥

शाकमांसभोजनसे बल बढ़ाना ।

शरीरका बल तेज आरोग्य वीर्य आदि बढ़ानेके उपायका उपदेश करनेवाला यह सूक्त है । प्राणियोंमें हाथीका शरीर (हस्तिवर्चस । मं १) बड़ा भारी और बलवान् भी होता है । हाथी शाकाहारी प्राणी है इसीका आदर्श देखने यहां दिया है, सिंह और व्याघ्रादिक आदर्श दिया नहीं । इससे सूचित होता है कि मनुष्य शाकभोजी रहता हुआ अपना बल बढ़ावे और बलवान् बने । वेदकी शाकाहार करनेके विषयकी आज्ञा इस सूक्त द्वारा अप्रत्यक्षतासे व्यक्त हो रही है यह बात पाठक यहां स्मरण रखें ।

बलप्राप्तिकी रीति ।

अदिति प्रकृतिका नाम है, उस मूल प्रकृतिमें बहुत बल है इस बलके कारण ही प्रकृतिको अदिति अर्थात् अ-दीन कहते हैं । इस प्रकृतिके ही पुत्र सूर्य-चंद्रादि देव हैं, इसीलिये इस प्रकृतिको देवमाता पूर्वादि देवोंकी माता कहा जाता है । मूल प्रकृतिका ही बल विविध देवोंमें विविध रीतिसे प्रकट हुआ है, सूर्यमें तेज वायुमें जीवन अग्निमें दीप्तता आदि गुण इन देवोंकी अदिति मातासे इनमें आ गये हैं । इस लिये प्रथम मंत्रमें कहा है कि इन सब देवोंसे प्रकृतिका अमर्याद बल मुझे प्राप्त हो । (मं १) बलयुक्त मनुष्यको जो बल प्राप्त

होता है यह इसी आप देव वायु आदि देवोंकी सहायतासे ही प्राप्त होता है किसी अन्य रीतिसे नहीं होता है। यह बल प्राप्त करनेकी रीति है। इन देवोंके साथ अपना संबंध करनेसे अपने शरीरका बल बढने लगता है। जलमें तैरने वायुमें भ्रमण करने अथवा सेकसूर करने धूपसे शरीरको तपाने अर्थात् शरीरकी चमडीके साथ इन देवोंका सम्बन्ध करनेसे शरीरका बल बढता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि तैरना मकानमें अपने आपको बन्द रखनेसे बल घटता है।

द्वितीय मंत्र कहता है कि ' (मित्र) सूर्य (वरुण:) जलदेव (इन्द्र:) विद्युत, (रुद्र:) अग्नि अथवा वायु ये विश्वपालक देव मेरी शक्ति बढावें। (मे) यदि इनके जीवन रसपूर्ण अमृत प्रवाहोंसे अपना संबंध ही टूट गया तो ये देव हमारी शक्ति कैसी बढावेंगे ? इस लिये बल बढाने वालोंको उचित है कि वे अपने शरीरकी चमडीका संबंध इन देवोंके अमृत प्रवाहोंके साथ योग्य प्रमाणसे होने दें। ऐसा करनेसे इनके अंदरका अमृत रस शरीरमें प्रविष्ट होगा और बल बढेगा।

अन्य मंत्रोंका आशय स्पष्ट ही है। मरियल और बलवान् होनेका सूक्ष्म कारण यहां इस सूक्तने स्पष्ट कर दिया है। जो पाठक इस सूक्तके उपदेशके अनुसार आचरण करेंगे वे निःसंदेह बल वीर्य दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त करेंगे।

वीर पुत्रकी उत्पत्ति।

(११)

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — सम्भृमा योनिः वायापृथिवी)

येन देवेदृतभूर्विप नाधृषाम्सि तत्त्वत् ।
इदं तदुन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥ १ ॥
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान्बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ २ ॥

अर्थ— (येन देवेदृत् अभूविप) जिस कारणसे तू अन्या हुई है (तत् त्वत् नाधृषाम्सि) वह कारण तुझसे हम दूर करते हैं। (तत् इदं) वह यह दोषापन (अन्यत्र त्वत् दूरे) दूसरी जगह तेरेसे दूर (अप नि दध्मसि) हम ले जाते हैं ॥ १ ॥

(पुमान् गर्भः ते योनिं आ एतु) पुरुष गर्भ तेरे गर्भाशयमें आ जाय (बाणः इषुधिं इव) जैसा बाण तूणीरमें होता है। (अत्र ते) यहां तेरा (दशमास्यः वीरः पुत्रः आ जायतां) दस महिने गर्भमें रहकर वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे स्त्री ! जिस दोषके कारण तुम्हारे गर्भाशयमें गर्भधारणा नहीं होती है और तू वन्ध्या बनी है वह दोष मैं तेरे गर्भसे दूर करता हूं और पूर्ण रीतिसे वह दोष तुझसे दूर करता हूं ॥ १ ॥

तेरे गर्भाशयमें पुरुष गर्भ उत्पन्न हो वह गर्भ यहां दस मासतक अच्छी प्रकार पुष्ट होता हुआ उससे उत्तम वीर पुत्र रूपमें उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्र जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयांश्च यान् ॥ ३ ॥
यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ ४ ॥
कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।
विन्दस्व त्वं पुत्र नारि यस्तुभ्यं क्रमसञ्छमु तस्मै त्वं भव ॥ ५ ॥
यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं बीरुधां बभूव।
तास्त्वा पुत्रविदाय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥ ६ ॥

अर्थ— (पुमांसं पुत्रं जनय) पुत्र पैदा उत्पन्न कर (तं अनु पुमान् जायतां) उसके पीछे भी पुत्र ही उत्पन्न होवे। इस प्रकार तू (पुत्राणां माता भवासि) पुत्रोंकी माता हो (जातानां यान् च जनयाः) जो पुत्र जन्मे हैं और जिनको तू इसके बाद उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

(यानि च भद्राणि बीजानि) जो कल्याणकारक बीज हैं जिनसे (ऋषभाः जनयन्ति) श्रेष्ठतम वनस्पतियां उत्पन्न करती हैं (तैः त्वं पुत्रं विन्दस्व) उनसे तू पुत्रको प्राप्त कर। (सा प्रसूः) वैसी प्रसूता होनेवाली तू (धेनुका भव) गौके समान उत्तम माता हो ॥ ४ ॥

(ते प्राजापत्यं कृणोमि) तेरे लिये प्रजा होनेका संस्कार मैं करता हूं। (गर्भः ते योनिं एतु) गर्भ तेरी योनिमें आवे। हे (नारि) स्त्री! (त्वं पुत्रं विन्दस्व) तू पुत्रको प्राप्त कर। (यः तुभ्यं क्रमसत्) जो तेरे लिये कल्याणकारी होवे और (यं च त्वं तस्मै क्रमसे) तू जिसके उसके लिये कल्याणकारिणी हो ॥ ५ ॥

(यासां द्यौः पिता) जिन ओषधियोंकी (द्यौः पिता) द्युलोक पिता है, (पृथिवी माता) पृथ्वी माता है, और (समुद्रः मूलं) समुद्र मूल (बभूव) हुआ है। (ताः दैवीः ओषधयः) वे दिव्य ओषधियां (त्वा पुत्रविदाय) तुझे पुत्र प्राप्त करनेके लिये (प्र अवन्तु) विशेष रक्षण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— पुत्र पैदा उत्पन्न कर। उसके पीछे दूसरा भी पुत्र ही होवे। इस प्रकार तू अनेक पुत्रोंकी माता हो ॥ ३ ॥

कल्याणक आदि औषधियोंके जो उत्तम बीज होते हैं उनका केवल पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर। और उत्तम वीर पुत्रोंको उत्पन्न कर ॥ ४ ॥

प्रजा उत्पन्न होनेका प्राजापत्य संस्कार मैं तुझपर करता हूं, उससे तेरे गर्भाशयमें पुत्र गर्भ उत्पन्न होवे और तू पुत्र पैदा करके उत्पन्न कर। वह पुत्र तेरा कल्याण करे और तू उसका कल्याण कर ॥ ५ ॥

जो औषधियां द्युलोकसे उत्पन्न होती हैं जिनका पालन दिव्य शक्तिसे होता है और जो समुद्रसे उत्पन्न हुई हैं, उन दिव्य औषधियोंका केवल पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर उससे तुम्हारे गर्भाशयका दोष दूर होगा और तुझे उत्तम संतान उत्पन्न होगा ॥ ६ ॥

वीर पुत्रका प्रसव।

वंध्या स्त्रीका वंध्यात्व दूर करके उसको उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न होने योग्य बनानेका इस सूक्तका प्राण है। पहले तीन मंत्रोंमें संबंध विचारोंकी सूचना द्वारा आंतरिक परिवर्तन करनेका उपाय कहा है। यदि किसी स्त्रीको औषधियों सम्बंधे पूरा पूरा निश्चय हो जावे कि अपना वन्ध्यापन दूर हुआ है, तो अवश्य वैसा ही अनुकूल परिवर्तन हो जाता संभव है। यदि मात्र निश्चयक कोई वैद्य अथवा डोक्टर न हो तो इस मानसिक विचार परिवर्तनसे भी आवश्यक स्थिति निर्माण संभव है।

इस कार्यके लिये प्राजापत्य इष्टि का प्रयोग पहले मंत्रमें कहा है। कल्याणक आदि दिव्य औषधियोंका संग्रह और उनके बीजोंका विधिपूर्वक संग्रह करनेका विधान चतुर्थ मंत्रमें है। कल्याणक औषधियोंका एक यंत्र हो है [illegible] यंत्र

बढ़ानेवाली शरीरके पुष्ट करनेवाली और वर्मालयके दोष दूर करके वहांका आरोग्य बढ़ानेवाली हैं। इन औषधियोंका सेवन करना, इनका सेवन करना और आरोग्यपूर्ण विचार मनमें धारण करना ये तीन उपाय संभाल दूर करनेके लिये इस सूक्तमें कहे हैं।

याजक वर्मालयके यह प्रायश्चित्त कह करे, यज्ञशेष आहुति रस खीको सिखाये और प्रथम तीन मंत्रोक्त आरोग्यके विचार आशीर्वाद रूपसे कहे– हे स्त्री! तेरे अंदर जो वर्म्यत्वका दोष था वह इस प्रायश्चित्त विधिसे दूर हो गया है, अब तुम्हारे वर्मालयमें पुत्र वर्म उत्पन्न होगा वहां वह वीर बालक दस मासतक पुष्ट होता रहेगा और पश्चात् योग्य समयमें उत्पन्न होगा। अब तू अनेक पुत्रोंकी माता बनेगी। (मं १–३)

इस प्रकारके मनःपूर्वक दिये हुए आशीर्वादसे तथा उस आशीर्वादकी अचल निश्चयसे स्वीकार करनेसे शरीरके अन्दर आवश्यक परिवर्तन हो जाता है। शिव संकल्पसे 'चिकित्सा' करनेकी रीति यह है। इस विषयके सूक्त अथर्व वेदमें अनेक हैं।

इस सूक्तमें ओषधयः शब्द बहुवचनान्त है, इससे अनुमान होता है कि इस सेचन विधिमें अनेक ओषधियां आती हैं। चतुर वैद्योंको इस विषयकी खोज करना चाहिये।

समृद्धिकी प्राप्ति।

(१४)

(ऋषिः — भृगुः। देवता — वनस्पतिः प्रजापतिः)

पर्यस्वतीरोषधयः पर्यस्वन्मामकं वचः। अथो पर्यस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥ १ ॥
वेदाहं पर्यस्वन्तं चकारं धान्यं बहु।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो योनावसञ्जनो गृहे ॥ २ ॥
इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः। वृष्टे यन्ति नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥ ३ ॥

अर्थ— (ओषधयः पयस्वतीः) ओषधियां रसवाली हैं, और (मामकं वचः पयस्वत्) मेरा वचन भी सार युक्त है। (अथो) इसलिये (पयस्वतीनां सहस्रशः) रसवाली ओषधियोंका हजारों प्रकारसे (अहं आ भरे) मैं सेवन पोषण करता हूं ॥ १ ॥

(पयस्वन्तं बहुधान्यं चकार) रसयुक्त बहुत धान्य उत्पन्न किया है उसकी रीति (अहं वेद) मैं जानता हूं। (यः वः असञ्जनः गृहे) जो पुरुष असावधानके घरमें है उसको (संभृत्वा नाम यः देवः) धैर्य धरके जानेवाला इस नामका जो देव है (तं वयं हवामहे) उसका हम वंदन करते हैं ॥ २ ॥

(इमाः याः पञ्च प्रदिशः) ये जो पांचों दिशाओंमें रहनेवाली (मानवीः पञ्च कृष्टयः) मनुष्योंकी पांच जातियां हैं वे (इह स्फातिं समावहान्) यहां इसलिये प्राप्त करें (इव) जिस प्रकार (वृष्टे नदीः यन्ति) वृष्टि होनेपर नदियां सब पूर्ण भर जाती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— मेरा भाषण मीठा होता है वैसी ही ओषधियां उत्तम रसवाली होती हैं इसलिये मैं विशेष प्रकारसे औषधियोंका पोषण करता हूं ॥ १ ॥

रसयुक्त उत्तम धान्य उत्पन्न करनेकी विधि मैं जानता हूं। इसलिये उस ऐश्वर्यवान् ईश्वरका मैं वंदन करता हूं जो असावधान मनुष्योंके घरमें भी समृद्धि करता है ॥ २ ॥

ये पांचों दिशाओंमें रहनेवाली मानवोंकी पांच जातियां उत्तम समृद्धि प्राप्त कर जैसी नदियां वृष्टि होनेपर भर जाती हैं ॥ ३ ॥

उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम्। एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥ ४ ॥
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥ ५ ॥
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो ब्रह्मपत्न्याः। तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥ ६ ॥
उपोदयं समूहथ शुचारौ ये प्रजापतेः। ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥ ७ ॥

अर्थ— (शतधारं सहस्रधारं अक्षितं उत्सं उत्) सैकड़ों और हजारों धाराओंवाले अक्षय झरने या तलाव-दिक जैसे चहिसे भर जाते हैं, (एव अस्माकं इदं धान्यं) इसी प्रकार हमारा यह धान्य (सहस्रधारं अक्षितं) हजारों धाराओंसे देता हुआ अक्षय होवे ॥ ४ ॥

हे (शत-हस्त) सौ हाथोंवाले मनुष्य ! (समाहर) इकट्ठा करके ले आओ। हे (सहस्र-हस्त) हजारों हाथों वाले मनुष्य ! (सं किर) उसको फैला दे दान कर। और (कृतस्य कार्यस्य च) किये हुये कर्मकी (इह स्फातिं समावह) यहां वृद्धि कर ॥ ५ ॥

(गन्धर्वाणां तिस्रः मात्राः) भूमिका धारण करनेवालोंकी तीन मात्राएं और (ब्रह्मपत्न्याः चतस्रः) वृहस्पति वेदकी चार होती हैं। (तासां या स्फाति-मत्-तमा) उनमें जो अत्यंत समृद्धिवाली है (तया त्वा अभि मृशामसि) उससे तुझको हम संयुक्त करते हैं ॥ ६ ॥

हे (प्रजापते) प्रजाके पालक ! (उपोदयं च) उठाकर लानेवाला और (समूहः च) इकट्ठा करनेवाला ये दोनों (ये शुचारौ) जिन सहायक करनेवाले हैं। (तौ इह स्फातिं) वे दोनों यहां वृद्धिको लावें और (बहुं अक्षितं भूमानं बा बहतां) बहुत अक्षय भरपूरताको लावें ॥ ७ ॥

भावार्थ— वृष्टि होनेसे तालाब आदि जलाशय जैसे भरपूर भर जाते हैं उसी प्रकार हमारे घरोंमें अनेक प्रकारके धान्य भरपूर और अक्षय हो जावें ॥ ४ ॥

हे मनुष्य ! तू सौ हाथोंवाला होकर धन प्राप्त कर और हजार हाथोंवाला बनकर उसका दान कर। इस प्रकार अपने कर्तव्य कर्मकी उन्नति कर ॥ ५ ॥

ऐसा करनेसे ही अधिकसे अधिक समृद्धि हम तुमको देते हैं ॥ ६ ॥

लानेवाला और संग्रहकर्ता ये दोनों प्रजापालन करनेवालेके सहायी हैं। अतः वे दोनों इस स्थानपर उपस्थित हों और अक्षय समृद्धि प्राप्त कर ॥ ७ ॥

समृद्धिकी प्राप्तिके उपाय।

समृद्धि हरएक चाहता है परंतु उसकी प्राप्तिका उपाय बहुत थोडे जानते हैं। समृद्धिकी प्राप्तिके कुछ उपाय इस सूक्तमें कहे हैं। जो लोग समृद्धि प्राप्त करना चाहते हैं वे इस सूक्तका अच्छी प्रकार मनन करें। समृद्धिकी प्राप्तिके लिये पहिला नियम मीठी वाणी है—

पयस्वान् मामकं वचः। (सू २४ मं १)

इस लिये मधुर मेरा वचन हो भाषणमें मधुरता रखनेवाला मीठास सुननेवालोंकी तृप्ति करनेका गुण रहे। समृद्धि प्राप्त करनेके लिये मीठे भाषण करनेके गुणकी अर्थात् आवश्यकता है। आत्मपरिचय यह पहला और आवश्यक नियम है। इसके पश्चात् समृद्धि बढानेका दूसरा नियम है दानशूरत्व वृत्तिको वृद्धि करना। —

पयस्वतीर्नः आसन्दीः सहस्रशः। (सू २४ मं १)

वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु। (सू २४ मं २)

रसवाली ओषधियोंका मैं हजारों प्रकारसे पोषण करता हूं, बहुत धान्य जैसा अन्नरस सिद्ध करते हैं, वह विद्या मैं जानता हूं। अर्थात् उपाय वृत्ति करनेकी विद्या जानना और उसके अनुसार वृत्ति करके अपना धान्यसंग्रह बढाना समृद्धि

होनेके लिये अवश्य आवश्यक है। रुपया धान्य अपने पास न हुआ तो अन्य समृद्धि होनेसे कोई विशेष काम नहीं है। मीठा भाषण करनेवाला मनुष्य हुआ तो उसके पास बहुत मनुष्य इकट्ठे हो सकते हैं, और उसके पास रुपया धान्य हुआ तो वे आनंदसे तृप्त हो सकते हैं। इसके पश्चात् सामुदायिक उपासना करना समृद्धिके लिये आवश्यक होता है—

सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे
यो-यो अपजज्ञनो गृहे ७ (सू २४ मं २)

जो गृह न करनेवालोंके भी घरमें (उनके पोषणके सामान रखता है वह धनवान) संभारकर्ता नामक देव है उसकी उपासना हम करते हैं। परमेश्वर सबका पालने हार है, उसकी कृपादृष्टि सबोंपर रहती है ऐसा जो धनवान ईश्वर है उसकी उपासना करनेसे समृद्धि बढ़ जाती है। जो देव अन्नादिकोंकी भी पुष्टिके साधन देता है वह तो यज्ञकर्मोंका पोषण करेगा ही इसलिये ईश्वरभक्ति करना समृद्धि प्राप्त करनेका मुख्य साधन है। इस मंत्रमें हवामहे यह बहुवचनमें पद है, इसलिये बहुतों द्वारा मिल कर उपासना करनेका—यह करनेका भाव इससे स्पष्ट होता।

मिलकर उपासना करनेसे और पूर्वोक्त दोनों नियमोंका पालन करनेसे चारों मनुष्योंकी अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, निवासोंकी मिलकर उन्नति हो सकती है। (मं १) उन्नतिका यह नियम है। जिस प्रकार वृष्टि हुई तो नदी बहती है अन्यथा नहीं इसी प्रकार पूर्वोक्त तीनों नियमोंका पालन हुआ तो मनुष्योंकी उन्नति निःसंदेह होगी। पाठक इस नियमोंका अवश्य स्मरण रखें।

समृद्धि होनेके लिये रुपया धान्यकी विपुलता अपने पास अवश्य होनी चाहिये यह भाव विशेष दृढ़ करनेके लिये चतुर्थ मंत्रमें हजारों प्रकारकी मधुर रसवाराओंसे युक्त अन्न धान्यका संग्रह अपने पास रखनेका उपदेश किया है। यह विशेष ही महत्वका उपदेश है। इस प्रकार धनधान्यकी विपुलता होनेपर ज्ञान उत्पन्न होगा और उस स्वर्गके कारण आत्मोन्नति होना सुलभ या असंभव है। इसलिये पंचम मंत्रमें दान देनेके समय विशेष उदारता रखनेका भी उपदेश किया है—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
(सू. २४ मं ५)

सौ हाथोंवाला होकर कमाई करो और हजार हाथोंवाला बनकर उसका दान करो। यह उपदेश हरएक मनुष्यको अपने हृदयमें स्थिर करना अत्यंत आवश्यक है। इस उदार भावके बिना मनुष्यकी उन्नति असंभव है। इसके पश्चात् वेद कहता है कि—

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।
(सू. २४, मं. ५)

इस प्रकार अपने कर्तव्यकर्मकी यहां उन्नति करो। जो पूर्वोक्त स्थानमें उन्नतिके नियम कहे हैं, उन नियमोंका पालन करने द्वारा अपने कर्तव्यके क्षेत्रका विस्तार करो यह उपदेश मनन करने योग्य है। (कार्यस्य स्फातिं समावह) ' ये शब्द हरएक मनुष्यके कार्यक्षेत्रके विषयमें कहे हैं ब्राह्मण अपना ज्ञान विषयक कार्यक्षेत्र बढ़ाने क्षत्रिय अपना प्रजा रक्षण रूप कार्यक्षेत्र बढ़ावे वैश्य कृषि गोरक्षण वाणिज्य आदिमें अपने कार्यक्षेत्रकी वृद्धि करे शूद्र अपने कारीगरीके कार्य बढ़ाने और निवास अपने जो धनरक्षा विषयक कर्तव्य हैं उनकी वृद्धि करे। इस प्रकार सबकी उन्नति हुई तो संपूर्ण पंचजनोंका अर्थात् सब राष्ट्रका सुख बढ़ सकता है और उसकी सामुदायिक उन्नति हो सकती है। हरएकको अपनी (स्फाति) बढ़ती उन्नति वृद्धि समृद्धि करनेके लिये अवश्य ही कटिबद्ध होना चाहिये। अपनी संपूर्ण शक्तियोंका विकास अवश्य करना चाहिये।

मुख्य दो साधन।

समृद्धि प्राप्त करनेके दो मुख्य साधन हैं। 'उपोहः' और समूहः इनके विशेष अर्थ देखिये—

१ उपोहः- (उप-ऊहः) इकट्ठा करना संग्रह करना एक स्थानपर आकर रखना।

२ समूहः- समुदायोंमें पाडकर वर्गीकरण करना।

पहली बात है संग्रह करना और दूसरी बात है उन संगृहीत द्रव्योंको वर्गीकरण द्वारा समुचित रीतिसे व्यवस्थित रखना। इसीसे शास्त्र बनता और बढ़ता है। वृक्ष-वनस्पतियोंका संग्रह करने और उनका वर्गीकरण करनेसे वनस्पतिशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। वस्तुसंग्रहालयमें देखिये वहां पदार्थोंका संग्रह किया जाता है और उनको वर्गोंमें सुव्यवस्थित रखा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो वस्तुसंग्रहालयोंसे किञ्चित् काम नहीं होगा। इसी प्रकार अपने घरमें वस्तुओंका संग्रह करना चाहिये और उनको वर्गोंमें अपने अपने सुयोग्य क्रमपूर्वक सुव्यवस्थित रखना चाहिये। तभी उन्नति या समृद्धि हो सकती है।

आप मंत्रमें उपोहः (संग्रह) और समूहः (समूहोंमें वर्गीकरण करना) ये दो बातें समृद्धिकी साधक बतायी गयी

है । यह बहुत ही महत्वका विषय है, इसलिये पाठक इसका मनन करें और अपने जीवनमार्ग काम देनेवाला यह उत्तम उपदेश है यह जानकर इससे बहुत काम उठावें ।

उन्नति और वर्धीकरण उन्नतिके साधक हैं इस विषयमें साम मन्त्रका कथन ही स्पष्ट है—

तौ इह स्फातिं मा यच्छताम् ।
अस्मिन यज्ञे भूमानम् ॥ (सू २४ मं. ७)

वे [अर्थात् उन्नति और वर्धीकरण ये] दोनों इस संसारमें (स्फातिं) उन्नतिको देते हैं और (भूमानं) विपुल धन अथवा विशेष महत्व देते हैं ।

जिसको उन्नति और धन चाहिये वे इन गुणोंको अपनावें और इनसे अपना काम सिद्ध करें । जो लोग अभ्युदय प्राप्त करनेके इच्छुक हैं उनको इस सूक्तका बहुत मनन करना चाहिये । उनसे कम इस सूक्तमें अंकित जो महत्वपूर्ण उपदेश हैं, उनको कभी भूलना उचित नहीं है । जो पाठक इस सूक्तका मनन करेंगे वे अपने अभ्युदयका मार्ग इस सूक्तके विचारसे निःसंदेह पा सकते हैं ।

काम का बाण ।

(१५)

(ऋषिः — भृगुः । देवता — मित्रावरुणौ कामेषुः)

उद्बुदस्योदुदु मा धृषाः शयने स्वे । इषुः कामस्य या मीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ १ ॥
प्राचीनपक्षां कामबस्त्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् । तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥ २ ॥
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता । प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥

अर्थ— (उद्बुदः त्वा उद्बुदतु) हिलानेवाला काम तुझे हिला देवे । (स्वे शयने मा धृषाः) अपने अन्तर्मे मत ठहर । (कामस्य या मीमा इषुः) कामका जो भयानक बाण है (तया त्वा हृदि विध्यामि) उससे तुझको हृदयमें वेधता हूं ॥ १ ॥

(प्राची-पक्षां) जिसपर मानसिक पीडा रूपी पंख लगे हैं (काम-बस्त्यां) कामेच्छा रूपी बाणका अस्थान नहीं लगाता है, (संकल्प-कुल्मलां) संकल्प रूपी दण्डा जहां लगा है, (तां) उस (इषुं) बाणको (सुसंनतां कृत्वा) ठीक प्रकार लक्ष्यपर करके (कामः हृदि त्वा विध्यतु) काम हृदयमें तुझको वेध करे ॥ २ ॥

(कामस्य सुसंनता) कामका ठीक लक्ष्यपर लगाया हुआ (प्राचीन-पक्षा वि-शोषा) पीछे पक्षोंवाला और विशेष जलानेवाला (या इषुः प्लीहानं शोषयति) जो बाण तिल्लीको सुखा देता है (तया त्वा हृदि विध्यामि) उससे तुझको हृदयमें वेधता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्त्री ! सबको हिलानेवाला काम तेरे अन्तःकरणको भी हिला देवे । कामका बाण तेरे हृदयका वेध करे जिससे विद्ध हुई तू दुःखसे विह्वल होनेमें भी असमर्थ हो ॥ १ ॥

इस कामके बाणको मानसिक पीडा रूपी पंख लगे हैं, इसके आगे कामसिद्धिका रूपी लोहेका तीक्ष्ण अस्त्र लगाया है उसके पीछे पवित्र संकल्प रूपी दण्डा जोड दिया है, इस प्रकारसे बाणको अति तीक्ष्ण बनाकर काम तेरे हृदयका वेध करे ॥ २ ॥

यह कामका बाण अचूक लगता है, क्योंकि इसपर मानसिक व्यथाके पंख लगे हैं और साथ ही यह विशेष रीतिसे जलानेका काम भी है और यह तिल्लीको निश्चयसे सुखा देता है इसलिये मैं तुझे वेधता हूं ॥ ३ ॥

शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्यामि सर्पं मा । मृदुर्निर्मन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥ ४ ॥
आ त्वाभि स्वाऽवन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥
व्यस्मै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

अर्थ—(व्योषया) विशेष दाह करनेवाले (शुचा) शोक पहुंचानेवाले बाणके द्वारा (विद्धा) बिंधी हुई तू (शुष्कास्या) सूखे मुखवाली (मा अभिसर्प) मेरी ओर चली आ। और (मृदुः) कोमल (निर्मन्युः) क्रोधरहित (प्रियवादिनी) मीठा भाषण करनेवाली (अनुव्रता) अनुकूल कर्म करनेवाली (केवली) केवल मेरी ही इच्छा करनेवाली हो ॥ ४ ॥

(त्वा आ-अभ्यन्या) तुझको केवल (परि मातुः अथो पितुः) माता और पिताके पाससे (आ अभ्यामि) आता हूं। (यथा मम क्रतौ असः) जिससे मेरे अनुकूल कर्ममें तू रहे और (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तके अनुकूल बने ॥ ५ ॥

हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (अस्यै) इसके लिये (हृदः चित्तानि अस्यतं) हृदयके विचारोंको विशेष प्रकार प्रेरित करो। (अथ एनां अक्रतुं कृत्वा) और इसको कर्महीन बनाकर (मम एव वशे कृणुतं) मेरे ही वशमें करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह कामका बाण विशेष जलानेवाला शोक पहुंचानेवाला और मुखको सुखानेवाला है, हे स्त्री! इससे बिंधी हुई तू मेरे पास आ और क्रोधरहित, मधुरभाषिणी अनुकूल आचरण करनेवाली और केवल मुझमें ही अनुरक्त होकर मेरे साथ रह ॥ ४ ॥

हे स्त्री ! माता और पितासे अलग करके तेरे तुझे यहां लाया है, इसलिये तू मेरे अनुकूल कर्म करनेवाली और मेरे विचारोंके अनुकूल विचार करनेवाली बनकर यहां रह ॥ ५ ॥

हे मित्र और हे वरुण ! इस स्त्रीके हृदयके विचारोंमें विशेष प्रेरणा करो जिससे यह मेरे अनुकूल कर्मके सिवाय दूसरे किसी कर्ममें इसको प्रेम न रहे तथा यह कर्मपत्नी मेरे ही वशमें रहे ॥ ६ ॥

विरुद्ध परिणामी अलंकार।

विरुद्ध परिणामी अलंकार का उत्तम उदाहरण यह सूक्त है। विरुद्ध परिणाम जिसका होता है जो सोचा जाता है उससे उल्टा परिणाम जिससे निकलता है जैसे जलनेवाले कर्मोंका एकाएक जो हो उससे विरुद्ध भावनका भाव जिसके अन्दर हो उसको विरुद्ध परिणामी अलंकार कहते हैं। इसके एक दो उदाहरण देखिये—

(१) हृदयको जलानेवाली जलन भाव करनेवाली उद्वेगमें डालने उत्पन्न करनेवाली और शरीरको सुखानेवाली जलन जिसमें। इस वाक्यमें यद्यपि जलन जिसमें करके कहा है तथापि जलनका दुर्गुण प्रथम इतने स्पष्ट शब्दोंसे लिखा है कि उससे सुननेवालेकी प्रवृत्ति न पीनेकी ओर ही होती है।

(२) जिसके शरीर पुष्ट होता है और अङ्गप्रत्यङ्ग पालन होनेसे अत्यन्त सुन्दर बल और वीर्य सोभन निःसंदेह प्राप्त होता है, इस प्रकारका आसन प्राणायामादिका योगसाधन कभी मूलकर भी मत करो। इसमें यद्यपि योगसाधन करनेका स्पष्ट निषेध है तथापि सुननेवालेके मनपर योगसाधन अवश्य करना चाहिये यह भाव स्थिर हो जाता है।

ये भावके चमत्कारालंकार हैं, योग्य कर्मपर ये प्रयुक्त किये जाते तो इनका सुपरिणाम ही होता है। अब इस सूक्तका क्रम देखिये—

हे स्त्री ! कामके बाणसे मैं तुझे हृदयको बेधता हूं इस कामके बाणकी मानसिक व्यथा के सुन्दर वर्णन हैं इसमें जो क्रोधका अभाव है वह मानसिक विचार का क्रम है

है, मनके कुसंकल्पों की जड़कोंसे इस बालको बनाया है, यह बड़ा जलानेवाला ' है यह कामनेसे सुख सूख जाता है, स्त्रीहा सूख जाती है, हृदय थक जाता है, इस प्रकारके कामके निवारक बाणसे मैं तेरा भेद करता हूं, इसलिये तू विद्ध हो जाओ।

इसमें यद्यपि कामके बाणसे विद्ध हो जाओ ऐसा कहा है, तथापि इस कामके बाणका स्वरूप इतना भयंकर वर्णन किया है कि जिसका परिणाम भुगतनेवालेके ऊपर इस कामके बाणसे अपना प्रभाव करने की ओर ही होगा। इस सूक्तमें जो कामके बाण का वर्णन किया है वे शब्द देखिये—

कामके बाण।

१ वसुदः = धनका देनेवाला शरीरको काट काट कर पीड़ा देनेवाला। (मं १)

२ भीमा इषुः = जिसका भयंकर परिणाम होता है ऐसा भयानक बाण। (मं. १)

३ आधी-पर्णा = इस बाणको मानसिक व्यथाके पंख लगे हैं। (मं २)

४ काम-शल्या = लोहेकी पतली इक्कड़ रूपी अथवा कामविकार रूपी शल्य जिसमें लगा है। बाणका जो भयानकसे भयंकर होता है वह यहां कामविकार है। (मं २)

५ संकल्प-कुल्मला = मनके कामविषयक संकल्प रूपी जड़कोंसे यह बाण बनाया गया है। (मं २)

६ प्राचीन-पक्षा = इसको जो मानसिक व्यथाके पंख लगे हैं वे ऐसे लगे हैं कि जिनके कारण यह बाण सीधी गतिसे और लक्षितसे जाता है। (मं १)

७ शुचा (शुच्) = शोक संताप करनेवाला। (मं ४)

८ व्योषा (वि आपा) = विशेष रीतिसे जलानेवाला। (मं १-४)

९ शुष्कास्या (शुष्क-आस्या) = सुखका सुखानेवाला मुखको म्लान करनेवाला। (मं ४)

१० हृदि शोचयति = हृदयको सुखा देता है। शरीरमें स्त्रीहा एकही वृद्धि करने द्वारा शरीर सारल्य रखती है ऐसे महत्त्वरूप अवयवका नाश कामके बाणसे हो जाता है। इतनी मारकता इस मदनके बाणमें है। (मं १)

११ हृदि विरुपति = इसका घाव हृदयमें होता है, इससे हृदय विदीर्ण होता जाता है हृदयकी उत्पत्ति कामके बाणसे होती है। (मं. १ १)

कामके बाणका यह भयंकर वर्णन इन शब्दों द्वारा इस सूक्तमें किया है। हे स्त्री! ऐसे भयंकर बाणसे मैं तेरा भेद करता हूं। ऐसा एक पुरुष अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। पति भी जानता है कि जिस शरसे भेद करता है वह कामका शर इतना भयंकर विनाशक है। इस बाणसे न केवल विद्ध होनेवाला ही कष्ट पाता है अपितु भेद करनेवाला भी कष्ट पाता है, अर्थात् यदि पतिने यह कामका शर अपनी धर्मपत्नीपर चलाया तो वह जैसा धर्मपत्नीको कष्टता है उसी प्रकार पतिको भी कष्टता है और पूर्वोक्त ग्यारह दुष्परिणाम करता है। यह बात सर्व पति जानता है तथापि पति कहता है कि हे स्त्री! ऐसे बाणसे मैं तेरा भेद करता हूं।

यह पतिका भाषण उसकी धर्मपत्नी सुनती है अर्थात् धर्मपत्नी भी इस कामबाणकी विध्वंसक शक्तिको अच्छी प्रकार जानती है और यदि कोई स्त्री न जानती हो तो इस शब्दोंद्वारा बोध जानकारी कि यह कामव्यवहार कितना घातक है। इतना बोध होनेके पश्चात् वह धर्मपत्नी स्वयं अपने पतिसे कहेगी कि हे प्राणनाथ! आप ऐसे घातक कर्ममें प्रवृत्त न हुजिये। जो कर्म करना है उसकी भयानक घातकताका बोध करनेके पश्चात् वह कर्म अधिक नहीं हो सकता जितना आवश्यक है उतना ही होगा कभी अधिक नहीं होगा।

पतिपत्नीका एक मत।

इस सूक्तमें यही बात पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। यह धर्मपत्नी अपने मातापिताके घरको छोड़कर पतिके घर पतिके साथ रहने आयी है। (देखो मं ५) धर्मपत्नी बनना है इस बातमें मनका संयम करना बड़ा कठिन कर्म होता है। तरुण लोग भोगनेके इच्छुक होते हैं, परिणामपर दृष्टि नहीं रख सकते। केवल लोग भोगनेके इच्छुक रहते हैं परंतु सच बात ऐसा है कि—

समुद्र इव हि कामः। सेव हि कामस्यान्तोऽस्ति ॥ समुद्रस्य ॥ कामः पशुः ॥ है ना २।२।१५।६ शतपथ ब्रा. ४

समुद्रके समान काम है क्योंकि जैसा समुद्रका अन्त नहीं होता है वैसा ही कामका भी अन्त नहीं होता है। तथा काम ही पशु है।

यह काम भोग भोगनेसे कम नहीं होता है अपितु बढ़ता जाता है। यह पशु होनेसे इसके उपासक पशुतुल्य होते हैं, वा इस कामकी पशुता अपने अन्दर बढ़ाते हैं वे मानो पशु भावको अपने अन्दर बढ़ाते हैं। जिनके अन्दर यह पशुभाव

बड़ा ही उनको मनुष्य कहना कठिन हो जाता है। क्योंकि मनन करनेवालेका नाम मनुष्य होता है और मनकी मनन शक्ति तो कामसे नष्ट हो जाती है। काम मनमें ही उत्पन्न हो जाता है और वहीं बढ़ता हुआ मननशक्तिको ही नष्ट कर देता है। इसी कारण शास्त्रमें यदि मनके अन्दर काम बढ़ गया तो वह मनुष्य विवेकभ्रष्ट हो जाता है।

अब अपने प्रस्तुत विषयकी ओर देखिये। धर्मपत्नी दूसरे घरसे आती है। माताको और पिताको अपने भाइयों और अन्यके सम्बन्धियोंको इस लोने छोड़ दिया है और पतिको अपने धन और मनका स्वामी माना है। इस प्रकार स्त्रीका पतिके पास आकर रहना एक प्रकारसे पतिके कामकी जिम्मेवारी बढ़ानेवाला है। पतिको यह अपना उत्तरदायित्व ध्यानमें रखना चाहिये।

अब देखिये एक प्रकार अपने माता-पिताओंको छोड़कर जो पतिके घर आ गई और यदि शास्त्रमर्यादाके शरीरधर्मके अनुसार उसको यौवन सुख प्राप्ति न हुई, तो उसका चित्त अन्यत्र जानेकी भी संभावना है। पति समदम आदि शम और ब्रह्मचर्य पालन करने लगेगा और गृहस्थधर्म प्राप्त अपने स्त्रीविषयक कर्तव्यको न करेगा तो स्त्रीके मनकी कितनी अधोगति होना संभव है, इसका विचार पाठक करें और पतिका उत्तरदायित्व जानें।

समदम ब्रह्मचर्य आदि एक उत्तम है मनुष्यात्माका विकास करनेवाला है यह सब सच है, परंतु विवाहित हो जानेपर स्त्रीके मनोधर्मका भी विचार करना चाहिये। यह कर्तव्य ही है। इस कर्तव्यसे वीर्य हानिद्वारा बोझा पतन होता है, तथापि यह कर्तव्य करना ही चाहिये। स्त्रीने मातापिता छोड़नेका बड़ा त्याग किया है। यह सीधा पक्ष है। पतिको भी अपना ब्रह्मचर्य भी छोड़कर गृहस्थी धर्मका यथाशास्त्रधर्मका स्वीकार करके अपनी ओरका त्याग करना चाहिये। यही उसका पक्ष है। ऐसा पतिने न किया तो वह स्त्रीको अयोग्यमार्गमें प्रवृत्त करनेका भागी बनेगा।

इस सूक्तमें जो पति अपनी धर्मपत्नीका हृदय कामके लिये नष्ट भ्रष्ट विद्ध करना चाहता है वह इसी हेतुसे चाहता है। इसलिये इस कामके बाणकी भयानक विध्वंसक शक्तिका वर्णन करता हुआ पति स्त्रीसे कहता है कि ऐसे भयानक बाणसे मैं तेरे चित्तका अपने कर्तव्यपालन करनेके हेतुसे ही वेध करता हूं। इस वर्णनको सुनकर स्त्री भी समझे कि यह जो कामोपभोगका विचार मनमें उत्पन्न हुआ है यदि इस उपभोगके लिये मनको खुला छोड़ दिया जाय तो कितनी भयानक अवस्था बन जायगी।

इस विचारसे उस स्त्रीके मनमें भी कामको शमन करनेकी ही लहर उठ सकती है और यदि पतिने इस सूक्तके बताये मार्गसे अपने स्त्रीके मनमें यह संयमकी लहर बहायी तो अन्तमें आकर दोनोंका कल्याण हो जाता है।

परन्तु यदि पतिने अपरदक्षतासे स्त्रीको कामप्रवृत्तिसे रोक रखा तो उस स्त्रीके अन्दरके कामविषयक संस्कार बहुत बढ़ जायेंगे और अन्तमें उसके अधःपातके विषयमें कुछ संदेह ही नहीं रहेगा। ऐसा अधःपात न हो इसलिये ऋतुधर्मी होने आदि परिमित गृहस्थधर्म पालन करनेके नियमोंकी प्रवृत्ति हुई है। साथ ही साथ कामकी भयानक विनाशकताका ही विचार होता रहेगा तो उससे बचनेकी और हरएक संयुक्तकी प्रवृत्ति होगी। इसलिये पति स्वयं संयम करना चाहता है और अपनी धर्मपत्नीको अपने अनुकूल धर्माचरण करनेवाली भी बनाना चाहता है। यह करनेके लिये पति स्वयं सुविचारोंकी आप्ति करता है और देवोंकी प्रार्थना द्वारा भी दैवी शक्तिकी सहायता लेनेका इच्छुक है। इसीलिये यह मन्त्रमें मित्रावरुण देवतोंकी प्रार्थना की गई है कि हे देवो! इस धर्मपत्नीको मेरे अनुकूल रहने और मेरे अनुकूल धर्माचरण करनेकी बुद्धि दीजिये। इस धर्मपत्नीके मनके विचारोंमें ऐसा परिवर्तन कीजिये कि वह दूसरा कोई विचार मनमें न लाकर मेरे अनुकूल ही धर्माचरण करती रहे, दूसरे किसी धर्ममें अपना मन न दौड़े। (मं ६)

धर्मपतिको अपनी धर्मपत्नीके विषयमें यह रक्षकता धारण करना आवश्यक ही है। पतिको उचित है कि वह अपनी धर्मपत्नीको सन्तुष्ट रखता हुआ उसका संयमके मार्गसे चलाये। धर्मपत्नीके गुण इसी सूक्तमें दिये हैं—

धर्मपत्नीके गुण।

१ मृदुः = नरम स्वभाववाली शांत स्वभाववाली। (मं ४)

२ तिमन्युः = क्रोध न करनेवाली शान्तिसे धर्म करनेवाली। (मं ४)

३ शिवसादिनी = मधुर भाषण करनेवाली। (मं ४)

४ अनुव्रता = पतिके अनुकूल धर्म करनेवाली। (मं ४)

५ (अस) वशे = पतिके वशमें रहनेवाली पतिकी आज्ञामें रहनेवाली। (मं ७)

६ केवली = केवल पतिकी ही बनकर रहनेवाली। (मं ४)

७ (मम) चित्त उपायसि = पतिके चित्तके समान अपना चित्त बनानेवाली । (मं ५)

८ अक्रतुः = पतिके विरुद्ध कोई कर्म न करनेवाली । (मं ६)

९ (मम) क्रतौ वशः = पतिके यज्ञोपमें सहायता देनेवाली । (मं ५)

ये शब्द धर्मपत्नीके कर्तव्य बता रहे हैं । पाठक इन शब्दोंका विचार करें और आर्यस्त्रियां इस अमूल्य उपदेशसे अपनालोक सफल करें ।

गृहस्थधर्म ।

इस प्रकारकी अनुकूल कर्म करनेवाली धर्मपत्नीको पति कहता है कि हे स्त्री ! मैं तेरे हृदयको ऐसे मनोहर कामके बाणसे बेधता हूं । पति जानता है कि यह कामका बाण बड़ा घातक है, ब्रह्मचर्यमें विघ्न होनेके कारण बड़ा हानिकारक है । धर्मपत्नी पतिके अनुकूल चलनेवाली होनेके कारण वह भी जानती है कि यह कामका बाण तपस्यामें विघ्न करनेवाला है । तथापि दोनों गृहस्थी धर्म से संयुक्त हैं इसलिये संतानोत्पत्ति करनेके लिये बाधित हैं । अतः दोनों गृहस्थधर्मसे संयुक्त होते हैं । धर्मनियमानुकूल अनुगामी होकर घरमें संयुक्त होकर और बालक उत्पन्न करती हैं और पश्चात् अपनी तपस्यामें लग जाती हैं ।

पाठक इस दृष्टिसे विचार करें और इस सूक्तका महत्त्वपूर्ण उपदेश धारें । इस पंचम अनुवाकमें पांच सूक्त हैं । २१ वें सूक्तमें कामाग्निका वर्णन २२ वें सूक्तमें वर्चसूची प्राप्ति २३ वें सूक्तमें संन्यास दोष निवारणपूर्वक और बालक उत्पन्न करनेकी विद्या २४ वें सूक्तमें समृद्धिको प्राप्त करना और इस २५ वें सूक्तमें गृहस्थधर्मके नियमानुकूल रहकर गृहस्थ धर्मका पालन करना ये विषय हैं । इनका परस्पर संबंध स्पष्ट है ।

॥ यहां पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

उन्नति की दिशा ।

(१६)

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — अग्न्यादयः नानादेवताः)

ये॒ऽस्यां स्व प्राच्यां दि॒शि हे॒तयो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो॒ ऽग्निरिष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नमस्तेभ्यो॑ वः स्वाहा ॥ १ ॥

ये॒ऽस्यां स्व दक्षि॑णायां दि॒शि॒ वि॒ध्यन्तो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वः॒ काम॒ इष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नमस्तेभ्यो॑ वः स्वाहा ॥ २ ॥

ये॒ऽस्यां स्व प्र॒तीच्यां॑ दि॒शि वै॑रा॒जा नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ व॒ आप॒ इष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः स्वाहा ॥ ३ ॥

ये॒ऽस्यां स्वोदी॑च्यां दि॒शि प्र॒वि॒ध्यन्तो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो॒ वात॒ इष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः स्वाहा ॥ ४ ॥

ये॒ऽस्यां स्व ध्रु॒वायां॑ दि॒शि नि॑लिम्पा॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ व॒ ओष॑धीरिष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ— (ये अस्यां प्राच्यां दिशि) जो तुम इस पूर्व दिशामें (हेतयः नाम देवाः) वज्र नामवाले देव हो (तेषां वः) उन तुम्हारा (अग्निः इषवः) अग्नि बाण है । (ते नः मृडत) वे तुम हमें सुखी करो (ते नः अधिब्रूत) वे तुम हमें उपदेश करो । (तेभ्यः वः नमः) उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे (तेभ्यः स्वाहा) उन तुम्हारे लिये हम अपना समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

जो तुम इस (दक्षिणायां दिशि) दक्षिण दिशामें (मर्मविध्यन्तो नाम देवाः) रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले इस नामके जो देव हो (तेषां वः कामः इषवः) उन तुम्हारा काम बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और हमें उपदेश करो उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे और तुम्हारे लिये हम अपना अर्पण करते हैं ॥ २ ॥

जो तुम इस (प्रतीच्यां दिशि) पश्चिम दिशामें (वैराजा नाम देवाः) वि ।ज नामक देव हो उन तुम्हारा (आपः इषवः) जल ही बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ३ ॥

जो तुम इस (उदीच्यां दिशि) उत्तर दिशामें (प्रविध्यन्तः नाम देवाः) वध करनेवाले इस नामके देव हो उन तुम्हारा (वातः इषवः) वायु बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ४ ॥

जो तुम इस (ध्रुवायां दिशि) ध्रुव दिशामें (निलिम्पा नाम देवाः) निलिम्प नामक देव हो उन तुम्हारा (ओषधीः इषवः) ओषधी बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ५ ॥

*

येऽस्यां स्योर्व्यां दिश्यर्वाञ्चस्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ— जो तुम इस (ऊर्ध्वायां दिशि) ऊर्ध्व दिशामें (अवस्वन्तः नाम देवाः) रक्षक नामवाले जो देव हो उन तुम्हारा (बृहस्पतिः इषवः) ज्ञानी बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ध्रुवा (ध्रुवायी) और ऊर्ध्वा (आकाश) ये छः दिशायें हैं इन छः दिशाओंमें क्रमशः (इंद्रेति-शक्राग्नि) वज्र, रक्षाकी इच्छा करनेवाले वर्मसेवक, (वि-राज्) राजरहित अवस्था अर्थात् प्रजातंत्र, शेवधय, क्षेम करनेवाले वैद्य, और उपदेशक इनकी प्रधानता है । ये जनताको उपदेश करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं, इस लिये जनता भी उनका सत्कार करती है और उनके लिये आत्मसमर्पण करती है ॥ १–६ ॥

इसी प्रकारका परंतु कुछ अन्य भाव व्यक्त करनेवाला आवेका सूक्त है और दोनोंका अर्थ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है इसलिये उसका अर्थ पहले देखेंगे और पश्चात् दोनोंका इकट्ठा विचार करेंगे ।

अभ्युदय की दिशा ।

(२७)

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — अग्न्यादयः नानादेवताः)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्तं वो अस्मै दध्मः ॥ १ ॥

अर्थ— (प्राची दिक्) पूर्वकी दिशाका (अग्निः अधिपतिः) तेजस्वी स्वामी (असितः रक्षिता) बंधन रहित रक्षक और (आदित्याः इषवः) प्रकाशकर बाण हैं । (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) तेजस्वी स्वामियोंको ही (नमः) मेरा नमन है । उन (रक्षितृभ्यः नमः) बंधनरहित बनानेवालोंके लिये ही हमारा आदर है । उन (इषुभ्यः नमः) प्रकाशके साधनोंके लाभमें ही हमारी नम्रता रहे । (यः) जो अकेला (अस्मान्) हम सब आस्तिकोंका (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यं) जिस अकेले दुष्टका (वयं) हम सब धार्मिक पुरुष (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तं) उस दुष्टको हम सब (वः) आप सब सज्जनोंके (अस्मै) न्यायके लक्ष्यमें (दध्मः) धर देते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— प्राची दिशा अभ्युदय उदय और उन्नतिकी सूचक है । सूर्य चंद्र, नक्षत्र आदि सब दिव्य पदार्थोंका उदय और उन्नति इसी दिशासे होती है और उदयके पश्चात् उनको पूर्ण प्रकाशकी अवस्था प्राप्त होती है । इसलिये अभ्युदय यह प्राचीकी दिशा है । जिस प्रकार इस उदयकी दिशासे सबका उदय और वर्धन हो रहा है उसी प्रकार हम सब मनुष्योंका अभ्युदय और वर्धन होना चाहिए । यह पूर्व दिशा हम सब मनुष्योंको उदय प्राप्त करनेकी सूचना दे रही है । इस शिक्षाके अनुसार हम सबको मिलकर अभ्युदयकी तैयारी करनी चाहिए । इस सूचना और शिक्षाका ग्रहण करके मैं आगे और जनताके अभ्युदयके लिये उपदेश करता हूं । उदयकी दिशाका (अग्निः) अग्नी ज्ञानी और नेता अधिपति है । उदयका मार्ग ज्ञानी उपदेशकोंके द्वारा ही ज्ञात हो सकता है, इसलिये हम सब लोग ज्ञानी उपदेशकोंके पास जाकर आपत्तिके समय उनका उपदेश ग्रहण करेंगे । अब दोनोंका समय नहीं है । उठिए, आपत्तिका समय प्रारंभ हुआ है । चलिए, तेजस्वी ज्ञानसे युक्त पुरुष

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान्द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

अर्थ— (दक्षिणा दिक्) दक्षताकी दिशाका (इंद्रः अधिपतिः) शत्रुनिवारक वीर स्वामी (तिरश्चि-राजी रक्षिता) मर्यादाका अतिक्रमण न करनेवाला संरक्षक और (पितरः इषवः) पितृशक्तियां अर्थात् प्रजननकी शक्तियां सब हैं। हम सब इन शत्रुनिवारक वीर अधिपतियोंका अपनी मर्यादाका कभी अतिक्रमण न करनेवाले संरक्षकोंका तथा सुप्रजा निर्माणके लिये समर्थ पितृशक्तियोंका भी आदर करते हैं। जो हम सब आस्तिकोंका विरोध करता है और जिसका हम सब आस्तिक विरोध करते हैं, उसको हम सब आप स्वामी और संरक्षकोंके न्यायके अवलंबमें कर देते हैं ॥ २ ॥

पाप जावेंगे और उनसे ज्ञानका प्रकाश प्राप्त करेंगे। इस उन्नतकी दिशाका (तिरश्चि-राजी) उल्लंघनसे दूर रहनेवाला स्वतंत्रताके विचार चलन करनेवाला ही रक्षक है। ज्ञानीके साथ रहकर ज्ञानकी प्राप्ति और स्वातंत्र्यके संरक्षकके साथ रहनेसे स्वातंत्र्यकी प्राप्ति होती है। स्वतन्त्रताके बिना उन्नति नहीं होगी इसलिये स्वातंत्र्यका संरक्षण करना आवश्यक है। इस संरक्षणके उपाय (आदित्याः) प्रकाशके किरण हैं। प्रकाशके साथ ही स्वातंत्र्य रहता है। विशेषतः ज्ञानके प्रकाशसे स्वातंत्र्यका संवर्धन होता है। प्रकाश जिस प्रकार अज्ञानका निवारण करता है ठीक उसी प्रकार ज्ञानका पूर्ण अज्ञानके आवरक अंधकारमय प्रतिबंधोंको दूर करता है। अभ्युदय प्राप्त करनेके लिये स्वसंरक्षण होनेकी आवश्यकता है और प्रतिबंधोंको दूर करनेवाली स्वसंरक्षणकी शक्ति अपनेमें बढती है। तेजस्विता ज्ञान, वस्तुत्व, आत्मसंमान आदि गुणोंके अधिष्ठानसे ही अभ्युदय होता है इसलिये तेजस्वी अधिपतियों स्वतंत्रताके संरक्षकों और प्रतिबंध निवारक प्रकाशमय शक्तियोंका ही हम आदर करते हैं। इसके विपरीत गुणोंका हम कभी आदर नहीं करेंगे। जो अकेला दुष्ट मनुष्य सब आस्तिक बांधव मद्र पुरुषोंको कष्ट देता है उनकी प्रगति और उन्नतिमें विघ्न करता है, तथा जिसके दुष्ट होनेमें सब सदाचारी मद्र पुरुषोंकी पूर्ण संमति है अर्थात् जो सचमुच दुष्ट है उसको भी दंड देना हम अपने हाथमें नहीं लेना चाहते; परंतु हे तेजस्वी स्वामियो! और स्वतंत्रता देनेवाले संरक्षको! आपके न्यायके अवलंबमें हम सब उसको रख देते हैं। जो दंड आपकी पूर्ण संमतिसे योग्य होगा आप ही उसको दीजिए। समाजकी शांतिके लिये हरएक मनुष्यको उचित है कि वह सबे अपराधीको भी दंड देनेका अधिकार अपने हाथमें न लेवे, परंतु उस अपराधीको अधिपतियों और संरक्षकोंकी न्यायसंमतिसे अर्पण करे तथा पूर्वोक्त प्रकारके अधिपति और संरक्षकोंका ही बडा आदर करे। अर्थात् हरएक मनुष्य सत्य और न्यायका विजय करनेके लिये बडा तत्पर रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— दक्षिण दिशा दाक्षिण्यका मार्ग बता रही है। दक्षता चातुर्य औदार्य कर्मकी अनीलता शौर्य, [illegible] वीर्य आदि गुण गुरुओंकी सूचक यह दिशा है, इसीलिये दीक्षा अंश दाक्षिण्यांश कहलाता है, और दीक्षा मार्ग अथवा दक्षिण मार्ग इसी दक्षिण दिशासे बताया जाता है। अर्थात् दक्षिण दिशासे दीक्षणके मार्गकी सूचना मिलती है। शत्रुका निवारण करने अपने नियमोंकी मर्यादाका उल्लंघन न करने और उत्तम प्रजा निर्माण करनेकी शक्ति धारण करनेवाले पुरुषः इस मार्गके अधिपति संरक्षक और सहायक हैं। इनका आदर और सम्मान करना योग्य है। अपनी उन्नतिका साधन करनेके लिये (इदं-द्र) शत्रुओंका निवारण करनेकी आवश्यकता होती है। शत्रुका पराभव करनेपर ही अपना मार्ग निष्कंटक हो सकता है। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेसे अपना बल बढता है और शत्रुदमन करनेके पुरुषार्थसे अपनेमें उत्साह स्थिर रहता है। इसलिये मेरे तथा समाजके शत्रुओंका दमन करनेके उपायका अवलंबन करना मेरे लिये आवश्यक है। समाजकी शांतिके लिये अपनी मर्यादाका उल्लंघन न करनेवाले संरक्षकोंकी आवश्यकता है। कोई संरक्षक अपनी मर्यादा उल्लंघन करके अत्याचार न करे। मैं भी कभी अपने नियमोंका और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करूंगा। समाजकी पुष्टिके लिये उत्तम पितृशक्ति अर्थात् सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्तिकी अर्थात् आवश्यकता है। सुप्रजा निर्माणसे समाज अमर रह सकता है। इसलिये हरएक पुरुषको अपने अन्दर उत्तम पुरुषत्व तथा हरएक स्त्रीको अपने अन्दर उत्तम शील निर्माण करना चाहिए। सर्वत्र सब [illegible]

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्तं वो अस्मै दध्मः ॥ ३ ॥
उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षितान्निरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि य वय द्विष्मस्त वो अस्मै दध्मः ॥ ४ ॥

अर्थ— (प्रतीची दिक्) पश्चिम दिशाका (वरुणः अधिपतिः) देव अर्थात् श्रेष्ठ अधिपति (पृदु-आ-कु रक्षिता) स्वयंमें उत्साह धारण करनेवाला संरक्षक और (अन्नं इषवः) अन्न हथ्यार हैं। उन श्रेष्ठ अधिपतियोंके लिये उन उत्साही संरक्षकोंके लिये तथा उस अन्नोंके अन्नके लिये हमारा आदर है। जो हमारे साथ द्वेष करता है इसलिये हम जिस पुरुष विषको नहीं चाहते हैं उसको उन अधिपतियों और संरक्षकोंके न्यायके अस्त्रोंमें अर्पण कर देते हैं ॥ ३ ॥

(उदीची दिक्) उत्तर दिशाका (सोमः अधिपतिः) सोम अधिपति (स्व-जाः रक्षिता) अपनेसे उत्पन्न होनेवाले और (अशनिः इषवः) विद्युत्तेज हथ्यार हैं। इन सोम अधिपतियोंके स्वयंसिद्ध संरक्षकों और तेजस्वी हथ्यारोंके लिये हमारा नमन है। जो हमारा द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं उसको उन अधिपतियों और संरक्षकोंके न्यायके अस्त्रोंमें हम अर्पण कर देते हैं ॥ ४ ॥

करनेवाले संरक्षक और उत्तम शिक्षक जहां होते हैं वहां ही दक्षिणका व्यवहार होता है। इसी प्रकारकी व्यवस्था स्थिर करनेका काल यह अवश्य पकड़ना। जो हमारे हानि पहुंचाता है और जिसके साथ हमारा वैर पड़ता है उसको उक्त अधिकारी संरक्षक और शिक्षकोंके न्यायालयमें हम सब पहुंचाते हैं। वे ही उसके दोषका यथायोग्य विचार करें। हरएक मनुष्यको उचित है कि वह सीधे मार्गसे चले और समाजकी उन्नतिके साथ अपनी उन्नतिका उत्तम प्रकारसे साधन करे ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— पश्चिम दिशा विश्रामकी दिशा है; क्योंकि सूर्य, चंद्र आदि सब दिव्य ज्योतियां इसी पश्चिम दिशामें आकर लुप्त होती हैं और मनुष्यको अपना दैनिक कार्य समाप्त करनेके पश्चात् विश्राम लेनेकी सूचना देती हैं। पूर्व दिशाद्वारा प्रवृत्तिरूप पुरुषार्थकी सूचना होनेसे यहां पश्चिम दिशासे शुभ स्थानमें प्रविष्ट होने यहां निवृत्ति और शांति प्राप्त करने अर्थात् निवृत्तिरूप पुरुषार्थ साध्य करनेकी सूचना मिली है। अन्न उत्साही महात्मा पुरुष इस मार्गके क्रमशः अधिपति और संरक्षक हैं। विश्राम और आत्म-संयम सुखसे साध्य नहीं होता है। श्रेष्ठ और उत्साही अधिपति और संरक्षकोंके लिये सबको आदर करना उचित है। उनकी आज्ञा और सम्मानको दृष्टिसे देखना योग्य है। जो सुखके स्वार्थमें विघ्न करता है इसलिये जिसको कोई पाप करना नहीं चाहते उसको अधिपतियों और संरक्षकोंकी न्यायसभाके आधीन करना योग्य है। समाजके हितके लिये सबको उचित है कि वे न्याय-नुसार ही अपना सब वर्तन करें और किसीको उपद्रव न दें ॥ ३ ॥

उत्तर दिशा उत्तर अवस्थाकी सूचना देती है। हरएक मनुष्यको अपनी अवस्था उत्तर बनानेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। इस उत्तर मार्गमें सोम स्वभावका अधिपति है अर्थात् शोधकर तथा सिद्ध और उत्तम रहनेके मार्गसे इस प्रकार पदार्थोंका संरक्षण होता है। न्यायप्रिय तेजस्वी स्वभावके द्वारा इस मार्गपरकी सब आपत्तियां दूर होती हैं। इसलिये मैं इस गुणोंका धारण करूंगा और समाजके साथ अपनी अवस्था उत्तर बनानेका पुरुषार्थ अवश्य करूंगा। सोम स्वभाव धारण करनेवाले अधिपति उक्त उत्तम और सिद्ध संरक्षक ही सदा सम्मान करने योग्य हैं। साथ ही सर्वोपयोगी न्यायक तेजस्विताका आदर करना योग्य है। जो हमारी हानि करता है इसलिये जिसका सब सज्जन तिरादर करते हैं उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकोंके सम्मुख खड़ा किया जाये। कोई ही स्वयं उसको दंड न देवें। तथा अधिपति निरपक्षताकी दृष्टिसे उसको योग्य दंड देवें। समाजकी उत्तर अवस्था बनानेके लिये उक्त प्रकारके स्वभाव धारण करना अर्थात् आवश्यक है ॥ ४ ॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि य वय द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि य वय द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥

अर्थ— (ध्रुवा दिक्) स्थिर दिशाका (विष्णुः अधिपतिः) प्रेरणकर्ता अधिपति (कल्माष-ग्रीवः रक्षिता) कर्म कर्ता प्रेरक और (वीरुधः इषवः) वनस्पतियां इषु हैं । इन सब अधिपतियों और रक्षकोंके लिये ही हमारा आदर है । ६ ॥ ५ ॥

(ऊर्ध्वा-दिक्) ऊर्ध्व दिशाका (बृहस्पतिः अधिपतिः) आत्मज्ञानी स्वामी है, (श्वित्रः रक्षिता) पवित्र प्रेरक है और (वर्ष इषवः) अमृत वर्ष इषु है । आत्मज्ञानी स्वामियोंका तथा पवित्र प्रेरकोंका ही सदैव सम्मान करना योग्य है । इन अमृत वर्षक ही सदैव आदर करना चाहिये । ६ ॥ ६ ॥

भावार्थ— ध्रुव दिशा स्थिरता दृढ़ता आधार आदि गुणोंकी सूचक है । पंचभूत दृढ़ करने और स्थिरता करनेके लिये ही इस कर्मके नियम हैं । यजमान और पुरुषार्थी पुरुष यहां अधिपति और प्रेरक हैं । क्योंकि कर्मसे ही जगत्की स्थिति है इसलिये कर्मके बिना किसीकी स्थिरता और दृढ़ता हो नहीं सकती । यही कारण है कि इस दृढ़ताके मार्गमें यजमान और पुरुषार्थी प्रेरक हैं । यहां औषधि वनस्पतियां रोगनिवारण द्वारा सहायक करती हैं । जो जो रोगोंका दूर करनेवाले हैं वे सब इस मार्गमें सहायक हैं । यजमान और पुरुषार्थी अधिपति और प्रेरकोंका सम्मान सदैव करना चाहिए । ६ ॥ ५ ॥

ऊर्ध्व दिशा आत्मिक उन्नतिका मार्ग सूचित करती है । उसका आत्मज्ञानी आप्त पुरुष ही इस मार्गका अधिपति और मार्गदर्शक है । जो अंतर्बाह्य पवित्र होगा वह ही यहां प्रेरक हो सकता है । आत्मार अनुभव और पवित्रताका यहां स्वामित्व है । आत्मिक उन्नतिके मार्गमें अग्रसर करनेके समय आत्मज्ञानी आप्त पुरुषके आधिपत्यमें तथा पवित्र सदाचारी सत्पुरुषके संरक्षणमें रहते हुए ही इस मार्गमें आक्रमण करनेसे इष्ट सिद्धियोंकी वृष्टि होती है । आत्मिक अमृत वर्षका रसास्वाद लेनेका यही योग्यमार्ग है । मैं इस मार्गमें आक्रमण अवश्य ही करूंगा और दूसरोंका साथ भी यथायोग्य सुलभ करूंगा । मैं सदा ही उक्त प्रकारके आत्मज्ञानी और पवित्र सदाचारी सत्पुरुषोंका सम्मान करूंगा । ६ ॥ ६ ॥

दिशाओंके वर्णनसे मानवी उन्नतिका तत्त्वज्ञान ।

उन्नतिके छः केन्द्र ।

इस सूक्तके ६ मंत्रोंमें मानवी उन्नतिके छः केंद्र छः दिशाओंके द्वारा सूचित किये हैं । (१) प्राची (२) दक्षिणा (३) प्रतीची (४) उदीची, (५) ध्रुवा और (६) ऊर्ध्वा ये छः दिशाएं क्रमशः (१) प्रगति (२) दृढ़ता, (३) विज्ञान (४) उन्नता (५) स्थिरता और (६) आत्मिक उन्नतिके मार्ग बता रही हैं ऐसा इस छः मंत्रोंद्वारा सूचित किया है विशेष विचार करने योग्य है । उपासक इन दिशाओंमें होनेवाली वैदर्भिक पदनाओंका विचारपूर्वक देखें । इस सूक्तके विविध पदनाओंके द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा प्रसाद उपदेश दे रहा है ऐसी भावना मनमें स्थिर करके उपदेशोंकी सत्यताकी ओर देखना आवश्यक है । यह भावना दृढ़ करनेसे वैदर्भिक यह सृष्टि आप्तप्रेरित ज्ञान है ऐसी भावना मनमें स्थिर करनी चाहिए । क्योंकि यह पूर्ण सृष्टि यह पूर्ण परमेश्वरके द्वारा ही उत्पन्नको प्राप्त होती है । और यह पूर्ण ईश्वरकी शक्ति ही इस सृष्टि द्वारा विस्तारको पा रही है । इस प्रकार

विचार स्थिर करके यदि उपासक उक्त प्रकार छः दिशाओं द्वारा अपनी उन्नतिके छः केंद्रोंके संबंधमें उपदेश लेवे तो व्यक्ति और समाजकी उन्नतिके स्थिर और निश्चित मार्गोंका ज्ञान उनको हो सकता है ।

इन केंद्रोंका ज्ञान उत्तम रीतिसे होनेके लिये पूर्वोक्त वैदिक सूक्तोंमें अंकित दिशाओंके इसके कोष्टक यहां देते हैं और उनका स्पष्टीकरण भी आवश्यकतानुसार संक्षेपसे ही करते हैं—

दिशा कोष्टक ॥ १ ॥ [अथर्व १।२७।१-६]

दिशः	अधिपतिः	रक्षिता	इषवः
प्राची	अग्निः	असितः	आदित्याः
दक्षिणा	इन्द्रः	तिरश्चिराजी	पितरः
प्रतीची	वरुणः	पृदाकुः	अन्नम्
उदीची	सोमः	स्वजः	अशनिः
ध्रुवा	विष्णुः	कल्माषग्रीवः	ओषधयः
ऊर्ध्वा	बृहस्पतिः	पितृः	वर्षम्

इस सूक्तके मंत्रोंको देखनेसे इस कोष्टककी विधि हो सकती है । अब वेदमें अन्य स्थानोंमें आये हुए दिशा विषयक कोष्ठोंका विचार करना है । इस निबन्धमें निम्न मंत्र देखिए—

येऽस्यां वो दिशि प्राच्यां दिशि देवतो नाम देवा स्तेषां वो अग्निरिषवः । ते वो गृणत ते नोऽवन्तु ते वो गृणते तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥ येऽस्यां वो दक्षिणायां दिश्यवितोभयतो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः । ते नो० ॥ २ ॥ येऽस्यां वो प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवा स्तेषां व आप इषवः । ते नो० ॥ ३ ॥ येऽस्यां वो उदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवा स्तेषां वो वात इषवः । ते नो० ॥ ४ ॥ येऽस्यां वो ध्रुवायां दिशि विष्णवित्या नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः । ते नो० ॥ ५ ॥ येऽस्यां वो ऊर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः । ते नो० ॥ ६ ॥

अथर्व १।२६।१-६

प्राची आदि दिशाओंमें देवता आदि देव हैं और अग्नि आदि इषु हैं। वे वः (वः) इस वाक्यसे (गृणत) ग्रहण करें, वे इस वाक्यसे (अभिगृणत) आदेश करें अब वाक्यसे हमारा नमस्कार है उनके लिये हमारा समर्पण है। यह इन मंत्रोंका भावार्थ है। अब इनका निम्नलिखित कोष्टक बनता है—

दिशा कोष्टक ॥ २ ॥ [अथर्व १।२६।१-६]

दिशः	देवाः	इषवः
प्राची	देवताः	अग्निः
दक्षिणा	अवित्यवः	क्षमः
प्रतीची	वैराजाः	आपः
उदीची	प्रविध्यन्तः	वातः
ध्रुवा	विष्णवित्याः	ओषधीः
ऊर्ध्वा	अवस्वन्तः	बृहस्पतिः

पहिले कोष्टकको इस द्वितीय कोष्टकके साथ तुलना कीजिए। पहिले कोष्टकमें प्राची और ऊर्ध्वा के अग्नि और बृहस्पति' अधिपति हैं, वे ही यहां ' इषु बने हैं। ध्रुवा दिशाके इषु पहिले कोष्टकमें वीरुधः हैं और यहां ओषधि हैं। इन दोनों शब्दोंका अर्थ एक ही है। प्रतीची ' दिशाके इषु दोनों कोष्टकोंमें अन्न और आपः हैं। वास्तवमें परस्पर निकट सम्बन्ध है। दक्षिण दिशाके इषु दोनों कोष्टकोंमें पितरः और क्षमः हैं। क्षमके अर्थोंसे ही पितृ ग्रह हो सकता है। उदीची दिशाके इषु वात और अशनि हैं। अशनिका अर्थ विद्युत् है और उसका स्थान मध्यस्थ अर्थात् वायुका स्थान माना गया है। इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि केवल प्राची और ऊर्ध्वा दिशाओंके इषु बदले हैं इतना ही नहीं परन्तु पहिले कोष्टकमें जो अधिपति थे वे ही दूसरेमें इषु बने हैं। अब दिशाओंके इषु उनसे अथवा परस्पर संबंध रखनेवाले हैं। अथर्ववेदके तीसरे काण्डके १९ और २० सूक्तोंके अथर्वमें इतना भेद है। इस भेदसे स्पष्ट होता है कि इषु, अधिपति आदि अन्य वास्तविक नहीं हैं परंतु आध्यात्मिक हैं। अब निम्न मंत्र देखिए—

प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथंतरं साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥
दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥११॥
प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपं साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विट् द्रविणम् ॥ १२ ॥
उदीचीमारोहानुष्टुप्त्वावतु वैराजं सामैकविंश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥१३॥
ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू अर्धो द्रविणम् ॥ १४ ॥ अथ. का. १

प्राची आदि दिशाओंमें (ब्रह्म द्रविणं) ज्ञान आदि धन है। इन मंत्रोंका स्पष्टीकरण निम्न कोष्टकसे हो सकता है—

दिशा कोष्टक ॥ १ ॥ [ऋचः १ ।१०–१४]

दिशः	रक्षक छंदः	साम	स्तोमः	ऋतुः	द्रविण धनं
प्राची	गायत्री	रथंतर	त्रिवृत्	वसन्तः	ब्रह्म
दक्षिणा	त्रिष्टुप्	बृहत्	पंचदशः	ग्रीष्मः	क्षत्रं
प्रतीची	जगती	वैरूपं	सप्तदशः	वर्षा	विट्
उदीची	अनुष्टुप्	वैराजं	एकविंशः	शरत्	पशवः
ध्रुवा ऊर्ध्वा	पंक्तिः	शाक्वररैवतं	त्रिणवत्रयस्त्रिंशा	हेमन्तः शिशिरः	वर्षः

इस कोष्टकमें दिशाओंके वर्णोंका पाठक अवश्य अवलोकन करें– (१) प्राची दिशाका धन (ब्रह्म) ज्ञान है । (२) दक्षिण दिशाका धन (क्षत्र) शौर्य है । (३) प्रतीची दिशाका धन (विट्) ऐश्वर्यसे पुरुषार्थ करनेकी वस्तु आदि है । (४) उदीची दिशाका धन पक्व परिणाम ज्ञान आदि है । (५) ध्रुवा और ऊर्ध्वा दिशाका धन शांति धन आदि है । ज्ञान शौर्य पुरुषार्थ प्रबल साम और वीर्यतेज ये उक्त दिशाओंके धन हैं । इसकी तुलना प्रथम कोष्टकके साथ करनेसे अर्थका बहुत गौरव प्रतीत होगा । पाठकोंने यहां जान लिया होगा कि उक्त गुण विशेष वर्णोंके होनेसे उक्त दिशाओंका संबंध उक्त वर्णोंके साथ भी है । ब्राह्मणोंका ज्ञान क्षत्रियोंका शौर्य वैश्योंका पुरुषार्थ, शूद्रोंके हुनरका ज्ञान और अनाथका वीर्यतेज उन उन्नतिके प्रकारका हेतु है । तथा प्रत्येक व्यक्तिमें ज्ञान शौर्य पुरुषार्थ एकजातीय प्रबल करनेका गुण और वीर्यतेज आदि । इस प्रकार व्यक्तिमें और राष्ट्रमें उक्त गुणोंका संबंध है । इस संबंधको स्मरण रखते हुए पाठक निम्न मंत्र देखें—

प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि
दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥ ७ ॥
प्रतीच्यां दिशि पुच्छमस्य धेहि
उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूक्यं धेहि दिशि ध्रुवायां
धेहि पाजस्यम् ॥ ८ ॥ अथर्व. ७।१४

प्राची दिशामें (अजस्य) अजन्मा जीवका शिर रखो तथा अन्य दिशाओंमें अन्य अवयव रखो । इस मंत्रमें अज पदका दिशाओंके साथ संबंध बताया है । निम्न कोष्टकसे इसका भेद स्पष्ट होगा—

दिशा कोष्टक ॥ २ ॥ (अथर्व ७।१४।७–८)

प्राची	शिरः	अजस्य
दक्षिणा	दक्षिणं पार्श्व	दहनी बगल
प्रतीची	अपरं	गुप्त भाग
उदीची	उत्तरं पार्श्वं	बायी बगल
ध्रुवा	पाजस्यं	पेट
ऊर्ध्वा	आनूक्यं	पीठकी ओर

इस कोष्टकके साथ पूर्वोक्त तीसरे कोष्टककी तुलना कीजिए । ज्ञान शौर्य पुरुषार्थ और उसका संबंध शिर बाहु मध्यभाग और निम्न भागके साथ यहां किया है । ज्ञान शौर्य पुरुषार्थका संबंध गुणकर्मसे प्रत्येक व्यक्तिमें है और वह स्वयं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें अर्थात् राष्ट्र-पुरुषके अवयवोंमें है । इस प्रकार वर्णोंका संबंध दिशाओंके साथ स्पष्ट है । यह संबंध ध्यानमें धर कर विचार करते हुए अब निम्न मंत्र देखिए—

प्राचीं प्राचीं प्रदिशमारभेथामेतं लोकं श्रद्धया मदन्तः सचन्ते ॥ यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती संभवेथाम् ॥ ७ ॥ दक्षिणां दिशमभि मन्यमानौ पर्यावर्तेथामभि पाजमेतत् ॥ तस्मिन्वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नियच्छात् ॥ ८ ॥ प्रतीचीं दिशमिमिद्वर्त यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ॥ तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान् मिथुना संभवाथः ॥ ९ ॥ उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्दिशामुदीचीं कृणवन् नो अग्रम् । दिवं रुहः पुरुषो धर्मणामुत विश्वैर्देवैर्यजमानेन सध संभवेम ॥ १० ॥ ध्रुवेयं पितृषदना अस्तमस्यै शिवा पत्नेभ्य उत मह्यमस्तु । सा नो देवीदितेऽविथायै इह इह गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११ ॥ अथर्व. १९।३

(१) (प्राचीं) पूर्व दिशा अर्थात् दिशा है इसमें (आरभेथां) उत्साहके साथ पुरुष यज्ञ आरंभ कीजिए (एतं लोकं) इस ब्रह्मलोकमें (श्रद्धयामदन्तः) श्रद्धा धारण करनेवाले (सचन्ते) पहुंचते हैं । हे (यौ) आप दोनोंका अग्निमें प्रविष्ट होकर (पक्वं) पका हुआ अन्न दाना (तस्य गुप्तये) उसकी रक्षाके लिये (दंपती) स्त्री पुरुष (संभवेथां) प्रयत्न करें ॥ (२) इस दक्षिण दिशामें अब आप (अभि मन्यमानौ) सब प्रकारसे अनुमति करते हुए इस (पाजः) वीर्य अथवा तेजरूप कर्मफल (अभि पर्यावर्तेथां) सब

प्रकारसे बारंबार अनुष्ठान करेंगे तब आपकी (पक्षाय) परिपक्वताके लिये (पितुभिः) रक्षकोंके साथ (संविदानः यमाः) ज्ञानी नियामक (बहुलं गर्मे) बहुत सुख देगा ॥ (३) (प्रतीची) पश्चिम दिशा वह सर्वसुख (वर्दः) भेज देती है, जिसमें (सोमः) विद्वान् और शांत अधिपति और (सुदिता) सुख देनेवाला है। इस दिशाका आश्रय कीजिए, मुक्त करके परिपक्वताको (सचेयां) प्राप्त कीजिए। और (मिथुना) स्त्रीपुरुष मिलकर (सं भवाथः) सुसंतान उत्पन्न कीजिए ॥ (४) उत्तर दिशा (प्र-क्षया) निवास करनेकी राष्ट्रीय दिशा है, इसलिये हम सबको यह उत्तर दिशा (अग्र) श्रेष्ठ मार्गमें ले चले। (पाँचों) पांच वर्गों- रहने नियमों- का (छंदः) वेद ही वह पुरुष दाता है। इस सब अंगोंके साथ हम सब (स भवेम) मिलकर रहेंगे ॥ (५) यह पूर्व दिशा (विराट्) बड़ी भारी है। इसके लिये नमन है। यह मेरे लिये तथा बालकवर्गके लिये (शिवा) कल्याणकारी होवे। हे (अदिते देवि) हे अखंडित देवि! (विश्व धारे) सब आपत्तियोंका निवारण करनेवाली देवी! तू (गोपा) हम सबका संरक्षण करती हुई, हमारी परिपक्वताको सुरक्षित रखो।

इन मंत्रोंमें दिशाओंकी कुछ विशेष बातें बताई हैं। इनके सूक्ष्म सुख सम्बोधन नित्य बोधक बनता है।

दिशा बोधक ॥ ५ ॥ (अथर्व ११ १।७-११)

दिशाः	कर्म	साधन	साधक	क्रिया
प्राची	आरंभः	अश्वाः	वंधसी	संभरेथां
दक्षिणा	पर्यावर्तेथां	बहुमायाः	यमःऔशिजाः	विराजात्
प्रतीची	आसन	सुहृदः	मिथुनः	संभवाथः
उदीची	प्र-क्षयः	पांचों छंदः	पुरुषः	सह सम्भवेम
ध्रुवा	वि-राट्	दिशा	विश्वधारा अदितिः	रक्ष

इस बोधकसे आचारकर्ममें पता लग जायगा कि दिशाओंके कुछ नाम किस बातके सूचक हैं। और इन सूचक नामोंमें कैसा उत्तम तत्त्वज्ञान भरा है। इन मंत्रोंको देखनेसे निम्न बातोंका पता लगता है—

(१) प्राची दिशा— (प्र+अंच् = आगे बढ़ना उन्नति करना अग्रस्थानमें हो जाना) यह मूल अर्थ प्रांच् धातुका है जिससे 'प्राची' शब्द बनता है। प्राची दिशा का अर्थ बढ़ती अथवा उन्नतिकी दिशा इतिहास मार्ग।

उन्नतिके लिये विविध कर्म आरंभ करनेकी अत्यंत आवश्यकता होती है। पुरुषार्थोंका आरंभ करनेके बिना उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है। अश्वोंसे पुरुषार्थ करनेके लिये कहा चाहिए। अश्वोंके बिना उत्साह प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव स्त्रीपुरुष मिलकर ही विविध पुरुषार्थोंका साधन करते हैं। उनके परस्पर मिलकर रहनेसे ही संसारमें सब लोगोंकी परिपक्वता और (तुष्टि) संरक्षण हो सकता है। इस प्रकार प्राची दिशासे बोध मिलता है।

(२) दक्षिण दिशा— दक्षिण शब्दका अर्थ दक्ष ठीक योग्य प्रवृद्ध सीधा होता है। दक्षिण दिशा शब्दों का मूल अर्थ सीधा मार्ग अथवा मार्ग ऐसा ही है। पश्चात् इसका अर्थ सीधे हाथकी दिशा हो गया है।

उन्नतिके लिये सीधे और उत्तम मार्गसे चलना चाहिए। और (अक्षमाला) गति अथवा हलचल किया प्रबल करना चाहिए अन्यथा सिद्धि होना असंभव है। एक बार प्रबल करनेसे सिद्धि न हुई तो बारंबार पुरुषार्थ करना आवश्यक है इसीकी सूचना (पर्यावर्तेथां, परि-आ वर्तेथां) बार बार प्रयत्न कीजिए इस शब्दों द्वारा मंत्रमें दी है। धन धान्य निवासोंका सूचक, पितृ शब्द उत्तमगति और संरक्षणका सूचक तथा संविदान शब्द ज्ञानका सूचक है। निवास संरक्षण और ज्ञानसे ही सर्व अर्थात् सुख होता है। यह दक्षिण दिशासे बोध मिलता है।

(३) प्रतीची दिशा— प्रअंच् अन्दर आना अंतर्मुख होना। प्रतीची दिशा उन्नतिकी दिशा, अन्दर मूल स्थानपर आनेकी दिशा अर्थात् आनेका मार्ग अन्तर्मुख होनेका मार्ग यह इस शब्दका मूल अर्थ है। पूर्व दिशा से आगे बढ़नेका मार्ग कहा है और पश्चिम दिशाको फिर वापस होकर अपने मूल स्थानपर आकर विश्राम लेनेकी दिशा कहा है—

प्रतीची	प्राची
(प्रति-अंच्)	(प्र-अंच्)
प्रति-गति	प्र-गति
प्रति-गमन	प्र-गमन
वि-गति	प्र-गति

दिशाओंके नामोंसे जो भाव व्यक्त होते हैं उनका पता इस ब्योरेसे लग सकता है। वैदिक शब्दोंका इस प्रकार महत्त्व देखना चाहिए।

निर्ऋति विभक्ति अथवा छः-स्वतन्त्र स्थान ही भेद (अर्थ) होता है। शान्तिसे भिन्न और भेदता क्या होगी। सोम ही शान्तताकी देवता है। सूर्यके प्रखरतर प्रचंड किरणोंके तापसे संतप्त मनुष्य चंद्र (सोम) के शीत प्रभावसे शांत, संतुष्ट और आनंदित होता है। सुकृत अर्थात् धार्मिक पुण्य कर्मोंका मार्ग ही इस शांतिको प्राप्त कर सकता है इत्यादि भाव इस मंत्रमें व्यक्त होते हैं।

(४) उत्तर दिशा- (उद्-तर) अधिक उत्तर अधिक भेद अवस्था प्राप्त करनेका मार्ग ऐसा इसका मूल अर्थ है। मनुष्योंको उच्चतर अवस्था प्राप्त होनेके लिये राष्ट्रकी अभिवृद्धि आवश्यक होती है क्योंकि—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुप सेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ (अथर्व १९।४१।१)

अच्छा कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी ऋषिमुनियोंने तप किया और दक्षतासे व्रत किया। उससे राष्ट्र बल और ओज उत्पन्न हुआ, इसलिये सब देव उस राष्ट्रोन्नतिके सम्मुख नमस्य धारण करें। राष्ट्रोन्नतिके साथ लोकल्याणका भाव इस प्रकार देखने वर्णन किया है। लोकल्याण ही लोगोंकी उच्चतर अवस्था है। राष्ट्रीय भावनाके अन्दर (मः अर्थं इत्यादि) इस सबको अग्र भागमें होनेके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। राष्ट्र (पांक्त) पांच विभागोंमें विभक्त है, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और निषाद, अथवा ज्ञानी शूर, व्योपारी कारीगर और साधारण जन मिलकर राष्ट्रके पांच अवयव होते हैं, इन पांच प्रकारके जनोंका कल्याण करने की (छंद) प्रबल इच्छा जिसमें होती है वही सच्चा पुरुष कहा जा सकता है। पुरुष उसको कहते हैं कि जो (पुरि) नगरीमें (वसति) निवास करता है। नागरिक जन जो लोककल्याण करता है वही सच्चा पुरुष है। सब अंगोंकी सबकी पूर्णता होती है और उन्नतिके लिये (सं अग्रभं) सब मिलकर एकत्रित होनेकी आवश्यकता है। यह बोध उत्तर दिशाके मंत्रके शब्दोंसे ज्ञात होता है।

(५) ध्रुवा दिक्— स्थिरताका धर्म यहां बताया है। मनुष्यके व्यवहारोंमें चंचलता ठीक नहीं है। स्थिरता दृढता निश्चितता उन्नतिकी साधक है। सच्चा (शिवा) कल्याण इस पुरुषसे होता है। स्थिरताका मार्ग मोक्ष मार्ग है, जिसमें चंचलताको दूर करके स्थिरताकी प्राप्ति की जाती है। इससे सबका हित होता है। यही (अ-दितिः) अविनाशकी देवता अथवा स्वतंत्रताकी देवता है। स्थिरताके बिना स्वतंत्रताकी प्राप्ति नहीं हो सकती। (गो-पा) इंद्रियोंका संरक्षण अर्थात् संयम इस मार्गमें अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार ध्रुव दिशाके मंत्रोंसे बोध प्राप्त होता है।

मंत्रोंकी शब्दमीमांसा कितनी अर्थपूर्ण है इसका विचार पाठक यहां कर सकते हैं। अस्तु। दिशा विवेचक प्रकरण ब्राह्मणोंमें नहीं है। इसलिये अब इस सब विवरणका एकीकरण करना चाहिए। उसके पूर्व निम्न मंत्र देखिए—

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्रे आदित्यायेषुमते। एतं परिदधस्तं नो गोपाय तावयाकमेतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥ दक्षिणायै त्वा दिशे इन्द्राधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ॥ एतं० ॥ ५६ ॥ प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽह्नायेषुमते। एतं० ॥ ५७ ॥ उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ॥ एतं० ॥ ५८ ॥ ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माष ग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ॥ एतं० ॥ ५९ ॥ ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ॥ एतं० ॥ ६० ॥

(अथर्व १९।१)

प्राची दिशा अग्नि अधिपति असित रक्षिता और इषुमान् आदित्यके लिये (एतं) यह दान (परि दधाः) देते हैं। अतएव (अथ-एतोः) इससे हम दोनों (नः गोपायतां) संरक्षण करें। (अत्र) यहां (नः) हम सबका (दिष्टं) अच्छी वर्षाकी प्रेरणा (जरसे) दृढ अवस्था तक (नि नेषत्) ले जावे। (जरा) दृढ अवस्था मृत्युको (नः मृत्यवे परि ददातु) हम सबको मृत्युके प्रति देवे। (अथ) और (पक्वेन) परिपक्वताके साथ (सं भवेम) तन्मूर्ति अर्थात् उन्नतिका प्राप्त हो जावें। यह प्रथम मंत्रका अर्थ है। शेष मन्त्रोंका भाव ऐसा ही तुल्य है।

इन मंत्रोंमें (१) दान, (२) अभयदान (३) [illegible] आदरका दृढ करना (४) वर्षाकी प्रेरणाके साथ पूर्ण दृढ

अवस्थाका अनुभव लेनेके पश्चात् अर्थात् दीर्घ आयुकी समाप्तिके पश्चात् मरनेकी कल्पना और (५) परिशिष्ट (बुद्धिके तत्त्वों) के साथ अर्थात् सत्संगमें रहनेका उपदेश है ।

प्रारंभसे यहांतक दिशा विषयक जो कोष्ठक और मंत्र दिये हैं उन सबका एकीकरणपूर्वक विचार करनेसे इस मंत्रोंका अधिक बोध होना सम्भव है ।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ॥
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥
(अथर्व ३।२७।१)

इस मंत्रका अब विचार करना है । इसका विचार होनेसे अन्य सब मंत्रोंका विचार हो सकता है । पूर्व स्थलमें जहां दिशाओंका द्वितीय कोष्ठक दिया है, वहां बताया है कि अधिपति इषु रक्षिता आदि शब्द आलंकारिक हैं इसलिये इनका अर्थ अध्यवसायके अनुसार लगा चाहिए ।

(१) अधिपति, रक्षिता इषवः आदि शब्द आलंकारिक हैं क्योंकि वहां दीक्षाः आदिकोंको भी साथ कहा है । वस्तुतः ये साथ नहीं हैं । इस स्थल कविकी आलंकारिक दृष्टिसे इनका अर्थ लेना उचित है ।

(२) मंत्रके प्रथम चरणमें अधिपति रक्षिता ये शब्द एक वचनमें हैं, परन्तु द्वितीय चरणमें इन ही शब्दोंका बहुवचन लिखा है । एकवचनका शब्द परमेश्वरपर माना जा सकता है परंतु अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः शब्द बहुवचन होनेके कारण परमेश्वरपर नहीं माने जा सकते । अनावश्यक बहुवचन माननेके पक्षमें पूर्वचरणमें एक वचन आया है उसकी निरर्थकता होती है । अतः किसी स्थानपर एक मंत्रमें परमेश्वर वाचक शब्दोंका एकवचन और बहुवचन आया नहीं है । इसलिये यहां इन शब्दोंके अर्थ केवल परमेश्वरपर होनेमें शंका है ।

(३) प्रत्येक दिशाका अधिपति रक्षिता और इषु भिन्न हैं । यदि ये परमेश्वरपर शब्द हैं तो भिन्नताका कोई तात्पर्य नहीं निकल सकता ।

(४) तृतीय चरणमें जो हम शत्रुका द्वेष करता है और जिनका हम सब द्वेष करते हैं उनको (वः जम्भे) आप सबके एक जबड़ेमें हम सब धर देते हैं । इस आशयके शब्द आये हैं । यह मंत्रका भाग केवल सामाजिक स्वरूपपर कहा है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । शत्रुको शस्त्र देनेका इसमें विषय है और शस्त्र देनेवाला अकेला नहीं है परन्तु (वः) अनेक हैं । (वः जम्भे) ' आप अनेकोंके एक जबड़ेमें इस सब मिलकर उस शत्रुको देते हैं आप जो चाहें उसको वह दीजिए। दंड देनेका अधिकार हम अपने हाथोंमें नहीं लेते आप सबको ही दंड देनेका अधिकार है । यह आशय इस मंत्रभागमें स्पष्ट है । इसमें न्यायव्यवस्थाकी बातें स्पष्टतासे लिखी हैं—

(अ) अनेक सज्जनोंको मिलकर न्याय करना चाहिए ।

(आ) किसीको उचित नहीं कि वह अपने ही शत्रुको मनमाना दंड देवे । यह अधिकार न्यायसभाका ही है ।

(इ) शत्रुपक्षका द्वेष नहीं करना चाहिये । द्वेष करना हुआ है । असंयति प्रकट करना द्वेष नहीं है ।

(ई) शत्रुपक्षको भी उचित नहीं कि वे अपनी इंयतिसे किसीको दंड देवें । शत्रुपक्ष और अपने पक्षके मतभेद होनेपर न्यायसभा द्वारा योग्यायोग्यका निश्चय करना चाहिए । और न्यायसभाका निश्चय सबको मानना चाहिए ।

इत्यादि बातें इस मंत्रभागसे स्पष्ट सिद्ध होती हैं । यहां परमेश्वरके जबड़ेमें देनेकी कल्पना नहीं प्रतीत होती । अतः यहां जंभ शब्दका अर्थ देखना उचित है—

जंभ शब्दका अर्थ दांत होनेका दांत मुख अथवा मुख दंड होता है । मंत्रमें वः जंभे अर्थात् आपके एक जबड़ा कहा है; प्रत्येक प्राणीके लिये एक जबड़ा हुआ करता है । परंतु यहां अनेक मनुष्योंका मिलकर एक जबड़ा कहा है । वास्तविक रीतिसे अनेक मनुष्योंका एक जबड़ा नहीं हो सकता परंतु यहां कहा है, इसलिये यह जबड़ा वास्तविक नहीं है, केवल काल्पनिक है । भिन्न कोष्ठकसे व्यक्तिगत और सामाजिक जबड़ेकी कल्पना आ सकती है—

व्यक्तिका जबड़ा	समाजका जबड़ा
जंभ	न्यायालय
मुख	मुख्य
ज्ञानेंद्रिय पंचक	ज्ञानेंद्रिय-पंच
दांत-द्विज	वैदर्भिक-द्विज
दंतपंक्ति	द्विज-सभा
चर्वण चर्वितचर्वण	विषय-चर्चा
अन्न चर्वण	प्रमाण विचार

सिंह व्याघ्र आदि हिंस्र पशु अपने शत्रुको अपने जबड़ेमें रखकर खाते हैं । शत्रुको अपने जबड़ेमें रखनेकी कल्पना नीच प्राणियोंमें है । चोरी मनुष्य पापत्व समझकर अपने शत्रुको खाने दौड़ता है । परंतु विचारी मनुष्य इस पशुवृत्तिको धिक्कारकर अपने आपको समाजका एक अवयव समझकर, अपने शत्रुका भी

समाजका एक अवयव मानता है; इस कारण वह समुचे दंड देनेके लिये कभी प्रवृत्त न होता हुआ न्यायसभाकी शरण लेता है, क्योंकि यही समाजका अवयव है। इस न्यायसभामें दिशोंकी सभा उपस्थित है और वह अनुकूल प्रतिकूल बातोंका मनन विचार करके दुष्टको दंड देती है और सज्जनको आतिथ्य अर्पण करती है। इस समाजके अवयवका— अर्थात् न्यायसभाका— भाव कैसे समझसे लेना यहां उचित है। यही अनेक मनुष्योंका मिलकर एक अवयव हो सकता है।

त ओ जैसे इध्मः।

(त) उस दुष्टको हम सब (वः) आप अनेकोंके (जैसे) एक अवयवसे— अर्थात् न्यायसभासे (इध्मः) कारण करते हैं। अर्थात् आपके आधीन करते हैं। न्यायसभाकी शिरोधार्यता यहां बतलाई गई है।

यहांका वः शब्द पूर्वोक्त अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः इन शब्दोंको सूचित करता है। समाजके अवयव दुष्टके अधिपति और रक्षक वः शब्दसे आगे आते हैं। उसका हेय करनेवाले दुष्टको इन पंचोंके आधीन करना चाहिए, यह मंत्रका स्पष्ट आशय है। इसीलिये अधिपति आदि शब्दोंका यहां वचन मंत्रमें आया है और इसी कारण यह बहुवचन योग्य और अर्थके अनुकूल है।

समुचे पंचोंके आधीन करनेके भावसे समुची सभा दंड देनेकी और न्यायको अपने हाथमें लेनेके कर्मकी प्राप्ति कम होती है और पंचोंकी ओरसे न्याय प्राप्त करनेकी सात्विक प्रवृत्ति बढ़ती है। इस प्रकारकी प्रवृत्ति समाजके हितके लिये आवश्यक है।

इस उपदेशसे अपने आपको समाजका अवयव समझनेका सात्विक भाव बढ़ाया जाता है। मैं समाजका एक अंग हूं समाजका भार मेरा कर्तव्य है यह भावना अत्यंत आदर है और इस स्वयं मननात्मक बीज कितनी उत्तमतासे अंतःकरणमें रखा गया है। यह वैदिक धर्मका ही महत्व है।

तेभ्यो नमो० आदि दो पाद अनेक मंत्रमें हैं। ये दो पाद छः मंत्रोंमें बार बार कहे हैं। बार बार मंत्रोंका जो अनुवाद किया जाता है उसको आम्नाय कहते हैं। विशेष महत्वपूर्ण मंत्रोंका ही इस प्रकार बारंबार अनुवाद वेदमें किया गया है। इससे सिद्ध है कि इन मंत्रोंका भाव मुख्य है और इसके अनुकूल हेय मंत्रसमूहका अर्थ करना चाहिए। अर्थात् इस सूक्तका अर्थ सार्वत्रिक है।

(२)

(१ प्राची दिक्) प्रगतिकी दिशा (२ अग्निः अधिपतिः) तेजस्वी स्वामी (३ असितः रक्षिता) स्वतंत्र संरक्षक और (४ आ-दित्याः इषवः) स्वातंत्र्यपूर्ण वक्तृत्व ये चार बातें हैं।

प्रत्येक दिशा विशेष मार्गकी सूचक समझी जाती है और उस विशेष मार्गके साधक तीन गुण हैं। प्रत्येक दिशाके साथ ये गुण निश्चित हैं। इस पूर्व दिशाके अनुसंधानसे प्रगतिके मार्गका उपदेश किया है। तेजस्विता स्वतंत्रता और वक्तृत्व ये तीन गुण उन्नतिके साधक हैं। अधिपतिसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि निस्तेज निर्बल या पराधीन रक्षक और अस्वतंत्र वक्ता किसी प्रकार भी उन्नतिका साधन नहीं कर सकते। इसी प्रकार अन्य दिशाओंका विचार करके भाव जानना उचित है।

(१) प्रगतिका निश्चित मार्ग (२) तेजस्वी स्वामी (३) स्वाधीनताका धारण करनेवाला रक्षक और (४) स्वतन्त्रतापूर्ण वक्तृत्व ये चार बातें मानवी उन्नतिके लिये आवश्यक हैं। इसी प्रकारके स्वामी संरक्षक और वक्ताओंका सत्कार होना उचित है। जो हमारा हेय करता है और जिसका हम हेय करते हैं उसको आप अधिपतियोंको समाजके आधीन हम सब करते हैं। यह मन्त्रका सीधा आशय है। मनुष्यकी अक्लाईके उपदेश यहां हैं। इस प्रकार अर्थका मनन करना उचित है। अब सूक्त शब्दोंके मूल अर्थोंका मनन करते हैं—

(१) अग्नि शब्द वैदिक वाङ्मयमें ब्राह्मण और वक्तृत्वका प्रतिनिधि है। दिशा कोशक व १ देखिए, उसमें सातों दिशाका ब्रह्म अर्थात् ज्ञान ही बल कहा है।

(२) अ-सित शब्दका अर्थ बंधन-रहित स्वतंत्र स्वाधीन ऐसा है। सि-बंधने इस धातुसे सित शब्द बनता है, जिसका अर्थ बंधन-स्वाधीन है। अ सित अर्थात् स्वतंत्र।

(३) आदित्य शब्द अ-खण्डनीय अर्थमें प्रयुक्त होता है। दो-अवखंडने धातुसे दिति शब्द बनता है जिसका अर्थ खंडित है। अ-दिति का अर्थ अ-खंडित है। आदितिका भाव आदित्य है। अखंडनीय अमर्याद बंधन रहित स्वतंत्रताके भाव यहां अभिप्रेत बंधन नहीं है।

(४) इषु - इष्-गति धातुसे यह शब्द बनता है। इसलिये गति इत्यादि यह भाव इस शब्दमें मुख्य है। बाण इसके अर्थ इत्यादिका बाण करना वक्तृत्व करना घोषणा देना, उक्ति करना, ये हो सके। इस कारण इस मंत्र

इषवः सम्बन्धमें है। अस्तु। इस प्रकार प्रथम मंत्रका आशय है। अब द्वितीय मंत्र देखिए—

(२)

(१ दक्षिणा दिक्) दक्षताकी दिशा (२ इन्द्रः अधिपतिः) बलाधिष्ठाता स्वामी (३ तिरश्चिराजी रक्षिता) पंक्तिमें चलनेवाला संरक्षक और (४ पितरः इषवः) वीर्य धारण करनेवाले ये चार बातें बलवृद्धिकी साधक हैं। इसी प्रकारके स्वामी रक्षक और पालकोंका सत्कार हो। जो आत्मविजेसे द्वेष करता है और जिसका आत्मिक द्वेष करते हैं उसको इस सब भाव अधिपतियोंकी दयाके आधीन करते हैं।

(५) इन्द्र '—(इन् धातून् द्राघयिता। १ ।८) बलका विस्तार करनेवाला विद्युत्।

(६) तिरश्चिराजी — (तिरः) वीचमेंसे (अंच्-) जाना (राजी-) लकीर मर्यादा। अपनी मर्यादाका उल्लंघन न करनेवाला।

(७) पिता (पातीति पिता)— संरक्षक पिता है। वीर्य धारण करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्यवान् पुरुष पिता होता है।

(३)

यह भाव द्वितीय मन्त्रका है। अब तीसरा मंत्र देखिये— (१ प्रतीची दिग्) अंतर्मुख होनेकी दिशा (२ वरुणः अधिपतिः) सर्व सम्मत स्वामी (३ पृदाकुः रक्षिता) स्पर्धामें उत्साही रक्षक और (४ अन्नं इषवः) अन्नकी वृद्धि ये चार बातें अन्नवृद्धिकी साधक हैं।

(४)

(१ उदीची दिग्) उत्तर दिशा उत्कृष्टता होनेकी दिशा (२ सोमः अधिपतिः) शांत स्वामी (३ स्वजः रक्षिता) स्वयं सिद्ध संरक्षक और (४ अशनिः इषवः) तेजस्वी प्रगति ये चार बातें उन्नतिकी हैं।

(५)

(१ ध्रुवा दिक्) स्थिर दिशा (२ विष्णुः अधिपतिः) कर्मक्षम स्वामी (३ कक्ष्माप्रीवाः रक्षिताः) कर्मकर्ता संरक्षक और (४ वीरुधः इषवः) औषधियोंकी वृद्धि ये चार बातें वनस्पतिके लिये हैं।

(६)

(१ ऊर्ध्वा दिक्) ऊर्ध्व दिशा (२ बृहस्पतिः अधिपतिः) ज्ञानी स्वामी (३ श्वित्रः रक्षिता) शुद्ध संरक्षक और (४ वर्षं इषवः) वृष्टिकी गति ये चार बातें उन्नति करनेवाली हैं।

अब इन सम्बन्धोंका मनन करेंगे। सम्बन्धके मूल शब्दार्थ नीचे दिये हैं—

(१) वरुणः '— वर-वृ-वरणे। पसंद करना। जो पसंद किया जाता है वह वरुण होता है। सर्वसंमत सर्वश्रेष्ठ।

(२) ' पृदाकुः -(पृद्-आ-कु)— पृदका अर्थ युद्ध, संग्राम स्पर्धा स्पर्धाके समय उत्साहके शब्द बोलने वाला पृदाकु होता है। कु = शब्द।

(३) सोमः — शांतिका सूचक चंद्र अथवा सोम है। इसका दूसरा अर्थ स+उमा अर्थात् विद्याके साथ रहनेवाला अर्थात् ज्ञानी है। षु-प्रसवैश्वर्ययोः इस धातुसे सोम शब्द बनता है जिसका अर्थ उत्तेजक प्रेरक और ऐश्वर्यवान् ऐसा होता है।

(४) स्वजः - (स्व+ज)- अपनी शक्तिसे रहनेवाला जिसे दूसरेकी शक्तिका अवलंबन करनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वयंसिद्ध। स्वयं जिसका यश चारों ओर फैलता है।

(५) ' अशनिः — यह विद्युत्का नाम है। तेजस्वि ताका बोध इस शब्दसे होता है। अश् धातुका अर्थ व्यापना है। व्यापक शक्तिका नाम अशनि है।

(६) विष्णुः - अर्थ व्यापक कर्ता सर्वज्ञ।

(७) कक्ष्माप्रीवाः - कक्ष्मन् का अर्थ कर्मन् अर्थात् कर्म अर्थ उपयोग है। ' कक्ष्माप्र '=(कक्ष्म-प्र)= कर्मके द्वारा अभिष्ट पूर्णताका पात्र करनेवाला। (कर्मणा अभिष्टं व्याप्नोति इति कर्माप्रः। कर्माप्र एव कक्ष्माप्रः।) पुरुषार्थसे पुरुषार्थको पूर्ण करके पुरुषार्थके पात्र करनेवाला और इस प्रकारके पुरुषार्थके भाव पसंदमें रखने वाला कक्ष्माप्र ग्रीव किंवा कर्मा स-ग्रीव ' कहलाता है।

(८) बृहस्पतिः — महान् ज्ञानका स्वामी ज्ञानी। स्मृति अक्षय मतिका अधिष्ठाता।

(९) श्वित्रः — शुद्ध पवित्र श्वेत

अस्तु इस प्रकार सूक्त शब्दोंके अर्थ हैं। पाठक इसका अधिक विचार करके लाभ उठावें।

पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर, ध्रुव और ऊर्ध्व ये छः दिशायें क्रमशः प्रगति, चातुर्य शांति उन्नति स्थैर्य और ज्ञानरूप इन छः गुणोंकी सूचक हैं। इन छः गुणोंका साधक गुण-समूह इस पूर्वोक्त मंत्रोंमें वर्णन किया है। (१) दिशा (२) अधिपति (३) रक्षक और (४) इषु ये चार शब्द विशेष ध्यानसे देखने हैं और इन शब्दोंमें यहां असाधारण विशेष गूढ़ अर्थ

है इस बातका प्रकाश पाठकोंके मनमें पूर्व रीतिसे पड़ा ही होगा। बारंबार मनन करके इसके गूढ़ तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना हम सबका कर्तव्य है।

इन मन्त्रोंमें इषु शब्द विलक्षण अर्थके साथ प्रयुक्त हुआ है। इसका किसी अन्य भाषामें भाषांतर करना अत्यंत कठिन कार्य है। किसी एक प्रतिशब्दसे इसका भाव प्रकट होता ही नहीं। इसलिये इन मंत्रोंको विशेष विचारसे सोचना चाहिए।

उत्तम अधिपति और श्रेष्ठ संरक्षकोंका सम्मान होनेसे जन-समाजकी स्थिति ठीक रहती है और राज्यशासन ठीक चल सकता है। अधिपति सुकर्म होते हैं और संरक्षक उनके आधीन रहकर कर्म करनेवाले होते हैं। अधिपति और संरक्षकोंके विषयमें अनर्थमें निरादर नहीं होना चाहिए। अधिपति और संरक्षकोंके गुण जो इन मंत्रोंमें वर्णन किये गये हैं वहां होने वहां सब अवस्थामें पूजासमान आदर रहेगा। शुद्रको दंड देनेका अधिकार इनहीको है। किसी मनुष्यको उचित नहीं कि वह अपने हाथमें न्याय करनेका अधिकार स्वयं ही लेकर किसीको दंड देवे। इससे अशांति और अराजकता होती है। इसलिये प्रत्येक मंत्रमें कहा है कि हम श्रेष्ठ और योग्य अधिपतियोंका आदर करते हैं और शुद्रका शासन होनेके लिये उनको उनहीके स्वाधीन करते हैं। सब लोगोंपर इस भावके संस्कार होनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

मनके सार्वजनिक अवस्थाका निरीक्षण करना और सामयी दिखलायेका विचार करना इन मंत्रोंका मुख्य कर्तव्य है। इन मंत्रोंमें जनताकी उन्नतिके विचारकी सूचना मिली है। वैदिक धर्ममें व्यक्ति और समाजका मिलकर सुधार लिखा है। केवल व्यक्तिका सुधार नहीं होगा और केवल समाजका भी नहीं होगा। दोनोंका मिलकर होगा। व्यक्ति समष्टिकी मिलकर उन्नति होती है। प्रत्येक मंत्रकी प्रथम पंक्तिमें सामान्य सिद्धांत कहे हैं और शेष मंत्रमें उन सिद्धांतोंको जनतामें घटाकर बताया है। इस दृष्टिसे पाठक इन मंत्रोंका अधिक विचार करें।

दिशाओंका तत्त्वज्ञान।

वैदिक दृष्टि।

वैदिक तत्त्वज्ञान इतना विस्तृत, व्यापक और सर्वगामी है कि उसका उपदेश न केवल वेदके प्रत्येक सूक्त द्वारा हो रहा है, परन्तु वेदके सूक्त पाठकोंमें वह दिव्य दृष्टि उत्पन्न कर देते हैं, कि जिस दृष्टिसे अपने पदार्थ मात्रकी ओर विशेष भाव भाव देखनेका एक वैदिक धर्मियोंके अन्दर उत्पन्न हो सकता है। विशेष प्रकारका दृष्टिकोण उत्पन्न करना वेदको अभीष्ट है। यदि पाठकोंमें यह दृष्टिकोण न उत्पन्न हुआ तो वैदिक मंत्रोंका अर्थ समझना ही असम्भव है। वेदमंत्रोंकी रचना तथा उनको समझनेकी रीति वैदिक उपदेशकी पद्धति तथा वैदिक दृष्टि इतनी विलक्षण और आजकलकी अवस्थासे भिन्न है कि यह दृष्टि अपनेमें उत्पन्न करना ही एक बड़े प्रयासका कार्य आज उसकी दुर्लभताके कारण हो गया है आजकलकी अन्य ग्रन्थोंकी रीति अवलंबन करनेके कारण यह परिशुद्ध मानसिक अवस्था और यह दिव्य दृष्टि हमारेमें नहीं रही कि जो प्राचीन आर्योंमें वैदिक धर्मके कारण थी।

किसी ग्रन्थकी भाषा ओरस और शुष्क होनेमें कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। काव्यका रस जाननेके लिये पाठकोंका तथा श्रोताओंका हृदय विशेष संस्कृतिसे संपन्न ही चाहिए। कविकी दृष्टिसे ही काव्यका रस ग्रहण करना चाहिए अन्यथा कविकी दृष्टिके बिना कोई काव्य पाठकोंके हृदयपर प्रेमरस भाव उत्पन्न कर ही नहीं सकता। उत्तम कविता अपढ़ी मनुष्योंके हृदयोंपर कोई इस परिणाम नहीं कर सकती इसका यही हेतु है। वीणाकी एक तार बजानेसे उसके स्वरके साथ मिली हुई दूसरी तार आप ही आप आवाज देती रहती है परन्तु जो तार उसके स्वरके साथ मिली नहीं होती वह नहीं बजती। यही नियम काव्यके आस्वाद लेनेके विषयमें भी है। जो हृदय कविके हृदयके समान उच्च होते हैं वही उस काव्यसे हिल जाते हैं, परन्तु जो हृदय भिन्न प्रकारकी अवस्थामें होते हैं वे नहीं हिल सकते। वेद वैदिक काव्य इसलिये उसका समझने और उसका वास्तविक आनंद लेनेके लिये भी विशेष उच्च कोटीके हृदय चाहिये।

यहां प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि यदि ऐसा है तो सामान्य मनुष्यके लिये वेद विद्यमान सिद्ध होगा। परंतु वास्तविक बात ऐसी नहीं है। परमेश्वरकी सृष्टि जैसी सब मनुष्योंके लिये है उसी प्रकार ईश्वरके वेद भी सब मनुष्योंके लिये ही हैं। परंतु अपनी योग्यता और अवस्थानुसार हरएक मनुष्य वहांसे ज्ञान ग्रहण करता है।

जिस प्रकार साधारण मनुष्य अन्नसे क्षुधा शांत करने और अग्निसे शीत निवारण करनेका काम लेकर इन पदार्थोंका उपयोग करता है और समझता है कि मैंने इनका उपयोग लिया। तहां साधारण मनुष्य वेदका स्थूल अर्थ लेता है और समझता है कि मैंने वेदका अर्थ जान लिया। जैसा अग्निं ईळे का अर्थ मैं अग्निकी प्रशंसा करता हूं इतना ही समझता है।

जिस प्रकार उच्च कोटीके वैज्ञानिक यंत्रकलानिपुण महाजन उसी अस्त्र और अग्निसे यंत्रोंमें रखकर उनके योगसे बड़े बड़े यंत्र चला लेते हैं और समझते हैं कि हमने सृष्टिका उपभोग लिया; तद्वत् ही बड़े बड़ी और आत्मज्ञानी पुरुष उसी वेद मंत्रका काव्यदृष्टिसे अवलोकन करके परमात्म तत्त्वके जिज्ञासुओंको बतलाते हैं । जैसा— अग्निं ईळे । का अर्थ वे लोग समझते हैं कि मैं उस तेजस्वी आत्माकी प्रशंसा करता हूं ।

जैसा सृष्टिका उपभोग दोनों ले रहे हैं वैसा ही वेदका अर्थ दोनों समझ रहे हैं । परन्तु एककी साधारण दृष्टि अथवा अंध दृष्टि है और दूसरेकी असाधारण अथवा काव्यदृष्टि है । वेद दिव्य काव्य होनेसे इस प्रकारकी असाधारण काव्यदृष्टिसे ही उसका आदर देखना उचित है । यद्यपि उसका यह दृष्टि साध्य नहीं है तथापि जिनको साध्य हो गई है उनकी सहायतासे अन्योंको उचित है कि वे अपनी मति इस भूमिकामें करें । आचार्यके बतलाये मार्गसे चलनेका यही तात्पर्य है ।

वेदका अर्थ समझनेके लिये न केवल वेद मन्त्रोंका विशेष दृष्टिसे और विशेष पद्धतिसे अर्थ जाननेकी आवश्यकता है; परन्तु सृष्टिकी ओर भी विशेष आत्मिक भावनासे देखनेकी अत्यंत आवश्यकता है । सर्वसाधारण लोगोंको सृष्टिकी तरफ अंध दृष्टिसे देखनेका अभ्यास आवश्यक हो गया है । यही अभ्यास अत्यंत घातक है । जबतक जनतामें अंध दृष्टि रहेगी तबतक उसमें वैदिक दृष्टिका अभाव ही रहेगा । जिस अंध स्वार्थमें सब भूतमात्र आत्मरूप हो गये उस अंधस्वार्थमें एकत्व-का सर्वत्र दर्शन होनेके कारण शोक मोह नहीं होता । (यजु ४ ।७) यह दृष्टि है कि जिस दृष्टिसे सृष्टिकी ओर देखना चाहिए । परमात्म शक्तिका जो विकास इस प्रकृतिमें हो गया है वह ही सृष्टि है । इस दृष्टिको आत्मरूप दृष्टि कहते हैं ।

अंध दृष्टिसे लोग अपने शरीरको और भी जड़वत्के भावसे देखते हैं और केवल अस्थि मज्जा मांस आदिकोंको ही देखते हैं; उनको इन जड़ पदार्थोंसे भिन्न कोई अन्य पदार्थ इस शरीरमें दिखाई नहीं देता परंतु दूसरे कुशिक लोग ऐसे हैं कि जो इस शरीरको और चेतन दृष्टिसे देखते हैं और हरएक शरीरके भागमें आत्मारी अधिक विकास और आभास देखते हैं । यह दूसरी दृष्टि वेदको अभीष्ट है । इसी दृष्टिसे मंत्रोंका मिति तत्त्व करनेका तथा वेदका अभ्यास करनेका यत्न करना चाहिए । इस विचारका विशेष स्पष्टीकरण करनेके लिये इस लेखमें दिशाओंका विषय लिया है आशा है कि पाठक इस लेखको ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे—

' प्राची दिशा ' पूर्व दिशाकी विभूति ।

पूर्व दिशाके लिये वेदमें विशेष कर प्राची दिक् शब्द आया है । इसका मूल अर्थ निम्न प्रकार है—

(१) प्राची=(प्र+अंच्)= प्र' का अर्थ ' आदिका प्रथम आगे सम्मुख है। अंच् का अर्थ गति पूजन ' अर्थात् आना बढ़ना चलना इकट्ठा करना सत्कार और पूजा करना है । तात्पर्य प्राची शब्दका अर्थ आगे बढ़ना, उन्नति करना अग्रभागमें हो जाना प्रगतिका साधन करना उदयको प्राप्त होना अभ्युदय स्वीकार करना आगे बढ़ना इत्यादि प्रकार होता है ।

(२) दिक्= दिशा= का अर्थ तर्क सीध साफ, दिशाका आशा दिखाना सीधा रास्ता सरल मार्ग इत्यादि होता है ।

उक्त दोनों अर्थोंको एकत्रित करनेसे प्राची दिक् का अर्थ- (१) आगे बढ़नेकी दिशा (२) उदयका मार्ग (३) अभ्युदय प्राप्त करनेका रास्ता (४) सत्कार और पूजाका पंथ, (५) उन्नतिकी इकट्ठा (६) सब गतिका सीधा मार्ग इत्यादि प्रकार होता है । प्राची दिशाका मूल अर्थ बढ़ती अथवा उन्नतिकी दिशा अभ्युदयका मार्ग सृष्टिका रास्ता है ।

इस अर्थको मनमें धारण करके पाठक पूर्व दिशाकी ओर सवेरे देखें । विचारपूर्वक देखनेके पश्चात् पाठकोंको पता लग जायगा कि पूर्व दिशाका नाम प्राची दिक् वेदने क्यों रखा है । विचारकी दृष्टिसे रात्रीके समयमें भी पूर्व दिशाकी ओर पाठक देखते जांय । पूर्व दिशाकी अपूर्वता सवेरे और रात्रीके समय ही ज्ञात हो सकती है । दिनके समय सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशके कारण इस दिशाका महत्त्व ध्यानमें नहीं आ सकता । इसलिये सवेरे और रात्रीको ही पूर्व दिशाके महत्त्वका चिन्तन करना चाहिये ।

तार्किक लोग दिशाओंको जड़ कहते हैं उनको वैसा ही कहने दें क्योंकि उनकी दृष्टि भिन्न है । वेद पढ़नेके समय आपको सदैव पूर्ण चेतनकी दृष्टिसे देखना चाहिये । जैसा पूर्व दिशामें उसी प्रकार अन्य सब दिशाओंमें चेतनका विकास हो रहा है ऐसी शुद्ध कल्पना कीजिए । और प्रत्येक दिशा जीवित और जाग्रत है तथा विशेष प्रकारकी जाग्रत प्रभात कर रही है ऐसी कल्पना कर लीजिए । यदि आप इतनी कल्पना मात्र करेंगे तो भी हमारे प्रस्तुतके अर्थके लिये बहुत अच्छा है ।

आप प्रभात कालमें पूर्व दिशाकी ओर मुख कर लीजिए । सूर्य तापमानोंका उदय हो रहा है और कइयोंका उदय हो चुका है,

ऐसा आप देखेंगे। अनंत ताराओंको जन्म देनेवाली सबका उदय करनेवाली यह पूर्वदिशा है। तेजस्विताका प्रकाश इस दिशासे हो रहा है। प्रतिक्षण इस दिशाकी प्रतिमा बढ़ रही है, क्योंकि तेजोरूप सूर्यनारायणका अब जन्मका समय है। देखिये। थोड़े ही समयमें सहस्ररश्मी सूर्य भगवान् उदयको प्राप्त होंगे और संपूर्ण जगत्को नवजीवनसे संचारित करेंगे। उषापुत्री ऊषाकाल का नाश होना और सत्यपुत्री प्रातःसमय प्रकाश चारों ओर चमकने लगेगा। देखिए अब सूर्यका उदय हो चला है यह सूर्यबिंब कैसा मनोरम रमणीय स्फुरण देनेवाला आनंदको बढ़ानेवाला तेजका संचय करनेवाला तथा सहस्रों शुभ गुणोंसे युक्त है!! आप इसको उदय अब न समझिए। यह हमारे प्राणोंका प्राण है यह स्थावर जंगमका जीवनदाता है इसके होनेसे हम जीवित रह सकते हैं और इसके न होनेसे हमारा मृत्यु है, ऐसा यह सूर्यनारायण हमारे जीवनका आधार परम पुरुषके अद्वितीय तेजका यह पूर्ण निःसंदेह व्यक्त रूप है। इसकी उपमासे आप परमात्माकी अद्वितीय तेजस्विताकी कल्पना कर सकते हैं। इस सब दृष्टिसे आप इसका निरीक्षण कीजिए। उदय होते ही इसका तेज बढ़ने लगा है। तात्पर्य यह पूर्व दिशा हरएकको उदयके मार्गकी सूचना दे रही है अभ्युदयका उषा बता रही है अपनी तेजस्विता बढ़ानेका उपदेश कर रही है। देर अच्छा है कि यह उदयकी दिशा है। सबका उदय चाहिये हो रहा है। हे मनुष्य! तुम प्रतिदिन इसका ध्यान और अपने उदयका मार्ग सोचो।

सूर्यनारायण और सब ताराओंका उदय देखते हुए आप अपने उदयके मार्गकी सूचना निःसंदेह ले सकते हैं। यदि एक समय अस्तको पहुंचा हुआ सूर्य पुरुषार्थसे फिर अपनी परिपूर्ण तेजस्विताके साथ उदयको प्राप्त हो सकता है, यदि हमारीभांके चरम अस्त दीनताको पहुंचा हुआ मेरुमा प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा प्रयत्न करता हुआ फिर पूर्णिमाके दिन अपने परिपूर्ण वैभवको इसी पूर्व दिशासे प्राप्त हो सकता है इसी प्रकार यदि सब तारा एक बार अस्तंगत होनेपर भी पुनः पूर्ववत् उदयको प्राप्त कर सकते हैं, तो क्या मनुष्य किसी कारण अवनतिमें पहुंच गये होंगे तो भी उन्नत नहीं हो सकेंगे? जिस मनुष्यके हृदयमें प्रकाश आत्मा बैठा है जिस मनुष्यके शरीरमें सब सूर्यनारायण देवताओंने प्रकाश जन्म लिया है ऐसा मनुष्य कि जो ३३ कोटि देवताओंका उपलक्ष्य है वह पुरुषार्थ करनेपर नीच अवस्थामें कभीभर रह सकता है! न देखा अभ्युदयपर इसका परिपूर्ण अधिकार है परंतु वह अपना जैसा चाहे वैसा अभ्युदय अपने ही स्वतंत्रतासे और अपने ही पुरुषार्थसे निःसंदेह प्राप्त कर सकता है। व्यष्टिशः और समष्टिशः अर्थात् अपना और जातीका निश्चय और समूहका इसी एक भावनासे उदय हो सकता है। पूर्व दिशाके अवलोकनसे मनमें ये विचार उत्पन्न हो सकते हैं।

पश्चिम दिशाकी विभूति।

दिशाओंकी विभूतियोंका वर्णन करते हुए पूर्व स्थलमें पूर्व दिशाकी वैदिक कल्पना बताई है, अब इस लेखमें पश्चिम दिशाकी कल्पना बताना है। वैदिक क्रम देखा जाय तो पूर्व दिशाके पश्चात् दक्षिण दिशाका वर्णन आना योग्य है और यह वैदिक दृष्टिसे ठीक भी है क्योंकि उदयके मार्गके साथ साथ दक्षिण मार्ग चलना चाहिए। अभ्युदय और दक्षताका साहचर्य स्वाभाविक ही है। उदयकी इच्छाके साथ दाक्षिण्यका अवलंबन करनेकी आवश्यकता है इसमें कोई संदेह ही नहीं है। तथापि पूर्व और पश्चिम दिशाओंकी विभूतियों परस्पर सापेक्षताका संबंध रखती हैं इसलिये वैदिक कल्पनाकी स्पष्टता होनेकी इच्छासे पूर्व दिशाका वर्णन होनेके पश्चात् पश्चिम दिशाका वर्णन करनेका उपक्रम किया है। यह सापेक्षताका संबंध देखिए—

पूर्व	पश्चिम
उदय	अस्त (अस्तं एति)
अभ्य	पशु (स्व-रूप प्राप्ति)
प्रकाशका प्रारंभ	अन्धकारका प्रारंभ
प्र-वृत्ति	नि-वृत्ति
पुरुषार्थ	निभाति
प्राची	प्रतीची
प्र+अंच्	प्रति+अंच्
इच्छक	क्षांति
उन्नति	सुषुप्ति
दिन	रात्री

इन दो दिशाओंका परस्पर सापेक्ष संबंध देखनेसे वैदिक कल्पनाकी अधिक स्पष्टता हो जायगी। इसलिये क्रमप्राप्त दक्षिण दिशाका विचार न करते हुए पश्चिम दिशाका विचार यहां प्रथमतः करना है। देखिए—

पश्चिम प्रतीची दिशा है। इस प्रतीची दिशाका अधिपति पति वरुण स्वामी है, क्योंकि अवका ही पूर्ण क्षांति है और वह वरुणके आधीन है। इसीलिये इसको वरुण अर्थात् श्रेष्ठ कहते हैं। अथवा वर शब्द योग्यतासे उदक वाचक भी है जिसके पास वर अर्थात् उदक है वह वरुण कहलाता है। अन्नाधिपतिका संबंध अन्नके साथ होना स्वाभाविक ही है अन्नके बिना अन्नकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। अन्नका भोजन करनेके

सुषुप्तावस्था और अन्नका पान करनेसे तृप्तावस्था होती है, अर्थात् अन्नपानके कारण प्राणियोंके अन्दर परिपूर्ण शांति होनेके कारण उत्साह बढ़ता है। इस प्रकार इस दिशासे अनताकी शांतिका संबंध है।

अब पश्चिम दिशाकी विभूति देखिए– व्यक्तिके देहमें मुख भाग, आयुमें तरुणवस्था जिसमें सायंकालका समय दिनको पुरुष मानीए और वह दिन अपनी स्त्री रात्रीके साथ मिलने जाता है वही दिन और रात्रिका मिथुन है इसी प्रकार स्त्रीपुरुषका मिथुन होता है इसलिये तारुण्यावस्था पश्चिम दिशा है जाहीर वैदिक अहोरात्र अवधा पूर्ण दिवस होता है उसमें १५ घंटे व्यतीत होते हैं वह आयुकी मध्यम अवधा तारुण्यावस्था है, इस समय सूर्य विश्रामके लिये पश्चिम दिशामें जाता है। ऋतुओंमें वर्षा ऋतु महिनोंमें भाद्रपद कार्तिक पर्जन्य अन वर्णोंमें वैश्य वर्ण आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम पुरुषार्थोंमें काम युगोंमें द्वापर पुत्र अवस्थाओंमें सुषुप्ति इत्यादि पश्चिम दिशाकी विभूति है। इसका विचार और आरोध्य करके इस प्रकारमें स्थूलाविक करना उचित है। साधारणतया योजना इस प्रकार वर्णन किया है।

पश्चिम दिशाको इस प्रकार आप अमूर्त और व्यापक मानिए। एक विशेष भाव इस शब्दके ध्यानमें अवश्य है। साधारण लोक पश्चिम दिशाके सूर्यास्त होनेकी दिशा समझते हैं परन्तु इससे कई गुना उच्च और व्यापक अमूर्त भाव वेदमें है जिसका ज्ञान होनेके बिना दिशा शोधक वैदिक मंत्रोंके शब्दोंका आशय समझमें ही नहीं आवेगा।

प्रति+अच् धातुसे प्रतीची शब्द बनता है। इसका अवयव पीछे हटना निवृत्त होना अंतर्मुख होना विश्रामकी तयारी करना इत्यादि प्रकार होता है। सूर्य दिनभर प्रवृत्ति रूप काम करनेके पश्चात् विश्रामकी तैयारी करके पश्चिम दिशाका आश्रय करता है। मानो कि सब अवयवोंको दिनभर प्रकाश देकर पश्चात् विश्रांतिके लिये अपने घर आता है, और रात्रीके साथ संलग्न होता है। इसी हेतुसे रात्रीको रमयित्री अर्थात् रमण करनेवाली कहा जाता है। पुरुष भी इसी प्रकार दिनभर अपने सब व्यवहार करता हुआ जब थक जाता है तब घर आकर अपनी पत्नीके साथ रहता हुआ शांति पाता है। सूर्य तरुण है इसलिये तारुण्यावस्था है यह सब समझ लेनेयोग्य है इस प्रकरण प्रसंग पश्चात् यह रात्रीके साथ रममाण होनेसे पुरुषी कहता है यही अवधा पश्चिम दिशाका कार्य है।

इसका प्रकरणांशमें विश्रमी और श्रमोंके कारण उपभोगका अनुभवी और पुरुषार्थोंसे अधिक होकर आता है यही व्यक्तिका पश्चिम दिशाका कार्य है। वर्णोंमें ब्राह्मण वर्ण समिधोंसे तप करता है यह ब्राह्मण वर्ण तपस्याके लिये है। परन्तु वैश्य वर्ण शांतिसे घरमें रहता पैसे कमाता और अन्न पाता है। न तो इस वर्णको ब्राह्मणके समान तपस्याके कष्ट हैं और न क्षत्रियके समान युद्धके दुःख हैं। शांतिके साथ पूर्ण सौख्य भोगनेके कारण यह वैश्य वर्ण चातुर्वर्ण्यमें शांति और विश्रामका अवयव पश्चिम दिशाका स्थान है। ऋतुओंमें वर्षा और ग्रीष्म उष्णतासे तपानेवाले हैं परन्तु वर्षाऋतुमें सर्वत्र शीत अवधी वृष्टि होनेसे नदी तालाब और कूप अच्छे परिपूर्ण होनेके कारण सर्वत्र कृषिका प्रारंभ होनेसे सब भूमि हरियालीसे सुन्दर और शांत दिखाई देती है इसलिये ऋतुओंमें वर्षा ऋतु पश्चिम दिशाकी विभूति मानी है। इसी रहिसे अन्यत्र देखिए और अन्य पश्चिम दिशाकी विभूति जानलेना यत्न कीजिए। इस प्रकारकी भावना पश्चिम दिशाके वैदिक मंत्रोंमें है इसलिये इसकी यथावत् कल्पना होनेसे ही मंत्रोंका आशय हृदयमें विकसित हो सकता है।

उत्तर दिशाकी विभूति।

पूर्व दो लेखोंमें पूर्व और पश्चिम दिशाओंकी विभूतियोंका वर्णन किया गया है उसी क्रमानुसार इस लेखमें उत्तर दिशाका विचार करना और उस दिशाकी विभूतियोंका स्वरूप आकलेन करना है। पश्चिम विचारके पश्चात् क्रमप्राप्त उत्तर दिशा है। उत्तर दिशाका भाव भिन्न प्रकार देखा जा सकता है—

उत्तर	उदीची
उद्-तर	उद्-अंच्
उत्-तर	उच्च गति

(उद्) उच्चतासे (तर) अधिक जो भाव होता है, वह उत्तर दिशा ' उच्च-तर ' शब्दसे बताया जा सकता है। उच्चताकी दिशा अधिक उच्चताके आशयकी दिशा यह इस शब्दका आशय है। जिस प्रकार पूर्व दो लेखोंमें बताया गया है कि प्राची और प्रतीची दिशा क्रमशः प्रवृत्ति और विश्राम की सूचक दिशा है उसी प्रकार समझिये कि यह उदीची दिशा उच्च गतिकी सूचक है व्यक्ति शरीरमें यह उत्तर दिशा वायु अवयव के साथ सम्बन्ध रखती है।

शरीरमें वायु अवयव उत्तर दिशा है, इसमें भी हृदय मुख्य है इसका आशय अधिपति है। अंगुष्ठ मात्र पुरुष हृदयमें रहता है यह उपनिषदोंका वचन यहां देखने योग्य है। इसका स्वरूप रक्तिम है। उद्-अ शब्द उच्च बनने वाली गतिका वाचक है। आकाशकी स्वतंत्र गतिके

आत्म रक्षण होता है। बाहरकी शक्तिसे वहांका कार्य होता ही नहीं है। आत्माकी निज शक्तिका ही प्रभाव वहां होना आवश्यक है। आत्माके प्रेमसे तथा परमात्माकी भक्तिसे हृदयके झुम-मंझम्मम होनेकी उमावना वहां स्पष्ट हो रही है।

उत्तरं राष्ट्र प्रजयोत्तराविद्दिशामुदीचीं कृणवत्सो अग्रम्। पांक्तः छंदः पुरुषो यमूषु विश्वैर्देवैरंगोः सह संभवेम ॥ १० ॥ (अथर्व १२।१)

"(उत्तरं राष्ट्रं प्रजया उत्तराविद्) उत्तर दिशा वही तो विजयकी राष्ट्रीय दिशा है। इसलिये (सः) हम सब को (अग्रं) अग्रसरमें रहनेकी इच्छा धारण करते हुए इसी उत्तर दिशासे प्रयत्न करना चाहिए। (पांक्तः) पांच वर्णोंसे मिलकर (पुरुषः) नागरिक जन ही इसका छंद है। इसलिये सब अंगोंके साथ हम सब (सह संभवेम) मिलकर रहें अर्थात् एकतासे पुरुषार्थ करें।"

राष्ट्रमें उच्च होनेकी भावना ही उत्तर अर्थात् उच्चतर दिशा है। इस दिशाके प्रवर्तिका साधन और अभ्युदयके मार्गका आक्रमण करनेवाले राष्ट्रके प्रत्येक मनुष्यके अंदर यह भावना चाहिये कि मैं (अग्रं) अग्रभागमें पुरुषार्थ करता हुआ पहुंच जाऊंगा। मैं कभी पीछे नहीं रहूंगा। राष्ट्रमें पांच वर्ण होते हैं, इसके प्रत्येक प्रजाजनोंका वैशिष्ट्य होनेके कारण एकोगुण प्रधान क्षत्रियोंका रक्षणार्थ बैठकर कार्य करनेवाले धनसंग्रह करनेवाले वैश्योंका पोषणार्थ अर्थात् सबकी नीरोगता और अन्नपुष्टि संपत्तिवालोंका इष्ट कर्म होता है। इस प्रकार इन पांच वर्णोंसे मिलकर है इसलिये पंचजनोंके राष्ट्रका वैदिक नाम पांचजन्य है। पांच-जनका महाभाव ही अवताका सार्वजनिक मत हुआ करता है। जो पुरि अर्थात् नगरीमें बसते हैं उनका नाम पुरुष अर्थात् नागरिक होता है। (पुरि-वस पुर्-वस पुर्-उप पुरुष) ये पुरुष अर्थात् नागरिक पहिले चार वर्ण हैं, और पांचवा निषाद वर्ण नागरिकोंसे भिन्न है इसलिये कि वह जंगलमें रहता है। जंगल निवासी भी राष्ट्रके अवयव हैं किंतु नागरिक होते हैं। इसलिये पांच-जन राष्ट्रमें जब लोग आते हैं जिस प्रकार वैदिक राष्ट्रीय पांचजन्यकी कल्पनामें सब पांचों प्रकारके जनोंका अन्तर्भाव होता है उस प्रकारका पांचजन्य राष्ट्र का अर्थ और आशय बतलानेवाला शब्द किसी अन्य भाषामें नहीं है। इससे पता लगता है कि वैदिक राष्ट्रीयताकी कल्पना कितनी उच्च और कैसी व्यापक है। सब अवयवों और अंगोंके साथ जब प्रेमरूप एकताका भाव होता है तभी राष्ट्रीय एकताकी अद्भुत शक्ति निर्माण होती है जिससे राष्ट्रको उच्चतर दिशाके अभ्युदयके मार्गसे जाना सुगम होता है। इस प्रकार उत्तर दिशाकी विभूति है।

जगत्में जो उत्तर दिशा है वह सब जानते ही हैं, वही उत्तर दिशा व्यक्तिके शरीरमें नाभी कमल है राष्ट्रमें उत्तर दिशा मनोत्साहक शरीरवर्ग है ऋतुओंमें उत्तर दिशा वसंतु है महिनोंमें आश्विन-कार्तिक मास हैं वर्णोंमें क्षत्रियोंका शरीरवर्ग है छंदोंमें अनुष्टुप् छंद मानवाओंमें उच्च-उच्च होनेकी महत्वाकांक्षा है इत्यादि प्रकार इस उत्तर दिशाकी विभूति है। इस दृष्टिसे सर्वत्र उत्तर दिशाकी विभूति देखकर पाठक बोध ले सकते हैं।

पाठक अन्य दिशाओंके विषयमें इस प्रकार विचार करके चलें और इस ढंगसे इन दो सूक्तोंका मनन करके बोध प्राप्त करें।

पशुओंकी स्वास्थ्यरक्षा।

(१८)

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — यमिनी)

एकैकयैषा सृष्ट्या स संभूय यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशूंस्त्सिणाति रिफती रुशती ॥ १ ॥

अर्थ— (यत्र भूतकृतः विश्वरूपाः गाः असृजन्त) जहां भूतोंको बनानेवालोंने अनेक रंग रूपवाली गौवें बनाई वहां (एषा) यह यौ (एक-एकया सृष्ट्या संभूय) एक एकके क्रमसे बच्चा उत्पन्न करनेके लिये उत्पन्न हुई है। (यत्र अपर्तुः यमिनी विजायते) जहां ऋतुकालके सिवा समयमें जाने बच्चोंको उत्पन्न करनेवाली यौ होती है वहां (सा रुशती रिफती) वह यौ पीड़ा देती हुई और कष्ट उत्पन्न करती हुई (पशून् क्षिणाति) पशुओंको नष्ट करती है ॥ १ ॥

एषा पशून्त्स क्षिणाति क्रूम्याद्भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात्तया स्योना शिवा स्यात् ॥ २ ॥

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥ ३ ॥

इह पुष्टिरिह रसं इह सहस्रसातमा भव ।
पशून्यमिनि पोषय ॥ ४ ॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्च ॥ ५ ॥

अर्थ— (एषा क्रूम्याद् व्यद्वरी भूत्वा) यह जो मांस खानेवाले कछुवेके समान होकर (पशून् सं क्षिणोति) पशुओंका नाश करती है । (उत एनां ब्रह्मणे दद्यात्) इसलिये इस पत्नी ब्राह्मणके पास भेजनी चाहिये (तया स्योना शिवा स्यात्) जिससे वह सुखदायी और कल्याणकारिणी हो जावे ॥ २ ॥

(पुरुषेभ्यः शिवा भव) पुरुषोंके लिये कल्याण करनेवाली हो (गोभ्यः अश्वेभ्यः शिवा) गौओं और घोड़ोंके लिये कल्याण करनेवाली हो (अस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा) इस सब भूमिके लिये कल्याण करनेवाली होकर (सा शिवा मे धि) हमारे लिये सुख देनेवाली हो ॥ ३ ॥

(इह पुष्टिः इह रसः) यहां पुष्टि और यहां रस है । (इह सहस्र-सातमा भव) यहां हजारों लाभ देनेवाली हो और हे (यमिनी) सुके उत्पन्न करनेवाली गौ ! (इह पशून् पोषय) यहां पशुओंको पुष्ट कर ॥ ४ ॥

(यत्र) जिस देशमें (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीरका रोग जाकर (सुहार्दः सुकृतः मदन्ति) उत्तम हृदयवाले और उत्तम कर्मवाले होकर आनन्दित होते हैं हे (यमिनी) गौ ! (तं लोकं अभिसंबभूव) उस देशमें सब प्रकार मिलकर हो जाओ (सा नः पुरुषान् पशून् मा हिंसीत्) वह हमारे पुरुषों और पशुओंको हिंसा न करे ॥ ५ ॥

भावार्थ— यहां उत्पन्न करनेवालेके अनेक रंगरूप और विविध गुणवर्णवाली गौवें बनायी हैं । ये सब गौवें एक बार एक ही बच्चा उत्पन्न करनेके लिये बनायी हैं । जब यह गौ ऋतुको छोड़कर अन्य समयमें इकट्ठे दो बच्चे उत्पन्न करती है उस समय वह मारक और बाधक होती है जिससे अन्य पशु भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

जैसे मांस खानेवाले पशु मारक होते हैं उस प्रकार यह दोषी गौ भी मारक होती है । इसलिये ऐसा होते ही इसको योग्य उपायद्वारा वैद्य ब्राह्मणके पास भेजनी चाहिये जहां योग्य उपचारोंसे यह गौ सुखदायिनी बन जावे ॥ २ ॥

यह गौ मनुष्योंके लिये तथा घोड़े बैल गौएं आदि पशुओंके लिये इस भूमिके लिये और इस सबके लिये सुख देनेवाली बने ॥ ३ ॥

इस गौमें पोषणकारक गुण है, इसमें उत्तम रस है यह गौ हमारी रीतिभांतिसे मनुष्योंको आनन्ददायक होती है इस प्रकारकी गौ सब पशुओंको यहां पुष्ट करे ॥ ४ ॥

जिस प्रदेशमें आकर रहनेसे शरीरके रोग दूर होते हैं और शरीर स्वस्थ होता है तथा जिस प्रदेशमें उत्तम हृदयवाले और उत्तम कर्म करनेवाले लोग आनंदसे रहते हैं उस देशमें यह गौ लाभ यहां रहे; यहां रोगी अवस्थामें रहकर हमारे मनुष्यों और पशुओंको कष्ट न पहुंचावे ॥ ५ ॥

यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान् पशूंश्च ॥ ६ ॥

अर्थ— (यत्र यत्र सुहार्दां सुकृतां अग्निहोत्रहुतां लोकाः) जहां जहां शुभ हृदयवाले उत्तम कर्म करनेवाले और अग्नि होत्रमें हवन करनेवालोंका देश होता है वे (यमिनी) गौ (तं लोकं अभिसंबभूव) उस लोकमें मिलकर रह और (सा नः पुरुषान् पशून् च मा हिंसीत्) वह हमारे पुरुषों और पशुओंकी हिंसा न करे ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिस प्रदेशमें उत्तम हृदयवाले शुभकर्म करनेवाले और अग्निहोत्र करनेवाले सज्जन रहते हैं उस देशमें वह गौ आय और नीरोग बने । रोगी होती हुई हमारे पुरुषों और अन्य पशुओंको अपना रोग देकर कष्ट न पहुंचावे ॥ ६ ॥

पशुओंका स्वास्थ्य ।

पशुओंका उत्तम स्वास्थ्य रहना चाहिये अन्यथा एक भी पशु रोगी हुआ तो वह अन्य पशुओंका तथा मनुष्योंका भी स्वास्थ्य बिगाड सकता है । एक पशुका रोग दूसरे पशुको शीघ्र लगता है और इस कारण सब पशु रोगी हो सकते हैं । तथा गौ आदि पशु रोगी हुए, तो उनका रोगयुक्त दूध पीकर मनुष्य भी रोगी हो सकते हैं । इस अनर्थ परंपराको दूर करनेके लिये पशुओंका उत्तम स्वास्थ्य रखनेका प्रबंध करना चाहिये ।

पशुरोगकी उत्पत्ति ।

पशुओंमें रोग उत्पन्न होनेके तीन कारण इस सूक्तमें दिये हैं वे कारण देखिये—

१ अप+क्रतुः = मनुके विरुद्ध आचरण करनेसे रोग उत्पन्न होते हैं । पशुओंके लिये जिस समयमें जो खानेपीने आदिका प्रबंध होना चाहिये वह वैसा होना ही चाहिये । उसमें अयोग्य रीतिसे परिवर्तन होनेसे पशु रोगी होते हैं । पूर्व समयके पूर्व वैसा उत्पन्न होनेसे भी वे रोगी होती है ।

२ यमिनी विजायते = बुरे प्रकारसे उत्पन्न करना । इससे प्रसूतिकी रीतिमें बिगाड होकर विविध रोग होते हैं ।

३ कव्याद् व्यद्धरी सूत्वा = मांस खानेवाली विशेष भयंकर होकर रोगी होती है ।

जो जिस समय प्रसूत होती है उसके बाद पंद्रह दिनके दूध नाश गिरते हैं । कदाचित् वह गौ उस मासोंका खा जाती है और रोगी होती है । अथवा गोशाला आदि स्थानमें बुरे प्रकारसे उत्पन्न होनेके कारण दुष्ट प्रकारसे होते हैं और वहां प्रसूति स्थानका विष उनमेंसे भी रोगी होती है । इस प्रकार इस प्रकारसे गौके रोगी होनेकी संभावना बहुत है । इसलिये गौके स्वामीका उचित है कि वह ऐसे समयमें गौका सावधानता रखे और किसी प्रकार भी असावधानी होने न दे ।

ये सब रोग बडे घातक होते हैं और यदि एक पशुको हुए तो उसके संसर्गमें रहनेवाले अन्यान्य पशुओंको भी शीघ्र उक्त रोगोंके कारण हो सकता है । इसलिये जिसके घरमें बहुत पशु हैं उसको उचित है कि वह ऐसी अवस्थामेंमें बडी सावधानता रखें और अपने पशुओंके स्वास्थ्यरक्षाका उत्तम प्रबंध करें ।

रोगी पशु ।

पशुके स्वास्थ्यके विषयमें आवश्यक योग्य प्रबंध करनेपर भी गौ आदि पशु पूर्वोक्त कारणोंसे अथवा अन्यान्य कारणोंसे रोगी होते हैं । ऐसे रोगी होनेपर उनको उत्तम वैद्यके पास भेजना चाहिये इस विषयमें कहा है—

अत एनां ब्राह्मणे दद्यात् तया स्योना शिवा स्यात् ॥
(सू. १८ मं. १)

उस रोगी गौको ब्राह्मणके पास देना चाहिये जिससे वह सुख और कल्याण करनेवाली बने अर्थात् उस रोगी गौको ऐसे सुयोग्य ब्राह्मी वैद्यके पास भेजना चाहिये कि जिसके पास कुछ दिन रहनेसे वह नीरोग सुख और शुभ बन जावे । यहां ब्राह्मण शब्द है, वह आयुर्वेद शास्त्र और आदर्शकी चिकित्सा जाननेवाला ब्राह्मी वैद्य है । ब्राह्मण ही वैद्यचिन्ता करते हैं, इस विषयमें अन्यत्र कहा है—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समितामिव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ।
(ऋ. १ १९७।६, या अ १२।८)

जिस वैद्यके पास बहुत औषधियां होती हैं उस वैद्यको वैद्य कहा जाता है वही रोगके कृमियोंका नाश करता है और वही रोग भी दूर करता है ।

इस प्रकारके जो वैद्य होते हैं उनके सुपुर्द अपनी रोगी गौको तात्काल करना चाहिये । जिसके पास रहती हुई वह गौ योग्य उपचार द्वारा आरोग्यको प्राप्त हो सके । यहां इस गौको भेजना चाहिये यह स्थान कैसा हो, इसका वर्णन भी देखिये—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोग तन्वः स्वायाः । (सू २८ म ५)

यत्रा सुहार्दो सुकृतां अग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः । (सू २८ मं ६)

त लोक यजिन्यासि संबभूथ ॥ (सू २८ मं ५ ६)

जहां प्रतिदिन अग्निहोत्रमें हवन करनेवाले लोग रहते हैं और जहां उत्तम हृदयवाले और भद्र कर्मकर्ता लोग रहते हैं और जहां अपने शरीरका रोग दूर होकर मन आनन्दप्रसन्न हो सकता है, उस स्थानपर उस बीजो भेजना चाहिये जहां रहनेसे सब प्रकारसे कल्याण होगा ।

कल्याणके सब क्षेत्र अग्निहोत्रमें प्रतिदिन हवन करनेवाले हों क्योंकि हवनाग्निमें विविध प्रकारके रोगी आते हैं और उनके संसर्गसे विविध रोग फैलना संभव है इस कारण वायु शुद्धिके लिये प्रतिदिन हवन होना योग्य है इस प्रातः सायं किये अग्निहोत्रके हवनसे वायु निर्दोष होगा और रोगबीज नष्ट होंगे और ऐसे वायुसे रोगी भी शीघ्र नीरोग हो सकता है । यह कल्याणकी वायुशुद्धिके विषयमें कहा है । इसके अतिरिक्त कल्याणके कर्मचारी प्रतिदिन नित्यपूर्वक हवन करने वाले हों जिससे उनका भी आरोग्य स्थिर होगा और उस स्थानकी भी शुद्धता होगी ।

साथ ही साथ कल्याणके कर्मचारी (सु-कृतः) उत्तम शुभ कर्म करनेवाले पवित्र आत्मा होने चाहिये । इनकी पवित्रतासे ही रोगीका आधा रोग दूर हो सकता है । जो वैद्य पवित्र हृदयवाला और शुभ कर्म करनेवाला होगा उसका औषध भी अधिक प्रभावशाली होगा क्योंकि औषधके साथ उसके निर्मल शुभ विचार भी बडे सहायक होंगे ।

ऐसे सदाचारी सद्गुणसंपन्न पार्थिव वैद्यके पास जो भी रोगी जाय वह उस आत्मासे पवित्र वसुंधरासे—

स्वायाः तन्वः रोगं विहाय । (सू. २८ मं. ५)

अपने शरीरसे रोग दूर करके पूर्ण नीरोग होगा इसमें कोई संदेह नहीं । इसीलिये कहा है कि ऐसे सुविज्ञ आचार संपन्न कल्याण वैद्यके पास उस प्रकारके रोगी बीजो पाकर भेजना चाहिये । वहां जाकर वह जो नीरोग बने और वहांसे वापस आकर घरके मनुष्यों पीओं गौओं और घरकी सब भूमिको पवित्र बनावे । (म १) ' गोरोग गौका मूत्र गोबर तथा गोरस अत्यंत पवित्र होता है परंतु रोगी गौके ये सब पदार्थ अत्यंत अनिष्ट होते हैं । इसलिये उक्त आश्रममें पहुंचकर, वहां रहकर पूर्ण नीरोगताको प्राप्त होकर जब वह गौ वापस आयेगी, तब वह मंगलकारिणी बनेगी ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है वह सर्वथा योग्य है । गौके अन्दर रोगके पदार्थ और अमृत-रस होते हैं । वह जो अत्यंत प्रकारसे लाभकारी होती है (मं ४)' इसलिये उसके आरोग्यके लिये दवाखाने योग्य प्रबंध करना उचित है ।

संरक्षक कर ।

(१९)

(ऋषिः — ब्रह्मवक्ता । देवता — क्षितिपाद् अग्निः कामः भूमिः)

यद्राजानो विमजन्त इष्टापूर्तस्य पोडश यमस्यामी समासदः ।
अग्निस्तस्मात्र मुञ्चति दुग्धः क्षितिपास्त्वचा ॥ १ ॥

अर्थ— (यत्) जिस प्रकार (यमस्य अमी राजानः समासदः) नियमसे चलनेवाले राजाके ये राज्य करनेवाले सभासद (इष्टापूर्तस्य षोडशं विभजन्ते) यज्ञादिक सोलहवां भाग विभक्त करते हैं । वह (दुग्धः) दिया हुआ भाग (अग्निः) रक्षक बनकर (क्षिति-पात्) क्षितिकोंको गिरनेवाला (स्व-धा) और अपना धारण करनेवाला होता हुआ (तस्मात् प्रमुञ्चति) उस भागसे छुडाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— नियमसे प्रजाका पालन करनेवाले राजाके ये राजसभाके सभासद वस्तुतः सच्चे राजा ही हैं । ये प्रजासे यज्ञ आदि धार्मिक सोलहवां भाग कर उससे लेते हैं । राजाको दिया हुआ यह सोलहवां भाग सब राष्ट्रका संरक्षण करता है प्रजाके दुःख देनेवाले जो दोष हैं उनको दण्ड देकर हटाता है प्रजाकी धारक शक्ति बढाता है और उनको भयसे मुक्तता करता है ॥ १ ॥

सर्वान्कामान्पूरयस्यामर्वन्प्रमर्वन्मर्वन् । आकूतिप्राऽर्विर्दुच्छः क्षितिपाम्नोपं दस्यति ॥ २ ॥
यो ददाति क्षितिपाद्रमर्वि लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुक्को न क्षियते अवलेन बलीयसे ॥ ३ ॥
पञ्चापूप क्षितिपाद्रमर्वि लोकेन संमितम् । प्रदातोपं जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥
पञ्चापूपं क्षितिपाद्रमर्वि लोकेन संमितम् । प्रदातोपं जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५ ॥
इरेव नोपं दस्यति समुद्र इव पर्यो महत् । देवी संवासिनाविव क्षितिपाम्नोपं दस्यति ॥ ६ ॥

अर्थ— वह (दत्तः) दिया हुआ भाग (आकूति प्रः) संकल्पोंका पूर्ण करनेवाला, (क्षिति पात्) हिंसकोंसे बचानेवाला (अर्विः) संरक्षक करनेवाला (आ मर्वन्) फैलानेवाला (प्रमर्वन्) प्रभावशाली (मर्वन्) अरिष्टनाशका हेतु होता हुआ (सर्वान् कामान् पूरयति) सब कामनाओंको पूर्ण करता है और न उपदस्यति) विनाश नहीं करता ॥ २ ॥

(यः लोकेन संमित) जो सब लोगों द्वारा सम्मानित (क्षिति-पाद् अर्वि ददाति) हिंसकोंसे त्राण करनेवाले संरक्षक भागको देता है (सः नाक अभ्येति) वह दुःखरहित स्थानको प्राप्त करता है (यत्र अवलेन बलीयसे शुक्कः न क्षियते) जहां निर्बल मनुष्यको बलवानके लिये धन देना नहीं पड़ता है ॥ ३ ॥

(पञ्च-अ-पूपं) पापोंको न खानेवाले अन्नरूप (लोकेन संमितं) जनता द्वारा संमत (क्षिति-पाद् अर्विं) हिंसकोंसे बचानेवाले संरक्षक कर भागको (प्रदाता) देनेवाला (पितृणां लोके अक्षितं उपजीवति) पितृलोकमें अक्षय काल जीवित रहता है ॥ ४ ॥

(पञ्च-अ-पूपं) पापोंको न खानेवाले (लोकेन संमितं) जनताद्वारा सम्मानित (क्षिति पाद् अर्विं) हिंसकोंसे बचानेवाले संरक्षक कर भागको (प्रदाता) देनेवाला (सूर्या-सावयोः अक्षितं उपजीवति) सूर्य और चन्द्रके सम्पर्कमें अक्षयताके साथ जीवित रहता है ॥ ५ ॥

(इरा इव) भूमिके समान तथा (महत् पयः समुद्र इव) बड़े जलनिधि महासागरके समान और (सवासिनौ देवौ इव) साथ साथ निवास करनेवाले प्राणरूप दो देवोंके समान (क्षितिपात् न उपदस्यति) हिंसकको दूर करनेवाला यह भाग विनाश नहीं करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह दिया हुआ कर प्रजाके सब अभ्युदयके संकल्पोंको पूर्ण करता है दुष्टोंका दमन करता है सुष्टोंका पालन करता है राष्ट्रका विस्तार करता है वीरोंका प्रभाव बढ़ाता है और राष्ट्रका अस्तित्व स्थिर रखता है साथ साथ सब अवयवके मनोरथ पूर्ण करता है और किसी भी प्रकार प्रजाका नाश नहीं करता ॥ २ ॥

इसलिये सब लोग राजाको यह कर देना पसंद करते हैं। जो लोग दुष्टोंको दबाकर सज्जनोंका प्रतिपाल करनेवाला यह कर राजाको देते हैं वे मानो सुख पूर्ण स्थानको प्राप्त करते हैं फिर उस स्थानमें कोई बलवान मनुष्य निर्बलसे अवश्यकतीसे धन लेनेवाला नहीं रहता और न कोई निर्बल मनुष्य अपनी आर्थिक हीनताके कारण बलवानके लिये धन अर्पण करता है ॥ ३ ॥

यह कर पापकर्मोंको न खानेवाला दुष्टोंको दबानेवाला और सत्पुरुषोंका पालन करनेवाला है इसलिये सब जनता इसको राजाके पास समर्पण करती है। जो लोग यह कर देते हैं वे परलोकमें सदा सुरक्षित रहते हैं ॥ ४ ॥

यह कर पापकर्मोंको न खानेवाला दुष्टोंका दमन करनेवाला सज्जनोंका पालन करनेवाला है इसलिये सब लोग आनन्दसे राजाको यह देते हैं। जो कर देते हैं वे सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाशमें सुखसे रहते हैं ॥ ५ ॥

दुष्टोंको दबानेके लिये दिया हुआ यह कर भूमिके समान आधार देनेवाला समुद्रके जलके समान शांति देनेवाला और सासोंके समान सबका रक्षक होता है और किसीका विनाश होने नहीं देता ॥ ६ ॥

कः इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ॥
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत्ते ॥ ७ ॥
भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगूढ वि रार्धिषि ॥ ८ ॥

अर्थ— (कः इदं कस्मै अदात्) किसने यह किसको दिया है ? (कामः कामाय अदात्) मनोरथने मनोरथके लिये दिया है। (कामः दाता) काम ही दाता है, (कामः प्रतिग्रहीता) काम ही लेनेवाला है, (कामः समुद्रं आविवेश) काम ही समुद्रमें प्रविष्ट होता है। (कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि) इच्छासे मैं तेरा स्वीकार करता हूं। हे काम ! (एतत् ते) यह सब तेरा ही है ॥ ७ ॥

(भूमिः) पृथ्वी और (इदं महत् अन्तरिक्ष) यह बडा अन्तरिक्ष (त्वा प्रतिगृह्णातु) तेरा स्वीकार करे। (अहं प्रतिगृह्य) मैं ग्रहण करके (प्राणेन आत्मना प्रजया) प्राणसे आत्मासे और प्रजासे (मा मा मा विरार्धिषि) न अलग हो जाऊं ॥ ८ ॥

भावार्थ— यहां यह कौन किसको देता है ? काम ही कामको देता है। इस जगत्में मनकी इच्छा ही देने और लेनेवाली है। यही कामना मनुष्यको समुद्रपार भ्रमण कराती है। इस कामसे ही मनुष्य बडी आपत्तियां आप सिरपर लेता है। यह सब जगत्का व्यवहार कामकी महिमा ही है ॥ ७ ॥

इस पृथ्वीपर और आकाशमें कामनाका ही संचार हो रहा है। इस अपनापन विचार करता हुआ मैं आप आत्मा और प्रजासे दूर न होऊं ॥ ८ ॥

राज्यशासन चलानेके लिये कर।

राजा राज्यका शासन करता है। इस महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये प्रजा उसको कर समर्पण करती है। इस करका प्रमाण कितना होना चाहिये अर्थात् प्रजा अपनी प्राप्तिका कितवां भाग राजाको समर्पित करे और राजा उस धनका किन कार्योंमें उपयोग करे इस विषयका उपदेश इस सूक्तमें किया है। अतः राज्यशासनका विचार करनेवालोंको यह सूक्त बडा बोधप्रद है।

प्राप्तिका सोलहवाँ भाग।

प्रजाकी जो आमदनी होती है उसका सोलहवाँ भाग राजाको देनेके लिये राजसभाके सभासद आग्रह करते हैं यह वर्णन अगले ही मंत्रमें है—

अमी सभासदः इडापूर्तस्य षोडशं विभजन्ते ॥
(अ. २९ मं. १)

राजसभाके ये सभासद प्रजाकी प्राप्तिके सोलहवां भाग अलग करते हैं। और यह सोलहवां भाग राजाको प्रजाके लिये मिलता है। यह कर है जो राजाको राज्य चलानेके लिये देना चाहिये। जैसेके जो धान्य उत्पन्न होता उसका सोलहवां भाग राजाकी राजसभाके सभासद लेकर संग्रह करें। जो उत्पन्न होता उसका सोलहवां भाग लेते हैं। अर्थात् साधारण खेती करने वालोंसे हरएक धान्यके रूपमें ही यह कर लिया जाता था। धान्य उत्पन्न करनेवालोंसे धनके रूपमें नहीं लेते हैं प्रत्युत जो पदार्थ उत्पन्न होता उस पदार्थका सोलहवां भाग लेते हैं। जिस पदार्थका भाग ही नहीं बनता उसके मूल्यका सोलहवां भाग किस आधारसे लिया जाता था। और वैश्य जब व्यापारसे हाँसि धनकी कमाईका यह भाग धनके रूपमें लिया जाता था। कर देनेके विषयमें यह वेदकी आज्ञा सुस्पष्ट दिखाई देती है और यह कर प्रजाके लिये कभी असह्य नहीं हो सकता।

उत्पन्नका सोलहवां हिस्सा लेनेके लिये वेदकी आज्ञा है परंतु स्मृतिग्रंथोंमें छठां भाग लेनेका करकी वृद्धि हुई है और आज कल तो कई गुना वृद्धि हुई है। इस मंत्रमें विभजन्ते क्रिया वर्तमानकालकी है। राजसभाके सभासद सर्व उत्पन्न देखकर उसका सोलहवां भाग अलग करते हैं अर्थात् वे

खेतमें धान्य तैयार होनेपर धान्यकी राशीके पास जाते हैं और उसके साथ मान करके एक भाग राजवर्चके लिये ले जाते हैं। केवल अदाभास नहीं लेता परंतु प्रसन्न प्राप्ति देखकर उसमेंसे एक भाग लेते हैं यह भाग वर्तमान कालमें

अमी समासदः विमक्षन्त

इस वाक्यसे प्राप्त होता है। अकालके दिनोंमें धान्य कम उत्पन्न हुआ तो कर कम लेते हैं और सुकालमें अधिक उत्पत्ति हुई तो अधिक लेते हैं। आज इसके समान सुकाल और अकालमें एक जैसे प्रमाणसे नहीं लेते। पाठक वह वैदिक रीति देखें और इसकी विज्ञपताका अनुभव करें।

प्राप्तिके दो साधन।

आमदनीके दो मार्ग होते हैं एक इष्ट और दूसरा पूर्त। मनुष्य जो अपनी इच्छानुसार अभीष्ट व्यवहार करते हैं और उसमें कमाई करते हैं उसको इष्ट कहते हैं इसमें राजपर्वके, किन्तु आदिम समादेश होता है इसमें कर्ताकी इच्छापर व्यवहारकी सत्ता निर्भर है। दूसरा है पूर्त। इसमें सबकी इच्छा हो या न हो आमदनी होती रहती है जैसे खानसे धातुआदिकोंका उत्पन्न होना कृषिमें धान्य मिलना पशु बढ़ने बढ़ाने पर दूधसे घृत प्राप्त होना। ऐसी हुई पूर्त व्यवस्थासे जो प्राप्ति होती है उसका नाम पूर्त है अमीदारीका भी उत्पन्न होता है वह पूर्त है क्योंकि अमीदारके प्रबन्ध न करनेपर भी वह सबके कोशकी पूर्णता करता रहता है। इष्ट व्यवहारका वैसा नहीं है, वह इच्छापूर्वक काम किया करने पर उसका प्राप्ति होती है वह प्रबन्धसाध्य है। इष्ट और पूर्तमें यह भेद है। मनुष्योंके व्यवहारोंके ये मुख्य दो भेद हैं।

आमदनी इष्ट या अर्थ वहवाय और पूर्त या अर्थ सर्वसाधारणोंकी कुछ तात्पर्य भेदसहित आदि करना समझना है इन शब्दोंसे यह अर्थ है परंतु यह केवल एक ही भाग है। इन शब्दोंसे संपूर्ण अर्थ कदापि नहीं है। इस विषयपर अनेक मुख्य प्रजाकी आमदनीसे बारहवां भाग कर लेना लिखा गया है ऐसा कहा है उन लोगोंने यह और पूर्त का बारहवां भाग राजा लेता है ऐसा मानना अयोग्य है इसीलिये चारों वर्णोंके व्यवहारको हानि होनेवाला और जिससे राजाके बारहवां भाग कर कदापि प्राप्त हो सकता है ऐसा अर्थ कल्पित किया है। यद्यपि अन्य अनेक प्रमाणोंसे प्रजाके गुरुतर या लघु होने पर भी राजाका कुछ भाग राजाके यह संबंधसे लिये उसका अन्य हो बदलना होगा। परंतु इसमें मनुष्य उपलब्धि नहीं कर सकता, अतः आमदनीके विषयका अर्थ ही यहां लिया है।

इस प्रकारकी रीतिसे दो प्रकारके उपकारोंसे इकट्ठी किये हुए बारहवां भाग राजाके संरक्षणके बदले लेनेके लिये प्रजासे कर लेते हैं यह प्रथम मन्त्रका कथन है। यहां राजाका भी लक्षण करना चाहिये—

राजा कैसा हो।

इस सूक्तमें राजाका नाम यम आ गया है। यमका अर्थ स्वाधीन रखनेवाला नियमसे चलानेवाला यमका पालन करनेवाला है। यम-यमी इस शब्दसे भी यमका अर्थ स्पष्ट होता है। राज्य यमानुसार जो धर्मनियम होते हैं उनके अनुसार राज्यशासन करनेवाला राजा यहां इस शब्दसे बोधित होता है। स्पष्ट है कि यहांका राजा मनमानी बातें करनेवाला नहीं है प्रत्युत राजधर्मके नियमोंके अनुसार तथा जनताके प्रतिनिधिवर्गोंके संमतिके अनुसार राज्य चलाने वाला है। यह राजा राजसभाके सभ्योंके मतसे और धर्म नियमोंसे बद्ध है स्वच्छाचारी नहीं है। वस्तुतः इसके राज्यमें—

अमी समासदः राजानः। (सू २९ मं. १)

राजसभाके ये समासद ही राज्यशासन करनेवाले राजा हैं। राजा तो नाम मात्र अधिकारी रहकर उन समासदोंकी संमतिसे जो नीति निश्चित होती है उसके अनुसार राज्य शासन चलाता रहता है। इसकी यह नियमबद्ध राजसत्ता यहां इनने योग्य है। ये राजाके राजसभाके सदस्य प्रजासे आमदनी बीसवां भाग राजस्वशासनके व्यवहार लिये प्रजासे कर इकट्ठे लेते हैं। इसका उपयोग कैसा किया जाता है यह आगे होगासे। यह प्रजासे प्राप्त होनेवाला कर क्या क्या करता है इस विषयमें इस सूक्तका वर्णन बड़ा महत्वपूर्ण है। इसका विचार करनेसे हमें पता लग जाता है कि प्रजाके दिये हुए करका राजा कैसा उपयोग करता है। वाक्य—

करका उपयोग।

राजा जो कर प्रजासे लेता है उसका उपयोग किस कार्योंके लिये किया जाये इसका वर्णन निम्नलिखित शब्दोंमें इस सूक्तमें किया है। यह कर निम्नलिखित कार्यों करता है ऐसा वर्णन इस सूक्तमें आया है इस सूक्तका वर्णन है कि प्रजाद्वारा दिया हुआ कर निम्नलिखित कार्य करता है—

(१) आगात्र। अर्थात् इति अर्थात्) = रक्षा कर। दे प्रजाकी अच्छा रक्षा करता है। प्रजाने दिया हुआ कर ही प्रजाका रक्षा है। (म १ सू ५)

(२) स्वधा = (स्वयं धारणा) अपनी अर्थात् प्रजाकी धारणा करता है। प्रजाके धारण पालन करनेवाली है। कर लेकर राजा एक प्रबन्ध करता है। जिससे प्रजाकी रक्षा हो जाती है। (म १)

(१) पञ्चापूपः = (पञ्च+अ+पूपः– पूयते विशीर्यते इति पूपः । न पूपः अपूपः । पञ्चानां अपूपः पञ्चापूपः)— जो अन्न पकाय होता है अर्थात् जिसके भाग बिखेर पड़ते हैं उसका नाम पूप है । तथा जिसके भाग संघटित एक दूसरेके साथ अच्छी प्रकार मिले हुये होते हैं उसको अ–पूप कहते हैं । पक्वान्नोंको संघटित–संपदनायुक्त–करता है अर्थात् परस्पर मिलाकर रखता है, जिससे पाचों प्रकारके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र विद्वानोंका अन्नेय संघ होता है उसका यह नाम है । राजा प्रजासे कर लेता है और प्रजाकी उन्नति कराता है । (मं ४ ५)

(४) भवन् = होना अस्तित्व रखना । प्रजासे कर लेकर राजा ऐसे कार्योंमें विनियोग करता है कि जिनसे प्रजाका अस्तित्व चिरकाल रहता है । (मं २)

(५) आभवन् = सब ऐश्वर्यसंपन्न होना । राजा प्रजाका ऐसा उपयोग करता है कि जिससे प्रजा प्रतिदिन अधिकाधिक संपत्तिमान होती जाय । (मं २)

(६) प्रभवन् = प्रभावशाली । प्रजासे कर प्राप्त करके राजा उसका विनियोग ऐसे कार्योंमें करता है कि प्रजा प्रतिदिन प्रभावशालिनी बनती जाये । सत्यवान पराक्रमी और प्रभावशाली प्रजा बने । (मं २)

(७) आकूतिप्रः = (आकूतिः) संकल्पोंको (प्र) पूर्ण करनेवाला कर है । अर्थात् प्रजासे कर लेकर राजा ऐसा कार्य करता है कि जिससे प्रजाके सबकी श्रेष्ठ कामनाएं परिपूर्ण होती हैं और प्रजाकी अभीष्ट उन्नति होती रहती है । (मं १)

(८) सर्वान् कामान् पूरयति = प्रजाकी संपूर्ण सब तरहकी कामनाएं सफल और पूरक होती हैं । किसी प्रकार भी प्रजाकी श्रेष्ठ आकांक्षाएं निष्फल नहीं होती । कर लेकर राजा ऐसा प्रबंध करता है कि प्रजाकी श्रेष्ठ कामनाएं पूर्ण रीतिसे सिद्धिको प्राप्त हों । (मं २)

(९) यो ददाति स मार्डं अस्येति = जो (कर) दता है वह (म+मार्ड) सुखपूर्ण स्थानको प्राप्त करता है अर्थात् राजाको कर देनेवाले लोग अपने ऐसम सुखी रहते हैं । प्रजासे कर लेकर राजा ऐसे उत्तम प्रबंधसे राज्य चलाता है, कि सब प्रजा सुखी होती है । (मं २)

(१०) प्रदाता पितृणां लोके अक्षितं उपजीवति = कर देनेवाले लोग संरक्षकों द्वारा सुरक्षित हुए प्रदेशमें चिरकाल आनंदसे रहते हैं । राजा प्रजासे कर लेवे और उसको अखंड सुरक्षित रखे सुराज्य प्रबंधसे लोग सुरक्षित होकर आनंदसे रहें । (मं ४)

(११) प्रदाता सूर्या मासयोः अक्षितं उपजीवति = कर देनेवाले लोग जैसे (सूर्य) दिनमें तैसे (मास = चंद्रमाः) रात्रीके समय भी सुरक्षित होकर आनंदसे रहते हैं । कर लेकर राजा राज्यसंचालनका ऐसा योग्य प्रबंध करे कि जिससे प्रजा दिनके समय भी सुरक्षित होवे और रात्रीके समयमें भी सुरक्षित होवे । (मं ५)

(१२) इरा इव न उपदस्यति = कर देनेवाली प्रजा पृथ्वीके समान पुष्ट रहती है अर्थात् उस प्रजाका नाश कोई नहीं कर सकता । (मं ६)

(१३) महत् पयः समुद्र इव न उपदस्यति = कर देनेवाली प्रजा बड़े अक्षय मीठे जलके महासागरके समान सदा गंभीर और प्रशांत रहती है । जैसे अल्पजलके समान क्षुब्ध होकर नाशको नहीं प्राप्त होती । (मं ६)

(१४) सभासिनौ देवौ इव न उपदस्यति = सभा साथ रहनेवाले दो देव श्वास और उच्छ्वासके समान यह कर सब प्रजाकी रक्षा करता है अर्थात् जिस प्रकार प्राणके व्यापारसे सब अंग सुरक्षित रहता है उसी प्रकार प्रजासे मिलनेवाला कर राष्ट्रको सुरक्षित रख सकता है । (मं ६)

(१५) तस्मात् प्रमुञ्चति = उस महाभयसे मुक्त करता है । यह दिया हुआ कर प्रजाको महाभयसे बचाता है । (मं १)

(१६) क्षिति–पात् = (क्षीयते इति क्षितिः क्षिति पातयति) क्षिति का अर्थ है नाश उस नाशका पतन जो करता है अर्थात् नाशसे जो बचाता है उसको क्षिति–पात् कहते हैं । यह कर प्रजाका विनाशसे बचाव करता है । (मं १ ६)

(१७) अवक्षेत्र वलीयसे शुक्रः न क्रियते = निर्बल मनुष्य अपनी निर्बलताके कारण प्रबलको बल नहीं देता । अर्थात् यह कर निर्बल मनुष्योंका बलवानोंके अत्याचारसे पूर्ण बचाव कर सकता है । (मं १)

प्रजासे कर लेकर राजाको इतनी बातें करना चाहिये। यहां ऊपर दिये हुए ये सतरह वाक्य इस सूक्तमें विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका विचार इसी दृष्टिसे पाठक आपक करें और राज्यशासनके संबंधमें योग्य बोध प्राप्त लें। साधारण सूचना करनेके लिये पूर्वोक्त वाक्योंसे प्राप्त होनेवाला बोध पुन संक्षेपसे यहां देते हैं—

(१) राजा अपनी प्रजासे कर ले और उसका उपयोग प्रजाकी क्षेम प्रकारकी रक्षा करनेमें (२) प्रजाकी सब प्रकार की धारणशक्ति और समर्थता बढानेमें (३) ज्ञानी और व्यवसायी कारीगर और अन्य लोगोंकी सहायता करनेमें इस सबके उपस्थित करनेमें (४) इसका राष्ट्रीय और जातीय अस्तित्व सुरक्षित रखनेमें (५) प्रजाको ऐश्वर्यसंपन्न करनेके कार्योंमें (६) प्रजाजनोंको प्रभावशाली बनानेमें (७) संपूर्ण राष्ट्रके सब लोगोंकी सब अच्छी आकांक्षाओंकी सफलता करनेके साधन निर्माण करनेमें (८) सब जनोंकी श्रेष्ठ कामनाओंकी तृप्ति करनेके साधन संग्रहित करनेमें ( ) राष्ट्रका दुःख दूर करनेमें (१) राष्ट्रकी रक्षा करनेके लिये संरक्षकदल नियुक्त करनेमें, (११) वैसे दिनमें वैसे रात्रीमें भी निर्भय होकर लोग सर्वत्र संचार कर सकें ऐसी निर्भयता संपूर्ण राष्ट्रमें सदा स्थिर रखनेके कर्तव्य (१२-१४) जलाशयों भूमिके समान दृढ अक्षयनिधि समुद्रके समान गंभीर और प्राणके समान प्रीतिमय पुरुष करनेके कार्योंमें (१५ १६) मन और विचारसे प्रजाके संचालक प्रवर्तकोंमें तथा (१७) बलवान् मनुष्य निर्बलोंके ऊपर अत्याचार न कर ऐसा सुव्यवस्थित संपूर्ण राज्यतंत्रमें करनेके कार्योंमें करें।

प्रजासे लिये हुए करका उपयोग इन कार्योंमें करना राजाका कर्तव्य है। पूर्वोक्त वाक्योंसे यही भाव प्रकट हो सकता है। पाठक विचार करके इन वाक्योंसे और इन शब्दोंसे अधिक बोध प्राप्त करें। जो राजा प्रजासे कर लेता हुआ इसका उपयोग इन कर्तव्योंसे भिन्न केवल अपने ही स्वार्थसाधनके कार्योंमें करता वह राज्य चलानेके लिये अयोग्य होगा। यह सूक्त इस बातको भलीभांति समझना चाहिये।

स्वर्ग सदृश राज्य।

जिस राज्यमें राजा प्रजासे कर लेकर पूर्वोक्त रीतिसे प्रजाकी उत्तम रक्षा करता है वह स्वर्गके सदृश ही राज्य है और यही करके प्राप्त हुए धनका उपयोग प्रजाके कल्याण बढानेमें होता है [illegible] वास्तविक स्वर्ग राज्य है। स्वर्गराज्यके लक्षण इसी सूक्तमें कहे हैं उनको अब यहां देखिये—

१ स नाक अरुहेति
२ यत्र शुल्को न किंचन अवसेन पवीयसे।
(सू १९ मं. १)

(१) कर देनेवाले मनुष्य स्वर्गधाममें पहुंचते हैं, (२) यहां निर्बल मनुष्यको बलवान् मनुष्यके लिये धन देना नहीं पडता। यह स्वर्ग सदृश राज्यका लक्षण है। यहां जिस राज्यमें निर्बल मनुष्योंको केवल निर्बल होनेके कारण ही बलवान् मनुष्यके सामने सिर झुकाते हुए अपने पासका धन उपहारके रूपमें देना नहीं पडता वह स्वर्गधाम है। और जिस राज्यमें बलवान् मनुष्य निर्बलोंपर जो चाहे सो अत्याचार करते हैं और इस अत्याचारके कारण कोई उनका पूजा तक नहीं और यहां निर्बल मनुष्य केवल बलहीन होनेके कारण ही पीसे जाते हैं, वह नरक है। नर—क का अर्थ हीन मनुष्य अर्थात् मनुष्य नीचसी अवस्था मनुष्य है। जिस राज्यमें हीन भावनावाले मनुष्य होते हैं वह नरकराज्य है और जहां श्रेष्ठ भावनावाले मनुष्य होते हैं उसको स्वर्गराज्य कहते हैं।

ब्राह्मणोंका शासक वर्ग क्षत्रियोंका अधिकारवर्ग वैश्योंका धनदा वर्ग शूद्रोंका श्रमोपजीवी वर्ग और निषादोंका केवल शारीरिक बल होता है। ये जब बढे जाते हैं तो इन वर्गोंके मदान्वित होकर अन्योंपर अत्याचार करते हैं। ऐसा अत्याचार कोई किसीपर न करे और सबका समान आत्मवत् मनुष्यत्व विषयक समानताका दर्जा हो ऐसा राज्यव्यवस्था प्रबल रखना राजाका परम कर्तव्य है यहां ऐसा उत्तम प्रबंध होता है और जिस राज्यमें असमर्थ अशक्त आश्रयहीन निर्बल मनुष्य भी बलवान् मनुष्यके अत्याचारके सामने अपनी रक्षाके लिये बडा रह सकता है और कभी निर्बलताके कारण पीसा नहीं जाता वही राज्यशासन पद्धति सबसे उत्तम है। यही सुंदर राज्य है।

कामनाका प्रभाव।

पूर्वोक्त प्रकार राज्यव्यवस्था करना या अन्यान्य वैदिक आज्ञाओंके अनुसार मनुष्योंका सुधार करनेके यत्न करना या न करना यह सब मनुष्यकी कामना इच्छा संकल्प-आकांक्षा आदिके वश है। मनुष्यमें जो इच्छा होती है वैसा मनुष्य चलता है और वैसा ही मनुष्य व्यवहार करता है। यह बतानेके लिये ७ वें और ८ वें मंत्रका उपदेश है। इसका पढना ही प्रमाणार्थ देखिये—

प्रश्न— इदं का कस्मै अदात्? ७ यह दान किसका है?

उत्तर— कामः कामाय मह्यात् = काम ही कामके लिये देता है।

कामः दाता कामः प्रतिग्रहीता = काम ही देने और लेनेवाला है।

ये मंत्रभाग बड़े महत्त्वपूर्ण उपदेशका देनेवाले हैं। मनुष्यके मनके अंदर जो इच्छा है जो महत्त्वाकांक्षा है जो कामना है वही मनुष्यको दाता बनाती है और उसीसे दूसरा मनुष्य दान लेनेवाला बनता है। राजा राज्य करता है सैनिक युद्ध करते हैं नौकरी करते हैं कर्ता किसीको सुख देता है और दूसरा लेता है यह सब व्यवहार मनके अंदरकी इच्छाके कारण होते हैं। मानो यह काम ही सबसे ये व्यवहार करा रहा है यहांतक कि—

कामः समुद्र आविवेश। (सू. २९ मं ७)

काम ही समुद्रमें घुसा है। अर्थात् समुद्रपर भी इसी कामका ही राज्य है। पुरुषोंको छोड़कर जो मनुष्य समुद्रमें जहाजोंमें बैठकर भ्रमण करने जाते हैं वे भी कामकी ही प्रेरणासे ही जाते हैं। और कोई विमान द्वारा आकाशमें उड़ते हैं वे भी कामकी प्रेरणासे ही उड़ रहे हैं। इस प्रकार इस जगत्का सब व्यवहार कामनाकी प्रेरणासे ही हो रहा है। भूमि और अंतरिक्षमें भी सर्वत्र काम ही काम अर्थात् कामनाका राज्य है। (मं ८) सब इसीकी आज्ञाके अनुसार फिर रहे हैं। देखिये—

काम! एतत् ते। (सू. २९ मं ७)

हे काम! यह तेरा ही महाराज्य है तेरा ही शासन सब पर है। काल तेरे शासनसे बाहर है। कामका स्वीकार करनेवाले कामी लोग जैसे अपने मनकी कामनासे प्रेरित होते हैं उसी प्रकार कामका स्वीकार करनेवाले विरक्त लोग भी उसी कामनासे ही प्रवृत्त होते हैं तात्पर्य कामका सर्वत्र अधिकार है।

कामकी मर्यादा।

कामको बुरी है ऐसा कहते हैं। यदि काम उक्त प्रकार सब पर शासनाधिकार चलाता है और भोगी और त्यागी दोनों उसीके आधीन रहते हैं तो फिर कामका संयम कैसे हो सकता है? इस प्रश्नका उत्तर अगले मंत्रके उत्तरार्धमें दिया है। इस मंत्रभागमें यहांतक कामका स्वीकार करना और यहांसे आगेके कामको स्वीकार इस महत्त्वपूर्ण विषयका विवेचन किया है। यह विषय अब देखिये—

प्रतिगृह्य नि धीमहि मा दित्राधिषि
नि धीमहि मा दित्राधिषि
नि धीमहि मा दित्राधिषि। (सू. २९ मं ८)

काम! तेरा स्वीकार करके मैं अपनी आत्मशक्तिको न खो बैठूं, मैं अपनी प्राणशक्तिको न क्षीण करूं, और मैं अपने प्रजननको भी न हीन बना दूं। यहांतक जितना काम स्वीकार हो सकता है उतना मनुष्यके लिये आवश्यक हो सकता है। काम विषयका अत्याचार हरएक इंद्रियके कार्यक्षेत्रमें हो सकता है परंतु इसका विशेष कार्यक्षेत्र जननेंद्रियके साथ संबंध रखता है। इस इंद्रियसे विशेष अत्याचार करनेसे आत्माका बल कम होता है जीवनकी मर्यादा तथा प्राणकी शक्ति क्षीण होती है और सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति भी न्यून होती है और ऐसे कामी पुरुषोंसे जो भी सन्तान उत्पन्न होते हैं वे भी क्षीण, बलहीन और दीन होते हैं। इस प्रकारका घातपात न हो इस लिये कामका संयम करना आवश्यक है। संयमकी मर्यादा यह है कि उस मर्यादातक कामका उपभोग किया जाय कि जहां तक लेनेसे अपनी आत्माकी शक्ति प्राणकी शक्ति और प्रजनन शक्ति क्षीण न हो सके इससे अधिक कामका भोग करनेसे हानि है।

इस मंत्रमें सभी इंद्रियोंके संबंधमें कामका उपभोग लेनेकी मर्यादा कही है यद्यपि ऊपरके उदाहरणमें हमने एक इंद्रियके संबंध करके लिखा है, तथापि पाठक उसी मर्यादाको संपूर्ण इंद्रियोंके कार्यक्षेत्रमें यथायोग्य बोध प्राप्त करें।

कामका यह साम्राज्य संपूर्ण जगत्में है। विशेषकर मानवी प्राणियोंमें इसी विचार करना है। इस राज्यव्यवस्थाका उपदेश देनेवाले इस सूक्तमें इस काम विषयके ये मंत्र रखे हैं और कामकी धर्ममर्यादा और अधर्ममर्यादा भी बता दी है; इसका हेतु यह है कि राजा अपने राज्यमें ऐसा राज्यप्रबंध करें कि जिससे प्रजाजन काम विषयक धर्ममर्यादाका उल्लंघन न करें और अपने आत्मा प्राण और प्रजननकी शक्तिसे सुखी हों और सब उत्तम शक्तिसे सर्वसुखद राज्यका आनंद प्राप्त करें। प्रजाके लिये इस प्रकारकी व्यवस्थाके लिये प्रबंध करना राजाका आद्य कर्तव्य है। ऐसे ये कार्य होते हैं और प्रजा सुखी होती है इसीलिये (लोकेऽस्य संमितः। मं ४ ५) प्रजाहारा स्वीकृत और संमानित हो ऐसा इसका विशेषण दिया है।

यहां प्रजासे प्राप्त करना इन कार्योंके लिये उपयोग होता है यहांकी प्रजा सुखी और अभ्युदय तथा नि श्रेयस प्राप्त करने वाली होती है। वैदिकधर्मी ऐसा प्रबंध करें कि जिससे अपने देशमें तथा अन्यान्य देशोंमें इसी प्रकारके वैदिक आदर्शके चलानेवाले और चलाये जानेवाले राज्य हों और कहीं एक स्वराज्यके वैदिक आदर्शसे दूर न रहे।

एकता।

(३०)

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — सम्मनाः)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २ ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— (स-हृदय) सहृदयता अर्थात् प्रेमपूर्ण हृदय (सां मनस्य) सामनस्य अर्थात् मन मुख विचारोंसे पूर्ण होना और (अ-विद्वेषं) परस्पर निर्वैरता (वः कृणोमि) तुम्हारे लिये मैं करता हूं। तुम्हारेमेंसे (अन्यः अन्यं अभि हर्यत) हरएक परस्परके ऊपर प्रीति करे (अघ्न्या जातं वत्सं इव) जैसे गौ उत्पन्न हुए बछडेसे प्यार करती है ॥ १ ॥

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिताके अनुकूल कर्म करनेवाला और (मात्रा समनाः भवतु) माताके साथ उत्तम मनसे रहनेवाला होवे। (जाया पत्ये) पत्नी पतिसे (मधुमतीं शन्तिवां वाचं वदतु) मधुर और शांतिसे युक्त भाषण करे ॥ २ ॥

(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई भाईसे द्वेष न करे (उत स्वसा स्वसारं मा) और बहिन बहिनसे द्वेष न करे। (सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) एक मतवाले और एक कर्म करनेवाले होकर (भद्रया वाचं वदत) उत्तम रीतिसे भाषण करो ॥ ३ ॥

(येन देवाः न वियन्ति) जिससे व्यवहार चलानेवालोंमें विरोध नहीं होता है (च नो मिथः विद्विषते) और न कभी परस्पर द्वेष करता है (तत् संज्ञानं ब्रह्म) वह एकता करनेवाला परम उत्तम ज्ञान (वः गृहे पुरुषेभ्यः कृण्मः) तुम्हारे घरके मनुष्योंके लिये हम करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रेमपूर्ण हृदयके साथ मनके शुभ विचार और आपसकी निर्वैरता आप अपने घरमें स्थिर कीजिये। तुम्हारेमेंसे हरएक मनुष्य दूसर मनुष्यके साथ ऐसा प्रेमपूर्ण वर्ताव करे कि जिस प्रकार नये उत्पन्न हुए बछडेसे उसकी गौ माता प्यार करती है ॥ १ ॥

पुत्र पिताके अनुकूल कर्म करे और माताके साथ मनके शुभ भावसे व्यवहार करे। पत्नी पतिके साथ सदा मधुर भाषण करती रहे ॥ २ ॥

भाई भाईसे द्वेष न करे बहिन बहिनके साथ न लडे। एक मतसे एक कर्म करनेवाले होकर परस्पर निष्कपटताका भाषण करो ॥ ३ ॥

जिससे व्यवहार चलानेवालोंमें कभी विरोध नहीं हो सकता और कभी आपसमें लडाई झगडा नहीं हो सकता ऐसा उत्तम ज्ञान तुम अपने घरोंमें बढाओ ॥ ४ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७ ॥

अर्थ— (ज्यायस्वन्तः) इसीका सम्मान करनेवाले (चित्तिनः) उत्तम चित्तवाले, (संराधयन्तः) उत्तम विधि तक प्रयत्न करनेवाले (स-धुराः चरन्तः) एक पुराके नीचे कार्य करनेवाले और आगे बढ़नेवाले होकर (मा वि यौष्ट) तुम मत अलग होओ मत विरोध करो । (अन्यः अन्यस्मै वल्गु वदन्तः एत) एक दूसरेसे प्रेमपूर्वक भाषण करते हुए आगे बढ़ो । (वः सध्रीचीनान्) तुमको साथ पुरुषार्थ करनेवाले और (संमनसः कृणोमि) उत्तम एक विचारसे युक्त मनवाले करता हूं ॥ ५ ॥

(प्रपा समानी) तुम्हारा जल पीनेका स्थान एक हो और (वः अन्नभागः सह) तुम्हारा अन्नका भाग भी साथ साथ हो । (समाने योक्त्रे वः सह युनज्मि) एक ही जोतेमें तुमको साथ साथ मैं जोतता हूं । (सम्यञ्चः अग्निं सपर्यत) मिलकर ईश्वरकी पूजा करो, (अभितः नाभिं अराः इव) चारों ओरसे नाभीमें जैसे चक्रके आरे जुड़े होते हैं ॥ ६ ॥

(संवननेन वः सर्वान्) परस्पर सेवा करनेके भावसे तुम सबको (सध्रीचीनान् सन्मनसः एकश्नुष्टीन् कृणोमि) साथ मिलकर पुरुषार्थ करनेवाले उत्तम मनवाले और समान चेष्टाओं आदिमें कार्य करनेवाले बनाता हूं । (अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव) अमृतकी रक्षा करनेवाले देवोंके समान (सायं प्रातः वः सौमनसः अस्तु) सायंकाल और प्रातःकाल तुम्हारा प्रसन्न चित्त रहे ॥ ७ ॥

भाषार्थ— इसीका सम्मान करो जिसमें तुम सहकार धारण करो उत्तम विधिपूर्वक प्रयत्न करो आगे बढ़कर अपने सिरपर कार्यका भार लो और आपसमें विरोध न बढ़ाओ । परस्पर प्रेमपूर्वक भाषण करो मिलजुलकर पुरुषार्थ करनेवाले बनो । इसीलिये तुम्हें उत्तम मनसे युक्त बनाता है ॥ ५ ॥

तुम्हारा जल पीनेका स्थान सबके लिये समान हो अन्नका भोग भी सबके लिये एक हो समान कार्यकी एक जुएके नीचे रहकर कार्य करनेवाले तुम हो इसलिये भी सब मिलजुलकर एक सम्मतिसे करो जैसे चक्रके आरे नाभिमें जुड़े होते हैं वैसे ही तुम अपने समाजमें एक दूसरेके साथ मिलकर रहो ॥ ६ ॥

परस्परकी सहायता करनेके लिये परस्परकी सेवा करो उत्तम ज्ञान प्राप्त करो मनके भाव शुद्ध करके एक विचारसे एक कार्यमें दत्तचित्त हो सबके लिये समान अन्नादि भोग मिलें । जिस प्रकार देव अमृतकी रक्षा करते हैं इसी प्रकार सायं प्रातः तुम अपने मनके शुभसङ्कल्पोंकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

सज्ञानसे एकता ।

इस सूक्तमें सज्ञान प्राप्त करके आपसकी एकता करनेका उपदेश है । मनुष्यजातीय संघ बनाकर रहनेवाला होनेके कारण उसमें आपसकी एकता रखना अत्यन्त आवश्यक है । जातीय एकता न रही तो मनुष्यका नाश होगा । जो जाती अपने अंदर संघशक्ति बढ़ाती है वही इस जगत्में विजयी हो रही है तथा जिस जातीमें आपसकी फूट अधिक होती है वह पराजित होती रहती है । अतः आपसमें संघशक्ति बढ़ाकर अपनी उन्नति करना हरएक जातीके लिये अत्यन्त आवश्यक है । संघशक्ति बढ़ानेके जो उपाय इस सूक्तमें वर्णन किये हैं वे अब देखिये—

अहंका सुधार ।

सबसे प्रथम व्यक्तिके अंदरका सुधार होना चाहिये । वैदिक धर्ममें यदि कोई विशेष महत्त्वपूर्ण बात कही होगी तो यही कही है कि संपूर्ण सुधारका प्रारंभ मनुष्यके हृदयके सुधारसे होना चाहिये । हृदय सुधर जानेपर अन्य सब सुधार मनुष्यकी

अम पहुंचा सकते हैं परंतु हृदयमें दोष रहे तो बाह्य सुधारसे कुछ भी काम नहीं हो सकता। इसलिये इस सूक्तमें हृदयके सुधार करनेकी सूचना सबसे प्रथम कही है—

१ सहृदयं- (स-हृदय) = हृदयके भावकी समानता। अर्थात् दूसरेके दुःखसे दुःखी और दूसरेके सुखसे सुखी होना। (म १)

जिनके हृदय ऐसे होते हैं वे ही मनतामें एकता करने और एकता बढ़ानेके कार्य करनेके अधिकारी होते हैं। जो दूसरेको दुःखी देखकर दुःखी नहीं होता वह मनताको किसी प्रकार भी रक्षा नहीं सकता। हृदयका सुधार सबसे मुख्य है। इसके बाद देखो कहा है—

१ सां-मनस्यं- (सं-मनः) = मनका उत्तम शुभ संस्कारोंसे पूर्ण होना। मन शुद्ध और पवित्र भाव वालों और श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त होना। (मं १)

मनके आधीन संपूर्ण इंद्रियां होती हैं। इसलिये जैसे मनके विचार होते हैं वैसी ही अन्य सब इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होती है। इसलिये अन्य इंद्रियोंसे उत्तम प्रकारसे कार्य होनेके लिये मनके शुभ संस्कारमय होनेकी अत्यंत आवश्यकता है। पूर्वोक्त प्रकार हृदयकी और सामनस्यता सिद्ध होनेके पश्चात् मनुष्यका बाह्य व्यवहार कैसा होना चाहिये यह भी इसी मंत्रके तीसरे शब्द द्वारा कहा है—

बाह्यका सुधार।

१ अ-विद्वेष = द्वेष न करना। एक दूसरेके साथ परस्पर द्वेष न करना। आपसमें शत्रुता न करना। (मं १)

यह शब्द बाह्य व्यवहारका सुधार करनेकी सूचना देता है। मनुष्यका व्यवहार कैसा हो? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि मनुष्यका व्यवहार ऐसा हो कि जिसमें कोई किसीका द्वेष न करे। यह मनुष्यके व्यवहारका आदर्श है। द्वेष न हो। अपना न हो। दो मनुष्य इकट्ठे आ मिले तो किसी न किसीकी निन्दा करनेकी बात चुक होती है नीच मनुष्योंका यह स्वभाव ही क्या है। परंतु सज्जनोंको ऐसा करना योग्य नहीं है। वे अपना आचरण निर्वैरताके भावसे परिपूर्ण रखें।

निर्वैरताका व्यवहार करनेका तात्पर्य क्या है? दो पत्थर या दो वृक्ष साथ रहते हैं और निर्वैरताके साथ रहते हैं। क्या इस दृष्टांतसे यह निर्वैरता यहां अभीष्ट है? नहीं नहीं यहांका अ-विद्वेष शब्द परस्परके प्रेमपूर्ण व्यवहारका सूचक है। इसके प्रथम सहृदयता और सामनस्यता कही है, इससे समझना हृदय और मनकी शुद्धि हुई। ये परिशुद्ध हृदय और मन जो अविद्वेषका व्यवहार करेंगे वह तो पत्थरोंके आपसके व्यवहार जैसा कदा नहीं हो सकता। इस अविद्वेषके व्यवहारका उपदेश ही इस प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें दिया है—

अन्या अन्यस्मि इयत वरस्सं जातमिवाघ्न्या।
(सू. १ मं १)

एक दूसरेके साथ ऐसा प्रेम करो कि जैसा गौ अपने नये जन्मे बछड़ेके साथ प्रेम करती है। निर्वैरताका यह उदाहरण है अविद्वेषके व्यवहारका इस रूप गौ माताका अपने नवजात बछड़ेसे व्यवहार है। वाक्य प्रेम अपने बछड़ेसे जैसा होता है वैसा अन्यसे तुम प्रेम करो। अ-विद्वेष का अर्थ केवल वैरका अभाव नहीं है केवल निषेध करनेसे किसीका बोध नहीं होता है। वैर न करना हिंसा न करना यह तो उत्तम है परंतु इसका विधायक स्वरूप है प्रेम करना। अर्थात् अविद्वेषका अर्थ है दूसरे पर प्रेम करना। पहिले मंत्रमें जो तीन शब्दों द्वारा मानवी धर्मका उपदेश किया उसका ही उदाहरण उत्तर मंत्रभागमें गौके उदाहरणसे दिया और दिखलाया कि दूसरोंके साथ प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे अतीव एकता सिद्ध होगी। इस उपदेशका आप एक करनेका रूप आपके मंत्रोंमें कहा है, सबसे प्रथम घरमें इस उपदेशके अनुसार व्यवहार करनेकी रीति आपके तीन मंत्रोंमें कही है वह एतद्विषयोंको अवश्य मनन करना चाहिये।

(१) पुत्र पिताके अनुकूल कर्म करे और माताके साथ उत्तम मातृभावसे व्यवहार करे। धर्मपत्नी पतिके साथ मीठा और आनंदित मुख भाषण करे॥ २॥ भाई भाईसे द्वेष न करे और बहिन बहिनके साथ अपना न करे सब मिलकर आपसमें मधुर भाषण करते हुए अपने कल्याणके लिये एक कार्यमें दत्तचित्त हो जाओ॥ ३॥ जिससे विरोध और विद्वेष नहीं होता है ऐसा ज्ञान तुम्हारे करके कार्योंके लिये मैं देता हूं॥ ४॥

आदर्श कुटुंबका वर्णन कर रहे हैं। जो कुटुंब ऐसा होगा वह निस्संदेह आदर्श रूप ही होगा। पाठक इन मंत्रोंके उपदेशको अपने परिवारमें डालनेका यत्न करें।

इन मंत्रोंका अर्थ करनेके समय ये सामान्य निर्देश हैं यह बात भूलना नहीं चाहिये। अर्थात् पुत्र पिताके अनुकूल कार्य करे इस वाक्यका अर्थ कन्या भी मातापिताके अनुकूल कर्म करे ऐसा है। तथा भाई भाईसे द्वेष न करे इसका अर्थ भाई बहिनसे और बहिन भाईसे द्वेष न करे ऐसा है। पत्नी पतिसे मीठा भाषण करे इसमें पति भी पत्नीसे मीठा भाषण

करे यह अर्थ है और (वः गृहे पुरुषेभ्यः सहाम मनः कृण्मः । मं ४) तुम्हारे घरके पुरुषोंका यह संज्ञान मनः देते हैं इसका अर्थ तुम्हारे घरके स्त्रियोंको भी यह संज्ञान मनः देत ह ऐसा है। इसको सामान्य निर्देश कहते हैं। यदि पाठक इन निर्देशोंकी यह सामान्यता न देखेंगे तो अनर्थ हो जायगा। इसलिये हमारा पाठक इसका अवश्य अनुसंधान करके बोध प्राप्त करें।

संघमें कर्म।

पञ्चम मंत्रमें जातीके लोगोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये इस विषयका उत्तम उपदेश है इसका सारांश यह है—

१ उपायस्वस्तः = सबोंका सम्मान करनेवाले बनो। इसका सम्मान करो। (मं ५)

२ मा वि यौष्ट = विमुख मत बनो। अपनेमें विभेद न बढ़ाओ। (म ५)

३ सधुराः चरन्तः = एक धुराके नीचे रहकर आगे बढ़ो। यहां धुराका अर्थ धुरीण नेता समझना योग्य है। अपने नेताके शासनमें रहकर अपनी उन्नतिके मार्ग परसे कदापि न हटो। (म ५)

अपने नेताकी आज्ञामें रहकर उन्नतिका साधन करनेवाले ही अभ्युदय और नि श्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।

४ सञ्जानानाः = एक ही कर्मके लिये मिलकर पुरुषार्थ करनेवाले बनो। अर्थात् जो करना हो वह तुम सब मिलकर करते रहो। (मं ५)

५ संराधयन्तः = मिलकर लिये काम करनेवाले बनो। (म ५)

६ अन्या अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत = परस्पर प्रेमपूर्वक शुभ भाषण करते हुए आगे बढ़ो। (मं ६)

जब कभी दूसरेसे भाषण करना हो तो प्रेमपूर्वक सीखकर मीठा भाषण करो जिससे आपसमें विरोध न बढ़े और आप सबमें फूट पड़कर अपनी शक्ति क्षीण न हो।

इस मंत्रके 'विद्वेषम्' और 'संमनसः' ये शब्द यही भाव बताते हैं कि जो प्रथम मंत्रके सांमनस्य शब्दसे बताया है। उत्तम चित्तवाले और शुभ मनवाले बनो यही इसका भावार्थ है।

इसीका सम्मान करना और पुरुषार्थ साधक कर्ममें दत्तचित्त होना ये दो उपरान्त कहा सुलभ हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि मनुष्यकी परीक्षा कर्मसे ही होती है। इस लिये इस मंत्रमें अनेक शब्दों द्वारा कहा है कि किसी एक कर्ममें अपने आपको समर्पित करो और वहां यदि अन्य मनुष्योंका संघर्ष हो तो उनके साथ अविरोधसे कर्म करो। इस कर्मसे ही मनुष्य श्रेष्ठ है वा कनिष्ठ है इसका निश्चय हो सकता है।

स्नानपानका प्रश्न।

जब संघमें रहना और कर्म करना होता है तब ही स्नानपानका प्रश्न आता है। घरमें तो सबका एक ही स्नानपान होता है क्योंकि माता पिता भाई बहनोंके प्राय एक ही भोजन करते और एक ही पानी पीते हैं। जो स्नानपानका प्रश्न उत्पन्न होता है वह जातीय संघटनाके समय ही उत्पन्न होता है इस विषयमें यह मंत्रने उत्तम नियम बताया है—

तुम्हारा अन्नपानका स्थान एक हो और अन्नभाग भी एक हो तुम सबको मैं एक जुएके नीचे रखता हूं। तुम मिल कर एक ईश्वरकी उपासना करो। (मं ६)

इस मंत्रमें सबका स्नानपान और उपासना एक हो इस विषयका उपदेश स्पष्ट शब्दोंसे कहा है। जातीय और राष्ट्रीय कार्य करनेवाले इस उपदेशका अधिक मनन करें। मंत्र कहता है कि जाती सबके समान है, जिस प्रकार सबके आरे चारों ओरसे नाभीमें अच्छी प्रकार जुडे होते हैं उसी प्रकार चारों वर्ण राष्ट्रकी नाभीमें जुडे हैं। यदि ये अपने स्थानसे चले भी जाय तो भी सबका नाश होगा। अवश्यमें सब लोगोंकी एकता ऐसी होनी चाहिये कि जिस प्रकार रथमें आरे एक नाभिके साथ जुडे होते हैं।

सेवाभावसे उन्नति।

सप्तम मंत्रमें सं-वनम शब्द है। इसका अर्थ उत्तम प्रकारकी प्रेमपूर्वक सहायता करना है। वनु याचने अर्थ प्रेमपूर्वक दूसरेकी सहायता करना है। सं+वनु का भी यही अर्थ है। इससे संवननका अर्थ स्पष्ट होगा। प्रेमपूर्वक दूसरोंकी सहायता करना ही सेवा—समितीका अर्थ होता है। यही भाव इस शब्दमें है। अपनेको कुछ पारितोषिक प्राप्त हो ऐसी इच्छा न करते हुए जनताकी सेवा केवल प्रेमसे करना और यही परमेश्वरकी भेद भक्ति है, ऐसा भाव मनमें धारण करना भेद मनुष्यका लक्षण है। इस गुणसे अन्य मनुष्योंका सदा प्रभाव पडता है और बहुत लोग अनुकूल होते हैं। इस विषयमें मंत्र कहता है—

संवननेन सर्वान् एकदक्षीन् कृणोमि ।

(क. १ मं)

प्रेमपूर्वक सेवासे सबकी सहायता करता हुआ मैं सबको एक प्रेमके नीचे काम करनेवाले बनाता हूं। जगत्का सबसे बड़ा वेद यही है कि जो जगत्का सबसे बड़ा निःस्वार्थ सेवक है। उसी ब्रह्मचर्य यही जगत्सेवा करना ही मनुष्यका बड़ा भारी धर्म है। जो जितना और जैसा करेगा वह उतना श्रेष्ठ सेवा कर सकता है। निःस्वार्थ सेवासे ही जगत्के नेता होते हैं। परमेश्वर सबसे बड़ा इसीलिये है क्योंकि वह सबसे अधिक शुद्ध रहता हुआ, अद्भुत रीतिसे जगत्की अधिकसे अधिक सहायता करता है यह उसका बड़ा भारी यज्ञ है इसीलिये उसका अधिक से अधिक सम्मान सब अधिक शोध करते हैं। यही आदर्श अपने सामने प्रत्युत्स रखते और जगत्की सेवा करते जाते हैं इस अरण्य वे भी सम्मानके भागी होते हैं।

कर्मसे मनुष्यत्वका विकास।

वेदका सिद्धान्त है कि क्रतुमयोऽयं पुरुषः। अर्थात् यह मनुष्य कर्ममय है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसी उसकी स्थिति होती है। मनुष्यकी उन्नति कर्मके अधीन है इसीलिये प्रशस्ततम कर्म करना मनुष्यके आवश्यक है। ये कर्म ऐसे हों कि जिनसे एकता बढ़े और परस्पर विरोध न हो यह उपदेश इस सूक्तके- सम्मनाः संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः सम्भोजनाः पक्वमनु वीक्षमाणाः आदि शब्दों द्वारा मिलता है। पाठक इस महत्त्वपूर्ण उपदेशकी ओर अवश्य ध्यान दें।

इस प्रकार इस सूक्तमें अत्यन्त महत्त्वका उपदेश किया है। पाठक इन उपदेशोंका जितना अधिक मनन करेंगे उतना अधिक बोध प्राप्त कर सकते हैं।

पाप की निवृत्ति।

(११)

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — पाप्महा)

वि देवा अरसापृतन्वि त्वमग्ने अरात्या। यक्ष्मेण सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ १ ॥
व्यार्षा पवमानो वि शुक्रः पापकृत्यया। यक्ष्मेण सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ २ ॥
वि ग्राम्याः पशवो आरण्येभिर्व्यापुरुष्णयासरन्। यक्ष्मेण सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ३ ॥

अर्थ— (देवाः अरसा वि अपृतन्) देव दुष्टतासे दूर रहते हैं। (अग्ने! त्वं अरात्या वि) हे अग्ने! तू कंजूसीसे तथा बलसे दूर रह। (अहं सर्वेण पाप्मना वि) मैं सब पापोंसे दूर रहूं। तथा (यक्ष्मेण वि) रोगसे भी दूर रहूं। और (आयुषा सं) दीर्घ आयुसे संयुक्त होऊं ॥ १ ॥

(पवमानः आर्षा वि) शुद्धता करनेवाला पुरुष पीड़ासे दूर रहता है (शुक्रः पापकृत्यया वि) समर्थ मनुष्य पाप कर्मसे दूर रहता है उसी प्रकार मैं सब पापोंसे और सब रोगोंसे मैं दूर रहूं और दीर्घायुष संयुक्त होऊं ॥ २ ॥

जैसे (ग्राम्याः पशवः आरण्येभिः वि) ग्रामके पशु जंगली पशुओंसे दूर रहते हैं, और (आपः दुष्टया वि असरन्) जल प्यासे दूर रहता है उसी प्रकार मैं सब पापों और सब रोगोंसे दूर रहकर दीर्घायुष युक्त होऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ— देव दुष्टतासे दूर करके सदा सरल जैसे रहते हैं अग्नि देव अज्ञानी पुरुषोंसे दूर करके ज्ञानी पुरुषोंको प्राप्त करता है। इसी प्रकार मैं सब पापोंसे और रोगोंसे दूर करके पुरुषार्थसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त करूं ॥ १ ॥

जैसे शुद्धता करनेवाला मनुष्य रोगादि पीड़ाओंसे दूर रहता है और पुरुषार्थी समर्थ मनुष्य पापोंसे दूर रहता है उसी प्रकार मैं पापों और रोगोंसे दूर रहकर दीर्घायुष्य प्राप्त करूं ॥ २ ॥

जैसे गौ आदि ग्रामके पशु सिंह व्याघ्र आदि जंगलके पशुओंसे दूर रहते हैं और जैसे जलके पास तृष्णा नहीं आती उसी प्रकार मैं पापों और रोगोंसे दूर रहकर दीर्घायुष्य प्राप्त करूं ॥ ३ ॥

इस प्रकार हरएक शास्त्रके विषयमें पाठक देखें। अन्यान्य शास्त्रोंमें प्रत्येक कर्मके बुरे या भले परिणाम कारणके साथ बताये होते हैं परन्तु उस कर्मका समीकरण करके कर्मशास्त्रमें पाप और पुण्य इन दो शब्दोंद्वारा वही भाव कारण न देते हुए और परिणाम न बताते हुए कहा होता है। इससे कर्म शास्त्रके पाप-पुण्य भी किस प्रकार शास्त्रसिद्ध हैं इसका पता पाठकोंको लग सकता है।

ये सब पाप ही रोग और अल्पायुताके कारण हैं और पुण्य कर्म करनेसे ही नीरोगता और दीर्घायु मिलती है। यह बात सूक्ष्मतया इस सूक्तमें व्यक्त की गई है। इस सूक्तमें प्रत्येक मंत्रका उत्तरार्ध यह है—

व्यहं सर्वेण पाप्मना, वि यक्ष्मेण, समायुषा ॥
(सू. ११ मं १-११)

मैं सब पापोंको दूर करता हूं, सबसे रोगोंको दूर करता हूं जिससे दीर्घायुसे युक्त होता हूं। इस मंत्रका अर्थापत्तिसे भाव यह है कि— मैं पुण्य कर्म करनेसे नीरोग होता हुआ दीर्घजीवी बनता हूं। अर्थात् दीर्घायु प्राप्त करनेका मूल उपाय पापोंको दूर करके पुण्य करना ही है इससे सर्व रोग दूर होंगे नीरोगता प्राप्त होगी और दीर्घायु भी मिलेगी। इस सूक्तका यही संदेश पाठकोंको देना है। यह आशय मंत्र ग्यारह बार कहकर यह संदेश पाठकोंके मनपर स्थिर करनेका यत्न इस सूक्तमें किया है। पाठक भी इसी दृष्टिसे इस मंत्रभागका महत्त्व देखें और इससे प्राप्त होनेवाला उपदेश आत्मसात् करें।

पापको दूर करना

सबसे पहले सब पाप दूर करनेका उपदेश कहा है—

अहं सर्वेण पाप्मना वि। (सू. ११ मं १-११)

सब पापका अर्थ अधिक कायिक मानसिक सामाजिक और राष्ट्रीय पाप हैं। ये सब दूर करना चाहिये। अपने अपने पाप विचार दूर हटाने चाहिये वाचाको शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिये शरीरसे कोई पापकर्म करना नहीं चाहिये इंद्रियोंको पाप प्रवृत्तिसे रोकना और उनको ऐसी शिक्षा देना चाहिये कि उनकी प्रवृत्ति कभी पापकी ओर कभी न होवे। इसी प्रकार कुटुंब जाती समाज राष्ट्र व्यवहारोंमें अनेक पाप होते रहते हैं। उनको भी दूर करना चाहिये। यदि कोई कहे कि जाती और राष्ट्रके पापोंको हम दूर नहीं कर सकते तो उनको उचित है कि वे अपना- निजका तो सुधार करें। अपनी निष्पापता सिद्ध हुई तो उसका सौम्य परिणाम जातीपर भी होगा और न भी हुआ तो भी उस व्यक्तिको तो पापसे बचनेके कारण यथेष्ट भाग्य अवश्य ही मिलेगा जितना पुण्यकर्म होगा उतना फल अवश्य मिलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है। हरएक शास्त्रके अनुसार जो पतनका हेतु है उसे दूर करके अभ्युदयके हेतुको प्राप्त करना चाहिये। ऐसा करनेसे पाप और रोग दूर होकर दीर्घजीवन प्राप्त होगा। अब पापों और रोगोंको दूर करनेका अनुष्ठान करनेकी रीति देखिये—

देवोंका उदाहरण।

देवोंका नाम निर्ऋतयः है इसका अर्थ बुरा दुःखदायक और दुःखोंको दूर रखनेवाले हैं। देवोंने इस प्रकारके अनुष्ठान करके दुःखोंको दूर किया था और वे बड़ी आयु होने पर भी तरुण जैसे दीखते थे। यह आदर्श मनुष्योंके अपने सम्मुख रखना चाहिये। और जिस अनुष्ठानसे देवोंको यह सिद्धि प्राप्त हुई थी वह अनुष्ठान करके मनुष्योंको भी यह सिद्धि प्राप्त करना चाहिये। यह बतानेके लिये प्रथम मंत्रमें—

देवाः अरसा वि अकृतन्। (सू. ११ मं १)

देवोंने दुःखोंको दूर रखा था यह बात कही है। अब आगे देखिये—

अग्निका आदर्श।

अग्नि भी (अग्ने ! त्वं अरसा वि। मं १) कृमियोंको दूर करता है। उदार मनुष्य ही जो अपने घर आदि द्वारा यज्ञ करना चाहते हैं वे ही अग्निहोत्रादि करनेके लिये तथा अन्यान्य बड़े यज्ञ करनेके लिये अग्निके पास इकट्ठे होते हैं और जो कृमि होते हैं वे अग्निसे दूर ही जाते हैं क्योंकि वे अपना घर यज्ञमें जलाना नहीं चाहते। इसका अर्थ यही है कि अग्नि कृमि मनुष्योंको दूर करता है और उदार मनुष्योंको इकट्ठा करके उनका संघ बनाकर उनका अभ्युदय करके उन्नति कराता है। जिस प्रकार यह अग्नि कृमियोंको दूर करता है उसी प्रकार पापों और रोगोंको दूर करना मनुष्यको उचित है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य पापियों और रोगियोंको दूर अलग रखे और पुण्यात्मा और नीरोग मनुष्योंका संघ बनाकर अपना आरोग्य बढ़ाये।

जो पापी मनुष्य होता है उसके संसर्गमें जो जो मनुष्य आयेंगे वे भी पापी बनेंगे इसलिये पापीको समाजसे बाहर निकाल देना चाहिये। इसी प्रकार जो रोगी मनुष्य होते हैं उनके संसर्गसे भी अन्य मनुष्य रोगी होनेकी संभावना होती है इस कारण रोगियोंके लिये विशेष प्रबंध करके उनको अलग करना चाहिये जिससे उनके रोग अधिक न फैलें। इस प्रकार युक्तिसे पापियों और रोगियोंको अलग रखनेका प्रबंध करनेसे लोक समाज निष्पाप और नीरोग रहना संभव है और यह प्रबंध जितनी पूर्णतासे किया जाय उतना अधिक क्षेम होगा।

पवित्रताका महत्त्व।

द्वितीय मंत्रमें पवित्रता और शुद्धताका महत्त्व वर्णन किया है। पवित्रतासे पाप और रोग दूर होते हैं—

(१) पवमानः आर्ष्या वि।

(२) शुक्रः पापहत्या वि। (सू. ११ मं. २)

(१) पवित्रता करनेवाला रोगादिकोंके कष्टोंसे दूर होता है और (२) मनोबलसे समर्थ मनुष्य पापसे दूर रहता है।

ये दोनों अर्थपूर्ण मंत्रभाग हैं। स्वच्छता पवित्रता और निर्दयता करनेवाले जो होते हैं उनके पास प्रायः रोग आते ही नहीं अथवा वे अपनी शुद्धतासे रोगोंको दूर रखते हैं। मुख्य तात्पर्य यह है कि जल आदिसे शरीर निर्मल करना उसीके समान पवित्रता करना विद्या और तपसे अपनी अन्तः शुद्धी करना शुद्ध विचारों और प्रेमपूर्ण आचरणोंसे परिवारकी शुद्धता करना उत्तम पवित्रता ईश्वरादिसे करना अग्निमें हवन करके वायुकी शुद्धता करना झाडकर सडकें शुद्ध बनाना मकानों शुद्ध करके नगरकी स्वच्छता करना इसी प्रकार अन्यान्य क्षेत्रोंकी शुद्धता करनेसे रोगबीज दूर जाते हैं। और मनुष्य रोगसे पीडित नहीं होता है।

इसी प्रकार उस परमेश्वरनिष्ठा तप धर्माचरण आदि द्वारा मनका बल बढानेसे जो सामर्थ्य मनुष्यके अंदर उत्पन्न होता है वह मनुष्यको पापोंसे बचाता है। ऐसा समर्थ मनुष्य अपाचरण नहीं करता और वह पवित्रात्मा बनता हुआ। जनताके लिये आदर्श बनता है। वह मनुष्य न केवल स्वयं पापों और रोगोंसे दूर रहता है प्रत्युत अन्योंको भी दूर रखता है।

ग्राम नगर और राष्ट्रोंकी पंचायतों द्वारा ग्राम नगर और राष्ट्रमें उक्त प्रकार पूर्ण स्वच्छता और पवित्रता बढानेसे भी उक्त क्षेत्रोंकी जनता पापों और रोगोंसे बची रहती है। यह द्वितीय मंत्रभाग उपदेश प्रसङ्ग उक्त बनेवाला होनेके कारण इसका अनुज्ञान वर्णन होना आवश्यक है।

स्थानत्यागसे बचाव।

पापी मनुष्योंका और रोगोंका स्थान छोड देना इसको स्थान त्यागसे बचाव करना कहते हैं। इसका वर्णन तृतीय और चतुर्थ मंत्रों द्वारा हुआ है, देखिये—

१ आस्थाः पशवः आरण्येभिः वि। (सू. ३१ मं १)
२ इमे यावापृथिवी वि इतः। (सू ३१ मं ४)

(१) ग्रामके गौ आदि पशु स्वाधारि आरण्यक पशुओंसे दूर रहकर बचाव करते हैं (२) तथा द्युलोक पृथ्वीसे जैसा दूर रहता है। ये स्थानत्याग करके बचाव करनेके उदाहरण हैं। व्याघ्र सिंह, भेडिया आदि जिस स्थानमें रहते हैं उस स्थानका त्याग करके गौ आदि ग्रामीण पशु अपना बचाव करते हैं। भूकेकी बीमारीसे बचनेके लिये और अपनी प्रकाशमानता स्थिर रखनेके लिये द्युलोक—भूलोकसे बहुत दूरीपर रहा है। इस प्रकार पापी लोगोंसे दूर रहकर पापसे बचना और रोगस्थानसे दूर रहकर रोगोंसे बचना योग्य है।

स्वभावसे बचाव।

जिनकी स्वभावसे ही पापसे बचनेकी प्रवृत्ति होती है और जिनमें स्वभावसे ही रोगप्रतिबंधक शक्ति होती है वे पापों और रोगोंसे बचे रहते हैं इस विषयमें सूचक वचन देखिये—

१ अपः तृष्णया वि असरन्। (सू ३१ मं. १)
२ पन्थानः दिवः दिशा वि। (सू ३१ मं ४)

(१) जल अपने स्वभावसे ही प्याससे दूर रहता है और (२) विविध दिशाओंसे जानेवाले मार्ग स्वभावसे एक दूसरेसे दूर रहते हैं। उनको स्वभावसे ही प्यास नहीं लगती। इस प्रकार जो लोग स्वभावतः पापमें प्रवृत्त नहीं होते वे पापरहित होते हुए पापके फलभोगसे बचते हैं। इसी प्रकार जिनके शरीरमें रोगप्रतिबंधक शक्ति पर्याप्त रहती है वे रोगस्थानमें रहते हुए भी रोगोंसे बचे रहते हैं। यह स्वभावका नियम देखकर हर एकको उचित है कि वह अपना स्वभाव उक्त प्रकार बनावे और पापों और रोगोंसे अपना बचाव करके दीर्घायु नीरोग और बलवान् तथा सर्वप्रिय बने।

दान।

जनताको निष्पाप और नीरोग करनेके लिये धनी मनुष्य अपने धनका कुछ भाग अवश्य करके दान देवें जिस प्रकार—

रक्षता दुहितुः सहस्रं युगक्ति। (सू ३१ मं ५)

पिता पुत्रीके दहेजके लिये धन योजनापूर्वक देता है। यह धन सासरके घरमें रहता हुआ कोषनके रूपसे इस कार्य करता है इसी प्रकार धनी मनुष्य अपना कुछ भाग जनताके रोगमुक्त और पापमुक्त करनेके लिये अर्पण करें और इस इकट्ठे हुए धनसे ऐसी संस्थाएं योजनापूर्वक चलायी जावें कि जो जनताको पापप्रवृत्तिसे और रोगसे रक्षा करें। इस प्रबन्धसे संपूर्ण राष्ट्र प्रतिदिन अधिकाधिक निष्पाप नीरोग दीर्घजीवी संपन्न स्वस्थ और सुखी बने।

अपनी गतिमें रहना।

लोग एक दूसरेसे स्पर्धा करते हैं और अपना दुःख बढाते हैं। यदि वे अपनी गतिसे चलते रहेंगे और दूसरोंकी गतिके साथ व्यर्थ स्पर्धा न करेंगे तो भी पापसे और रोगोंसे बच सकते हैं इस विषयमें एक उदाहरण है—

इमं विष्णुं सुपदं वि क्रमाते। (सू. ३१ मं ५)

ये सब पृथिवी सूर्य चन्द्र आदि लोक अपनी अपनी विविध गतिसे चलते हैं। सूर्यकी उष्णताके साथ स्पर्धा करके स्वयं उष्ण बनना नहीं चाहता और चंद्रकी स्पर्धा करता हुआ सूर्य स्वयं शीत बनेगा इच्छुक नहीं है। इसी प्रकार ये सब ग्रह अपनी अपनी गतिसे अपना अपना कार्य करते हैं। विविध लोकोंकी विविधता उपदेश देती है कि विविधताके मूल ये सब भुवन जिस प्रकार संपूर्ण जगत्के लोक बनकर अविरोधसे रहे हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी विविध गुणधर्मोंसे युक्त होते हुए संपूर्ण राष्ट्रके अवयव बनकर राष्ट्रहित और संपूर्ण जनताका हित करनेकी बुद्धिसे आपसमें अविरोधी भावसे रहें। इस प्रकार रहनेसे पूर्वोक्त प्रकार वे उपायोंका अवलंबन करके अपने आपको पापों और रोगोंसे बचा सकते हैं। अन्यथा आपसमें लडते हुए रोगोंसे

वी॒१॒मे द्यावापृथिवी इतो वि प॒र्यान्तो॒ दिशोदिशम् ।
अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ४ ॥
स्वसा॒ दुहि॑त्रं॒ वह॒तुं यु॒नक्तीद्वं विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि या॑ति ।
अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ५ ॥
अ॒ग्निः प्रा॒णान्त्स दं॑धाति॒ चन्द्रः॑ प्रा॒णेन॒ सह॑सितः । अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ६ ॥
प्रा॒णेने॑ दि॒व्यतो॑धीर्यं॒ देवाः॒ सूर्यं॑ समैरयन् । अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ७ ॥
आयु॑ष्मतामायुष्कृतां प्रा॒णेने॑व॒ जीव॒ मा मृ॑थाः । अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ८ ॥
प्रा॒णेने प्रा॑णतां प्रा॒णेहैव भ॑व॒ मा मृ॑थाः । अ॒य॒१॒ह सर्वेण॒ पाप्म॒ना वि यक्ष्मेण॒ समायु॒षा ॥ ९ ॥

अन्वय— जिस प्रकार (इमे द्यावापृथिवी वि इतः) ये द्युलोक और पृथ्वी अलग हैं और (पर्यान्तो दिशो दिशं वि) ये सब मार्ग प्रत्येक दिशामें अलग अलग होकर जाते हैं इसी प्रकार मैं सब पापोंसे और रोगोंसे दूर रहता हुआ दीर्घायुसे युक्त होऊं ॥ ४ ॥

जैसा (स्वसा दुहित्रे वहतुं युनक्ति) पिता अपनी कन्याको देख-भाल कर- देखकर जिसे अलग करता है और जैसा (इदं विश्वं भुवन वि याति) यह सब भुवन अलग अलग चलता है इसी प्रकार मैं सब पापोंसे और रोगोंसे दूर रहता हुआ दीर्घ आयुसे युक्त होऊं ॥ ५ ॥

जिस रीतिसे (अग्निः प्राणान् सन्दधाति) अग्नि प्राणोंका धारण करता है और (चन्द्रः प्राणेन संहितः) चन्द्रमा-मन-प्राणके साथ रहता है उसी रीतिसे मैं सब पापों और रोगोंसे अलग होकर दीर्घायुसे युक्त होऊं ॥ ६ ॥

जिस ढंगसे (देवाः दिव्यतो-धीर्यं सूर्यं) देव सब सामर्थ्यसे युक्त सूर्यको (प्राणेन समैरयन्) अपने प्राणके साथ सम्बन्धित करते हैं उसी ढंगसे मैं सब पापों और रोगोंसे दूर रहकर दीर्घजीवनसे युक्त होऊं ॥ ७ ॥

(आयुष्मतां आयुष्कृतां प्राणेन जीव) दीर्घायुवाले और आयुष्य बढानेवाले जो होते हैं उनके प्राणके साथ जीव रह । (मा मृथाः) मत मर जा । उसी प्रकार मैं भी सब पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूं ॥ ८ ॥

(प्राणतां प्राणेन प्राण) जीवित रहनेवालोंके प्राणसे जीवित रह (इह एव भव) यहां ही प्रसन्नतासे रह और (मा मृथाः) मत मरना । उसी प्रकार मैं सब पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूंगा ॥ ९ ॥

भावार्थ— जैसे आकाश भूमिसे दूर है और प्रत्येक दिशाको जानेवाला मार्ग जैसा एक दूसरेसे पृथक होता है वैसे ही मैं पापों और रोगोंसे दूर रहकर दीर्घायुत्व प्राप्त करूं ॥ ४ ॥

पुत्रीका पिता जैसा पुत्रीके विवाहके समय दामादको देनेके लिये वहेज अपने पासमें अलग करके दूर करता है और जिस प्रकार ग्रह-नक्षत्रादि गोल अपनी गतिसे चलकर परस्पर अलग रहते हैं उसी प्रकार मैं पापों और रोगोंसे दूर रहकर दीर्घायु प्राप्त करूंगा ॥ ५ ॥

जैसा शरीरमें आठ अग्नि अन्नादिका पाचन करता हुआ प्राणोंका बलवान् करता है और मन अपनी गतिसे प्राणके साथ रहकर शरीर चलाता है इसी प्रकार मैं पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु प्राप्त करूं ॥ ६ ॥

जैसे सबको बल देनेवाले सूर्यका भी अन्य सब प्राणशक्तिसे युक्त करते हैं उसी ढंगसे मैं पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूं ॥ ७ ॥

स्वभावतः दीर्घायु लोगोंकी जैसी प्राणशक्ति होती है और अनेक साधनोंसे अपनी दीर्घ आयु करनेवालोंकी जैसी प्राणशक्ति होती है वैसी अपनी प्राणशक्ति बलयुक्त करके मनुष्य अंधे और क्लीव न मरे । मैं भी इसी रीतिसे पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूं ॥ ८ ॥

प्राणधारण करनेवालोंके अंदर जो प्राणशक्ति है उसको बलवान् करके तू यहां सब जैसी आयुसे ही मत मर जा । मैं भी पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूंगा ॥ ९ ॥

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन । अर्यꣳइ सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ १० ॥
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् । अर्यꣳइ सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ११ ॥

॥ इति पञ्चोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

अर्थ— (आयुषा उत्) आयुष्यसे उत्कर्ष प्राप्त कर (आयुषा स) दीर्घायुसे युक्त हो (ओषधीनां रसेन उत्) ओषधियोंके रससे उन्नति प्राप्त कर । इसी रीतिसे मैं भी सब पापों और रोगोंसे दूर होकर दीर्घायु बनूं ॥ १० ॥

(अर्यं पर्जन्यस्य वृष्ट्या) हम पर्जन्यकी वृष्टिसे (आ उत् अस्थाम) उन्नतिको प्राप्त करें और (अमृताः) अमर हो जांय । इसीलिये मैं सब पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घ आयुसे युक्त होऊं ॥ ११ ॥

भावार्थ— अपनी आयुसे उत्कर्षको साधन कर और उससे भी दीर्घायु बन औषधियोंका रस पीकर नीरोग पुष्ट और बलवान् बन । इसी प्रकार मैं भी पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूं ॥ १० ॥

पर्जन्यकी वृष्टिसे जैसे वनस्पति बढ़कर उन्नत होते हैं उसी प्रकार हम उन्नतिको प्राप्त करेंगे और अमरत्व भी प्राप्त करेंगे । मैं भी पापों और रोगोंको दूर करके दीर्घायु बनूंगा ॥ ११ ॥

पापनिवृत्तिसे नीरोगता और दीर्घायु ।

इस सूक्तमें कहा है कि पापोंको दूर करनेसे आरोग्य और दीर्घ आयु प्राप्त होती है और वह अनुष्ठान किस रीतिसे करना चाहिये इसके उपाय भी यहां बताये हैं ।

पाप और पुण्य ।

पाप और पुण्य क्या है इसका यहां विचार करना आवश्यक है । पाप और पुण्य ये धर्मशास्त्रकी संज्ञाएं हैं । और धर्म केवल अन्यान्य शास्त्रोंका सारभूत शास्त्र है । अन्यान्य शास्त्रोंसे भिन्न धर्मशास्त्र नहीं है । अन्यान्य शास्त्र एक एक विषयके संबंधमें होते हैं और धर्मशास्त्र संपूर्ण शास्त्रोंका निचोड़ लेकर मानवी उन्नतिके सिद्धांत बनाता है इसलिये धर्मशास्त्रके विधिनिषेध सर्वसामान्य होते हैं और अन्यान्य शास्त्रोंके विधि निषेध उस शास्त्रके विषयके साथ संबंध होनेके कारण विशेष होते हैं ।

पाप पुण्यका विचार इसी प्रकार है । पुण्य शब्दका अर्थ है पवित्र बनना और पाप शब्दका अर्थ है पतनका हेतु । अन्यान्य शास्त्रोंमें जिससे हानि होती है ऐसा लिखा है वे सब बातें धर्मशास्त्रमें पाप शब्दसे बतायी जाती हैं और जो बातें उन्नतिकारक समझी जाती हैं उनको पुण्यकारक धर्मशास्त्रमें कहा है । यह बात अधिक स्पष्ट करनेके लिये एक दो उदाहरण लेकर इसी विषयको विचार करते हैं—

वैद्यशास्त्र ।	धर्मशास्त्र ।
१ मद्यपीनेसे यकृत् और पेट बिगडता है खूनकी कमजोरी होती है इस कारण अनेक रोग होते हैं ।	१ मद्य पीना पाप है ।
२ व्यभिचार करनेसे वीर्यनाश होनेके कारण मस्तिष्क कमजोर होता है और अनेक बीमारियां होती हैं ।	२ व्यभिचार पाप है ।
आरोग्यशास्त्र ।	
१ स्नान करके स्वच्छता करना वस्त्र तथा बाहर स्वच्छ करनेसे रोग नहीं होते और आरोग्य बढ़ता है ।	१ स्नान करना पुण्यकारक है । स्वच्छता करना पुण्य है ।
२ मद्य छानकर उसमेंसे रोगजंतु या अन्य रोगबीज दूर हो जाते हैं और इस कारण छाना हुआ मद्य पीना आरोग्यकारक है	२ मद्य छानकर पीना पुण्यकारक है ।
समाजशास्त्र ।	
१ सत्य बोलनेसे मनुष्यके व्यवहार उत्तम चलते हैं ।	१ सत्य पुण्यकारक है ।
राजशासनशास्त्र ।	
१ चोरी खून आदि करनेसे राजशासनके नियमके अनुसार दण्ड होता है ।	१ चोरी खून आदि करना पाप है ।

इस प्रकार हरएक खण्डके विषयमें पाठक देखें। अन्यान्य खण्डोंमें प्रत्येक कृत्यके हुरे या भले परिणाम कारणके साथ बताये होते हैं परन्तु उन सबका समीकरण करके धर्मशास्त्रमें पाप और पुण्य' इन दो शब्दोंद्वारा वही भाव कारण न देते हुए और परिणाम न बताते हुए कहा होता है। इससे धर्म शास्त्रके पाप-पुण्य भी किस प्रकार वास्तविक हैं इसका पता पाठकोंको लग सकता है।

ये सब पाप ही रोग और अल्पायुताके कारण हैं और पुण्य कर्म करनेसे ही नीरोगता और दीर्घायु मिलती है। यह बात सुस्पष्टता इस सूक्तमें व्यक्त की गई है। इस सूक्तमें प्रत्येक मंत्रका उत्तरार्ध यह है—

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ०
(सू. ११ म १-११)

मैं सब पापोंको दूर करता हूं, सबसे रोगोंको दूर करता हूं जिससे दीर्घायुसे युक्त होता हूं। इस मंत्रका अर्थापत्तिसे भाव यह है कि— मैं पुण्य कर्म करनेसे नीरोग होता हुआ दीर्घजीवी बनता हूं। अर्थात् दीर्घायु प्राप्त करनेका मूल उपाय पापोंको दूर करके पुण्य करना ही है इससे अर्थ रोग दूर होंगे नीरोगता प्राप्त होगी और दीर्घायु भी मिलेगी। इस सूक्तको यही संदेश पाठकोंको देना है। यह आशय मंत्र स्वारस्य बार बार यह संदेश पाठकोंके मनपर स्थिर करनेका बल इस सूक्तमें दिया है। पाठक भी इसी दृष्टिसे इस मंत्रसामर्थ्य महत्त्व देखें और इससे प्राप्त होनेवाला उपदेश आत्मसात् करें।

पापको दूर करना

सबसे पहले सब पाप दूर करनेका उपदेश कहा है—

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि। (सू. ११ मं १-११)

सब पापका अर्थ आधिक आधिक मानसिक सामाजिक और राष्ट्रीय पाप हैं। वे सब दूर करना चाहिये। अपने मनके पाप विचार दूर हटाने चाहिये वाचाको शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिये, कायासे कोई पापकर्म करना नहीं चाहिये इंद्रियोंको पाप प्रवृत्तिसे रोकना और उनका ऐसी शिक्षा देना चाहिये कि उनकी प्रवृत्ति सब पापको ओर कभी न होने। इसी प्रकार कुटुंब जाती समाज राष्ट्रके व्यवहारोंमें अनेक पाप होते रहते हैं। उनका भी दूर करना चाहिये। यदि कोई कहे कि जाती और राष्ट्रके पापोंको हम दूर नहीं कर सकते तो उनको उचित है कि वे अपना- निजका तो सुधार करें। अपनी निष्पापता सिद्ध हुई तो उसका सुपरिणाम जातीपर भी होगा और न भी हुआ तो भी उस व्यक्तिको तो पापसे बचनेके कारण आत्मिक भाग्य अवश्य ही मिलेगा। जितना पुण्यकर्म होगा उतना फल अवश्य मिलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है। हरएक खण्डके अनुसार जो पापका हेतु है उसे दूर करके अभ्युदयके हेतुको पास करना चाहिये। ऐसा करनेसे पाप और रोग दूर होकर दीर्घजीवन प्राप्त होगा। अब पापों और रोगोंको दूर करनेके अनुष्ठान करनेकी रीति देखिये—

देवोंका उदाहरण।

देवोंका नाम निर्ऋतः है इसके अर्थ बरा मृत्युरूप और बुढापा आदिको दूर रखनेवाले हैं। देवोंने इस प्रकारके अनुष्ठान करके बुढापेको दूर किया था और वे बडी आयु होने पर भी तरुण जैसे दीखते थे। यह आदर्श मनुष्योंके सामने सन्मुख रखना चाहिये। और जिस अनुष्ठानसे देवोंको यह सिद्धि प्राप्त हुई थी वह अनुष्ठान करके मनुष्योंको भी यह सिद्धि प्राप्त करना चाहिये। यह बतानेके लिये प्रथम मंत्रमें—

देवाः अरसा वि अमुचन्। (सू. ११ मं १)

देवोंने बुढापेको दूर रखा था यह बात कही है। अब आगे देखिये—

अग्निका आदर्श।

अग्नि भी (अग्ने ! रक्षः अरातीर्वा वि। मं १) कच्चोंको दूर करता है। इसपर मनुष्य ही जो अपने घर आदि हाथ कर करना चाहते हैं वे ही अग्निहोत्रादि करनेके लिये तथा अन्यान्य बडे यज्ञ करनेके लिये अग्निके पास इकट्ठे होते हैं और जो कच्चे होते हैं वे अग्निसे दूर ही जाते हैं क्योंकि वे अग्नि यज्ञमें जलाना नहीं चाहते। इसका अर्थ यही है कि अग्नि कच्चे मनुष्योंको दूर करता है और उत्तर मनुष्योंको इकट्ठा करके उनका सैन्य बनाकर उनका अभ्युदय करके उन्नति करता है। जिस प्रकार यह अग्नि कच्चोंको दूर करता है उसी प्रकार पापों और रोगोंको दूर करना मनुष्यको उचित है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य पापियों और रोगियोंको दूर अलग रखे और पुण्यता और नीरोग मनुष्योंका सैन्य बनाकर अपना आरोग्य बढाये।

जो पापी मनुष्य होता है उसके संसर्गमें जो जो मनुष्य आते वे भी पापी बनते इसलिये पापीको समाजसे बाहर निकाल देना चाहिये। इसी प्रकार जो रोगी मनुष्य होते हैं उनके संसर्गसे भी अन्य मनुष्य रोगी होनेकी संभवता होती है इस कारण रोगियोंके लिये विशेष प्रबंध करके उनको अलग करना चाहिये जिससे उनके रोग अधिक न फैलें। इस प्रकार बुद्धिसे पापियों और रोगियोंको अलग रखनेका प्रबंध करनेसे सब समाज निष्पाप और नीरोग रहना संभव है और यह प्रबंध जितनी पूर्णतासे किया जाय उतना अधिक लाभ होगा।

पवित्रताका महत्त्व।

दूसरे मंत्रमें पवित्रता और शुद्धताका महत्त्व वर्णन किया है। पवित्रतासे पाप और रोग दूर होते हैं—

(१) पवमानः अरातीर्वा वि।
(२) शुक्रः पापकृत्या वि। (सू. ११ मं २)

(१) पवित्रता करनेवाला रोगादिकोंके कष्टोंसे दूर होता है और (२) मनोबलसे समर्थ मनुष्य पापसे दूर रहता है।

ये दोनों अर्थपूर्ण मंत्रभाग हैं। स्वच्छता पवित्रता और निर्मलता करनेवाले जो होते हैं उनके पास प्रायः रोग आते ही नहीं अथवा वे अपनी शुद्धतासे रोगोंको दूर रखते हैं। शुद्ध जल का अर्थ यह है कि जल आदिसे शरीर निर्मल करना वचनसे मनकी पवित्रता करना विद्या और तपसे अपनी आत्म शुद्धी करना शुद्ध विचारों और प्रेमपूर्ण आचरणोंसे परिवारकी शुद्धता करना, सदा पवित्रता संपत्तिसे करना अग्निमें हवन करके वायुकी शुद्धता करना जानकर औरोंको शुद्ध बनाना मनस्वी लोगोंसे शुद्ध करके सभाकी स्वच्छता करना इसी प्रकार अन्यान्य क्षेत्रोंकी शुद्धता करनेसे रोगवीज दूर जाते हैं। और मनुष्य ऐसे पीडित नहीं होता है।

इसी प्रकार सब परमेश्वरविद्या तप धर्माचरण आदि द्वारा मनका बल बढानेसे जो सामर्थ्य मनुष्यके अंदर उत्पन्न होता है वह मनुष्यको पापोंसे बचाता है। ऐसा समर्थ मनुष्य पापाचरण नहीं करता और वह पवित्रात्मा बनता हुआ अनताके लिये आदर्श बनता है। वह मनुष्य न केवल स्वयं पापों और रोगोंसे दूर रहता है प्रत्युत अन्योंको भी दूर रखता है।

ग्राम नगर और राष्ट्रोंकी पंचायतों द्वारा ग्राम नगर और राष्ट्रमें सदा प्रकार पूर्ण स्वच्छता और पवित्रता बढानेसे भी इन क्षेत्रोंकी जनता पापों और रोगोंसे बची रहती है। यह द्वितीय मंत्रभाग उपदेश ग्रहण कर लेनेवाला होनेसे कारण इसका अनुष्ठान सर्वत्र होना आवश्यक है।

स्थानत्यागसे बचाव।

पापी मनुष्योंका और रोगोंका स्थान छोड देना इसको स्थान त्यागसे बचाव करना कहते हैं। इसका वर्णन तृतीय और चतुर्थ मंत्रों द्वारा हुआ है देखिये—

१ आरण्याः पशवः आरण्यैः वि। (सू ११ मं. ३)
२ इमे यावापृथिवी वि हतः। (सू ११ मं ४)

(१) ग्रामके गौ आदि पशु व्याघ्रादि आरण्यक पशुओंसे दूर रहकर बचाव करते हैं (२) तथा पृथिवीके जैसा दृढ रहता है।' ये स्थानत्याग करके बचाव करनेके उदाहरण हैं। व्याघ्र सिंह भेडिया आदि जिस स्थानमें रहते हैं उस स्थानका त्याग करके गौ आदि ग्रामीण पशु अपना बचाव करते हैं। मूषकादी अनुचितसे बचनेके लिये और अपनी प्रजासमृद्धि स्थिर रखनेके लिये पुलाड-मूषिकसे बहुत दूरीपर रहा है। इस प्रकार पापी लोगोंसे दूर रहकर पापसे बचना और रोगस्थानसे दूर रहकर रोगोंसे बचना योग्य है।

स्वभावसे बचाव।

जिसकी स्वभावसे ही पापसे बचनेकी प्रवृत्ति होती है और जिसमें स्वभावसे ही रोगप्रतिबंधक शक्ति होती है वे पापों और रोगोंसे बचे रहते हैं इस विषयमें मंत्रके वचन देखिये—

१ अपाः तृष्णया वि ससरत्। (सू ११ मं १)
२ पन्थाः दिवा दिवा वि। (सू ११ मं ४)

(१) जल अपने स्वभावसे ही प्यासेसे दूर रहता है और (२) विविध दिशाओंसे जानेवाले मार्ग स्वभावसे एक दूसरेसे दूर रहते हैं। उनको स्वभावसे ही प्यास नहीं लगती। इस प्रकार जो लोग स्वभावतः पापमें प्रवृत्त नहीं होते वे पापरहित होते हुए पापके फलभोगसे बचते हैं। इसी प्रकार जिनके शरीरमें रोगप्रतिबंधक शक्ति पर्याप्त रहती है वे रोगस्थानमें रहते हुए भी रोगोंसे बचे रहते हैं। यह स्वभावका नियम समझकर हर एकको उचित है कि वह अपना स्वभाव उक्त प्रकार बनावे और पापों और रोगोंसे अपना बचाव करके दीर्घायु नीरोग और बलवान् तथा सच्चरित्र बने।

दान।

अनताके निष्पाप और नीरोग करनेके लिये धनी मनुष्य अपने धनका कुछ भाग अलग करके दान देवें जिस प्रकार—

रक्षता दुहित्रे सहसं पुरुष्यसि। (सू ११ म ५)

पिता पुत्रीके देहके लिये धन योजनापूर्वक देता है। यह धन दानादिके अर्थमें रहता हुआ लोकहितके रूपसे इस कार्य करता है इसी प्रकार धनी मनुष्य अपना कुछ भाग जनताके रोगमुक्त और पापमुक्त करनेके लिये अलग करें और इस इकट्ठे हुए धनसे ऐसी संस्थाएं योजनापूर्वक चलायी जावें कि जो जनताको पापप्रवृत्तिसे और रोगसे रक्षा करें। इस प्रबन्धसे संपूर्ण राष्ट्र प्रतिदिन अधिकाधिक निष्पाप नीरोग दीर्घजीवी संपन्न स्वस्थ और सुखी बने।

अपनी गतिमें रहना।

आप एक दूसरेसे स्पर्धा करते हैं और अपना दुःख बढाते हैं यदि वे अपनी गतिसे चलते रहेंगे और दूसरोंकी गतिके साथ व्यर्थ स्पर्धा न करेंगे तो भी पापसे और रोगोंसे बच सकते हैं इस विषयमें एक उदाहरण है—

इमं विश्वं भुवनं वियाति। (सू. ११ मं. ५)

ये सब पृथिवी सूर्य चन्द्र आदि लोक अपनी अपनी विशेष गतिसे चलते हैं। सूर्यकी कक्षासे चंद्र स्पर्धा करके स्वयं उष्ण बनना नहीं चाहता और चंद्रकी स्पर्धा करता हुआ सूर्य स्वयं शीत बननेका इच्छुक नहीं है। इसी प्रकार ये सब यह अपनी अपनी गतिसे अपना अपना कार्य करते हैं। विविध गतियोंकी विचित्रता देखने देती है कि विविधताके कुछ न कुछ सुख जिस प्रकार संपूर्ण अवयवोंके लिये बनकर अविरोधसे रहे हैं। उसी प्रकार मनुष्य भी विविध गुणकर्मोंसे युक्त होते हुए संपूर्ण राष्ट्रके अवयव बनकर सामंजस्य और संपूर्ण जनताका हित करनेकी पद्धतिसे आपसमें अविरोधी अवयव रहें। इस प्रकार रहनेसे पूर्वोक्त प्रकार ये अवयवोंका अवयवत्व करके अपने आपको पापों और रोगोंसे बचा सकते हैं। अन्यथा आपसमें लडते हुए रोगोंसे

मरनेके पूर्व ही एक दूसरेके सिर तोड़कर स्वर्ग पर जावेंगे। ऐसा भाव न हो, इसलिये वेद कहता है कि अपनी गतिसे चलो और परस्पर सहायक बनकर अपनी उन्नतिका साधन करो।

पेटकी पाचक शक्ति।

मनुष्यके शरीरमें रोगकीटोंका प्रवेश तब होता है जब उसकी पाचन शक्ति बिगड़ी होती है। इसकी सूचना देनेके लिये यह मंत्रमें कहा है—

अग्निः प्राण्यान् संवृणक्ति। (सू. ११ मं १)

आठर अग्नि अन्नका पचन करनेवाला उदर स्थानका अग्नि ही- प्राणोंका संरक्षण धारण करता है। अन्य कोई साधन नहीं है जिससे प्राणोंका धारण अच्छी प्रकार हो जावे। इसलिये जो लोग दीर्घ जीवनके इच्छुक हैं वे व्यायाम तथा स्वास्थ्य योग साधनादि द्वारा अपनी पाचन शक्ति अच्छी प्रकारसे रक्षित करें। ऐसा करनेसे शरीरमें जो समर्थता आवेगी वही रोगोंको दूर रखेगी और पास आने न देगी।

दूसरी बात यह है कि आठर अग्निके बिगड़नेसे यकृत हृदय और मस्तिष्कका बिगाड़ होता है। मस्तिष्कके बिगड़नेसे भिन्न रीतसे परिवर्तन होता है अर्थात् मनुष्य पागलपनमें ग्रस्त होता है। यदि पाचक शक्ति ठीक रही तो राग आदि कैसे प्रबल नहीं होते। इसलिये रोगों और रोगोंसे बचनेके लिये तथा दीर्घायुष्यकी प्राप्तिके लिये मनुष्य अपनी पाचन शक्ति उत्तम प्रदीप्त करे। इसी मंत्रमें और कहा है—

चन्द्रः प्राणेन संहितः। (सू. ११ मं ६)

चन्द्र प्राणसे मिला है। यहां चन्द्र शब्दके तीन अर्थ हैं (१) वनस्पतिसे उत्पन्न हुआ अन्न (२) वनस्पतियोंके क्षारादिकोंका रस (३) और मन। प्राणसे इन तीनोंका घनिष्ठ संबंध है। यहां वनस्पतिसे प्राप्त होनेवाला खाद्यौषध प्राण स्थिरी करनेके लिये आवश्यक बतानेसे मांसादि सेवन दीर्घ जीवनके लिये अनिष्ट होनेका उपदेश अर्थ ही प्राप्त होता है। पाठक इसका अवश्य विचार करें।

सूर्यका वीर्य।

सूर्यमें बड़ी भारी जीवन विद्युत् है उसको अपने अन्दर संपूरित करनेसे नीरोगता और दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें उत्तम मंत्रका कथन यह है—

एवाः विश्वतोवीर्यं प्राणेन समैरयन्। (सू ११ मं ७)

देव सब प्रकारके वीर्यसे पुष्ट सूर्यको प्राणके साथ संचालित करते हैं। इसी अनुष्ठानसे ये (निर्जराः) जरारहित और (अ मराः) मरणरहित हुए हैं। इसलिये जो लोग अपने प्राणके अन्दर सूर्यकी जीवन विद्युत्का धारण करेंगे वे भी उक्त सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। सूर्यप्रकाशमें खड़े होकर या बैठकर दीर्घश्वसन द्वारा सूर्यकी विद्युत् प्राणके अन्दर कैसे जाती अन्दर सूर्यका वीर्य आ जाता है, इसी प्रकार खुले शरीर सूर्यस्नान करनेसे भी चमड़ीके अन्दर सौरविद्युत्का प्रवेश हो जाता है। इसी प्रकार विविध योजनाओं द्वारा वीर विद्युत्का संचय बढ़ाया जा सकता है। पाठक इसका विचार करके लाभ उठावें।

दीर्घायु प्राप्त करनेवाले।

जो (आयुष्मान्) दीर्घ आयुवाले मनुष्य हैं अर्थात् जिन प्रयत्न जो दीर्घ आयुवाले हुए हैं तथा जो (आयुष्कृत) प्रयत्नसे दीर्घ आयु प्राप्त करनेवाले हैं, अर्थात् जो लोग अनुष्ठान द्वारा जिन्होंने दीर्घ आयु प्राप्त की है (प्राणतां प्राणेन) प्राणकी प्रबल शक्तिसे युक्त पुरुषोंका प्राण कैसा रक्षण है इस तत्त्व विचार करके मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करनेके उपाय जान सकता है। ये ऊपर कहे मनुष्य अपना दैनिक व्यवहार कैसे करते हैं किस ढंगके व्यवहारसे इन्होंने दीर्घ आयु कमाई इसका ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसरण अपने सम्मुख रखकर तदनुसार अपना व्यवहार करना चाहिये। (इह एव मध्य) इस प्रकार इस भूलोकमें दीर्घकालतक रहना चाहिये और (मा पुरा जरसः) शीघ्र मरना उचित नहीं। यह उपदेश मं ८ और ९ में है।

अपने राष्ट्रमें तथा अन्य देशोंमें जहां जहां दीर्घायु संतोष सम्पन्न निष्पाप और सच्चरित्र लोग होंवे उनके जीवन चरित्र देखकर उनके जीवनसे संचित बोध प्राप्त करना चाहिये। और उसके लाभ उठाना चाहिये।

औषधिरस।

उत्तम मनमें औषधियोंके रसका सेवन करके दीर्घायुष्यकी प्राप्ति करनेका उपदेश है—

ओषधीनां रसेन आयुषा सं सृज। (सू. ११ मं १)

औषधियोंके रससे हम दीर्घायुष्यसे संयुक्त होवें इसमें दीर्घायुष्यकी प्राप्तिका संबंध औषधियोंके रस प्राशन करनेके साथ बताया है। इसी सूक्तमें छठे मंत्रके विवाहके साथ इसकी तुलना कीजिये।

अन्तिम मंत्रमें कहा है कि जिस प्रकार खाद्य होनेसे पुष्ट वनस्पति आधिक बढ़ते हैं और उन्नतिको प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हम पूर्वोक्त साधनसे (सर्वे अमृताः उद्भवाम) दीर्घ अमर होकर सब प्रकारकी उन्नति प्राप्त करेंगे। (मं ११)

यह सत्य है कि जो इस सूक्तमें लिखा अनुष्ठान करेंगे वे इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त करेंगे। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। वेदमें जब पूर्वोक्त अनुष्ठान कहा है ऐसे जो अनेक सूक्त हैं उनमेंसे यह एक है। इसके मननसे वेदकी उपदेश करनेकी शैलीका भी ज्ञान हो सकता है। पाठक इसका मनन करें और अनुष्ठान करके लाभ उठावें।

॥ यहां पंचम अनुवाक समाप्त ॥

॥ तृतीय काण्ड समाप्त ॥

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

तृतीय काण्डकी विषयसूची।

सूक्त	विषय	पृष्ठ
	अपने राष्ट्रका विजय	१
	तृतीय काण्ड प्रस्तावना।	१
	ऋषि देवता छंद (केवट)	४
	सूक्तोंके नाम	७
१-	शत्रुसेनाका सम्मोहन	९
१-	शत्रुसेनाका संमोहन	११
	सेनाका समाहन इन्द्र	१२
	मघवन् वृत्रहन्, मघवः	१३
	वसवः आगः शत्रुभ्यो वरूतारमेनां रुद्रिय	१४
	मंत्रोंकी समालोचना	१५
२-	राजाकी स्वराज्यपर पुनः स्थापना	१६
३-	राजाका चुनाव	१७
	पूर्व सम्बन्ध आत्मरक्षा	१९
	सामासनी जाग	२
	विरोधी मनुष्य राजाका चुनाव प्रजाका पालन	२१
	वर्णोंका विभाग	२३
	सुसंस्कृत राजाका रहना सहना भूषा संचार	२४
	वरुण	२५
५-	राजा और राजाके बनानेवाले	२६
	पर्व ग्रंथि राष्ट्रका नित्य बनना	२७
	राजाके निर्माण करनेवाले	२८
६-	वीर पुरुष	२९
	अक्षत्रकी अन्योक्ति	३
	आनुवंशिक संस्कार शत्रुका अक्षय शिराबरका भाव	३१
	विजयकी तैयारी	३१
७-	आनुवंशिक रोगोंको दूर करना	३३
	मातापितासे संतानमें आये क्षत्रिय रोग	३३
	हरिणके सींगसे चिकित्सा इसका रोग	३३
	ओषधि चिकित्सा मणती और तारका	३३
	पुत्रोंके और मूलोंसे समान ओषधियां	३४
	जलचिकित्सा	३४
८-	राष्ट्रीय एकता	३४
	अधिक संघता उत्तमोंका भाग	३६
	सुधारका प्रारंभ सबसे राजा	३७
	राष्ट्रमें अग्नि राष्ट्रका पोषक शूर पुत्रोंवाली माता	३८
	राष्ट्रमें विद्या	३८
	देवी सहायता	३९
	आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक	३९
९-	द्वेष-प्रतिबन्धक उपाय	३९
	सबके मातापिता	४
	विघ्नबन्धुल पराक्रम परिश्रमसे सिद्धि	४१
	असुर माया सैकड़ों विघ्न	४२
१०-	कालका यज्ञ	४३
	कालदेवता यम	४६
	अंधकारमयी रात्री संवत्सरकी प्रतिमा इसका	४७
	कालका यज्ञ बड़ेका कार्य	४८
	अनुशासक इन्द्र	४९
११-	हवनसे दीर्घ आयुष्य।	५०
	हवनसे दीर्घायुष्यकी प्राप्ति औषधियोंके यज्ञ	५१
	हवनसे रोग दूर करना हवनका परिणाम	५२
	आयु करनेवाला हवन	५२
	मरणका पाश सर्वत्र सुरक्षितता	५३
	सत्यपालनसे दीर्घायुकी प्राप्ति	५३
१२-	गृहनिर्माण	५४
	घरकी बनावट, घर बनाने योग्य स्थान	५६
	घर कैसा बनाया जाये। संभावका स्थान	५६
	प्रसवगृहका स्थान वीरतासे युक्त घर	५७
	अतिथि सत्कार देवों द्वारा निर्मित घर	५८
	देवोंकी सहायता	५८
१३-	जल	५९
	जलके प्रवाह	६
१४-	गोशाला	६१
	गौसंवर्धन	६१

सूक्त	विषय	पृष्ठ
१५-	वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति	६१
	वाणिज्य व्यवहार पुराना बनिया !	६१
	व्यापारका अस्त्र व्यापारके विरोधी	६६
	दो मार्ग ज्ञानयुक्त कर्म	६७
	परमेश्वर भक्ति	६८
१६-	प्रातःकालमें भगवान्‌की प्रार्थना	६९
	प्रातःकालमें भगवान्‌की प्रार्थना सबका उपास्य देव	७१
	अहोरात्रका रहस्य उपासनाकी रीति	७१
	भारूय उपासना-धारणा	७२
	सबका मार्ग	७३
	देवोंकी सुमति अहिंसाका मार्ग	७४
	बीजें और पौधे, प्रजन	७४
१७	कृषिसे सुख-प्राप्ति	७५
	कृषिसे मानवकी वृद्धि, कार्य करनेके पूर्व हवन	७७
	खादके लिये भी और खेतके ! !	७७
	ऐतिहासिक उदाहरण गोरक्षाका उपदेश	७७
१८-	वनस्पति	७८
	वापसभावका सर्वत्र परिणाम	७९
१९-	ज्ञान और शौर्यकी तेजस्विता	७९
	राष्ट्रीय उन्नतिमें पुरोहितका कर्तव्य	८१
	ब्रह्मतेजकी ज्योति	८१
	पुरोहितकी प्रतिष्ठा पुराकी नीति	८२
२०-	तेजस्विताके साथ नम्रभाव	८३
	अग्निका आदर्श उत्पत्तिस्थानका स्मरण	८५
	सम्भूय समुत्थान	८६
२१-	कामाग्निका शमन	८८
	कामाग्निका स्वरूप	९
	काम और इच्छा कामकी दाहकता	९१
	न दबनेवाला इच्छाका रथ	९२
	कामशान्तिका उपाय	९३
२२	पत्नीप्राप्ति सूक्त	९५
	पाणिग्रहणसे बल बढ़ाना बलशालिनी रीति	९६
२३-	वीर पुत्रकी उत्पत्ति	९७
	वीर पुत्रका प्रसव	९८
२४-	समृद्धिकी प्राप्ति	९९
	समृद्धिकी प्राप्तिके उपाय	१
	पुत्रका दीर्घ जीवन	१ १

सूक्त	विषय	पृ
२५-	कामका बाण	१०२
	विरुद्ध परिणामी अलंकार	१ १
	कामके बाण, पतिपत्नीका एक मत	१ ४
	धर्मपत्नीके गुण	१ ५
	गृहस्थधर्म	१ ६
२६-	उन्नतिकी दिशा ।	१०७
२७	अभ्युदयकी दिशा	१०८
	दिशाओंके वर्णनसे उत्थान- उन्नतिके	१११ ११२
	दिशा दीपक	१११
	व्यक्ति और समाजका अवदा	१११
	दिशाओंका उत्थान- वैदिक दृष्टि	१११
	पूर्व दिशाकी विभूति	११
	पश्चिम दिशाकी विभूति	१११
	उत्तर दिशाकी विभूति	१११
१८-	पशुओंकी स्वास्थ्यरक्षा	१११
	पशुओंका स्वास्थ्य पशुओंकी उत्पत्ति रोगी पशु	१११
२९-	संरक्षक कर	१११
	राज्यशासन चलानेके लिये कर	१११
	प्रतिष्ठा सौन्दर्यका मान	१११
	प्रतिष्ठके दो साधन	१११
	राज कैसा हो करका उपयोग	१११
	स्वर्ग सदृश राज्य कामनाका प्रभाव	१११
	कामकी मर्यादा	१११
३०-	एकता	१११
	सङ्गठनसे एकता अंदरका सुधार	१११
	बाहरका सुधार	१११
	सैकड़ों धर्म ज्ञानधाराका प्रवाह	१११
	देवधारणसे उन्नति	१११
	कर्मसे मनुष्यका विकास	१११
३१-	पापकी निवृत्ति	१११
	पापनिवृत्तिके औरोंका पाप और पुण्य	१११
	पापका दूर करना वैदिक उदाहरण	१११
	अग्निका आदर्श पवित्रताका महत्व	१११
	स्वाभाविक स्वभाव स्वभावसे बचाव	१११
	ज्ञान अपनी गतिमें रहना	१११
	पेटकी पाचनशक्ति, सुदृढ़ वीर्य	१११
	दीर्घायु प्राप्त करनेवाले औषधिरूप	१११